गुरुकुल-पत्रिका

[गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की मासिक पत्रिका]

बड़ा कौन

श्री विष्णु मित्र

मूर्धाहं रयीणां-मूर्धाहं समानानां भूयासम्।

इस अथर्ववेद के मन्त्र में बताया है कि प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर समय समय पर यह विचार पैदा होते हैं कि सारी दुनियां में मैं सबसे बढ़कर धनाढ्य बनूं और सबसे बढ़कर बड़ा बनूँ। पर सबसे बढ़कर धनी और बड़ा कौन बन सकता है इस बात को बृहदारण्यक और छान्दोग्यउपनिषद् में एक कल्पित कहानी द्वारा बड़ी खूबसूरती से दिखाया है। एक बार प्राण, वाणी, आंख कान आदि इन्द्रियों में झगड़ा हो गया। आप जानते हैं कि जहां भिन्न-भिन्न विचार के महत्त्वाकांक्षी चार इकट्ठे हो जाते हैं वहां झगड़ा हो ही जाता है। चार बर्तन इकट्ठे हो जांय तो टकरा ही जाते हैं! संघर्ष हो ही जाता है। पहाड़ पर आग लगी देखकर हम सोचते हैं कि इतने ऊँचे पहाड़ पर आग कैसे लगी और किसने लगाई। मालूम हुआ कि पेड़ की डालियां हवा से रगड़ खा गईं जिससे सारे पहाड़ और जंगल का स्वाहा हो गया। झगड़ा या संघर्ष बुरी चीज़ है।

इसका परिणाम नाश होता है। यही बात-प्राणियों में भी चरितार्थ होती है। एक कुटुम्ब एक परिवार बड़ा सुखी है। पर कुटुम्ब और परिवार के किसी आदमी में यह भावना पैदा हो जाती है कि मैं इस कुटुम्ब का पालन पोषण करता हूं। मैं बड़ा हूं। इन्हें मेरा आदर करना चाहिये। स्वार्थ के इस भाव से सारे कुटुम्ब का नाश हो जाता है। यही बात संस्थाओं और समाजों की है। जब तक संस्था वा समाज के सभी सभासद् स्वार्थ छोड़ कर निष्काम भाव से मिलकर काम करते हैं अच्छा काम चलता रहता है। पर जब कभी उन्हीं में से किसी एक के मन में यह भाव पैदा हो जाता है कि मेरे कारण यह संस्था वा समाज चल रहा है, मैं बड़ा हूं, मेरा आदर होना चाहिये तब बना बनाया सब काम बिगड़ जाता है। संघर्ष या स्वार्थ सर्वथा बुरा है। स्वार्थ की इसी भावना से इन्द्रियों में भी संघर्ष वा झगड़ा हुआ। सब इन्द्रियां अपने आपको बड़ा कहने लगी।

झगड़ा मिटाने के लिये वे प्रजापति (जीव) के पास पहुँचीं। प्रजापति समझदार थे उन्होंने फैसला दिया कि तुम में से जिसके शरीर से निकल जाने पर शरीर तेजहीन हो जाय वही तुममें बड़ा है। इस फैसले से सब इन्द्रियां प्रसन्न हो गईं क्योंकि सब का यही ख्याल था कि मेरे बिना शरीर का काम नहीं चलेगा। सबसे पहिले लड़ाई की जड़ वाणी शरीर से निकल गई। कुछ समय के बाद उसने आकर देखा कि शरीर का काम चल रहा है। उसने पूछा मेरे बिना कैसे काम चला। इन्द्रियों ने कहा जैसे एक गूंगे का काम चलता है। उसे हारी देख आंखें निकल गईं। कुछ देर बाद उसने आकर देखा कि

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

शरीर का काम चल रहा है। उसने पूछा कैसे काम चला। इन्द्रियों ने कहा जैसे अन्धे का काम चलता है। ऐसे ही अन्य इन्द्रियां कान आदि के साथ भी यही बीती। पर मन को तो बड़ा अभिमान था कि मेरे बिना शरीर का काम कैसे चलेगा। निकलते ही उसने देखा कि एक आदमी सुषुप्ति की अवस्था में पड़ा है पर वह जीता है और कहता है कि मैं बड़े सुख से सोया।

तब मन ने चुपचाप आकर अपना स्थान ले लिया। अब प्राण की बारी आई। प्राण के बाहर पैर रखते ही सभी इन्द्रियां घबरा गईं। और सब की अपनी अपनी शक्ति नष्ट हो गई। उन्हें मालूम हुआ कि हम इसकी शक्ति से ही अपना-अपना काम करतीं हैं। तब उस वाणी ने जिसने सबसे पहिले बाहर कदम रखा था मन की स्तुति की। यस्मान्न ऋते किञ्चन कर्म क्रियते तदस्माकं मनः शिव संकल्पमस्तु। और कहा कि हम सबने मान लिया कि आपही सबसे बड़े हैं। इस कहानी से उपनिषद्‌कार ने यह शिक्षा दी है कि जो स्वार्थ को छोड़ कर मानापमान की भी कुछ परवाह न कर प्राण की तरह निष्काम भाव से दूसरों की सेवा करता है वही सब में सब बातों में बड़ा है। प्राण में अन्य इन्द्रियों से यह विशेषता है कि वह खाये हुये अन्नादि का कोई हिस्सा नहीं लेता। दूसरा इसमें कोई दोष नहीं इसका कोई विषय नहीं। वाणी अच्छा बोलती है बुरा भी बोलती है। कान अच्छा सुनते हैं बुरा भी सुनते हैं। मन अच्छा चिन्तन करता है बुरा भी।

पर यह प्राण तो बिना कुछ भी लिये चौबीस घंटे सेवा करता है। जब सब इन्द्रियां थक कर सो जाती हैं तब यह उनकी रक्षा करता है। इन्द्रियों में अपना-अपना स्वार्थ है प्राण में कोई स्वार्थ नहीं। अतः प्राण की तरह जो निःस्वार्थ भाव से दूसरों की सेवा करता है वही सबमें बड़ा है।

ऊपर के वेद मन्त्र में दूसरी बात है कि मैं सब से बढ़कर धनी बनूँ। यद्यपि यह इच्छा बड़ों में नहीं होती तथापि यदि देखा जाय तो सबसे बढ़कर धनी भी वही होते हैं। उनके तनिक से इशारे से उन्हें धन की कमी नहीं रहती। पर वे उसे अपने पास नहीं रखते। परोपकार में लगा देते हैं। या ठुकरा देते हैं। यह महात्माओं के बड़प्पन की निशानी है।

कनखल के साधु मथुरादास की एक घटना लिखकर इस लेख को समाप्त करूंगा। सन्त जी किसी खेत में आराम कर रहे थे। एक सेठ ने, जिसने अपनी कोई इच्छा पूरी करानी थी, सन्त जी के आगे रेशमी रूमाल बन्धी कुछ अशर्फियां लाकर रखदी। सन्तजी ने कहा, क्या है। सेठ ने कहा, महाराज कुछ अशर्फियां हैं। सन्तजी ने कहा, लेजाओ हमें इनकी जरूरत नहीं। जब सेठ न माना तब सन्तजी स्वयं उठकर चल दिये। सेठ भी पीछे-पीछे चल पड़ा। तब सन्तजी खड़े होकर बोले, बताओ यदि तुमने अपनी रसोई को साफ किया हो और कोई भंगी उसमें मल लाकर फैंकदे तब तुम उससे कैसा व्यवहार करोगे। सेठ बोला, मैं उसके जूते लगाऊंगा। सन्तजी ने कहा, कि देखो हमने परिश्रम से अपने अन्दर चौका लगाया है और मन शुद्ध किया है तू इस पीले मल से इसे गन्दा किया चाहता है, बताओ तुमसे कैसा व्यवहार किया जाय। चले जाओ फकीरों को तंग मत करो। यह सुन लज्जित हो वह सेठ चलता बना। किसी कवी ने ठीक कहा है कि—

विकृतिं नैव गच्छन्ति संगदोषेण साधवः।
आवेष्टितं महासर्पैश्चन्दनं न विषायते।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

जौनसार बावर : और उसका उज्जवल भविष्य

श्री धर्मदेव शास्त्री

जौनसार बावर के मुख्य स्थानों का इस लेख में परिचय देने के बाद हम उस प्रदेश में नये उद्योगों को चलाने की सम्भावनाओं पर प्रकाश डालेंगे।

विराट दुर्ग

विराट दुर्ग की ऊंचाई ७४२३ फुट है। विराट दुर्ग का शिखर कालसी से सीधी चढ़ाई पर छः मील दूर है। देवबन कालसी से १५ मील सीधी चढ़ाई पर है। यह स्थान समुद्र से ६३४७ फुट ऊंचा है। जो शिखर सबसे ऊंचा प्रतीत होता है उस पर पहुँचने के लिए साथ ही वह सब से छोटा प्रतीत होता है और दूसरा शिखर ऊंचा दीखता है।

पहाड़ हरे भरे भी हैं। ऊंचे पहाड़ों में देवदार और नीचे के शिखर पर चीड़ के वृक्ष मिलते हैं। देवदार के वृक्ष बौद्ध मन्दिर की बनावट के अथवा प्राचीन शिव मन्दिर के समान मालूम होते हैं। देवदार के वन में बहने वाली वायु सुगन्धयुक्त तो होती है साथ ही उसका शब्द कानों को भी सुन्दर लगता है। ऊपर देवबन में आरण्य विभाग ने कुछ पुराने और बहुत मोटे देवदार तथा चीड़ के वृक्ष सुरक्षित वृक्ष बनाकर बचा दिये हैं। इन वृक्षों को जब हमने प्रथम बार छजाड से मुंडाली जंगल के रास्ते आते हुए देखा तो तृप्त हो गये। आज भी जब हम यह पंक्तियां लिख रहे हैं हमारी आंखें उन वृक्षों को देखने के लिए प्यासी हैं। कितना सुन्दर यह देवबन है।

असंख्य पर्वत श्रेणियां हैं। उनके ऊंचे शिखर के उस भाग को जहां कुछ खेती होती है लाणी और डांडा कहते हैं। लाणियों में पंजीठी लाणी और मागटी लाणी हमें बहुत कठिन प्रतीत हुई हैं। पहली लाणी तक पहुँचने के लिए एक ही मील में अमला से ऊपर तीन हजार फुट सीधी चढ़ाई है जबकि दूसरी तक पहुँचने के लिए आध ही मील में करीब दो हजार फुट चढ़ना होता है। नराया ग्राम के कुछ आगे काण के मार्ग में हाऊ ग्राम के लिए जो पृथक् पगडन्डी गई है वह हमें सबसे अधिक दुर्गम मार्ग लगा है। कालसी से खणी ग्राम के लिए जो रास्ता गया है वह भी काफी कठिन है। इस मार्ग में सांप बहुत हैं। अजगर सांप भी इस मार्ग में कभी-कभी देखे गए हैं। उक्त स्थानों में से पंजीठी से आगे चन्दौ में तथा हाजा से आगे दसौ में अशोक आश्रम के विद्यामन्दिर चलाये गये थे। डांडों में द्वीना लाछा का डांडा बहुत प्रसिद्ध है। यह डांडा समुद्र से करीब ७००० फुट ऊंचाई पर है। ऊपर पहुँचने पर बहुत लम्बे चौड़े खेत और मैदानों को देख कर चित्त बहुत प्रसन्न होता है। इस डांडे पर पहुँच कर हिमालय का गौरीशङ्कर शिखर तथा नीचे देहरादून के मैदान स्पष्ट दीखते हैं, यहां डांडे पर हजारों मन आलू उपजाते हैं, विशेष कर बीज का आलू इस डांडे का प्रसिद्ध है, आजकल इस डांडे के लिये दीना लाछा और सीला इन तीन ग्रामों और शेष १२ ग्रामों की जिनमें बिसोई कासा और खटाड मुख्य हैं लम्बा मुकदमा चल रहा है, गत तीन वर्षों से इस मुकदमे की बड़ी चर्चा है। द्रोपदी के चीर की तरह यह मुकदमा लम्बा ही होता जाता है और खतम नहीं हो रहा। यह उक्त १५ ग्राम मिल कर बहलाड् खेत बना है। १२ ग्राम वालों का कहना है कि यह सारे खेत का शामलात डांडा है जबकि द्वीना लाछा और सीला ग्राम वाले कहते हैं कि केवल इन तीन ग्रामों को ही इस डांडे में नौतोड़ करने का हक है।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

नोतोड़ का अर्थ है नया खेत बनाने का प्रयत्न। यह डांडा इतना उपजाऊ और बहुमूल्य है कि उक्त मुकदमे में अब तक दोनों ओर का करीब १०००० रु० व्यय हो चुके हैं। द्वीना ग्राम और डांडे के बीच में नागथात नाम का मसूरी से चकरौता जाने वाली सड़क पर सुन्दर स्थान है। इस स्थान पर सितम्बर १९४५ से माता कस्तूर बा गांधी महिला औषधालय अशोक आश्रम की ओर से चल रहा है। नागथात तक श्रीयुत ठक्कर बापा, श्रीयुत बी. जी. खेर बम्बई प्रान्त के प्रधान मन्त्री तथा श्रीमती डाक्टर सुशीला नायर महात्मा गांधी जी की प्रेरणा से पहुँचे हैं।

भूमि

खेती के योग्य भूमि बहुत कम है। इस प्रदेश के परिश्रमी स्त्री-पुरुषों ने फिर भी वहां खेती के योग्य सुन्दर खेत बनाये हैं जिन में आलू, अदरक, अफीम और हल्दी की अच्छी फसल होती है। आलू तो इस प्रदेश का बहुत मीठा और टिकाऊ तथा स्वादिष्ट होता है। युद्ध के दिनों में सरकार ने अंगरेज़ सिपाहियों के सिवाय औरों को यहां का आलू खाने से रोक ही दिया था। नैपाली स्त्री-पुरुष जौनसारियों से भी अधिक परिश्रमी होते हैं इसका सबूत हाल ही मिला है। कुछ गोरखा परिवारों ने चकरौता के पास मोहना खत में ऐसी भूमि में आलू की बढ़िया फसल की है जहां साधारणतया पहुँचना और पशुओं को पत्ती खिलाना भी कठिन होता है। सीधी ढांग में इन गोरखों ने सैंकड़ों मन आलू पदा किये हैं।

खाद

पैदा करने का तरीका यहां का उत्तम है, गोबर को यहां के लोग जलाते नहीं। खेत के पास ही पशुओं के ठहरने के लिये स्थान बनाये गये हैं जिन को छाना अथवा गोठ कहते हैं। पास में जगल से पतझड़ में झड़ने वाली पत्तियों के बीज लाकर उनकी भी खाद बनाई जाती है। खाद की रक्षा यह लोग पूरे ध्यान से करते हैं इसी लिये पत्थर में से अच्छी फसलें लेने में इन्हें सफलता मिली है।

अन्य पैदावार

उक्त मुख्य पैदावार के अतिरिक्त गेहूं, जौ, चावल, लाल मिर्च, मक्का, तम्बाकू, झँगोरा, चौलाई और मंडवा भी यह पदा करते हैं। मंडवा यहां का मुख्य अन्न है। खाने के अतिरिक्त इसका उपयोग ये लोग शराब बनाने में भी करते हैं। झंगोरे की भी शराब बनाई जाती है। नदियों और कूलों के किनारे क्यारियों में कहीं २ धान की खेती होती है। ऐसे स्थान मुख्यतया हरिपुर, व्यास क्वापा, खडकोटा और भरम खत में हैं। साहिया के समीप क्यारियों में हज़ारों मन गाजर, टमाटर और फ्रांसबीन उगाई जाती हैं।

सिंचाई

यहां सिंचाई का कोई प्रबन्ध नहीं। उस खुश्क ज़मीन में मुख्यतया मंडवा लगाया जाता है। मडवे का पौधा सख्त होता है, उसके एक ही पौधे पर अनेक मंजरियों में काफी अन्न पैदा हो जाताहै। पथरीली और सख्त ज़मीन में भी यह पौदा हो जाता है। पानी की अधिकता से मंडवे का पौदा खराब हो जाता है। मंडवे की गुड़ाई हो जाने पर और फिर कटाई हो चुकने पर इस प्रदेश में उत्सव मनाया जाता है। नाच, गान और खाना-पीना खूब होता है। मंडवे की फसल ठीक होने पर ही इस प्रदेश को भोजन सम्बन्धी निश्चिन्तता होती है।

पहाड़ी की ऊंची चोटियों पर गेहूँ और जौ की फसल होती है। सितम्बर के अन्त में बीज बो दिया जाता है जिस से पाला पड़ने से पहले ही बीज जम जवें, गेहूँ और जौ की यह फसल मुख्यतया बर्फ पड़ने पर ही निर्भर है। जितनी अधिक बर्फ गिरे उतना ही फसल को लाभ है। जिस साल बर्फ न गिरे फसल खराब होती है। पौधे बर्फ से पूर्णतया दब जाते हैं।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

धीरे-धीरे बर्फ पिघलती है और उससे ही फसल की सिंचाई होती रहती है।

हल्दी और अदरक की फसल

हल्दी और अदरक की फसल भी कीमती फसल समझी जाती है। इसकी कुछ गज भी भूमि परिवार के लिये बहुमूल्य भूमि है। अदरक को सुखा कर सोंठ भी बनाया जाता है। बाना, त्रिसेल और उत्पालटा खतों में सोंठ बहुतायत से बनाया जाता है।

अफीम की फसल

जौनसार के लिये जिस प्रकार आलू और अदरक कीमती फसलें हैं इसी प्रकार बावर के लिये अफीम कीमती पैदावार है। अफीम केवल ऊंची पहाड़ियों पर ही होती है। पहले जौनसार बावर में अफीम तैयार की जाती थी परन्तु अब कानून द्वारा जौनसार में रोक दिया गया है केवल बावर में ही यह पैदा की जाती है। अफीम की फसल यदि ओले न पड़ें तो अधिक कीमती होती है। बावर के लिये अफीम ही आर्थिक दृष्टि से काम की फसल है। यहां की अफीम प्रायः पटियाला रियासत में जाती है। इसके लिये बढ़िया खाद की आवश्यकता है। अफीम के पौधे के सिरे पर टोपीनुमा फल लगता है उसके चारों ओर चाकू से छेद कर दिये जाते हैं, इनमें से रस निकलता है जो फल के बाहर ही सूख जाता है। दूसरे दिन उस सूखे रस को बरतन में एकत्र कर लिया जाता है। यही अफीम है। पोस्त के फल के भीतर के बीज होते हैं। फल को हाथ से तोड़ कर फल के यह बीज खाये जाते हैं। एक बार जब हम बावर घूम रहे थे हमने अन्न छोड़ा हुआ था तब ग्रामों में हमें खाने के लिये पोस्त के ये बीज ही दिये जाते थे। यह बहुत ही स्वादिष्ट होते हैं। यहां के लोग फल के छिलके को जलाने के कार्य में लाते हैं। तम्बाकू भी सभी काश्तकार अपने खर्चे भर के लिये पैदा कर लेते हैं। तम्बाकू में सीरा मिला कर उसे पीते हैं। सीरा ये लोग कालसी सहिया और चकरौता की दूकानों से ले आते हैं। अदरक, आलू और अखरोट बेच कर इन भोले लोगों की पीठ पर बदबूदार सीरा लाद कर लाते हुए हमने अनेक बार देखा है और सदा दुःख अनुभव किया है।

लाल मिर्च

लाल मिर्च यहां की बहुत तेज होती है। यहां की छोटी सी एक मिर्च भी बहुत तेज मिर्च खाने वाला भी शायद पूरी खा सकेगा।

खेती करने के तीन तरीके

१. क्यारी, २. सीढ़ीनुमा खेत, ३. डांडा।

क्यारी

नदी तथा खालों में से पानी की कूल निकाल कर जहां सिंचाई हो सकती है उन क्यारियों में बढ़िया खेती होती है। खडकोटा की क्यारियों में आलू, टमाटर और शाक बढ़िया किस्म के पैदा होते हैं। खडकोटा में पानी बहुत है। कहीं-कहीं ४००० और ५००० फुट ऊंचे स्थान पर भी चावल की खेती होती है। यमुना के किनारे लाखामण्डल और क्यारी ग्रामों में तथा टोंस के किनारे द्वार में अच्छा धान पैदा होता है। परन्तु यह सब अन्न इन लोगों के अपने ही व्यय के लिये जिस किसी प्रकार पूरा होता है। आलू, टमाटर और अदरक तथा शाक बेचे जाते हैं। युद्ध के दिनों में अंग्रेजी फौजों के लिये गर्मियों में जब नीचे शाक नहीं मिलते तब यहां शलजम, फ्रांसबीन, गाजर और चुकुन्दर की खूब पैदावार कराई गई। टमाटर यहां का बहुत उत्तम होता है। कद्दू यहां बहुत होता है जो नीचे बिकने जाता है। इतना मीठा कद्दू देश में अन्यत्र नहीं मिल सकता। जब यहां आने पर ठक्कर बापा को अशोक आश्रम में कद्दू का शाक खिलाया गया तो उन्होंने पूछा, इस में इतना गुड़ क्यों डाला है। बिना गुड़ डाले यह

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

इतना मीठा होता है। इस उत्तर में बापा को बहुत आश्चर्य हुआ।

सीढ़ी नुमा खेत

यह तरीका वहां का साधारण खेती का तरीका है। बहुत मुश्किल से खेत तैयार किए जाते हैं। काबुली पठानों से बड़ी मेहनत करके यह खेत तैयार किए जाते हैं। एक खेत के तैयार करने में कभी-कभी सैंकड़ों रुपये लग जाते हैं। चुरानी से सभालटा होते हुए सहया के मार्ग में एक स्थान पर हमने २० खेत एक के ऊपर एक क्रम से देखे हैं। यह खेती की सीढ़ी बहुत सुन्दर प्रतीत होती है। पत्थरों की दीवार बना कर उसके बाद दूसरा खेत इसी प्रकार ऊपर-ऊपर बनाया जाता है। कभी-कभी अधिक वर्षा के कारण खेतों की दीवारें टूट जाती हैं तो किसानों की आंखों में आंसू आ जाते हैं उनकी जन्म की कमाई उस में बह जाती है। प्रायः दोबारा खेत बनामा सब के लिए सम्भव नहीं होता।

डांडा

ऊंचे शिखरों पर जहां समतल भूमि खेती के लिए मिल जाती है वहां भी खेत तैयार किए जाते हैं। यह खेत प्रायः ऊपर जाकर देखने से नीचे मैदानों के खेतों के समान दीखते हैं। ऐसी चौरस भूमि के बनाने में तथा उस में हल चलाने में बहुत परिश्रम नहीं होता। प्रथम दो प्रकार के खेतों में तो बैलों को और हल चलाने वाले को बड़ी मुसीबत का सामना करना पड़ता है। तीसरे प्रकार की भूमि में खेती सरल और क़ीमती तथा मात्रा में भी अधिक होती है।

दासों द्वारा खेती

यहां के काश्तकारों को जमींदार कहा जाता है इस लिए आगे जहां भी ज़मींदार शब्द का प्रयोग हम करेगें उसका अर्थ उत्तर प्रदेश के काश्तकार से समझना चाहिए। यहां के ज़मींदारों में जिनके पास बहुत भूमि है वह अपने आधीन कार्य करने वाले कोल्टा से काम कराते हैं। कोल्टा यहां के दास हैं। नीचे मैदानों में चमारों से जो कार्य कराया जाता है उसमें और कोल्टों से काम लेने में बहुत अन्तर है। चमार तो नौकर हैं जबकि कोल्टा दास हैं। कुछ कर्ज के एवज में सूद के स्थान पर अनेक पीढ़ियों से ये लोग मालिकों के गुलाम हैं। पशुओं के समान इनका विनिमय आदि भी होता है।

जलवायु

कालसी का जलवायु देहरादून के समान है। ऊपर चल कर चकरौता में शिमला से भी अधिक ठंडक है। देववन में तो सदा शीत ऋतु है।

पशु

यहां के लोग गाय, भैंस, बकरी और भेड़ प्रायः रखते हैं। गाय को ये लोग पूज्य मानते हैं। गाय का दूध नहीं पीते। इन लोगों का विश्वास है कि गाय का दूध केवल महासू ही पी सकता है। मनुष्य गाय का दूध पीवेगा तो बीमारी फैलेगी तथा गौ के थनों में कीड़े पड़ जावेंगे। इसी भ्रम का ही यह परिणाम है कि यहां गौ दुधारू बहुत कम होती हैं। दूध और घी के लिए अब भैंस पाली जाती हैं। घी यहां से नीचे मैदानों में जाता है परन्तु उस घी में दुर्गन्ध रहती है कारण यह है कि ये लोग गर्म किये बिना ही जमा देते हैं तथा अनेक रोज़ बाद उसे बिलोते हैं। बर्तन भी लकड़ी के होते हैं जिन्हें बहुत साफ करने पर भी बदबू साफ नहीं की जा सकती। घी में मिलावट करना ये लोग नहीं जानते थे अब सहिया के दुकानदारों ने इन भोले पर्वतीयों को ऐसा भी सिखा दिया है।

खानें

कालसी के पास बौसाण में पहिले लोहा बनता

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

था। यह लोहा नीचे भी जाता था। यहां एक लोहे की खान है। अमला के किनारे कालसी में तांबे की खान है परन्तु अभी तक कुछ भी कार्य नहीं हुआ।

जहां अमला यमुना में मिलती है वहां सम्राट अशोक के शिलालेख के पास ही नदी किनारे लोहे के अंश वाले पत्थर बहुत मात्रा में मिलते हैं। ढयूनी से परे अनोल के मार्ग में भी लोहे की खान है परन्तु इस सम्बन्ध में कुछ भी कार्य नहीं हुआ।

अपने निजी अनुभव के आधार पर हम कह सकते हैं कि यदि राष्ट्रीय सरकार हिमालय की इन खानों का अनुसन्धान करे तो लोहा, तांबा और सीमेंट की अनेक खानें मिल सकती हैं। ग्वालियर में जैसे मिट्टी का कार्य होता है उससे भी बाढ़िया मिट्टी यहां अनेक स्थानों पर मिल सकती है। यदि सरकार सहायता करे तो पहाड़ के लोगों में अनेक गृह उद्योग यहां चल सकते हैं। जिन में इस प्रदेश का पुनर्निर्माण होगा और देश की आवश्यकता पूरी होगी।

स्वावलम्बी प्रदेश

सन् १८२७ तक यहां के लोग अपने लिए आवश्यक अन्न पैदा कर लेते थे। लेकिन अब बहुत सा अन्न नीचे से मंगाना पड़ता है। इसके दो कारण हैं।

१. प्रथम यह है कि जिस भूमि में पहले खाने के लिए अन्न उपजाया जाता था अब वहां आलू, अदरक और शाक पैदा होते हैं

२. दूसरा यह कि मँडवा, जौ और भंगोरा को शराब बनाने में काम लाया जाता है।

आर्थिक दृष्टि से तीन भेद

इस प्रदेश को हम आर्थिक दृष्टि से भी तीन भागों में बांट सकते हैं। हरिपुर व्यास, पञ्चगांव, लखवाड़ बाना विसैल उत्पालटा अठगांव और समालटा तथा दूसरे वे खेत जो चकरौता रोड के पास अथवा सहिया के पास हैं आर्थिक दृष्टि से उन्नत खेत हैं क्योंकि इनकी पैदावार तुरन्त थोड़े से श्रम से मण्डियों में बिक जाने से इन लोगों को अच्छे दाम मिलजाते हैं।

जौनसार के वह खेत जो सड़क से दूर हैं। जहां से आलू, अदरक आदि खच्चरों द्वारा मण्डी में आता है उन्हें अपेक्षाकृत कम आय होती है। किराये में इनकी आय बहुत व्यय हो जाती है। फिर भी ये लोग खाते पीते हैं जिस प्रकार इनकी आय कम होती है। उसी प्रकार दूर रहने से इन लोगों का व्यय भी कम होता है। लाखामण्डल के आस पास के खेतों में कोल्टा स्त्रियों के वेश्यावृत्ति के लिए नीचे जाने के कारण भी एक विशेष रूप से आय हो रही है। चकरौता से लाखामण्डल के मार्ग पर आचरणहीन व्यक्तियों का आना-जाना बहुत बहुत होता है। इधर के सयाना लोग दूसरे एजेन्ट जिनमें कुछ बनिए भी सम्मिलित हैं वेश्यावृत्ति के ही आधार पर बहुत पैदा करते हैं।

जमीन के मालिक

दस्तूरुलअमल कानून के द्वारा भूमि का स्वामित्व यहां ब्राह्मण राजपूतों का ही है। कोल्टा और बाजगियों को यहां ऐसा अधिकार प्राप्त नहीं। अब सरकारी अधिकारियों ने कुछ ऐसे फैसले किये हैं जिनमें कोल्टा को भी स्वामित्व का अधिकार दिया गया है। सन् १८७५ ई० में खेती करने वाले यहां मौरूसी काश्तकार १२६६१ थे जबकि मजदूर १०५६७ थे।

चौलाई के खेत

चौलाई ऐसा अन्न है जो अनेक वर्षों तक खराब नहीं होता। प्रायः प्रत्येक परिवार में आपत्ति काल के लिए नीचे के घर में चौलाई रखी रहती है। सितम्बर अक्तूबर में चौलाई के पके खेत दूर से केसर के खेत प्रतीत होते हैं जो बहुत सुन्दर मालूम होते हैं।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

श्रद्धाञ्जलि

श्री धर्मदेव विद्यावाचस्पति

कुलमाता तेरे चरणों में,
मैं श्रद्धाञ्जलि लाता हूँ ।
स्वीकृत करके आशिष देगी,
ऐसी आश लगाता हूं ॥

तूने जो उपकार किये हैं,
उनकी गणना कैसे हो ?
वे अनन्त हैं उन की बाधक,
मेरी रचना कैसे हो ?

दीक्षा देकर धर्म देश का,
प्रेम मातु ! उत्पन्न किया।
सद् चार के बल से जननी,
फिर तूने सम्पन्न किया ॥

सेवा की जो लगन लगी है,
सब तव शिक्षा का फल है।
सारे भय को दूर भगावे,
तेरे नाम में यह बल है ॥

प्रान्त-प्रान्त में विचरण करते,
माता तेरी याद सदा ।
कर देती है हृदय प्रफुल्लित,
वह वास्तव में दिव्य सुधा ॥

उसके सन्मुख निराशता का,
है कोई भी स्थान नहीं ।
शक्ति मिले विपदाओं में,
मुख होता है म्लान नहीं ॥

श्रद्धा मूल मन्त्र को जपते,
देते सब को दिव्यानन्द ।
तेरी ही गोदी में हमको,
मिले पूज्य श्री श्रद्धानन्द ॥

दिव्य भावना भर कर सब के,
हृदयों को सन्तुष्ट किया ।
परम अनुग्रह करके मन में,
धर्म ज्योति को दीप्त किया ॥

विश्वबन्धु उन धर्म वीर का,
नाम लगा है तेरे साथ ।
उनका हम कुल पुत्रों पर वह,
सदा रहा मङ्गल हाथ ॥

धर्म वेदि पर बलि दे कर वें,
अमर धाम को पाय गये ।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

जननि ! स्वर्णाक्षर में तेरा,
निर्मल नाम लिखाय गये ॥

उनकी छत्र छाया में था,
हमने तुझ में वास किया।
नहीं भूमि पर दिव्य स्वर्ग में,
हमने विद्याभ्यास किया ॥

योग्य तपस्वी शिक्षक गण से,
धर्म कर्म शिक्षा पाई ।
वही दीखती वास्तव में अब,
अपनी पुण्य कमाई ॥

भागीरथी तीर सुमनोहर,
रम्य हिमालय देश ।
प्रकृति देवि के वे आह्लादक,
खेद विदारक वेश ॥

नहीं कहीं भी ढूंढे मिलते,
माता तू अनुपम है ।
तेरी गोदी पुण्यमयी है,
इस में ज़रा न भ्रम है ॥

सभा वर्ग वा जन्मोत्सव के,
वे अति सरलामोद ।
अरण्य पर्वत की वे सैरें,
गङ्गा में तैरी के मोद ॥

शिक्षक-गण का प्रेम भरा,
व्यवहार ये सन्मुख आते हैं।
तेरे चरणों में ये माता,
मम मस्तक नमवाते हैं ॥

तेरी रम्य वाटिका में था,
कितने वर्ष विहार किया ।
वह स्वर्गोपम समय कि जिस में,
तेरे में संचार किया ॥

श्रुति कुसुमों के मधु रस पीने,
का मुझ को सौभाग्य हुआ।
तेरी थी अनुकम्पा माता,
वेद विषय अनुराग हुआ ॥

यही कामना अब है मन में,
तेरा उज्ज्वल नाम करूं।
जिस से सुरभित तव यश फैले,
ऐसे ही मैं काम करूं ॥

आशिष पूज्य पिता की पाऊं,
दिव्य धाम जो राज रहे ।
धर्म देश पर अर्पित होऊं,
कुल माता की लाज रहे ॥

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

जीव-जन्तुओं का सामाजिक जीवन

श्री सुषेण

इस सृष्टि में अनेक प्रकार के जीव जन्तु हैं जिनमें मनुष्य की भी गणना की जाती है। स्थूल रूप से इन्हें तीन भागों में बांट सकते हैं पादप, पशु-पक्षी-अन्य जीव-जन्तु-कीड़-पतंग कृमि, मनुष्य। इन सब में मनुष्य ही एक ऐसा जीव है जिसमें जिज्ञासा और ज्ञान दोनों की विशेषता है। जिज्ञासा की पूर्ति के लिए मनुष्य अपने ज्ञान का उपयोग करता है और जिज्ञासा की पूर्ति का नाम ही ज्ञान है।

मनुष्य इस सृष्टि में जितने प्रकार के जीव-जन्तु और पदार्थ देखता है उनके विषय में कुछ न कुछ जानना चाहता है और उनके गुण-दोष जानकर उन्हें अपने उपयोग में लाने का प्रयत्न करता है। इसी आधार पर आवश्यकता को खोज और आविष्कारों की जननी कहा गया है।

मनुष्य ने सृष्टि के नये-नये रहस्यों को जानने की प्रबल इच्छा से अनेक दिशाओं में खोज और अन्वेषण किये हैं उसने जीव-जन्तु और कीट-पतंगों का भी अध्ययन किया है। इस अध्ययन से जीव-जन्तुओं के विषय में अनेक मनोरंजक और उपयोगी रहस्यों का पता लगा है।

जिस प्रकार मनुष्य अपना सामाजिक जीवन व्यतीत करता है उसी प्रकार अन्य अनेक जीव-जन्तुओं का भी अपना सामाजिक जीवन है। अनेक प्राणी दूसरी जाति के प्राणियों को नष्ट कर उनके रहने का स्थान तक छीन लेते हैं। अनेक प्राणी दूसरे प्राणियों की सन्तान का पालन-पोषण करते और उनकी रक्षा करते हैं। विविध कीड़-पतंगों के कारण ही कई प्रकार की वनस्पतियों और फल फूलों का अस्तित्व बना रहता है, क्योंकि फूलों में प्रायः विभिन्न कीट-पतंगों के द्वारा ही परागण होता है। परागण से बीजों की उत्पत्ति होती है और बीजों से उनका वंश चलता है।

यदि बिल्लियों की संख्या अधिक हो तो तिपतिया घास भी अधिक परिमाण में उत्पन्न होगी, यह कथन बड़ा विचित्र सा प्रतीत होता है किन्तु विज्ञान का विद्यार्थी यह जानता है कि इस तिपतिया के लाल और तिरंगे फूलों पर केवल गुंजमक्खी (हम्बल बी) आती है क्योंकि उनके अतिरिक्त अन्य कोई मधुमक्खी इन फूलों के मधु तक नहीं पहुँच सकती। इसलिए गुंजमक्खी तिपतिया की उत्पत्ति के लिए अनिवार्य है। ये मक्खियां अपना छत्ता पृथ्वी के भीतर बनाती हैं। किन्तु जंगली चूहे इन छत्तों को नष्ट कर डालते हैं। चूहे जितने अधिक होंगे उतनी ही अधिक गुंजमक्खी नष्ट होंगी। चूहों को नष्ट करने के लिए बिल्लियां आवश्यक हैं इस प्रकार जितनी ही अधिक बिल्लियां होंगी उतने ही अधिक चूहे नष्ट होंगे। जितने चूहे कम होंगे उतनी ही गुंजमक्खियां बढ़ेंगी और जितनी ही अधिक ये मक्खियां अधिक होंगी उतनी ही तिपतिया की उत्पत्ति अधिक होगी। कीट-कीविद् (एनोटोमोलॉजस्ट) न्यूमन इन मधुमक्खियों का अध्ययन करने के पश्चात् उक्त परिणाम पर पहुँचा था।

इस उदाहरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्राणियों का पारस्परिक सम्बन्ध कितनी दूर तक पहुँचता है और मनुष्य के लिए इसका ज्ञान कितना आवश्यक है।

विभिन्न जीव-जन्तुओं का परस्पर क्या सम्बन्ध है, वे एक दूसरे के किस उपयोग में आते हैं और

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

उनके आस-पास की परिस्थितियों का उन पर क्या प्रभाव पड़ता है इत्यादि बातों का अन्वेषण और अध्ययन विज्ञान का विषय है और इस विज्ञान को पारिस्थिकी (एकोलॉजी) कहते हैं।

जीवधारियों के सम्बन्ध में कई शतियों से अन्वेषण का कार्य हो रहा है और वैज्ञानिकों ने अनेक प्रकार के अपने अनुभव और निष्कर्ष लिखे हैं। इस प्रकार इस सम्बन्ध में बहुत सी सामग्री अब तक एकत्र हो चुकी है। किन्तु पारिस्थिकी के सम्बन्ध में जितना कार्य १६वीं शती के उत्तरार्ध में हुआ है उतना पहले कभी नहीं हुआ था।

मनुष्य जीव-जन्तुओं के सम्पर्क में प्रतिदिन आता है और उनके सम्बन्ध में अनेक समस्याएं भी उसके सामने आए दिन आती रहती हैं। वैज्ञानिक अपने अन्वेषणों के द्वारा उन समस्याओं को सुलझाने का प्रयत्न करता है। सामाजिक जीव-जन्तुओं के सम्बन्ध में भी अनेक नई-नई समस्याएं वैज्ञानिकों के सम्मुख आती है। उनको सुलझाने के लिए उन्हें इन प्राणियों के स्वभाव, दिनचर्या, रहन-सहन, खान-पान और अन्य प्राणियों से उनके सम्बन्ध के विषय में खोज करनी पड़ती है। कई बार किसी एक निष्कर्ष तक पहुँचने में उन्हें वर्षों लग जाते हैं।

श्री जे० डी० ब्राउन एक चिक्कणवल्क (बीच ट्री) की खोखल में रहने वाले प्राणियों का अध्ययन कई वर्षों तक करते रहे। पहले वहां एक उल्लू रहता था किन्तु कुछ दिनों के पश्चात् उस कोटर का प्रवेश मार्ग चारों ओर की ऊतियों (टिशूज़) के प्रवर्धन से उल्लू के लिए छोटा हो गया। कुछ दिनों के बाद ब्राउन ने देखा कि उस खोखल में एक सारिका रहने लगी है। ऊतियों के निरन्तर बढ़ते रहने से वह प्रवेश मार्ग और भी छोटा हो गया यहां तक कि कोई भी पक्षी उसमें प्रवेश नहीं कर सकता था। तब उसको भिरड़ों ने अपना निवास स्थान बना लिया। किन्तु कुछ दिनों के पश्चात् वह छिद्र सर्वथा ही बन्द हो गया और फिर वहां कोई भी अपना घोंसला न बना सका।

एक दूसरा वैज्ञानिक १० वर्ष तक एक खोखले भूर्ज (बर्च) वृक्ष का अवलोकन करता रहा। उसने वहां देखा कि किस प्रकार कुछ चींटों ने उस वृक्ष को अपना निवास स्थान बनाया और कुछ दिन के पश्चात् किस प्रकार एक दूसरी जाति के काले चींटों ने उन पर आक्रमण किया। दोनों में कई दिन तक घमासान युद्ध चलता रहा और एक दिन उस वैज्ञानिक ने देखा कि सैंकड़ों पीले चींटे उस वृक्ष के चारों ओर मरे पड़े थे, काले चींटों की टांगों में कई उस समय भी लिपटे हुए थे और बचे हुए कुछ चींटे अब भी आक्रमणकारियों से लड़ रहे थे। किन्तु अन्त में काले चींटों ने पीले चींटों की सारी बस्ती उजाड़ डाली, एक भी जीता न छोड़ा और उस स्थान पर अपना अधिकार जमा लिया। इस प्रकार दस वर्षों में उस वैज्ञानिक ने चींटों की अड़तीस विभिन्न जातियों को उस स्थान पर पहले निवासियों को मार भगाते और अपना निवास स्थान बनाते देखा।

इन वैज्ञानिकों के सम्मुख कैसी-कैसी समस्याएं आतीं हैं इसके अनेक उदाहरण है। चीन में क्लोमपाक (निमोनिया) महामारी के रूप में फैलता है और सहस्रों मनुष्यों को मार डालता है। यह रोग घनी बस्तियों में रहने वाली एक प्रकार की गिलहरियों पर पहले आक्रमण करता है और उन, गिलहरियों से मनुष्यों में फैल जाता है। गरम देशों में इससे भी भयंकर एक महामारी फैलती है जिससे प्रायः सभी परिचित हैं। यह भी पहले चूहों पर आक्रमण करती है और चूहे के शरीर पर रहने वाले लाल पिस्सुओं के द्वारा मनुष्यों में फैल जाती है। इसे ग्रन्थिमारी (प्लेग) कहते हैं।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

एक बार आस्ट्रेलिया से गन्ने की पत्तियों पर रहने वाला एक पर्णवल्गी (लीफहॉपर) किसी प्रकार हवाई द्वीप में पहुँच गया जिसका परिणाम कुछ दिनों में यह हुआ कि वहां की गन्ने की उपज को भयंकर हानि पहुँची। बड़ी कठिनाई से यह विपत्ति दूर की जा सकी। क्वीन्स लैण्ड और फीजी से भुजतन्तु वरट (चालसिड वास्प) और एक प्रकार के खटमल लाए गए। पर्णवल्गी इस वरट (भिरड़) का भोजन थे और खटमल इनके अन्डों को चूसकर नष्ट कर देते थे।

विन्डसर फॉरेस्ट में एक वैज्ञानिक ने एक क्रकच-मक्षी (सॉफ्लाई) देखी। इंगलैण्ड में इसकी चार जातियां इससे पहले पाई जा चुकी थीं। पंख निकलने से पूर्व इस मक्खी का पदाति-जातक (कैटर-पिलर) प्रसरल (स्प्रूस) खाकर रहता है। किसी प्रकार यह कीड़ा कनेडा में पहुँच गया और कुछ ही दिनों में वहां के प्रसरल के जंगलों को बड़ी भारी हानि पहुँचाई। वहां की सरकार ने कुछ ऐसे परजीवी (पैरासाइट) कीड़ों को खोज निकालने के लिए एक कैटिकीविद् को नियुक्त किया जो इस मक्खी का नाश कर सकें। उस वैज्ञानिक ने शीघ्र ही ऐसे कीड़े खोज निकाले। ये कीड़े अण्डे देने और परीक्षा के लिए पहले फार्नहम रायल भेजे गये क्योंकि यह आशंका थी कि उनके साथ कोई ऐसा कीड़ा न चला जाय जो आगे चलकर लाभकारी होने की अपेक्षा स्वयं ही विनाशी कीट (पेस्ट) सिद्ध हो। इन कीड़ों के द्वारा कनैडा वासियों ने क्रकच-मक्षी का नाश करके प्रसरल के जंगलों की रक्षा की।

एक विनाश-कीट को नष्ट करने के लिए दूसरे नाशक का उपयोग बड़ी सावधानी से करना पड़ता है। थोड़ी सी भूल से दूसरा नाशक भी आगे चलकर कष्टदायक सिद्ध हो सकता है। एक बार सांपों को नष्ट करने के लिय जमैका में कुछ न्यौले पहले-पहल लाये गये थे। वहां इनके परिवार की बहुत शीघ्र वृद्धि हुई और इन्होंने वहां के सभी सांपों को खा डाला किन्तु जब वहां एक भी सांप न बचा तब उन्होंने गृहयान्न पक्षियों और उनके अंडे बच्चों को नष्ट करना आरम्भ कर दिया और अन्त में जमैका वासियों के लिए न्यौला भी सांप के समान ही विनाशकारी सिद्ध हुआ।

इन उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि वैज्ञानिकों के सम्मुख सामाजिक प्राणियों के सम्बन्ध में कैसी-कैसी समस्याएं आती हैं। हिमज्वर के मच्छर, निद्रा का रोग फैलाने वाली कालमक्षी, उन्मृदा (सॉयल) में होने वाले गण्डूपद (गेण्डुए, अर्थ-वर्म), कृषि को हानि पहुँचाने वाले अनेक प्रकार के कीट-पतंग, लकड़ी और अन्य वस्तुओं को नष्ट करने वाले कीड़े, जंगलों में आखेटों की सुरक्षा, समुद्रों में मछलियों की खेती, अनेक प्रकार के विनाश कीट ये सब इन वैज्ञानिकों की ही समस्याएं तो हैं।

अब हमें यह देखना है कि विकास के सिद्धान्त के अनुसार जीव-जन्तु और कीट-पतङ्ग किस प्रकार अपनी एकल (सॉलिटरी) अवस्था से सामाजिक अवस्था तक पहुँचे। व्हीलर ने इस प्रजाति की सात अवस्थाएं बताई है।

पहली अवस्था में माँ अपने अण्डे अपने रहने के स्थान के इधर-उधर बिखेर देती थी। कभी-कभी वह अण्डे ऐसे स्थान में भी रख देती थी जहाँ उन में से निकलने वाले डिम्भ (लार्वा) के लिए भोजन सामग्री सुलभ हो।

दूसरी अवस्था में माँ किसी ऐसे पत्ते या किसी ऐसी वस्तु पर अपने अण्डे रखती थी जो डिम्भान्न (लार्वल फूड) का काम दे सके।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

तीसरी अवस्था में वह उनको ऐसा आवरण भी देने लगी जिससे उनकी रक्षा हो सके।

चौथी अवस्था में वह अपने अण्डे बच्चों के साथ रहने लगी और उनकी रक्षा स्वयं करने लगी।

पाँचवीं अवस्था में वह उनके लिए निवास स्थान बनाने लगी और उसमें उनका भोजन पहले से ही एकत्र रखने लगी।

छठी अवस्था में वह उनके पास ही रहने लगी और उनके योग्य भोजन बनाकर उन्हें खिलाने लगी।

इसके पश्चात् सातवीं अवस्था आती है जिसमें अकेली माँ ही अपनी सन्तति की रक्षा और पालन-पोषण नहीं करती अपितु सन्तति भी अपने से छोटे बच्चों की रक्षा और पालन-पोषण में अपनी माँ की सहायता करती है।

इस प्रकार माता-पिता और सन्तान साथ-साथ रहने लगे और उनका एक अपना परिवार या समाज बन गया। स्थूल रूप से सामाजिक जीवों का यही इतिहास है।

अब हमें सामाजिक जीव-जन्तुओं की अनेक मनोरञ्जक समस्याओं और रहस्यों पर विचार करना है। जिनमें सबसे पहले हम भिरड को लेंगे उसके पश्चात् चींटे जिनके विषय में सम्भवतः अब तक सब से अधिक जानकारी प्राप्त हो चुकी है। उसके पश्चात् दीमक पर विचार करेंगे।

शिक्षा-सुधा

(तरुणोपयोगी सुन्दर सचित्र मासिक पत्रिका)

सम्पादक—सुभाषचन्द्र विद्यालङ्कार, वीरेन्द्र कुमार बी. ए.

१. देश के भावी नागरिकों के प्राण, प्रेरणा और पुरुषार्थ का पाठ पढ़ाने वाली बारह वर्ष पुरानी पत्रिका।
२. जिसमें प्रतिमास सुविदित लेखों के लिखे हुए सुरुचिपूर्ण साहित्यिक लेख, सुन्दर कविताएँ, दिलचस्प कहानियाँ, मनोहर यात्रा-वर्णन, प्रेरणाप्रद जीवन-चरित्र एवं स्वास्थ्य व आरोग्य विषयक पठनीय लेख प्रकाशित होते रहते हैं।
३. जिसमें देश विदेश के भूगोल, लोक-जीवन, इतिहास, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र और राजनीति आदि के विषय में जानकारीपूर्ण सचित्र लेख छपते हैं।
४. "बालबन्धु" परिशिष्ट में छोटे बच्चों के लिए कथा-कहानी, कविता, पहेली, गणित-बुझौअल आदि की मनोरञ्जन सामग्री रहती है।
५. विज्ञापन के लिए लिखिए। वार्षिक मूल्य ३)। एक प्रति पांच आने।

व्यवस्थापक-शिक्षासुधा, पो० धनौरा मंडी, जि० मुरादाबाद।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

सोम

श्री भगवद्दत्त वेदालंकार

सोम रस चन्द्रमा से इस पृथिवी पर आता है और सब प्राणियों पर इसकी वर्षा होती है। यह सोम जल का आश्रय लेता है इस लिये जल वा रस रूप में इसको माना गया है। ओषधियां व वनस्पतियां आदि इस सोम को प्रायः कर जल द्वारा ग्रहण करती हैं, और इस से अनुप्राणित होती हैं, इस लिये सोम को इनका अधिपति माना गया है। वृक्षों व वनस्पतियों आदि पर जितने फूल हैं ये सब सोम के भरे कलश हैं (सोमः पुनातः कलशेषु सीदति)। ये ओषधियां आदि एक समान रूप से इस सोम को नहीं ले पातीं। कोई सोमरस अधिक लेती है तो कोई कम। अधिक से अधिक सोम रस हिमालय पर होने वाली सोमलता में होता है। जिसको प्राचीन समय में ब्राह्मण व ऋषि-महर्षि लोग जानते थे। उस सोम-लता में सोमरस ही भरा होता था। इस लिये कालान्तर से सोम का एक मात्र निवासस्थान उस हिमालय पर होने वाली लता में ही मान लिया गया। परन्तु सोमरस सभी ओषधियों व वनस्पतियों में कम अधिक मात्रा में होता ही है (पुष्णामि चौषधिः सर्वाः सोमो भूत्वा रसात्मकः)। जिस प्रकार चन्द्रमा से आते हुए सोम रस को ये ओषधियां व वनस्पतियां आदि सीधा ग्रहण करती हैं उसी प्रकार मनुष्य भी सीधा ग्रहण कर सकता है। मन्त्रों में भी इस बात का अनेकों स्थलों पर संकेत मिलता है। उदाहरणार्थ निम्न मन्त्र देखा जा सकता है। 'सोमं यं ब्रह्माणो विदुर्न तस्याश्नाति पार्थिवः' अर्थात् ब्रह्मवेत्ता लोग जिस सोम को जानते व प्राप्त करते हैं, उसको पार्थिव पदार्थों में रमने वाला व्यक्ति नहीं भस्म कर सकता।

इस से यह पता चलता कि इस सारे मण्डल में सर्वत्र फैले हुए सोमरस को मनुष्य सीधा भी ग्रहण कर सकता है। सोमरस को सीधा ग्रहण करने के लिये आध्यात्मिक तरीका है, जिसकी हम सब को अन्वेषणा करनी चाहिये। परन्तु पार्थिव सोम को प्रत्येक मनुष्य इन ओषधियों व वनस्पतियों द्वारा ग्रहण करता ही है। अन्न व फलादि भक्षण द्वारा वह सोम हमारे अन्दर जाकर हमारी नस-नाड़ियों को जिनको वैदिक भाषा में ओषधी व वनस्पति कहा गया है—हरा भरा रखता है। यह सोमरस जो हम भोजन द्वारा अपने अन्दर लेते हैं, आवश्यक नहीं कि पवित्र हो। अन्न का रस बनता है तब वह पवित्र होने के लिये हृदय में जाता है। हृदय भी इन्द्र का निवासस्थान है। यहां रहता हुआ वह सोम का दान करता है। परन्तु यह ध्यान रखने की आवश्यकता है कि अधिक से अधिक सोमरस परिपूर्ण पदार्थों को हम अपने भोजन का अङ्ग बनावें। मस्तिष्क में विद्य-मान सोमरस को इन्द्र पीता है। मानव शरीर में असली सोम का स्थान यह मस्तिष्क ही है। अन्न द्वारा भी सोमरस मस्तिष्क में पहुँचता है। परन्तु यह द्युलोक से आते हुए सोमरस को सीधा भी ग्रहण कर सकता है। यदि अन्न श्रेष्ठ हो तो मनुष्य की शक्तियां भी श्रेष्ठ हो सकती हैं। दिव्य वनस्पति है। इस सोम को पवित्र करने के लिये कई साधन हैं। एक साधन प्राणायाम भी है। क्योंकि प्राणायाम से शरीर व इन्द्रियों के मल भस्म हो जाते हैं। प्रकाश पर पड़ा आवरण क्षीण हो जाता है। इस से वह सोमरस निर्मल पवित्र व दिव्य बनता है। इसी प्रकार इस सोम को पवित्र करने व छानने के लिये कई छलनियां हैं। हमारे शरीर की नस-नाड़ियां, ओषधी, वनस्पतियां हैं। और जितने भी हमारे शरीर में धातु हैं वे सब लता-द्रव्य कहे गये हैं। इन सब में सोमरस भरा हुआ है।

शेष पृष्ठ १५ पर

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

वह विष जिसे लोग प्रतिदिन पीते हैं

राजर विलियम्स रीस

मनुष्य की आदत के इतिहास में जितने भी परिवर्तन हुए हैं उनमें से शायद ही कोई इतना विशाल हो जितना सिगरेट पीने का अभ्यास। एक ही पीढ़ी के अन्दर सिगरेट पीने की आदत ने सारी मानवता को ग्रसित कर लिया है। यह आदत कितनी शीघ्रता से बढ़ी है, हम इसका अनुमान नहीं कर सकते और इसका असर मनुष्य के स्वास्थ्य और उसकी आयु पर किस भयंकरता से पड़ रहा है, इसे कोई समझ ही नहीं सकता। पिछले वर्ष ६ करोड़ अमेरिकनों ने ४० अरब सिगरेट पिये। गणना से यह भी पता चलता है कि अमेरिका में हर साल सिगरेट पीने वालों के दल में कोई आठ लाख नये लोग शामिल होते जा रहे हैं।

हर तीन मर्दों में से दो सिगरेट के गुलाम हैं, हर पांच औरतों में से तीन सिगरेट पीती हैं और १४ वर्ष के हर सात लड़कों में से एक सिगरेट का प्रेमी है। हर पीने वाले के पीछे रोज औसतन १६ सिगरेट का खर्च है। अमरीकी जनता तम्बाकू पर हर साल ४० अरब डालर खर्च करती है, जिसके मानी हुए कि अमेरिका में स्कूलों पर जितना खर्च होता है उससे दूना खर्च तम्बाकू पर है। सिगरेट पीने की आदत का पारा ऊंचा जा रहा है और उसमें किसी भी साल समता नहीं रहती। हम अमरीकी लोग सिगरेट के धुए के बादलों के नीचे चल रहे हैं।

सिगरेट में कौन सा तत्व है जिसे हम खींच खींच कर अपने भीतर ले जाते हैं? डाक्टरी बतलाती है कि सिगरेट के भीतर किस्म-किस्म के ज़हर हैं, यद्यपि उनमें से सब के सब सिद्ध नहीं किये जा सके हैं। मगर, दो ज़हर तो स्पष्ट हो चुके हैं। वह हैं बेंजोपायरीन जो श्वासयंत्र को दूषित करता है और दूसरा है निकोटिन जो हमारी आयु को क्षीण करता है।

निकोटिन तम्बाकू का सत है और वही उसे दूसरी घासों से अलग करती है। जब हम सिगरेट पीते हैं, तब बहुत सी निकोटिन तो हवा में उड़ जाती है। उसकी एक तिहाई ही मुंह में जाती और उसमें से भी पांचवां हिस्सा फेफड़े में पहुँचता है। पांच सिगरेटों से जो नुकसान होता है उतना एक सिगार से होता है। और पाइप के जरिये सिगार से भी कुछ ज्यादा ही निकोटिन भीतर जाता है।

सिगरेट का जलने वाला छोर जितना ही महकता रहता है, उतना ही अधिक निकोटिन आदमी के फेफड़े में जाता है। इसी प्रकार, जो जितनी ही तेज़ी से सिगरेट पीता है वह उतनी ही तेजी से निकोटिन को भी जज्ब करता है। और जो सिगरेट को अधिक से अधिक छोटा करके फेंकता है वह भी अधिक से अधिक निकोटिन को जज्ब करता है।

पृष्ठ १४ का शेष—

परन्तु हमारे सिर रूपी हिमालय में तो सोम ही सोम है। इस सोम को आधुनिक वैज्ञानिक भाषा में मस्तिष्क द्रव (Cerebro-spinal fluid) कहा जाता है। परन्तु हमें यह कहना चाहिये कि मस्तिष्क द्रव सोम नहीं है अपितु मस्तिष्क द्रव में वह सोम रहता है। क्योंकि सोम द्रव का आश्रय करके रहता है। इस लिये यही व्यवहार में आता है कि सोमरस द्रव है। आवश्यकता इस बात की है कि हमारी नस-नाड़ियों तथा रीढ़ व मस्तिष्क में होने वाले सोम को निचोड़ा कैसे जाये?

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

अपने शुद्ध रूप में निकोटिन भयंकर विष है। किसी खरगोश के बदन पर अगर एक बूंद निकोटिन गिरा दिया जाय तो वह फौरन बेहोश हो जाता है। दो सिगरेटों में जितना निकोटिन होता है वह अगर सूई के ज़रिये पीने वाले के लहू में पहुँचा दिया जाय तो उसकी तत्क्षण मृत्यु हो जा सकती है। आप एक दिन में जितने सिगरेट पी जाते हैं, उन सब का ज़हर अगर आपके बदन में सूई के ज़रिये डाल दिया जाय तो आप उसी तरह उलट जायंगे जसे गोली लगने पर।

सिगरेटों की क़िस्मों में अब परिवर्तन होने लगे हैं। अधिक कारखानों में सिगरेट में फिल्टर लगाये जाते हैं, जिससे निकोटिन छन कर निकले और उसका कुछ अंश मुंह में न पहुँच सके। मगर, फिर भी अधिक से अधिक सफल फिल्टरों से भी सिर्फ ७० प्रतिशत निकोटिन बचाया जा सकता है। ३० प्रतिशत को तो आपको श्वास से खींचना ही पड़ता है।

प्रश्न होता है कि जब निकोटिन इतना भयकर विष है तब फिर हम मर क्यों नहीं जाते? इसका एक ही जवाब है कि आदमी का शरीर धीरे-धीरे ज़हर पचाने का भी अभ्यासी हो जाता है और धूएं के ज़रिये हम काफी ज़हर अपने भीतर जमा नहीं कर पाते हैं।

सिगरेट पीने से कंठ में दाह या खसखसाहट होती है और श्वास-प्रक्रिया में गड़बड़ी पैदा हो जाती है। अगर आप एक पैकेट सिगरेट रोज पीते हैं तो यह समझिये कि एक साल में आप २७ औंस ज़हर अपने भीतर ले जाते हैं। जहां तक पीले धब्बे का सवाल है, वे निकोटिन के धब्बे नहीं होते। निकोटिन में कोई रंग नहीं होता। धब्बे तो बेंजोपेरीन के ही होते हैं जो श्वास यन्त्रों के लिए बहुत ही घातक है।

एक डाक्टर ने १०० ऐसे धूम्रपायियों की जांच की जो २८ सिगरेट रोज पीते थे। उन में से ७३ के कंठ सूजे हुए थे, ६६ को खांसी थी और सात की जीभ खराब थी। एक दूसरे डाक्टर के अध्ययन का यह परिणाम हुआ कि सौ में से तीस आदमी मुंह की बीमारी से परेशान थे और तीस को कफ की बीमारी थी। निकोटिन से श्लेष्मा की झिल्ली में प्रदाह उत्पन्न होता है और तम्बाकू के दाह से वह झिल्ली एकदम बर्बाद हो हो जाती है।

सिगरेट आप कैसे पीते हैं, यह भी ध्यान देने की बात है। यानी आप पूरा सिगरेट पी जाते हैं या नहीं, जोर से पीते हैं या धीरे-धीरे। सिगरेट को अधिक देर तक दबाये रखते हैं या नहीं तथा कितने धुएं को आप घोंट जाते हैं, ये बातें ऐसी हैं जिन पर सिगरेट से होने वाली हानि की मात्रा निर्भर करती है। कहने को तो बहुत से लोगों का यह भी कहना है कि सिगरेट से श्वास क्रिया पर जोर नहीं पड़ता और न खांसी ही उत्पन्न होती है। किन्तु, हर पुराना धूम्रपायी इस बात को जानता है कि सिगरेट पीने से फेफड़े पर बुरा असर पड़ता है और उस से खांसी भी पैदा होती है।

एक प्रश्न यह भी है कि सिगरेट पीने से भूख मरती है या नहीं। हर सिगरेट पीने वाला जानता है कि अधिक भूख लग जाने पर सिगरेट पीने से भूख की बेचैनी मन्द हो जाती है क्योंकि भूख लगने का कारण पेट की दीवारों का सिकुड़ना है और सिगरेट के धूएं से यह सिकुड़न कम हो जाती है।

इसी प्रक्रिया के कारण सिगरेट पाचन, शक्ति को भी हानि पहुँचाता है। हमारे बहुत से मित्र ऐसे हैं जिन्होंने सिगरेट पीना छोड़ कर अपना वजन बढ़ा लिया है और पहले की अपेक्षा ताजे दीखने

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

लगे हैं। जो आदमी अधिक सिगरेट पीता है, वह खाना कम खायेगा, इसे नियम समझना चाहिये।

ज्यादा धूमपान करने से गेस्ट्राइटिस भी पैदा होती है और व्रण के जमा होने से कलेजों में दाह भी मालूम होने लगती है। ऐसी बीमारियां होने पर सिगरेट अवश्य छोड़ देना चाहिये। अंतड़ी में होने वाले घाव का भी धूमपान से सीधा सम्बन्ध है। देखा गया है कि इलाज के समय उन्हें तो बीमारी का दौरा नहीं हुआ जो सिगरेट नहीं पीते थे, मगर पीने वालों का इलाज कठिनाई से किया जा सका। न्यू ओर्लियेंस में जो अचसर क्लीनिक है उस में इलाज के लिये ऐसे रोगी लिये ही नहीं जाते जो सिगरेट पीते हैं अथवा जो सिगरेट छोड़ने को तैयार नहीं हैं।

तम्बाकू के विरोधी डाक्टरों का कहना है कि गर्भिणी स्त्रियों को तो तम्बाकू पीना ही नहीं चाहिए। तम्बाकू से गर्भिणी स्त्रियों को उतनी ही हानि होती है जितनी और लोगों को।

जो लोग व्यायाम करते हैं या खेलकूद की प्रतियोगिता में भाग लेते हैं उन्हें सिगरेट कदापि नहीं पीना चाहिये। सिगरेट पीने से पुंसत्व और स्तंभन में भी कमी आती है, ऐसा डाक्टरों का विचार है।

सिगरेट पीने से रक्त की शिराएं भी दूषित होती हैं और हमारी धमनियों में एक प्रकार का प्रदाह उपत्न हो जाता है। अधिक सिगरेट पीने से नाड़ी की गति में २८ धड़कनों की वृद्धि होते देखी गयी है। सिगरेट पीने से हृदय की धड़कन अनियमित हो जाती है और वह कभी-कभी कूदने भी लगता है। जिन्हें सिगरेट पीने की आदत है उन्हें छाती धड़कने की बीमारी भी हो सकती है। इसके सिवाय पीने वालों का रक्तचाप भी बढ़ सकता है। ऐसा भी देखा गया है कि सिगरेट पीना छोड़ देने पर रक्त का दबाव आप से आप घट जाता है।

डाक्टर मेनार्ड का कहना है कि सिगरेट पीने से किसी-किसी को हृदय धड़कने की बीमारी हो जाती है। किन्तु यह बताना कठिन है कि यह बीमारी किसको और कब पकड़ेगी। जब स्थिति ऐसी सन्देहजनक है तब हम सिगरेट को विदाई ही क्यों नहीं दे देते।

गुरुकुल कांगड़ी में बनी

फ़िनाइल-स्याही-वार्निश

तथा अन्य उपयोगी वस्तुएँ काम में लावें

स्कूलों, कालेजों, हस्पतालों व स्वास्थ्य विभागों में वर्षों से प्रयुक्त हो रही हैं।

अपने नगर की एजेन्सी के लिए लिखें—

गुरुकुल कैमिकल इण्डस्ट्रीज़

गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

शिक्षा का मुख्य अङ्ग-चरित्र निर्माण

श्री स्वामी शिवानन्द

शिक्षा का उद्देश्य आन्तरिक ज्ञान, जो सब के अन्दर विद्यमान है उसे प्राप्त और प्रकट करने का ध्येय होना चाहिए। इसको नियन्त्रण की आग में शुद्ध करना चाहिए। शिक्षा की प्राप्ति द्वारा हमारी वे न्यूनतायें दूर होती हैं जो कि हमारी आत्म उन्नति में बाधक हैं। इस लिए शिक्षा हमें उन नियन्त्रणों का अनुकरण करवाती है जिस से कि हम विनम्र बनते हैं बाहरी चीज़ें तो केवल एक बेलचे का काम करती है जिस के द्वारा हम सद्गुणों को प्रकट कर सकते हैं। ये चीज़ें विद्वान् गुरु द्वारा ही हमें उपलब्ध हो सकती हैं। गुरुकुलीय शिक्षा का मुख्य अंग चरित्र निर्माण और नियन्त्रण है, यह आज कल की तरह जीवन रहित शिक्षा नहीं बल्कि गुरुकुल की सच्ची शिक्षा है। यह बड़ी भारी भूल है कि आज कल के लड़के और लड़कियाँ शिक्षा को नौकरी, रोटी तथा आराम के लिए ग्रहण करते हैं और सच्ची शिक्षा की परवाह नहीं करते। आज कल सब स्कूल और कालिजों को चाहिए कि वे यदि मनुष्य मात्र का भला चाहते हैं तो धार्मिक शिक्षा और उस का महत्व विद्यार्थी को अवश्य बतलावें जिस से सत्य, प्रेम, शुद्धता, विश्वबन्धुता तथा न्याय आदि वस्तुएं, जो कि धर्म के अंग माने गए हैं, उस में व्याप्त हो जांय। आजकल शिक्षा में चरित्र निर्माण पर ध्यान नहीं दिया जाता। यदि हम धर्म की अवहेलना करते रहें तो सिवाय मांस और हड्डियों के ढेर के अतिरिक्त हमारे अन्दर कुछ नहीं रह जाता। आज कल के विद्यार्थियों में विलास प्रियता, घमण्ड, आज्ञा-भङ्ग करने के साथ बहुत से अवगुण उत्पन्न हो जाते हैं। वे नास्तिक बन जाते हैं और उन्हें ब्रह्मचर्य और नियन्त्रण का ज्ञान भी नहीं रहता। अपवित्र खाना, भांति २ के वस्त्र पहनना, बुरी संगत तथा सिनेमा आदि में जाने के कारण विलास-प्रिय हो जाते हैं, शिक्षा का अर्थ पुस्तकों को घोटना नहीं है बल्कि हमें अपने आप को ज्ञानवान् बनाना है।

मैं यह जान कर बड़ा प्रसन्न हूँ कि गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, अपने विद्यार्थियों में चरित्र निर्माण, सद्व्यवहार, सद्विचारों को भरता है और उन्हें भीतरी और बाह्य जानकारी से परिचित कराता है। भगवान् करे कि गुरुकुल उन्नति के शिखर पर आरूढ़ हो और गुरुकुल जैसी संस्थाएं भारत में अनेक आरम्भ की जाँय।

प्रार्थनावली—प्रवासी (अजमेर, फरवरी १९५०) की समालोचना

पुस्तक के आरम्भ में कुछ वेद मन्त्र और उन के सरल अर्थ दिए गए हैं और प्रार्थना सम्बन्धी कुछ गीतों का संग्रह है। महाकवि मैथिली शरण गुप्त, प्रोफेसर इन्द्र विद्यावाचस्पति, पं० रामनरेश त्रिपाठी, पं० चमूपति, पं० वागिश्वर विद्यालङ्कार आदि काव्य कलाकारों की कृतियों से इस प्रार्थनावली की महत्ता बहुत बढ़ गई है। इसके पाठ से मानवी हृदय प्रभु भक्ति में ओतप्रोत हुए बिना नहीं रह सकता। प्रार्थना प्रेमियों के लिए यह छोटी सी पुस्तक बड़े काम की वस्तु है। मूल्य ।) प्राप्तिस्थान—प्रकाशन मन्दिर, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

दाँतों की सुध

वैद्य ठाकुरदत्त शर्मा

बालकों को दातुन करने की शिक्षा देने के साथ ही इनको यह भी सिखलाना चाहिये कि जब कोई वस्तु खावें तो उसके पश्चात् कुरला कर लिया करें। प्रातःकाल और रात्रि को सोते समय तो विशेष ध्यान रखना चाहिये। जब हम कोई भी वस्तु सेवन करें तो उसके कुछ अंश दांतों में अवश्य लगे रहेंगे। वे गलते हैं। उन में दुर्गन्ध उत्पन्न होती है दुर्गन्ध के साथ कीटाणु उत्पन्न हो जाते हैं जो आंत अथवा मसूढ़ों को भी खाने लग जाते हैं। जो लोग मीठा बहुत खाते हैं उनके दांतों में मिष्टान्न लगे रहने से मीठे में से सढ़ान्ध उत्पन्न होकर अम्लत्व अर्थात् तेज़ाब बन कर भी मसूढ़ों को खाता है। मसूढ़े दांतों से पृथक् हो जाते हैं तब दांतों और मसूढ़ों में भी अधिक खाद्य पदार्थ एकत्र होने आरम्भ हो जाते हैं जिन से दांतों की जड़ें हिल जाती हैं अथवा इन में शोथ हो जाता है, पीप पड़ जाती है। दांतों में कृमि दन्तक हो जाता है दांत के अन्दर के ज्ञान-तन्तू नग्न हो जावें तो पीड़ा सताती है। ठंडे अथवा गर्म खान-पान से भी कष्ट होता है। दांत हिलने लगते हैं।

दांतों में ऐसे कष्ट होने से भोजन भली प्रकार चबा कर नहीं खाया जाता है। इस से अपचन होता है, अपचन के कारण विकृत वायु तथा डकार आते हैं जो दांतों को और भी हानि पहुँचाते हैं इस प्रकार दांतों की खराबी उदर में और उदर की दांतों में पहुँच कर दोनों विकारी होते जाते हैं। पाचन क्रिया ठीक न होने से आम उत्पन्न होता है जो आम वात (गठियां) आदि रोगों का कारण होता है और सारा शरीर ही अस्वस्थ हो जाता है। इतने से आप समझ सकते हैं कि यदि आरम्भ से ही दांतों को स्वच्छ रखने का अभ्यास बालकों को करा दिया जावे तो उनकी आयु कितनी सुख से व्यतीत हो सकती है। जीवन में छोटी २ बातों का ध्यान रखने से बड़े २ परिणाम निकलते हैं, अच्छी बात के अच्छे परिणाम और बुरी बात के बुरे परिणाम।

आयुर्वेद शास्त्र में दांतों को चार बार दातुन, मंजन आदि से शुद्ध करने का आदेश है। प्रातः-सायं और दोनों समय भोजन के पश्चात्। परन्तु नवीन सभ्यता ने हम को बुरी तरह ग्रसा हुआ है, किसी के सामने कुरला करना भी फैशन के विरुद्ध है। नवीन सभ्यता के अनुसार जो भोजन अथवा टी पार्टियां होती हैं इन में न तो हाथ धोकर कुरला करके बैठते हैं न समाप्त करने के पश्चात् उठ कर दांत या हाथ साफ करते हैं। भोजन के पश्चात् प्लेटों में पानी डालकर सामने रख देते हैं जिस से हाथों के अग्र भाग को गीला कर लिया जाता है। इन सभ्य कहे जाने वालों में भोजन अथवा टी पार्टियों में मांस अधिक सेवन किया जाता है और मांस के अंश दांतों के मध्य भाग में लगे रह जाते हैं वह और भी अधिक दांतों का सत्यानाश करने वाले होते हैं।

सभ्यता के इस नियम को बुद्धिमानों को ढीला कर देना चाहिये। एक ओर पानी का प्रबन्ध रखना चाहिये और सब को हाथ, दांत साफ करने चाहियें। जो बहुत फैशनेबल हैं वे न भी ऐसा करें तो हमारे लेख के पढ़ने वाले तो अपनी स्वास्थ्य रक्षा के लाभार्थ ऐसा कर लिया करें।

हम पहले लिख चुके हैं कि दूध के दांत यदि स्वच्छ सुदृढ़ न रक्खे जावें तो इनके स्थान पर उगने वाले स्थिर दांत भी अच्छे नहीं होते अतः जब बालक बहुत छोटा हो तो माता-पिता का कर्तव्य

[शेष पृष्ठ २० पर]

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

अध्यात्मवाद के मधुर घूँट

श्री स्वामी सत्यदेव परिव्राजक

आधी रात का समय था। मैं अपने तख्त पर से प्यास लगने के कारण उठ कर बैठ गया। आजकल मई के महीने में मैं अपने सत्यज्ञान निकेतन ज्वालापुर की गुफा की नई छत पर सोता हूं। मच्छरों के कारण मसहरी लगा कर रक्खी है। मैंने अपने मन से कहा—'चल उठ तुझे पानी पिलाऊँ'। पानी पीकर मैं छत पर टहलने लगा और अपनी आदत के अनुसार लगा व्याख्यान देने। चारों ओर निस्तब्धता छाई हुई थी। आकाश में विचरने वाले रमतेराम मेरे प्रेमी श्रोता आकर जमा होने लगे। वे तो मानो इसी प्रतीक्षा में ही थे। जब सब संगत जम गई तो मैंने कहना प्रारम्भ किया—

साधो, आप लोगों ने पिछली बार यह प्रश्न किया था कि कामदेव का इतना प्रबल सर्व-व्यापक प्रभाव क्यों है, जो बड़े २ पण्डित और अभ्यासी इसकी चपेट में आ जाते हैं? आज इसी की मीमांसा करने का हमारा संकल्प है। सुनिये, लाखों योनियों में से गुजरते हुए मनुष्य ने सब से अधिक अभ्यास उसी इन्द्रिय का किया है, जो जीवन को आगे बढ़ाती है, कीट-पतङ्ग, पशु-पक्षी आदि सभी प्राणी अपना वंश चलाने के लिये विषय सुख लेते हैं और इस से उनकी सन्तान वृद्धि होती है, जिस से यह सृष्टि उत्तरोत्तर बढ़ती चली जाती है। लाखों वर्षों के इन्द्रिय सुख के अभ्यास ने प्राणी का सब से अधिक परिचय उपस्थेन्द्रिय से ही कराया है और वह उस के मजे को अमृत की तरह मानने लगा है। मनुष्य देह के अतिरिक्त अन्य योनियों में तो उपस्थेन्द्रिय की यह क्रिया वंश बढ़ाने तक ही सीमित रहती है, किन्तु जिस समय इस प्राणी को मानव शरीर मिलता है तो इस में बुद्धि-वैचित्र्य का उदय होता है। इस नई शक्ति के पा जाने से उपस्थेन्द्रिय का सुख कामदेव का रूप धारण कर महा शक्तिशाली हो हो जाता है। क्रोध, लोभ, मोह, और अहंकार ये चार अन्य मनोविकार हैं तो सही, किन्तु हैं इसी कामदेव के बच्चे-कच्चे और साथी-सङ्गी। अपने लाखों वर्षों के अनुभव के शास्त्रों को सम्भाल कर यह कामदेव मानव मस्तिष्क में

[१६ पृष्ठ का शेष]

होना चाहिये कि वे बालक के मुख तथा दांतों को अवश्य स्वच्छ रखा करें। बालकों को मुख में उंगली डालने की रुचि होती है। जब दांत निकलने आरंभ हों तो इस ऐब को हटा देना चाहिये। कई बालक बड़े ज़ोर से उंगली चूसते हैं और दांतों के साथ ठस कर उंगली बाहर खींचते हैं इसका परिणाम यह होता है कि दांत बाहर को निकल आते हैं और फिर उनके स्थान में जो नए दांत उत्पन्न होते हैं वे भी बाहर निकले होते है।

इसे रोग न भी कहें विकृति अवश्य है और सौंदर्य का भी नाश है, दैवयोग से ऐसा हो तो निकले दांतों को पीछे दबाते रहने से सीधे भी हो सकते हैं अथवा दन्त वैद्य से तार के द्वारा पीछे की ओर कस कर बंधवा देना चाहिये तब दस बारह वर्ष की आयु तक भी सीधे किए जा सकते हैं।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

निष्कंटक राज्य करना चाहता है और थोड़ा सा प्रलोभन पाकर ववण्डर खड़ा कर देता है। स्त्री-पुरुषों के कानों में जब यह मायावी अपनी दानवी लीला के तराने सुना कर उनके पिछले विषय सुख की अनुभूति को सजग कर देता है, तो वे अभागे सहज में ही इसके जाल में फँस जाते हैं। तो फिर इस दुष्ट के प्रपञ्चों से कैसे छूटा जाये ?

'सब ऋषि-मुनि, सन्त-महात्मा और विद्वान् काम के संयम का उपदेश देते हैं और यह समझाते हैं कि जो व्यक्ति इसका संयम कर लेता है, उसे सब प्रकार की ऋद्धि-सिद्धि, सब प्रकार के वरदान प्राप्त होते हैं और वह तपस्वी अपने सब पापों को जला देता है। ऐसा क्यों कहा गया ? वह इस लिये कि जो जीवन-धारा अनवरत रूप से बही चली आती है, उसका ये उपस्थेन्द्रिय मुख्य अंग है। लाखों योनियों में तो पशु और कीट-पतङ्ग प्रकृति के नियमानुसार उस धारा को मुख्य अङ्ग से बहाते चले आ रहे हैं, क्योंकि उन्होंने केवल शरीर को ही जीवन समझा है, परन्तु मानव देह पाकर मनुष्य के लिये दो रास्ते हो जाते हैं। यदि यह अपने आपको शरीर समझ कर इसका उपभोग करेगा तो अपने बुद्धि-वैचित्र्य के कारण जीवन धारा के किनारों को तोड़ कर विनाश के मार्ग में अग्रसर होगा और यदि उसे यह पता लग जायेगा कि वह आत्मा है और शरीर का स्वामी है तो वह अपने आपको जीवन-स्रोत का अङ्ग मान कर अध्यात्मवाद के पथ का अनुसरण करेगा। कामदेव का संयम करने से उसका सारा शरीर आलोकित हो उठेगा और उसके रोम-रोम से जीवन धाराएं प्रस्फुटित होकर स्वर्ग की रचना करेंगी। वीर्य ही शरीर का राजा है, जो मानव को सब प्रकार के अलौकिक गुण प्रदान करता है। सब तेज, ओज और प्रतिभा इसी के संग्रह से उत्पन्न होते हैं और जो इसे खर्च कर देते हैं, वे निचुड़े हुए नीम्बू की तरह भोंडा रूप धारण कर दुनिया को नरक बनाते हैं। मानव के इसी विवेक पर अध्यात्मवाद की नींव खड़ी की जाती है। मानव देह को पाकर यदि हम अपने आपको शरीर समझते रहेंगे तो हमारा विकास सर्वथा अविरुद्ध हो जाएगा और हमारे जीवन की पूर्णता (Fullness of life) हमें प्राप्त नहीं होगी। मानव योनि में आकर हमारा रास्ता बिल्कुल बदल जाता है और हम शरीर के स्वामी बन कर प्रकृति को जीतने का उपक्रम करते हैं, पिछली योनियों के संस्कारों को जला देते हैं और शरीर को संयम से चला कर उसकी बहिर्मुखी वृत्ति को हटा लेते हैं। तब हमारा प्रवेश एक बिल्कुल नये जगत् में होता है और यही आध्यात्मिक जगत् है, जिसके नागरिक बनने के लिये हमें मानव-देह मिलता है।

परन्तु यह मनुष्य बड़ा मूर्ख है। कामदेव की थोड़ी भी प्रलोभना, उसकी मीठी-मीठी बातें, उसकी रंग-बिरंगी फिल्म इसे पथ-भ्रष्ट कर देते हैं और यह लौट २ कर पशु संस्कारों के कीचड़ में फंस जाता है। आज लाखों स्त्री-पुरुष इस मायावी कामदेव के हाथ की कठपुतली बन कर कैसे-कैसे बीभत्स काम करते हैं। जिसने काम को जीत लिया है, वही सब से बड़ा विजेता है। काम के साथ कभी खिलवाड़ मत कीजिये और कभी भूल कर भी इसकी शक्ति का उपहास मत करिए। यदि जीवन की पूर्णता पाने की अभिलाषा है तो वीर्यवान् बनिए। वीर्यवती जातियां ही संसार संग्राम से ऊपर उठती हैं।'

इतना कह कर मैं चुप हो गया और कुछ समय के लिये ध्यानावस्थित रहा। इसके बाद मैंने फिर कहना शुरू किया —

'आप मेरे प्रेमी इस बात को जानने के बड़े उत्सुक होंगे कि ऐसे प्रबल शत्रु मायावी कामदेव को पछाड़ने का अमली तौर पर कौन सा दोटूक तरीका है, जिसे साधक को काम में लाना चाहिये ? हमने

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

आपको समझाया है कि आप आज से यह सूत्र रट लें—'मैं शरीर नहीं हूँ, बल्कि शरीर का स्वामी आत्मा हूँ; मैं शरीर के पीछे नहीं चलूंगा, बल्कि शरीर को अपने पीछे चलाऊँगा। दोटूक में आप इन्द्रियों का कहा मानना छोड़ दीजिये और उनके विरुद्ध जाने का अभ्यास कीजिये। महर्षि पतञ्जली ने इसी साधना का नाम प्रत्याहार रखा है जो अभ्यासी है। उन्हें यह स्मरण रखना चाहिये कि मानव देह पाकर उन्हें नई सृष्टि की रचना करनी है—प्रकृति के संस्कारों का अन्त कर हमें आध्यात्मिक जगत् के पट खोलने हैं और यह तभी हो सकेगा जब हमें आत्मा का स्वतन्त्र व्यक्तित्व साफ तौर से भान होने लगेगा। इसलिये आज से अपने आपको आत्मा समझने की आदत डालिये और शरीर की आवश्यकताओं को बिल्कुल कम करने का अभ्यास कीजिये। शरीर नीरोग हो और उसमें वीर्य का आलोक हो। स्मरण रखिये कि बीमार आदमी कभी अध्यात्म-वादी नहीं बन सकता। जब आत्मा शरीर का स्वामी बन जाता है तो वह शरीर में दैवी प्रकाश भर देता है।'

इतना कहने के बाद मैंने जान लिया कि श्रोताओं को काफी सामग्री मिल गई है। सब भगवान् विहारी अपने अपने स्थान पर चले गये, मैंने खूब व्यायाम किया, कुदकियां लगाईं और तब सुराही से ठंडा पानी पीकर अपने तख्त पर जा बैठा। मेरे मन ने कहा—'जीवन के इकहत्तर वर्ष बीत गये; जो कुछ करना है उसे जल्दी कर ले; मित्रवर धनीराम भल्ला भी चले गये और प्यारे स्वामी भवानी दयाल ने भी परलोक की राह ली। जब प्रभु का वारंट आता है तो फिर कुछ करते-धरते नहीं बनता। उसके सिपाही बल-पूर्वक ले जाते हैं और बतलाते भी नहीं कि कहां ले जा रहे हैं और क्यों ले जा रहे हैं। इस लिये तैयार हो जावो।'

तब मैंने मस्ती से गाना शुरू किया—

'प्रभु के बुलाने पर मैं खुशी खुशी जाऊँगा !'

The Journal of Ayurveda

(Published every Month)

An authoritative and high class Journal devoting itself to the Scientific aspects of Ayurveda for the benefit among other things to original Scientific works, translation and publicatin in English of the clasical works on Ayurveda.

Size *Annual Subscription Rs. 7–8-0* *Established*
10"6½" *Singal Copy* *As.–12–0* *1947*

Foreign 17 Silings or 3 dollars
(Inclusivue of postage)

For Further particulats write to—

Managing Editor 'Journal of Ayurveda'
90, Connaught Circus, New Delhi.

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

सन् १६३० के कुल-भूमि के संस्मरण

श्री वीरेन्द्र विद्यावाचस्पति, एम. ए.

शस्यश्यामला मातृभूमि के नील गगन और नील सागर पर उन्मुक्त पवन में लहराती हुई राष्ट्र-पताका किस भारतीय के हृदय को आनन्दोल्लास से परिप्लावित नहीं कर देती। २६ जनवरी १६५० का सुवर्ण विहान भी स्मरणीय है जब जनगण की जय हो, जन गण की जय हो, के तुमलनाद के साथ और जन मन गण आदि नामक जय हो, भारत भाग्य विधाता के वाद्य-घोष के साथ भारतीय गण तन्त्र की स्थापना हुई और भारतीय स्वाधीनता का सुख स्वप्न सहज वन्दे मातरम् की अनुभूतिमय संगीतधारा में आनन्द क्रीड़ा करने लगा। इस स्वाभाविक हर्षातिरेक में विभोर होकर आत्मविस्मृत सा मैं बहुत दूर वि..त इतिहास के पन्नों में बह चला हूँ। १५ अगस्त १६४७, स्वतंत्रता की प्राप्ति और आनन्द समारोह, सर्वत्र धूमधाम, पर हल्की सी देश विभाजन की विषाद छाया और पांच वर्ष पूर्व सन् १६४२ का अगस्त का महीना, सारे देश में अपूर्व क्रान्ति और अंग्रेजों के लिये भारत छोड़ो का नारा, दमन अत्याचार, गोलीकान्ड, अग्निकाण्ड और रुद्र ताण्डव नर्तन। और १२ वर्ष पूर्व सन् १६३०, महात्मा गांधी की दन्डी यात्रा ही नमक सत्याग्रह। मैं विद्या-वाचस्पति के पाठ्य-क्रम में व्यस्त सहसा व्याकुल हो उठता हूँ और अपनी मातृभूमि और उससे भी बढ़ कर कुलमाता की पुकार से आन्दोलित हो उठता हूँ। अपने साथियों के साथ झंडा लेकर गांवों से निकल पड़ता हूँ। उन दिनों के दृश्य मेरी आंखों के सामने चित्रपट की तरह एक-एक करके गुज़र रहे हैं। क्यों न थोड़ी देर रुक कर उन की रूपरेखा के चित्रण का प्रयत्न करूं और अपनी कुलमाता की निगूढ़ भावना को अनुप्राणित करूं।

हिमालय के आंचल में गंगा के उस पार नील सघन वनों की छाया में अभी हमारा गुरुकुल बाढ़ के प्रहार से क्षत विक्षत होकर भी अपना कार्य कर रहा था। कालिज की पक्की इमारत ही ध्वंसावशेष होने से बच गई थी और वही सब गतिविधियों का केन्द्र थी। उसी के एक भाग में छात्रावास और दूसरे भाग में महाविद्यालय की पढ़ाई चलती थी। ५, ६ जनवरी होगी। लाहौर में पं० जवाहरलाल नेहरू के राष्ट्रपतित्व में पूर्ण स्वाधीनता का प्रस्ताव स्वीकृत हो चुका था और उस की प्रतिध्वनि की गूंज देश के कोने-कोने से आने लगी थी। समाचार-पत्रों में लाहौर के दृश्य अभी चित्रित हो रहे थे। प्रातःकाल ही शामपुर (कांगड़ी गांव के पास) थाने के थानेदार कुछ सहमे और सकपकाये से आकर कालिज के प्रवेश द्वार में खड़े हो गये और बड़े ध्यान से लगे इधर-उधर देखने। कभी वे नीचे के छोटे से फर्श को देखते और कभी अपनी उंगली ओठ पर रख चारों ओर की दीवार और छत पर निगाह फैंकते। हम चार पांच विद्यार्थी जो आंगन में खड़े थे इस विशाल काय पर हतप्रतिभ थानेदार की विचित्र भाव भंगी देख कर अपने को रोक न सके और उसके पास जा ही पहुँचे। हम लोगों के पास पहुँचते ही थानेदार साहिब कुछ अन्तःकरण से बोल उठे, क्यों जी आप लोग हमारी रोजी लेकर ही छोड़ेंगे। कोई बात हुआ करे तो जरा खबर दे दिया करें। हम में से एक ने बढ़ कर कहा, कहिये श्रीमन् क्या हुआ ? आप लोग तो यह जानते हैं कि हमारे यहां बैंगन की तरकारी बनी या आलूमटर की। तो

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

फिर है क्या माजरा जो आप खबर देने की कह रहे हैं। हुआ क्या। सरकार ने मुझ से तलब किया है कि 'गुरुकुल कांगड़ी में ३१ दिसम्बर की रात १२ बजे एक बड़ा जलसा हुआ है। कम से कम पांच सात सौ आदमी होंगे। बैंड बाजे के साथ आज़ादी का झंडा उड़ाया गया था। मुकम्मल आज़ादी का रेज़ोलेशन पास हुआ। हिन्दुस्तान भर में यह कार्यवाही खाली दो ही जगह हुई एक लाहौर में और दूसरी गुरुकुल कांगड़ी में। जरूर दोनों जगहों में कोई खास सम्बन्ध है। तुम इतने बेखबर हो कि तुम्हें इस खबर तक का पता नहीं। पूरी तहकीकात करके जल्दी पूरी खबर भेजो और मालूम करो कि गुरुकुल कांगड़ी और लाहौर को एक मिलाने वाला कौन है।' अब आप ही लोग कुछ बताइये। मैं तो कांगड़ी गांव पूछ आया। वहां से तो कोई आया नहीं और न वे लोग कुछ जानते ही हैं। फिर ये पांच सात सौ आये कहां से और कौन उन का नेता है? हम लोगों से हँसी न रुकी और एक ठट्ठा सा मार कर बोला, जनाब रात ही रात वायरलेस आया। हवाई जहाज से लाहौर से एक आदमी आया। हरिद्वार की जनता टूट पड़ी और बड़े धूमधाम से सब काम इस ड्योढ़ी में (प्रवेश द्वार) में हुआ। थानेदार साहिब लगे मिन्नत करने, आप लोग मजाक न कीजिये। मैं भी गौर से देख रहा था कि ड्योढ़ी में कैसे पांच सौ आदमी समा सकते हैं। मुश्किल से तीस-चालीस आदमी इस में सटकर आ सकते हैं। आते हुये रास्ते में एक लड़के ने बताया था कि कुछ ड्योढ़ी में हुआ था। मैं समझ नहीं पा रहा कि यह सब है क्या? कुछ तो आप लोग बताइये। हम और आप लोग तो बराबर मिलकर रहते आये हैं। जरा मेहरबानी कीजिये।

बात और बढ़ाना अच्छा न समझा हम ने उन को टका सा जवाब दिया, जाइये आप पता लगाते रहिये कि यह सब कैसे हुआ। हम लोग भी ज्यादा नहीं जानते। थानेदार साहिब अपना सा मुंह लिये विदा हो गये।

बात सचमुच सही थी कि रात को १२ बजे झण्डा लहराया गया था। बैंड बाजे के साथ ड्योढ़ी में २०, २५ विद्यार्थियों के बीच यह कार्य किया था। आचार्य अभयदेव जी (श्री देवशर्मा) ने यह समाचार इधर-उधर भेजा। समाचारपत्रों में भी प्रकाशित हुआ। हिन्दुस्तान टाइम्स ने इसको महत्व दिया और बात का बतंगड सरकार की सी. आई. डी. ने बनाया। कालिज में कुल थे ही ५०, ६० विद्यार्थी। विद्यालय के विद्यार्थी मायापुर वाटिका में निवास करते थे, ऊंची कक्षा के विद्यार्थी गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ में। न कोई लाहौर गया न वहां से कोई सन्देश आया। पर यह घटना दो ही जगह क्यों हुई और वह सम्बन्ध कौन सा है यह प्रश्न बना ही रह जाता है। इसका उत्तर है गुरुकुल की सजगता, चेतनाशील और कल्पना प्रवीणता में। चेतना शरीर के सजगतन्तु की तरह, विद्युत् धारा को प्रवाहित करने वाले सम्पन्नशील तार की तरह गुरुकुल देश के सूक्ष्म से सूक्ष्म कम्पन को शीघ्र ग्रहण करने में समर्थ रहा है। हम विद्यार्थी इस बात को गौरव समझा करते थे कि कांग्रेस के अधिवेशन, हिन्दी साहित्य सम्मेलन की बैठक और व्यवस्थापक सभा की विशेष समितियों से पूर्व ही अपनी कांग्रेस, सम्मेलन और व्यवस्थापिका सभा में देश की परिस्थिति के अनुसार विचार विमर्श कर प्रस्ताव इत्यादि स्वीकृत करें और उन की तुलना पीछे होने वाले निश्चयों से करके यह देखें कि हमने भी ठीक उसी तरह सोचा था। कांग्रेस के लाहौर अधिवेशन के साथ भी वही बात हुई। कल्पनाशील विद्यार्थियों ने रात को वही किया जो लाहौर में झण्डे के चारों ओर पं० जवाहरलाल और अन्य नेताओं ने किया और आचार्य जी अनुरोध

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

करके उत्सव सम्पन्न कराया। यह था सूत्र पात आगे आने वाली गतिविधि का। उन कल्पनाशील विद्यार्थियों में कुलमन्त्री सर्वमित्र का नाम मुझे अभी नहीं भूला है जिस ने बड़ा आग्रह करके विनोदात्मक प्रस्ताव को पूर्ण गम्भीर रूप दे दिया और सचमुच उस समय रात १२ बजे हम स्वतन्त्र भारत के सपूत होने की प्रतीक्षा कर रहे थे।

नमक कानून को तोड़ने के लिए जगह-जगह सत्याग्रहियों की टोलियां नोनिया मिट्टी और छोटी सी कड़ाही लेकर प्रस्थान कर रही थीं और पानी को उड़ा कुछ पुड़िया नमक निकाल खासा प्रदर्शन कर रही थीं। उन पुड़ियों के फेन्सी प्राइस से कुछ काम चलाऊं पैसा भी बटोर लेती थी। प्रारम्भ में जनता ने भी इसे खेल समझा और सरकार ने भी एक विनोद। पर देखते देखते वह आग चारों ओर फैलने लगी। तब सरकार ने अनुभव किया कि वह ज्वालामुखी पहाड़ पर बैठी है और न जाने कब विद्रोह की ज्वाला प्रचन्ड रूप धर ले। गिरफ्तारियों, पाबन्दियों और १४४ का बोल बाला हो गया। जनता में भी इस की प्रतिक्रिया हुई और गुरुकुल कांगड़ी कब इस से अछूता रहता।

आचार्य रामदेव जी ने सत्यार्थप्रकाश के प्रथम संस्करण से निकाल कर यह दिखलाया कि स्वामी दयानन्द ने सर्वप्रथम नमक और जंगल के कानून के विरुद्ध आवाज़ उठाई थी। गंगा पार गुरुकुल रहने से विद्यार्थी राजनीति के क्रियात्मक अंग से कुछ दूर रह जाते थे। पर अब तो गंगा के इस पार पञ्चपुरी के क्षेत्र में आ जाने से उस से वे कैसे अछूते रह सकते थे। आचार्य अभयदेव, पं० भीमसेन विद्यालंकार और पं० दीनदयालु सिद्धान्तालंकार ने सहारनपुर ज़िले में इस सत्याग्रह में प्रमुख भाग लेना शुरु किया। इन लोगों को गुरुकुल के विद्यार्थियों ने बड़े समारोह से विदा किया। हरिद्वार की हर की पौड़ी पर नमक कानून तोड़ने के लिए भीड़ जुड़ी और स्नातक बन्धुओं ने उस का प्रदर्शन किया। पञ्चपुरी में धूम मच गई, सभाएं और जलूस रोज मर्रा की चीज़ हो गई। गुरुकुल के विद्यार्थी बेधड़क इन सब में आने जाने लगे और देशभक्ति का ज्वार पूरी तेजी में उमड़ने लगा। उपर्युक्त स्नातक बन्धुओं की गिरफ्तारियों ने इस ज्वार की वेला के उल्लंघन के लिए मजबूर कर दिया। अपनी आंखों के सामने पुलिस की लारी में उन्हें खुशी से जाते देख और उन के गुरुकुल के सत्याग्रह में भाग लेने के सन्देश को सुन भला नवयुवक विद्यार्थियों का जोश कैसे रुकता। अगले ही दिन एक बड़ी सभा बुलाई गई। आचार्य रामदेव जी ने लाख कोशिश की कि विद्यार्थी आन्दोलन में न पड़ें पर वहां उस सलाह को सुनने वाला कौन था। आचार्य रामदेव जी के लैक्चर का हवाला देकर लगे लड़के कहने कि स्वामी दयानन्द जी का कथन अक्षरशः पालें कि आचार्य जी का? आचार्य का तो अनवद्य कर्म ही सेवन करना चाहिए। ये बूढ़े लोग कुछ डरते हैं, आओ हम नवयुवक आगे बढ़ें। कुलमन्त्री सर्वमित्र ने घोषणा कर दी कि पढ़ाई लिखाई बन्द और विद्यार्थी सत्याग्रह में भाग लेने निकल पड़ें, कुछ देर बाद ही आचार्य रामदेव जी की लिखित सूचना आई कि ३ महीने के लिए कालिज सत्रान्तावकाश के रूप में बन्द। विद्यार्थियों को और क्या चाहिए था। कहां अगस्त के महीने में कालिज बन्द होता और कहां मई में ही बन्द हो गया। जो विद्यार्थी सत्याग्रह में हिचक रहे थे और पढ़ने की सोचते थे वे भी खाली हो गए और सत्याग्रहियों के व्यंग के पात्र बन गए। अब लगी सत्याग्रहियों की टोलियां तैयार होने, श्री चन्द्रकान्त और श्री केशवदेव वाचस्पति की तैयारी में संलग्न थे। हम स्नातक भी हो चुके थे और अभी विद्यार्थी भी थे। न विद्यार्थियों का साथ छोड़ते बनता था और

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

न आचार्य रामदेव जी की हिदायत तोड़ते बनता था। परन्तु सर्वमित्र ने आकर कह ही तो दिया कि आप लोगों का लिस्ट में नाम लिख लिया और आप ही लोग न भाग लेंगे तो और विद्यार्थी कैसे मानेंगे। आन्तरिक इच्छा तो थी ही, अब कोई चारा भी न रहा। इस समय श्री रामेश्वर जी सिद्धान्तालङ्कार, पूर्णचन्द्र जी विद्यालङ्कार और श्री जयदेव जी विद्यालङ्कार ने भी इस क्षेत्र में प्रवेश किया। श्री रामेश्वर नायक बने और बड़े स्वागत समारोह से हम २५,३० सत्याग्रहियों की टोली रुड़की के लिए बिदा हुई।

रुड़की तहसील को पूरे तौर से जागरुक कर देने के लिए काम मुस्तैदी से होने लगा मंगलौर को थोड़ी देर के लिए केन्द्र बनाया गया और ५ दल भिन्न-भिन्न दिशाओं में सब परगनों में गांव गांव में महात्मा गान्धी का सन्देश देने के लिए चल पड़े। एक दल का प्रमुख होने का मुझे भी सौभाग्य मिला था। मेरे साथी सभी बड़ी लगन वाले और जी जान से भिड़ जाने वाले थे। सर्वमित्र, रणजित् आयुर्वेदालङ्कार और प्रफुल्लचन्द्र के नाम मुझे नहीं भूले हैं। सफेद कमीज़, काले रङ्ग की निक्कर, एक झोला गले में यही हमारी वेश भूषा थी। तिरङ्गा झण्डा और बिगुल हमारे साथ थे। गांव में घूमने से पहले ही जोर से बिगुल बजता और गांव के लड़के बच्चे हम लोगों के साथ हो लेते। तिरंगे झण्डे और हमारी वेश भूषा को देख कर गांव वाले स्वाभाविक रूप में कुछ आकृष्ट होते हुए कुछ सरकार के आतंक से दूर भागते और कुछ नई बातों को सुनने के लिए उत्सुक होते। हम लोग सीधा गांव के मुखिया के यहां नहीं तो गांव की चौपाल में जा डटते और हर तरह गांव की जानकारी पाने की कोशिश करते। सहारनपुर के गांवों में भी आर्यसमाज का कुछ नाम था और खास कर गुरुकुल कांगड़ी के प्रति आदर था इस लिए तो कई जगह ठहरने, खाने पीने आदि का आराम मिलता पर सरकार के विरुद्ध बात सुनने को मुखिया, लम्बरदार आदि तैयार न होते। किसी गांव में तो कोई पूछने वाला तक न मिलता खास कर उन गांवों में जो अमन सभा के कभी केन्द्र रहे थे और जहां वे बूढ़े अभी जीवित थे जिन्होंने सन् ५७ के गदर में अपनी आंखों के सामने अंग्रेजों के नंगे अत्याचार को देखा था। वे बूढ़े दिखाते कि देखो उस समय यहां हमारे पिता को या चाचा को नङ्गा टिकटकी पर बांध कर पीटा गया था और फांसी दी गई थी, यहां हमारे घर जमींदोज़ कर दिए गए थे, यहां आग लगाई थी, यहां औरतें कुएं में कूद पड़ी थीं। तुम लड़के भला ब्रिटिश सल्तनत को बात बनाकर और नमक का खेल करके उड़ा दोगे। उन लोगों को भी समझाने की कोशिश की जाती। मज़दूरों और किसानों के लिए तो यह नई सी बला थी। किसी किसी मुसलमानों के गांव में तो हम पिटते बचते और ज़रा भी अपने धैर्य को और साहस को खो देते तो हमारी दुर्गति हो जाती। सूर्य की चिलचिलाती धूप में ही हम लोग मार्च कर देते और एक गांव से दूसरे गांव में पहुँच जाते। सभा के संगठन का भार सर्वमित्र और प्रफुल्ल पर रहता। मोटे बंगाली प्रफुल्ल को देख कर ही कौतुक के साथ कुछ गांव वाले साथ हो जाते। छोटी मंटी सभा जुटती। देश प्रेम के गीतों का गाने का रणजित का काम था। नमक कानून और तरह तरह के सरकारी अत्याचारों के भंडा फोड का काम भाषण में करना मेरा और सर्वमित्र का था। डायरी में सब कुछ नोट होता था। नारसेन कलां हमारा केन्द्र था। वहां के कई अच्छे कार्यकर्त्ता हमारे साथी रहे। सम्भवतः वहां कोई गुरुकुल भी खुल गया है। इस तरह सारी रुड़की तहसील के गांव २ में हम लोगों ने जागृति

[शेष पृष्ठ सत्ताईस पर]

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

उन्नति का सर्वोत्कृष्ट साधन आत्म विश्वास है

ठाकुर रामसिंह

जीवन में आशा और निराशा का चक्र चलता ही रहता है। सुख-दुःख उत्थान-पतन, प्रकाश और अन्धकार यह सब हमारे जीवन के मार्ग में आने वाले संस्थान हैं। मनुष्य जब उत्थान के शिखर पर चढ़ता है तब उस के समक्ष और उत्साह का प्रकाश झलकने लगता है और उसकी आकृति पर एक प्रकार की ओज की चमक आ जाती है। जब वही पतन के गहरे गढ़े में गिर पड़ता है, तब उसकी आंखों के सामने घोर अन्धकार छा जाता है। उसकी आकृति अपवित्रता की कालिमा से स्याह पड़ जाती है। उसके सच्चे मित्र उसे सहायता देना पाप समझने लगते हैं। जब वह अपने उत्थान पतन के दिनों को याद करता है तो वह विह्वल होकर रो पड़ता है। उसे यह प्रतीत होने लगता है कि मैं पतित हूं। पापी हूं। मेरा भविष्य अंधकार में है। अब मेरा उत्थान नहीं हो सकता। उस के हृदय के भीतर एक प्रकार की आग धधकने लग जाती है जिस से वह अहर्निश झुलसने लगता है। उसके जीवन की सारी प्रसन्नता प्रफुल्लता इस से कोसों दूर भागती है। जिस समय प्रकार के निराशित और निराश्रित व्यक्ति के सन्मुख कोई निर्दोष प्रसन्न एवं निर्मल चरित्र व्यक्ति उसके सामने आ निकलता है तो मानों उसके शरीर को सहस्रों वृश्चिक एक साथ अपने डंक चुभोने लगते हैं और वह कहने लगता है, काश मैं भी ऐसा ही होता।

इस प्रकार के पतित चरित्र एवं अपने जीवन से सर्वथा निराश महानुभावों के लिये एक ही औषध है। आत्म-विश्वास! एक और भी औषध है जिसके द्वारा निराश व्यक्ति को आश्वासन प्राप्त हो सकता है। वह भगवान् पर विश्वास है। किन्तु आत्म-विश्वास भगवान् पर विश्वास रखने से भी आगे बढ़ी हुई वस्तु है। जो मनुष्य अपने जीवन मार्ग में आगे और आगे ही बढ़ने की इच्छा रखता है उसे सब से प्रथम अपने ऊपर दृढ़ विश्वास रखना पड़ेगा, जब तक उसे अपने आप पर विश्वास नहीं, तब तक यह असम्भव है कि वह अपने स्थान से तिल मात्र भी आगे की ओर चरण निक्षेप कर सके। पतित से पतित भी क्यों न हो, यदि

[पृष्ठ २६ का शेष]

उत्पन्न कर दी। खास खास स्थानों पर कांग्रेस की जाती और उस का दृश्य देख कर सब दङ्ग रह जाते। पांच छः सौ वालंटियर झण्डे लिए चारों ओर से इकट्ठे होते। सब के स्वागत का पूरा सामान रहता, खाने पीने की दिक्कत न होती और बड़े जोश के व्याख्यान होते। सहारनपुर के वकील मेला-राम जी और प्रो० धर्मेन्द्रनाथ जी की स्वर्गीय पत्नी उर्मिलादेवी आदि के भाषण होते। सरकार को सब रिपोर्ट मिलती, पर वह चुप रह जाती थी यह सोच कर कि विद्यार्थी तीन महीनों की छुट्टियों में मनोरञ्जन कर रहे हैं फिर वापिस चले जायेंगे और उसे यह भी गम्भीरता से सोचना पड़ता कि एक ऐसी संस्था को छेड़ना जिस के पीछे आर्यसमाज का पूरा हाथ है और पञ्जाब तथा संयुक्तप्रान्त की जनता है उचित होगा या नहीं। रुड़की तहसील में श्री रामेश्वर जी के सब दलों ने तथा अन्य तहसीलों में भी इसी प्रकार श्री पूर्णचन्द्र जी और जयदेव जी आदि ने जन जागरण फैला दिया। अब देर थी सरकार की और सत्याग्रहियों की मुठ-भेड़ की।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

उसे अपने आप पर विश्वास है तो यह निश्चय रखिये कि वह अपनी इस अनीप्सित अवस्था से उभर कर रहेगा। भीषण से भीषण दुर्वृत्तों की ओर घसीटने वाले मानसिक शत्रुओं को परास्त करके उन्हें कुचल कर रहेगा और एक न एक दिन उत्थान के भव्य एवं स्वर्गिक शिखर पर समारूढ़ होके रहेगा। इस लिये कोई भी कितना ही पतित क्यों न हो उसे अपने हाथ से इस आत्म-विश्वास को नहीं जाने देना चाहिये।

कट जायेंगी दुःख की घड़ियां, होगा प्रातन रात रहेगी।
क्या रह जायेगा दुनिया में, कहने को बस बात रहेगी॥

मनुष्य को अपने ऊपर विश्वास रखना चाहिये। अपने अन्दर निहित भगवतप्रदत्त दिव्य शक्तियों पर विश्वास रखना चाहिये। भगवान् ने प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर नाना प्रकार की शक्तियां निगूढ़ रूप में स्थापित कर रखी हैं। आज हम संसार के अन्दर नित्य प्रति आविर्भूत होने वाले नूतन और मानवीय चर्म चक्षुओं को चमत्कार करने वाले आविष्कारों को देख रहे हैं। नहीं-नहीं मनुष्यों के स्वप्न लोक को इस मर्त्य भूमि पर अवतीर्ण होता हुआ देख रहे हैं। यह सब उन्हीं दश एकादश अवयक खडों से निर्मित किसी विचित्र धातु का पुतला मानव संसार के अन्दर युगान्तर उपस्थित कर देने वाला कार्य कर सकता है क्या हमारे में वह सामर्थ्य नहीं कि हम भी उसी प्रकार के अलौकिक कार्यों से इस विश्व को चकित कर सके। हैं अवश्य हैं फिर हम उस प्रकार करके नहीं दिखा सकते। इसका कारण क्या है। यही कि हमें अपने सामर्थ्य का ज्ञान नहीं है। हमें इस बात पर विश्वास नहीं कि हमारे अन्दर भी कुछ शक्तियां विराजमान है जिनके उपयोग में लाने तथा प्रदीप्त करने से हम संसार में युगान्तर उपस्थित कर सकते हैं। हैं। अस्तु आज हम जन साधारण के लिये आत्म-विश्वास का पाठ पढ़ाने नहीं बैठे हैं। हमारी आज की पंक्तियां तो केवल उन्हीं तीनों को लक्ष्य करके लिखी जा रही हैं। जो अपने को पतित समझते हैं, पातकी समझते हैं तथा जिन्हें अपने भविष्य की उज्ज्वलता पर रत्ती मात्र भी विश्वास नहीं रह गया है। संसार में नाना प्रकार के व्यक्ति हैं और उनके अपने नाना प्रकार के विश्वास एवं सिद्धान्त बने हुवे हैं हम नहीं कह सकते कि हमारे बन्धुओं का क्या विश्वास होगा किन्तु हमारा तो यह दृढ़ विश्वास है कि प्रत्येक व्यक्ति पल प्रतिपल आगे बढ़ता ही जा रहा है। पीछे नहीं हट रहा। मनुष्य जो कुछ कार्य करता है, चाहे वह अच्छे करता है चाहे बुरे, प्रत्येक कार्य उसे उन्नति के मार्ग पर आगे ही बढ़ाये ले जा रहे हैं। मनुष्य आज जो पापकृत्य करता है अगली बार जब वह पाप कृत्य करेगा तो पहले स्थान से कुछ आगे बढ़ कर ही करेगा। वही करेगा। पीछे हट कर नहीं करेगा। कहने का अभिप्राय यह है कि प्रतिक्षण मनुष्य का जो चरण अपने स्थान से उत्थित होता है वह आगे ही जाकर स्पर्श करता है। यदि कभी भूल कर उसी स्थान पर पड़ भी जाय तो पड़ सकता है। यद्यपि हमें इसमें भी विश्वास नहीं तो भी पीछे कदापि नहीं पड़ेगा। यह खूब ध्यान में रखिये। अतः जो बन्धु अपने को अत्यधिक हीन चरित्र समझते हैं उन्हें इस बात से डरना नहीं चाहिये। कि हम अपूर्ण चरित्र हैं। हमारा भविष्य सर्वथा अन्धकार पूर्ण है और हम कभी इस अवस्था से उद्धृत नहीं हो सकेंगे। हमें ऐसा प्रतीत होता है कि संसार में सब व्यक्ति पंक्तिबद्ध होकर मोक्ष की ओर प्रस्थान कर रहे हैं। और क्रम से प्रत्येक मनुष्य को मोक्ष प्राप्ति होती जा रही है। प्रत्येक को मोक्ष प्राप्ति के लिये उतना ही रास्ता तय करना पड़ रहा है जितना अगले व्यक्ति ने मोक्ष प्राप्तयर्थ किया है। हम सब उस पंक्ति के अन्दर विद्यमान हैं कोई हम से आगे है कोई हम से पीछे। जिस मार्ग पर यह प्रकृति

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

प्रक्रमण कर रही है उस में उतार चढ़ाव बहुत हैं। जब एक व्यक्ति उतार के अन्तिम सिरे पर पहुँच कर अपने अगले और पिछले आदमियों को अपने से बहुत ऊपर देखता है तो वह समझता है कि हाय मैं कितना पतित हूँ और ये लोग मेरे से कितने उन्नत है किन्तु यह सब भ्रांति है। पतित से पतित भी उन्नत है। और उन्नत से उन्नत भी उन्नत है मनुष्य को केवल अपनी पतित अवस्था को देख कर ही यह नहीं कल्पना कर लेनी चाहिए कि मैं पतित हूँ किन्तु उसे अपने आगे और पीछे देख लेना चाहिए कि वस्तुस्थिति क्या हैं ? उसे अनुभव होगा कि सभी भगवान् के अमृत पुत्र हैं।

हे मेरे भूले हुए बन्धुओ ? यदि तुम अपने आप को पातकी समझते हो यदि तुम्हें अपने जीवन से सर्वथा ग्लानि एवं निराशा हो गई हो तो तुम अपने भविष्य को तम पूर्ण समझ कर अपने दोष शून्य आत्मा का हनन मत करो। तुम अपने ऊपर पूर्ण विश्वास रखो कि हम पवित्र हैं हमारा रेणु पवित्र है। इस पाप और पुण्य के ससंहार भूत विश्व में आकर पाप कौन नहीं कमाता। कामा क्रोध, लोभ, मोह इत्यादि भयंकर प्रवंचनाओं के सन्मुख अनिच्छन्नापि कौन नहीं झुक जाता। यदि तुम भी इसी प्रकार अज्ञानवश या जानबूझ कर इन कुचक्रियों के पाश में आबद्ध हो गये हो तो डरते क्यों हो तुम अपने ऊपर अपनी पवित्रता पर दृढ़ विश्वास रखो। तुम्हारे एक ही झटके से इन प्रवंचको के फन्दे टूक टूक हो जायेंगे तब तुम्हें अनुभव होगा कि हम भी उसी भगवान् के पुत्र हैं। संसार के बड़े बड़े प्रतिभाशाली जिन्हें हम देखते हैं सब आत्म विश्वास के द्वारा ही संसार में अपना नाम अमर कर गये हैं।

गुरुकुल कांगड़ी के आदर्श कुलपिता श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी ने आत्मविश्वास से ही गुरुकुल नाम का छोटा सा पौदा लगाया था उस समय आशाओं की बहुत कम रेखायें चारों ओर देख पड़ रहीं थीं यह उन का अदम्य साहस और उत्कृष्ट उत्साह तथा आत्मविश्वास का एक उदाहरण है कि उन्होंने हमारी शिक्षा को सच्ची राष्ट्रीय और सर्वथा स्वतन्त्र बनाने का विचार ही नहीं किया अपितु इस विचार पर जङ्गल में बैठ कर अपने हाथ बन कटी कर के और जङ्गलो जानवरों का सामना कर के इस विश्वविद्यालय की स्थापना की। जिस ने आज विश्वविद्यालय का रूप धारण कर लिया है आरम्भ में कुछेक ब्रह्मचारियों ने भविष्य के बारे में बड़ी आशंकायें स्वामी जी के सामने रखी। स्वामी जी ने उन की शकाओं का निवारण बड़े सुन्दर ढंग से किया और अन्त में एक सवैया को सुना कर समझाया कि उस परम पिता परमात्मा पर विश्वास करो। सोच करने से कुछ हाथ नहीं आवेगा। स्वामी जी जिस क्षेत्र में भी उतरे उस में पूर्णतया सफल हुए इस का मुख्य कारण परमात्मा में पूर्ण विश्वास था। दूसरा उदाहरण हमारे सामने महात्मा गान्धीजी का है जिन्होंने अहिंसा का शस्त्र लेकर भारत को स्वतन्त्रता दिलवाई है क्या हम इन्हें बीसवी सदी का चमत्कार नहीं कह सकते। इन दोनों महात्माओं की भारतवासियों को आत्मविश्वास भी एक अच्छी देन ही है जिस के लिए हम सब सदा इन के ऋणी रहेंगे। उन का नाम सर्वदा हमें ध्रुव उत्तर की तरह पथ प्रदर्शक का कार्य करता रहेगा और वे तरुण भारत के लिए प्रातः स्मरणीय पुरुष बने रहेंगे।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

पुस्तक-परिचय

आदर्श ब्रह्मचारी—लेखक श्री स्वामी आत्मानन्द। प्रकाशक वैदिक साहित्य सदन, लाल दरवाजा, सीताराम बाजार, देहली। प्रथम वार, सम्वत् २००७, मूल्य =)॥। ब्रह्मचर्य की महिमा, पतन से बचने के उपाय और ब्रह्मचर्य व्रत पालन करने में सहायक बातों को बात-चीत करने के ढंग से समझाया गया है।

कन्या और ब्रह्मचर्य— लेखक और प्रकाशक वही। प्रथमवार, सम्वत् २००६, मूल्य =)॥। कन्याओं को ब्रह्मचर्य व्रत धारण करने के लाभ इस में बताये हैं।

सुन्दर कहानियां—लेखिका श्री माता जी। प्रकाशक श्री अरविन्दाश्रम, पाण्डिचेरी, पृष्ठ सं० ११०। श्री अरविन्दाश्रम की श्री माता जी अध्यात्म क्षेत्र में प्रसिद्धि प्राप्त महिला हैं। समय-समय पर धार्मिक तथा आध्यात्मिक लेखों द्वारा वे अपने विचारों का प्रसार करती हैं। प्रस्तुत पुस्तक उनकी मूल फ्रेंच भाषा में लिखी हुई कहानियों का संग्रह है। ये कहानियां बच्चों के लिये लिखी गयी हैं। आत्म संयम, सादा जीवन, धैर्य, सच्चाई आदि मानव जीवन को उत्कृष्ट बनाने वाले विषयों पर विषय वार छोटी-छोटी अत्यन्त हृदयस्पर्शी तथा ताज़गी से भरपूर कहानियों का यह संग्रह है। प्रत्येक कहानी का अन्त ऐसे मर्मस्पर्शी उपदेशप्रद वाक्यों से होता है कि वह एक बार तो मन पर गहरा प्रभाव कर जाता है। पुस्तक बच्चों के लिए ही नहीं, बड़े बूढ़ों के लिए भी अत्यन्त उपयोगी, मननीय तथा पठनीय है। सभी छोटी कहानियां विषय वार मणि माला में ग्रथित सूक्तियां सी प्रतीत होती हैं।

अनुवादक का कार्य पर्याप्त कठिन होता है। पुस्तक की भाषा को पर्याप्त सरल बनाने का यत्न किया गया प्रतीत होता है। फिर भी कहीं-कहीं ऐसे वाक्य आ जाते हैं जिन्हें सरलता से समझना कठिन होता है। उदाहरण के लिए (पृष्ठ ८३) सत्यवादी बनने और सत्य में स्थिर रहने का अभ्यास डालने के लिए कोई भी समय अति शीघ्रता का नहीं है।' वाक्य और अधिक स्पष्ट किया जाता तो उत्तम होता। पृष्ठ ७६ के अलोप शब्द के स्थान पर लोप शब्द होना चाहिए था।

श्री अरविन्द आश्रम में छपी पुस्तकें अपनी सफाई, स्वच्छता, सुन्दरता तथा शुद्धता के लिए आदर्श होती हैं।

इन कहानियों में अधिकतर कहानियां विदेशों के महापुरुषों से सम्बन्धित हैं। भारतीय बच्चों को इन नामों तथा उन संस्कृतियों से विशेष परिचय नहीं होता। भारतीय वाङ्मय में इस प्रकार के दृष्टान्तों की कमी नहीं है जो कि सम्भवतः आध्यात्मिक उदाहरणों से विश्व के सभी वांगमयों में समृद्ध माना जाता है। यह कमी पाठकों को बहुत अखरती है।

वैदिक विनय (तीन खण्डों में)—लेखक श्री अभय विद्यालंकार। प्रकाशक-प्रकाशन मन्दिर, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार। कुछ समय से इस प्रसिद्ध पुस्तक के तीनों खण्ड एक साथ प्राप्त नहीं थे। स्वाध्यायशील जनों को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि अब तीनों खण्डों के नये संस्करण छप कर तय्यार हो गये हैं।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गुरुकुल-समाचार

ऋतु

आषाढ़ मास समाप्त हो चुका है, मेघराज की कृपा अवतीर्ण हो रही है। तृषित भूमि पानी मिलते ही उल्लसित हो उठी है। खेतों, मैदानों, वनों उपवनों में अपूर्व आनन्द और उल्लास छा गया है। लता, पल्लव, प्रसूनों में नवजीवन का सञ्चार हो गया है। जिधर देखो हरा-हरा दृष्टिगोचर होता है। आजकल वर्षा ऋतु के कारण दिवस बड़े सुहावने हो गए हैं। भास्कर के दर्शन बहुत कम होते हैं। निशाएं सुहावनी और शीतल हो गई हैं। पपीहे और कोयल के मधुर अलापों से कुल कानन गुञ्जायमान हो रहा है, शिवालिक-शिखरों पर मन्द २ गति से इठलाती हुई मेघ मालाएं बहुत भलि और सुन्दर लगती हैं।

आयुर्वेद महाविद्यालय में ब्रह्मचारियों का प्रवेश

जो विद्यार्थी आयुर्वेद महाविद्यालय में प्रविष्ट होना चाहते हैं वे शीघ्र ही अपना प्रार्थना-पत्र आचार्य गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी के नाम भेजकर पत्र व्यवहार करें। योग्यता मैट्रिक तथा प्राज्ञ होनी चाहिए। आयुर्वेदिक कालेजों के विद्यार्थी भी जिस क्लास में हों उसी में भर्ती किए जा सकते हैं।

गुरुकुल कांगड़ी में ग्रीष्मावकाश

गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी में ग्रीष्मावकाश के कारण महाविद्यालय विभाग दो मास के लिए बन्द हो गया है। ११ सितम्बर से इस में पुनः नियम पूर्वक पाठ्यक्रम आरम्भ होगा।

हाई स्कूल विभाग प्रथम अगस्त से बन्द हो कर १५ सितम्बर को खुलेगा। इन दिनों गुरुकुल के विद्यार्थियों की कुछ टोलियां सरस्वती यात्रा के लिए मैसूर और काश्मीर तथा अन्य पहाड़ों पर जाने के लिए बन गई हैं। मैसूर की पार्टी तो रवाना भी हो चुकी है। शेष टोलियां इस मास के अन्त तक रवाना हो जांयगी।

श्रावण मास में रोगी ब्रह्मचारियों का विवरण

नाम ब्र०	श्रेणी	नाम रोग	कितने दिन रोगी रहा
सुखदेव	१३	ज्वर	३ दिन
हरिश्चन्द्र	६	प्रतिश्याय ज्वर	४ ,,
हरिकृष्ण	४	नेत्राभिष्यन्द	३ ,,
सुरेन्द्रपाल	५	,,	७ ,,
राजकुमार	४	,,	५ ,,
सुभाष	३	,,	४ ,,
सोमनाथ	२	,,	४ ,,
हरिश्चन्द्र	२	,,	६ ,,
जगदीश	३	,,	६ ,,
चमनलाल	१	,,	३ ,,
धर्मपाल	२		३ ,,
प्रेमप्रकाश	२	,,	रोगी

इस मास उपरोक्त ब्रह्मचारी रुग्ण हुए थे। अब सब स्वस्थ हैं।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

T. B. टी० बी० "तपेदिक" चाहे फेफड़ों का हो या अँतड़ियों का बड़ा भयङ्कर रोग है

(१) पहली स्टेज	(२) दूसरी स्टेज	(३) तीसरी स्टेज	(४) चौथी स्टेज	अन्तिम स्टेज
मामूली ज्वर खांसी	ज्वर खांसी की अधिकता	शरीर सूखना, ज्वर खांसी की भयंकरता	सभी बातों की भयंकरता शरीर पर वर्म, दस्त आदि का शुरू हो जाना	रोगी की मौत और भयंकर वर्मों का इधर उधर फैलना

जबरी ————(JABRI)———— जबरी ————(JABRI)

भारत के पूज्य ऋषियों की अद्भुत खोज (Research) जबरी एक मात्र दवा है।

सज्जनो—"जबरी" के बारे में भारत के कोने कोने से आप पचासों प्रशंसा पत्र प्रति दिन अखबारों में देखते ही होंगे। आज एक ताजा पत्र मिस्त्री मानसिंह बान्सल दलादी गेट शहर नाभा [पू० पंजाब] का भी देखें। श्रीमान् पूज्य परिडत जी नमस्कार। हमको यह लिखते हुए बड़ी खुशी हो रही है कि परमात्मा और आपकी कृपा से हमारी लड़की को काफी आराम है। १६ दिन में शरीर का वजन घटने के स्थान पर ४ पौंड बढ़ गया है। बुखार बिलकुल नहीं रहा। स्वास्थ्य पहले से बहुत अच्छा है। अब तो लड़को मील मील भर चल फिर लेती है। श्रीमान् जी आप ब्राह्मण कुल भूषण जगत्-गुरु हैं। फिर भला आप की दवा क्यों न आराम करे? हम काफी समय तक डाक्टरों, हकीमों से इलाज कराकर और लगभग ४ हजार रुपया अंग्रेजी औषधियों आदि पर बरबाद करके ना उमेदी की हालत में आपके चरणों में उपस्थित हुए थे। आपकी अनमोल औषधि और परमात्मा की कृपा से लड़की अब ठीक हो गई है। परमात्मा ने आपको यह दवा नहीं बल्कि एक "जौहर" (अमृत) प्रदान किया है। जितनी भी प्रशंसा की जावे कम है। भगवान् आपके कार्यालय को दिन दुगुनी रात चौगुनी उन्नति दे।

T. B. टी० बी० 'तपेदिक व पुराने ज्वर के हताश रोगियो

अब भी समझो अन्यथा फिर वही कहावत होगी— 'अब पछताये होत क्या, जब चिड़िया चुग गई खेत' इसलिए तुरन्त आर्डर देकर रोगी की जान बचावें। सैंकड़ों हकीम, डाक्टर, वैद्य अपने रोगियों पर व्यवहार करके नाम पैदा कर रहे हैं और तार द्वारा आर्डर देते हैं। तार आदि के लिए हमारा पता केवल 'जबरी जगाधरी' (JABRI JAGADHRI) लिख देना ही काफी है। तार से यदि आर्डर दें तो अपना पूरा पता लिखें। मूल्य इस प्रकार है—

'जबरी स्पेशल नं० १ अमीरों के लिए जिसमें साथ साथ ताकत बढ़ाने के लिए सोना, मोती, अभ्रक आदि की मूल्यवान भस्में भी पड़ती हैं। मूल्य पूरा ४० दिन का कोर्स ७५) रु०। नमूना १० दिन के लिये २०) रु०। 'जबरी' नं० २ जिसमें मूल्यवान् जड़ी-बूटियां है, पूरा कोर्स २०) रु०, नमूना १० दिन के लिए ६)रु० महसूल आदि अलग है। आर्डर में पत्र का हवाला तथा नं० १ या २ साफ-साफ लिखें। पार्सल जल्द प्राप्त करने के लिए मूल्य आर्डर के साथ भेजें। यदि Airmail से मंगाना हो तो २) रु० खर्च अधिक भेजें। विदेशों के ग्राहक मूल्य पेशगी भेजें।

पता—रायसाहब के. एल. शर्मा एण्ड सन्स, रईस एण्ड बैंकर्स, (७५) जगाधरी (E. P.)

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी की

विशेष गुणदायक औषधियां

च्यवनप्राश हाइपो

च्यवनप्राश में कैल्शियम व सोडियम आदि नवीन रासायनिक पदार्थ डालकर यह योग तय्यार किया गया है। खांसी, क्षय, निबलता दमा आदि में रामबाण है और शरीर वृद्धि के लिये उत्तम रसायन है।

मूल्य ३।) पाव।

सिद्ध मकरध्वज

स्वर्ण, कस्तूरी आदि बहुमूल्य वस्तुओं से तैयार किया गया है। सब प्रकार की निर्बलता को दूर करके शरीर में शक्ति व स्फूर्ति देता है व नया जीवन लाता है।

मूल्य ३॥) माशा, ४५) तोला।

बादाम पाक

बादाम, पिस्ता व अन्य गुणदायक वस्तुओं से तैयार किया गया है। स्वादिष्ट, बलवधक पाक है। मस्तिष्क व शारीरिक दुर्बलता को दूर कर शक्ति देता है।

मूल्य ४) पाव।

गुरुकुल चाय

जड़ी-बूटियों के योग से बनी देशी चाय है। सुख व स्वास्थ्य के लिये परिवार में इसका प्रयोग कीजिये। थकावट, हल्के बुखार, खांसी, जुकाम में तुरन्त लाभ दिखाती है।

मूल्य ।=) छटांक, १=) पाव।

बसन्त कुसुमाकर

सोना, चान्दी, मोती आदि से तैयार की गई यह औषधि बहुमूत्र और मधुमेह रोग में विशेष गुणकारी है। शरीर की नसों की निबलता को हटाकर समथ और बलवान बनाता है। मूल्य ३) माशा, ३६) तोला

चन्द्रप्रभा वटी

शिलाजीत, लोह भस्म, वंशलोचन आदि लाभदायक चीजों से तैयार की गई यह औषधि अनेक रोगों को दूर करके शरीर में नई शक्ति लाती है। खून की कमी, जिगर की निबलता, बवासीर तथा विशेषकर प्रमेह व स्वप्नदोष आदि में लाभदायक है।

मूल्य १) तोला, ४) छटांक।

महालोहादि रसायन

इसके सेवन से शरीर में नया रक्त पैदा होता है। प्रत्येक ऋतु में सेवन करने योग्य उत्तम औषधि है।

मूल्य ६) तोला।

द्राक्षासव

बलवर्धक, स्वादिष्ट पेय है। शारीरिक व मानसिक थकावट को दूर करके स्फूर्ति व शक्ति देता है।

मूल्य १।) पाव, २) पौंड।

गुरुकुल कांगडी फार्मेसी (हरद्वार)

मुद्रक—श्री हरिवंश वेदालंकार। गुरुकुल मुद्रणालय, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

प्रकाशक—मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

स्वाध्याय के लिए चुनी हुई पुस्तकें

वैदिक साहित्य

वैदिक ब्रह्मचर्य-गीत श्री अभय २)
वैदिक विनय १, २, ३ भाग ,, २।), २।), २।)
ब्राह्मण की गौ ,, ॥)
वैदिक अध्यात्मविद्या श्री भगवद्दत्त १।)
वैदिक स्वप्न विज्ञान ,, २)
वेदगीताञ्जली [वैदिक गीतियां] श्री वेदव्रत २)
वैदिक सूक्तियां श्री रामनाथ १॥)
वरुण की नौका [दो भाग] श्री प्रियव्रत ६)
सोम-सरोवर, सजिल्द, अजिल्द श्री चमूपति २), १॥)
अथर्ववेदीय मन्त्र-विद्या श्री प्रियरत्न १॥)

धार्मिक साहित्य

सन्ध्या रहस्य श्री विश्वनाथ २)
धर्मोपदेश १, २, ३ भाग स्वा० श्रद्धानन्द १।), १), १॥)
आत्ममीमांसा श्री नन्दलाल २)
प्रार्थनावली ।)
आर्यसमाज और विचार संसार श्री चमूपति ।)
कविता मंजरी ।-)
कविता कुसुमाञ्जली ।)

स्वास्थ्य सम्बन्धी पुस्तकें

आहार [भोजन की पूर्ण जानकारी के लिए] ५)
लहसुन : प्याज श्री रामेश बेदी २॥)
शहद [शहद की पूरी जानकारी के लिए] ,, ३)
तुलसी [दूसरा परिवर्धित संस्करण] ,, २)
सोंठ [तीसरा परिवर्धित संस्करण] ,, १॥)
देहाती इलाज [दूसरा संस्करण] ,, १)
मिर्च [काली, सफेद और लाल] ,, १)
स्तूप निर्माणकला, सचित्र, सजिल्द ३)
प्रमेह, श्वास, अर्शरोग १।)
जल चिकित्सा श्री देवराज १॥)

ऐतिहासिक ग्रन्थ

भारतवर्ष का इतिहास, तीन भाग श्री रामदेव ७)
बृहत्तर भारत [सचित्र] सजिल्द, अजिल्द ७), ६)
अपने देश की कथा [द्वि० संस्क०] सत्यकेतु १।≈)
योगेश्वर कृष्ण श्री चमूपति ४)
ऋषि दयानन्द का पत्र व्यवहार ॥)
हैदराबाद आर्य सत्याग्रह के अनुभव ॥)
महावीर गैरीबाल्डी श्री इन्द्र १।)

संस्कृत साहित्य

बालनीति कथामाला [तीसरा संस्करण] १)
नीतिशतक [संशोधित] =)
साहित्य-दर्पण [संशोधित] २)
संस्कृत प्रवेशिका, प्र० भाग [चौथा संस्क०] ॥≈)
,, ,, २ भाग [तीसरा संस्करण] ॥=)
अष्टाध्यायी, सटीक, पूर्वार्द्ध श्री गङ्गादत्त ७)
रघुवंश संशोधित [तीन सर्ग] ।)
साहित्य-सुधासंग्रह १, २, ३ बिन्दु १।), १।), १।)
संस्कृत साहित्य पाठावली =)

शालोपयोगी

विज्ञान प्रवेशिका २ य भाग श्री यज्ञदत्त १।)
गुणात्मक विश्लेषण [बी. एस. सी. के लिए] २॥)
भाषा प्रवेशिका [वर्धा योजनानुसार] ॥))
आर्यभाषा पाठावली [आठवां संस्करण] १।)
ए गाइड टु दी स्टडी ऑफ संस्कृत ट्रांसलेशन एण्ड कम्पोजीशन, दूसरा संस्क०, ३३६ पृष्ठ १।)

पता—प्रकाशन मन्दिर, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

आश्विन २००६

ॐ

गुरुकुल-पत्रिका

[गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की मासिक पत्रिका]

हमारे आध्यात्मिक विकास की मर्यादा

श्री अरविन्द

आत्मा, अन्तरात्मा और पुनर्जन्म

विकसनशील अन्तरात्मा (चैत्य पुरुष) और ...द आत्मा का भेद साफ साफ समझ लेना आव- ...है। ...द आत्मा, जन्मात्मा है, जन्म-मरण में

...सब वह एक पर्दे के पीछे से ही करता है और करणात्मक सत्ता की अपूर्णता इसे जहां तक अनुमति देती है वहां तक ही यह अपने दिव्य स्वरूप के यत्किंचित् अंश को प्रकट करता है। परन्तु एक समय आता है ...

विद्ययाऽमृतमश्नुते।

राष्ट्रीय गुरुकुल विश्वविद्यालय

आश्विन
२००७

वर्ष ३
अङ्क २

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय-हरिद्वार

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

स्वाध्याय के लिए चुनी हुई पुस्तकें

वैदिक साहित्य

वैदिक ब्रह्मचर्य-गीत	श्री अभय	२)
वैदिक विनय १, २, ३ भाग	,,	२।), २।), २।)
ब्राह्मण की गौ	,,	।।।)
वैदिक अध्यात्मविद्या	श्री भगवद्दत्त	१।)
वैदिक स्वप्न विज्ञान	,,	२)
वेदगीताञ्जली [वैदिक गीतियां]	श्री वेदव्रत	२)
वैदिक सूक्तियां	श्री रामनाथ	१।।।)
वरुण की नौका [दो भाग]	श्री प्रियव्रत	६)
सोम-सरोवर, सजिल्द, अजिल्द	श्री चमूपति	२), १।।)
अथर्ववेदीय मन्त्र-विद्या	श्री प्रियरत्न	१।।)

धार्मिक साहित्य

[illegible]	[illegible] विश्वनाथ	२)
प्रमेह, श्वास, अर्शरोग		१।)
जल चिकित्सा	श्री देवराज	१।।)

ऐतिहासिक ग्रन्थ

भारतवर्ष का इतिहास, तीन भाग	श्री रामदेव	७)
बृहत्तर भारत [सचित्र] सजिल्द, अजिल्द		७), ६)
अपने देश की कथा [द्वि० संस्क०]	सत्यकेतु	१।=)
योगेश्वर कृष्ण	श्री चमूपति	४)
ऋषिदयानन्द का पत्र व्यवहार		।।।)
हैदराबाद आर्य सत्याग्रह के अनुभव		।।)
महावीर गेरीबाल्डी	श्री इन्द्र	१।)

संस्कृत साहित्य

बालनीति कथामाला [तीसरा संस्करण] [illegible]

आश्विन २०१६

ॐ

गुरुकुल-पत्रिका

[गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की मासिक पत्रिका]

हमारे आध्यात्मिक विकास की मर्यादा

श्री अरविन्द

आत्मा, अन्तरात्मा और पुनर्जन्म

विकसनशील अन्तरात्मा (चैत्य पुरुष) और शुद्ध आत्मा का भेद साफ साफ समझ लेना आवश्यक है। शुद्ध आत्मा जन्मात्मा है, जन्म-मरण में से नहीं गुजरती, जन्म वा देह, मन या प्राण या इस व्यक्त विश्वप्रकृति से स्वतन्त्र है। यद्यपि यह इन चीजों को ग्रहण और धारण करती है तथापि यह इन से बद्ध, सीमित और प्रभावित नहीं होती। इस के विपरीत अन्तरात्मा एक ऐसी चीज है जो जन्म के अन्दर उतरती और मृत्यु में से गुजरती है— चाहे यह स्वयं मरती नहीं, क्योंकि यह अमर है— और इस प्रकार यह एक अवस्था से दूसरी में, पृथ्वीलोक से दूसरे लोकों में जाती है और फिर वापिस पृथ्वीजीवन में आती है। इस गति से यह एक प्रकार के क्रमविकास द्वारा एक जीवन से दूसरे जीवन में यात्रा करती रहती है। वह क्रमविकास इसे मानव तक पहुँचाता है और इस सब प्रक्रिया में से इस की एक विशेष सत्ता को विकसित करता है जिसे हम चैत्य पुरुष कहते हैं। यह चैत्य पुरुष विकास को धारण करता तथा अपने जगत्-अनुभवों के और प्रच्छन्न, अपूर्ण पर वर्द्धमान आत्म-अभिव्यक्ति के करणों के रूप में शारीरिक, प्राणिक, मानसिक मानवीय चेतना विकास करता है। यह सब वह एक पर्दे के पीछे से ही करता है और करणात्मक सत्ता की अपूर्णता इसे जहां तक अनुमति देती है वहां तक ही यह अपने दिव्य स्वरूप के यत्किंचित् अंश को प्रकट करता है। परन्तु एक समय आता है जब कि यह पर्दे के पीछे से बाहर निकल आने की तैयारी करने, नेतृत्व ग्रहण करने और सम्पूर्ण करणात्मक प्रकृति को दिव्य चरितार्थता की ओर फेर देने में समर्थ होता है। यह सच्चे आध्यात्मिक जीवन का आरम्भ होता है। अन्तरात्मा अब व्यक्त चेतना के उच्चतर विकास के लिए, मनोमय मानवीय चेतना से अधिक ऊंची चेतना के विकास के लिए अपने को तैयार करने में समर्थ होती है— यह मानसिक चेतना से आध्यात्मिक में प्रवेश कर सकती है, और आध्यात्मिक के स्तरों में से अतिमानसिक अवस्था में पहुँच सकती है। तब कोई कारण नहीं कि क्यों यह जन्म लेना बन्द कर दे, वास्तव में यह ऐसा कर ही नहीं सकती। यदि आध्यात्मिक अवस्था में पहुँच कर यह पार्थिव अभिव्यक्ति से बाहर निकल जाना चाहे तो अवश्य ही यह ऐसा कर सकती है— परन्तु एक इससे भी ऊंची अभिव्यक्ति सम्भव है जो अज्ञान में न होकर ज्ञान में हो।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

इसलिए तुम्हारा प्रश्न पैदा नहीं होता। शुद्ध नग्न आत्मा नहीं बल्कि चैत्य पुरुष ही चैत्य लोक में विश्राम के लिए आता है और वहां वह तब तक रहता है जब तक उसे दूसरे जीवन के लिए पुनः आह्वान नहीं होता। अतएव ऐसी किसी शक्ति की जरूरत ही नहीं जो इसे नया जन्म ग्रहण करने के लिए बाध्य करे। यह अपने स्वभाव से ही एक ऐसी चीज है जो विकास को धारण करने के लिए भगवान् से प्रकट की गई है और इसे ऐसा तब तक करना ही होगा जब तक इसके विकास में भगवान् का प्रयोजन सिद्ध न हो जाय। कर्म तो मशीनमात्र है, यह पार्थिव जीवन का मूल कारण नहीं— यह हो भी नहीं सकता, क्योंकि अन्तरात्मा जब इस सत्ता में पहले पहल प्रविष्ट हुई तब इसका कोई कर्म था ही नहीं।

और फिर "सर्व-आवरक माया" से या "समस्त चेतना को खो देने" से तुम्हारा क्या आशय है? अन्तरात्मा सम्पूर्ण चेतना को खो नहीं सकती, क्योंकि चेतना तो इसका साक्षात् स्वभाव ही है, पर वह मानसिक प्रकार की चेतना नहीं जिसे हम इस नाम से पुकारते हैं। चेतना जड़ प्रकृति की तथाकथित निश्चेतना से और फिर मन-प्राण-शरीर के अर्ध-चेतन अज्ञान से केवल आच्छादित ही होती है, लुप्त या नष्ट नहीं होती। जैसे-जैसे व्यक्तिगत मन, प्राण और शरीर विकसित होते हैं वैसे-वैसे यह उस चेतना को यावत्सम्भव प्रकट करती है जिसे कि यह बीज-रूप में धारण किए हैं, यह उसे बाह्यकरणात्मक प्रकृति में भी वहां तक तथा उस प्रकार से व्यक्त करती है जहां तक तथा जिस प्रकार से इन करणों द्वारा और बाह्य व्यक्तित्व द्वारा सम्भव है जो व्यक्तित्व इसके लिए तथा इसके द्वारा— क्योंकि ये दोनों ही बातें ठीक हैं— वर्तमान जीवन के लिए तैयार किया गया है।

मुझे इस विषय में कुछ मालूम नहीं कि पुनर्जन्म की प्रक्रया में आत्मा को किसी प्रकार का दारुण दुःख भोगना पड़ता है; प्रचलित विश्वास एवं धारणाएं, चाहे जब उन का कुछ आधार होता भी है तब भी, कदाचित् ही ज्ञानयुक्त और ठक होती हैं।

जन्म-जन्मांतर और आध्यात्मिक अनुभव

संसार में प्रत्येक मनुष्य अपने निजी भाग्य की दिशा का अनुसरण करता है; यह दिशा उसकी अपनी प्रकृति तथा कर्मों से निर्धारित होती है— किसी विशेष जीवन में जो कुछ घटित होता है उसे जब तक अनेक जन्मों के सम्पूर्ण क्रमविकास के प्रकाश में न देखा जाय तब तक उसका आशय और प्रयोजन समझ में नहीं आ सकता। परन्तु जो लोग साधारण मन और भावों से ऊपर उठ कर वस्तुओं को समग्र रूप में देखने में समर्थ होते हैं वे यह जान सकते हैं कि भूल-चूक, दुर्भाग्य और संकट भी यात्रा के सोपान हैं,— अन्तरात्मा जब इनमें से गुजर कर इन्हें पार करती है तो वह अनुभव संग्रह करती जाती है जिससे कि अन्त में वह उस परली अवस्था में पहुँचने के लिए परिपक्व हो जाती है जो इसे इन चीजों से पार कराके उच्चतर चेतना तथा उच्चतर जीवन में ले जायगी। जब मनुष्य इस पार कराने वाली सीमारेखा पर पहुँचता है तो, उसे पुराना मन और भाव-भावनाएं अपने पीछे छोड़ देनी होती हैं। तब वह साधारण जगत् के सुख-दुःख में फंसे हुए लोगों को सहानुभूति की दृष्टि से और यथासम्भव आध्यात्मिक अनुग्रह के भाव से देखता है किन्तु पहले की तरह आसक्तिपूर्वक नहीं। वह जान जाता है कि विश्वशक्ति उन्हें उनके सभी स्खलनों के बीच में भी मार्ग दिखा रही है।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

हे अग्निदेव! तुम दूत बनो

श्री भगवद्दत्त वेदालङ्कार

अग्नि या विद्युत् की सहायता से प्रकृति के अन्दर नये २ अन्वेषण किए जाते हैं। परन्तु आध्यात्मिक क्षेत्र में प्रवेश करने वालों को भी पहले अग्नि की ही स्तुति करनी पड़ती है। यह अग्नि आन्तरिक अग्नि है, इस के खूब प्रज्वलित होने से ही आध्यात्मिक क्षेत्र में नये २ अतिथि आते हैं। इसी दृष्टि से ऋग्वेद में मेधातिथि या मेधातिथि सूक्तों में सब से प्रथम अग्नि को आह्वान किया गया है।

अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम्।
अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम्॥
ऋ. १।१२।१

(होतारम्) सब देवों का आह्वान करने वाले (विश्ववेदसम्) विश्व का ज्ञान देने या विश्व को प्राप्त कराने वाले और (अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम्) इस आध्यात्मिक यज्ञ को उत्तम रूप से करने वाले (अग्निं) अग्नि को हम (दूतं वृणीमहे) दूत रूप में वरते हैं।

अग्नि देवों का दूत है। यह भक्त पुरुष व देवों के मध्य दूत का कार्य करता है। सूक्त में यह संकेत किया गया है कि भक्त मेधातिथि देवों व दिव्यशक्तियों को अपने पास बुलाने के लिए निमन्त्रण भेजना चाहता है। इस कार्य के लिए वह अग्नि को अपना दूत बनाता है। इसका तात्पर्य यह है कि मनुष्य जिस सिद्धि व उद्देश्य की प्राप्ति के लिए अपने अन्दर अग्नि को प्रज्वलित करता है, उस अग्नि के सहारे से वह अपने उद्देश्य व साधना में सफल होता है। अग्नि के अन्दर महती शक्ति है। इस सम्पूर्ण विश्व में कोई भी ऐसा पदार्थ व शक्ति नहीं जो कि अग्नि द्वारा न प्राप्त की जा सके।

इस लिए मन्त्र में कहा है कि हे देवदूत! तुम कहां छिपे हो? उरके किस अन्तस्तल में सो रहे हो, उठो, होओ जागृत, मैं भक्त मेधातिथि अपने अतिथि-यज्ञ को प्रारम्भ करना चाहता हूँ, तुम होता बनो; होता बन कर सब देवों का आह्वान करो!

मैं यह अच्छी प्रकार जानता हुँ कि विश्व में कोई भी ऐसी वस्तु नहीं और न कोई ऐसा स्थान है जहां तुम न पहुँच सको। इस लिए सम्पूर्ण विश्व का ज्ञान व उसकी प्राप्ति तुम ही करा सकते हो। (विश्ववेदसम्)। मैंने बहुत खोजा। सर्वत्र दृष्टि डाली! पर तुम्हारे सिवाय कोई ऐसा न दीखा जो मेरे मनोरथों को पूर्ण कर सके। मेरे रचे यज्ञ को भली प्रकार पूरा कर सके।

वरता हूँ दूत अग्नि को मैं
आजा तू ए मेरे प्यारे।
न्यौता देते तुम देवों में
आते जाते सब लोकों में!
'होता' तुम को इन वेदों में
है बखाना सब यागों में!!

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

स्वतन्त्र भारत में शिक्षा का महत्व

श्री ज्ञानचन्द्र

मातृमान् पितृमान् आचार्यमान् पुरुषो वेद। माताओ! आप का कर्त्तव्य है कि अपनी गोद में खेलने वाले बच्चों को मीठी-मीठी लोरियों में वीर धीर बनाओ जो कि जवान होकर राष्ट्र का भार अपने कन्धों पर उठा सकें। प्रत्येक पिता का कर्त्तव्य है कि वह अपने बच्चों को सन्मार्ग पर डालने का उपाय करे। पाठशाला शिक्षा और चरित्र निर्माण का मुख्य केन्द्र है। इस लिए आवश्यकता इस बात की है कि हम राष्ट्र निर्माण की जो भी योजना बनाएं उस में सर्वप्रथम स्थान शिक्षा को दें। अन्य देशों के उदाहरण हमारे सामने हैं। हिटलर जब जर्मनी का भाग्य विधाता बना तो उस ने तुरन्त ही अपने देश में प्रचलित शिक्षा के ढांचे को उखाड़ कर फैंक दिया और अपने आदर्श को स्वदेश के बच्चों के हृदयों में अङ्कित करने के लिए उस के अनुकूल शिक्षा का पाठ्यक्रम जारी किया। रूस को देखिए। ज्यों ही साम्यवादियों ने वहां राज्य की बागडोर अपने हाथ में सम्भाली त्यों ही उन्होंने अपने राष्ट्र को सबल बनाने के लिए एक योजना तैयार की जिस में मुख्य स्थान जाति की शिक्षा को दिया गया। इस का फल यह हुआ कि ५ वर्ष के अल्प समय में उन्होंने निरक्षरता को रूस से देश निकाला दे दिया। वैज्ञानिक अन्वेषण के क्षेत्र में भी रूस ने वह उन्नति की है कि जिस ने अमेरिका तथा इङ्गलैंड आदि का माथा ठनका दिया है। अपने बच्चों के हृदयों में साम्यवादी विचारधारा अङ्कित करने के लिए उस के अनुसार पाठ्यक्रम तैयार किया गया। साम्यवादी दर्शन का मूल विचार प्रतिद्वन्द है। अर्थात् साम्यवादी लोग ऐसा मानते हैं कि मनुष्य जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में विरोधी भावनाओं का द्वन्द चल रहा है—मनुष्य समाज में अमीर और गरीब का, शासक और शासित का, पूंजीपति और श्रमी का, इत्यादि। प्रकृति में भी यह द्वन्द चल रहा है अणु, परमाणु इसी द्वन्द में लगे हुए हैं। इस द्वन्द में जो विजयी होता है वह सफल हो कर अपना जीवन चलाता है। अन्य सब नष्ट हो जाते हैं।

हमारे देश में भी राष्ट्रनिर्माण के लिए योजना बनाई जा रही है। हमें आशा करनी चाहिए कि इस में जहां देश की आर्थिक दशा को उन्नत करने के उपाय प्रस्तुत किए जाते हैं। वहां जाति के बच्चों की शिक्षा और चरित्र निर्माण को सर्वप्रथम स्थान दिया जाना चाहिए। इस दिशा में प्रथम पग यह है कि हम निश्चित रूप से घोषणा करें कि हम मनुष्य जीवन का आदर्श क्या मानते हैं। आज हमारे देश में अपनी प्राचीन संस्कृति के पुनर्जीवित करने की बहुत चर्चा है। हमारी सरकार भी इसे अपना ध्येय मानती है। हमारी प्राचीन संस्कृति विश्वतारा है। सारे संसार का कल्याण चाहने वाली है। प्राणी मात्र का हित करने वाली है। "वसुधैव कटुम्बकं"। सारी पृथिवी हमारा ही कटुम्ब है। इस संस्कृति के अनुसार मनुष्य जीवन का आदर्श है "आयुर्वैयशं"। अर्थात् मनुष्यों को प्रत्येक के हित का त्याग करके सर्वहित के लिए सुसंगठित होकर दिव्य गुणों का प्राणी मात्र में प्रसार करना मनुष्य जीवन का लक्ष्य होना चाहिये। अपनी प्राचीन संस्कृति के इस महान् उदार लक्ष्य को सामने रख कर ही भारत अपना और संसार का कल्याण कर सकता है। यही उद्देश्य

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

हमारी जाति के बच्चों की शिक्षा का मूलाधार होना चाहिए। इसी के अनुसार शिक्षा का पाठ्यक्रम बनाना चाहिए। इसी के अनुसार हमें अपने शिक्षणालयों का सारा वातावरण बनाना चाहिए। प्राचीन शिक्षा पद्धति में जो गुरु और शिष्य का सम्बन्ध होता था उसे जाग्रत करना चाहिए। जाति के बच्चों की सर्वतोमुखी उन्नति अर्थात् शारीरिक, मानसिक, तथा आध्यात्मिक उन्नति के लिए यत्नशील होना चाहिए। जाति के सब बच्चों को शिक्षा का समान अवसर देना चाहिए। यथासम्भव शिक्षा निःशुल्क होनी चाहिए। वैज्ञानिक अन्वेषण का विस्तार करना चाहिए। विद्यार्थियों के लिए ब्रह्मचर्य और संयम का जीवन बिताना अनिवार्य होना चाहिए। ये हैं हमारी प्राचीन शिक्षा पद्धति के सर्वसम्मत सिद्धान्त। इन्हीं का समावेश हमारी राष्ट्रीय शिक्षा योजना के अन्दर होना चाहिए। तभी हम मनुष्य जीवन के महान् आदर्श को पूर्ण कर सकेंगे। तभी हम अपने राष्ट्र के निर्माण के लिए चरित्रवान् मनुष्य पैदा कर सकेंगे। तभी हम प्राणी मात्र की हित साधना में सहायक हो सकेंगे। [गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की स्वर्णजयन्ती पर दिए गए भाषण का अंश।]

भाग्यशाली भविष्य की कामना

ग्योटिन्गन विश्वविद्यालय के रेक्टर और सीनेट को बहुत हर्ष है कि आपका गुरुकुल विश्वविद्यालय अपनी स्वर्णजयन्ती मनाने जा रहा है। यह हमें भली प्रकार ज्ञात है कि आप किस प्रेम और सफलता के साथ प्राचीन विज्ञानों और सम्माननीय परिपाटियों (Traditions) के अध्ययन में व्यस्त हैं और उस के द्वारा अपने देश और वर्तमान काल को उन्नत करना चाहते हैं। हम आप के इन प्रयासों में पूर्ण सफलता की और गुरुकुल के लिए भाग्यशाली भविष्य की कामना करते हैं।

—रेक्टर,
गेओर्ग = आउगुस्ट युनिवर्सिटी,
ग्योटिन्गन, विल्हेल्मप्लात्ज़।

प्राचीन गौरव का पुनरुद्धार

मैं गुरुकुल विश्वविद्यालय के बारे में अपने बाल्यकाल से ही बहुत कुछ सुन रहा था। स्वभावतः इस के देखने की मुझे प्रबल इच्छा उत्पन्न हुई। आज सौभाग्य से मेरी इच्छापूर्ति हो गई। क्या ही अच्छा होता कि मैंने भी इसी संस्था में शिक्षा पाई होती। ऐसी ही संस्थाएं हमारे प्राचीन गौरव का पुनरुद्धार कर सकती हैं। मैं इस संस्था की सफलता के लिए हार्दिक मंगलकामना करता हूँ।

एम. एस. अस्थाना
एसिस्टैंट रजिस्ट्रार, कोआपरेटिव सोसाइटी,
उत्तर प्रदेश।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

कथं लोकाः निरामयाः

श्री विद्यानन्द उपाध्याय

पर्वतराज हिमालय की तराई में प्रत्येक वर्ष भारतीय आयुर्वेद मण्डल लोकहित की भावना से अभिभूत होकर संसार के अधिवासियों को आत्म-सन्देश सुनाता है— 'किं करोमि, क्व गच्छामि, कथं लोकाः निरामयाः' । इस मण्डली में गुफाओं के ऋषि-मुनि, साधु-संन्यासी, पण्डित-ज्ञानी तथा अन्य विद्वान् एकत्रित होते हैं और अपने पवित्र विचारों से लोगों को लाभान्वित करते हैं।

किं करोमि = क्या करूं, क्व गच्छामि = कहां जाऊं; कथं लोकाः निरामयाः = संसार के इन दुःख-संतप्त, शोकार्त्त-प्राणियों को हम कैसे सुखी करें । अहा ! इन ऋषि मुनियों के कैसे विचार हैं ।

भारत की धूल-धूल में भारतीयता उपलब्ध है। भारतीय संस्कृति मानवता की संस्कृति है और भारतीय विचार मानवता के विचार हैं। हमारे ऋषि-मुनियों ने जीवन को स्वाभाविक रूप से रहने दिया । इनका वातावरण इतना शान्त था, इतना प्रकाशमय था कि अशान्ति का उद्देश्य इन में आ ही न सका। जो आत्मा की पहचान कर लेता है, उसकी समस्त स्वार्थ भावनाएं दब जाती हैं और वह लोकहित भावना को ही प्रश्रय देता चला जाता है। जब हम किसी व्यक्ति से सत्याचरण का व्यवहार करते हैं तो हमारी हृदय-रूपी कली खिल उठती है और ज्यों ही असत्याचरण का व्यवहार करते हैं तो वही कली कुछ सिकुड़ सी जाती है। आत्मा का पतन ही उस व्यक्ति का पतन है । फलतः वह शनैः शनैः सकुचित विचार का हो जाता है लेकिन जो आत्म-स्वरूप को पहचानता हुआ उसकी स्वभाविक गति पर ध्यान देता है, हमारी दृष्टि में उसका अहर्निश विकास होता जाता है हम ज्यों-ज्यों आत्मा के संनिकट पहुँचते हैं त्यों-त्यों हमारी स्वार्थलिप्सा नष्ट होती जाती है और परमार्थ की लिप्सा बढ़ती जाती है। जब मनुष्य में परमार्थ के विचार आते हैं तो उसे किए बिना वह अपना पतन समझता है। मनुष्य अपने भाग्य का विधाता आप ही है और आत्मस्वरूप को नष्ट कर अपना विघटन करने वाला आप ही है ।

आज संसार में जो स्वार्थ की इतनी लिप्सा बढ़ गई है- यह क्यों ? क्यों हम विद्वान्, धनवान्, बलवान् तथा वैज्ञानिक होकर भी लोगों को कल्याण मार्ग नहीं दिखा पाते ? और स्वयं भी भूल से जाते हैं। कारण स्पष्ट है। हमारी आत्मा का इतना पतन हो गया है कि हम उस वातावरण में रह कर उससे लाभ नहीं उठा सकते और न दूसरों को भी लाभ उठाने का परमर्श दे सकते हैं। आज एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को हड़पना चाह रहा है। वह चाहता है, हम अधिक सुखी रहें, हमारा राष्ट्र सुखी सम्पन्न रहे। भले ही इसके लिये अन्य राष्ट्रों की तबाही ही क्यों न हो ! जहां एक ओर हम सुव्यवस्था से राष्ट्र के चन्द नागरिकों को सुखमय बनाते हैं वहां दूसरी ओर बहुसंख्यक प्राणियों का विनाश कर उनका पशुवत् संहार कर सर्वदा के लिये हम उन्हें शत्रु समझ लेते हैं। यह कार्य ऐसा ही है कि इधर पाप किया और उधर पुण्य भी खरीद लिया। पर पुण्य का फल ? पुण्य को प्राप्त कर मनुष्य जिस सुख शन्ति का आश्रय लेता है, वह पूर्ण रूप से उसमें कहां विकसित हो पाया ? यदि हम आत्मा के सच्चे स्वरूप को समझ जाते तो निश्चयेन परसंहार की भावना भी नष्ट हो जाती। हम देखते हैं कि जो राष्ट्र दूसरे राष्ट्र की दृष्टि में अति सम्मानित था तथा जो व्यक्ति दूसरे व्यक्ति की दृष्टि में अपने सत्याचरण से उसके हृदय में अपना

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

निवास बनाये था, किसी दूसरे क्षण जब कि उसका स्वार्थ जाता रहता है तब वह उसका हितैषी नहीं रहता बल्कि उसका प्रबल शत्रु हो जाता है। तब हममें स्थिर बुद्धि से उत्पन्न जो लोकहित साधना थी वह कहां विलुप्त हो गई? दूसरे के प्रति जो हमारे आदरणीय भाव थे, वे कहां चले गये? कहना यही होगा। आज की लोकहित भावना का आधार आत्म-प्रशंसा, एवं आत्म संगठन है। आत्म-प्रशंसा से तात्पर्य है कि हमारी आत्मा को जो प्रिय लगे। हमारे जो विचार हैं, उनसे वह सहमत हो। वे विचार चाहे कल्याणात्मक हों अथवा अकल्याणात्मक। यदि हम इसी को आत्मा की पुकार, आत्मा की आवाज, आत्म-चिंतन और आत्म-सुख मान लें, तो यह हमारी भूल होगी। और, इसी भूल के कारण ही हम सब कुछ उन्नति करते हुये भी पँगु हैं। साधन हीन हैं। यद्यपि आज का युग बुद्धिवाद का है, वैज्ञानिक प्रगति का है, फिर भी उसमें सच्चे लोकहित साधना की कमी है। इसलिये तो हम अशान्त हैं, हमारा वातावरण अशान्त है और इसी से यह दुनिया भी हमें अशान्त-सी दीखती है।

प्रगति का अर्थ यह नहीं कि हम उल्टे सीधे, अन्ध धुन्ध तथा जोश में आकर किसी ओर चल पड़ें। प्रगति तो वह है कि नाना प्रकार की कठिनाइयों में भी अपने उदात्त विचारों को न छोड़ना। हमारे ऋषियों ने जीवन का एक लक्ष्य बनाया। उसे पाने में भले ही उन्हें नाना प्रकार की कठिनाइयां झेलनी पड़ी हों, प्राप्त हुई अमूल्य से अमूल्य सम्पत्ति त्याग देनी पड़ी हो तो उन्होंने सहर्ष त्यागा। क्योंकि उसके सच्चे स्वरूप को जानते ही मनुष्य उसका मूल्यांकन करने लगता है। उदाहरण के लिये सारा भारतीय इतिहास भरा पड़ा है। नचिकेता को ही लीजिये। यमाचार्य ने नचिकेता को कितने प्रलोभन दिये। अपनी इच्छा से मरना, बहुत सी सुन्दर अंगों वाली अप्सराओं के साथ केलि, लाखों गाय बैल, लाखों बीघे जमीन, अगणित नाती पोते तथा संसार के अन्य शारीरिक सुख आदि। लेकिन क्या नचिकेता के हृदय में आत्म-तत्त्व की बात के आजाने के और कोई विचार घर कर गये? क्या उस प्रलोभन में आकर उसने अपने विचार बेच दिये? नहीं बेचे क्योंकि वह जानता था। ये सांसारिक विषय-भोग एक दिन तो दुःखदायी होंगे। फिर भी मुझे आवागमन के चक्कर में आना होगा और उस समय ये सारी वस्तुएं व्यर्थ साबित होंगी। सांसारिक सुख क्षणिक हैं लेकिन ब्रह्मानन्द का आनन्द तो सर्वदा के लिये प्रकाशपूर्ण है और है वह स्थाई।

आज हमारे विचार बिके हुये हैं। जिन बातों के कल हम विरोधी थे, आज समर्थक बन बैठे हैं। कल जिसके शत्रु थे, आज अपने स्वार्थ के कारण उसके मित्र बने हैं। जो कल हमारे मित्र थे, आज मुझसे अलग हैं। ऐसी दशा में क्या हम लोकहित साधना कर सकते हैं?

पर जिनमें सच्ची आत्मा की पुकार है, सच्चे कल्याण की भावना है, वे अपने विचारों से कदापि दूर नहीं हो सकते। क्योंकि उन्होंने सत्य का रूप देख लिया है। आइये, एक उदाहरण से हम इसे अच्छी तरह समझ सकेंगे—

एक साधू था। नदी में नहा रहा था। एक बिच्छू उतराता हुआ उसके पास जा लगा साधू के दिल में दया आ गयी। प्राणीमात्र की सेवा करना उसका परम धर्म है। और वह भी अहिंसापूर्वक। वह बिच्छू को उठा लेता है। कपट स्वभाव के कारण बिच्छू उसे काट खाता है। वह दहलाने लगता है। साधू फिर भी उसे उठा लेता है। बिच्छू फिर भी उसे काटता है। साधू फिर भी उसे उठा लेता है। तट से किसी ने कहा—साधू जी, आपने इस बिच्छू

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

को क्यों पकड़ रखा है। यह तो तुम्हें काट खाता है। साधू ने बड़ा सुन्दर उत्तर दिया--बिच्छू जब अपने स्वाभाविक गुण को नहीं छोड़ता तो मैं साधू होकर भी अपने स्वाभाविक गुण को क्यों छोड़ूँ। कैसी साधना है! तपश्चर्या के द्वारा उद्भूत कैसी स्थिर प्रज्ञता है और कैसी प्राणी मात्र की सेवा की सच्ची लगन है? यह एक आश्चर्य का ही विषय है। वह साधू अवश्यमेव पूजनीय है, आदरणीय है।

आज की भाषा में हम उस साधू को मूर्ख कह सकते हैं। कह सकते हैं कि वह साधू बेवकूफ था कि जिसने एक बिच्छू के लिये अपने प्राण संकट में डाल दिये। पर साधू के लिये वह एक प्रयोग का अवसर था, उसकी कठिन परीक्षा थी।

महाराज दिलीप अपनी पत्नी सुदक्षिणा को अपने गुरू वशिष्ठ के यहां रखकर स्वयं सुरभी की पुत्री नन्दिनी की सेवा के लिये बन में जाते हैं। कुम्भोदर नामक सिंह ने गौ पर आक्रमण कर दिया। इधर राजा पर्वतीय प्रदेश की शोभा देखने में मग्न थे। गौ के उत्क्रोश से राजा का ध्यान इधर आ गया। बाण के लिये जो कन्धे पर हाथ डाला वह वहीं पर पड़ा रह गया। अन्त में दिलीप प्रार्थना करते हैं कि हे मित्र कुम्भोदर, तुम इस गाय को छोड़ दो। यह गुरुदेव की है। इसके बदले में तुम मुझे खा लो। कुम्भोदर कहता है--भाई, तुम राजा हो, तुम्हारे पास घड़ों को भर देने वाली असंख्य गायें होंगी। तुम उनसे अपने गुरुदेव को संतुष्ट कर देना। एक गाय के लिये तुम नाहक अपने प्राणों की आहुति क्यों दे रहे हो? यदि तुम जीते रहोगे तो असंख्य गायों की रक्षा कर सकते हो। पर दिलीप जी कहते हैं—"भद्र, क्षत्रियों का धर्म है, असहायों की सहायता करना, रक्षा करना और यह गाय तो स्वयं गुरुदेव की है। अन्त में राजा अपना शरीर सिंह के आगे डाल देता है। अब आप कहिये, आज की भाषा में तो हम उन्हें मूर्ख कह सकते हैं? लेकिन नहीं दिलीप ने साधना की थी क्षात्रधर्म की, उनके बाण दु:खियों की रक्षा में निकलते थे, उनके प्राण प्रजा की सेवा में ही निहित थे और अत्याचारियों के विरुद्ध ही उनकी तलवारें चमचमाती थीं। स्वार्थ के लिये तो दिलीप ने नन्दिनी के आदेश पर भी, पहले दुग्धपान नहीं किया। यज्ञादि अनुष्ठान के बाद जो दुग्धादि शेष रह गया, वही दिलीप ने पान किया। क्योंकि राजा को अब तक भी ख्याल था कि राजा प्रजा की भलाई के लिये प्रजा का छठा हिस्सा लेता है।

सबसे पहले हमें विचारों की स्थिरता प्राप्त करनी होगी। बिना विचार के स्थिर हुये हमारे सारे उद्देश्य अधूरे रह जायेंगे। यह बड़े आश्चर्य का विषय है कि हम सत्य का दर्शन कर भी उसे असत्य मान बैठते हैं। और असत्य को सत्य। चण्डाशोक ने जब प्राणी संहार का भीषण दारुण रूप देखा तब उससे उसका जी हट गया और प्राणी की सेवा में जो लग गया लगा ही रह गया। चिंउटियों के भी अस्पताल बनाये। बाद में उसने अपने सिद्धान्त बदले नहीं यद्यपि धर्म राज्य की उन्नति के साथ ही साथ उसका राजनैतिक साम्राज्य दिन प्रतिदिन ह्रास होता चला जा रहा था। आज वह चण्डाशोक से धर्माशोक था।

ऋषियों ने लोक कल्याण की जो पतित पावनी गङ्गा प्रवाहित की वह आज तक सूख न पाई, उसमें विकार नहीं आये। क्यों? क्योंकि "सुचिन्त्य चोक्तं सुविचार्यंयत्कृत सुदीर्घकालापि न याति विक्रिया...."

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

सन् १९३० के कुल-भूमि के संस्मरण

श्री वीरेन्द्र विद्यावाचस्पति, एम. ए.

[गताङ्क का शेष]

ए. पी. आई. का समाचार भारत के सब समाचार पत्रों में छपा। रुड़की में लाठी चार्ज। कचहरी पर पिकेटिंग करने के सिलसिले में गिरफ्तारियां और सरकार का दमन। यह भारतवर्ष में उस समय पहला लाठी चार्ज था और पहला पिकेटिंग था। अभी कांग्रेस वर्किंग कमेटी कचहरी पर पिकेटिंग का फैसला न कर पाई थी कि हमारे कल्पनाशील विद्यार्थियों ने श्री रामेश्वर जी के नेतृत्व में इस कार्य का फैसला कर ही लिया। सब वकीलों
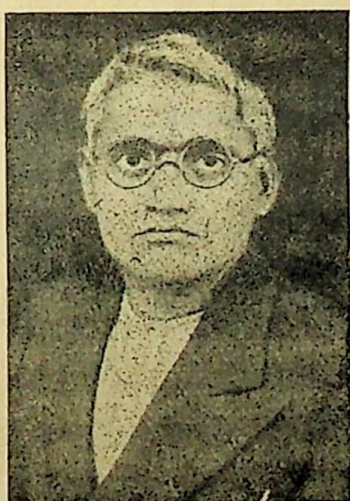
[श्री रामेश्वर जी सिद्धान्तालङ्कार]

और मुख्तारों को सूचना दे दी गई कि अब कचहरी में कोई न जाय। जनता के आपसी झगड़ों को कांग्रेस के दफ्तर में मिटाया जाय। गंगा की नहर के पुल को पार कर कचहरी जाना पड़ता था। वहां हमारे स्वयं सेवक खड़े हो जाते और वकीलों को जाने से मना करते। वकील लोग उस आग्रह को टाल न पाते या यह सोच कर कि दो एक दिन देखा जाय, वापिस हो जाते। दो एक वकील फिर भी सरकार का बहाना करके न रुके। एक के घर पर तो ऐसा पिकेटिंग हुआ कि अब उसे स्मरण कर लगता है कि आदमी जोश में कहां तक आगे बढ़ जाता है। अगले दिन पुल पर पूरा स्वयसेवकों का जत्था खड़ा हो गया और एक तरह से बिना उस जत्थे को पार किए कोई न जा पाता। नेशनल ऐम्पोरियम सम्भवतः यही नाम था या कुछ और जिस के ऊपर की मञ्जिल में कांग्रेस का दफ्तर था। अपराह्न का १ या १-३० का समय होगा। पुलिस के सर्कल इन्पेक्टर की शरण लेकर बहुत ज़ोर-ज़बर्दस्ती के साथ एक वकील निकल कर चले गए थे। अब क्या था स्वयं श्री रामेश्वर जी हम लोगों को रोकने पर भी बहुत बड़ा जत्था लेकर जा अड़े। मजिस्ट्रेट का हुक्म आया, स्वयंसेवक हट जायें पर वहां कौन हटता है। सर्कल इन्सपेक्टर ने एक बड़ी सशस्त्र पुलिस की गारद ला खड़ी की और २ मिनट में अलग हो जाने को कहा। कुछ देर में सर्कल इन्सपेक्टर ने श्री रामेश्वर जी को गिरफ्तार किया और लाठी चार्ज का हुक्म दिया। बड़ी बेरहमी से लाठियां पड़ने लगीं और स्वयंसेवक मार खाने लगे। मुझे याद है कि श्री केशवदेव ने खूब चोट खाई। यह था सरकार का पशुबल-प्रदर्शन।

कांग्रेस आफिस में गांव वालों के झगड़े भी मिटाए जाते और शराब की दूकानों पर पिकेटिंग भी चलता। मङ्गलोर की शराब की दुकान की तो बिक्री ही खतम हो गई थी। हम लोग आश्चर्य

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

करते थे कि कुछ ऐसे आदमी जो गुन्डे कहे जाते थे और शराब पीना जिन के लिए मामूली काम था हमारे स्वयंसेवकों में शामिल हो गये और बड़े प्रेम तथा आग्रह से शराब रोकने का काम करते थे।

रुड़की के पास में बहती छोटी सी नदी पर सारा रुड़की टूट पड़ता था जब हमारे एक साथी को सदा के लिए अन्तिम विदाई देनी थी। साथियों की आखों में आंसू के साथ चिता में आहुति पड़ती थी। सर्वमित्र का पार्थिव शरीर भस्मसात् हो गया। वह सब का मित्र बनने के लिए उतावला था और देह का बन्धन उसे शायद असह्य हो उठा था। दिन रात के परिश्रम से क्लान्त उस का शरीर सांसारिक यातना सहन न कर सका। वह बीमार पड़ा। बड़े बूढ़ों ने प्यार से समझाया तुम लोग गुरुकुल में घी-दूध के खाने के आदि हो। यहां खाली दाल रोटी और तरकारी से कैसे काम चलेगा। बीमार समझ कर ही दही खाओ। सर्वमित्र का उत्तर था मेरे साथी स्वयंसेवक जो सूखा खायेंगे वही मेरा भोजन भी है। मैं उन से अलग कुछ खास भोजन नहीं खा सकता। उस ने जिद सी पकड़ ली और डाक्टरों के सब उपचार के होते भी अपने जीवन को मातृभूमि के लिए उत्सर्ग कर गया। सारा रुड़की शहर शोक-मग्न था और बृहत् जलूस में उस सपूत की अन्तिम यात्रा नदी तक हुई। मुझे याद है उस के पिता जो पुलिस के एक अधिकारी थे, उसे सत्याग्रह से विमुख करने आये पर उन को निराश वापिस जाना पड़ा था। यह थी भावना गुरुकुल के विद्यार्थियों की। कइयों के संरक्षक आये, तार आये और अनशन की धमकी आई पर बेकार गया। स्वयं मेरी माता जी का तार अनशन के बारे में आया और मुझे अपने नायक के आग्रह पर घर आकर उन्हें समझाना पड़ा और उन्हें मेरी उदासी देख कर अपना अनशन भङ्ग कर के फिर वापिस जाने की अनुमति देनी पड़ी। सर्वमित्र की तरह ही और दो विद्यार्थी उस काम को करते अपनी जीवन लीला समाप्त कर गये।

तीन महीने की छुट्टी समाप्त होने पर भी काम पर विद्यार्थियों को डटा देख सरकार ने भी रुख बदला और धड़ाधड़ गिरफ्तारियों और ज़ब्तियों का तांता लगा दिया। बहुत से विद्यार्थी जेल गये। श्री पूर्णचन्द्र, जयदेव, सत्यव्रत आदि स्नातक और श्री देवराज सेठी कारागार में भेज दिये गये। रुड़की का दफ्तर ज़ब्त हुआ। सब खाने पीने की मनो रसद और बर्तन ज़ब्त हुए। १४४ धारा बराबर के लिये लग गई। सरकार के वश में जो सम्भव था सब किया गया पर वह भावना न मर सकी।

गुरुकुल कांगड़ी उन दिनों प्रान्त भर की कांग्रेस के संचालन का केन्द्र था। काशी विद्यापीठ आदि बन्द किये जा चुके थे। प्रायः सब नेता जेल में जा चुके थे। कांग्रेस का प्रकाशन और विज्ञप्ति विभाग का गुप्त केन्द्र गुरुकुल ही था। प्रो० सत्यव्रत जी की सहायता के लिए घर से लौटने के बाद मैं गुरुकुल ही चला आया था। श्री चन्द्रावती जी के साथ रुड़की
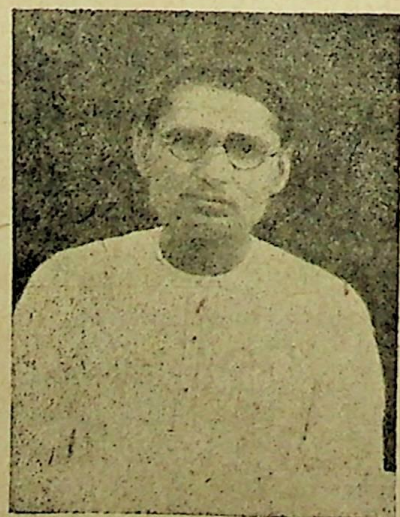
[प्रो० सत्यव्रत सिद्धांतालंकार]

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

में कान्फ्रेंस का सफल आयोजन करके मैं गुरुकुल में प्रकाशन और संगठन के कार्य में लग गया। काशी से पत्रनायक आदि मित्र आते रहते और प्रान्त भर का ब्यौरा मिल जाता। कांग्रेस स्वयंसेवकों का वह गुह्य शिविर सा बन गया था। अनधिकृत लीथो पर छपे बुलेटिन निकालते रहते। सरकार इस सब गतिविधि से तंग तो आगई पर गुरुकुल को बन्द कर देना भी आसान नहीं था। गुरुकुल को बिजली का बड़ा सस्ता दर दिया हुआ था।

कलैक्टर ने आचार्य रामदेव जी से कहा कि हम आपकी विद्रोही संस्था को सुविधा प्रदान नहीं कर सकते। आचार्य जी ने कहा जहां हम लाखों दान में मांगते हैं वहां कुछ और हजार बिजली के लिये भी सही।

सन् १९३१ के उत्सव के दो दिन बाद तीन चार लारियां में सशस्त्र पुलिस के साथ एस. पी. और डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट ने आकर गुरुकुल को घेर लिया। देखते ही देखते हमारे सारे छात्रावास के चारों ओर लाल पगड़ियां ही लाल पगड़ियां दिखाई देती थीं। अभी तक लम्बे स्तम्भ पर शान के साथ राष्ट्रीय पताका गुरुकुल के बीच में फहरा रही थी। सरकल इन्सपेक्टर कुछ सिपाहियों के साथ उधर दौड़े। उस समय तो अधिकारी एक हाथ की बात करें तो उन के मातहत सिपाही तीन हाथ की बात अपने आप करने को तैयार हो जाते थे। हर एक कमरे में विद्यार्थी कागज पत्रों को जला कर छोटे से कूड़े के तिन के हवाले कर रहे थे। मैं अपने कमरे में बैठा गिरफ्तारी की प्रतीक्षा कर रहा था। एक अलमारी भर के कांग्रेस के रजिस्टर और हिसाब किताब के कागज़ थे। मैं और देवनाथ विद्यालंकार उस की देख रेख करने वाले थे। बचने को कोई तरीका न था। हमारे आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब हम लोगों ने देखा कि सब लाल पगड़ियां धीरे से विलीन हो गईं और पुलिस अधिकारी आपस में एक दूसरे को बुरा भला कहते लारियों के पास लौट गये और सारी पुलिस अपना सा मुंह लिये लारियों में जा बैठी। हम लोग बाहर निकले। देखा, खेल के मैदान से हाकी लिये कुछ विद्यार्थी दौड़े आ रहे हैं और सीधे झण्डे की ओर लपक रहे हैं कि देखें किस की मजाल है जो झन्डा उतारे। आचार्य रामदेव जी अपने बंगले से आ पहुँचे थे और आते ही उन्होंने मजिस्ट्रेट से कहा कि अब सारा उत्तरदायित्व आप का है। आपने मुझ से बिन पूछे यहां सब काम क्यों किया ?। झन्डा उतारने वाले सिपाहियों और हाकी लिये विद्यार्थियों में कुछ हो जाए तो आप जानें। कलक्टर ने वास्तव में सिपाहियों को झन्डा उतारने को न कहा था और वह उग्र परिस्थिति को भांप गया। एक डांट पाते ही सब सिपाही ठंडे पड़ गये। कलक्टर को कोई बात न सूझी तो कहा कि मुझे सूचना मिली है कि आप के उत्सव पर बहुत सी ज़ब्त किताबें बिक रही थीं। उन्हें ही देखने हम आए हैं। आचार्य जी हंस पड़े। उत्सव की तारीख तो बड़े-बड़े पोस्टरों में छपी थी। आप दो दिन देर कैसे कर गए ? अब तो पुस्तक विक्रेता चले गए। मजिस्ट्रेट ने कहा आइये, जरा मैं आपके गुरुकुल को और पुस्तकालय को देख लूं। दोनों थोड़ी देर इधर-उधर घूम कर पुस्तकालय गए। दो चार रूस से आनेवाली कम्युनिस्ट पत्रिकाओं को कलक्टर अपने साथ ले चले। आचार्य जी ने हंस कर कहा—कहिए तो और इसी तरह की कुछ पत्रिकायें भेज दिया करूं। ये तो आप के कस्टम से पास होकर आने वाली पत्रिकायें हैं। गुरुकुल को जब्त करने और तलाशी लेने का वारन्ट लेकर आने वाले मजिस्ट्रेट और सुपरिन्टेन्डेन्ट अपने दल बल के साथ वापिस हो गए। सम्भवतः जो वह करना चाहते थे उस का साहस न बटोर सके।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

सोम

श्री वासुदेव शरण

यो जागार तमयं सोम आह

तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः ।

ऋ० ५. ४४. १४ ॥

जागरूक अर्थात् प्रज्ञावान् पुरुष के साथ ही सोम सख्य या मैत्री की इच्छा करता है। वेदों में सोम शब्द बहुत ही महत्वपूर्ण है। इस शब्द के कितने ही अर्थ ब्राह्मणकारों ने दिए हैं, यथा- रेतोवै सोमः (कौ०, श०, तै०), अन्नं सोमः (श०) सोमो प्रजापतिः, प्राणो वै सोमः (तां०), हविर्वैदेवानां सोमः (श०), यशो वै सोमः (श०), क्षत्रं वै सोमः (कौ०, ऐ०) वर्चः सोमः (श०), रसः सोमः (श०), शुक्रः सोमः (तां०), सोमो वै ब्राह्मणः (तां०), ब्राह्मणानां स (सोमः) भक्षः (ऐ०)।

अग्नीषोमाख्य नियम सृष्टि व्यापक विराट् द्वन्द्व है जिससे समस्त जीवन नियन्त्रित होता है। शतपथ में कहा है-यद्वा आर्द्रं यज्ञस्य तत्सोम्यम्, यच्छुष्कं तदाग्नेयम्। अग्नीषोम ही सृष्टि की वैज्ञानिक व्याख्या है, इस सूत्र में सब कुछ अन्तर्निहित है। मनुष्य एक अग्नीषोमीय पशु है। समस्त यज्ञों में संस्कारार्थ इसी की अपेक्षा है। परन्तु यहां आज हम सोम के एक विशेष आध्यात्मिक अर्थ की ओर ध्यान दिलाना चाहते हैं। ऊपर लिखे हुए ब्राह्मण वचन में अत्यन्त स्पष्टता से सोम का अर्थ वीर्य या रेत किया गया है। यज्ञ में हिरण्य देकर सोम लिया जाता है। इसका अर्थ शतपथ (३. ३. ३. ६) में इस प्रकार है— शुक्रं ह्येतच्छुक्रेण क्रीणाति यत्सोमं हिरण्येन (श० ३. ३. ३. ६)। हिरण्य भी रेत का ही संज्ञा है। शुक्र से शुक्र की प्राप्ति होती है। यही यज्ञ के द्वारा यज्ञ करना है- अर्थात्—

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः ।

तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ॥

ब्रह्मचर्य आश्रम में रेत के संचय से ही वीर्य प्रज्ञा तेज आदि की संप्राप्ति होती है। प्राण की आहुति से प्राण पुष्ट होते हैं। शरीरस्थ शुक्र जब शरीर में ही पचाया जाता है तब ही शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक निर्मलता, प्रसन्नता और शान्ति प्राप्त होती है।

मनुष्य शरीर में वीर्य या रेत सब से मूल्यवान् पदार्थ है। यह सोम जिन नस नाड़ियों में व्याप्त रहता है वे ही सोम वल्ली हैं। इन को ही केन्द्रीय

पृष्ठ ११ का शेष-

कुछ समय बाद आचार्य रामदेव जी पञ्जाब प्रान्तीय कांग्रेस के डिक्टेटर होकर लाहौर जेल चले गये और विद्यार्थियों को अपना नेता मान लिया कि मुझे भी इन्होंने उचित स्थान पर पहुँचा दिया। कुलभूमि में राष्ट्रीय पताका बेरोकटोक फहराती रही।

वह सब गुरुकुल की निस्वार्थ सेवा मातृभूमि के लिए थी, कोई राजनीतिक लाभ का ख्याल न था। विद्यार्थी देश की सेवा में अपनी कुलमाता की लज्जा को और स्वर्गीय कुलपिता श्रद्धानन्द की स्मृति को कायम रखने के लिए प्राणपण से लग गए थे। कैसा सुन्दर था वह समय और कैसी सुन्दर है वह स्मृति।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

नाड़ी जाल कहते हैं। यह नाड़ी जाल मनोमय वाङ्मय प्राणमय पुरुष की प्रतिष्ठा है। मस्तिष्क इस का ही एक भाग है। मस्तिष्क की संज्ञा ही स्वर्ग है।

अष्टचक्रा नव द्वारा देवानां पूरयोध्या।
अस्यां हिरण्ययः कोषः स्वर्गो ज्योतिषावृतः॥
अथर्व० १०. २. ३१॥

आठ चक्रों और नौ द्वारों से युक्त यह शरीर देवों की नगरी अयोध्या है; इसी में ज्योति से भरा हुआ सोने का कोष है जो स्वर्ग है। सोने का यह पात्र या खजाने से भरा हुआ सन्दूक मस्तिष्क है। यही नीचे मुंह और ऊपर पेंदी वाला करछुल, चमू या घट है जिस के किनारों पर सप्त ऋषि सप्त शीर्षण्य प्राण—

चक्षुः, कर्ण, नासा, मुख स्थित हैं—

तिर्यग्बिलश्चमस ऊर्ध्वबुध्नः ··· ।
तदासत ऋषयः सप्तसाकम॥
(अथर्व० १०. ८. ९॥)

यह शरीर सोम कूटने की ग्रावा है—

बृहन्नद्रिभ्ग्वद्यच्छरीरम्॥
(अथर्व० ६. ४. ५॥)।

कूटने पीसने छानने के बाद सोम से भरा हुआ शीर्ष रूपी कलश इस शरीर में रहता है—

सोमेन पूर्णं कलशं बिभर्षि॥
(अथर्व० ६. ४ ६॥)।

अनन्त प्रकार से पुष्ट होने वाला जो प्राणतत्व है उसे अध्यात्म परिभाषा में ऋषभ कह गया है। उस प्राणरूपी ऋषभ का रेत ही इस शरीर रूपी यज्ञ में पड़ने वाला घृताज्य है। यही अध्यात्म यज्ञ है—

आज्यं बिभर्ति घृतमस्यरेतः।
साहस्रः पोषस्तमुयज्ञमाहुः॥
(अथर्व० ६. ४. ७॥)।

सोम इस शिर की रक्षा करता है। (अंशुः रक्षते शिरः, ऋ० ६. ६८. ४.॥)। और भी—

सुत इन्द्राय विष्णवे सोमः कलशे
अक्षरत्। चमूषु आ निषीदति॥
(ऋ० ६. ६३. २॥)

मस्तिष्क का प्रतिनिधि ही यज्ञ में द्रोण कलश है जिसमें सोम छान कर भरा जाता है। दधानः कलशे रसं (ऋ० ६. ६३. १३)। उसी में से हम ऐन्द्र-वायव [वाक्+प्राण] मैत्रावरुण [चक्षु+मन] और आश्विन [श्रोत्र+आत्मा], इन इन्द्रिय रूपी पात्रों या ग्रहों में इस सोम को भर कर पी रहे हैं। सोम इन्द्रियों का रस है (आत्सोम इन्द्रियो रसो वज्रः सहस्राभुवत, ऋ० ६. ४७. ३)।

ऐन्द्रवायव, मैत्रावरुण और आश्विन, ये सब प्राण के ही नामान्तर हैं क्योंकि प्राण ही दो देवताओं वाला (द्विदेवत्य) और एक पात्र में भरा हुआ सोम है। अथवा प्राण ही दो पात्रों में भरा हुआ किन्तु एक नाम वाला है (प्राणा वै द्विदेवत्या; एक पात्रा गृह्यन्ते तस्मात्प्राणा एकनामानो द्विपात्रा हूयन्ते तस्मा-त्प्राणाद्वन्द्वं, ऐ० २. २७॥)।

अय सरांसि धावति ६. ५४. २॥

यह सोम छाना हुआ सरोवरों में भर जाता है। मस्तिष्क में जो तीन प्रधान चमू या वापियां (Ventricles) हैं वे ही यज्ञ के कलश हैं।

इदं तदग्र नाक त्रिषु पात्रेषु रक्षति।
ऋ० १०. १०. १७॥

इनको ही आधुनिक शरीर विज्ञान की परिभाषा में cerebral ventricles कहते हैं। इनकी संख्या चार भी मानी जाती है रायः समुद्राश्चतु-रोऽस्मभ्यं सोम विश्वतः। आ पवस्व सहस्रिणः। ६. ३३. ६॥) पवमान सोम स्वर्ग से और अन्तरिक्ष से पृथिवी के शृंगों (सार्नान) पर आता है (पव-माना दिवस्पर्य-तरिक्षादसृक्षत। पृथिव्या अधिसानवि,

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

६. ६३. २७ ॥) ऋ० ९. ६४. ६ ॥ में कहा है कि दिव्य पार्थिव और आन्तरिक्ष सोम को पवित्र करो। फिर, सोम द्युलोक का केतु या प्रकाश है। (केतु कृण्वन् दिवस्परि विश्वारूपाभ्यर्षति ऋ० ९. ६४. ८ ॥) ।

दिवः पीयूषं सोमं (९. ५१. २ ॥)

दिवः शिशुं । ३३. ५ ॥

सोम को उदीची दिशा का स्वामी कहा है। सोम इन्द्रियों का रस है। सोम के त्रिविध स्थानों को यों समझना चाहिए—

नर्वस सिस्टम के तीन भाग हैं (त्रिभिः धामभिः पुनीहि, ९. ६७. २६ ॥) ।

द्युलोक = Cerebrum

अन्तरिक्ष = Bulb, medulla oblngata

पृथ्वी = Shinal Region.

सोम को त्रिपृष्ठ कहा जाता है (त्रिपृष्ठो वृषा, ऋ० ९. ७१. ७ ॥) ।

ये तीन स्थान ही सोम के तीन पृष्ठ हैं। सुहुताद गौएं अर्थात् इन्द्रियां अपने दुग्ध देने वाले ऊधस् को मूर्धा या मस्तिष्क में मिला कर दूध की वर्षा करती है (ऋ० ९. ७१. ४ ॥) । इन्द्रियों का संयम करने से मस्तिष्क के सोम में इन्द्रियरूपी गौओं का दुग्ध या तेज मिलता रहता है। कहा है—

दिवस्पृष्ठे तव शुक्रास अर्चयः ।

(ऋ० ७. ६६. ५ ॥) ।

द्युलोक के स्थान में सोम की प्रकाशमान् अर्चियां हैं।

यज्ञ का आत्मा सोम है (ऋ० यज्ञस्य आत्मा) सोम अद्रि या ग्रावाओं से अभिषुत होता है (सुन्वन्ति सोममद्रिभिः ९. ३४. ३ ॥, अद्रिभिः सुष्वाणः ९. ६७. ३ ॥, ग्राव्णा तुन्नः । ९. ६७. २० ॥) । प्राणापान ही ग्रावा या सोम कूटने के सिल लोढ़े हैं। सोम के दश अंशुओं का भी वर्णन है (ऋ० ९. ६७. २८ ॥) दश प्राण ही सोम के दश अंशु हैं।

कहा है कि सप्त सिन्धु सोम के ही अनुशासन को मानते हैं (सप्त सिन्धवः तव प्रशिषं सिस्रते, ९. ६६. ६ ॥) । शरीर में सप्त प्राण सप्तसिन्धु हैं। एक मन्त्र में सोम को पाञ्चजन्य पुरोहित कहा है—

अग्निः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः । तमीमहे महागयम् ।

इन्द्रियां ही पञ्च जन हैं।

सोम इस शरीर रूपी रथ या शकट पर लादा जाता है—

ते त्रिपृष्ठे त्रिवन्धुरे रथे युञ्जन्ति यातवे ।

ऋषीणांसप्तधीतिभिः ॥ (ऋ० ९. ६२. १७ ॥)

तीन पृष्ठ वाला रथ यह शरीर है। सप्त ऋषियों की धी या स्तुति से यह जुता हुआ है। सोम शरीररूपी ऋतु के सदन में सुत होता है (सुता ऋतस्य सादने ९. १२. १ ॥) तभी ऋतम्भरा प्रज्ञा होती है।

एक स्थान पर सोम के अधिश्रयण या परिपाक का वर्णन है—

सोमो गौरी अधिश्रितः (९. १२. ३ ॥)

कन्या की संज्ञा गौरी है। विवाह से पूर्व कौमार अवस्था में सोम का गौरी कन्या के शरीर में प्रकृति द्वारा अधिश्रयण या पाचन होता है। सोम इस शरीर गुहा में संचित है जहां द्युलोक या मस्तिष्क में ज्ञानी लोग उसे विवेक की आंख से देख पाते हैं—

अध्वर्युभिः गुहाहितं दिवस्पदम्,

सूरः पश्यति चक्षसा ।

(ऋ० ९. १०. ९ ॥)

अप्रचेत अज्ञानी उसकी अवहेलना करते हैं; जो ज्ञानी और प्रचेता है वे सोम की उत्पत्ति उसके संचय, उसके परिपाक एवं उसकी अनेक रहस्यमयी शारीरिक और मानसिक प्रक्रियाओं को देखते हैं।

आ यद्योनिं हिरण्ययमाशुर्ऋतस्य सीदति । जहाति अप्रचेतसः ॥

(९. ६४. २० ॥)

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

ऋत की हिरण्यय योनि मस्तिष्क है। इसे ही अथर्ववेद में हिरण्य का कोष एवं स्वर्ग कहा गया है। यहां सोम जब प्रतिष्ठित होता है, तब अप्रचेत या अज्ञान छूट जाता है।

अभि वेना अनूषत इयक्षन्त,
प्रचेतसः। मज्जन्ति अविचेतसः॥
(ऋ० ९. ६४. २१॥)

जो आत्मदर्शी हैं वे सोम का गान गाते हैं; जो विवेकशील हैं वे सोम यजन करते हैं; जो मूर्ख हैं वे सोम के नाश से डूबते और नीचे गिरते हैं।

इन्द्रायेन्दो मरुत्वते पवस्व मधुम-
त्तमः। ऋतस्य योनिमासदम्॥
(९. ६४. २२॥)

मरुत् संज्ञक प्राणों के मध्य में समिद्ध होने वाला जो मुख्य प्राण इन्द्र है, उसके लिये हे मधुमान् सोम तुम अर्पित हो। शरीर का जो मधुभाग है उसको संचित रखने वाले मधुमत्तम रस तुम्हीं हो। ऋत की योनि जो मस्तिष्क है उसमें तुम्हारा स्थान है।

ऋधक् सोम स्वस्तये संजग्मानो,
दिवः कविः। पवस्व सूर्यस्य दृशे॥
(ऋ० ९. ६४. ३०॥)

क्रान्तदर्शी सोम मस्तिष्क या शीर्षरूपी द्युलोक (स्वर्ग) से स्वस्तिभाव के लिये प्रवाहित होता है। सूर्य के समान तेजस्वी सोम का हम दर्शन करें।

आ पवस्व सहस्रिणं रयिं सोम
सुवीर्यम्। अस्मे श्रवांसि धारय॥
(ऋ० ९. ६३. १॥)

हे सोम! अपरिमित वीर्य और रयि को हमारे शरीरों में पवित्र करो जिससे हम सुयशस्वी बनें। सोम सिन्धु मातृक है (सिन्धु मातरं ९. ६१. ७॥), अर्थात् नदी रूप नाडियों से सोम रस का क्षरण होता है। सोम को प्रत्न पय (दुहानः प्रत्नमित्पयः ९. ४२. ४॥) या सनातन रस कहा गया है। यही शरीररूपी यज्ञ में प्राचीन तम रस है। सोम ही परम अमृत है। सोम ही रेत, प्राण वर्च, भ्राज, हिरण्य; शुक्र और चान्द्रमस पीयूष है। यह सोम दो ग्रावाओं से अभिषुत होकर शिरः कपालों के मध्य में सम्भृत होता है। इसको पान करने वाला इन्द्र प्राणों का भी प्राण आत्मा है। सोम का अभिषव जन्म से ही होने लगता है, परन्तु हर समय का सोम पृथक् पृथक् है। ऊर्ध्वरेता पुरुष का सोम उत्तरायण मार्ग से देव लोक का सिञ्चन करता है। शीर्ष ही वह द्युलोक या देव-लोक स्वर्ग है। शीर्ष में ही मस्तिष्क प्रतिष्ठित है। वैदिक परिभाषा में मस्तिष्क ही राजा सोम है।

सोमो राजा मस्तिष्कः। (अथर्व० ९. ७. २॥)

इसी दृष्टि से सोम ब्राह्मणों का राजा कहा गया है। जो प्रज्ञा के लिये जीवित रहता है, वही ब्राह्मण है।

वैदिक ब्रह्मचर्य गीत—लेखक श्री अभय विद्यालङ्कार।

इस पुस्तक में अथर्ववेद के ब्रह्मचर्य सूक्त (११-५) की व्याख्या है। वेद में ब्रह्मचर्य की महिमा क्या बताई गई है, ब्रह्मचारी कौन होता है और ब्रह्मचारी में कितनी महान् शक्ति होती है। इसका वर्णन आपको इस पुस्तक में मिलेगा। इसमें ब्रह्मचर्य सूक्त का एक-एक मन्त्र लेकर उसकी विस्तृत व्याख्या की गई है और अंत में शब्दार्थ दे दिया गया है। मूल्य २)   प्रकाशक—प्रकाशन मन्दिर, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

सफल नेतृत्व

प्रोफेसर रामचरण महेन्द्र एम. ए.

शिक्षा, अभ्यास एवं प्रतिभा

सफल नेतृत्व के हेतु उच्चतम शिक्षा की अत्यन्त आवश्यकता है। राजनैतिक नेताओं के लिए संसार की गतिविधि, नाना राजनैतिक दलों की कार्य प्रणाली, तुलनात्मक विचारधारा का सम्यक् ज्ञान अपेक्षित है। इसी प्रकार धर्म और सामाजिक क्षेत्रों में उक्त विषयों का उत्कृष्ट ज्ञान अपेक्षित है। आप जिस क्षेत्र में नेतृत्व कर रहे हैं, उसका शास्त्रीय अध्ययन कीजिए और अपना ज्ञान संसार की गति एवं विकास के साथ रखिए। जनता अज्ञानान्धकार में लुप्त पड़ी है। सिद्धान्तों तथा साधारण कार्यप्रणालियों तक का उसे ज्ञान चाहिए। वही आपको प्रदान करना है।

अपने ज्ञान के प्रदर्शन तथा जनता में प्रचार के लिए आपको भाषण देने की कला अपेक्षित है। जो व्यक्ति अच्छी वक्तृता दे कर जनता को प्रभावित कर सकता है, वह कुशल नेता बन सकता है। आप में नेतृत्व की जो प्रतिभा है, वह कुंठित पड़ी रहेगी यदि आप सम्यक् रीति से उसके प्रदर्शन का अभ्यास न करेंगे। विचार प्रतिपादन का अभ्यास दीर्घकाल तक होना चाहिए। नेता होने के लिए शिक्षा, अभ्यास और प्रतिभा का बराबर मात्रा में सामञ्जस्य आवश्यक है। दुःख है कि हम शिक्षा का अभाव पाते हैं। यदि उच्च शिक्षा और वकालत करने वाला दिमाग़ आपके पास है तो प्रतिभा भी अभ्यास से उत्पन्न की जा सकती है।

जनता के मनोविज्ञान से परिचय प्राप्त कीजिए। जनता भावनामय है; शीघ्र ही उत्तेजित हो उठती है। उत्तेजना में कुछ का कुछ कर बैठती है। उत्तेजित होने पर उसमें तर्क और विचार बुद्धि लुप्त हो जाती है। वह वक्ता जो जनता को उत्तेजित कर, भावनाएं बहाकर अपनी बात मनवा लेता है, चतुर है। धर्म, पुरानी संस्कृति, आन, प्रतिष्ठा इत्यादि की भावनाओं पर जनता शीघ्र विश्वास करती है। जो बात जनता के सन्मुख पुनः पुनः आती है, चाहे वह झूठ ही क्यों न हो, लोगों का विश्वास उसी पर दृढ़ हो जाता है। एक बार विचार दृढ़ होने के पश्चात् उसे जनता के मन से निकाला नहीं जा सकता। जनता पर प्रभाव धीरे-धीरे पड़ता है किन्तु एक बार भावना में दृढ़ हो जाने पर उस का उन्मूलन कठिन है। जनता का मन तर्क से नहीं, भावना और दूसरों के अनुकरण से परिचालित होता है।

सहिष्णुता और विरोधी आलोचना से निर्भयता

संसार में एक ही विचार और दृष्टिकोण सब का नहीं होता। जितने मस्तिष्क और बुद्धियां हैं, उतने ही सोचने विचारने के भिन्न स्वरूप हैं। जो आपको अमृततुल्य उपयोगी प्रतीत होता है, वही दूसरे को विष की जड़ मालूम होता है। एक व्यक्ति मीठी जलेबियां खाता है, तो दूसरा ऊँचे दाम देकर कड़वा करेला खरीदता है। प्रत्येक की रुचि भिन्न है। आदर्श, विचारधारा, इष्ट, योजनाएं भिन्न हैं।

नेता के जीवन में भी ऐसे अनेक व्यक्ति आते हैं, जो उसकी विचारधारा से सहमत नहीं होते। कहा विरोध करते हैं। जड़वादिता है, तो कहीं प्राचीन जीर्ण शीर्ण संस्कृति के खण्डहर विरोध में खड़े हैं। यदि नेता पचास वर्ष आगे की बात जनता के समक्ष प्रस्तुत करता है, तो जनता उसे स्वप्नवादी कहती है। धर्म की आड़ लेकर उसका और विरोध होता है; अच्छी बुरी आलोचना उसके विरोध में की

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

भक्त कौन

श्री विष्णुमित्र

प्रभु भक्त के अन्दर एक विशेष गुण होता है जिस के कारण वह साधारण मनुष्यों से कुछ निराला होता है। वह सब को अपने जैसा देखता है। उसे सभी प्राणी प्रभु के मन्दिर दिखाई देते हैं। ऐसा कौन सा भक्त है जो अपने प्रियतम के किसी भी मन्दिर को देख कर खुश न हो। प्रभु की सारी प्रजा को वह अपनी प्रजा समझता है वह किसी से द्वेष नहीं करता। वह तो दुश्मन को भी देख कर कह उठता है कि—

करूं मैं दुश्मनी किस से—अगर दुश्मन भी हो अपना।
मुहब्बत ने नहीं दिल में जगह छोड़ा अदावत की॥

वह तो भगवान् के किसी मन्दिर को टूटा वा गन्दा देखता है तब वह उसी समय उसके सुधार में लग जाता है। नास्तिकों के लिए भी उसके प्रेम का स्रोत वह निकलता है।

मेरी दृष्टि में वह प्रभु-भक्त नहीं जो दुनियां से दूर भाग कर जंगलों, पर्वतों वा गुफाओं में जा बैठता है। प्रभु-भक्त वह है जो अपनी चिन्ता छोड़ प्रभु मन्दिरों के सुधार की चिन्ता करता है। जिस प्रभु-मन्दिर में ज्ञान का दीपक नहीं वहां पर ज्ञान का दीपक जलाता है। प्रभु भक्त तो अपने तथा दूसरों के मोक्ष के लिए होती है। पर जो सकाम भक्त होते हैं वे तो अपने लिए सुखों की खरीदारी करते हैं। निष्काम भक्त तो अपने लिए न तो दुनियां का राज्य चाहता है और नहीं मोक्ष। वह कहता है कि—

न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं ना पुनर्भवम्।
कामये दुःख तप्तानां प्राणिनां दुःख नाशनम्॥

इलाहाबाद में एक वयोवृद्ध महात्मा ने ऋषि दयानन्द से कहा कि महात्मन् यदि आप निवृत्ति मार्ग में बने रहते और परोपकार के बखेड़े में न पड़ते तो निश्चय ही इसी जन्म में मुक्त हो गए होते। ऋषि ने कहा कि मुझे अपनी मुक्ति की चिन्ता नहीं। लाखों! करोड़ों मनुष्यों की मुक्ति की चिन्ता

पृष्ठ १६ का शेष—

जाती है। सच्चा नेता इन आलोचनाओं से कभी पस्त नहीं होता वह इनको ग्रहण नहीं करता प्रत्युत अपने हिमालय सदृश आत्मविश्वास की शीतल छाया में निरन्तर अग्रसर होता है।

आलोचना दो प्रकार की होती है (१) विध्वंसात्मक (२) निर्माणकारी। विध्वंसात्मक आलोचना व्यक्तिगत या पार्टी विशेष के प्रचार, पर छिद्रान्वेषण, नुक्ताचीनी और दूसरे को नीचे लाने के लिए होती है। ऐसी आलोचना सर्वथा पक्षपातपूर्ण है, त्याज्य और न ध्यान देने की चीज़ है। इस पर कभी ध्यान न दीजिए। ऐसी आलोचना का गुप्त अभिप्राय यह है कि आप ऊंचे उठ रहे हैं और दूसरों की ईर्ष्या का कारण हैं। दूसरे प्रकार की आलोचना खराबियाँ तो बताती है किन्तु उसका अभिप्राय व्यक्तित्व का निर्माण है। इसमें प्रशंसा और उत्साह-वर्द्धक तत्त्व मिश्रित रहते हैं। चतुर नेता ऐसी आलोचना से लाभ उठा कर अग्रसर होते हैं।

जनता को विश्वासपात्र बनाना इस कला की आत्मा है। उत्तम चरित्र, सेवामय भावना, उत्कृष्ट शिक्षा, प्रतिभा, दूरदर्शिता और जनता के मनोविज्ञान से परिचय प्राप्त कर हम सब सफल नेतृत्व कर सकते हैं।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

मेरे चित्त को व्याकुल कर रही है। भले ही मुझे कई जन्म क्यों न धारण करने पड़ें दुःखों के त्रास से दीन दशा से परम पिता के पुत्रों को मुक्ति दिला कर मैं स्वयं मुक्त हो जाऊंगा। इस प्रकार सच्चा भक्त दिन रात दूसरों के उपकार में लगा रहता है। किसी ने क्या ही अच्छा कहा है कि—

अपनी फिक्र न कुछ करें प्रभु प्रेम के दास।
सूई नङ्गी खुद रहे और सबका सिये लिबास॥

एक बार ऋषि ने लक्ष्मण शास्त्री से शास्त्रार्थ करते हुए कहा शास्त्री जी ? वेद के प्रमाण से मूर्ति-पूजा साबित करें। उसने कहा कि महाराज वेद का प्रमाण कहां से दूं उन्हें तो शंखासुर राक्षस ले गया। ऋषि ने कहा भोले शास्त्री उस प्रमाद रूपी शंखा-सुर को मार कर वेद लाया हूँ, ले। इस में से प्रमाण दो। शास्त्री चुप हो गया। भारत की यह दशा देख आह भर कर ऋषि ने कहा कि हा भारत तू क्या से क्या हो गया। कभी ज्ञान के पिपासु अन्य देशों से आकर अपनी ज्ञान-पिपासा मिटा अपने देश को लौट कर वहां के लोगों की ज्ञान पिपासा मिटाया करते थे और भारत की प्रशंसा किया करते थे। उन्होंने कहा कि कुछ दिन हुए प्राचीन ग्रीक लोगों द्वारा लिखा गया भारत का इतिहास सुनने को मिला। ग्रीक लोग ईसा मसीह से चार सौ वर्ष पहिले भारत में आए। भारत को देख कर उन्होंने लिखा कि भारतवर्ष के लोगों का जीवन आदर्श जीवन है। कोई भारतवासी झूठ नहीं बोलता। स्त्रियां मनुष्यों के साथ बिना पर्दा किए मिलती जुलती हैं। सारे देश में अद्भुत विश्वविद्यालय हैं। दर्शन शास्त्रों के बड़े बड़े विद्वान् हैं। स्त्रियें सभी पढ़ी लिखी हैं। वेदों के अद्भुत मन्त्र स्त्रियों के पवित्र हृदयों से निकलते हुए सुनकर हमने समझा कि सचाई पहिले स्त्रियों के अन्दर आती है। ग्रीक लोगों के इतिहास का कुछ नमूना दिखा कर ऋषि ने कहा शास्त्री जी कुछ सोचो और समझो आप दुनियां को किस ओर ले जा रहे हैं। कुमार्ग पर जाने वाले की अपेक्षा कुमार्ग का रास्ता बताने वाला विशेष दोषी है। मैंने इस लेख में एक सच्चे प्रभु भक्त का जीवन आपके सामने रखा है। क्या ऐसे प्रभु भक्तों का पहिचानना कुछ कठिन है। वे तो सम्पत्ति में ही नहीं विपत्ति में भी परखने पर खरे ही उतरते हैं। क्यों कि—

सम्पत्तौ च विपत्तौ च महतां एक रूपता।

वैदिक अध्यात्म विद्या (बलासुर वध) लेखक— श्री भगवद्दत्त वेदालंकार। प्रकाशक—प्रकाशन मन्दिर, गुरुकुल कांगड़ी, जिला सहारनपुर, उत्तरप्रदेश। मूल्य १) इस पुस्तक में श्री पं० भगवद्दत्त वेदालङ्कार ने जो, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय में अनुसंधान विद्वान् हैं मुख्यतया ऋग्वेद दशम मण्डल के ६७, ६८ सूक्त के मन्त्रों के आधार पर वेदों में वर्णित अध्यात्म विद्या का वर्णन किया है। यह प्रकरण बलासुर वध का है जिस का वर्णन वेदों के अतिरिक्त ऐतरेय, शतपथादि ब्राह्मणों में भी आया है। सुयोग्य लेखक ने सप्रमाण सिद्ध किया है कि बलासुर का तात्पर्य दुर्वासनाओं से है, उन पर कैसे विजय प्राप्त की जा सकती है, इस का वेदों के आधार पर प्रतिपादन किया गया है और ब्राह्मण ग्रन्थों के कुछ वचन भी इस की पुष्टि में दिये गये हैं।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

हिन्दी के राष्ट्रीय काव्य का भविष्य

श्री प्रभुदयालु अग्निहोत्री

भारतेन्दु काल और उसके बाद के साहित्य को मुख्यतः काव्य साहित्य को हम दो स्पष्ट वर्गों में बांट सकते हैं– समष्टिपरक अर्थात् जिसकी रचना राष्ट्र अथवा एक विशिष्ट समाज की उन्नति को लक्ष्य मान कर की गई और व्यक्ति परक अर्थात् जिसकी रचना व्यक्तिगत सुख-दुःखों से प्रेरित हो कर की गई। निश्चय ही भारतेन्दु-काल अपेक्षाकृत शान्ति का था। नवाबों, सामन्तों और लुटेरों, ठगों की विभीषिका से अंगरेजों ने जन साधारण को मुक्त किया था। नये नये आविष्कारों का प्रयोग भी उन्होंने इस देश में प्रारम्भ किया। शासन के व्यवस्थित हो जाने से जनता ने एक बार सुख की सांस अवश्य ली थी। पर फिर भी गरीबी, अशिक्षा और पारस्परिक विरोध ये सब बातें समझदार वर्ग को पीड़ित करती थीं। भारतेन्दु के काव्य में इन सब बातों का स्पष्ट वर्णन मिलता है। अंग्रेजों के प्रति विशेषतः महारानी विक्टोरिया के प्रति सम्मान और आदर इस समय के कवियों ने प्रकट किया है। कभी-कभी अंग्रेजों द्वारा किसी देशी राज्य में दखल देने का विरोध यद्यपि जब तब किया गया पर साधारणतया अंग्रेजी राज्य के विरोध में कुछ नहीं कहा गया। यदि कुछ कहा भी गया तो प्रशंसात्मक उद्गारों के रूप में। भारतेन्दु की दृष्टि अपेक्षाकृत पैनी थी। अंग्रेजी राज्य की अच्छाइयां देखते हुये भी वे यह कहना न भूले कि इस राज्य की एक बड़ी बुराई यह है कि देश का धन चुपके चुपके विदेशों को चला जा रहा है। इस बात को पचास-साठ वर्ष बाद तक और कोई कवि इतने तीव्र स्वर से न कह सका। शेष समष्टिपरक काव्य जो लिखा गया उसमें हिन्दू समाज में फैली कुरीतियों का ही चित्रण होता था। हिन्दू समाज को राष्ट्र मान लेने की यह प्रवृत्ति वर्षों तक चलती रही और हमारे अच्छे अच्छे राष्ट्रीय कवि भी इस धारणा से मुक्त नहीं हो पाये।

भारतेन्दु युग का प्रारम्भ ही उत्तर रीति-कालीन, स्थूल शृङ्गार काव्य परम्परा के विरोध में हुआ था। इसलिये इस युग में शृङ्गार की अभिव्यंजना प्रकृति वर्णन के ही रूप में अधिकतर मिल सकती है, प्रणय-निवेदन के रूप में नहीं। केवल भारतेन्दु इसके अपवाद हैं। वास्तव में भारतेन्दु साहित्यक्षेत्र में क्रान्तिकारी न होकर सुधारक थे। उन्होंने पुरानी बोतल में नई हाला भरने का काम किया। उनके नाटकों में भी यह बात स्पष्ट है। काव्य में उन्होंने भाषा और रस तो परम्परागत ही ग्रहण किये, आलम्बन और उद्दीपन बदल डाले। राधा कृष्ण का प्रणयवर्णन, और भक्त के रूप में आत्मनिवेदन उनके काव्य का मुख्य विषय रहा। आगे जैसे-जैसे समय बीतता गया काव्य का यह पक्ष दुर्बलतर होता गया, यहां तक कि पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी तक आकर हिन्दी काव्य से सूक्ष्म मार्मिक आत्माभिव्यञ्जना का अभाव सा हो गया। कवियों का लक्ष्य समाज बन गया। इस युग में एक बात और देखी जा सकती है और वह यह कि प्रकृति वर्णन इस युग में पर्याप्त लिखा गया यद्यपि उसमें कवि प्रायः तटस्थ द्रष्टा ही रहा। प्राकृतिक सौन्दर्य की मार्मिक अनुभूति बहुत कम देखने में आई। प्रकृति के साथ तादात्म्य तो शताब्दियों पूर्व ही लुप्त हो चुका था। यद्यपि इस ढंग पर भी कुछ अच्छी चीजें लिखी गयीं पर उनकी संख्या अत्यन्त सीमित है।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

द्वितीय काल तक आते आते ऐसा लगने लगता है जैसे काव्य प्लेटफार्म के भाषण का छन्दोयुक्त अनुवाद हो। काव्य की यह रसविरहित स्थिति अधिक समय तक टिक नहीं सकती थी। दूसरे भारतेन्दु युग के लेखकों की मौलिकता और जिन्दादिली भी इस युग के लेखकों में न रह गई थी। राजनीतिक दृष्टि से इस युग के लेखकों को काफी आगे बढ़ जाना चाहिए था पर वैसा न हो सका। इसका एक कारण यह भी है कि इस समय के प्रमुख लेखकों में पं० पदमसिंह शर्मा को छोड़ कर शेष प्रायः सभी किसी न किसी रूप में सरकारी दफ्तरों से सम्बन्ध रख चुके थे। उनमें भारतेन्दु, प्रेमघन और प्रताप नारायण मिश्र के समान दोटूक बात कहने को क्षमता नहीं थी। और शर्मा जी आर्यसमाजी होते हुए भी दरबारी ढंग के विद्वान् थे। इस लिए राजनीतिक दृष्टि से जितने पैने ढंग से अपनी बात श्री बालमुकुन्द गुप्ता अपनी 'शिवशम्भू के चिट्ठे' में कह गए थे वैसे अनेक वर्षों तक अन्य कोई कवि न कह सका। साफ गोई के ख्याल से आज भी हम किस लेखक को गुप्ता जी के मुकाबिले रखें?

इतना होते हुए भी आचार्य द्विवेदी की दृष्टि पूर्णराष्ट्रीय थी। हो सकता है राजनीतिक दृष्टि से वे १९०६ और पास पड़ोस के समय लिखे गए साहित्य के आगे बढ़ कर कोई परम्परा कायम न कर सके हों पर राष्ट्रोत्थान का अनुवाद और ब्रिटिश शासन के सम्पूर्ण विरोध से भिन्न बातों से जहां तक सम्बन्ध है द्विवेदी जी के दृष्टि से एक क्षण भी ओझल न रहा और वे समय-समय पर सरकार की भूलों की कटु से कटु आलोचना करने से नहीं चूके।

हिन्दी साहित्य में राष्ट्रीय काव्य का श्री गणेश श्री बाबू मैथिली शरण जी गुप्त की भारत भारती से माना जाता है। इसके बाद भी, उन्होंने अनेक सामयिक राष्ट्रीय काव्य लिखे पर भारत भारती के समान किसी का प्रचार न हो सका। इस युग के अन्य राष्ट्रीय कवियों में श्री पं० बालकृष्ण शर्मा नवीन और श्री पं० माखनलाल जी चतुर्वेदी का नाम विशेषतः उल्लेखनीय है। इनमें श्री नवीन जी की कविता, भाषा, भाव सभी दृष्टि से प्राणवान् है। श्री चतुर्वेदी जी के काव्य में बलिदान और समर्पण की भावना प्रधान है। राष्ट्र के लिये मर मिटने की अधिक साध है। यौवन है, स्फूर्ति है और है अदम्य उत्साह। गुप्त जी विशुद्ध राष्ट्रीयता की दृष्टि से भारत भारती के बाद सामने नहीं आये। 'अनघ' को छोड़ कर शेष सभी काव्यों में वे हिन्दूगृहस्थ परिवार के श्रेष्ठ आदर्शवादी चित्रकार के रूप में ही प्रकट हुये हैं। यद्यपि उनका दृष्टिकोण अत्यन्त उदार रहा। चतुर्वेदी की ही परम्परा में, किन्तु अधिक स्पष्ट अभिव्यक्ति वाले कवियों में श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान, दिनकर और सोहनलाल द्विवेदी आए। इनमें प्रथम दो वस्तुतः श्रेष्ठ शिल्पी हैं। द्विवेदी जी नारों के आधार पर चले। भगवतीचरण वर्मा का उल्लेख भी उनकी कुछ कविताओं के कारण राष्ट्रीय कवियों में कर दिया जाता है। उनकी कुछ कविताएं तीव्र अनुभूति लिए हुए भी हैं, पर वे वस्तुतः इस धारा के कवि नहीं हैं।

इधर प्रगतिशीलता के नाम पर जो कविताएं लिखी गई हैं वे शायद अपने नाम के साथ राष्ट्रीय विशेषण पसन्द न करें। राजनीतिक क्षेत्र के समान साहित्य में भी उन्हें अन्तर्राष्ट्रीय विशेषण अधिक पसन्द है। इस काव्य में तात्कालीन आर्थिक, और राजनीतिक समस्याओं के विश्लेषण पर अधिक और इस सृष्टि पर ध्यान कम रहा है, यद्यपि बीच बीच में नवीन युवक कवियों द्वारा बहुत सुन्दर एवं स्थायी साहित्य की चीजों का भी निर्माण हुआ है।

इधर स्वराज्य प्राप्ति के बाद राष्ट्रीय कहलाने वाले कवियों के सामने एक प्रश्न चिन्ह लग गया

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

है कि वे क्या लिखें। स्वतन्त्रता मिलने के बाद जो स्थिति काँग्रेस की हो गई है वही इन कवियों की है जिन्हें अपनी रचनाओं के लिए काँग्रेस के नेतृत्व आन्दोलनों से स्फूर्ति मिलती थी। और चूँकि अधिकांश राष्ट्रीय कवि अपने काव्य के लिए उसी ओर ताकते थे, उनकी लेखनी कुँठित-सी हो गई। दूसरी ओर प्रगतिशील कवि तीखी चीजें लिखते जा रहे हैं। उनकी कल्पना का समाज बनने में अभी देर है पर वे घोर आशावादी हैं। उनका वास्तविक संघर्ष तो अब प्रारम्भ हुआ है। इस लिए उनके काव्य में तीखापन स्वाभाविक है।

राष्ट्रीय कवियों में कुछ कवियों का स्वर समाजवाद से बहुत मिलता है। इनमें एकाध को छोड़ कर शेष वाद के लिये अधिक जागरूक नहीं हैं: काव्य के प्रति ईमानदार अधिक हैं। ऐसे कवि आज भी सफलता के साथ लिखते जा रहे हैं। पं० माखनलाल चतुर्वेदी, मिलिन्द, दिनकर इनमें हैं।

राष्ट्रीय कविता को ही नहीं, कुल मिला कर देखें तो भी स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद काव्य गति बड़ी मन्द पड़ गई है। किसी नवीन प्रतिभा के दर्शन इधर नहीं हो रहे हैं।

राष्ट्रीय काव्य की क्षीणता का कारण क्या है? कुछ बातें तो स्पष्ट हैं। नारों का, उत्तेजना का, प्रलय और ज्वाला का युग तो बीत गया। अब निर्माण काल आया है। और निर्माण के लिये भावना की अपेक्षा विवेक की आवश्यकता अधिक होती है। काव्य भावना प्रधान होता है इसलिये वह आज की राष्ट्रीय भावनाओं की अभिव्यक्ति का सामयिक माध्यम नहीं बन सकता। कोई बलिष्ट चिन्तक ही, जो भावनाओं और विवेक का रसमय समन्वय कर सके आज श्रेष्ठ काव्य की रचना कर सकता है। दूसरे हमने प्रारम्भ से ही राष्ट्रीयता का नारा बड़ा संकुचित कर रखा है, हम राजनीतिक आर्थिक समस्याओं का स्पर्श करने वाले काव्य को ही राष्ट्रीय कहने के अभ्यस्त हो गये हैं। इसलिये ऐसी अनेक कवितायें जो अन्य और किसी देश में राष्ट्रीय कही जातीं, हमारे यहां बहिष्कृत कर दी गई हैं। राष्ट्र को आगे बढ़ाने वाली सारी रचनाएं चाहे वे किसानों और मजदूरों पर न भी लिखी गई हों राष्ट्रीय कहलाने की अधिकारिणी हैं। सच तो यह है कि राष्ट्रीय, अराष्ट्रीय ये भेद कर हमने राजनीति की संकुचित सांप्रदायिकता को साहित्य में भी ठूंसने का प्रयत्न किया है। वास्तव में जीवन का स्वस्थ्य विकास करने वाले साहित्य को अधिकाधिक प्रोत्साहन करने की आवश्यकता है। सस्ते नारों के आधार पर साहित्य का मूल्यांकन कर हम अपनी संस्कृति को नीचे गिराते हैं।

इस दृष्टि से एक कवि ने बड़ी दूरदर्शिता का परिचय दिया और वह है सुमित्रानन्दनपन्त। साहित्य में अपने पाँव जमाने के लिए प्रगतिशील कवियों ने (और प्रगतिवाद कम्यूनिज्म का साहित्यिकरूप है) पहले उन्हें प्रगतिशील कहा है। अब वे ही उन्हें प्रतिक्रियावादी कहने लगे। किन्तु पन्त जहां तब थे वहीं अब हैं। गांधीवाद के सांस्कृतिक, आध्यात्मिक रूप और साम्यवाद की आर्थिक व्यवस्था के वे समर्थक रहे। भाव को वस्तु का रूप देने की बात उन्होंने पहले पहल कहा। उन्होंने राष्ट्रीयता के अमूर्त रूप को भी मूर्तत्व प्रदान किया। स्वतन्त्रता प्राप्ति के काफी पहले पन्त ने समझा कि बलिदान और उत्सर्ग का लक्ष्य राष्ट्र का अभ्युत्थान हो सकता है किन्तु अभ्युत्थान की कल्पना व्यक्ति भेद के अनुसार भिन्न हो सकती है। राष्ट्रीय स्वयंसेवकसंघ, कम्युनिस्ट पार्टी, समाजवादी, कांग्रेस सभी पार्टियां अभ्युत्थान की बात कहती हैं। इस लिए हमें राष्ट्रीयता का रूप स्पष्ट करना चाहिए। राष्ट्रीय काव्य से सब से पहले पन्त ने इस कुहासे को दूर किया और कहा —

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

पत्थरों में परिणत पौधे

डाक्टर लोकेशचन्द्र एम्. ए. डी.. लिट्०

पुरा-औद्भिदी (paleobotany) में लाखों और करोड़ों वर्ष पुराने पौधों के विभिन्न वर्गों, प्रजातियों, जातिओं आदि के पत्थर के रूप में पाए जाने वाले निखातकों (Fossils) का अध्ययन किया जाता है। ये निखातक पौधों के प्राचीनतम इतिहास के शिलालेख कहे जा सकते हैं। आज से ५० करोड़ वर्ष पहिले के अर्थात् अनुप्रवालादियुग (Ordovician) के पौधों के विषय में पर्याप्त ज्ञान प्राप्त हो चुका है। अवसादमय (Sedimentary) पत्थरो में पाए जाने वाले और उनके उत्तरवर्ती निखातकों से प्रत्येक जाति, प्रजाति आदि के उद्विकास (evolution) में तीन अवस्थाएं दिखाई देती हैं—(१) आविर्भाव और विकास, (२) अधिकतम प्रचार और (३) अन्त। जितने नवीन भौमिकीय स्तरों में हम आयेंगे उतने ही आज के समान पौधे प्राप्त होंगे। जहां पर कि उद्विकास बहुत ही वेग से हुआ है वहां पर ही कुछ आज के सदृश कुछ पौधे अनुप्रवालादि युग में अर्थात् आज से ५० करोड़ वर्ष पूर्व भी पाए जाते हैं। आज कल प्रचुर मात्रा में प्राप्त होने वाले सपुष्पोद्भिद् (angiosperms) भौमिकीय काल में देर से दिखाई देने लगते हैं। सामान्य रूप से पौधे की रचना सरलता उसके प्राचीनता का मान है। जितना सरल पौधा होगा उतने ही प्राचीन काल तक वह पाया जायगा। इससे यह सिद्ध होता है कि आज के जटिल पौधे सरल पौधे से विकसित हुए हैं। यद्यपि मुदर-हरिताए (Lycopods), कंगुताल (cycads) व्यञ्जनपर्ण (Gingkoales) आदि सरल पौधे आज कल उपलब्ध हैं, तथापि संभावना इसकी ही है कि दूरतम भविष्य के अन्वेषकों को ये प्राप्त न होंगे। आज भी वनस्पति-जगत् पहिले की भांति विकसित हो रहा है, और उतनी ही गति से जितना कि आज से लाखो शताब्दियां पूर्व। यहां पर गति से भौमिकीय गति अभिप्रेत है, जिसका प्रमाण जनसाधारण की बुद्ध से परे लाखों और करोड़ों वर्ष है।

प्रवालादि-युग (Silurian) के अन्त में और मत्स्य-युग (Devonian) के प्रारम्भ में पहिली बार भूमि पर उगने वाले पौधो का आविर्भाव

[पृष्ठ २१ का शेष।]

मनुष्यत्व का तत्व सिखाता,
निश्चय हमको गांधीवाद।
सामूहिक जीवन— विकास की,
साम्य योजना है अविवाद॥

और एक स्थान पर तो रूस के अन्धानुयायियों को स्पष्ट फटकारते हुये उन्होंने कहा था—

'मानवता की मूर्ति गढ़ोगे तुम संवार कर चमम ?'

आज हिन्दी काव्य धारा किसी नये मोड़ की प्रतीक्षा में है। राष्ट्रीय काव्य धारा तो निश्चय ही समाजवाद के आदर्शों के साथ आ रही है। यद्यपि वह बाद में संबद्ध नहीं है और यह उसकी स्वस्थता एवं प्राणवता का लक्षण है। दूसरी धारा जो रहस्यवाद की प्रतिक्रिया के रूप में आ रही है कहीं अध्यात्म पर अविश्वास होने पर स्थूल शृङ्गार का रूप न ले ले, इस ओर से जागरूक रहने की आवश्यकता है। यह भी हो सकता है कि राष्ट्र के उपेक्षित अग, जन साधारण के जीवन की ओर वह मुड़ जाय।

जो हो, काव्य का यह संक्रमण काल है। परिवर्तन के इन क्षणों में हमें भावना और विवेक में सन्तुलन बनाये रखने की बड़ी आवश्यकता है।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

होता है। इससे पूर्वतन युगों में पाये जाने वाले सभी आप्यक (Alage) हैं। आप्यक पानी में ही पाए जाते हैं जिस कारण इनको यह नाम दिया जाता है। (आप् "पानी")। ये आंख से न दिखाई देने वाली एक कोशा (cell) से लेकर ६०० फुट तक महान् आकार के होते हैं। इनमें पत्तों और तने के सदृश अंग होते हैं, परन्तु सच्चे पत्तों और तनों का अभाव है। वैज्ञानिकों का विचार है कि भूमि के पौधे समुद्र-घास (Seaweed) के पूर्वज से विकसित हुए हैं। ये समुद्र-घास के पूर्ववर्ती पौधे भूमि पर शनैः शनैः आ गए और इनमें पर्यावरण के अनुकूल परिवर्तन हुए। इस विचार की पुष्टि निखातकों के अध्ययन से भी होती है। उपर-मत्स्ययुग में ऐसे भूमि-पादप विद्यमान थे जिनकी रचना आज के पौधों से जटिलता में विशेष कम न थी। विशाल ऊंचे-ऊंचे वृक्षों के जंगल थे। उस समय भी पर्वतों और जंगलों से ढकी हुई पृथिवी आज से अधिक भिन्न न थी। निखातक पौधों से ही तत्कालीन ऋतु-परिवर्तन तथा जल और स्थल के अनुपात का ज्ञान मिलता है। आश्चर्यजनक बात है कि शीत कटिबंध के देशों के चट्टानों में अत्यधिक पौधे पाए जाते हैं। सम्भव है कि ये आज के उष्ण कटिबंधीय वनस्पति जगत् की ही भांति रहे हों। स्पिट्सबर्गन (Spitsbergen) में मत्स्य-युग, अंगार-युग, और तृतीयक-युग के पत्थरों में कोयला प्रचुर मात्रा में पाए जाने के कारण यह स्पष्ट है कि इस देश में बहुत ही हर्यावल रही होगी। परन्तु आज यहां पर बहुत ही अधिक उर्वरा घाटियों में ही कहीं-कहीं छोटी मोटी झाड़ियां दृष्टिगोचर होती हैं।

निखातक पौधे दो रूपों में पाए जाते हैं—पर्पटाच्छादित (incrustation) और अश्मित (fetrifaction)। पर्पटाच्छादित ही सामान्य रूप से मिलते हैं। पौधे के भागविशेष के किसी तालाब या नदी की मिट्टी अथवा साद (Silt) में दब जाने से इनका निर्माण हुआ है। जैसे जैसे अवसाद (Sediment) शिलिका (Shale) या बालूकाश्म (Sandstone) में परिवर्तन होता गया वैसे ही ऊपरी अवसाद के भार से पौधे दबते गए। आज वे पत्थर तोड़ने पर काले कोयले सदृश पतले से स्तर के रूप में पाए जाते हैं जिनमें हमें पौधे का छाया-चित्र (Silhouette) सा उपलब्ध होता है। बहुत से निखातकों में यह कोयले सदृश पदार्थ रसायनिक निबंध (Composition) में कोयले के समान होता है और कुछ ना कुछ सीमा तक पौधे की रूपआकृति रहती है। इस प्रकार का निखातक पत्थर से अलग किया जा सकता है। पारभासी (tronslucent) होने के कारण इसकी आंतरिक संरचना का कुछ न कुछ ज्ञान हो सकता है। कभी-कभी पर्पटाच्छादित में पौधे का उत्स्तर (cuticle) अथवा बीजाणु (spore) बचे रहते हैं जो कि रसायनिक रीति से अलग किये जा सकते हैं। परन्तु अश्मित (petrifaction) ही अनुसंधान के लिए विशेष महत्व के होते हैं, क्योंकि इनसे आंतरिक संरचना का अध्ययन किया जा सकता है। दुर्भाग्यवश ये दुर्लभ हैं। अश्मितों में पौधे का समस्त भाग ठोस पत्थर बन जाता है। बालु अथवा मिट्टी का दबाव पड़ने के पहिले ही इनमें खनिज-पदार्थ पानी का स्थान लेने लगते हैं। जिस अवसाद में पौधा दबा रहता है उसके पानी से खनिज-पदार्थ पौधे में पहुँच जाते हैं। सैकजा (silica) में अश्मिभूत पौधे सब से अधिक सुरक्षित रहते हैं। मध्ययुग से प्राप्त सैकजायित पौधों की प्रत्येक कोशा भित्ति (cell-wall) इतनी स्पष्ट है कि उसकी आंतरिक रचना पूर्णतया ज्ञात है। फ्रांस से प्राप्त गिरि-युग (Permian) के सैकजा की तहों से कई बहुत ही सुरक्षित पौधे मिले हैं। सैकजायिय

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

लकड़ी कई भौमिकीय युगों में मिलती है और मध्य-कल्प (Mesozoic) के सैकजायित पौधों की संख्या पर्याप्त है। (Lancashire) लंकाशायर और योर्कशायर (Yorkshire) के कुछ कोयलों के स्तरों में अंगार-पिण्ड (coal-ball, bullion) इतनी मात्रा में पाए जाते हैं कि कभी २ उन स्थानों से कोयला भी निकालना लाभकारी प्रतीत नहीं होता। इन अंगार पिण्डों में पौधों के भाग सुरक्षित होते हैं। ये वे पौधे हैं जो कि स्तर के संपीड़ित (compresed) होने के पहले ही पत्थर बन गए। इन अगार-पिण्डों में पाए गए निखातकों के अध्ययन द्वारा बिने (Binney) और स्काट (Scott) ने अंगार-युग के निखातक पौधों की रचना पर प्रकाश डाला है। इन अंगार-पिण्डों को सूक्ष्म खंडों में काटकर इतना घिसते हैं कि वे सूक्ष्मतर होकर पराभासी translucent) हो जांय और पिण्ड में विद्यमान पौधे की कोशाओं (cells) की रचना पारेषित प्रकाश (transmitted light) से दिखाई देने लग जाए।

इनके वर्गीकरण की एक विशेषता का यहां उल्लेख करना आवश्यक ही है। ऐसे निखातक पौधे जिनके विभिन्न भागों का परस्पर संबन्ध सर्वथा स्पष्ट हो, बहुत दुर्लभ है। इसके बहुत कुछ मिलते-जुलते पौधों के अंगों की आकार प्रजातियां (Form-genera) बना ली जाती है उदाहरण के लिए तनुवृक्ष-प्रजाति (Lepidodendron) के स्कन्धों (तनों) को तनुवृक्ष-प्रजाति में रखते हैं, पत्तों (पर्ण) को तनुपर्ण-प्रजापति में शंकुओं (cones) को तनुशंकुप्रजाति में।

The Journal of Ayurveda

(Published every Month)

An authoritative and high class Journal devoting itself to the Scientific aspects of Ayurveda for the benefit among other things to original Scientific works, translation and publicatin in English of the clasical works on Ayurveda.

Size	*Annual Subscription Rs. 7–8–0*	*Established*
10"6½"	*Singal Copy As.–12–0*	*1947*

Foreign 17 Silings or 3 dollars

(Inclusivue of postage)

For Further particulats write to—

Managing Editor 'Journal of Ayurveda'

90, Connaught Circus, New Delhi.

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

बरटों के उपनिवेश और उनके अभ्यागत

श्री सुषेण डी. लिट्.

बरट को कहीं भिरड़, कहीं बर, कहीं बरइया, कहीं भूंड, कहीं ततैया, और कहीं डेमू कहते हैं। इनके मुख्य दो प्रकार हैं पीला और लाल। लाल को कहीं लाल ततैया और कहीं हड्डु कहते हैं। आरम्भ में बरट भी अकेला ही रहता था और शनैः-शनैः सामाजिक अवस्था तक पहुँचा है। इनमें और चीटों में एक सबसे बड़ी समानता यह है कि दोनों में ही वयस्क और जातक परस्पर अपने भोजन का विनिमय करते हैं। यह बात अन्य सामाजिक जीव-जन्तुओं की अपेक्षा पालतू भिरड़ों में बड़ी सरलता से देखी जा सकती है। छोटे छोटे कीड़ों के टुकड़े मुंह में चबा कर अपने जातकों को देने के पश्चात् श्रमिक भिरड़ जातकों के मुख से गिरी हुई एक प्रकार की तरल शर्करी (सैकरिन) की बूंदे बड़े चाव से चूसती हैं। कभी कभी जब जातकों को भोजन नहीं भी खिलाया जाता तब भी श्रमिक भिरड़ उनसे उदासर्ग की मांग करती हैं और यदि जातक उनकी मांग पूरी नहीं करते तो श्रमिक भिरड़ जातकों के सिर धीरे से काट लेती है और लाल द्रव निकालने के लिए बाध्य कर देती हैं। नर भिरड़ और रानी भिरड़ दोनों को ही यह उदासर्ग अति प्रिय है। वास्तव में जातकों को जितना भोजन दिया जाता है उससे कहीं अधिक उनसे इस पोषक द्रव का विदोहन (एक्सप्लायटेशन) कर लिया जाता है। यही कारण है कि उनमें श्रमिक भिरड़ों की संख्या अधिक होती है। क्योंकि पोषक द्रव की कमी के कारण जिन जातकों का अच्छी तरह पोषण नहीं हो पाता वे ही श्रमिक भिरड़ बनते हैं।

भिरड़ें अनेक प्रकार के कीट-पतङ्गों को खा जाती हैं किन्तु उन्हें मिठाई, फूलों से संचित अमृत और मधु भी बहुत प्रिय हैं। कसाइयों की दूकानों में थोड़ा बहुत मांस भी यह खा लेती हैं। किन्तु कसाइयों के लिए बड़ी हितकारी भी हैं। ये वहां की नील कृमी मक्खियों के लिए काल हैं। उनका सिर और पङ्ख काट कर ये रुण्ड को अपने छत्तों में जातकों के के लिए ले जाती हैं।

इनकी स्मरण शक्ति बहुत अच्छी होती है। ये अपने भोजन और खुरची हुई लकड़ी की परतों के लिए अपने छत्तों से बहुत दूर तक उड़ जाती हैं और फिर अपने छत्तों को लौट आती हैं। लकड़ी के खम्भों, वृक्षों और मकानों में लगे लकड़ी के किवाड़ और चौखटों पर खुरच-खुरच कर बहुत सी लकड़ी ले आती हैं और उसी से अपने छत्ते का निर्माण करती हैं। इस खुरची हुई लकड़ी की लुगदी से ही वह कागज़ भिरड़ें तैयार करती हैं जिनसे इनके छत्ते बने होते हैं। लाल ततैय्या अपना छत्ता मिट्टी से बनाता है।

एक वैज्ञानिक ने एक भिरड़ पर बहुत दिन तक दृष्टि रख उसका अध्ययन किया था। वह भिरड़ उस वैज्ञानिक के पटल पर चीटों के लिए रखे मधु पर १० दिन तक निरन्तर आती रही। वैज्ञानिक अपने अध्ययन कक्ष में बैठा पटल पर कुछ लिख रहा था। उसने उस भिरड़ को मधु मात्र पर आकर चक्कर लगाते और उतरते देखा। पात्र की तली में बहुत थोड़ा मधु शेष था। आरम्भ में कुछ समय तक वह भिरड़ डरती रही और स्वल्प छाया अथवा पटल के थोड़ा हिलने से ही उड़ जाती थी। किन्तु फिर इतनी परच गई कि बार बार हटाने पर भी मधु पर से नहीं भागती थी। २२ अगस्त से ६ सितम्बर तक वह निरन्तर आती रही, ६ सितम्बर

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

के पश्चात् फिर दिखाई नहीं दी। उस कमरे की खिड़की ठीक साढ़े सात बजे खुलती थी और यह भिरड़ खिड़की के बाहर उसके खुलने की प्रतीक्षा में बैठी मिलती थी। सायं काल ७–३६ पर खिड़की बन्द होने के पहले ही वह उड़ जाती थी। दिन भर में वह ३३–३४ चक्कर लगाती थी। मधु लेकर वह अनेक ऊंचे वृक्षों, उद्यानों, अट्टालिकाओं और सड़कों को लांघती हुई कहीं दूर चली जाती थी। उसके आने जाने में लगभग ७ मिनट लगते थे। वह जाते समय खिड़की से सीधी बाहर निकल जाती थी। किन्तु आते समय बड़ी भिन-भिनाती हुई आती और कुछ देर मधु पात्र पर चक्कर काटने के पश्चात् उसमें उतरती थी। कई बार भयङ्कर वर्षा में भी वह फेरे लगाती रही। इस अवलोकन से इस छोटे से वीर प्राणी की कर्मठता, धैर्य और बुद्धिमानी का पता चलता है।

प्रमुख सामाजिक बरटों के प्रत्येक छत्ते का आरम्भ एक स्वयंवरा भिरड़ करती है, जो अपनी सर्दियां शीत स्वाप में बिताती है। वसन्त ऋतु में यह अपना छत्ता बनाना आरम्भ करती है और जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, लकड़ी खुरच-खुरच कर वह एक पतला कागज़ सा बनाती है जिसे वह अपने छत्ते के छोटे छोटे कोष्ठ बनाने के काम में लाती है। इन्हीं कोष्ठों में अण्डे देती है। ये छत्ते पृथ्वी के अन्दर, वृक्ष का खोखल में अथवा शाखाओं पर लटकते हुए बनाए जाते हैं। जब कोष्ठों से श्रमिक भिरड़ें निकल आती हैं तो वे उस छत्ते को बढ़ाने में सहयता करती हैं और सन्तति के पालन-पोषण में हाथ बटाती हैं। ग्रीष्म ऋतु के कुछ दिन बीतने पर नर भिरड़ और रानी भिरड़ काम करना छोड़ देती हैं। उनका पालन-पोषण अन्य श्रमिक भिरड़ें करती हैं और जब मार्गशीर्ष के आसपास उनका संवेशन (मेटिंग) हो चुकता है तो अन्य सब भिरड़ें नष्ट हो जाती हैं ; केवल उपजाऊ भिरड़ें ही बचती हैं और वे शीत ऋतु भर के लिए शीत-स्वाप (हिबरनेशन) में सो जाती हैं।

भोजन की खोज में इधर-उधर घूमते समय भिरड़ें अनेक प्रकार के जावों और स्थानों के समर्पक में आती हैं। किन्तु उनके अपने छत्ते में भी अनेक अभ्यागत आते रहते हैं, ये जीव छत्तों को खोजते हुए वहां पहुँच जाते हैं और वहां के निवासियों के मेहतर, सहभोजी या परजीवी के रूप में उनके साथ रहने लगते हैं। सामाजिक भिरड़ों में दो परजीवी जातियां हैं। उनका श्रमिक वर्ग नष्ट हो चुका है और उनके नर और उपजाऊ स्त्री भिरड़ें ऐसी भिरड़ों के छत्तों में जा रहती हैं जिनका अपना श्रमिक वर्ग होता है। ये उनका और उनकी सन्तान का पालन-पोषण करता हैं और उनकी सन्तान के साथ अपनी सन्तान के समान ही व्यवहार करती हैं।

छोटे छोटे कुछ गुबरैले (बीटल) जो भिरड़ों के छत्तों में रहते और कोष्ठों की भित्तियों के कागज़ और कूड़े करकट पर अपना निर्वाह करते हैं, एक विशेष प्रकार के छत्तों में रखे जाते हैं। इसी लिए भूमि के अन्दर के छत्तों में एक प्रकार की जाति पाई जाती है और पेड़ों पर बने हुए छत्तों में दूसरी।

एक बृहदाकार धात्रीभृंग (बड़ा गुबरैला, रोव बीटल) हड्डे (हार्नेट) के छत्तों में रहता है। वहीं वह अण्डे देता है और वहीं उसके डिम्भ का पोषण होता है। हड्डों को इस से कोई हानि नहीं पहुँचती। क्योंकि इसका डिम्भ परित्यक्त वस्तुओं, हड्डे के मरे हुए जातकों और छत्ते के दूसरे कूड़े करकट पर अपना निर्वाह करता है। यह रात्रीचारी है और रात्री के समय छिद्रों के द्वारा हड्डे के छत्तों में प्रवेश करता हुआ देखा गया है। चमकीले धात्वीय नील वर्ण

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

की उष्ण देशीय एक जाति का गुबरैला छोटी मधुमक्खियों के छत्तों में इसी प्रकार अपना जीवन व्यतीत करता है।

एक परजीवी कीट भिरड़ के जातक के भीतर अपने अण्डे देता है और उसका डिम्भ जातक के शरीर में ही अण्डे से निकलता है और जब तक जातक कोशित (प्यूपा) का रूप धारण नहीं कर लेता तब तक वह उसे नष्ट नहीं करता। इसके पश्चात् वह कोशित के शरीर का पिछला भाग खा जाता है और उसके स्थान पर उसी कोष्ठ की तली में जिसमें भिरड़ का एक जातक था एक कृमिकोष अथवा कोआ (कोकून) बना लेता है।

कई मक्खियों के डिम्भ शल्यों (स्पाइन्स) से घिरे रहते हैं। उनके शरीर पर चारों ओर अनेक शल्य होते हैं। ये भिरड़ों के छत्तों में सफाई का काम करते हैं। इस जाति की बड़ी मक्खी, जो लगभग मधुमक्खी के समान होती है, इन छत्तों में निर्भय होकर घुस जाती है और अपने अण्डे दे आती है। इसके डिम्भ छत्ते की तली में एकत्र कूड़े करकट पर अपना निर्वाह करता है।

परन्तु हम भिरड़ों के छत्तों में पलने वाले एक गुबरैले की चर्चा करना चाहते हैं जिसके जीवन का वृत्तान्त बड़ा मनोरञ्जक है। इस गुबरैले की मां पतझड़ के समय वृक्ष की छाल की दरारों में और सड़ी गली लकड़ी के छेदों में ऐसे स्थान पर अपने अण्डे देती है जहां लकड़ी खुरचने के लिए भिरड़ के आने की सम्भावना होती है। अभी तक इस बात का ठीक-ठीक पता नहीं लगा कि इन अण्डों से डिम्भ पतझड़ में ही निकलते हैं और किसी गुप्त स्थान में शीत-स्वाप लेते हैं। अथवा इन डिम्भों का शीतकाल अण्डों के भीतर ही कटता है और बसन्त में ये अंडों के बाहर आते हैं। एक बार एक गुबरैले को पकड़ कर रखा गया था, जहां उसने अंडे भी दिये थे, किन्तु उनका अंडाजनन [हैचिंग] कभी नहीं हुआ अर्थात् उन अंडों से डिम्भ कभी नहीं निकले। डिम्भ छोटे पन में जब पहले पहल अंडे से बाहर आते हैं तो छोटे छोटे चंचल, काले, छः टांगों वाले वरूथि [माइट] होते हैं। जब कोई भिरड़ अपने छत्ते के लिये लकड़ी खुरचने उस स्थान पर आती हैं जहां गुबरैले के ये छोटे-छोटे वरूथि छिपे रहते हैं तो उनमें से कोई न कोई उस भिरड़ के पैरों में लिपट जाता है और इस प्रकार बिना जाने ही भिरड़ उसे अपने छते में ले जाती है। अनेक बार जब कोई भी भिरड़ उस स्थान पर नहीं पहुँचती जहां ये वरूथि छिपे रहते हैं, तो ये वहीं नष्ट हो जाते हैं। किन्तु इस गुबरैले की मां, तैल-भृङ्ग के समान, इतने अधिक अंडे देती है कि इस नाश का प्रतितोलन (काउन्टर बैलेन्स) हो जाता है। एक प्रकार के दूसरे गुबरैले का डिम्भ फूलों की पङ्खड़ियों पर किसी मधुमक्खी के आने की प्रतीक्षा किया करता है।

भिरड़ों के छत्तों में पहुँचते ही यह छोटा सा डिम्भ छेद करके तुरन्त भिरड़ के जातक के शरीर में घुस जाता है और उसकी देह के द्रवों में डूबा पड़ा रहता है। जब यह डिम्भ उसके भीतर प्रवेश करता है तब भिरड़ का जातक प्रायः आधा ही बढ़ा होता है। वरूथि के इस डिम्भ को यदि देखना हो तो जातक के उदर में अर्थात् उसके पिछले भाग के तीसरे या चौथे टुकड़े के आसपास भीतर की ओर देखना चाहिए। इसका रंग काला होने के कारण यह जातक की पारदर्शी खाल में से स्पष्ट दिखाई दे जाता है। जातक के शरीर में यह तब तक रहता है जब तक वह अपने कोष्ठ का मुंह बन्द नहीं कर लेता। इसके पश्चात् यह जातक के शरीर को छेद कर बाहर निकल आता है और छेद में से निकलते समय अपनी पुरानी खाल उतार देता है जो उस

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

दो सिर वाले सांप

श्री रामेश बेदी

पूंछ की ओर सिर नहीं

द्विशीर्ष सांपों के एक ही सिरे पर दो सिर होते हैं। पूंछ की ओर दूसरा सिर होने का मिथ्याभिमान तो सांप क्या कोई भी रीढ़दार प्राणी नहीं कर सकता। ये सांप साधारण रूप से नहीं पाये जाते। इन्हें हम अपवाद कह सकते हैं। ऐसे जीव जन्म के बाद बहुत देर तक जिन्दा नहीं रहते। वैज्ञानिक परिभाषा में इन्हें सेफलो-डाइकोटोमस ओफ़ीडिअन्स (cephalo-dichotomous ophidians) कहते हैं।

राक्षसी भूलें

दो सिर वाले सांपों ने बहुत अचम्भा पैदा किया है। वास्तव में ये प्रकृति की प्रयोगशाला में राक्षसी भूलें हैं। ये विकृतियां या विषमताएं ठीक वैसी ही हैं जैसे मनुष्य के पैर या हाथ में कभी-कभी अतिरिक्त अंगुलियां होती हैं। किसी-किसी पक्षी के अतिरिक्त टांग होती है। ड्यूक (Duke) विश्वविद्यालय संयुक्तराज्य अमेरिका के प्रोफेसर बर्ट कनिंघम (Bert Cunningham) ने इस प्रकार के असाधारण सांपों की रिपोर्टों का विशेष अध्ययन किया है। उन्होंने ऐसे साठ से अधिक सांपों का वर्णन किया है जिन में सिरों का दो में विभाग कम या अधिक स्पष्ट कहा जा सकता है।

तीन प्रकार

दो सिर वाले सांपों को तीन निम्नलिखित प्रकारों में रक्खा जा सकता है—

१. केवल सिर या सिर के साथ का निचला शरीर भी कुछ दूरी तक द्विधा विभक्त हो।

२. सिर और सिर के नीचे का भाग तो एक है परन्तु केवल पूंछ या उस से ऊपर कुछ दूरी तक शरीर दो भागों में विभक्त हो। भिन्नता का यह प्रकार (Posterior dichotomy) अत्यन्त दुर्लभ है।

३. दोनों सिरे पृथक्-पृथक् हों और मध्य शरीर कुछ दूरी तक एक हों। इन्हें सर्प-संसार के स्यामी-युगल कहा जाता है। इस प्रकार के केवल चार उदाहरण रिकौर्ड में हैं।

अधिक से अधिक कितने सिर ?

कुछ पाठकों को यहां स्वाभाविक जिज्ञासा हो सकती है कि एक साँप के अधिक से अधिक कितने

[पृष्ठ २७ का शेष]

छेद में फंसी रह जाती है और उसे बन्द कर देती है। इस समय यह कीड़े के आकार का बिना पैर का मांसल डिम्भ होता है और भिरड़ के जातक की ग्रीवा के चारों ओर लिपटा पड़ा रहता है। कुछ समय तक तो यह उस जातक का रस ही चूसता है किन्तु शीघ्र ही उसे पूर्ण रूप से खा जाता है और उस अभागे जातक के कोष्ठ में स्वयं कोशित के रूप में परिवर्तित हो जाता है। सृष्टि का विचित्र नियम देखिए। यह कोष्ठ बनाया किसके लिए गया था और अब उसमें पल कौन रहा है।

जब उस कोष्ठ की झिल्लीदार टोपी हटाई जाती है तो गुबरैला प्रायः बाहर निकलने के लिए उद्यत मिलता है। कई बार अनेक गुबरैले पास पास के कोष्ठों में ही रहते हुए पाए गए हैं। कोष्ठ से बाहर निकलते ही गुबरैला तुरन्त छत्ता छोड़ देता है और सम्भवतः पिता और माता का काम पूरा कर तुरन्त ही नष्ट हो जाता है, क्योंकि छत्ते के बाहर यह बहुत ही कम मिलता है। इसका मुख भी अल्पविकसित होता है जिससे अनुमान किया जा सकता है कि यह अधिक खाता पीता नहीं। गुबरैलों की एक बहुत बड़ी जाति रानी भिरड़ के डिम्भ पर ही अपना निर्वाह करती है। किन्तु अधिकतर गुबरैले श्रमिक भिरड़ों के डिम्भों पर ही रहते हैं।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

सिर हो सकते हैं ? पाठकों को ज्ञात होगा कि ग्रीक वीर हरकुलिस ने जो जल-सर्प (Hydra) मारा था उसके नौ सिर थे और भारतीय आख्यायिकाओं के शेषनाग के हज़ार सिर कहे जाते हैं।

राक्षसी भूलें
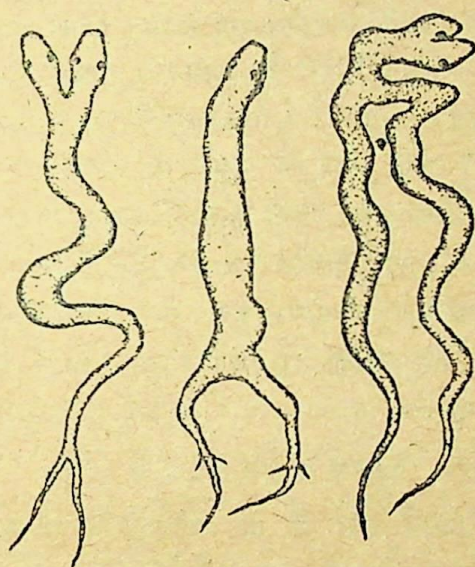
जैसे मनुष्यों में या गाय-बकरियों में कभी-कभी दो सिर के बच्चे हो जाते हैं उसी प्रकार सांपों में भी दो सिर, दो पूँछ या दो शरीर के सांप हो जाते हैं।

तीन सिर वाले भी

प्रकृति का अध्ययन करने वाले वैज्ञानिक को इन विश्वासों के लिए कोई युक्ति-युक्त आधार नहीं मिल सका है। आधुनिक प्राणि-शास्त्र निश्चित रूप से जानता है कि दो से अधिक सिर वाले कोई सर्पदेव नहीं होते। तीन सिर वाले सांपों के कुछ पुरातन रिकौर्ड उपलब्ध होते हैं। क्यूबे (Cube, १५३६) ने अपनी हौर्टस सैनिटैटिस (Hortus Sanitatis) में ऐसे एक उदाहरण को चित्रित किया है और शेन्किअस (१६६०) ने पाइरिनीज़ पर्वतों (Pyrenees Mountains) पर से एक उदाहरण का वृत्तान्त दिया है। साँपों में त्रित्व के अस्तित्व की सम्भावना अस्वीकार नहीं की जा सकती। यदि इसकी वास्तविकता को मान भी लिया जाय तो इसके बहुत ही कम उदाहरण मिल सकते हैं।

दो आत्माएं तो नहीं ?

दो सिर वाले साँपों में दोनों सिर अपनी इच्छा से कार्य करते हैं। प्रत्येक सिर में एक मस्तिष्क होता है और प्रत्येक मस्तिष्क, यद्यपि एक ही सुषुम्ना नाड़ी से संयुक्त हो सकता है, इस तरह कार्य करता है जैसे कि उसका किसी पृथक् शरीर से सम्बन्ध हो। एक दिशा में जाने के लिए दोनों सिर एक दूसरे से पूर्णतया सहमत नहीं हो सकते और दोनों में रस्साकशी हो सकती है जिसका परिणाम एक सिरका दूसरे सिर पर प्रभुत्व होता है।

आपस में लड़ाई—

श्रीयुत इ० सी० फ़िशर (१८६६) के पास दो सिर वाला एक स्प्रैडिंग ऐडर (Spreading adder) था जिसकी लम्बाई प्रायः एक फुट थी और उसकी आयु चार मास से अधिक थी। १८६७ में मद्रास टाइम्स ने उस पर एक टिप्पणी दी थी—

'साँप शीशे के बौक्स में रहता है और दूध, कच्चा मांस तथा रक्त दोनों सिरों से एक ही समय में खाता है। श्रीयुत फ़िशर दोनों सिरों को एक ही साथ खिलाना अच्छा समझते हैं क्योंकि वे दोनों एक दूसरे के प्रति ईर्ष्यालु प्रतीत होते हैं और कभी-कभी तो वे आपस में खेला करते हैं। साँप प्रतीत होता है कि फ़िशर महोदय को पहचानता है क्योंकि उनके आने पर वह बौक्स के पार्श्व में आ जाता है और प्रसन्नता में अपनी जीभें निकाल कर उनका स्वागत करता है।'

एक सिर दूसरे सिर को निगल गया

पोर्ट एलिजाबेथ की सर्पशाला (Snake-park) में एक साँप प्रदर्शित किया गया था। इसकी दोनों गरदनें तीन इञ्च लम्बी थीं इसलिये दोनों सिर पर्याप्त स्वतंत्रता से गति कर सकते थे। एक दिन एक

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

मेंढक को पिंजरे में खाने के लिए छोड़ दिया गया। अगले दिन सुबह साँप के मालिक ने आश्चर्य से देखा कि एक सिर दूसरे को वहां तक निगल गया है जहां से शरीर द्विधा विभक्त होता था। जल्दी से
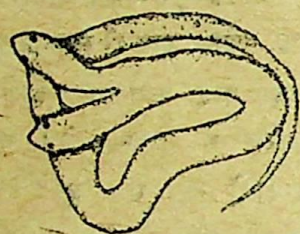
इस सांप के दोनों सिर गरदन तक कोई तीन इञ्च तक अलग-अलग हैं, उसके बाद एक ही शरीर है।

निगले हुए सिर को बाहर निकाला गया। यह अत्र तक मरा न था। कोमल मर्दन से गरदन का वल सीधा किया गया। इसके बाद दोनों सिर आपस में इतना मैत्री से नहीं रहते थे जितना पहले। जो मस्तिष्क कुछ समय के लिए एक बार भोजन बन चुका था, प्रतीत होता था, वह दूसरे को उसकी करतूत के लिए कभी क्षमा करने को तैयार नहीं था। एक दिन उसका उद्बुद्ध क्रोध चरम सीमा तक पहुँच गया और उसका परिणाम दोनों की मृत्यु हुई। वास्तव में तत्कालिक उत्तेजक कारण क्या था यह नहीं कहा जा सकता परन्तु यह स्पष्ट है कि एक सिर ने दूसरे को मारने के पूरे इरादे से आक्रमण किया था क्योंकि दोनों सिर और शरीर शीत तथा मृत पाये गये थे।

दोनों ने घातक हमले किये थे

यह सांप उस समूह (Opisthoglypha) का था जिसमें विषदन्त मुख के पिछले सिरे पर (back-fanged) होते हैं। शाप्स्टेकर गण=Schaapsteker Genus (सेमोफिस=Psammophis) का था। क्रुद्ध सिर ने दूसरे को बारबार काटा था और उसका अंत करने के लिए काफी विष सूचिविद्ध किया था। दूसरे ने भी उसका उत्तर देने में अपने विषैले दांतों का पूरा उपयोग किया था। यह बात मरे हुए शरीर की परीक्षा (postmortem) से पता लगी था।

अलग अलग समय में मृत्यु

द्विशीर्ष साँप में दो व्यक्तित्वों की स्वतन्त्र सत्ता बहुत स्पष्ट कही जा सकती है। एक ही शरीर में रहते हुए दो सिर अपने सांझे लाभ का कभी-कभी स्वप्न तक नहीं देखते और जीवनसंग्राम के लिए एक दूसरे के विरुद्ध युद्ध करते हैं और यह भी देखा गया है कि वे एक दूसरे से पृथक् अपना अन्त होने तक श्वास लेते रहते हैं। रेडी (१६४८) ने एक उदाहरण दिया है जिसमें दांया सिर सुबह प्रायः तीन बजे मर गया था, और बांया सिर सात घंटे पीछे मरा था।

प्रमाण पत्रों का शुल्क

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के प्रस्तोता सूचित करते हैं कि गुरुकुल कांगड़ी के स्नातक तथा पुराने विद्यार्थी समय समय पर प्रमाण पत्र मंगवाते हैं। प्रमाण पत्रों के लिए निम्नलिखित शुल्क नियत है। जो महानुभाव प्रमाण पत्र मंगवाएं वे पहिले यह शुल्क भेज दें तभी प्रमाण पत्र भेजे जा सकेंगे—

१. संस्कृत का स्नातक परीक्षा का प्रमाणपत्र २)
२. अधिकारी हिन्दी का प्रमाणपत्र १)
३. ,, अंग्रेज़ी ,, १)
४. माइग्रेशन सर्टिफिकेट ॥)
५. अंग्रेज़ी का स्नातक परीक्षा का सर्टिफिकेट ॥)
६. आयुर्वेद का विस्तृत प्रमाणपत्र अंग्रेज़ी १)
७. ,, ,, ,, हिन्दी १)

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

पुस्तक-परिचय

समालोचना के लिए प्रत्येक पुस्तक की दो प्रतियां आनी आवश्यक हैं। एक प्रति आने पर प्राप्ति-स्वीकार ही देना सम्भव होगा। —सम्पादक।

आयुर्वेदीय पदार्थविज्ञान— लेखक श्री रणजित राय आयुर्वेदालंकार। प्रकाशक वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन, कलकत्ता। सजिल्द, मूल्य ५) आयुर्वेद के यशस्वी लेखक के रूप में वैद्य रणजित राय ने बहुत उपयोगी कार्य किया है। उनकी अन्य पुस्तकों की तरह यह भी अपने विषय का विस्तृत ज्ञान देती है। दस अध्यायों में लेखक ने आयुर्वेदीय पदार्थ विज्ञान की विशेषता, तीन गुणों की विस्तृत व्याख्या, सांख्यमत से सृष्टि की उत्पत्ति, पञ्च महाभूत, आयुर्वेद सम्मत पुरुष तथा आत्मा का परिचय, कर्मपुरुष के गुण, मन और इन्द्रिय आदि विषयों की विवेचना की है। आयुर्वेद को ठीक-ठीक समझने के लिए आयुर्वेदीय पदार्थविज्ञान का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है। आधुनिक पदार्थ विज्ञान में तो केवल जड़ सृष्टि का विवरण किया जाता है परन्तु आयुर्वेदीय पदार्थ विज्ञान में जड़ और चेतन दोनों का ही विचार किया जाता है।

मानस रोग विज्ञान (प्रथम खण्ड)—लेखक डाक्टर बालकृष्ण अमर पाठक। प्रकाशक वैद्यनाथ अयुर्वेद भवन, कलकत्ता। मूल्य ४॥)। आयुर्वेदीय मतानुसार मन के स्वरूप, एवं मानसिक क्रियाओं व प्रक्रियाओं का अधिकारपूर्ण विवेचन, तथा आधुनिक मनोविज्ञान (साइकौलोजी) के साथ तुलनात्मक शास्त्रीय मन्तव्य को दिखाने वाली यह पुस्तक है। चिकित्सक को जिस तरह शारीरिक रोगों को ठीक करने के लिए शरीर रचना और क्रियाशास्त्र का ज्ञान आवश्यक होता है, इसी तरह मानसिक रोगों की चिकित्सा के लिए उसे मन का स्वरूप और कार्य समझना आवश्यक है। दोनों पुस्तकें चिकित्सकों और विद्यार्थियों के लिए उपयोगी हैं।

प्रारम्भिक आंग्ल भारतीय वैज्ञानिक शब्द-कोष—ले० डाक्टर रघुवीर। २ यसंस्करण, मूल्य ४॥), प्रकाशक सरस्वती विहार, नागपुर। यह पुस्तक इस वैज्ञानिक शब्द कोष का २ य संस्करण है। हमें प्रसन्नता है कि विद्वान् लेखक की इस उपादेय कृति का २ य संस्करण इतने अल्प काल में प्रकाशित हो रहा है। इसमें किसी को सन्देह नहीं कि भारतीय विद्यार्थी को विदेशी भाषा के अपरिचित वैज्ञानिक शब्दों को रटने तथा स्मरण करने में बहुत श्रम करना पड़ता है। उसका बहुत सा समय इसी अस्वाभाविक कष्ट में ही नष्ट हो जाता है। यदि अपनी भाषा के परिचित शब्दों में यह ज्ञान उस विद्यार्थी तक पहुँच पाए तो इस में अत्यन्त सरलता होना स्वाभाविक है। उसके भाव के हृदय ग्राही होने तथा मूल अर्थ को ग्रहण करने की योग्यता भी विद्यार्थी में होनी सहज है। जब तक मातृभाषा द्वारा विज्ञान की शिक्षा नहीं होती तब तक विज्ञान की वास्तविक समझ तथा उसके मूल में पहुँचने की प्रवृत्ति देशवासियों में हो सकना असम्भव है। डाक्टर रघुवीर कृत यह छोटा कोष प्रारम्भिक श्रेणियों के लिए पर्याप्त सामग्री उपस्थित कर रहा है। यदि इसी आधार पर उच्च कोटि के कोष निर्माण हों और देश में इस वैज्ञानिक नामावली का प्रचार हो तो देश में वैज्ञानिक जागृति हो सकती है। हम आशा करते हैं कि देश का यह वर्ग जिसकी दृष्टि विदेशी भाषा की आधीनता से सर्वथा लुप्त नहीं हो गई इस श्रम की कदर करेगा और भावी सन्तान के लिए सुगम मार्ग को प्रशस्त करेगा।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गुरुकुल-समाचार

ऋतु

वर्षा समाप्त हो गई है। सर्वत्र शान्ति, शोभा और शीतलता छाई हुई है। मौसम अतिशय सुहावना और सुखद बना हुआ है। प्रातः काल तो कुछ शीत का भी आभास होने लगा है। कुल भूमि में चारों ओर हरी भरी खेतियाँ लहरा रही हैं। अभी तक मच्छरों का उपद्रव आरम्भ नहीं हुआ है।

स्वाधीनता का पुण्य पर्व

भारत का तृतीय स्वाधीनता दिवस गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय में समारोह पूर्वक मनाया गया। १५ अगस्त को प्रातः काल ठीक ८ बजे आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति ने राष्ट्रीय ध्वजा का आरोहण किया। तत्पश्चात् महाविद्यालय भवन में आचार्य जी के सभापतित्व में एक विराट् सभा बुलाई गई। जिस में सब कुलवासियों ने भाग लिया। इस सभा में विभिन्न वक्ताओं ने स्वाधीनता के तीन वर्षों की सफलताओं और कमियों का सिंहावलोकन कराया। तथा नवीन आशाओं आकांक्षाओं के लिए उद्बोधन प्राप्त किया। अन्त में सभापति महोदय ने एक छोटा सा शिक्षाप्रद एवं मनोरञ्जक भाषण दिया, जिस में उन्हों ने स्वाधीनता प्राप्ति से लेकर भारत वर्ष की स्थिति का भलिभांति दिग्दर्शन कराया और ब्रह्मचारियों को स्वतन्त्र भारत के सच्चे नागरिक बनने की शिक्षा दी। अपरान्ह को विद्यार्थियों के आपस में मैच हुए और रात्रि को प्रीति भोजन के उपरान्त साहित्य गोष्ठी का मनोरञ्जक कार्यक्रम मनाया गया।

श्रावणी पर्व

गुरुकुल कांगड़ी में श्रावणी पर्व बड़े समारोह के साथ मनाया गया। प्रातः काल ५ बजे से वर्षा आरम्भ हो गई थी इस हेतु श्रावणी की कार्यवाही ७ बजे से प्रारम्भ हुई, जिस में सब कुलवासी विद्यालय के प्रार्थना भवन में सम्मिलित हुए। स्वस्ति वाचन एवं श्रावणी पर्व के मन्त्रों के साथ बृहद् यज्ञ सम्पन्न हुआ, तत्पश्चात् श्री आचार्य प्रियव्रत जी ने अपने शिक्षाप्रद प्रवचन में श्रावणी पर्व की महत्वपूर्ण व्याख्या करते हुए यह बताया कि इस पर्व का वास्तविक नाम उपाकर्म पर्व है। इस दिन से सब गुरु और शिष्य वेद का विशेष अध्ययन कार्य प्रारम्भ किया करते थे। यह दिन श्रावण की पूर्णमासी होने से संक्षिप्त पर्व "श्रावणी" नाम से प्रसिद्ध है। इस पर्व के साथ रक्षाबन्धन की भी महत्वपूर्ण व्याख्या की, जिस में उन्होंने इतिहास का उदाहरण देते हुए बताया कि चित्तौड़ की महारानी ने हुमायुं के पास राखी भेज कर किस प्रकार भाई बहिन का नाता जोड़ा और अपने देश को अततायियों के आक्रमण से रक्षा की। शान्ति पाठ के साथ कार्यवाही समाप्त हुई।

आयुर्वेद व्याख्यान माला

गुरुकुल आयुर्वेद परिषद् की ओर से एक पाक्षिक व्याख्यनमाला का आयोजन किया गया है। इस में अधिकारी विद्वानों द्वारा शल्य क्रिया, आरोग्य विज्ञान, जीवन विज्ञान, आयुर्वेद आदि विषयों पर उपयोगी और खोजपूर्ण व्याख्यान होंगे। व्याख्यानों की साइक्लोस्टाइल में मुद्रित प्रतियां मन्त्री, आयुर्वेद परिषद्, गुरुकुल कांगड़ी से पत्र व्यवहार करने पर प्राप्त हो सकेंगी।

स्वामी जी की अन्तिम अभिलाषा

गुरुकुल स्वर्ण जयन्ती के मन्त्री ने निम्न लिखित अपील देशवासियों के नाम निकाली है—

'गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी अमर हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज के साथ और श्री स्वामी जी का गुरुकुल के साथ सदा अटूट सम्बन्ध बना रहेगा। स्वामी जी ने अपने जीवन का सारगर्भित भाग गुरुकुल के निर्माण में ही व्यय किया था। रात दिन गुरुकुल की ही चिन्ता बनी रहती थी। गुरुकुल स्वामी जी का चिरस्थाई स्मारक है। यह

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

वर्ष ३ । अङ्क २ । आश्विन २००७

गुरुकुल-पत्रिका

व्यवस्थापक
श्री इन्द्रविद्यावाचस्पति
मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी ।

सम्पादक
श्री सुखदेव
विद्यावाचस्पति

श्री रामेश बेदी
आयुर्वेदालंकार ।

इस अङ्क में

अगले अंकों में

महाकाव्य और हमारा युग	श्री प्रभुदयाल अग्निहोत्री
गौ का दूध	डाक्टर रामस्वरूप
बालकों के प्रति हमारा कर्त्तव्य	श्री रामसिंह ठाकुर

अन्य अनेक विश्रुत लेखकों की सांस्कृतिक, साहित्यिक व स्वास्थ्य सम्बन्धी रचनाएं ।

मूल्य देश में ४) वार्षिक
विदेश में ६) वार्षिक

एक प्रति
छः आने

गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी की
विशेष गुणदायक औषधियां

च्यवनप्राश हाइपो

च्यवनप्राश में कैल्शियम व सोडियम आदि नवीन रासायनिक पदार्थ डालकर यह योग तय्यार किया गया है। खांसी, क्षय, निबलता दमा आदि में रामबाण है और शरीर वृद्धि के लिये उत्तम रसायन है।

मूल्य ३।) पाव।

सिद्ध मकरध्वज

स्वर्ण, कस्तूरी आदि बहुमूल्य वस्तुओं से तैयार किया गया है। सब प्रकार की निर्बलता को दूर करके शरीर में शक्ति व स्फूर्ति देता है व नया जीवन लाता है।

मूल्य ३॥।) माशा, ४५) तोला।

बादाम पाक

बादाम, पिस्ता व अन्य गुणदायक वस्तुओं से तैयार किया गया है। स्वादिष्ट, बलवर्धक पाक है। मस्तिष्क व शारीरिक दुर्बलता को दूर कर शक्ति देता है।

मूल्य ४) पाव।

गुरुकुल चाय

जड़ी-बूटियों के योग से बनी देशी चाय है। सुख व स्वास्थ्य के लिये परिवार में इसका प्रयोग कीजिये। थकावट, हल्के बुखार, खांसी, जुकाम में तुरन्त लाभ दिखाती है।

मूल्य ।-) छटांक, १=) पाव।

बसन्त कुसुमाकर

सोना, चान्दी, मोती आदि से तैयार की गई यह औषधि बहुमूत्र और मधुमेह रोग में विशेष गुणकारी है। शरीर की नसों की निबलता को हटाकर समर्थ और बलवान बनाता है। मूल्य ३) माशा, ३६) तोला

चन्द्रप्रभा वटी

शिलाजीत, लोह भस्म, वंशलोचन आदि लाभदायक चीजों से तैयार की गई यह औषधि अनेक रोगों को दूर करके शरीर में नई शक्ति लाती है। खून की कमी, जिगर की निर्बलता, बवासीर तथा विशेषकर प्रमेह व स्वप्नदोष आदि में लाभदायक है।

मूल्य १) तोला, ४) छटांक।

महालोहादि रसायन

इसके सेवन से शरीर में नया रक्त पैदा होता है। प्रत्येक ऋतु में सेवन करने योग्य उत्तम औषधि है।

मूल्य ६) तोला।

द्राक्षासव

बलवर्धक, स्वादिष्ट पेय है। शारीरिक व मानसिक थकावट को दूर करके स्फूर्ति व शक्ति देता है।

मूल्य १) पाव, २) पौंड।

गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी (हरद्वार)

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

वर्ष ३ । अङ्क ३ । कार्तिक २००७

गुरुकुल-पत्रिका

व्यवस्थापक
श्री इन्द्रविद्यावाचस्पति
मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी।

सम्पादक
श्री सुखदेव विद्यावाचस्पति
श्री रामेश बेदी आयुर्वेदालंकार।

इस अङ्क में

अगले अंकों में

मृत्यु विजय	श्री रामनाथ वेदालङ्कार
व्यक्तित्व के दोष और उनसे छुटकारा	प्रो० रामचरण महेन्द्र एम. ए.
गीता का स्वाध्याय	डाक्टर सुन्दरलाल
राष्ट्रभाषा का स्वरूप	श्री महेन्द्र रायजादा
प्रतीक्षा	श्री विष्णुमित्र

अन्य अनेक विश्रुत लेखकों की सांस्कृतिक, साहित्यिक व स्वास्थ्य सम्बन्धी रचनाएं।

मूल्य देश में ४) वार्षिक
विदेश में ६) वार्षिक
एक प्रति छः आने

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

ॐ

गुरुकुल-पत्रिका

[गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की मासिक पत्रिका]

मृत्यु के प्रति हमारा क्या भाव होना चाहिए ?

श्री अरविन्द

तुम्हारी पत्नी की दुःखद मृत्यु से तुम्हें जो आघात पहुंचा है उसका मैं अनुभव कर सकता हूं ! परन्तु तुम अब सत्य के अन्वेषक और साधक हो और तुम्हें मनुष्य की साधारण प्रतिक्रियाओं से ऊपर उठकर वस्तुओं को अधिक व्यापक एवं अधिक महान् ज्योति में देखने का यत्न करना होगा। यों समझो कि तुम्हारी वियुक्त पत्नी एक आत्मा थी जो अज्ञानगत जीवन के उतार-चढ़ावों के द्वारा विकसित हो रही थी—जैसे कि यहां और सब भी विकसित हो रहे हैं, उस विकास में ऐसी घटनाएं भी घटित होती हैं जो मानव मन को दुर्भाग्यपूर्ण प्रतीत होती हैं और एकाएकी आकस्मिक या अस्वाभाविक मृत्यु, जो पार्थिव जीवन के इस सदा अचिर इन्द्रजाल को—हमारे तथोक्त जीवन को—अकाल में ही समाप्त कर देती है, इसे विशेषकर दुःखदायी एवं दुर्भाग्य पूर्ण मालूम होती है। परन्तु जो मनुष्य बाह्य दृश्यप्रपंच के मूल में प्रवेश करता है उसे यह पता लग जाता है कि आत्मा की प्रगति में जो कुछ भी घटित होता है उस सबका हमारे अनुभवों की शृंखला में अपना आशय, अपनी आवश्यकता और अपना स्थान होता है। ये अनुभव उसे एक ऐसे संधिस्थल की ओर ले चल रहे हैं जहां वह अज्ञान को पारकर प्रकाश में पदार्पण कर सकता है। वह जानना है कि ईश्वरीय विधान में जो कुछ भी घटित होता है वह भले के लिये ही होता है, चाहे वह मन को इससे उलटा ही क्यों न मालूम हो। तुम अपनी पत्नी को एक ऐसी आत्मा समझो जो जीवन को दो अवस्थाओं के बीच की बाधा को पार कर गई है। उसकी अपने विश्राम लोक की ओर यात्रा में उसे सहायता पहुंचाओ—शांत भाव से मनन करो और भागवत सहायता का आवाहन करो कि वह इस यात्रा में उसे सहारा दे। यदि लगातार बहुत समय तक शोक किया जाय तो वह दिवंगत आत्मा की यात्रा में सहायता करने के बजाय उसमें विघ्न ही डालता है। अपनी क्षति की चिंता मत करो, बल्कि केवल उसके आध्यात्मिक कल्याण की बात सोचो।

जो कुछ हो चुका है उसे अब शांत भाव से विधि के विधान के रूप में माथे चढ़ाना चाहिए और इसे एक जीवन से दूसरे जीवन में उसकी आत्मा के विकास के लिये सर्वोत्तम समझना चाहिये, भले ही यह मानवी दृष्टि से सर्वोत्तम न भी हो, क्योंकि वह दृष्टि केवल

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

महाकाव्य और हमारा युग

श्री प्रभुदयालु अग्निहोत्री

सृष्टि के उषःकाल में जब मानव ने पहली बार नेत्रोन्मीलन किया तो उसके हृदय का अनेक अपरिचित रूप व्यापारों की ओर आकृष्ट होना स्वाभाविक था। अपरिचय ने जहां आकर्षण में तीव्रता उत्पन्न की, वहां कौतूहल और आश्चर्य को भी जन्म दिया। इन तीनों ने मिलकर संभवतः उसके नैसर्गिक 'अहं' की अतिरिक्त अनुभूति को प्रकाश में आने से रोक दिया, उसे अव्यक्त ही रहने दिया। फिर भी परिचय के साथ मानव की सामाजिक भावना का उदय हुआ। इस परिचय की सीमा जब तक लघु थी तब तक नदी, सर, तृण, वीरुध, वृक्ष, चांद, तारे सभी उसके परिवार के अंग रहे और फिर जैसे-जैसे सीमा बिस्तार हुआ पशु-पक्षी, कीड़े-मकोड़े उसके परिवार में आ शामिल हुये। कालान्तर में पुराने साथियों के साथ विरक्ति और नवांनों के प्रति अधिकाधिक अनुरक्ति बढ़ती गई। परिणामस्वरूप मानव के बीच ही देश, जाति, धर्म और वर्ग आदि की अनेक सीमारेखायें खिंचने लगीं। सभ्यतावादी सम्भवतः मानव के उस प्रथम रूप में शैशव या अल्हड़पन देखें और अन्तिम रूप में शक्ति-सम्पन्न उद्दाम यौवन, एक को मनोरञ्जन की वस्तु कह दे और द्वितीय को मैत्री की, किन्तु दृष्टि यदि वर्तमान से इधर उधर डुलने की क्षमता रखती तो देखती कि शक्त और अशक्त में कौन भव्य है और कौन अभव्य; कौन अंधकार का आह्वान करता है और कौन-ज्योतिष्पुञ्ज छिटकाता चलता है।

अहम् की अनुभूति

तो उस आदि-मानव के अहं की शुद्ध अहं के रूप में अनुभूति बहुत कुछ अव्यक्त ही रही। नवीन के आकर्षण ने बहुत समय तक उसे अपनी ओर झांकने का अवकाश ही नहीं दिया। ऋग्वेद की आदि ऋचाओं में उसका चिन्तन बहुत कुछ 'बहिर्गत' के विषय में मिलता है। भले ही 'बहिर्गत' उसके सम्मुख बहुत कुछ उपभोग्य के रूप में प्रगट हुआ हो, शुद्ध स्वतन्त्र सुन्दर के रूप में नहीं। फिर भी 'अहं' का स्थान प्रायः 'वयं' ने लिया है। कभी-कभी दृष्टि 'आवाम्' और 'नौ' तक अवश्य ही सीमित हुई, किन्तु उनके भीतर ही 'वयं' छिपकर ही बैठा रहा। 'पश्येम शरदः शतं, जीवेम शरदः शतं' 'समानी व आकूतिः, समाना हृदयानिवः, शन्नोदेवी-रभिष्टये' 'सहना ववतु सहनौ भुनक्तु' आदि ऋचायें इसकी साक्षिणी हैं। वाल्मीकीय रामायण तक यह 'स्व' से उपरति-स्वयंसिद्धि उपरति उपदेशक के रूप में बाहर से ठूसी हुई उपरति नहीं-स्थिर रही। आगे चलकर महाभारत-युग में उसी ग्रन्थ में देखते हैं, विषण्ण अवसान।

[पृष्ठ १ का शेष]

वर्त्तमान को तथा बाह्य रूप को ही देखती है। आत्म-जिज्ञासु के लिये मृत्यु जीवन के एक रूप से दूसरे में प्रवेशमात्र है, और वास्तव में कोई भी मरता नहीं बल्कि केवल प्रस्थान करता है। इसे इस रूप में देखो और क्योंकि प्राणिक शोक उसे उसकी यात्रा में सहायक नहीं हो सकता, अतः इसकी सब प्रतिक्रियाएं अपने से परे फेंककर, दृढ़ता से भगवान् के पथ का अनुसरण करो।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

रक्तपात उभयत्र है, पर प्रथम की परिणत हुई शान्ति में और द्वितीय की ग्लानि में। दोनों काव्यों की कला पर भी मानव के इस चिन्तन विपर्यास का प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है।

महाभारत के बाद भी मानव इस 'स्वोपासना' से पराङ्मुख न हो सका, उदासीन तक न हो पाया। यद्यपि उसका दम्भ उसने अनेक बार किया है। परिणाम इस काल्पनिक विरक्ति का अनुरक्ति से भी बुरा हुआ। यों स्वानुरक्ति स्वतः बुरी नहीं। कलाकार के लिये तो वह एक सीमा तक उपास्य है, किन्तु उसका साध्य बन जाना अनेक अनर्थों की सृष्टि करता है। दुखद यह है कि जिसे आज हम सभ्यता कहते हैं वह इस स्वस्ति के चारों ओर चक्कर लगाने के लिये तो प्रेरणा देती है (स्वस्ति का प्रयोग मैं यहां शायद के वैज्ञानिक अर्थ में नहीं लगा रहा हूं) किन्तु कोई केन्द्र बिन्दु नहीं निर्धारित करती, जहां क्षण भर विश्राम लिया जा सके। संतोष किया जा सके।

आधुनिक कलाकार

आज सभ्यता पूर्ण यौवन पर है, पर मानवता रुग्ण है। इसीलिये कलाकारों के साधना प्रवाह के ऊपर भी उसका 'अहं' इतने स्थूल रूप में तैरने लगा है कि उसे किसी भी कोण से स्पष्ट देखा जा सकता है। आज के स्वपरक मुक्तकगीत इस बात के निदर्शन हैं कि कलाकार अहं के प्रकाशन के लिये अत्यन्त व्याकुल है। अन्तर का बहिर्गत करने की जितनी उसमें आकुलता है उतनी बहिर्गत को अन्तरस्थ करने की नहीं। यह है हमारे काव्य में प्रबन्ध काव्यों के अभाव का एक कारण। जो कवि किसी प्रकार इस धारा को सूखने से बचाने का प्रयत्न कर रहे हैं, उसमें भी पुरातन से निकलकर नवीन को आत्मसात् करने की क्षमता और आगे बढ़ कर नवीन के निर्माण की क्षमता कब है। फिर कथा काव्य जिस धैर्य की मांग करता है उसे देने की शक्ति इस प्रकाशनाकुल युग में सरलता से कैसे मिल सकती है?

प्रबन्धकाव्य की एक और मजबूरी है। वह स्वयं कुछ नहीं कह सकता। निर्माता होने पर भी उसे अपने काव्य में बैठने का बहुत कम अवकाश मिल पाता है। उसका हृदय कभी-कभी ही किसी पात्र की वाणी में झांक पाता है; सो भी न झांके तो अच्छा हो। अन्यथा पात्र कोरे मृत्पिण्ड बन कर रह जाते हैं, प्राण उनमें नहीं प्रतिष्ठित हो पाता। गीतिकार को आत्माभिव्यक्ति की पूर्ण स्वतन्त्रता रहती है। दूसरी ओर प्रबन्ध काव्य की पंक्ति-पंक्ति में रस और रसाभास का लेखा जोखा नहीं रखना होता। कुछ पंक्तियों की सरसता सम्पूर्ण सन्दर्भ को सरस बना देती है।

हिन्दी के प्रबन्ध काव्य

हिन्दी के प्रबन्ध काव्य कथावस्तु की दृष्टि से अभी भी वहीं हैं, जहां वे ईसा की तेहरवीं शती में थे। सच कहा जाय तो उन प्राचीन आख्यानक काव्यों के पात्र अधिक सजीव, अधिक प्राणवान हैं। नाटक और उपन्यास के समान हमारे प्रबन्धकाव्य आज तक 'उत्पाद्य' कथावस्तु को नहीं अपना पाये हैं, यद्यपि नाटकीयत्व को अब वे आवश्यक मानने लगे हैं। कल्पित कथावस्तु संभव है, प्रारम्भ में पाठक को अजनबी जान पड़े फिर भी अन्य क्षेत्रों के समान इधर भी प्रयोग की आवश्यकता है।

हिन्दी में कवियों का ध्यान प्रबन्ध काव्य की ओर से जिस तरह हट गया है, उसे देखते हुये यह प्रतीत होता है कि प्रबन्ध काव्य शीघ्र

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

बालकों के प्रति हमारा कर्त्तव्य

श्री रामसिंह एम. ठाकुर

भाग्य का चक्र बड़ा विचित्र है। आज कल जहां हम जीवन के हर एक क्षेत्र में विशेषज्ञों की मांग करते हैं, चाहे वह मशीन से सम्बन्ध रखती हो, चाहे पशुओं और पौधों से, चाहे फलों और फूलों से, लेकिन जहां बालक का पालन पोषण और शिक्षा के सम्बन्ध का प्रश्न उठता है वहां पर अनपढ़ों को तो जाने दीजिये. पढ़े लिखे सम्पन्न माता पिता भी पालन पोषण की कला को सीखने की आवश्यकता नहीं समझते। उनका यह भ्रम है कि वे बच्चे का पालन पोषण भलि भांति जानते हैं। प्रायः उन्हें उदासीन ही पाया जाता है। इसी अभागी वृत्ति के कारण पशुओं, फल फूलों और पक्षियों के पालन पोषण की अपेक्षा भी बालक अत्यन्त उपेक्षित रह गया है और यही कारण है कि मनुष्य जाति दुःख के सागर में पड़ गई है। मानव समाज का इतिहास पालन पोषण की कठोर टीका टिप्पणी का इतिहास है यह युद्धों और व्यक्तियों के पारस्परिक वैमनस्य का इतिहास है। यदि मानव समाज ने इसकी ओर ध्यान न दिया तो मनुष्य जाति पूर्णतया नष्ट ही हो जायेगी। मनुष्य जाति का कलंकित इतिहास और बालकों के असमान्य व्यवहार की महामारी को देख कर यह सिद्धान्त निर्विवाद रूप से स्थिर होता है कि बाल पालन के लिये शिक्षा और शिक्षण विज्ञान की परमावश्यकता है। और सभ्य समाज का यह कर्त्तव्य है कि वह किसी भी ऐसे व्यक्ति को माता पिता होने का अधिकार न दे जिसने बाल पालन पोषण की शिक्षा प्राप्त न की हो। समाज और साधारण माता पिता में इस विषय के प्रति केवल जागृति का अभाव ही नहीं, विरोध भी है। बाल पालन पोषण के लिये बालक के मनोविज्ञान और उसके विकास की विधियों के ज्ञान की नितान्त आवश्यकता है। माता पिता का निश्चिन्त होने का सर्वोत्तम उपाय तो यह है कि वे अपने ऊपर अधिक से अधिक ५ वर्ष तक का ही देख रेख का भार लें। इसके पश्चात् वे अपने बच्चों को अच्छे स्कूलों और गुरुकुलों में प्रविष्ट करायें जहां बच्चों की २४ घण्टे की देख रेख शिक्षा विशेषज्ञों

[पृष्ठ ३ का शेष]

ही किसी नवीन दिशा की ओर मुड़ेगा। प्रसाद जी नाटकों, उपन्यासों और कहानियों के समान काव्य क्षेत्र में भी अपनी परम्परा नहीं बना पाये। लोगों ने उन्हें आश्चर्य के साथ देखा, सराहा पर साथ न चले। इसलिये हम निकट भविष्य में 'कामायनी' की किसी अनुजाता की आशा नहीं कर सकते। हाँ, एकाङ्की नाटकों और लघु कथाओं के समान एक-सर्गीय खण्ड काव्यों की कल्पना कर सकते हैं। लेखनियां इस ओर उठी भी हैं और ऐसा लगता है कि प्रबन्ध-काव्य का यह लघु रूप हिन्दी-काव्य-क्षेत्र में शीघ्र ही पूरे वेग से अवतरित होने वाला है। फिर भी जिस प्रकार कहानी, उपन्यास की स्थानापन्न नहीं हो सकती, एकाङ्की नाटक, नाटकों का स्थान नहीं ग्रहण कर सकते, उसी प्रकार लघु खण्ड काव्यों का प्रचलन होने पर भी महाकाव्यों और बहुसर्गी खण्ड काव्यों की महत्ता अक्षुण्ण बनी रहेगी।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

के द्वारा होती हो, गुरुकुल हमारे बालकों के लिये अधिक लाभदायक सिद्ध होंगे क्योंकि यहां पर हमारे देश की पुरानी शिक्षा प्रणाली को ही काम में लाया जाता है। मेरे लगभग ३० वर्ष के अध्यापन कार्य ने मुझे इस निष्कर्ष पर पहुंचाया है कि बच्चों की शिक्षा दीक्षा का ढंग हमारा प्राचीन होना चाहिये जिसमें आधुनिक नवीनता का सामंजस्य हो।

सर्व प्रथम हमें बच्चों को व्यवहार कुशल बनाना चाहिये, प्रत्येक अध्यापक जानता है कि बालकों की बुद्धि में विभेद पाया जाता है। कुछ बालक तेज होते हैं कुछ सुस्त, कुछ जल्दी से और आसानी से अपने आप को नई स्थिति के अनुकूल बना लेते हैं कुछ के लिये ऐसा करना कठिन होता है। कुछ एक ही बार बता देने से सीख जाते हैं। कुछ लोग चिपट कर मेहनत करने से भी नहीं सीख पाते। कुछ जल्दी और आसानी से सवाल निकाल लेते हैं, कुछ देर तक सिर खपाने पर भी हल नहीं कर पाते। अध्यापक जानते हैं कि सब की एक ही जैसी बुद्धि नहीं है यद्यपि वे सब का अध्यापन एक ही रीति से कराते हैं उन्हें भलि भांति विदित है कि सब बालक उससे बराबर लाभ नहीं उठा पाते। यही कारण है कि इनमें कुछ बालक बुद्धिमान और चतुर होते हैं और कुछेक पीछे के बेंच पर बैठने वाले रह जाते हैं। यदि हम महापुरुषों के जीवनों पर विचार करें तो हमें मालूम होगा कि उनके व्यवहार में कुछ गुण और लक्षण विशेष रूप से पाये जाते हैं। और इन्हीं गुणों के कारण वे बड़ी आसानी, तेजी और सफलता से बदलती हुई परिस्थिति को अपने अनुकूल बना लेते हैं वह सावधान और सजग हैं। उनकी कल्पना शक्ति उत्पादक और रचनात्मक है उनके विचार स्पष्ट और संयत हैं। उनकी रुचि चौमुखी और तीव्र है। उनमें आत्म विश्वास है और वह अपने जीवन और उसकी सफलता पर निष्पक्ष और निर्लेप भाव से विचार कर सकते हैं वह अपने दोषों और कमियों को जानते हैं और उनसे ऊपर उठ सकते हैं। उनका हृदय कोमल और मस्तिष्क ग्रहणशील होता है वे ऊँची नीची बातों को भाप जाते हैं। कठिनाईयों पर विजय पाते और नई दिशाओं में सोचने और काम करने से उन्हें आनन्द आता है। ऐसे ही मनुष्यों की बदौलत मानव जीवन और इतिहास का क्रम बदलता है और विज्ञान, कला, दर्शन, संस्कृति और व्यापार में हमें चमत्कार प्राप्त हुई है। जब से मानव की शिक्षा आरम्भ हुई है तभी से बुद्धि की कमी बेशी मानी गई है। हरेक अध्यापक अपनी कक्षा के विद्यार्थियों की योग्यता क्रमानुसार निर्धारित करता है। और यह क्रम उनके निरीक्षण पर निर्भर रहता है लेकिन सच तो यह है कि यह निश्चय बिल्कुल सच्चा नहीं हो सकता है क्योंकि एक तो अध्यापक का निरीक्षण बहुत होने पर भी इतना विविध और विस्तृत नहीं हो सकता। वह तो केवल अध्यापक उनके कपड़ों की सफाई उनके रङ्ग ढङ्ग, रहन सहन, बातचीत वगैरह से जैसा प्रभावित होता है उसी के आधार पर अपना निर्णय निश्चित करता है। बुद्धि नापने का पहला प्रयत्न इसी शताब्दी के आरम्भ में एक फ्रांसिसी मनोवैज्ञानिक एल्फ्रेड बेनेट द्वारा हुआ। उसे पेरिस स्कूलों की प्रबन्ध कमेटी से आदेश मिला कि वह तेज और हीन बुद्धि बालकों का भेद जानने और उन्हें अलग करने का उपाय ढूंढ निकाले। बेनेट के सामने यह समस्या थी उसने देखा कि तेज और हीन बुद्धि नापने का कोई साधन निकालना होगा। उसने साइमन नाम के एक मनोवैज्ञानिक की सहायता से कई परीक्षायें

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

तैयार कीं जो अवस्थानुसार कठिन होती गई और एक प्रश्नावली बनाई गई। दूसरे देशों में भी बेनेट के सराहनीय काम का अनुसरण हुआ। उसके बनाये हुये प्रश्न और परीक्षा प्रणाली का कई भाषाओं में अनुवाद हुआ इंगलैन्ड में डाक्टर बार्ट ने इनका प्रयोग किया और इन्हें आवश्यकतानुसार सुधारा। अमरीका में गार्ड्ड और टरमैन द्वारा संशोधन हुआ सब से अच्छा संशोधन टरमैन का माना जाता है। लेकिन हमारे देश के बालकों के लिये यह प्रश्नावली अधिक लाभदायक सिद्ध नहीं हुई। क्योंकि इस में आयु का प्रश्न अधिक अड़चनें पैदा करता रहा है। गुरुकुल शिक्षा प्रणाली में बालकों के मन के माप का अच्छा साधन निकाला है जो कि उनके व्रताभ्यास से कराया जाता है। बालक का २४ घण्टे अध्यापकों की देख रेख में रहने से बालक के व्यक्तित्व की परीक्षा आसानी से हो जाती है क्योंकि भौतिक शास्त्रों की देखा देखी अध्यापक मन की हर एक क्रिया को ठीक २ नापने तोलने का काम करते हैं, उन से बातचीत द्वारा उनकी रुचि, स्वभाव, दृष्टिकोण, भावनाओं का परिचय करते हैं। इससे उनके गुणों और लक्षणों का विश्लेशण कर लिया जाता है क्योंकि यह बातें साधारण स्कूलों में इसलिये नहीं हो सकतीं कि बालक अध्यापक के संपर्क में पूरी तरह नहीं आते।

सच्चे शिक्षकों की आवश्यकता

यदि वास्तव में विद्यार्थियों की कमियों की जांच की जाये तो मालूम होगा कि इनका सूत्रपात माता पिता से ही नहीं बल्कि शिक्षक के व्यक्तित्व से भी आरम्भ हुआ है। सत्य तो यह है कि जीवन संग्राम के कई संघर्षों में उन्हें इतना समय ही नहीं मिलता कि वह अपने आप को सच्चा शिक्षक बना सकें। उनकी आखें घड़ी की सूइयों पर अथवा महीनों की तिथि पर जमी रहती हैं। यदि भारत सरकार कभी इस बात की जांच करने पर कमर कसे तो उसे ज्ञात होगा कि दो तिहाई अध्यापकों को विवश होकर यह धन्धा लेना पड़ा है।

यदि सरकार और समाज देश की उन्नति चाहते हैं तो उनका यह कर्त्तव्य है कि वे योग्य शिक्षक रखें जो कि विद्यार्थियों के सामने एक अच्छा आदर्श रख सकें। इन सब कमियों को दूर करने का एक मात्र उपाय गुरुकुल शिक्षा प्रणाली ही है जिसमें बालक के मानसिक, शारीरिक तथा आध्यात्मिक विकास का पूरा ध्यान देकर सच्चा नागरिक बनाया जाता है।

अथर्ववेदीय मन्त्रविद्या—लेखक— पं० प्रियरत्न जी आर्ष, 'अथर्ववेद में जादू टोने, तन्त्र-मन्त्र, झाड़फूंक का विधान है' ऐसा बहुत से विद्वानों का मत है। प्रस्तुत पुस्तक में आयुर्वेद व अन्य वैज्ञानिक साधनों द्वारा सिद्ध किया है कि वस्तुतः जिन मन्त्रों को जादू टोना, तन्त्र-मन्त्र आदि से सम्बद्ध किया जाता है वे सम्मोहन विद्या व चिकित्सा-शास्त्र के द्योतक हैं। पं० प्रियरत्न जी वेदों के अद्वितीय विद्वान् हैं। इस पुस्तक का पारायण करके आप भी उनका विद्वता का परिचय प्राप्त कीजिये। मूल्य १।।) । मिलने का पता—प्रकाशन मन्दिर, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

मंगोलिया में हमारी धर्म-विजय

डॉ०: लोकेशचन्द्र, डी. लिट्.

कभी एशिया भारत को स्वर्ग-भूमि के रूप में देखता था। भारतभूमि की दर्शन लालसा, एशिया के सुदूरवासी श्रद्धा परिपूर्ण हृदयों को, हमारी मातृभूमि की ओर आने के लिये प्रेरित करती थी। वे बड़ी उत्सुकता से मरुस्थल तथा दुर्गम पर्वतों के कष्टों को झेल कर अस्थि-प्रवेशी शीत और असह्य आतपोष्णता की अवहेलना करके धीरे धीरे पग बढ़ाते हुये "स्वर्ग भूमि की" ओर अग्रसर होते और यहां के आचार्यों के चरण-कमलों के समीप बैठकर विद्यामृत पान करते थे। परन्तु यह स्थिति दसवीं शताब्दी के अनन्तर परिवर्तित हो गई। चीन के चिरकालिक यातायात को मध्य एशिया के शासकों ने रोक दिया एवं अन्य देशीय भक्तों की तीर्थ-यात्रा में बाधा डाली। भारतवर्ष के बौद्धों को भी धार्मिक कठिनाई का सामना करना पड़ा। अतः कुछ बौद्ध आचार्यों ने नेपाल; तिब्बत आदि में शरण ली और भगवान तथागत की "मध्यमा-प्रतिपत्" का उन देशों में प्रचार किया। इसी युग में बख्त्यार खिलजी ने भारत के विख्यात शिक्षा केन्द्रों का नाश आरम्भ किया। तब विक्रमशील विश्वविद्यालय के अध्यक्ष, काश्मीर निवासी पण्डित शाक्यश्री इस बबरता के नृत्य से विषण्णहृदय हो नैपाल होते हुये तिब्बत को चले गये। वहां उन्होंने संसार के उच्चतम गौरीशंकर पर्वत से पचास मील की दूरी पर विद्यमान सास्क्या विहार में निवास किया। उस विहार के महन्त ने उनके भारत के आचार्य तथा प्रकाण्ड विद्वान होने के कारण उनका शिष्यत्व स्वीकार करके अपने जन्म का कृत-कृत्य माना। अपने पूज्य गुरु शाक्यश्री के उपदेशों से उत्साहित होकर सास्क्या विहाराधीश ने मंगोलिया में धर्म विजय के लिये प्रस्थान किया। वहां पर उन्हें असीम सफलता प्राप्त हुई। एक और देश भारतभूमि को अपनी स्वर्गभूमि मानने लगा। उस देश के लोगों ने भगवान बुद्ध को अपना श्रद्धादेव स्वीकार किया। बौद्ध-धर्म सामान्य लोगों तक ही सीमित न रह कर राजधर्म बना। चंगेजखां का पुत्र आगोताई के सास्क्या विहाराधीश का शिष्य बना। तदनन्तर आगोताई के भाई सम्राट् मनाक्वान ने एक विराट् धर्म सभा बुलाई जिसमें यशस्वी सास्क्या विहाराधीश के शिष्य फग्स्पाने अन्य धर्मों पर महान विजय प्राप्त की। और राजकुल को बौद्धधर्म की दीक्षा दी। यह है मंगोलिया में बौद्धधर्म की स्थापना की कथा।

इसके पश्चात् सास्क्या विहार के किसी अधीश ने भारतीय अक्षरों के आधार पर एक लिपि बनाई। मंगोलिपि के नये नये प्रारम्भ किये हुये साहित्य को लिखने के लिये इस चीनी भाषा के समान ऊपर से नीचे लिखी जाने वाली लिपि का आविष्कार हुआ। इस लिपि का प्रयोग सम्राट् चंगेजखां तथा कुबलईखांन के उत्तराधिकारियों की स्वर्णमुद्राओं पर मिलता है। आदि में लिपी गोलाकार थी। परन्तु कुछ समय के उपरान्त चौकोर हो गई। इसके अक्षर भारत की तत्कालवर्तिनी तथा तिब्बती लिपी से बहुत मिलते हैं। और आधुनिक देवनागरी से भी कई अक्षर बहुत दूर नहीं हैं।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

मंगोलसम्राट् बौद्धधर्म के दृढ़ अनुयायी थे और उनकी अगाध श्रद्धा का प्रमाण इस बात से मिलता है कि सम्राट् कुबलईखां ने सास्क्या विहाराधीश को पश्चिमी योटदेश (तिब्बत) का साम्राज्य अर्पण कर दिया। तदनन्तर सास्क्या विहार के अधीशों का समस्त तिब्बत पर राजनैतिक-धार्मिक प्रभाव बहुत बढ़ा रहा। विक्रम संवत् की सत्रहवीं शताब्दी के आरम्भ में सम्राट्-अलतान खांन ने तिब्बत के दलाईलामा को जो कि उन दिनों मंगोलिया के राजनैतिक प्रभाव में बंधे थे, धर्म सेवा के निमित्त वज्रधर की उपाधि दी।

मंगोलिया में बौद्धधर्म के जाने से पहिले कोई साहित्य न था। भगवान बुद्ध की शरण लेने के उपरान्त मंगोल निवासियों ने संस्कृत से "भोट-भाषा" में अनूदित "कंजूर" नामक ११०० ग्रन्थों से अधिक संपूर्ण समूह का अनुवाद किया। यह बृहत्काय ग्रन्थ समूह आज भी संसार में विद्यमान है। परन्तु क्या भारत भी कभी इस अपने महान् गौरव चिन्ह को रखने तथा अध्ययन करने की इच्छा करेगा ?

भारतीय शब्द भी मंगोल देश की भाषा में प्रचुर-मात्रा में मिलते हैं। सूर्य की किरणों को वहां के सामान्य व्यक्ति को "रस्मि" कहते हुये सुनकर किस भारतीय का हृदय उल्लसित न होगा। महाराज शब्द का आज भी प्रयोग होता है। परस्पर सखासम्बन्ध को अद्यापि मंगोल संस्कृत--मैत्री (मंगोल भाषा में ह्रस्व ही लिखा जाता है) शब्द से द्योतित करता है। भारतीय के आश्चर्य की सीमा नहीं रहती जब वह "खत-मल सुनता है। यह खतमल मानवनिद्रा-भंगकारी रक्तपिपासु "खटमल" (संस्कृत "खट्वामल" खाटकामल) है। पूजास्थानों तथा विहारों पर लहराती हुई ध्वजा का नाम अब भी 'ध्वजा' ही है। विद्या का आज कल वहां पर अभियस (अभ्यास का विकृत रूप) ही होता है। कई भारतीय सम्भव है इस शब्द को न समझें, परन्तु उस देश के वासियों के लिये यह सामान्य शब्द है। 'लोकेश्वर,' 'मंजूशी,' 'शाक्यमुनि' आदि धार्मिक शब्दों से उनकी शब्दावली पूर्ण है। उस दूर देश में दैनिक उपासना संस्कृत में ही श्रद्धा से की जाती है। अंत में यह जानकर प्रत्येक भारतीय का मन प्रफुल्लित होगा कि बौखारा शब्द संस्कृत विहार का विकृत मंगोल-रूप है। मध्य-एशिया स्थित बोखारा नगर विहार शब्द का ही अपभ्रंश है। किसी काल में यह नगर बौद्ध विहारों से सुशोभित था पर आज............ ।

रूस देश भी मंगोल निवासियों की बौद्ध-धर्म के प्रति अगाध श्रद्धा को दूर नहीं कर सका। जब बुरियतों का नया गणराज्य स्थापित हुआ, तब साम्यवादियों ने धर्म के विरुद्ध प्रचार करना आरम्भ किया। और उन्होंने दर्शाया कि आधुनिक विज्ञान का अधिभौतिक दृष्टिकोण है। गणराज्य के महायान बौद्ध भिक्षुओं ने उसका निराकरण किया और प्रमाणित कर दिया कि बौद्धों के लिये आधिभौतिक दृष्टिकोण कोई नई बात नहीं तथा विज्ञान के आधारभूत सिद्धांत उनके दर्शन शास्त्र में पूर्व से ही विद्यमान हैं। इस प्रकार साम्यवादियों के मंगोल निवासियों को बौद्ध-धर्म से विमुख करने के प्रयत्न विफल हुये। क्या भारतीय इससे शिक्षा ग्रहण न करेंगे ? क्या वे अपने आंगल् तथा अन्य विदेशी प्रभावों के मोह को छोड़कर अपनी सनातन संस्कृति को न अपनायेंगे ?

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

काली मिर्च का रोचक इतिहास

[चौथी शती ईस्वी पूर्व से वर्तमान समय तक]

श्री रामेश बेदी

काली मिर्च, सोंठ और पिप्पली ये तीन चरपरी चीजें त्रिकटु के नाम से भारतीय चिकित्सा में बहुत व्यापक रूप से उपयोग में आती हैं। काली मिर्च और पिप्पली के रंग और गुणों में बहुत समानता है। ये दोनों चीजें मसालों में एक दूसरे के स्थान पर भारत में तथा भारत के बाहर भी प्रयुक्त होती रही हैं। वनस्पति शास्त्र की दृष्टि से भी ये दोनों एक ही गण की दो जातियों के पौदे हैं। ये दोनों द्रव्य जब पहले पहल विदेशियों की मण्डियों में बिकने गये तो लोगों ने समझा कि ये दोनों द्रव्य मिर्च के दो भेद हैं जिनमें से एक गोल है और दूसरा लम्बा। लाल मिर्च का ज्ञान उस समय तक संसार को नहीं हुआ था काली मिर्च केवल भारत में ही पैदा होती थी। यहां से पिप्पली और काली मिर्च जिस-जिस देश को गई वहां के निवासियों ने संस्कृत के पिप्पली शब्द के आधार पर ही काली मिर्च का नाम रख दिया।

अरबी नाम का स्रोत—संस्कृत

अरबी में इसे फिल्-फिल् कहते हैं। पुरानी अरबी में क्योंकि प होता ही नहीं था इस लिये इस भाषा में पिप्पली का विकृत रूप फिल-फिल् बन गया। मलाबार के प्रदेश में काली मिर्च बहुत पैदा की जाती थी इस लिये काली मिर्च के नाम पर ही इस प्रदेश को ईरानी और अरब के लोग 'बलाद-ए-फिल्-फिल्' कहने लगे थे।

यूरोपियन नामों का स्रोत–संस्कृत

फ्लुकिजर और हेन्बरी के अनुसार इसका आधुनिक अंग्रेजी नाम पेपर और इससे मिलते-जुलते दूसरी यूरोपियन भाषाओं के नाम संस्कृत पिप्पली शब्द से निकले हैं। पिप्पली के लकार में परिवर्तन पर्शियन लोगों ने किया होगा; जिनकी पुरानी भाषा में ल था ही नहीं। लैस्सन (१. २७८) ने प्रतिपादित किया था कि ग्रीक नाम पेपरी और लैटिन पाइपर सीधे भारतीय शब्द पिप्पली से ही बना लिये गये थे। लैटिन में काली मिर्च को पाइपर नाइग्रम (नाइग्रम = काली) और पिप्पली को पाइपर लौंगम (लौंगम = लम्बी) कहते हैं। समस्त संसार के वैज्ञानिकों में अब ये दोनों नाम अपना लिये गये हैं।

द्रविड़ भाषा के नाम भी संस्कृत से

मलयालम में काली मिर्च को आजकल नल्लमुळ्कु (नल्ल=शुद्ध, मुळ्कु=मिर्च) कोटि मुळ्कु (कोटि=लता) और कुरु मुळ्कु (कुरु=बीज) कहते हैं। सफेद मिर्च को किळि मुळ्कु (किळि=पक्षी, पक्षियों द्वारा खाई जाने वाली मिर्च) और वेल्लमुळ्कु (वेल्ल=श्वेत) कहते हैं। तामिल में काली मिर्च के लिए मिळ्कु और लाल मिर्च के लिए मिळकाय् (काय्=फली, फली वाली मिर्च) शब्द हैं। काली मिर्च का आदि घर मलाबार माना जाता है। यहां की मलयालम, तामिल आदि द्रवीड़ियन भाषाओं में मिर्च के मुळ्कु या मिळ्कु का संस्कृत के

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

मरिच या पिप्पली शब्द से कुछ भी साम्य नहीं है। यदि द्रवीड़ियन नाम प्राचीन है तो यहां की मूल उपज ने समस्त संसार में फैलते हुए किसी भी भाषा के नामों को अपने नामों से ज़रा भी प्रभावित नहीं किया, यह विचारणीय बात है। पिप्पली का मलाबारी भाषाओं में नाम तिप्पली है। क्या यह भी सम्भव है कि संस्कृत के मिरच का च क में तथा र ळ में परिवर्तित हो गया हो और द्रवीड़ियन शब्द मरिच से निकले हों।

व्यापार का मुख्य पदार्थ

मनुष्य जाति को जिन मसालों का सबसे पहले ज्ञान हुआ उनमें कालीमिर्च भी एक है। दूसरे मसालों के व्यापार की प्राचीनता का इतिहास जितने विस्तार से दिखाया गया है उतने विस्तार से और सम्यक् रूप से कालीमिर्च का नहीं लिखा गया। आजकल खाण्ड, कॉफ़ी और रूई की तुलना में यह कम महत्व का द्रव्य प्रतीत होता है परन्तु बहुत सदियों तक यूरोप और भारत के बीच में यह व्यापार का मुख्य पदार्थ रही है।

चौथी शती ईस्वी पूर्व में

चौथी शती ईस्वी पूर्व में थिओफ्रैस्टस इसे दवा के रूप में जानता था। उसने दो प्रकार की मिर्चों का उल्लेख किया था। सम्भवतः उसकी ये दो क़िस्में वर्तमान समय की गोल मिर्च (कालीमिर्च) और लम्बी मिर्च (पिप्पली) हों।

उन्नीस करोड़ रुपये में मरिच विहार

श्री लंका के दुट्ठ गामणी नामक बौद्ध राजा (१०१–७७ ईस्वी पूर्व) 'संघ के लिये बिना रखे' कोई पदार्थ नहीं खाया करते थे। एक बार उन्होंने प्रातःकाल के भोजन में भूल से इस नियम का पालन किये बिना मिर्च खा ली।[1] इसके प्रायश्चित्त स्वरूप राजा ने भिक्षुओं के लिये एक बड़ा विहार बनवाया जिसका नाम मरिच-वट्टी विहार पड़ा। यह तीन साल में पूरा हुआ था। इसके उद्घाटन समारोह में एक लाख भिक्षु और नव्वे हज़ार भिक्षुणियों के सामने राजा ने कहा था, 'संघ को न देकर भूल से मैंने एक मिर्च खा ली थी। अपने दोष के लिए दण्ड स्वरूप यह सुन्दर विहार और चैत्य बनवाया है। संघ इसे स्वीकार करे।'[2] मरिचवट्टी विहार पर राजा ने उन्नीस करोड़ रुपया खर्च किया था।[3]

महावग्ग (पहली शती ईस्वी पूर्व) में इसे त्रिकटु के रूप में ज्वर और अजीर्ण में प्रयोग किया गया है। (६. १६. १)।

चरक, सुश्रुत और कश्यप आदि ने तो इस को चिकित्सा में बहुत विस्तृत रूप से प्रयोग किया है।

बाइबिल में नहीं

हिब्रू की पुस्तकों में यह अज्ञात है। न ही गौस्पेल्स (सुसमाचार) के 'पुदीना, सौंफ़ और सोये' में इसको कोई स्थान प्राप्त है। हेरोडोटस ने इसके साथ किसी प्रकार की लोक-गाथा का सम्बन्ध नहीं दिखाया।

व्यापारियों से बढ़ कर

मिश्र के स्मारकों पर खुदी हुई चीजों में कालीमिर्च है कि नहीं यह निश्चित नहीं कहा जा सकता। किन्तु टालमी युग (तीसरी शती से पहली शती ईस्वी पूर्व तक) में मिश्र सम्भवतः

१. महावंश, परिच्छेद २५, ११२–११५।

२. महावंश, परिच्छेद २६, १६–१८।

३. महावंश, परिच्छेद २६, २३–२५।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

उसे समुद्रीय व्यापार द्वारा प्राप्त करने लगा था। मध्यकाल में जब काली मिर्च का मूल्य बहुत चढ़ गया था तब यह मिश्र हो कर जाती थी और मिश्र के शासक उन लोगों से कर में बड़ी राशि वसूल किया करते थे जो काली मिर्च या दूसरे मसालों का व्यापार करते थे।

प्लीनी का रोचक वर्णन

प्लीनी (लगभग ७० ईस्वी पश्चात्) की सूचनाएं रोचक हैं। वह बताता है कि मञ्जरी एक खोल में पड़ी रहती है। यदि इसे स्वय पककर फटने से पहले ही वृक्ष पर से तोड़ लिया जाय तो यह वह मसाला बनता है जिसे लम्बी मिर्च (पिप्पली) कहते हैं। परन्तु यदि ये पक जांय तो खोल फट जाता है, धीरे-धीरे दाने सफ़ेद होने लगते हैं। बाद में इन्हें धूप में सुखा देते हैं। इनका रंग बदल कर काला हो जाता है।...

अलेक्ज़ेण्ड्रिया के सरसों के दानों की लम्बी मिर्च (पिप्पली) में शीघ्र ही मिलावट कर दी जाती है, इसके एक पौण्ड का दाम १५ रोमन दिनार होता है। सफ़ेद सात दिनार की एक पौण्ड और काली चार दिनार की एक पौण्ड बिकती है। एक दिनार (डिनारियस) साढ़े सात आने के बराबर होता था। उसने आश्चर्य प्रकट किया था कि 'मानव जाति काली मिर्च को पता नहीं क्यों इतना बढ़िया द्रव्य समझती है जिसमें न तो मधुर स्वाद है और न ही वह देखने में अच्छी लगती है, चरपराहट के अतिरिक्त उसमें कोई अच्छा गुण भी तो नहीं!'

विनिमय में सोना

प्लीनी भारत में काली मिर्च की खेती, उसकी किस्में, संग्रह और उसमें लगने वाले एक रोग का (जिसमें दाने खोखले हो जाते हैं) वर्णन करता है। उस समय भी भारतीय इसकी कृषि में दक्ष थे। उन दिनों सोंठ, काली मिर्च और पिप्पली भारत से बाहर जाती थीं और बहुत अधिक दामों पर बिकती थीं। यह निर्यात व्यापार प्लीनी के समय इतना अधिक बढ़ गया था कि उसने इन मंहगे मसालों को खरीदने में रोमन सोने के भारत में भारी निर्यात की शिकायत की थी। वह लिखता है कि 'दोनों किस्म की मिर्चों और सोंठ के बदले में हमें यहां सोना और चांदी देकर ये पदार्थ खरीदने पड़ते हैं।'

मंगलौर और कालीकट से निर्यात

लगभग चौंसठ ईस्वी पश्चात् में लिखे गये, 'पेरिप्लस ऑफ़ दी एरिथ्रिलन सी' में बताया गया है कि काली मिर्च बकरे (Bacare) से निर्यात होती है। मुज़रिस और नेलकिंडा से यह जहाज़ों पर लादी जाती है। केवल इसी प्रदेश में यह बड़े पैमाने पर उगाई जाती है। पता लगाया गया है कि ये स्थान मलाबार तट पर मंगलौर और कालीकट के बीच में थे।

फलियों की तरह काली मिर्च के फल

डिओस्कोराइडिस (लगभग १०० ईस्वी पश्चात्) ने लिखा है कि इसके फल शुरू में फलियों की तरह लम्बे होते हैं और इस लम्बी मिर्च में ज्वार की तरह छोटे-छोटे दाने होते हैं। जो बाद में पूरी काली मिर्च बन जाती है। ऋतु आने पर यह फट जाती है और इसमें से एक गुच्छा निकलता है जिस पर छोटे-छोटे फल लगे रहते हैं। इनमें से जो कच्चे अंगूरों की तरह दाने रह जाते हैं उनकी सफ़ेद मिर्च बन जाती है। आंख के रोगों के लिए और जन्तुओं का विष नष्ट करने के लिए यह अत्युत्तम द्रव्य है।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

जहाज़ों में तीन–चौथाई कालीमिर्च

रोम में मिर्च पर कर बहुत बढ़ गया था। विन्सेण्ट (कॉमर्स एण्ड नेवीगेशन आफ दी एन्शिएण्टस, जिल्द २, पृष्ठ ४५८, १८०७) ने दिखाया है कि काली मिर्च और पिप्पली उन भारतीय मसालों में थे जिन पर १७६ ईस्वी पश्चात् के लगभग एलेग्जेण्ड्रिया में रोमन चुंगी दी जाती थी। भारत और रोम के बीच यह व्यापार का मुख्य पदार्थ था। पश्चिम की ओर जाने वाले औसत लद्दू जहाज़ में शायद तीन चौथाई काली मिर्च भरी होती थी। रोमन रसोई की अत्यधिक मंहगी चीज़ों में यह एक थी।

उपहार में

सेन्ट सिल्वेस्टर के अधीन गिरजे को सम्राट् कौन्स्टेन्टाइन (चौथी ईस्वी पश्चात्) द्वारा दिये गये उपहारों में मंहगे बरतन सुगन्धित गोंदें; मसाले, लोबान, नड़ (nard), गूगल, बोल, दालचीनी, कपूर और मिरच थी।

संस्कृत काव्यों में

संस्कृत के कवियों में कालीदास (पांचवीं शती ईस्वी पश्चात्) ने कालीमिर्च के उत्पत्ति स्थान का वर्णन ठीक किया है। वे लिखते हैं कि 'दिग्विजय करते हुए मलयाचल की घाटी में रघु की सेनाओं ने जब पड़ाव डाला तो आस पास के मरिचवनों में हारीत पक्षी घूम रहे थे।[1]'

कैलाश में चकोरों का मिर्च चुगना

बाण (७ वीं शती) ने भी अपने नायक चन्द्रापीड़ को दिग्विजय यात्रा के प्रसंग में कैलाश और विन्ध्याटवी में कालीमिर्च का उल्लेख किया

१. मारीचोद्भ्रान्त हारीता मलयाद्रे रुपत्यकाः ॥
—रघुवंश, सर्ग ४, श्लोक ४६।

है। वे लिखते हैं कि 'कैलाश के पूर्वोत्तर दिशा में एक छोटे वन के मध्यभाग में अच्छोद नाम के तालाब के दक्षिण से आते हुए संगीत को सुनकर वह घोड़े पर से उतरा। उस वन में चन्द्रापीड़ ने चकोरों को निर्भयता से मरिच के अकुरों को खाते देखा।'[1]

कुररों का भोजन—मिर्च के पत्ते

इसी तरह उसने विन्ध्याटवी में मद से मस्त कुरर पक्षियों के झुण्डों को मिरच के पत्तों को कुतरते हुए देखा था।[2]

इन प्रदेशों में मिर्च की उत्पत्ति स्वीकार करने में वनस्पति शास्त्र के विद्यार्थी को कोई आधार नहीं मिलता।

प्रियों के साथ मिर्च और मधु

राजशेखर (८८०–९२० ईस्वी पश्चात्) ने मिर्च की जन्म भूमि दक्षिण भारत लिखी है।[3] वहां नगरों में द्रविड़ स्त्रियों का ताम्बूल खाने के बाद मिर्च चबाते हुये अपने प्रियों के साथ शहद की शराब पीना सामान्य बात रही होगी।[4]

१. अचकितचकोरचुम्बितमरिचांकुरैः...पादपैः परिवृतं शूलपाणेः शून्यं सिद्धायतनमपश्यत्।
—कादम्बरी, पूर्वभाग, शिव सिद्धायतनम्।

२. मदकलकुररकुलदृश्यमानमरिचपल्लवाः।
—का०, पूर्वभाग, विन्ध्याटवीवर्णनम्।

३. आ मूलयष्टेः फणिवेष्टितानां
सचन्दनानां जननन्दनानाम्।
कक्कोलकैलामरिचैर्युतानां
जातीतरूणां च स जन्मभूमिः ॥
—काव्य मीमांसा, अध्याय १७।

४. पिबन्त्यास्वाद्यमरिचं ताम्बूलविशदैर्मुखैः।
प्रियाधरावदंशानि मधूनि द्रविडाङ्गनाः ॥
—का. मी, अ. ८।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

असन्तुष्ट मिट्टी

श्री विराज

मिट्टी भूमि पर पड़ी रहती थी; सब उसे पांवों से कुचलते हुए जाते थे। वह पानी में घुली हुई बहती थी; कोई उसे छूना भी न चाहता था। वह आकाश में उड़ती थी, सब कोई दुःखी होते थे और उससे बचना चाहते थे।

'क्या यही मेरा प्राप्य है?' क्षुब्ध मृत्तिका ने सोचा, 'लोग मुझे पांवों से रौंदें, घृणा करें और शाप दें? मुझे, जो कि मैं समस्त संसार का आधार हूं, जीवन हूं? यह नहीं होगा। मैं यह नहीं रहूंगी।'

उसने रूप बदला।

× × ×

उसकी सुगन्ध से दिग्दिगन्त सुवासित हो उठे। मलय पवन उसे झूला झुलाने लगा। रवि की किरणें आ कर उसका मुख चूमने लगीं।

यह एक छोटा सा अचेतन पुष्प था, जिसे देख कर आंखें तृप्त होती थीं, जिसे छूकर अंगुलियां कृतार्थ होती थीं। भ्रमर उस पर मुग्ध थे, कोयल उसके गीत गाती थी।

परन्तु वह एक अचेतन मूल्यहीन पुष्प था, जिसे किसी की भी छोटी से छोटी इच्छा पर बलि किया जा सकता था। देवता अपनी पूजा के लिये उसे ले सकते थे, नारी अपने शृङ्गार के लिये और वैद्य अपने औषध निर्माण के लिये उसे तोड़ सकता था, शिशु अपनी उत्सुकता मिटाने के लिये उसे नोंच सकता था, वन-हरिण पत्तों के साथ उसे भी चबा सकते थे।

उसमें और मिट्टी में केवल एक पग की दूरी थी।

'नहीं, मैं यह भी नहीं रहूंगी।'

उसने और रूप बदला।

चेतना की चंचलता जैसे उसमें समाती नहीं थी। पग चंचल थे, नेत्र चंचल थे, मन चंचल था, उसका रोम रोम चंचल था। वेग में हार मान कर वायु ने उसे अपना वाहन बना लिया था।

घने हरे वन में अपने सुकुमार शिशुओं के साथ उसकी क्रीड़ाएं देख कर वन देवियों को भी ईर्ष्या होती थीं।

हरी घास उसकी सहचरी थी। वही भोजन थी, वही शय्या थी, वही क्रीड़ा का साधन थी। उस वन की मृगी की संध्याएं और उषाएं पृथ्वी की गोद में बीत जाती थीं। उसे देख कर उसे छूने और पकड़ने का मन होता था, परन्तु भय के मारे वह किसी को पास न आने देती थी। उसकी काली आंखों के भाव को देख कर मन न जाने कैसा हो उठता था।

वह निरीह पशु थी।
'नहीं, मैं यह भी न रहूंगी।'
उसने फिर रूप बदला।

× × ×

उसे देख कर देवताओं का मन होता था कि हम भी यही बन जांय। उसकी एक एक क्रिया में, उसकी एक एक मुद्रा में, उसकी एक एक चितवन में हज़ार हज़ार भाव झलकते थे।

वाणी थी, किन्तु हँसने और रोने के अतिरिक्त वह और कुछ व्यक्त नहीं कर सकती थी। जो देखता था, वही गोद में उठाता था और चूमता था।

उसके छोटे छोटे सुकुमार अग शरीर पर छूकर मानों अमृत का लेप करते थे। सुनील

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

आकाश की ओर ताकती हुई, पूर्णिमा के चन्द्रमा की ओर देखती हुई, फूलों और तितलियों का अनुसरण करती हुई उसकी आंखों की दृष्टि को देख कर जान पड़ता था कि यह भी उन्हीं में का प्राणी है। राह भूल कर कहीं और आ पहुंचा है।

अपनी छोटी छोटी अंगुलियों से बाल पकड़ लेने पर या मुख छू देने पर ऐसा प्रतीत होता था जैसे स्वर्ग का जीते जी शरीर से स्पर्श हो गया हो।

उसकी किलकारियां मन को पुलकित करती थीं, उसका चीत्कार रोम रोम को सजग कर देता था। उसके हास पर देवत्व निछावर था, उसका भोलापन पशु को मनुष्य बना सकता था। वह अबोध शिशु था।

'नहीं, मैं यह भी न रहूंगी।'

उसने फिर रूप बदला।

× × ×

रूप की जैसे कोई सीमा ही नहीं; यौवन जैसे अंगों में समाता नहीं। सुन्दर और सुकुमार उस नवयौवना को देख कर ऋषियों, मुनियों और योगियों तक का मन चंचल होता था।

सजल श्यामल मेघों के समान उसके केश थे और चन्द्रमा के समान उसका मुख। उसकी दृष्टि से कभी चांदनी बरसती थी, कभी धूप झलकती थी, और कभी बिजली सी कौंधती थी। उसके अरुण कपोल बरसाती संध्याओं और उषाओं के समान मनोहर थे।

उसके वक्षों में और देह पर वसन्त का वास था और मन में काम देव का।

वह जिसे देख लेती थी, वह जड़ हो जाता था और जो उसे देख लेता था, वह पत्थर।

उसकी भौंहों का संकेत टाल सके ऐसा पुरुष कोई न था।

वह अबला थी। परन्तु उसकी मीन सदृश आंखों से जब आंसू की दो बूंदे भी बह कर कपोलतल पर आ जाती थीं, तब बड़े-बड़े बलियों का बल स्वयं परास्त हो जाता था।

उसके हृदय में ईर्ष्या की प्रचण्ड आग धधकती रहती थी। दया न थी, क्षमा न थी, विश्वास परायणता न थी, वह मानों स्वार्थ की साकार प्रतिमा थी।

दूसरों के दुःख से वह सुखी होती थी, इससे दूसरों को दुःखी देखना चाहती थी। जो कुछ चमकीला होता, वह उसे भा जाता, और जो कुछ उसे भा जाता; उसे वह छीन झपट कर आत्मसात् कर लेना चाहती।

फूलों को उसने नोंच डाला, लताओं को बन्दी बना लिया, और संसार की सब चमकीली चीजें समेटनी प्रारम्भ कर दीं।

पुरुष उस पर रीझता था, उसके गुण गाता था, और उसकी एक-एक आज्ञा पालने को उद्यत रहता था। पर उससे डरता न था।

'हां, मैं ऐसा जीवन चाहती हूं। पर यह पर्याप्त नहीं है। मैं यह भी नहीं रहूँगी'।

और उसने फिर रूप बदला।

× × ×

वह सूर्योदय से सूर्यास्त तक परिश्रम करता था, जिससे उसका शरीर दृढ़ और सुगठित हो गया था। बलवान् विशाल बाहु थे, चौड़ा वक्षस्थल था, और निरभ्र नील आकाश के समान उज्ज्वल नेत्र-युगल थे।

इन नेत्रों में से उसकी मानवता अपना रूप दिखाती थी। शोक में वे सजल हो उठते थे

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

और हर्ष में उज्वल। कभी पत्नी और पुत्र को, अपने पालतू पशुओं को देख कर उनमें प्यार छलकता था, तो कभी आततायियों को देख कर उनमें क्रोध का लपटें चमकती थीं। उत्साह और भय उन्हीं की राह से अपना रूप झलका जाते थे।

क्रोध में भर कर वह आक्रमण करता था पर विनत पर दया भी करता था। बच्चों को वह पीटता था, पर बाद में पश्चाताप और प्यार भी करता था। पशुओं से वह काम लेता था, पर उन्हें भोजन देता था और उनकी सब सुविधा का ध्यान रखता था। मां समझ कर वह गौ से दूध लेता था और मां की तरह उसकी सेवा भी करता था।

वह अपने परिश्रम के फल पर जीवित रहता था। उसके पास नाम मात्र को मामूली सम्पत्ति थी। भूखा वह कभी नहीं सोता था।

बड़े बड़े सम्पत्तिशालियों के वैभव को देखकर उसे भी लोभ होता था, पर भाग्य का आदेश समझ कर वह मन मार कर रह जाता था। कभी कभी वह चोरी भी करता था, पर डाका डालने का साहस उसकी छाती में न था।

उसके जीवन में सुख अधिक नहीं था, और न दुःख कम। उससे अधिक सशक्त लोग बल-पूर्वक उसका परिश्रम द्वारा उपार्जित धन छीन ले जाते थे। चोर उस पर भी दया न करते थे। कई बार विवशता में उसे ऐसे काम करने पड़ते थे, जिनके अपमान की वेदना से उसका अन्तस्थल खदकने सा लगता था।

उसे अपने वैभवहीन जीवन में मृत्यु निरन्तर अपनी ओर बढ़ती दीख पड़ती थी और अपने आधारशून्य परिवार की कल्पना करके उसकी छाती कांप उठती थी। पर उपाय कोई न था।

वह परिश्रमजीवी मानव था।

'यह भी कोई जीवन है। मैं यह नहीं रह सकती।'

और उसने अपना रूप फिर बदला।

× × ×

माया ममता नहीं, प्रेम और मोह नहीं, लज्जा और भय नहीं, बाप को मार कर उसने राजसिंहासन पर अधिकार कर लिया। कई भाई थे, कुछ भाग निकले, जो भाग न सके, वे बाप के साथ कर दिये गये।

सब ओर आतंक छा गया।

उसके सिर के ऊपर राजछत्र था, सिर पर राजमुकुट, हाथ में राजदण्ड, और राज-सिंहासन पर बैठा हुआ वह प्रलयाग्नि के समान तेजस्वी दीख पड़ता था। उसकी ओर मुख उठाते आंखें चौंधियाती थीं।

उसके पराक्रम की गाथा घर घर में, देश विदेश में सब जगह गूंज रही थी, क्योंकि प्रत्येक घर में से कोई न कोई या तो उसके पक्ष में या उसके विरोध में लड़ते हुये मारा गया था।

उसकी मुद्रा चीते के समान चपल थी और स्वर सिंह गर्जन के समान गंभीर। और उसका हृदय? हृदय उसके शरीर में था ही नहीं, उसकी जगह एक छोटा सा भेड़िया गुर्राता हुआ बैठा था।

उसे लहू की प्यास थी और जीवित मांस की भूख। पुरुषों का वह खून चाहता था और स्त्रियों का मांस। जो पुरुष उसकी आंख में खटका, वह दुनियां से बाहर कर दिया गया

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

और जिस युवती पर उसकी आंख अटकी, वह राजमहल के अन्दर कर ली गई।

संसार त्रस्त होकर हाहाकार कर उठा।

तब उसकी बर्बरता जैसे चलना सीखने लगी। उसकी इच्छाएं नित्य नये रोंगटे खड़े कर देने वाले रूप धारण करने लगीं।

एक दिन उसकी इच्छा होती कि सारे शहर को आग लगा कर देखा जाय कि तब वह कैसा दीख पड़ता है। अगले दिन इच्छा होती कि देखा जाय कि भूखा शेर जीवित मनुष्य को कैसे फाड़ता है। किसी दिन वह चाहता कि गर्भिणी स्त्री का जीते जी पेट चीर कर गर्भस्थ शिशु की गतिविधि का निरीक्षण किया जाय। और जो दृश्य उसे रुच जाता, वह तो फिर बार बार देखने की चीज़ बन जाता।

बड़े बड़े वीर उसके सेनापति थे, कई पराक्रमी सामन्त थे, प्रकाण्ड विद्वान् उसके सभासद् थे। कुशल चित्रकारों ने अनेक मुद्राओं में उसके चित्र बनाये, जिनमें वह देवताओं से भी उत्कृष्ट चित्रित किया गया था। एक प्रतिभाशाली कवि ने उसकी कुलकारिका लिखी। मूर्तिकारों ने उसकी प्रतिमाएं बनाईं।

धर्म के पुजारियों ने उसे 'धर्म-रक्षक' की उपाधि दी।

उसने बड़े बड़े दुर्ग बनवाये, सुन्दर समाधियां बनवाईं, शिलालेख लिखवाये और स्तूप खड़े करवाये, जिससे उसकी कीर्ति अक्षय रहे।

उसने मित्रों से विश्वासघात किया, सेवकों को मृत्युदण्ड दिया, विरोधियों से संधियां कीं और तोड़ीं, निरपराधों के सिर पर अनन्त यातनाओं का बोझ लाद दिया, खेतियां उजाड़ दीं, नगर वीरान कर दिये, प्राचीन साहित्य और कला वस्तुएं नष्ट कर दीं।

हिंसा से उसके नेत्र देदीप्यमान थे और हाथ खून से सने हुए थे।

उसकी छोटी से छोटी इच्छा के लिये संसार की कोई भी चीज़ बलि की जा सकती थी।

वह प्रबल पराक्रमी अतिमानव राजराजेश्वर था।

'यह मैं क्या बन गई?' मृत्तिका ने कहा पर मनुष्य आज मुझे पूजता है, मुझे सिर झुकाता है, और मुझसे थर थर कांपता है।

'शायद वह यही भाषा समझता है! पर क्या उसे एक यही भाषा समझनी चाहिये? नहीं, मैं उससे इस भाषा में बात नहीं करूंगी, मैं, जो कि सबका आधार हूं, जीवन हूं।

'मैं यह नहीं रहूंगी।'

और प्रबल पराक्रमी अतिमानव राजराजेश्वर का मुकुट भूमि पर गिर पड़ा, राजदण्ड हाथ से छूट गया, और वह प्रलयाग्नि के समान तेजस्वी मिट्टी मिट्टी में मिल गई।

परन्तु मृत्तिका को सन्तोष नहीं है। वह बार बार रूप बदलती है और फिर असन्तुष्ट होकर अपने पहले रूप में आ जाती है।

हे चिर असन्तुष्ट मृत्तिके, हे जगज्जीवन की धात्री, तुमको शत शत प्रणाम!

उच्च कोटि का साहित्य पढ़ने के लिये 'गुरुकुल-पत्रिका' के ग्राहक बनिये।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

विनाशकारी काम रिपु

प्रो० रामचरण महेन्द्र एम. ए.

काम क्रोध मद लोभ की
जब तक मन में खान।
तब तक पंडित मूरखों
तुलसी एक समान॥

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्॥

अर्थात्—काम क्रोध और लोभ तीनों आत्मा के नाशक और नरक के द्वार हैं। इसलिए उन्हें त्यागना चाहिये।

अर्जुन श्री कृष्ण भगवान से प्रश्न करते हैं कि योगेश्वर पाप करने में बड़े बड़े घोर दुःख हैं। फिर भी जानते बूझते मनुष्य किस प्रेरणा से पाप कर्म में प्रवृत्त होता है। योगेश्वर श्री कृष्ण उत्तर देते हैं—

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्धयेनमिह वैरिणम्॥
॥ गीता॥

अर्थात्—हे अर्जुन! कामक्रोध जो कि रजोगुण से उत्पन्न हुए हैं यही भय देने वाले हैं। इन्हीं से प्रत्येक पाप में प्रवृत्ति होती है! ये ही बड़े शत्रु हैं। जहां तक हो सके इनके विनाश का उपाय करो।

"धूमेना व्रियते वह्निर्यथाऽदर्शो मलेन च।
यथोलना बृत्तोगर्भस्तथा तेनेदमावृतम्॥"
॥ गीता॥

हे अर्जुन! जिस प्रकार अग्नि धुए से दर्पण मल से और बच्चा गर्भ से ढका हुआ होता है, इसी प्रकार काम और क्रोध से यथार्थ ज्ञान ढका हुआ होता है।

काम वासना हमारी सबसे बड़ी कमजोरी है। कामुकता के विचार एक प्रकार के अदृश्य मैथुन की तरह हैं। इन गन्दे विचारों में हम जितना ही तल्लीन रहते हैं, उतना ही वीर्य का क्षय करते हैं।

पुनः पुनः वीर्य वाहिनी नलिकाओं को उत्तेजना सम्हालनी पड़ती है, इससे उनकी शक्ति धीरे धीरे क्षीण हो जाती है। और मनुष्य नंपुसक बन जाता है, अनेक मूत्र रोगों का शिकार हो मनुष्य अकाल ही मर जाता है।

काम का कौन-कौन इन्द्रियों से सम्बन्ध है?

काम को मनसिज कहा गया है। अर्थात् यह मन में उत्पन्न होने वाला एक विकार है। मन में विचार लाने वाली हमारी इन्द्रियां हैं। ये भांति भांति के विचार लाती हैं जिनके संयुक्त रूप के कारण कामुकता का विचार एक प्रकार के अदृश्य मैथुन द्वारा भड़क उठता है।

रति का आरंभ नेत्रों से होता है। नेत्रों से हम दूसरे के अंग प्रत्यंगों पर, स्वभाव इत्यादि पर आसक्त हो उठते हैं। नेत्रों द्वारा काम वासना का प्रकाश देखा जाता है। इसके पश्चात् रचना तृप्ति स्वादिष्ट भोजन, कामोत्तेजक पदार्थ जैसे मांस, मदिरा, तम्बाखु, पान, मिठाई, राजसी पदार्थों का सम्बन्ध है। इसीलिए योगी, सन्यासी और ब्रह्मचारी स्वादिष्ट भोजन से दूर रहते हैं। स्पर्श सुख भी इसी से सन्नद्ध है। गरम गुदगुदे गद्दे, तकिये, नरम रेशम के बिस्तर, आराम तलब आलसी जीवन, शरीर का बनाव शृङ्गार सफाई साबुन, पाउडर, क्रीम, स्नो, सेंट प्रदर्शन की इच्छा कामोत्तेजक हैं।

कामोत्तेजक दृश्यों, विचारों और परिस्थितियों को आंखों से देख कर या सोच कर

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

काम का प्रादुर्भाव हो जाता है। यह विकार इतना शक्तिशाली है कि साधारण से लेकर बड़े बड़े व्यक्ति इसके पंजे में आ जाते हैं। व्यास और विश्वामित्र भी इसकी मार से न बच सके। हमारे यहां आचार्यों और कवियों ने काम की अनेक रूपों में प्रशस्ति की है। इसे मनुष्य की मूल प्रेरक शक्तियों में माना है।

काम विकार का महत्व

धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, ये चार पुरुषार्थ हैं। इनमें से प्रत्येक व्यक्ति में कम से कम एक का होना आवश्यक बताया गया है। काम भी एक प्रकार का पुरुषाथ माना गया है। धर्म, अर्थ और काम के सामंजस्य से मानव जीवन की पूर्णता मानी गई है। कृष्ण भगवान् ने अपने आपको धर्म विरुद्ध काम कहा है—

धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ

पाश्चात्य मनोविज्ञान के आचार्य सिगमेड-फ्रायड ने काम विकार को प्रधानता दी है और बड़ी व्यापक व्याख्या की है। अपने व्यापक अर्थों में इसका सम्बन्ध सब विषयों से हो जाता है। काम सूत्र में जो व्याख्या इस मनोविकार की दी गई है, उसमें इसका सम्बन्ध नेत्र, जिह्वा, त्वचा और नासिका से किया गया है। यथा—

"श्रोत्रत्वक चक्षु चिह्वा घ्राणानाम् आत्म संयुक्ते तेन मनसा अधिष्ठितानां स्वेषु स्वेषु विषयेषु अनुकूल्यतः प्रवृत्तिः कामः।

अर्थात्—आंख, जीभ, नासिका इत्यादि अपने विषयों में मन के साथ संयुक्त हो कर काम की उत्पत्ति में सहायक होते हैं सब इन्द्रियां ज्ञान मन में ले जाती हैं। फिर उस ज्ञान के अनुसार मन में विकारों की उत्पत्ति होती है।

हमारे पुराने ऋषि मुनि यौवनावस्था में ही काम की शक्ति का स्वीकार करते हैं। आजकल के कुछ मनोवैज्ञानिकों, विशेषतः फ्रायड साहब का विचार है कि शैशवावस्था से ही काम का प्रादुर्भाव हो जाता है। आधुनिक रहस्यवादी कवि श्री जयशंकर प्रसाद' ने अपने महाकाव्य 'कामायनी" की निम्न पंक्तियों में काम विकार को और भी व्यापक रूप दिया है—

"वह मूल शक्ति उठ खड़ी हुई
अपने आलस का त्याग किये।
परिमाणु बलि सब दौड़ पड़े
जिसका सुन्दर अनुराग लिये॥'
—कामायनी।

अर्थात्—सृष्टि में परिमाणुओं का भी मिलन इसी सर्व व्यापक महान् शक्तिशाली विकार काम के द्वारा होता है।

काम-विकार से मुक्ति के उपाय

काम विकार से बचने के लिए निरन्तर शुभ मनन पवित्र चिन्तन और पाठन, उद्योग करना चाहिए। यदि हम गंदगी से बचें, कामोत्तेजक स्थानों में न जांय, कामोत्तेजक दृश्यों, वस्तुओं, उपन्यासों, फिल्मों, कहानियों, नग्न चित्रों, गुप्ताङ्गों का न देखें तो बहुत कुछ इस बिकार से बच सकते हैं।

भातृहरी ने लिखा है—

"अदर्शाणे दर्शनयत्रि कामः
दृष्ट गतु तो स परिष्यङ्ग लोलः॥
आलिङ्ग ता यां पुन रामनोज्ञा
माशास्मेह विग्रह्योरभदेय।
—भातृहरी।

अर्थात—जब तक मनुष्य स्त्री को देखता नहीं, उसे केवल दर्शन की ही अभिलाषा रहती है और यदि देख ले तो यह इच्छा होती है कि

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

यह कमलनयनी हमारे वश में आ जाय। और जब यह भी हो जाता है तो यह लालसा रहती है कि इसके साथ हमारा कभी भी वियोग न हो। बस, ऐसा कभी नहीं हो सकता। इसलिए काम-शत्रु लोगों को बेमौत मारता है और वे प्रतिदिन विपत्ति शय्या पर पड़े पड़े काल की घड़ियां गिनते हैं।

मनु जी ने तो यहां तक निर्देश किया है कि किसी भी युवक पुरुष को एकान्त में अपनी सगी बहिन तक के पास नहीं बैठना चाहिए और न किसी स्त्री से आंखें मिलाकर बातें ही करनी चाहिए। काम-विकार अत्यन्त चंचल है। अतः अपने आप को वृथा प्रलोभन में डाल कर यह न समझो कि तुम सरलता से उस पर विजय प्राप्त कर सकोगे।

निम्न बातों को सर्वथा त्याग दीजिए क्योंकि इनसे काम-विकार उदीप्त होता है—

स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम्
संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रमानिष्पत्तिरेवच।
एतन्मैथुनमष्टाङ्गं प्रवदन्ति मनीषिणः।
सर्वांगेभ्यो विनिर्मुक्तो यदि भवति नेतरः॥

अर्थात्—किसी भी स्त्री के विषय में (काम में प्रवृत्त होकर) उसका ध्यान करना, बात करना लुक छिप कर देखना, उसके साथ खेलना; गुप्त बातें करना, ऐसी कुत्सित अभिलाषा करना और आचरण में लाना—ये आठ प्रकार के कार्य मैथुन हैं। अतः इन्हें तुरन्त त्याग देना चाहिए। कभी भी अपने आप को ऐसी परिस्थिति में न रखिये कि ये आपके ऊपर छिप कर प्रहार कर सकें। इनमें से प्रत्येक कार्य काम विकार को प्रदीप्त कर सर्वनाश करने में पूर्ण समर्थ है। कुत्सित काम विचार को उदीप्त करने वाले हल्के प्रेम से सम्बन्धित उपन्यास, कहानियों या श्रृङ्गार रस की कविताएं न पढ़ें, चित्र न देखें, वैसी वार्ताएं न सुनें, उस प्रकार के व्यक्तियों की सगति में निवास न करें। स्वयं स्त्री प्रसंग से इतनी हानि नहीं जितनी श्रृङ्गार रस की भावनाओं, विचारों और कुकल्पनाओं में डूबे रहना है। इससे गुप्त इन्द्रियों में निरन्तर एक प्रकार का तनाव रहता है और कालान्तर में अनेक गुप्त मूत्र रोगों के साथ नपुंसकता उत्पन्न होती है। अतः बड़े सावधान रहें।

●

---

५००) रुपये का पुरस्कार

ठाकुरदत्त शर्मा धर्मार्थ ट्रस्ट ने गतवर्ष घोषणा की थी कि वैदिक धर्म सम्बन्धी वर्ष के भीतर छपी हुई पुस्तकों पर सर्वोत्कृष्ट पुस्तक के लेखक को ५००) रु० पुरस्कार के निमित्त भेंट किया जावेगा। जो पुस्तकें आईं उन के निर्णय के वास्ते निम्नलिखित सज्जनों की उप-समिति बनाई गई। (१) श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति। (२) श्री प्रियव्रत वेदवाचस्पति। (३) श्री सत्यव्रत सिद्धान्तालङ्कार। (४) श्री विश्वनाथ वैद्यमार्तण्ड। (५) श्री बृहस्पति एम. ए.। बहु सम्मति से निश्चय हुआ कि श्री गङ्गाप्रसाद जी उपाध्याय मंत्री, सार्वदेशिक सभा को पुस्तक "वैदिक-संस्कृति" जो अंग्रेजी में छपी और हिंदी अनुवाद इसका हो चुका है वह सबसे उत्तम है। ट्रस्ट ने निश्चय किया है कि ५००) रु० का पुरस्कार श्री उपाध्याय जी को आगामी गुरुकुल कांगड़ी के उत्सव पर भेंट किया जावेगा।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गो पालन

डॉक्टर रामस्वरूप

गौ दूध की महिमा से वेद स्मृति, पुराण आदि तो भरे ही हैं, अमेरीका, ब्रिटेन, फ्रांस आदि के पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने भी अपनी प्रयोग शालाओं में इसके परिणाम निकाल कर सिद्ध कर दिया है कि गौ दूध न केवल शरीर को पुष्ट करने वाला अथवा जीवन शक्ति बढ़ाने वाला द्रव्य है अपितु उत्साह और साहस बढ़ाने में भी सर्वोत्तम है। अज्ञानी जन ही ऐसा समझते हैं कि नशीले पदार्थ शराब आदि मन को बल देते हैं, नहीं तो थोड़ा काल हुआ फ्रांस के प्रसिद्ध श्री पाश्चर महोदय ने अपनी कैमिकल लैबोरैटरी में एक सौ पच्चीस कुत्तों पर इनके बहुत से प्रयोग किये हैं और उनके महत्वपूर्ण परिणाम निकाले हैं। वहां उन्होंने कई डाक्टरों की देख रेख में कुत्तों की अलग-अलग टोलियां बनाकर गौ दूध, मांस, रोटी, सब्जी, शराब, कोकीन, केफीन आदि खिलाकर देखा है। एक एक टोली को पहिले गौ दूध, फिर रोटी, मांस, शराब आदि दे कर देखा है और पता लगाया है कि गौ दूध उपर्युक्त सभी खाद्य पदार्थों में अधिक उपयोगी, स्फूर्ति देने वाला, जीवन शक्ति बढ़ाने वाला और शरीर को पुष्ट करने वाला है : साथ ही यह परिणाम भी निकाला कि गौ दूध को उपयोग में लाने वाले प्राणियों में थकावट नाम को भी नहीं रहती। काम करने का उत्साह बढ़ जाता है। निराशा दूर रहती है और मुखमण्डल की आभा चिरायु तक नहीं बिगड़ती, युवावस्था देर तक स्थिर रहती है। एक महत्वपूर्ण परिणाम और निकाला है कि इस प्रकार दूध के उपयोग से काम की मात्रा भी तिगनी हो जाती है। कहने की आवश्यकता नहीं, इन परिणामों की घोषणा होते ही फ्रांस, ब्रिटेन आदि के सैनिक अधिकारियों पर भी इसका बड़ा प्रभाव पड़ा और उन्होंने सेनाओं में दूध के पक्ष में और शराब के विपक्ष में विज्ञापन बांटे। फ्रांस सरकार ने अपनी राजधानी के शराबघरों और कहवे-घरों के संचालकों को आज्ञा दी कि वे इन मादक वस्तुओं का प्रचार कम करदें। अपने ग्राहकों को गौ दूध का परामर्श करें (मैरीलैण्ड, डाक्टर एल. के. हर्ग्बर्ग)। यही नहीं गत् १९१४ के महायुद्ध में एक व्याख्याता पत्रकार (हावर्ड डेरी मैन) के कथनानुसार अमेरिका, ब्रिटेन आदि की विजय में गौ दूध का बड़ा हाथ रहा है। उन्होंने स्पष्ट लिखा है कि 'सहयोगी राष्ट्रदल' अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस आदि के यहां सैनिकों को रणभूमि में जाने से पूर्व गौ दूध ही दिया जाता था। अतः जब कि दूध की उपयोगिता सर्वत्र सिद्ध है तो मैं यह कहना चाहता हूं कि भारत सरकार को भी इधर ध्यान देना चाहिए।

अब तो अमेरिका में सत्रह लाख पचहत्तर हजार मन दूध नित्य प्रति उपजाया जाता है। परन्तु घी दूध के देश भारत में दूध का अभाव ही रहा है। गोचर भूमियों को दूसरे कामों में लाया जा रहा है। जङ्गलात के महकमे की कठोरता से वह धीरे-धीरे नष्ट हो रही है।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

हँसना सीखो

श्री वनपुत्र

अट्ठारवीं शताब्दी के एक फ्रेंच लेखक चैफार्ट ने कहा है "वह दिन जीवन का बिल्कुल व्यर्थ जाता है जिस दिन हम हंसते नहीं"। हँसना एक कला है। मनुष्य इस कला का बचपन से ही विशेषज्ञ होता है नहीं तो बच्चे जन्म से ही कैसे हंसना प्रारम्भ कर देते ? हम बचपन में हंसते अधिक हैं और यही कारण है कि बचपन के इतने झगड़े, मारपीट, आंसू तथा खून हम भूल जाते हैं परन्तु प्रौढ़ावस्था का कहीं जरा सा अपमान भी नहीं भूल पाते। हो सकता है तुम्हारी हँसी किसी संकट अथवा छोटी-छोटी उलझनों के कारण कुछ दब गई हो। परन्तु अगर उसे दबाए रखने में तुम सहयोग देते हो तो यह तो तुम्हारा अपना ही दोष हुआ।

पिछले कुछ वर्षों में हमें हँसने सम्बन्धी कई शारीरिक तथा मनोवैज्ञानिक लाभों का भी पता लगा है, मस्तिष्क पर तो इसका अच्छा असर होता ही है परन्तु साथ ही हमारी अंतड़ियों को शक्ति पहुंचती है, रक्त के दबाव में भी लाभकारक है तथा पाचन शक्ति भी ठीक करता है; हँसते समय रक्त के अन्दर स्वास्थकर तबदीली भी होती है।

हँसी हमारे बोझ को हल्का करती है। हमारे उत्साह तथा आशा को बढ़ावा देती है। हमें दिलचस्प बनाती है तथा हमें संसार को एक नये दृष्टिकोण से देखने का साधन देती है। अगर मनुष्य अपनी हँसी बन्द कर दें तो संभव है वह पागल हो जाए।

मानसिक रोगियों के इलाजों में रोगी को हँसाने का भी इलाज बर्ता जाता है। मानसिक रोगी का हँसना आरम्भ कर देना अच्छे स्वास्थ्य की ओर अग्रसर होने का चिन्ह माना जाता है।

हाल में ही मानसिक रोगों के एक विशेषज्ञ ने हँसने का इलाज आरम्भ कर दिया है। उसने एक कमरे में दस बारह आराम कुर्सियां डाल दी हैं। इस पर मानसिक-रोगी बैठ जाते हैं और एक हँसाने वाला सामने बैठ कर उनसे बातें करता तथा उनको हँसाता है। कभी-कभी हँसाने वाले ग्रामोफोन रिकार्ड लगाए जाते हैं। वह स्वयं भी उन सब के साथ बैठता है और स्वयं हँस कर दूसरों को हँसाने की चेष्टा करता है। यहां तक कि वह कमरा एक डेढ़ घण्टा प्रतिदिन हँसी से गूंजता रहता है, और इस सब का असर है। जीवन के बोझ से दबे, थके, पुरुष और स्त्रियां उसके पास जाते हैं और हँसते खिलखिलाते निकलते हैं।

इंश्योरेंस के एजेंट हमेशा चुटकुलों का भंडार क्यां रखते हैं ? इस लिए कि एक गंभीर व्यक्ति के साथ कोई मनुष्य मित्र की भांति बातें नहीं करता। किसी रेल के डिब्बे में अगर सात व्यक्ति गंभीर प्रकृति के हैं तो चाहे यात्रा दस मिनट की हो अथवा दस दिन की, कोई अन्तर नहीं पड़ता। परन्तु जहां एकाध भी हँसमुख हुआ तो सारी राह पूरे कमरे को गुंजाता रहेगा।

एक सभा का सभापति अपने हास्य को गंभीर से गंभीर स्थिति को भी अपने हाथ में कर लेता है और प्रायः अच्छे वक्ता अपने भाषणों में हास्य की पुट देकर ही भावपूर्ण वक्ताओं की श्रेणी में गिने जाते हैं। लायड जार्ज भी ऐसे वक्ताओं में एक थे। एक सभा में उन पर किसी विपक्षी ने शलजम फेंकी। लायड जार्ज

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

ने वह शलजम उठाई, घुमाया, फिराया और बोले "मेरे किसी विपक्षी मित्र का शायद सिर अपने स्थान पर नहीं रहा"।

अपने पास सदैव कुछ चुटकुलों का, हँसाने वाली घटनाओं का भण्डार रखो, जहां यह तुम्हें अपने सुनने वालों के दुःख भगाने में सहायता करेगा वहां यह तुम्हें लोक प्रिय बनाने में भी सहायता देगा।

एक प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक ने कहा है "हम हँसते हैं ताकि हम रोएं नहीं" हँसी हमारे हाथों में एक ऐसा शस्त्र है जिससे हम छोटे मोटे झगड़ों, धन्धों तथा दुःखों से छुटकारा पा सकें।

स्वयं पर हँसना सीखो। अपनी त्रुटियों पर हँसना सीखो। अपनी त्रुटियों पर स्वयं हँस कर ही तुम उन त्रुटियों से आगे बढ़ने के लिए उत्साह तथा ज्ञान पाओगे। हँसो, हँसो, जब रोने को तुम्हारा दिल करता हो। आरम्भ में कुछ दिक्कत अवश्य होगी परन्तु पीछे यही आदत तुम्हें हार पर भी जीत का अनुभव देगी।

हँसो, किसी पर नहीं, सब के साथ हँसो।

●

असमानता

समौ चिद्धस्तौ न समं विविष्टः
संमातरा चिन्न समं दुहाते।
यमयोश्चिन्न समा वीर्याणि
ज्ञाती चित्सन्तौ न समं पृणीतः॥
(ऋ० १०. ११७. ६)

(हस्तौ समौ चित्) दोनों हाथ एक से होते हुये भी (समं न विविष्टः) समान क्रिया-शक्ति वाले नहीं होते।

(सं मातरा चित्) समान माता से जन्मने-वाली दो गौयें भी (न समं दुहाते) समान दूध नहीं देतीं।

(यमयोः चित्) दो जुड़वां सहोदर भाइयों के भी (न समा वीर्याणि) समान बलपराक्रम नहीं होते।

(ज्ञाती सन्तौ चित्) समान वंश के होते हुये भी दो व्यक्ति (न समं पृणीतः) समान दान नहीं करते।

●

कठोर-दण्ड

इन्द्र जहि पुमांसं यातुधानमुत
स्त्रियं मायया शाशदानाम्।
विग्रीवासो मूरदेवा ऋदन्तु
मा ते दृशन्त्सूर्यमुच्चरन्तम्॥
(ऋ० ७. १०४. २४॥)

(इन्द्र) राजन्! राष्ट्रपते! (यातुधानं पुमांसं) अत्याचारी पुरुष को (उत) तथा (मायया शाशदानां स्त्रियं) माया से मारनेवाली स्त्री को (जहि) बध कर। (मूर-देवाः) मारण-क्रीड़ी, विषयमूढ़, राक्षस, लम्पट (विग्रीवासः) ग्रीवारहित, गर्दनविहीन, होकर (ऋदन्तु) नष्ट हो जायें, (ते) वे (उत्-चरन्तं) उदय होते हुये (सूर्यं) सूर्य को (मा दृशन्) न देखें [वे उभरने न पायें]।

●

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

विश्वविद्यालयों को गुरुकुल बनाओ

श्री धर्मदत्त

भारत के सरकारी विश्वविद्यालयों की इस विषय में जितनी भी प्रशंसा की जाय वह थोड़ी है कि उन्होंने देश को बड़ी जनता को उच्च शिक्षा प्रदान की है तथा बहुत बड़ी संख्या में लोगों को साक्षर बनाया है। तो भी दुःख के साथ स्वीकार करना पड़ता है कि शिक्षा के साथ साथ शिक्षित जनता का चरित्र जितना ऊंचा हो जाना चाहिये था उतना ऊंचा नहीं हुआ। प्रत्युत उसका चरित्र कुछ अंशों में तो अशिक्षित जनता के चरित्र से भी गिर गया है। उदाहरणतया भारत की अशिक्षित जनता को देखा जाय तो वह सरलचित्त, सादगी पसन्द धर्म परायण, भेदभाव से शून्य और आस्तिक होती है। इस के विपरीत शिक्षित व्यक्तियों के एक बड़े भाग की जांच की जाय तो वह सरलता से हीन, आडम्बरप्रिय, स्वार्थ-परायण, भेदभावों से युक्त और नास्तिक पाया जायगा। इस प्रकार के शिक्षित जनों की वृद्धि से भारत की उन्नति नहीं हो सकती। भारत को उन्नत तभी कहा जा सकता है जब भारतीयों का जीवन उन्नत हो। जब भारत उन्नति के शिखर पर था तब उसके विषय में कहा जाता था कि एतद्देश प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्व मानवाः। (मनु)। अर्थात् समस्त पृथिवी के मनुष्य भारतीय शिक्षित जनों के पास आकर अपना चरित्र निर्माण करते हैं। उस समय हमारे देशवासियों का चरित्र इतना उन्नत था कि हमारे देश का एक राजा अश्वपति बड़े अभिमान के साथ कह सकता था कि मेरे देश में कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं है जो चोर हो, या मद्यपी हो या अनपढ़ हो या दुराचारी हो। सत्य तो यही है, कि अन्न, धन, सांसारिक सामग्री और शस्त्रास्त्र की अधिकता के कारण ही कोई देश उन्नत और समृद्ध नहीं कहा जा सकता जब कि उस देश के मनुष्य आचार की दृष्टि से उन्नत न हों।

भारतीय इतिहास के वैदिक तथा बौद्ध काल में विद्यमान विद्यालयों का जो विवरण प्राप्त होता है उस से पता चलता है कि उनमें विद्यार्थियों को विद्वान् बनाने के साथ साथ चरित्रवान् बनाने पर विशेष बल दिया जाता था। उस समय एक विद्या-संस्था को गुरुकुल या आचार्य कुल कहते थे। गुरु शब्द का अर्थ गृणातिधर्ममिति अर्थात् जो शिष्य को धर्म प्रदान करे। आचार्य शब्द का अर्थ है 'आचारं ग्राहयतीति' अर्थात् जो शिष्य को सदाचार का उपदेश दे। स्पष्ट है उस समय शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य को मनुष्य बनाना समझा जाता था।

वर्तमान युग में जब कि यह शिक्षा प्रणाली सर्वथा नष्ट हो चुकी थी पहले पहल स्वर्गीय श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी ने इसका पुनरुद्धार किया और शिक्षा के उन्हीं प्राचीन आदर्शों को सन्मुख रखते हुए हिमालय की उपत्यका में, गङ्गा के तट पर, हरिद्वार के समीप कांगड़ी ग्राम में एक नवीन गुरुकुल की स्थापना की। यह गुरुकुल प्राचीन काल के भारद्वाज आदि ऋषियों के आश्रमों के समान ही उस महात्मा का आश्रम था जिसमें उस के सदृश अन्य त्यागी, सदाचारी, विद्वान्

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

भी थे। महात्मा गान्धी जी ने इस गुरुकुल का नाम तो सुना ही था। वे अफ्रीका से लौटते ही इसे देखने आये और इसे देख कर मुग्ध हो गये। इसी के अनुकरण में उन्होंने अपना पुनीत आश्रम अहमदाबाद में साबरमती के तट पर स्थापित किया। गुरुकुल के आदर्शों से प्रेरित हो कर ही स्वर्गीय रवीन्द्रनाथ टैगोर ने बोलपुर के शान्त प्रदेश में शान्ति निकेतन नामक आश्रम प्रतिष्ठापित किया। इन आश्रमों को स्थापित करने का इन तीनों महात्माओं का उद्देश्य प्राचीन गुरुकुल शिक्षा प्रणाली को पुनर्जीवित करना था। हिन्दू विश्वविद्यालय को स्थापित करते समय महामना मालवीय जी का उद्देश्य भी सरकार से नियन्त्रित एक विशालकाय गुरुकुल के निर्माण करने का था। परन्तु बाह्य कारणों से प्रेरित होकर वह संस्था प्राचीन आदर्शों की ओर जाने के स्थान पर पाश्चात्य विश्वविद्यालयों के आदर्शों पर चली गई।

गुरुकुल प्रणाली से संचालित विद्या संस्था में गुरु उसकी आत्मा के सदृश होता है तथा शिष्य उसके शरीर रूप होते हैं। यदि गुरुकुल में गुरु न हों तो वह गुरुकुल न रह कर एक निर्जीव सा साधारण विद्यालय रह जाता है। उत्तम गुरु के बिना एक विद्यालय मूर्ति विहीन विद्या-मन्दिर हो जाता है। गुरु का लक्षण शास्त्र में इस प्रकार किया है 'शान्तोदात्तः कुलीनश्च, विनीतः, शुद्धवेशवान्। शुद्धाचारः, सुप्रतिष्ठः, शुचिर्दक्षः, सुबुद्धिमान्। अध्यात्मध्यान निष्ठश्च, मंत्र तन्त्र विशारदः। निग्रहानुग्रहे शक्तो गुरुरित्यभिधीयते' अर्थात् जो व्यक्ति शान्त हो, अपनी इन्द्रियों को दमन किये हुए हो, नम्र हो, अपने वेश को स्वच्छ रखता हो, सदाचारी हो, लोगों में प्रतिष्ठित हो, स्वच्छता रखता हो, कार्य करने में दक्ष हो, बुद्धिमान् हो, अध्यात्म ज्ञानी हो, ध्यानी हो, वेदज्ञ हो; शास्त्रज्ञ हो, विद्यार्थियों में नियन्त्रण रखने में समर्थ हो तथा विद्यार्थियों में से जो क्षमा के योग्य हों उन्हें क्षमादान भी दे सकता हो उसे गुरु कहते हैं।

गुरुकुल कांगड़ी में प्राचीन शिक्षा प्रणाली के इन उच्च आदर्शों को अभी तक कायम रखा हुआ है। गुरुकुल कांगड़ी जब से बना है तब से इसमें शिक्षकों की नियुक्ति करते समय उन की उपाधियों को देखा ही जाता है, परन्तु वे सदाचारी और सच्चरित्र भी हों इसका विशेष ध्यान रखा जाता है। इतना ही नहीं प्रत्युत गुरुकुल कांगड़ी में विशेष उपाधीधारी साधारण संसारीजन की अपेक्षा साधारण उपाधिधारी असाधारण सदाचारी पुरुष को अधिक पसन्द किया जाता है। गुरुकुल में आचार्य की नियुक्ति उसके उच्च आचार विचारों का होने के कारण की जाती हैं न कि उसके उपाधिधारी होने के कारण। शास्त्र में कहा है 'मातृवान् पितृवान् आचार्यवान् पुरुषोवेद' अर्थात् जिसे अच्छा गुरु मिल जाय वह मनुष्य मनुष्य बन जाता है। गुरुकुल का यह कार्य है कि वह बालकों को उनके अपने माता पिता से लेकर ऐसे उच्चात्मा गुरुओं के चरणों में बैठा दे कि जो उन्हें विद्वान् सत्पुरुष बना दें।

इस समय जब कि भारत को राजनैतिक स्वाधीनता प्राप्त हो चुकी है हमारा उद्देश्य उसे उन्नति के शिखर की ओर ले जाने का होना चाहिए। शिक्षितजनों के चरित्र के ऊंचा होने से भारत ऊंचा होगा। भारत का कायाकल्प करने के लिये विश्वविद्यालयों के संचालकों पर एक भारी उत्तरदायित्व आ पड़ता है। उन को चाहिये कि वे विश्वविद्यालयों से सम्बद्ध

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

सर्व विद्या मन्दिरों में सद्गुरुओं का प्रतिष्ठान करें। छात्रालयों में एक दो उच्चात्मा अध्यापक ऐसे अवश्य रखने चाहियें जो सत्यमूर्त्ति, मन वचन और कर्म से अहिंसा व्रतधारी, खादी तथा स्वदेशी वस्तुओं का ही उपयोग करने वाले देश भक्त, निःस्वार्थी, सुशील, सदाचारी, सेवा-व्रतधारी, विद्वान् हों और जिन का ध्येय न केवल वचन से पर अपने चरित्र से विद्यार्थियों का चरित्र बनाना हो। विश्वविद्यालयों के उच्च पदों या अध्यक्षपद के लिये महात्मा मुन्शीराम और महामना मालवीय जैसे महापुरुष सदा नहीं मिल सकते तो भी क्योंकि उच्चात्मा महान् व्यक्तियों का अभाव कभी नहीं होता जो भी उच्चात्मा सदाचारी सत्पुरुष मिल सकें उन्हें इन पदों पर नियुक्त करना चाहिये। अभिप्राय यह है कि विद्या मन्दिरों में जहां विद्यार्थी विद्या की पूजा के लिये आते हैं ऐसे सद्गुरुओं का प्रतिष्ठान होना चाहिये जो विद्यार्थियों को विद्वान् बनाने के साथ चरित्रवान् भी बना सकें। यदि भारतीय विश्वविद्यालयों के संचालक चाहते हैं कि हमारी शिक्षित जनता का चरित्र ऊंचा हो जिससे भारत संसार के देशों के बीच प्रतिष्ठा का स्थान प्राप्त करें तो उन्हें चाहिये कि वे गुरुकुल कांगड़ी से पाठ सीखें और अपने विश्वविद्यालयों का गुरुकुल बना दें।

●

क्या आप महान् हैं?

श्रीमती शकुन्तला देवी गुलेरी

महान् व्यक्ति क्या उचित है, यह जानता है; क्षुद्र किससे लाभ होगा इसका ज्ञाता होता है।

महत्ता में आत्मा से प्रेम होता है; क्षुद्रता में सम्पत्ति से प्रेम होता है।

महान् व्यक्ति किन भूलों से क्या नुकसान हुआ, यह स्मरण रखता है; क्षुद्र यह याद रखता है कि किस अनैतिकता से क्या फायदा उठाया।

महान् व्यक्तित्व में दूसरों के मत के प्रति उदारता व सहिष्णुता होती है पर मतैक्य नहीं होता। क्षुद्र व्यक्ति दूसरों की हां में हां तो मिला देता है और पूर्णतः सहमत भी प्रतीत होता है, पर उदारता व सहिष्णुता का उसमें नाम भी नहीं होता।

महान् व्यक्ति दृढ़ होता है पर झगड़ालू नहीं, वह मिलनसार होता है पर औरों के साथ गुटबन्दी नहीं करता; क्षुद्र व्यक्ति झगड़ालू होता है पर दृढ़ नहीं।

महान् व्यक्ति की सेवा आसान है, पर उसे प्रसन्न करना कठिन है—क्योंकि वह उचित कार्य से ही खुश हो सकता है; क्षुद्र व्यक्ति की सेवा कठिन है, पर उसे प्रसन्न करना आसान है—वह औचित्य-अनौचित्य को भुलाकर, उसकी दुर्बलताओं को प्रोत्साहन देकर, आसानी से प्रसन्न किया जा सकता है।

महान् व्यक्ति व्यक्तिगत योग्यता के अनुसार ही हर एक से काम लेता है; क्षुद्र व्यक्ति मनुष्यों से, जिनका धर्म ही भूल करना है, काम लेते समय यह चाहता है कि वे कोई भी भूल न न करें।

तो क्या आप महान् हैं?

●

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

स्वास्थ्य रक्षा

वैद्य ठाकुरदत्त शर्मा

मनुष्य का शरीर प्रभु की बनाई हुई एक सुन्दर, अद्भुत, चित्ताकर्षक और सुव्यवस्थित मशीन है। इसके प्रत्येक अवयव (पुरज़े) का ठीक ठीक चलना और अपना अपना काम करते रहना ही स्वास्थ्य है। इसके विपरीत जो हो वह रोग है। अर्थात् जिस समय कोई पुरज़ा अपना कार्य्य यथार्थ रूप से न करते हुए इस मशीन वा इसके किसी यंत्रांग के चलने में बाधक हो और विकार एवं प्रकृति में युद्ध होकर पीड़ा, बेचैनी, गर्मी, सर्दी आदि पैदा हो जाँय। इस मशीन के ठीक ठीक चलने के लिए चार अति-आवश्यक नियम हैं जो कि नीचे लिखे जाते हैं।

(१) ब्रह्मचर्य्य-स्वास्थ्य रक्षा के लिए इस शरीर रूपी घर की सब से आवश्यक नींव है। इसका तात्पर्य है शरीर के बल वीर्य्य की रक्षा करना। छोटी उम्र में ही बलदायक भोजन करना और उसे व्यायाम द्वारा पचाना। १६ से २४ वर्ष तक की आयु में उत्तम भोजन और अधिक व्यायाम करके अपने शरीर के अंग प्रत्यंग को पुष्ट करना। उच्च विचार, शिक्षादायक और सद्ग्रन्थों के पाठ तथा पवित्र कथा और सदुपदेश सुनने से मन को पवित्र रखना। गन्दे साहित्य, कुसंगति, अश्लील सिनेमा-चित्र, थियेटर, नाच रंग और तमाशों से दूर रहना।

(२) व्यायाम सदा करना, जिससे कि शरीर स्वस्थ और बलवान और होता है। यह दूसरा अतिआवश्यक नियम है।

(३) भोजन सादा, चबा चबा कर और थोड़ी सी भूख शेष रख कर प्रसन्न चित्त से करना। यह स्वास्थ्य का तीसरा अति आवश्यक नियम है। बड़ी आयु पाने वाले सब लोग सादा भोजन करते रहे हैं।

(४) मानसिक शक्ति चौथा आवश्यक नियम है। मन देह का राजा है। इसके गिरने से सारा शरीर गिर जाता है। मनुष्य, रोग की धारणा से रोगी और स्वास्थ्य की धारणा से स्वस्थ हो जाता है। जो कुछ तुम सोचते और कल्पना करते रहते हो, वैसे ही बन जाओगे। मन पीड़ा को उभार सकता है और इसे उखाड़ भी सकता है, रोग को उत्पन्न करता और उसको नष्ट भी करता है। हृदय की दुर्बलता से रक्त के श्वेत कण क्षीण होकर बाहर के कीटाणुओं का सामना नहीं कर सकते और हर रोग के आक्रमण का भय रहता है। इस लिए हृदय सदैव आह्लादित रक्खो। हँसो और खूब हँसो और "जब लगि रहै साँसा, तब लगि राखो आसा"। क्रोध न करने वाला, दया करने वाला, सच बोलने वाला, धोखा न देने वाला मनुष्य दीर्घ आयु प्राप्त करता है। चिन्ताओं से आयु घटती है। व्यायाम करते, वायु सेवन करते, भोजन करते, और पानी पीते समय इच्छा शक्ति के लाभ उठाओ (ख) अरुणोदक के समय सूर्य के सामने खड़े हो जाओ, छाती खोल दो और और अनुभव करो कि सूर्य्य की प्राण-एवं- जीवन दायिनी किरणें आपके शरीर के भीतर प्रविष्ट होकर आपको स्वास्थ्य और आयु प्रदान कर रही हैं, आपके सब अङ्ग पुष्ट कर रही हैं, देह के दोषों को जला रही हैं और रक्त-कणों को शुद्ध और बलवान बना रही हैं। भूल जाओ कि तुम कितने बड़े हो। तुम तो सदैव युवा हो। प्रकृति प्रतिक्षण शरीर को नया करती रहती है, तुम कभी भी पुराने नहीं। (ग) बाईं हथेली पर पानी रख कर दाहिने हाथ की अंगुली से इस जल को स्पर्श करके अपने माथे, शिर, आंखें, नाक, कान, होंठ, कंठ, हृदय, नाभि, मस्तिष्क और भुजाओं पर

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

लगाओ और साथ ही ईश्वर से इनका स्वास्थ्य मांगो—

"हे प्रभु, मेरा शिर दृढ़ और स्वस्थ्य रहे, केश काले और कोमल रहें, मन में नेकी (सदाशयता) आवे। मेरे नाक, कान आँख जिह्वा औरा दाँत, कंठ, हृदय और आमाशय, यकृत, प्लीह और अंतड़ियाँ—सब की सब बलयुक्त हों, शुद्ध और निर्मल हों। मेरी भुजाओं में अजेय पराक्रम भरे, मैं एक सौ वर्ष तक युवा रहूं, किसी के आश्रित न रहूं।"

सदा स्वास्थ्य का ही मनन करो। ऐसा विचार मन में न लाओ कि अमुक रोग दूर होवें। क्योंकि रोग का नाम लेने से हृदय में रोग होने का विचार आजाएगा। शरीर के अंग प्रत्यंग की स्वस्थ-दशा का चिन्तन करो। प्रकृति की प्रत्येक वस्तु से स्वास्थ्य एवं प्रसन्नता खींचो। उद्यान की हरियाली तुम्हें हरा भरा रक्खे, पर्वतों की ऊँचाई तुम्हें ऊँचा करे और मैदानों की विशालता तुम्हें विशाल बनावे।

ऊपर के चार नियम ऐसे हैं कि जिन पर प्रत्येक व्यक्ति चल सकता है और इनका यथावत् पालन हो जाय तो फिर सब कुछ है। नीचे इनके सहायक कुछ नियम नियम और लिखे जाते हैं।

(क) सोना भी मनुष्य के लिए आवश्यक है। बालकों को ८ घंटे और बड़ों को ६ घंटे सोना चाहिए। सोना ऐसे समय चाहिए कि प्रातःकाल सूर्योदय से पहले उठ बैठें। सोते समय शरीर को ढीला छोड़ दो और मन से चिन्ताओं को निकाल दो। दक्षिण दिशा की ओर पैर करके न सोओ और हृदय पर हाथ रख कर भी नहीं सोना चाहिए। हवादार स्थान में सोओ, और सोते समय मुँह न ढाँको। भरे पेट न सोओ। हमेशा खुली हवा में सोओ। इससे नींद गाढ़ी आती है और मनुष्य सदा प्रसन्न और प्रफुल्ल उठता है। जहाँ तक बन पड़े खुली हवा में तो दिन रात रहना चाहिए।

(ख) शरीर को सीधा रखना और रीढ़ (मेरुदंड) के भीतर प्राण की धारा भरते रहने से आयु की वृद्धि होती है और पेट के अगों का स्वास्थ्य बराबर बना रहता है। इस कारण चलते, फिरते और सीढ़ी पर चढ़ते, काम काज करते, लिखते पढ़ते, भोजन करते अथवा वैसे ही बैठे हुए शरीर को सीधा रखने का अभ्यास डालो।

(ग) सफ़ाई का पूरा ध्यान रखो। शरीर पर मैल न रहे। स्नान नित्य करो और शरीर के अंगों को साफ़ अगोछे से भलि प्रकार रगड़ कर पोंछ डालो। वस्त्र भी मैले न हों और घर भी साफ़ सुथरा रखा जाय। दाँत सदैव उत्तम मञ्जन और ताजी दाँतुन से साफ़ रखे जाँय। भोजन से पहले और बाद में अच्छी तरह कुल्ली की जाय। नेत्रों को कभी कभी साफ़ स्वच्छ जल में खोल कर और सुर्मा (अञ्जन) लगा कर साफ़ रखो। मल मूत्र के वेग को रोक कर अन्तरंग को भी मैला न करो।

(घ) वस्त्र तंग नहीं पहिनने चाहिएं। तंग पेटियां, ऊँचे कालर, तंग और ऊँची एड़ी के जूते हानिकारक होते हैं। अन्दर के कपड़े शीघ्र बदल डालो। कभी-कभी शरीर को नंगा करके धूप सेको। सूर्य-स्नान बल और स्वास्थ्य देने वाला है। कभी कभी नंगे पैर घास पर चला करो। साधारणतया शिर को ठंडा और पैरों को गरम रखना चाहिए। जूते और कपड़े दूसरों के बर्ते हुए नहीं पहिनने चाहिएं। वस्त्रों में नमूने की अपेक्षा आराम का अधिक ध्यान रक्खो।

(ङ) मुटापा आयु को क्षीण करता है।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

पुस्तक-परिचय

वेदवाणी—सामवेद पूर्वार्ध तथा उत्तरार्ध। मूल्य ४)। अनुवादक-आचार्य वीरेन्द्र शास्त्री। प्रकाशक—वेदवाणी कार्यालय, जङ्गमबाड़ी, बनारस।

वेदवाणी के संचालकों का हम अभिनन्दन करते हैं कि उन्होंने सामवेद सपूर्ण का सरल हिन्दी भाष्य जनता के सम्मुख प्रस्तुत किया है। जन साधारण इस भाष्य को पढ़कर ईश्वरीय ज्ञानवेद के तत्त्व को समझने तथा उसके अमृत रूपी उपदेशों को पान करके प्रसन्नता लाभ कर सकते हैं।

आचार्य वीरेन्द्र शास्त्री महोदय ने यह सराहनीय परिश्रम करके वेद के प्रेमी तथा श्रद्धालुओं को अनुग्रहीत किया है। हर आर्य परिवार में नित्य स्वाध्याय के लिये यह पुस्तक उपयोगी सिद्ध होगी।

हिन्दी समाचार पत्र सूची (भाग १)— सम्पादक श्री बंकटलाल ओझा। प्रकाशक हिन्दी समाचार पत्र संग्रहालय, कसारट्टा मार्ग, हैदराबाद दक्षिण। आकार २०×३०=१६, पृष्ठ संख्या ८०, प्रथम संस्करण, मार्च १९५०। मूल्य १)। १८२६ से १९२५ तक भारत में या विदेशों में जितनी भी पत्र-पत्रिकाएं हिन्दी में प्रकाशित हुई हैं उनकी अकारादि क्रम से यह सूची है। ओझा जी ने हिन्दी समाचार पत्रों के संग्रह का कार्य अपने संग्रहालय में आरम्भ किया है। वे सब पत्रों की पूरी फ़ाइल रखने का प्रयत्न भी कर रहे हैं। अन्वेषकों और ऐतिहासिकों के लिये यह कार्य बहुत महत्व का है।

गुरुकुल के स्नातक—गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय से सन् १९५० तक निकलने वाले स्नातकों का परिचय देने वाला यह ग्रन्थ है। अनेकों चित्र और आकर्षक टाइटल है। मूल्य ३)। मिलने का पता—प्रकाशन मन्दिर, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

●

[पृष्ठ २७ का शेष]

शरीर को सदा अपने वश में रखने की चेष्टा करो। सब से आवश्यक यह है कि कम खाया जाय और अधिक गरिष्ठ भोजन न किया जाय। अल्पाहार से आयु बढ़ती है, नींद कम आती है, काम अधिक हो जाता है और शरीर में दूषित पदार्थ नहीं जाते। एक दिन का अधिक आहार भी कई दिन के उपवास से बुरा है दीर्घायु पाने वाले सब लोग सादा भोजन करने वाले मिताहारी नियमित जीवन व्यतीत करने वाले हुए हैं। मांस मनुष्य का आहार नहीं है। पीने के वास्ते साफ़ सादा जल ही श्रेष्ठ है। चाय, कहवा, सोडा लैमनेड का अभ्यास ठीक नहीं होता। भांग, ताड़ी, बियर और शराब आदि तो अत्यन्त हानिकारक नशे हैं। नशे के लिए कोई कोई मूर्ख हुक्का, सिगरेट, सिगार, अफीम और चरस भी लेने लगते हैं। ये सब स्वास्थ्य के लिए बहुत ही हानिकारक हैं।

●

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गुरुकुल-समाचार

कुलपति जी का प्रवचन

इस सप्ताह में नवीन सत्र के प्रारम्भ होने पर प्रो० इन्द्र विद्यावाचस्पति एम. पी. कुलपति ने प्रार्थनोपरान्त महाविद्यालय के छात्रों का भाषण दिया जिसमें उन्होंने सर्व प्रथम इस विषय पर प्रकाश डाला कि प्राचीन काल में जब कभी नूतन सत्र प्रारम्भ हुआ करते थे तब आचार्य गुरु शिष्य आदि समस्त कुलवासी एकत्र होकर विश्व कल्याण के लिये यज्ञ होम किया करते थे। उस दिन आचार्य या कुलपति छात्रों को नये सिरे से शिक्षा का लक्ष्य बताते थे। चरित्र निर्माण, आचार, व्यवहार, नैतिक दृढ़ता आदि विषयों का विशद व्याख्यान करते थे और छात्रों में विश्वजनीनता, राष्ट्रीयता आदि पुण्य भावों को जागृत करते थे। आज कल यह पुरातन परिपाटी प्रत्यक्षतः लुप्त होती जा रही है। यज्ञादि होना तो दूर रहा। आधुनिक यूनिवर्सिटियों में आचार्य या कुलपति के नवीन सत्र शुरू होने के उपलक्ष्य में भाषण तक नहीं होते, जिससे छात्र आचार चरित्र, नैतिकता, आदि भावनाओं की प्रेरणा प्राप्त करें।

इसी पुरातन परिपाटी को ध्यान दिलाते हुए उन्होंने आगे कहा कि आज हमारा राष्ट्र स्वतंत्र है। इसके अधिकांश नायकों में अवसरवादिता, काला बाजारी आदि अनैतिक व्यवहारों का बोलबाला है जिसके कारण हमारे राष्ट्र की सर्वाङ्गीण व्यवस्था का ह्रास होता जा रहा है। उसकी रक्षा के लिये तुम छात्रों ने भावी नायक बनना है और राष्ट्र की समुचित व्यवस्था करने के लिये तुम्हारे हाथों में आचार चरित्र की शुद्धता, नैतिक दृढ़ता, सत्यसाधना, तपस्याबल का सबल होना आवश्यक है। आज गुरुकुल तुम्हें इसी तपोबल की साधना करा रहा है इसी आचार चरित्र की शुद्धता का पाठ पढ़ा रहा है। नैतिक, दृढ़ता सत्यसाधना के जीवन में से गुजर कर तुम्हें दृढ़ बना रहा है। इसके लिये तुम्हें सदा सतर्क रहना चाहिये।

उक्त नैतिक साधना की प्राप्ति के लिये महाभारत, रामायण आदि भारतीय धर्मशास्त्रों का गंभीर अध्ययन होना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त संस्कृत साहित्य, इतिहास आदि अन्य विषयों का भी गहन अध्ययन करने को प्रेरित किया। छात्र जीवन गहन अध्ययन व परिश्रम का जीवन है।

गुरुकुल की आज की शिक्षा पद्धति पर स्थूलतः प्रकाश डालते हुए उन्होंने कहा कि गुरुकुल की स्थापना आधुनिक पाश्चात्य विद्या प्राचीन आध्यात्मिक, वैदिक विद्या के साथ समन्वय करते हुए तप साधना आदि पुरातन पद्धति के द्वारा शिक्षा का वाहन चलाने के लिये हुआ है क्योंकि आज कल के महामनीषी एक स्वर से आधुनिक शिक्षा पद्धति की कुत्सा कर रहे हैं। आधुनिक शिक्षा पद्धति से मनुष्य का मनोबल, बुद्धिबल, शारीरिक बल आदि का सर्वतोमुखी ह्रास हो रहा है। आज कल की यूनिवर्सिटियां अंग्रेजी शासन को चलाने के लिये दुबले पतले क्लर्क उत्पन्न करने वाले कारखाने मात्र हैं।

कुलपति द्वारा वर्तमान स्थिति का सिंहावलोकन

महाविद्यालय की वाग्वर्धिनी सभा के अधिवेशन में कुलपति प्रो० इन्द्र विद्यावाचस्पति जी का मनोरञ्जक भाषण हुआ। इसमें गुरुकुल के छात्र तथा कर्मचारियों की बड़ी उपस्थिति थी।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

भाषण का विषय था—'कांग्रेस अध्यक्ष, चुनाव की सरगर्मी व तद्विषयक नेहरू जी की नीति तथा संसद का वर्षाकालीन अधिवेशन'। सर्व प्रथम उन्होने संसद् के वर्षाकालीन अधिवेशन का जिक्र किया जिस में उन्होंने राष्ट्रपति के भाषण की चर्चा की। फिर उसके बाद कोरिया का प्रश्न, बङ्गाल का प्रश्न तथा बिहार के दुर्भिक्ष आदि के सम्बन्ध में प्रकाश डाला। कांग्रेस अध्यक्ष के चुनाव की सरगर्मी के सम्बन्ध में कहते हुए उन्होंने कहा कि राजर्षि पुरुषोत्तम दास टंडन को इस कारण अधिक मत मिले क्योंकि टंडन जी सिद्धान्तों पर दृढ़ रहने वाले कांग्रेस पार्टी की अनैतिकता का अनुशासन करने वाले कठोर व्यक्ति हैं।

उत्कल यूनिवर्सिटी के वाइसचांसलर का आगमन

उत्कल विश्वविद्यालय के वाइस चांसलर श्रीयुत चिन्तामणि जी आचार्य दो दिन तक गुरुकुल के मान्य अतिथि रहे।

इस अवधि में उन्होंने समस्त गुरुकुल का पर्यटन किया तथा सब विभागों का सूक्ष्म पर्यवेक्षण किया। यहां के पुरातत्व संग्रहालय का अवलोकन करते हुए जब बङ्गाल, बिहार में होने वाले ताड़-खजूर पत्र के उद्योग धन्धों के नमूने देखे तब उन्होंने कहा कि हमारे प्रान्त की भी कौटेज इन्डस्ट्रीज़ इस वस्तु का अच्छा काम करती है। वहां से आप के संग्रहालय के लिये कुछ सुन्दर कलापूर्ण वस्तुएं भेज देने का वचन दिया।

उस के बाद जब उन्होंने प्राचीन उड़िया लिपी का कुछ संग्रह देखा तब उन्होंने गुरुकुल के संग्रहालय के लिये अन्य प्राचीन उड़िया साहित्य की पुस्तकों को प्रदान करने का वचन दिया। इस अवधि में उनके यूनिवर्सिटी लैक्चर का भी मध्यान्ह समय वेद भवन में आयोजन किया गया था। जिसमें गुरुकुल के समस्त उपाध्याय, अध्यापक, छात्र तथा अन्य कर्मचारी अच्छी संख्या में उपस्थित थे।

भाषण प्रारम्भ करने से पूर्व उन्होंने अपने हिन्दी में व्याख्यान देने की असमर्थता पर दुःख प्रकट किया। अपने एक घण्टे के भाषण में उन्होंने सर्व प्रथम गुरुकुल में आने का स्वर्ण अवसर प्राप्त करने पर हर्ष प्रकट किया तथा गुरुकुल ने जो उनका लघु आतिथ्य अभिनन्दन किया था उस के प्रति आभार प्रदर्शन किया। इसके अतिरिक्त गुरुकुल पद्धति की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की। इसके आगे उन्होंने उत्कल प्रान्त के प्राचीन इति वृत्त पर सुरुचि पूर्ण प्रकाश डाला। उन्होंने उत्कल शब्द की व्युत्पत्ति करते हुये कहा कि उत्कल "उत्कला" का अपभ्रंश है जिसका अर्थ है जहां की कला कुशलता सर्वोत्कृष्ट है। इसका उदाहरण भुवनेश्वर का सर्व प्रसिद्ध प्राचीन मन्दिर है। इसके अतिरिक्त कोणार्क नामक मन्दिर भी आजकल प्राचीन कला कुशलता के लिये सार्वभौमिक रूप ग्रहण कर रहा है। सरस्वती यात्रार्थ विद्वन्मण्डलियां यहां पर नवम्बर से अप्रेल के बीच में भ्रमण करने आती हैं। इसी रूप में एक बार प्रधान मन्त्री पं० जवाहरलाल जी भी पधारे थे। तदनन्तर अशोक के कलिङ्ग विजय व जगन्नाथ धाम की ऐतिहासिक विवेचनता पर प्रकाश डाला तथा उड़िसा की रीतिरिवाज़ व प्रथा परम्पराओं का जिक्र किया और यह भी बताया कि उड़ीसा उड्र का अपभ्रंश है।

अन्त में उन्होंने विश्वविद्यालयों में संस्कृत की अनिवार्यता तथा हिन्दी माध्यम होने की

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

विवेचना की। संस्कृत की अनिवार्यता पर विवेचना करते हुए यह भी कहा कि हम संस्कृत के प्रचार के कारण ही आन्तरिक प्रान्तीय सगठन को मजबूत बना सकते हैं तथा उसकी समस्याओं को सुलझा सकते हैं।

आयुर्वेद परिषद् में व्याख्यान

आयुर्वेद परिषद् की तरफ से देहरादून निवासी श्री डा० मदनमोहन एम० बी० बी० एस० नेत्र विशेषज्ञ ने आयुर्वेद महाविद्यालय के छात्रों के मध्य सारगर्भित भाषण दिया। जिसका विषय था– भारतवर्ष में अन ता का प्रसार तथा उसका निवारण। यह भाषण विश्वविद्यालय के वेद मंदिर में रात्रि को हुआ था जिस में रोगां के चित्र दिखाने के लिये प्रोजेक्टर का समुचित प्रबन्ध था। इस में गुरुकुल के अन्य प्रोफेसर तचा ज्ञान पिपासु कर्मचारी भी उपस्थित थे। भाषण मनोरंजक था। रतौंधी आदि सम्पूर्ण नेत्र रगों के कारण तथा उनके निवारण के उपायों पर संपूर्णतः प्रकाश डाला गया था।

गांधी जयन्ती उत्सव

सोमवार २ अक्टूबर को गुरुकुल में गांधी जयन्ती उत्सव बड़े समारोह के साथ मनाया गया। प्रातःकाल ठीक ८ बजे राष्ट्रीय गीत के पश्चात् राष्ट्रीय ध्वजारोहण श्री आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति जी ने किया। उन्होंने एक छोटा तथा शिक्षाप्रद वक्तव्य दिया जिसमें कहा कि यह ध्वजा महात्मा गांधी जी के उच्च आदर्श सत्य और अहिंसा का प्रतीक है। हमें इस ध्वजा की अपने तन मन से रक्षा करनी चाहिये। इस के पश्चात् विद्यालय भवन में आचार्य जी के सभापतित्व में एक विराट सभा का आयोजन किया गया जिस में उपाध्याय, अध्यापक छात्र तथा अन्य कर्मचारी अच्छी संख्या में उपस्थित थे। उपाध्यायों और ब्रह्मचारियों ने गांधी जी के जीवन पर व्याख्यान दिये। प्रो० लालचन्द जी ने बताया कि फ्रांस के सब से बड़े दर्शन शास्त्र के ज्ञाता श्रीयुत डा० रोमनरोलैन्ड ने गांधी जी को संसार में सर्वोत्कृष्ट मनुष्य बतलाया है। अन्त में सभापति महोदय जी का भाषण हुआ जो कि बहुत मनोरंजक था। जिस में उन्होंने कहा कि गांधी जी ने जिस रामराज्य के लिये स्वतन्त्रता प्राप्त की थी वह आज कहां ? गांधी जी का जीवन तप और त्याग तथा अपरिग्रह का था। लेकिन हम आज यह अपने नेताओं में नहीं पाते। यदि हमें रामराज्य स्थापित करना है तो हमें अपरिग्रह नियम की पालना करनी पड़ेगी जिस का बापू जी ने हमको पाठ पढ़ाया था। आज हम लोग भौतिकवाद की ओर दौड़े जा रहे हैं। लेकिन इस मार्ग से हम रामराज्य स्थापित नहीं कर सकते। अपरिग्रह को हम अपनायें तो ही हम बापू जी के कथनानुसार देश को समृद्ध एवं शक्तिशाली बना सकते हैं।

जन्माष्टमी पर्व

श्रीकृष्ण जी का जन्मोत्सव श्रीयुत आचार्य प्रियव्रत जी के सभापतित्व में बड़े समारोह के साथ सनाया गया जिस में कुलवासी सम्मिलित थे। इसमें अध्यापकों तथा उपाध्यापकों के सुन्दर एवं शिक्षाप्रद व्याख्यान हुवे। श्री सभापति महोदय ने एक सारगर्भित प्रवचन दिया जिस में उन्ह ने यह बताया कि हम लोगों का कर्तव्य है कि इस पर्व को अन्य पर्वों की भांति सर्वदा मनाते रहें, क्योंकि महापुरुषों का जीवन ही हमारा एक सच्चा पथ प्रदर्शक हो सकता है। इन्हीं के द्वारा ही हम अपने जीवन को भी उन्नत कर सकते हैं। हम योगी राज कृष्ण जी की बनाई हुई गीता की

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

सरल भाषामयी तथा भाव गम्भीर शिक्षा से प्रेरणा लेकर अपने जीवन को आध्यात्मय बना सकते हैं। जब हम योगीराज कृष्ण जी को अवतार मान लेते हैं तब वे जन साधारण की पहुंच से बाहर हो जाते हैं। सत्य तो यह है कि श्री कृष्ण जी का जीवन मानव समाज के लिये एक महान् देन है।

कंचन जंघा पर अभियान

गुरुकुल विश्वविद्यालय के तीन युवक स्नातक कञ्चन जङ्घा पर चढ़ाई करने गये हैं। इन अभियान कर्त्ताओं के नाम ये हैं—श्री मनोहर विद्यालङ्कार (देहली), श्री क्षितीश विद्यालङ्कार, तथा श्री विद्यारत्न आयुर्वेदालङ्कार। इस दल में एक अन्य सदस्य भी है। दल के नायक श्री मनोहर विद्यालङ्कार साहसी पर्यटक हैं और इन्हें पर्वत यात्रा का अच्छा अनुभव प्राप्त है। सन् १९३७ में कैलाश मानसरोवर की यात्रा करने के बाद से ही उनकी निरन्तर यह अभिलाषा बनी रही थी कि हजारों माल की दूरी से आने वाले विदेशी अभियानकर्त्ताओं की तरह वे भी हिमालय की ऊंची दुगम्य चोटियों पर सफलता से चढ़कर भारतमाता का नाम उज्वल करें। जहां तक हमारा ज्ञान है श्री मनोहर विद्यालङ्कार और उनके दल के सदस्य प्रथम भारतीय हैं जो हिमालय पर इतना ऊंचा चढ़ने का साहस कर रहे हैं। कुलवासियों, समस्त गुरुकुल प्रेमियों तथा सब देश वासियों को इससे सचमुच गौरव प्राप्त होगा। और इससे भविष्य में ऐसे साहसिक कार्यों को करने की प्रवृति बढ़ेगी। भारतीय अभियान कर्त्ताओं के इतिहास में पहला अध्याय लिखने वाले श्री मनोहर विद्यालङ्कार और उनके दल की हम सफलता चाहते हैं।

कार्तिक मास में रोगी ब्रह्मचारियों का विवरण

नाम ब्र०	श्रेणी	नाम रोग	कितने दिन रोगी रहा
विपिनचन्द्र	१४	एडिनौयड्स ऑपरेशन	६
जीवनप्रकाश	१३	चोट	३
नरेशचन्द्र	१३	चोट	२
जयदेव	१३	उदरशूल	२
नरेन्द्र	११	व्रण	३
श्री कान्त	१२	चोट	७
सुखदेव	६	ज्वरकास	३
रघुवीर	८	ज्वर	३
धर्मवीर	८	”	८
विश्वामित्र	७	ज्वरकास	४
श्री कृष्ण	६	ज्वर	२
कर्मपाल	६	नेत्राभिष्यन्द	३
रामपाल	६	चोट	६
रामशंकर	६	ज्वर	३
धर्मव्रत	६	खुजली	६
रणधीर	५	ज्वर कास	३
ओम्प्रकाश	५	कर्ण शूल	३
वीरेन्द्र (चूड़पुर)	५	वात शूल	४
हरिनन्दन	५	ज्वर	
त्रिपुरेन्द्र	४	ज्वर कास	४
राजकुमार	४	”	३
वेदप्रकाश	४	”	३
सत्येन्द्रपाल	३	”	४
अश्विनीकुमार	४	”	३
सुभाष	२	”	३
क्षितेन्द्र	२	”	३

इस मास उपरोक्त ब्रह्मचारी रुग्ण हुये थे। अब सब स्वस्थ हैं।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

प्रान्तीय सरकार को सप्लाई करने वाली

गुरुकुल रासायनिक उद्योगशाला

गुरुकुल कांगड़ी

में इस समय निम्न वस्तुएं बड़ी मात्रा में तय्यार को जा रही हैं। हस्पतालों म्युनिसिपैलिटियों, मेलों तथा अन्य स्थानों पर भारी मात्रा में खरीद की जा रही हैं।

फ़िनायल

दो प्रकार, ३) वा ४॥) प्रति डिब्बा

साबुन

कपड़े धोने का तथा द्रव (Liquid Soap)

स्याही

लिखने की सब प्रकार की, विशेषतया बैंक इंक तथा फौन्टेन पैन इंक।

वार्निश तथा पेन्ट

कई प्रकार के, सब मुख्य रंगों के।

वर्म किलर

पिस्सू, मच्छर, कागज़ के कीड़ों को मारने के लिये, प्रति पौंड बोतल १॥)।

तथा अन्य उपयोगी वस्तुए मंगावें

सूचीपत्र तथा एजेन्सी नियम के लिये लिखें—

अध्यक्ष, गुरुकुल कैमिकल इण्डस्ट्रीज़

गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार।

मुद्रक—श्री हरिवंश वेदालंकार, गुरुकुल मुद्रणालय, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

प्रकाशक—मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

CC-0 Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी की
विशेष गुणदायक औषधियां

च्यवनप्राश हाइपो

च्यवनप्राश में कैल्शियम व सोडियम आदि नवीन रासायनिक पदार्थ डालकर यह योग तय्यार किया गया है। खांसी, क्षय, निर्बलता दमा आदि में रामबाण है और शरीर वृद्धि के लिये उत्तम रसायन है।

मूल्य ३।) पाव।

सिद्ध मकरध्वज

स्वर्ण, कस्तूरी आदि बहुमूल्य वस्तुओं से तैयार किया गया है। सब प्रकार की निर्बलता को दूर करके शरीर में शक्ति व स्फूर्ति देता है व नया जीवन लाता है।

मूल्य ३।।।) माशा, ४५) तोला।

बादाम पाक

बादाम, पिस्ता व अन्य गुणदायक वस्तुओं से तैयार किया गया है। स्वादिष्ट, बलवर्धक पाक है। मस्तिष्क व शारीरिक दुर्बलता को दूर कर शक्ति देता है।

मूल्य ४) पाव।

गुरुकुल चाय

जड़ी-बूटियों के योग से बनी देशी चाय है। सुख व स्वास्थ्य के लिये परिवार में इसका प्रयोग कीजिये। थकावट, हल्के बुखार, खांसी, जुकाम में तुरन्त लाभ दिखाती है।

मूल्य ।=) छटांक, १=) पाव।

बसन्त कुसुमाकर

सोना, चान्दी, मोती आदि से तैयार की गई यह औषधि बहुमूत्र और मधुमेह रोग में विशेष गुणकारी है। शरीर की नसों की निर्बलता को हटाकर समर्थ और बलवान बनाता है। मूल्य ३) माशा, ३६) तोला

चन्द्रप्रभा वटी

शिलाजीत, लोह भस्म, वंशलोचन आदि लाभदायक चीजों से तैयार की गई यह औषधि अनेक रोगों को दूर करके शरीर में नई शक्ति लाती है। खून की कमी, जिगर की निर्बलता, बवासीर तथा विशेषकर प्रमेह व स्वप्नदोष आदि में लाभदायक है।

मूल्य १) तोला, ४) छटांक।

महालोहादि रसायन

इसके सेवन से शरीर में नया रक्त पैदा होता है। प्रत्येक ऋतु में सेवन करने योग्य उत्तम औषधि है।

मूल्य ६) तोला।

द्राक्षासव

बलवर्धक, स्वादिष्ट पेय है। शारीरिक व मानसिक थकावट को दूर करके स्फूर्ति व शक्ति देता है।

मूल्य १।) पाव, २।) पौंड।

गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी (हरद्वार)

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by eGangotri

गुरुकुल पत्रिका

विद्ययाऽमृतमश्नुते ।

राष्ट्रीय गुरुकुल विश्वविद्यालय

मार्गशीर्ष
२००७

वर्ष ३
अङ्क ४

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय - हरिद्वार

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitised by S3 Foundation USA

वर्ष ३ । अङ्क ४ । मार्गशीर्ष २००७

गुरुकुल-पत्रिका

व्यवस्थापक
श्री इन्द्रविद्यावाचस्पति
मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ा।

सम्पादक
श्री सुखदेव विद्यावाचस्पति
श्री रामेश बेदी आयुर्वेदालंकार।

इस अङ्क में

अगले अंकों में

मुझको एक तेरा सहारा	श्री वेदव्रत
सादा जीवन	श्री मां
विषैले और निर्विष सांपों की पहिचान	श्री रामेश बेदी
स्वतन्त्र भारत के सच्चे शिक्षणालय की एक झलक	श्री रामसिंह ठाकुर

अन्य अनेक विश्रुत लेखकों की सांस्कृतिक, साहित्यिक व स्वास्थ्य सम्बन्धी रचनाएं।

मूल्य देश में ४) वार्षिक
विदेश में ६) वार्षिक
एक प्रति
छः आने

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

ॐ

गुरुकुल-पत्रिका

[गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की मासिक पत्रिका]

न हो निराश !

वयः सुपर्णा उपसेदुरिन्द्रम्, प्रियमेधा ऋषयो नाधमानाः।
अप ध्वान्तमूर्णु हि पूर्धि चक्षुर्मुमुग्ध्य स्मान्निधयेव बद्धान् ॥

ऋग्वेद—१०. ७३. ११. ॥ साम पू०—४. ३७ ॥

(सुपर्णाः) ज्ञान, कर्म रूप सुन्दर पत्तों से युक्त (प्रियमेधाः) मेधा सम्पन्न, (ऋषयाः) यथार्थदर्शी, (वयः) पक्षियों अथवा सूर्य रश्मियों के समान गतिशील तथा प्रमाद रहित मनुष्य (नाधमानाः) प्रार्थना करते हुए (इन्द्र) ज्ञान ज्योति से दीप्तिमान् सूर्य सदृश विद्वान् के चरणों में (उपसेदुः) प्राप्त हुए कि हे भगवन् ! अब कृपा कर (ध्वान्तंअपोर्णु हि) रहे सहे अज्ञानान्धकार को भी निवारण कर हमारे (चक्षुः पूर्धि) नेत्रों को प्रकाश से परिपूर्ण कर दीजिए (निधयेव बद्धान्) जीवन के कठोर नियन्त्रण पाश से बंधे हुए हमें, अब (मुमुग्धि मुक्त कर दीजिये। जिससे कि जो दिव्य ज्ञान हमने आप से प्राप्त किया है उसे हम शीघ्र ही संसार में फैला दें।

यह महामोहमय तिमिर घोर,
घेरे जगती के ओर छोर,
कर रहा उग्र शासन कठोर,
ऊपर नीचे क्या ? सभी ओर।

फिरते हैं उत्कट दस्यु चोर,
करते मनमाने जुल्म ज़ोर,
उठ रही रुद्ध कातर निहोर—
'कब होगा प्यारा भव्य भोर ?' ॥

अब अधिक न हो प्राणी निराश,
हो जाये सबका क्लेश नाश;
हे इन्द्र ! करो उन्मुक्त पाश,
जाते हैं करने हम प्रकाश ॥

—श्री वागीश्वर विद्यालङ्कार

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

मृत्यु-विजय

श्री रामनाथ वेदालङ्कार एम० ए०

देव आनन्द से हँसते-खेलते चले जा रहे थे। उन्हें स्वप्न में भी ध्यान नहीं था कि मार्ग में कुछ संकट आने वाला है। अचानक उन्होंने पीछे मुड़ कर देखा तो स्तब्ध रह गये। मृत्यु रूपी एक भयंकर सिंह उनके पीछे दौड़ा चला आ रहा है। अब वे क्या करें, कोई बचने का उपाय नहीं दीखता। पल भर में वे मृत्यु के ग्रास हो जायेंगे। पर नहीं, डूबतों को सहारा मिल गया। सामने उन्हें एक छोटी सी कोठरी दिखाई दी, यह वेदत्रयी की कोठरी थी। वे झट उसमें प्रविष्ट हो गये। वेदों ने भी अपनी शरण में आया देख उन्हें अपने छन्द रूपी वस्त्रों से ढक लिया। पर अरे, यह क्या हुआ? वे बहुत देर वहां छिपे नहीं रह सके। सहसा मृत्यु रूपी सिंह वहां आ पहुंचा और उसने उन्हें वेदों के अन्दर छिपा हुआ देख लिया। अब देवों में बड़ी खलबली मची। यहां भी वे पकड़े गये। उन्होंने सोचा था वेदों ने हमें अच्छी शरण दी है, अपने छंद रूपी वस्त्र हमारे ऊपर डाल दिये हैं, अब हमें कोई नहीं देख सकेगा। पर वे वस्त्र तो झीने सिद्ध हुए। मृत्यु ने उन्हें उनके अन्दर दुबक कर बैठा हुआ देख लिया, ठीक वैसे ही जैसे कि स्वच्छ पानी में बगला मछली को देख लेता है। अब वे क्या करें? मृत्यु का पञ्जा उन पर पड़ने ही वाला था कि उन्हें इस वेद रूपी कोठरी के अन्दर एक और कोठरी दिखाई दी। यह स्वर (ॐकार) की कोठरी थी। झट देव उसमें घुस गये। मृत्यु देखता ही रह गया कि देव कहां गये, मेरे देखते २ कहां लुप्त हो गये। उस ॐकार रूपी कोठरी के अन्दर प्रविष्ट होकर वे मृत्यु से बच गये। हम चाहें तो हम भी देवों की तरह इस ॐकार की शरण में जाकर अजर-अमर और मृत्युञ्जय हो सकते हैं।

यह छान्दोग्य उपनिषद् की एक छोटी सी कहानी है। कहानियों द्वारा रोचक बना कर रहस्यमय शिक्षा में देने की उपनिषदों की अपनी विशेष शैली है। इस कहानी में उपनिषत्कार ने बड़े सुन्दर रूप में ओंकार महिमा को चित्रित किया है, और बताया है कि ओंकार की शरण में जाकर ही मनुष्य सच्चे अर्थों में मृत्युञ्जय हो सकता है।

संसार में जो उत्पन्न हुआ है उसे मरना अवश्य है। किसी कवि ने कहा है कि मनुष्य जब उत्पन्न होता है तब माता की गोद में वह पीछे जाता है, मृत्यु पहले उसे अपनी गोद में ले लेती है—

> क्रोडी करोति प्रथमं यदा जातमनित्यता।
> धात्रीव जननी पश्चात् तदा शोकस्य कः क्रमः॥

किन्तु सर्वसाधारण को यह ध्यान ही नहीं आता कि उन्हें कभी मरना भी है। संसार में अनेक परिचित-अपरिचित मनुष्यों को काल-कवलित होते देख कर भी वे ऐसे ही रहते हैं मानों मृत्यु उनके पास कभी नहीं आने वाली है। पर कुछ ऐसे भी लोग होते हैं जिनका ध्यान इस ओर अवश्य जाता है। वे ऐसा अनुभव करते हैं मानों मृत्यु सिंह बन कर मुँह खोले उन्हें खा जाने को उनके पीछे दौड़ा चला आ रहा है। इन्हीं को कहानी में 'देव' कहा गया है। गौतम बुद्ध इसी श्रेणी के लोगों में से हुए। उनके सामने जब एक मृत व्यक्ति का दृश्य आया तो एक दम उनके मन में यह विचार आया कि इसी प्रकार मुझे भी एक दिन मरना होगा। ऋषि दयानन्द की गणना भी इसी कोटि के लोगों में आती है। भगिनी की मृत्यु का दृश्य उनके

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

सामने आने पर उन्हें भी यही बात ध्यान आई। इस प्रकार संसार में जो 'देव' हैं उन्हें मृत्यु अपने पीछे लगी हुई दीखती है और वे उससे त्राण पाने का उपाय करते हैं।

कहानी में कहा है कि देवों ने मृत्यु से बचने का यह उपाय सोचा कि वेदों की शरण में जाना चाहिये। वे वेदों के पास पहुँचे, वेदों ने उन्हें अपने छन्दों से ढक लिया। इसका अभिप्राय यह है कि देवों ने वेदों का उच्चारण करना, गान करना सीखा, उन्हें कण्ठस्थ किया और उनके अर्थों पर भी दृष्टिपात किया। वेद के स्वाध्याय से उन्हें बहुत लाभ हुआ। जब वे तन्मय होकर वेदों की गीतियों का गायन करते थे तब उन्हें ऐसा प्रतीत होता था, मानों उनके अन्तःकरण में अमृत वर्षा हो रही है। थोड़ी देर के लिये मृत्यु का भय उनके मन से निकल जाता था। जब वे वेदों के—

परं मृत्यो अनुपरेहि पन्थां
यस्ते स्व इतरो देवयानात्।
चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमि
मा नः प्रजां रीरिषो मोत वीरान्॥ ऋ. १०.१८.१

आदि छन्दों को गाते थे तब उनके हृदय में आभास होता था मानों मृत्यु उनसे कोसों दूर भाग गई है।

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्,
पश्येम शरदः शतं, जीवेम शरदः शतं,
शृणुयाम शरदः शतं, प्रब्रवाम शरदः शत-
मदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्॥
यजुः ३६. २४॥

"वह देखो, सामने देवों की आँख सूर्य उदित हो रहा है, उसके प्रकाश को हम सौ वर्ष तक देखते रहें, सौ वर्ष तक हम जीते रहें, सौ वर्ष सुनते रहें, सौ वर्ष तक बोलते रहें, सौ वर्ष तक अदीन बने रहें, सौ क्या सौ से भी अधिक वर्षों तक देखते-सुनते-बोलते रहें"—इस कोटि के मन्त्रों का जब वे गान करते थे तब दीर्घायु पाने की भावना से उनका हृदय अनुप्राणित हो जाता था।

इस प्रकार वेदों के छन्दों ने देवों को अपनी रक्षा में ले लिया, जिससे मृत्यु उन्हें न देख सके। पर उपनिषद् कहती है कि उनकी यह रक्षा चिर-स्थायी नहीं सिद्ध हुई इन वेद-मन्त्रों का आश्रय लेकर भी देवता मृत्यु पर विजय नहीं पा सके, मृत्यु से घिरे ही रहे, और वस्तुतः मृत्यु पर पूर्ण विजय वे तब पा सके जब कि वेदों के और अन्दर घुस कर वे 'स्वर' तक पहुँच गये। यहां प्रकरण में स्वर' का अर्थ ओ३म्कार है—

"एष उ स्वरो यदेतदक्षरमेतदमृतमभयम्॥"

वेद मनुष्य को जीवनोपयोगी सर्वतोमुखी ज्ञान तथा जागृति देते हुए अन्त में ओ३म्कार की ओर ले जाने वाले हैं। जो मनुष्य वेदों की ऊपरी सतह तक ही रह जाते हैं, अन्दर की कोठरी में प्रविष्ट हो कर ओ३म्कार की अनुभूति नहीं कर पाते वे वेदों के स्वाध्याय का पूरा लाभ नहीं उठाते। वेद में स्वयं कहा है—

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्
यस्मिन् देवा अधि विश्वे निषेदुः।
यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति
य इत्तद्विदुस्त इमे समासते॥

अर्थात् वेद की ऋचायें परम अविनाशी परमेश्वर की अनुभूति कराने वाली हैं। जिसने वेदों को पढ़ कर भी उसका अनुभव नहीं किया उसे वेद पढ़ने का क्या लाभ?

जब मनुष्य वेदों के द्वारा प्रभु तक पहुंच जाता है तब वह पूर्णतः मृत्युञ्जय होता है।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

जिसने प्रभु को पा लिया, उसे मृत्यु का क्या भय ? वह तो जन्म मरण के बन्धन से छूट जाता है। ॐकार रूपी कोठरी में प्रविष्ट हो कर मृत्यु से बच जाने का यह अभिप्राय नहीं कि उसका कभी शरीरान्त ही नहीं होता। जिसने जन्म लिया है उसने एक दिन मरना तो है ही। पर जब तक वह जीवित रहता है जीवन्मुक्त होकर रहता है, वह मृत्यु-भय से छूट जाता है। जब मृत्यु आती है तब हँसते २ उसका स्वागत करता है। वह उसे प्रभु के लोक में पहुँचने के लिये प्रभु द्वारा भेजा हुआ विमान समझता है। वह महात्मा गान्धी आदि सन्त पुरुषों की तरह यह कह सकता है कि जब तक प्रभु मेरे शरीर से काम लेना चाहेगा तब तक वह लेता रहेगा, जिस दिन वह चाहेगा अपने पास बुला लेगा। मृत्यु उसके आगे भूत बन कर खड़ी नहीं होती, उसे क्लेश नहीं पहुंचा सकती। और मृत्यु के बाद वह मुक्त हो जाता है। यही इस छोटी सी कहानी का रहस्यार्थ है। मृत्युञ्जय होने का यही उपाय जो यहां उपनिषद् ने बताया है अथर्ववेद में एक स्थान पर निम्न शब्दों में वर्णित किया है—

यस्त्वा मृत्युरभ्यधत्त जायमानं सुपाशया।
तं त्वा सत्यस्य हस्ताभ्यामुदमुञ्चद् बृहस्पतिः॥

अथर्व० ३. ११. ८।

अर्थात् हे मनुष्य ! उत्पन्न होते ही तुझे जिस मृत्यु ने अपने सुदृढ़ पाशों से बांध लिया है उस मृत्यु को बृहस्पति अर्थात् ज्ञानमय परमेश्वर अपने सत्य के हाथों से तुझ से छुड़ा दे।

●

बुरी वृत्तियों को त्याग दें

उलूकयातुं शुशुलूकयातुं जहि श्वयातुमुत-कोकयातुम्। सुपर्णयातुमुत गृध्रयातुं दृशदेव प्र मृण रक्ष इन्द्र॥ ऋ० ७. १०४. २२॥

आत्मन्! परमात्मन्! राजन्! उलूक-वृत्ति को मार दे। उलूक नाम उल्लू का है। उलूक उजाड़प्रिय होता है। उलूक उजाड़ चाहता है, हरियाली और आबादी नहीं। उलूक का दूसरा दुर्गुण है प्रकाश से वैर और अन्धकार से प्यार दूसरों का अनिष्ट चाहना और अज्ञानप्रिय होना उलूकवृत्ति है। मनुष्य होकर अपने अन्दर उलूक-वृत्ति रखना अशोभनीय है। शुशुलूकवृत्ति को विनष्ट कर। शुशुलूक छोटी जाति के उलूक को कहते हैं, जो बड़ा क्रोधी होता है। शुशुलूक नाम भेड़िये का भी है। भेड़िया भी बड़ा क्रोधी होता है। शुशुलूक की वृत्ति क्रोध है। जब मनुष्य क्रोध करता है, तब वह शुशुलूक हो जाता है। श्वान-वृत्ति को विनष्ट कर। श्वान नाम कुत्ते का है। जाति-द्रोह और टुकड़े के लिये दुम हिलाना व खुशामद करना श्वानवृत्ति है। मनुष्य के अन्दर श्वानवृत्ति का होना लज्जा की बात है। और कोकवृत्ति को नष्ट कर। कोक पक्षी बड़ा कामी होता है। कामी और लम्पट लोगों ने उसके नाम पर कोकशास्त्र रचे हैं। अति कामी होना और परपुरुषगामिनी या परस्त्रीगामी होना कोकवृत्ति है। मनुष्य का कोकवृत्ति होना लज्जास्पद है। सुपर्णवृत्ति को नष्ट कर। सुपर्ण नाम श्येन अथवा बाज़ पक्षी का है। यह अभिमानी और उत्पीड़क होता है। अभिमान और अत्याचार सुपर्णवृत्ति है। मानव का सुपर्ण-वृत्ति होना बुरा है। और गृध्र वृत्ति को नष्ट कर। गृध्र कहते हैं गीध को। गृध्र परमांससेवी और अति लालची व असन्तोषी होता है। शोषण और धनलोलुपता गृध्रवृत्ति है और त्याज्य है। इन राक्षसों को पाषाण से मार डाल, पीस डाल।

●

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

व्यक्तित्व

प्रो० रामचरण महेन्द्र एम. ए.

तुम्हें जो भी ध्येय चुनना है, उसे चुन लो। निराशा, असंतोष, अधैर्य अथवा उद्वेग के वशीभूत होकर बाद में उन्हें अपने ध्येय को बदलने का अधिकार नहीं है। तुम्हारा मन अनिश्चित नहीं रहना चाहिए। तुम्हारे विचार चक्राकार निरुद्देश्य नहीं घूमने चाहिए। तुम्हें वासना, इन्द्रियों, और आसक्ति से ऊपर उठना होगा। मन को वश में करना होगा। दूसरों की आलोचना, निन्दा, अपमान, दिन रात के सब द्वन्द्वों का उन्मूलन कर मन की निष्ठा प्राप्त करनी होगी।

मानसिक विकारों से मुक्ति--

अपने व्यक्तित्व के दोषों को एक एक कर निकाल डालो। यहां हम एक एक कर इन दुर्गुणों से छुटकारे के उपायों पर विचार करेंगे। मुख्य दुर्बलताएँ ये हैं—

(१) उद्देश्यहीनता (२) विस्मृति (३) निराशा (४) इच्छा शक्ति की कमजोरी (५) शक्तिहीनता (६) नए उत्पादक विचारों का अभाव (७) निर्णयशक्ति का अभाव (८) विक्षिप्तता (९) चित्त की चञ्चलता (१०) शर्म और लज्जा (११) अपने अन्दर अविश्वास (१२) बिना क्रम का जीवन (१३) बात को टालने की आदत (१४) मानसिक निष्क्रियता मिथ्या भय (१६) हीनत्व की भावना (१७) स्वभाव, आदतें और संकीर्णता। प्रभावशाली व्यक्तित्व की प्राप्ति के हेतु इनमें से प्रत्येक का समूल नाश कर इनके बिपक्षी सद्गुण को प्राप्त करना है। जैसे २ हम यह कार्य करेंगे, वैसे वैसे प्रतिभा, प्रभाव और ओज प्राप्त करते जायँगे। आइये, यह साधना प्रारम्भ करें।

उद्देश्यहीनता से मुक्ति--

(१) उद्देश्यहीनता मन की एक दुर्बलता है। इससे ग्रस्त व्यक्ति क्षणक्षण अपने निष्कर्ष बदलता है। 'यह करूँ, या वह करूँ?" क्या करना उचित होगा? क्या अनुचित? किस में क्या लाभ रहेगा? ऐसी संशयात्मक वृत्तियां मन की दुर्बलता से आती हैं और इष्ट चिन्तन में विक्षेप उत्पन्न करती हैं।

कोई भी व्यक्ति तब तक सुखी, समृद्ध, सफल नहीं हो सकता जब तक वह यह अनुभव न करे कि उसके जीवन का एक मूल उद्देश्य है, एक महत्त्वपूर्ण अभिप्राय है। आखिर हमें यह तो प्रतीत होना ही चाहिये कि हम किधर जाना चाहते हैं, क्या करना चाहते हैं?

सभ्यता के प्रारम्भ में मनुष्य अज्ञान के अंधकार से आवृत था, उसे अपने उद्देश्य, उन्नति, या विकास के तत्त्वों का अनुमान भी न था। वह जंगली, निर्दयी, अज्ञानी, असभ्य था। सभ्यता के चिन्ह अभी प्रारम्भ न हुये थे। शारीरिक शक्ति से वह छीना झपटी किया करता था। जो हर प्रकार से समर्थ मनुष्य थे, वे उन्नति करने लगे, शेष मर कट गए। अधिक चालाक, तीव्र बुद्धि वाले व्यक्ति मार्ग प्रदर्शन करते गए। धीरे धीरे उन्होंने सभ्यता, बुद्धि के विकास, तथा आन्तरिक गुप्त शक्तियों के विकास का मार्ग पकड़ा। इन गुप्तशक्तियों का विकास एक निश्चित उद्देश्य को सन्मुख रखने से हुआ। अन्त में मनुष्य अपने अन्दर ईश्वरत्व के छः गुणों—ज्ञान, बल, ऐश्वर्य, वीर्य, शक्ति और तेज की अभिवृद्धि पर लग गया। जीव का केन्द्र स्वदेह से स्वकुटम्ब, स्वसमाज, स्वदेश तक फैलता रहा।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

हमारी उन्नति का मुख्य कारण एक निश्चित उद्देश्य को सामने रख कर चलना ही हो सकता है। सुई की तरह हमें एक ही लक्ष्यसिद्धि पर दृढ़ रहना है। इसमें सतर्कता एवं जागरूकता की परमावश्यकता है।

मन को पुनः पुनः अपने लक्ष्य पर लगाइये। इधर उधर बहकने न दीजिये। विरोधी विचार धारा से टक्कर लेने की सामर्थ्य आप में बहुत है। "मैं अपने शरीर, इन्द्रिय, और मन की आसक्ति और राग के धन्दे में नहीं फँसता, मैं अपने विचार और वातावरण को अपनी दृढ़ आत्मा के आधीन रखता हूं। हर्ष-शोक, राग-द्वेष, मान-अपमान, लाभ-हानि, अन्तर्द्वन्द मेरी निर्णयशक्ति को हिला नहीं सकते, मेरी आत्मा में अपरिमित बल और महान् दृढ़ता है। मैं सब अवस्थाओं में सम, स्थिर, और अचलायमान रह सकता हूं।"—इन भावनाओं को दृढ़ता-पूर्वक आन्तरिक मन में उतारिये। उन्हीं पर आचरण कीजिये।

आपके भीतरी और बाहरी मन में विरोध नहीं रहना चाहिए। दृढ़ता से आन्तरिक और बाह्य समभाव, तारतम्य, संतुलन प्राप्त कीजिये। सन्देह को निकालिए अपना उद्देश्य निर्धारित कीजिये। जार्ज बर्नाडशा ने एक स्थान पर लिखा है—

"मानव जीवन का सच्चा सुख इसी में है कि जीवन को एक ऐसे उद्देश्य के लिए उपयोग में लाया जाय जिसको आप महान् और उत्कृष्टतम समझते हैं, जिसके लिये आप को अंत में पश्चाताप न हो।"

संसार में उद्देश्यों की कमी नहीं है। अपनी रुचि के अनुसार खूब सोच समझ कर, अधिक कुशल व्यक्तियों से पूछ कर कुछ उद्देश्य निश्चित कीजिए। आप अवश्य उस उद्देश्य में सफल हो सकेंगे। आप प्रकृति की एक शक्ति हैं, न कि क्लेश, शोक और उपालम्भों के ज्वर-ग्रस्त क्षुद्र मृत्पिण्ड, जो सदा यही शिकायत करता रहता है कि संसार मुझे सुखी बनाने की ओर ध्यान नहीं देता।

उद्देश्यहीनता एक अभिशाप है जो हमारी गुप्त शक्तियों को किसी निश्चित मार्ग में बढ़ने नहीं देता। समस्त शक्तियां इधर उधर बेतरतीब छिन्न भिन्न रहती हैं। हम कहीं भी नहीं पहुँच पाते क्योंकि हमने कहीं पहुंचने का प्रोग्राम ही न बनाया था।

उद्देश्यहीन व्यक्ति एक प्रकार की आन्तरिक अस्त व्यस्तता, कामचोरी, आलस्य, बात को टालने की आदतों का शिकार होता है। उसमें दृढ़ता नहीं होती।

अपने आप से पूछिये कि "आखिर मैं क्या करना चाहता हूं? मेरी कोई निश्चित योजना भी है। मैं किस ओर बढ़ना चाहता हूं? मेरी रुचि, स्वभाव, परिस्थितियां क्या कहती हैं? कहीं मेरा उद्देश्य इतना ऊँचा तो नहीं कि मैं उसे कभी प्राप्त ही न कर सकूं? दूसरे लोग क्या क्या कर रहे हैं? उनसे मैं क्या सहायता प्राप्त कर सकता हूं? बार बार नये काम प्रारम्भ कर उन्हें बीच ही में छोड़ कर मैं जीवन को पेचीदा तो नहीं बना रहा हूँ? इस महान् मानव जीवन को पाकर कहीं अन्त में जीर्ण और जर्जरित होने पर मैं यों ही कूड़े के ढेर में तो न फेंक दिया जाऊँगा? परमेश्वर मुझसे क्या खास काम कराना चाहता है? मेरी क्या विशेषता खासियत, या प्रतिभा है? इस प्रतिभा के सहारे मुझे क्या २ उचित है?"

छैः

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

इस प्रकार आत्म-विश्लेषण द्वारा अपनी बिखरी हुई शक्तियों को एक सुनिश्चित उद्देश्य पर केन्द्रित कीजिये, योजना बनाइये आलस्य में, मस्ती में, या व्यर्थ के कामों में मत फँसे रहिये। एक मार्ग पकड़ लीजिये और उसी पर बिना इधर-उधर डावांडोल हुए निरन्तर चलते रहिये।

(२) विस्मृति दूर करने के उपाय -

स्मृति हमारे ज्ञान-बर्द्धन का प्रमुख तत्व है। इन्द्रियों द्वारा अर्जितज्ञान मस्तिष्क के सूक्ष्म कोष्ठो में एकत्रित होता रहता है। इन सूक्ष्म कोषों में हमारे अनुभव, स्मृतियां, भ्रमण, देखा सुना, पुस्तकों का अध्ययन इकट्ठा होता रहता है। स्मरण द्वारा हम उन पुराने अनुभवों को उठाकर पुनः उनसे काम लेने लगते हैं।

अनेक बार हम जिन बातों को स्मरण करना चाहते हैं वे इस संचित कोष से ऊपर नहीं उठते, जिन बातों को याद करने से कुछ लाभ नहीं वे पुनः-पुनः याद आते हैं। दुःखदस्मृतियां मानसिक विभ्रम उत्पन्न करती हैं हम किंकर्तव्य-विमूढ़ हो जाते हैं।

उत्तम स्मरण शक्ति के लिए हमें निम्न नियमों पर ध्यान देना अतीव आवश्यक है—(१) हम जो ज्ञान प्राप्त करें उसे सिलसिलेवार मन में सजाते जांय, ऊटपटांग ठूंस २ कर नहीं। हम वे ही बातें याद रख सकेंगे, जो क्रमानुसार ढंग से रखी गई हैं। इसके लिए यह भी आवश्यक है कि हम जिस पुस्तक को पढ़ें उसके हर अंग को, प्रत्येक पंक्ति को सिलसिलेवार समझते जांय, और एक विचार अथवा निष्कर्ष को दूसरे से इस प्रकार सम्बन्धित करते जांय कि क्रम विच्छेद न हो। एक विचार दूसरे विचार को जाग्रत कर दिया करे। आपका ज्ञान सिलसिलेवार हो।

(२) आप जिस तत्व, विचार, या वस्तु पर मन को अधिक एकाग्र करेंगे, अधिक गहराई से देखेंगे या परखेंगे, अधिक समय लगावेंगे वह मन पर गहरा प्रभाव डालेगी और दृढ़ता से अंकित होगी। गहरे संस्कार स्मृति-पटल पर बनाइये। बेकन ने कहा है कि "समग्र ज्ञान हमारे गहरे संस्कारों से ही बनता है। पूर्व के अनुभव के जो संस्कार स्मृति पटल पर संस्कार रूप से अंकित हो जाते हैं, वर्तमान में वे ही प्रतिभा के रूप में प्रकट होते हैं।" प्रत्येक विचार पर मन को एकाग्र करने की आदत बनाओ। ध्यान पूर्वक एकाग्र करने से ही अनुभव स्मरण रहते हैं। धुँधले अस्पष्ट निष्कर्ष मानस पटल पर स्थायी नहीं रह सकते।

(३) विचारों को खूब समझ लो, उनके पारस्परिक सम्बन्ध समझ लो, संशय स्पष्ट कर लो, तत्पश्चात् वे स्वयं मानस पटल पर अंकित रहेंगे। आपके जो विचार स्पष्ट, दृढ़ और सुलझे हुये होंगे वे दीर्घ काल तक याद रहेंगे।

(४) जो वस्तु शुभ हो, लाभदायक तथा उत्तम हो, उसी को स्मरण रखने का प्रयत्न करो। जिसको आप पसन्द करते हैं, जो आपके स्वभावनुकूल है, वही याद रह सकता है, शेष विस्मृत हो जायगा।

(५) रौबर्ट एच० नट का कथन है कि हम भूलते इसलिये हैं कि नये ज्ञान को पुराने ज्ञान तथा अनुभवों से शृङ्खलित नहीं करते। असम्बद्ध ज्ञान-कण स्मृति से यकायक गुम हो जाते हैं, किन्तु यदि इन नई बातों को आप पुरानी बातों से संयुक्त कर दें, तो ये आसानी

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

से भुलाये नहीं जा सकते। अन्य अनुभवों के साथ उलझे चले आते हैं। नए अनुभवों को पुराने अनुभवों से संयुक्त करना एक कला है। सांनिध्य का नियम और शक्ति ज्ञानार्जन का प्रथम सोपान है।

विलियम जेम्स नामक मनोवैज्ञानिक का कथन है कि मानसिक दृष्टि से, जितना ही कोई तत्व मन में संग्रहीत तत्वों से संयुक्त किया जायगा, उतना ही स्मृति में टिका रहेगा। जिस अनुभव के बल आप नए ज्ञान को अटकाते हैं वह एक खूंटी की तरह है। जिस समय इस ज्ञान की आवश्यकता होती है तो वह अनेक पुराने साथ वाले अनुभव अपने साथ खींच लाता है। सांनिध्य द्वारा ज्ञान निरन्तर बढ़ता है।

(६) स्मरण शक्ति अभ्यास से बढ़ती है। पहले दो वस्तुएँ लो, और उन्हें याद रखने का प्रयत्न करो। किसी पुस्तक की एक या दो पंक्तियां याद रक्खो, फिर तीन याद करो तद-नन्तर चार पाँच करो। इसी प्रकार पूरा पृष्ठ याद करो। धीरे-धीरे अभ्यास बढ़ाते जाओ। छोटे २ गीत, कविताएँ कविता पुस्तकों के पद्य याद करते २ स्मृति में बहुत ज्ञान संचय हो जाता है। स्मृति, अभ्यास, ध्यान, धारणा और एकाग्रता पर निर्भर है।

(७) जिस बात को आप स्मरण रखना चाहते हैं, उसे पुनः-पुनः दोहराइये। आप किसी बात को जिह्वा से उच्चारण करते हैं, नेत्र से पुनः पुनः देखते हैं, कान से बार-बार सुनते हैं या अनुभव करते हैं, उसकी एक मानसिक लीक मन पर बनती है। बार-बार कहने से वह कंठस्थ हो जाती है अर्थात् दृढ़ता से अन्तर्मन पर अंकित हो जाती है।

(८) मन में यह मत सोचो कि हमें अमुक बात स्मरण न रहेगी। अपनी स्मृति के ऊपर आप जितना अविश्वास करेंगे, यह उतनी ही निर्बल होती जायेगी। मन में स्मरण शक्ति तेज है, हम बात भूलते नहीं, खूब याद रखते हैं—ऐसी भावना दृढ़ करो। अपनी स्मृति पर विश्वास कीजिये, पूर्ण विश्वास। विश्वास से स्मृति बढ़ जायेगी। कोई भी अनुभव मन से नष्ट नहीं होता, निरर्थक वस्तुओं के बोझ से ढक जाता है। थोड़ी सी एकाग्रता और प्रयत्न से वह पुनः स्मृति के केन्द्र पर लाया जा सकता है।

(३) निराशा (Pessimism) कैसे दूर करें ?

चिंता एक अभिशाप है। यह एक ऐसा क्षय रोग है जिससे ग्रसित होने पर मनुष्य धीरे-धीरे कमजोर, उद्विग्न होता जाता है। जब चिंता स्थायी रूप से व्यक्तित्व का अंग बन जाती है तो उसे निराशा कहते हैं। नैराश्य से आक्रान्त व्यक्ति को ससार में किसी प्रकार का चाव नहीं रह जाता। वह सम्पूर्ण वस्तुओं को एक ऐसे चश्मे से देखता है जिसमें दुर्बलता, दीन-हीनता के अतिरिक्त कुछ भी नहीं होता।

चिंता मनुष्य की आन्तरिक चरित्र की दुर्बलता का परिणाम है। मन में जब अन्तर्द्वन्द्व होता है और हम कोई बात इतनी दुर्दमनीय, कठिन, भयंकर, दुःखदायी पाते हैं, जिस पर विजय प्राप्त नहीं कर सकते, तो चिंतित हो उठते हैं। किंकर्तव्यविमूढ़ होकर हम सोचते हैं कि 'अब क्या करें ?' हमें कोई रास्ता इससे निकलने का नहीं सूझता। सर भारी हो जाता है, मुख पर मुर्दानी छा जाती है, अंग शिथिल पड़ जाते हैं, मानसिक अन्तर्द्वन्द्व बढ़ता है; अनेक प्रकार के अशुभ विचार मन में आने लगते हैं।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

साहस

श्री मां

तुम पानी में गिर पड़ते हो। वह विपुल जलराशि तुम्हें भयभीत नहीं करती। तुम हाथ पांव मारते हो, साथ ही तैरना सिखानेवाले अपने गुरु को धन्यवाद देते हो। तुम लहरों पर काबू पा लेते हो और बच निकलते हो। तुम बहादुर हो।

तुम सो रहे थे। 'आग' 'आग' की आवाज ने तुम्हें चौंका दिया। तुम बिस्तर पर से कूद पड़ते हो; सामने अग्नि की लाल लपटें दिखाई देती हैं। तुम उस घातक भय से त्रस्त नहीं होते। धुएँ, चिनगारियां और लपटों के बीच में से होकर तुम भाग निकलते हो और अपने आप को बचा लेते हो। यह साहस का काम है।

बहुत दिन हुए मैं इंग्लैण्ड के एक बच्चों के स्कूल में गई थी। वहां तीन से सात वर्ष तक के छात्र थे। उनमें लड़के लड़कियां दोनों थे। वे सब बुनने, चित्रकारी करने, कहानी सुनने सुनाने, गाने आदि में लगे हुये थे।

उनके अध्यापक ने मुझसे कहा—"हम अब अग्नि से बचने का अभ्यास करेंगे। आग सच-मुच में नहीं लगी है। पर बच्चों को यह सिखाना है कि किस प्रकार खतरे का संकेत पाते ही झट-पट उठ कर भाग जाना चाहिए।"

उसने सीटी दी। उसी दम बच्चों ने अपनी पुस्तकें, पेन्सिलें और बुनने की सलाइयां छोड़ दी और उठ कर खड़े हो गये। दूसरे संकेत पर सब, एक के पीछे एक, बाहर खुले में आ गये। कुछ ही क्षणों में श्रेणी खाली हो गई। उन छोटे बच्चों ने आग के खतरे का सामना करना और साहसी बनना सीखा था।

तुम किसकी रक्षा के लिये तैरे थे? अपनी रक्षा के लिये।

तुम किसको बचाने के लिये आग की लपटों में से गुजरे थे? अपने आपको बचाने के लिये।

बच्चों ने किसके बचाव के लिये आग के भय का सामना किया था? अपने बचाव के लिये।

प्रत्येक अवस्था में साहस का प्रदर्शन अपनी रक्षा के लिये किया गया था। क्या यह अनुचित था? बिल्कुल नहीं। अपने जीवन की रक्षा करनी और उसे बचाने के लिये वीरता होनी सर्वथा उचित है। पर एक वीरता इससे भी बड़ी है—वह वीरता जो दूसरों की रक्षा के लिये काम में लाई जाती है।

× × ×

मैं तुम्हें माधव की वह कहानी सुनाती हूं जो भवभूति ने लिखी थी।

माधव मन्दिर के बाहर घुटने टेके बैठा था कि उसने एक दुःखभरी आवाज सुनी।

अन्दर घुसने के लिये उसने रास्ता पा लिया और देवी चामुण्डा के कक्ष में उसने झांका।

उस भयानक देवी पर बलि चढ़ाने के लिये एक लड़की को वहां तैयार रखा हुआ था। वह बेचारी मालती थी। वह युवती सुप्त अवस्था में ही वहां लाई गई थी। वहां पुजारी और पुजारिन के पास वह बिल्कुल अकेली थी। पुजारी ने अपना चाकू जिस समय ऊपर उठाया उस समय वह अपने प्रेमी माधव का ध्यान कर रही थी—"माधव, मेरे हृदयेश्वर, मेरी यह प्रार्थना है कि अपनी मृत्यु के बाद भी मैं तुम्हारी याद में रह

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

सकूं जिनको प्रेम अपनी लम्बी और मधुर याद में सुरक्षित रखता है, उनकी मृत्यु नहीं होती।"

एक चीख के साथ वीर माधव उस बलिगृह में कूद पड़ा। पुजारी के साथ उसका घोर युद्ध हुआ। मालती बचा ली गई।

माधव ने इस साहस का प्रयोग किसके लिये किया था ? क्या वह अपने लिये लड़ा था ? हां, पर उसके साहस का केवल यही कारण नहीं था। उसने दूसरे की रक्षा के लिये भी लड़ाई की थी। उसने एक दुःखी की आर्त-ध्वनि सुनी थी, जिसने उसके वीर-हृदय को सीधा जा छुआ था।

× × ×

यदि तुम जरा सोचो तो तुम्हें कितनी ही इसी प्रकार की आंखों देखी घटनाएँ याद आ जायेंगी। तुमने निश्चय ही देखा होगा कि किस प्रकार एक व्यक्ति भय का संकेत पाते ही किसी दूसरे पुरुष, स्त्री या बच्चे की सहायता के लिये दौड़ पड़ता है।

तुमने समाचार पत्रों या कहानियों में भी इस प्रकार की साहसपूर्ण घटनाओं के बारे में अवश्य पढ़ा होगा। तुमने यह भी सुना होगा कि किस प्रकार आग बुझानेवाले आग की लपटों में ग्रस्त घरों से लोगों को बचाते हैं; किस प्रकार खान में काम करने वाले गहरे कुएँ में उतर कर अपने साथियों को पानी, आग और दम घोटने वाली गैस से बचाने के लिये बाहर निकाल लाते हैं; भूचाल से हिलते घरों में से लोग घर की दीवारों के गिरने का डर होते हुये भी दुर्बल व्यक्तियों को बाहर लाने का साहस करते हैं, नहीं तो वे मलवे के नीचे दब कर मर गये होते; किस प्रकार नागरिक अपने नगर या मातृ-भूमि को बचाने के लिये शत्रुओं का सामना करते, भूख प्यास सहते और घायल तक हो जाते हैं।

इस प्रकार हमने दो प्रकार के साहस देखे हैं—एक अपनी सहायता के लिये काम में लाया जाता है दूसरा औरों की सहायता के लिये।

× × ×

मैं तुम्हें वीर विभीषण की कहानी सुनाती हूं। उसने एक ऐसे खतरे का सामना किया था जो मृत्यु के खतरे से भी अधिक भयानक था। यह एक राजा के क्रोध के सामने डट गया था और उसने उसे बुद्धिमानी की एक ऐसी सलाह दी जिसे देने का किसी और को साहस नहीं हुआ था।

लङ्का का राक्षस राजा दस शीशवाला रावण कहलाता था। वह श्री सीता जी को अपने रथ में बैठा, उनके पति से दूर, लङ्का—द्वीप में स्थित अपने महल में ले गया था। जिस महल और जिस बाग में राजकुमारी सीता को बन्द कर दिया गया था, वे बड़े विशाल और मोहक थे, फिर भी वे दुःखी थीं; दिन रात रोती थीं। उन्हें यह भी पता नहीं था कि वे अपने स्वामी राम को पुनः देख सकेंगी या नहीं।

यशस्वी राम को बानर—राज हनुमान् से यह पता चल गया कि उनकी स्त्री किस स्थान पर कैद करके रखी गई है! वे अपने सुशील भाई लक्ष्मण और वीरों की एक बड़ी सेना लेकर बंदिनी सीता की सहायता के लिये चले।

जब राक्षस—राज रावण को राम के आने का पता चला तो वह डर के मारे कांपने लगा।

अब उसे दो प्रकार की सलाह मिली। उसके राज-दरबारियों का एक झुण्ड उसके सिंहासन

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

के चारों ओर इकट्ठा हो गया और कहने लगा—"सच ठीक है महाराज ! डर की कोई बात नहीं है। आपने देवताओं और असुरों दोनों को जीत लिया है। राम और उसके साथी हनुमान् के बन्दरों को जीतने में कोई कठिनाई नहीं होगी।"

ज्यों ही ये गुलगाड़िये राजा के पास से हटे, उसके भाई विभीषण ने वहां प्रवेश किया और उसके आगे घुटने टेक कर उसके पैर चूमे। फिर उठकर वह सिंहासन की दाईं ओर बैठ गया और बोला—"मेरे भाई, यदि तुम सुख से रहना चाहते हो या लङ्का के सुन्दर द्वीप के सिंहासन की रक्षा करना चाहते हो, तो सुन्दरी सीता को वापिस कर दो, क्योंकि वह दूसरे की स्त्री है। राम के पास जाओ और उनसे क्षमा मांगो। वे तुम्हें निराश नहीं करेंगे। इतने दुस्साहसी और अभिमानी मत बनो।"

एक और बुद्धिमान् व्यक्ति माल्यवान ने यह बात सुनी और वह इससे सन्तुष्ट हुआ। उसने राक्षस-राज से आग्रह-पूर्वक कहा—"अपने भाई की बात पर विचार करो, क्योंकि इसने सत्य कहा है।"

"तुम दोनों दुष्टाशय वाले हो", राजा ने उत्तर दिया, "कारण, तुम मेरे शत्रुओं का पक्ष लेते हो।"

उन दस सिरों की आंखों से ऐसे क्रोध की चिनगारियां निकलने लगीं कि माल्यवान तो डर के मारे कमरे से भाग गया। पर विभीषण अपने आत्म—बल से वहीं डटा रहा, बोला—"स्वामी, प्रत्येक मनुष्य के हृदय में विवेक और अविवेक दोनों का निवास है। जिसके हृदय में विवेक होता है, उसके लिये जीवन सुखकारक है; यदि वहां अविवेक का राज्य हो तो फिर बस दुःख ही दुःख है। भाई, मुझे डर है कि तुम्हारे हृदय में अविवेक अड्डा जमाये हुये है क्योंकि जो तुम्हें बुरा परामर्श देते हैं तुम उन्हीं की बात पर कान धरते हो। वे तुम्हारे सच्चे मित्र नहीं हैं।"

इतना कह वह चुप हो गया और उसने राजा के पांव फिर चूमे।

रावण चिल्लाया—"दुष्ट ! तू भी मेरे शत्रुओं में से है ! बस, ऐसे मूर्खता के शब्द और मत बोल। ऐसे शब्द तू उन साधु—सन्यासियों को जाकर सुना जो जंगलों में रहते हैं, उससे मत कह जिसने जिन-जिन शत्रुओं से युद्ध किया है उन सब पर विजय प्राप्त की है"-ऐसा कहते-कहते उसने अपने वीर भाई विभीषण के एक लात जमा दी।

मन में व्यथित हो विभीषण उठ बैठा और राजा का घर छोड़ कर चला गया।

जरा भी मन में भय न मानते हुये उसने सब कुछ रावण से साफ-साफ कह दिया था और अब क्योंकि उस दस सिर वाले ने उसकी बात न सुननी चाही तो वह चले जाने के सिवाय और कर भी क्या सकता था।

विभीषण का यह कार्य शारीरिक साहस का कार्य था क्योंकि उसने अपने भाई की ठोकरों का डर नहीं माना, पर साथ ही यह एक आत्म-निर्भयता का भी कार्य था। वे बातें, जो अन्य राजदरबारियों ने उतना शारीरिक बल रखते हुये भी अपने मुंह से नहीं निकाली थीं, इसने राजा से कहने में जरा सकोच नहीं किया। यह मन का साहस है, जिसे हम नैतिक बल कहते हैं।

× × ×

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

ऐसा साहस इजराइल के नेता मूसा में भी था। इसने मिश्र देश के राजा फारो से यह मांग की थी कि वह सताये हुये यहूदा को स्वतन्त्र कर देवे।

यही साहस पैगम्बर मोहम्मद में भी था जिसने अपने धार्मिक विचार अरबनिवासियों पर प्रकट कर दिये थे। उन लोगों के मृत्यु का डर दिखाने पर भी उसने चुप रहना अस्वीकार कर दिया।

गौतम बुद्ध में भी ऐसा ही साहस था। इन्होंने भारतवासियों को एक नवीन और उच्च रास्ता बताया और बोधिवृक्ष के नीचे दुष्ट प्रेतात्माओं द्वारा सताये जाने पर भी डर नहीं माना।

यह साहस ईसामसीह में भी था जिन्होंने लोगों को यह उपदेश दिया—"एक दूसरे से प्रेम करो।" न ये यरुशलम के धर्माचार्यों से डरे जिन्होंने उन्हें ऐसा सिखाने से मना किया था और न रोम के लोगों से जिन्होंने उन्हें सूली पर चढ़ा दिया था।

हमने अभी साहस की तीन श्रेणियों और तीन मात्राओं का निरूपण किया है।

शारीरिक साहस, जो अपनी रक्षा के लिये प्रयुक्त होता है।

वह साहस, जो मित्र, पड़ोसी और कष्ट में पड़ी मातृभूमि के लिये दिखाया जाता है।

अन्त में वह नैतिक साहस आता है जो अन्यायी मनुष्यों का सामना करना सिखाता है—चाहे वे कितने ही बलशाली क्यों न हो, और सच्चाई और न्याय की आवाज उनके कान तक पहुँचाता है।

× × ×

वरुण की नौका—लेखक श्री पंडित प्रियव्रत जी आचार्य गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय इस पुस्तक में वरुण सूक्तों में आये वेदमन्त्रों की विद्वत्तापूर्ण सरल व्याख्या की है। प्रतिपद के अर्थ के साथ मन्त्र के अर्थ को सुबोध और सुगम बनाने के लिये विस्तृत व्याख्या की गई है और अन्त में अपने आत्मा को ही सम्बोधित करके मन्त्र से प्राप्त होने वाली शिक्षा का सार संक्षेप में दिया गया है। पुस्तक के आरम्भ में स्वाध्यायशील लेखक ने वरुण-सम्बन्धी ३५ पृष्ठों की एक गवेषणापूर्ण भूमिका भी दी है।

कर्मफल, पुण्य, पाप, कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य की इस पुस्तक में मीमांसा है। राजा वरुण प्रभु की आंखें सब जगह पर हैं। कर्मफल विज्ञान के जिज्ञासुओं के लिये यह पुस्तक एक वरदान है। लेखक ने अत्यन्त सरल भाषा में सच्चे सुख का सच्चा उपाय इसमें बताया है। प्रभु कृपा किस पर होती है और कैसे कर्म करके हम प्रभु के प्यारे हो सकते हैं इत्यादि विषय पुस्तक में दार्शनिक गहराइयों के साथ सरल रूप में वर्णित हैं। मूल्य प्रथम भाग ३), द्वितीय भाग ३)।

मिलने का पता—प्रकाशन मन्दिर, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

काली मिर्च का रोचक इतिहास

श्री रमेश बेदी

अनेक शराबों का घटक

सम्राट चन्द्रगुप्त (३२ –२९८ ईस्वी पूर्व) के समय मैरेय नामक एक शराब का प्रचलन था जिसे मेषशृङ्गी की छाल के काढ़े में मिर्च, पिप्पली और त्रिफला आदि को मिलाकर बनाया जाता था।[1]

रंग को निखारने वाली मेदक और प्रसन्ना नामक शराबों के भी मिर्च और पिप्पली घटक थे।[2]

आचार्यकौटल्य (३००–२९८ ईस्वी पूर्व) ने कटुक वर्ग में मिर्च, पिप्पली और सोंठ आदि को गिनाया है।[3] और उनके अर्थशास्त्र में इन द्रव्यों का अनेक स्थानों पर उल्लेख किया गया है।

अंगूर लता के समान मिर्च की बेलें

कॉस्मस (क्रिश्चियन टोपोग्राफ़ी, ५३०–५५० ईस्वी पश्चात्) अपने पहले जीवन में एक व्यापारी था और बाद में साधु बन गया था। मालूम होता है कि वह मलाबार तट पर स्वयं गया था, या उसने किसी प्रत्यक्षदर्शी से काली मिर्च की सब अवस्थाओं के बारे में ज्ञान प्राप्त किया था। शायद यह पहला व्यक्ति था जिसने इसके बारे में अधिक बातें बताई थीं। काली मिर्च का चित्र देते हुए कॉस्मस (५४५ शती) लिखता है–'यह मिर्च का वृक्ष है। अंगूर-लता की पतली शाखाओं की तरह इसका पौदा निर्बल और नाज़ुक होता है इस लिए प्रत्येक पौदा जगल के किसी ऊंचे वृक्ष के चारों ओर लिपटा होता है। फल के प्रत्येक गुच्छे के ऊपर एक दुहरा खूब हरा पत्ता होता है जो रक्षा का कार्य करता है।' इसका मूल देश वह मले लिखता है। अरबी में बार का अर्थ तट होता है। प्रतीत होता है कि इस साधु पर्यटक ने मलाबार को ही मले कहा है।

बारिश से रक्षा करने वाला पत्ता

इब्न खुर्दादबा (८७० शती) को समुद्रीय नाविकों ने बताया था कि 'मिर्च के प्रत्येक गुच्छे के ऊपर एक पत्ता होता है जो बारिश से इस की रक्षा करता है। वर्षा बन्द होने पर पत्ता एक पार्श्व में हट जाता है और यदि बारिश फिर होने लगे तो यह फल को फिर ढक लेता है।'

मिर्च की मिलावट पर शूली

अलिफ़ लैला की कहानियों में एक हलवाई को मलाई में काली मिर्च मिलाने के अपराध में शूली पर चढ़ने का दण्ड दिया गया है।[4]

---

१. मेषशृङ्गीत्वक् काथाभिषुतो गुलप्रतीवापः पिप्पली मरिच सम्भारस्त्रिफलायुक्तो वा मैरेयः। गुलयुक्तानां वा सर्वेषां त्रिफला सम्भारः।
—कौटलीयम्, अर्थशास्त्रम्, अधिकरण २, अध्याय २५।

२. पाठालोध्रतेजोवत्येलावालुकमधुकमधुरसाप्रियङ्गुदारुहरिद्रामरिचपिप्पलीनां च पाञ्चकर्षिकः सम्भारयोगो मेदकस्य प्रसन्नायाश्च। मधुकनिर्यूह्युक्ता कटशर्करा वर्णप्रसादनी च।
—कौ॰ अ॰, अधि॰ २, अध्या॰ २५।

३. पिप्पली मरिचशृङ्गिबेराजाजी किराततिक्तगौरसर्षपकुस्तुम्बुरूचोरकदमनकमरुवकशिग्रुकाण्डादिः कटुकवर्गः।
—कौ॰ अ॰, अधि॰ २, अध्या॰ १५।

४. अलिफ़ लैला, ब्रह्म प्रेस, इटावा, पृष्ठ २३४।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

ठगी के लिये

कुतिया को काली मिर्च से भरा मांस का टुकड़ा खिला कर गुहसेन की पत्नी को डिगाने का असफल प्रयत्न करने की एक कहानी सोमदेव (लगभग १०७० ईस्वी पश्चात्) ने दी है। [१]

सफेद से काली

स्पेन के रब्बी बेन्जामिन नामक यहूदी यात्री ने ११७० ईस्वी पश्चात् के लगभग यह विवरण दिया है—

'मिर्च पहले सफ़ेद होती है, परन्तु तोड़ने के बाद वे इसे बरतनों में रख कर इस पर गरम पानी डालते हैं, तब यह धूप में फैला कर सुखा ली जाती है जिससे कठोर तथा अधिक भारी हो जाती है। इस प्रक्रिया में यह काली हो जाती है।' [२]

उत्तर भारत में उत्पत्ति

मौण्टेकॉर्विनो (John of Montecorvino) १२६१ में पर्शिया के एक शहर टौरिस (Tauris) से भारत आया और तेरह मास यहां घूमा। वह लिखता है कि उत्तर भारत में 'कालीमिर्च का पौदा उगता है। यह पतला और अंगूर लता की तरह गांठदार होता है, वास्तव में यह अंगूरलता से बहुत मिलता है सिवाय इसके कि यह अधिक नाज़ुक होता है। [३]

बरफ़ की तरह सफेद

मार्को पोलो (लगभग १२६३ ईस्वी पश्चात्) ने अपने यात्रा-विवरण में फ़िलिपाइन, मोलक्का आदि के द्वीप-समूहों के लिये लिखा था कि उन द्वीपों में बरफ़ की तरह सफ़ेद मिरच उगती है; और काली मिरच भी बड़े परिमाण में होती है। इन द्वीपों की बहुमूल्य चीज़ें, सोना, कीमती पत्थर और सब प्रकार के मसाले अचरज पैदा करते हैं। मोलक्का द्वीप-समूहों को तो अब भी मसाले के द्वीप (spice islands) कहते हैं। मार्को पोलो (जिल्द २, पृ० २७२) बताता है कि जावा का महान् 'द्वीप अत्यन्त समृद्धिशाली है जिस में काली मिरच, जायफल, जटामांसी, गैलिंगल, कबाबचीनी, लौंग और सब प्रकार के दूसरे मसाले पैदा होते हैं।' कोलम् या कोइलम् के महान् राज्य में 'सब जगह काली मिरच बड़े पैमाने पर बोई जाती है और मैं आप को बताता हूँ कि किस तरह। मिरच के वृक्ष जङ्गली नहीं होते परन्तु खेती किये जाते हैं। उन्हें नियमित रूप से बोया और सींचा जाता है। मई, जून, और जौलाई महीनों में मिरच इकट्ठी की जाती है।' [४] एलि (Eli, वर्तमान कन्नानूर) के राज्य में मिरच, सोंठ और दूसरे मसाले पैदा किये जाते हैं (पृ० ३८५)।

एक जहाज़ में छः हज़ार टोकरे

आज कल हम जैसे जहाज़ का परिमाण बताने के लिये कहते हैं कि यह जहाज़ इतने टन का है, उसी तरह पहले चीनी जहाज़ों की समाई को बताने के लिए यह बताया जाता था कि इस में मिरच की कितनी टोकरियां आ जाती हैं। मार्को पोलो ने ऐसे चीनी जहाज़ बताये हैं

१. दि ओशन ऑफ़ स्टोरी, जिल्द १, पृष्ठ १५६।
२. फॉरेन नोटिसेज़ ऑफ़ साउथ इण्डिया, के. ए. नीलकण्ठ शास्त्री, १६३६, पृष्ठ १३५।
३. फॉरेन नोटिसेज़ ऑफ़ साउथ इण्डिया, के. ए. नीलकण्ठ शास्त्री, १६३६; पृष्ठ १८७।
४. क. मार्को पोलो, जिल्द २, पृष्ठ ३७५।
ख. फॉरेन नोटिसेज़ ऑफ़ साउथ इण्डिया, के. ए. नीलकण्ठ शास्त्री, १६३६, पृष्ठ १८०।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

जिन में पांच हज़ार से छः हज़ार तक मिरच के टोकरे रख लिये जाते थे।

प्रतिदिन १२२ मन लागत

मेसर मार्को (१२७१—१२६५) को चीन के चुङ्गी के एक उच्च राजकीय अधिकारी ने बताया था कि किन्से (Kinsay) के शहर में प्रतिदिन खर्च होने वाली काली मिरच का परिमाण तैंतालीस भार था। प्रत्येक भार २२३ पौंड के बराबर होता था!

इस पर टिप्पणी करते हुए, कौर्डियर (१६२६) ने लिखा है कि चीनियों की मिरचें और इसी तरह के दूसरे मसालों को खाने की अधिक आदत अब बदल गई है। विलियम्स (मिडल किंग्डम, जिल्द २, पृ० ४६, ४०८) के अनुसार चीनी लोग आज कल बहुत कम मसाले इस्तेमाल करते हैं। कालो मिरच को तो वे ज्वरहर के तौर पर फाण्ट के रूप में बरतते हैं, और वह भी कुछ साल पहले की तुलना में ज्वरहर रूप में इसका प्रयोग बहुत कम हो गया है। इस पर यूले (Youle) लिखते हैं कि मिरच को न केवल डाक्टरों ने ही उपेक्षित कर दिया है परन्तु सामान्य लोगों में भी यह उपेक्षित हो गई है। एक या दो महीने पहले शहर में एक छाबड़ी वाले की दुकान पर से गुज़रते हुये मैंने एक लड़की गाहक को चिल्लाकर कहते हुए सुना, 'ठीक-ठीक बताओ कि तुमने इस में मिरच तो नहीं डाली।' उस लड़की ने काली मिरच की ही अनुपस्थिति चाही हो यह निश्चित नहीं कहा जा सकता। भारत में बहुत से ऐसे व्यक्ति हैं जो छाबड़ी वाले से खाने की चीज़ खरीदते समय उसमें लाल मिरच न डली होने का निश्चय कर लिया करते हैं। इसी तरह उस लड़की ने भी सम्भवतः लाल मिरच के लिये ही पूछा हो।

सौ जहाज़ प्रतिदिन

दक्षिणीय चीन के एक पुराने बन्दरगाह ज़तोन से काली मिरच का व्यापार बहुत होता था। मार्को पोलो (जिल्द २, पृ० २३५) लिखता है कि युरोप के ईसाई देशों में भेजे जाने के लिये सिकन्दरिया (Alexandria, मिश्र का बन्दरगाह) या दूसरी जगहों पर यदि मिरच का एक जहाज़ आता है तो ज़तोन के बन्दरगाह में ऐसे सौ जहाज़, और इससे भी अधिक, आते हैं, क्योंकि यह संसार की सब से बड़े दो व्यापारिक बन्दरगाहों में से एक है।

चवालीस प्रतिशत कर

चीनी सम्राट् उस समय मिरच पर चवालीस प्रतिशतक, अगरुकाष्ठ, चन्दन और दूसरी अधिक जगह घेरने वाली चीज़ों पर चालीस प्रतिशतक कर लेता था।

चीन में एक लाख तेतीस हज़ार मन अयात

१५१५ में कोचीन से चीन के सम्बन्ध में लिखते हुए गिओवान्नी द एम्पोलो (Giovanni d' Empoli) कहता है, इन भागों से जहाज़ वहां मसाले ले जाते हैं। चीन में सुमात्रा से प्रति वर्ष साठ हज़ार कैण्टर (एक कैन्टर Canter=१३० पौंड) मिरच जाती है और कोचीन तथा मलाबार से पंद्रह या बीस हज़ार कैन्टर। एक कैन्टर की कीमत पन्द्रह से बीस दुकत (Ducats) तक थी। दुकत एक इटालियन सिक्का था जो सोने और चांदी दोनों का हुआ करता था। सोने का एक दुकत हमारे चार रुपये के बराबर और चांदी का दो अकबरी रुपये के बराबर होता था।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

काली मिरच के अतिरिक्त सोंठ (?), जावित्री, जायफल, सुगन्धित पदार्थ, अगरु, मखमल, युरोपियन सोने के तार, मूंगे, ऊन, आदि भी चीन को जाते थे।

बारह सौ टन

१५१७ में गाल्वानो (Galvano) ने फर्नाओ पेरेज़ (Fernao Perez) के चीन में जहाजों का उल्लेख करते हुए कहा था, उसने पेसम (Pacem.) में मिरच का एक जहाज़ लिया था, चीन में यह व्यापार का मुख्य पदार्थ था। मार्सडन के 'सुमात्रा के इतिहास' से स्पष्ट है कि उन्नीसवीं सदी तक भी थोड़े बहुत परिमाण में यह चीन को भेजी जाती रही थी। सुमात्रा से ईस्ट इण्डीज़ कम्पनी के बग़ीचों से औसत बारह सौ टन निर्यात होती थी। इस में से अधिक परिमाण तो युरोप को जाता था और शेष चीन को चला जाता था।

रोम—मिर्च की बड़ी मण्डी

सीरिया को यह फ़ारस की खाड़ी से टायर को जाने वाले व्यापारिक काफ़लों से मिलती थी। एशिया माइनर, सीरिया और मिश्र को जीतने के बाद रोमवासी इसे प्राप्त करने लगे थे और रोम इस के लिए बड़ी भारी मंडी बन गई थी। यह कल्पना युक्तिसंगत है कि बेबिलोनिया और फ़ारस की खाड़ी में मसालों में काली मिरच की मांग सामान्यतया अधिक थी, जैसे कि मिश्र में दालचीनी की अधिक मांग थी। डेरियस के अधीन पर्शियन साम्राज्य के बिस्तार के साथ इस की मांग बहुत बढ़ गई थी। यह व्यापार समुद्र के रास्ते से था, ज़मीन के रास्ते नहीं। यह भी कहा जा सकता है कि रोम में काली मिरच की मांग पैदा होने से पहले चीन में इस की स्थिर मांग थी और यही कारण था कि दूसरी सदी ईस्वी पूर्व में और सम्भवतः इस से पहले भी मलाबार तट पर चीनी जहाज़ आया करते थे।

किशमिश की तरह सुखाना

फ्रायर ओडोरिक (लगभग १३२१–२ ईस्वी पश्चात्) ने लिखा है कि 'मलाबार राज्य के अतिरिक्त यह संसार में कहीं नहीं पैदा हो रहीं) इसके पत्ते इवी के सदृश होते हैं।... फल इतने अधिक परिमाण में आते हैं कि ऐसा प्रतीत होता है लताएँ टूट जायेंगी।...... पकने पर फल हरे रंग के होते हैं और तोड़ कर अंगूर की तरह धूप में सुखा लिये जाते हैं।... ताज़ी मिरचों से एक प्रकार का आचार बनाया जाता है जिसे मैंने खाया है।' [1]

सांप लिपटी हुई लताएँ

फ्रायर ओडोरिक (१३२१–२ ईस्वी पश्चात्) ने मिरचों की रक्षा करने वाले सांपों का वर्णन किया है। [2] सर जोहन मैन्डेविल्ले के उल्लेखों में यह बात अधिक स्पष्ट है। 'उस देश की अधिक गरमी और मिरचों के कारण उस देश में सांपों और दूसरे कीड़ों की बहुत सी किस्में होती हैं और कुछ लोग कहते हैं कि जब हम मिरचें तोड़ने लगते हैं तो आग जला देते हैं, जिस से सांप जल जांय और भाग जांय।' सर जौन मैन्डेविल्ले कहते हैं कि 'यह बात गलत है।' क्योंकि, यदि वे फल धारण करने वाली लताओं को जला दें तो मिरचें जल जायेंगी और इस से उन के सब गुण नष्ट हो जायेंगे, जैसे कि दूसरी चीज़ों के बारे में होता है। ऐसा करने से उन्हें स्वयं ही बहुत हानि होगी और लगी हुई आग

---

१. फॉरेन नोटिसेज़ ऑफ़ साउथ इण्डिया, के. ए. नीलकण्ठ शास्त्री, १९३९, पृष्ठ १९३।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गीता का स्वाध्याय

डाक्टर सुन्दरलाल भण्डारी

(१) गीता की आधार शिला

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजिविषेच्छतᳬसमाः ।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्मलिप्यते नरे ॥

अर्थ—ईश्वर उपदेश देते हैं कि हे मनुष्य ! "कर्म करता हुआ ही इस संसार में सौ वर्ष जीने की इच्छा कर। यही एक उपाय है जिससे तुझमें कर्म-बन्धन का कारण नहीं होगा। इससे दूसरा और कोई उपाय नहीं है।"

यह यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय का दूसरा मन्त्र है। उपनिषदों का शिरोमणि ईशोपनिषद् भी यजुर्वेद का चालीसवां अध्याय ही है। बाकी सब उपनिषद् इस उपनिषद् की व्याख्या मात्र हैं। इसलिये यह मन्त्र ईषोपनिषद् का भी दूसरा मन्त्र हुआ। यह मन्त्र निष्काम कर्म का उपदेश देता है और बताता है कि यही एक उपाय पाप से छूटने और मुक्ति पाने का है। इससे दूसरा कोई उपाय नहीं। गीता इसी मन्त्र की व्याख्या प्रतीत होती है। एक मन्त्र की ऐसी विस्तृत तथा प्रभाव शाली व्याख्या और कहीं नहीं देखी गई। इसी से गीता की इतनी महिमा है।

(२) गीता की महिमा

गीता वैदिक-साहित्य का एक चमकता हीरा है। सारे संसार में जितना इसका मान और प्रचार है दूसरी और किसी पुस्तक का नहीं। संसार का कोई सभ्य देश व भाषा नहीं जिसमें इसका अनुवाद न हुआ हो। बाईबल का प्रचार शायद इससे अधिक हो और है, परन्तु उसका मान सिवाय ईसाइयों के और किसी धर्म व जाति में नहीं है। दूसरे बाईबल के प्रचार में बड़ा कारण ईसाइयों का रुपया है। परन्तु गीता का प्रचार अपने निज के गुणों के कारण ही है।

[पृष्ठ १६ का शेष]

को वे कभी बुझा नहीं सकेंगे। लेकिन, सांपों से बचने के लिये वे अपने शरीर का घोंघे और दूसरी चीजों के रस से पोत लेते हैं। सांप और, दूसरे कीड़े इससे घृणा करते हैं और भाग जाते हैं।'

हीरे जवाहरात और सोने जैसी बहुमूल्य चीज़ों की रक्षा करने के लिये नागदेवों की ख्याति बहुत सुनी जाती है। क्योंकि, काली मिरच भी बहुत मूल्यवान् चीज़ हो गई थी इस लिये लोक-गाथाओं में इसके अधिष्ठातृ देव भी सांप मान लिये गये थे। वास्तव में यह बात सत्य नहीं है कि काली मिरच की लताओं पर सांप चिपटे रहते हैं।

कैटलन फ्रायर जार्डनस (१३२३-१३३० ईस्वी पश्चात्) ने काली मिच के वर्णन में कोई नई बात नहीं लिखी।[१]

इब्न खुर्दादबाह (८६६-८८५) और इद्रिसि (१२ वीं सदी के मध्य में) जैसे मध्ययुग के अरबी लेखकों ने भी प्रायः इसी प्रकार का वर्णन दिया है।

१. देखें—फॉरेन नोटिसेज़ ऑफ़ साउथ इण्डिया, के. ए. नीलकण्ठ शास्त्री १९३९, पृष्ठ २०६ और २१२।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

(३) गीता की फ़िलोसफी दो शब्दों में

(i) कोई चीज नई उत्पन्न नहीं हो सकती और न कोई चीज नष्ट की जा सकती है। केवल शक्ल बदल जाती है। दूसरे शब्दों में "जब मोम बत्ती जलती है, कोई चीज नष्ट नहीं होती" जब एक आदमी को मार दिया जाता है, सत्ता में कुछ भेद नहीं होता। जीवात्मा मारा नहीं जा सकता। वह देह छोड़ देता है। देह प्रकृति का बना है। वह केवल शक्ल बदलता है।

(ii) कोई कर्म अच्छा अथवा बुरा नहीं है। दोष केवल मनोविचार का है। उदाहरण के लिये-

(क) एक आदमी दूसरे आदमी को लाठी से मार देता है, निजी शत्रुता के कारण।

(ख) एक आदमी लाठी के नीचे आकर मारा जाता है, चलाने वाले की असावधानी से।

(ग) एक आदमी डाक्टर से मर जाता है, उसके भले के लिये ऑपरेशन करते समय।

तीनों दशाओं में परिणाम एक ही है। एक आदमी मारा जाता है। परन्तु पहली दशा में यह मनुष्य हत्या है और मारने वाले को फांसी दी जाती है। दूसरी अवस्था में यह केवल एक असावधानी है और मोटर चलाने वाले को केवल ६ मास की सजा मिलती है। तीसरी दशा में डाक्टर का कोई दोष नहीं है। वह कोई पाप नहीं करता। न ही कानून के आगे और न ही परमात्मा के आगे। परन्तु इस अन्तिम दशा में यही डाक्टर घूस खाता है और उस आदमी को जानबूझ कर मार देता है, तो वह मनुष्य हत्या का दोषी है। यदि वह दण्ड से यहां बच भी जाये परन्तु शीघ्र अथवा देर से ईश्वर के विधान में उसे दण्ड अवश्य मिलेगा।

(४) गीता में प्रक्षेप

गीता के यही गुण जो इतने सराहनीय हैं वही इसके दुर्भाग्य का कारण बन गये।

"ऐ रौशनियें तबा बलाय वर मन तू शुदी"।

(हे मेरे स्वभाव की श्रेष्ठता तू मेरे लिये विपत्ति बन गई) हर एक सम्प्रदाय ने अपनी पुष्टि के लिये गीता में श्लोक ढूंढना आरम्भ किया। जिन्हें न मिले उन्होंने अनुवाद में खैंचा तानी की या अपनी ओर से और श्लोक मिला लिये, और शायद कुछ निकाल भी दिये। परन्तु मिलाये बहुत अधिक और निकाले कम ही होंगे जो मिलाये उनका तो पता लग सकता है परन्तु जो निकाले गये उनका पता चलना असम्भव है। इस विषय में श्री० पंडित मुक्ति-राम जी की वैदिक गीता देखिये। पंडित जी ने ७०१ श्लोकों में से केवल ३४८ रखे हैं जो कि उन्होंने असली माने हैं। बाकियों को प्रबल युक्ति द्वारा उन्होंने प्रक्षिप्त सिद्ध किया है।

स्वामी दयानन्द जी ने भी गीता को प्रामाणिक पुस्तकों की लिस्ट में नहीं रखा। कारण यही था कि इसमें बहुत मिलावट की गई है।

गीता में एक दूसरे के प्रतिद्वन्दी भाव और पुनरुक्ति दोष भी बहुत है। इससे भी मिलावट सिद्ध होती है। कहा गया है कि गीता का उपदेश युद्ध स्थल में दिया गया था। वहां इतना अवकाश ही कहां होगा कि ७०० श्लोकों के आशय पर वाद-विवाद किया जा सकता। यदि एक २ श्लोक के आशय के उत्तर प्रत्युत्तर में दो २ मिनट भी लगे तो भी ७०० श्लोकों के लिये १४०० मिनट अथवा २३ घण्टे और २० मिनट चाहियें इतना समय वहां कहां था।

●

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

स्वप्न का यमलोक

श्री भगवद्दत्त वेदालङ्कार

स्वप्न के सम्बन्ध में अथर्ववेद के १६ वें कांड का ५६ वां सूक्त विशेष विचारणीय है। प्रथम मन्त्र में यह दिखाया गया है कि शरीर के साथ इस का क्या सम्बन्ध है। जिस प्रकार वायसराय इंगलैंड से नियुक्त होकर आता था और भारतवर्ष का शासन अपने हाथ में ले लेता था, उसी प्रकार यह स्वप्न भी यमलोक से हमारे शरीर का अधिष्ठाता बन कर आता है। स्वप्नावस्था में हम इतने एकाग्र होते हैं कि हमारे शरीर के सब अवयव इस स्वप्न के अधीन कार्य कर रहे होते हैं। हम कोई भी ऐन्द्रियिक कार्य करें उस में यह आवश्यक नहीं कि हमारे जीवनीय अंग हमारा उस कार्य में साथ दे रहे हों, परन्तु स्वप्न एक ऐसी शक्ति है कि ये जीवनीय तत्त्व भी स्वप्न की आज्ञा सुनने के लिए अन्य सारे शरीर के साथ बद्धाञ्जलि हो खड़े हो जाते हैं और स्वप्न की आज्ञा से इन जीवनीय अंगों के कार्यों में न्यूनता या बिल्कुल रुक जाना भी हो सकता है।

शायद इसीलिये स्वप्नावस्था की अन्तिम अवस्था सम्प्रज्ञात समाधि में बैठा हुआ व्यक्ति बहुत दीर्घ काल तक बिना कुछ खाये पिए रह सकता है क्योंकि उसे भूख नहीं लगती। और भूख न लगने का कारण यह प्रतीत होता है कि उन अंगों ने कार्य करना बन्द किया हुआ होता है। इस लिये स्वप्न हमारे शरीर का बहुत बड़ा अधिष्ठाता है। जीवात्मा के समकक्ष नहीं तो उस के बाद तो अवश्य है। इसी भाव को बताने के लिए मन्त्र में कहा है कि 'एकाकिना सरथं यासि' अर्थात् स्वप्न जीवात्मा वाले रथ पर अकेला होकर चलता है। सरथ शब्द से यह भाव टपक रहा है कि इस शरीर रूपी रथ का स्वामी कोई और भी है, और वह जीवात्मा है। परन्तु स्वप्न के एकाकी चलने का भाव यह है कि जिस समय स्वप्न प्रबल होता है उस समय हमारे शरीर पर एक प्रकार से जीवात्मा का अधिकार जाता रहता है।

अगले मन्त्र में स्वप्न के प्रकट होने का तरीका बताया गया है। हमारी चेतना के ये दो गुण हैं कि प्रकृति का अवलोकन करना और फिर उस को अपने अन्दर रख लेना ये दोनों गुण 'बन्धः' और 'विश्वचयाः' विशेषणों से प्रकट हो रहे हैं। वैदिक सिद्धान्त के आधार पर जीवात्मा अनादि और अनन्त है। प्रकृति का अवलोकन वह अनादि काल से करता आ रहा है। उस की अनादि काल से अनुभूत घटनायें उस की चेतना के गुह्य स्तर में संचित हैं, बन्धी हुई हैं। वे समय पर आकर स्वप्न में कभी कभी प्रकट हो जाया करती हैं। सामान्य प्रतिदिन के स्वप्न के सम्बन्ध में इस मन्त्र की व्याख्या स्पष्ट है।

अगले तीसरे मन्त्र में अच्छे स्वप्न का वर्णन है। जिस प्रकार बुरा स्वप्न संपूर्ण शरीर का अधिष्ठाता होता है शरीर का प्रत्येक अवयव स्वप्न की आज्ञा में कार्य करता है, उसी प्रकार भद्र स्वप्न के अधीन भी सारा शरीर कार्य करता है। इन दोनों में भेद केवल इतना ही है कि बुरा स्वप्न आसुरी वृत्ति से सम्बन्ध रखता है और अच्छा स्वप्न दैवी वृत्ति से।

चौथे मन्त्र में यह बताया गया है कि जिस समय हमारे अन्दर स्वप्नगत वार्तालाप चल रहा होता है, उस समय हमारे शरीर की देव और पितर दोनों शक्तियां इसे नहीं जान रही होतीं। इन दोनों शक्तियों के सम्बन्ध में

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

मन्त्र की व्याख्या में ही हमने स्पष्टीकरण किया है।

अगले मन्त्र में स्वप्न के आधार पर निम्न चार प्रकार के मनुष्यों का परिगणन किया गया है—

१-सक्रिय मनुष्य
  क-दुर्जन-सदा षडयन्त्र रचने वाला
  ख-सज्जन-कर्मयोगी
२-निष्क्रिय-मनुष्य
  क-प्रमादी व आलसी—दुष्ट स्वप्न लेने वाला
  ख-ज्ञानी व योगी—श्रेष्ठ स्वप्न लेने वाला

अगले छटे मन्त्र में यह उपदेश दिया गया है कि राष्ट्र में प्रत्येक व्यक्ति को अच्छे व बुरे स्वप्नों का ज्ञान होना चाहिये और बुरे स्वप्नों से बचने का उपाय करना चाहिये।

अब हम मूल की व्याख्या करते हैं—

अथर्व १६ कांड ५६ सूक्त में अच्छे व बुरे दोनों प्रकार के स्वप्नों के ऊपर कुछ प्रकाश डाला गया है। वह निम्न प्रकार है—

शरीर पर स्वप्न का एकाधिपत्य

यमस्य लोकादध्या बभूविथ
प्रमदा मर्त्यान् प्रयुनक्षि धीरः।
एकाकिना सरथं यासिवद्वान्त्
स्वप्नं मिमानो असुरस्य योनौ॥
(१६।५६।१)

'हे स्वप्न तू (यमस्य लोकात) यम के लोक से (अधि आ बभूविथ) अधिष्ठित होकर आया है। (धीरः) तू धैर्यवान् है, (प्रमदा) बड़े आनन्द से (मर्त्यान्) मरण-धर्मा मनुष्यों को (प्रयुनक्षि) अपने व्यापार में लगाये रखता है। (विद्वान्) विद्वान की तरह (असुरस्य योनौ) आसुरी भावों की उत्पत्ति-स्थान मन में (स्वप्नं मिमानः) स्वप्न का निर्माण करता हुआ (एकाकिना) अकेले ही स्वप्न के समय में (सरथ) जीवात्मा वाले रथ पर आरूढ़ होकर (यासि) चलता है।

अब हम इस मन्त्र का भावार्थ पिण्ड में दिखाते हैं। मन्त्र में कहा गया है कि 'हे स्वप्न! तू यम के लोक से अधिष्ठित होकर आया है।' अब विचारणीय यह है कि यह यमलोक कौनसा है, जहां से कि स्वप्न अधिष्ठित होकर आता हो। स्वप्न का अधिष्ठाता बनाने वाला यह यमलोक हमारे शरीर में कोई स्थान होना चाहिये। उपर्युक्त मन्त्र से भी यह भाव स्पष्ट प्रतीत हो रहा है कि यमलोक हमारे शरीर में ही कोई विशेष स्थान है।

शरीर में यमलोक

अब हम शरीर में विद्यमान यमलोक के स्पष्टीकरण के लिए एक और मन्त्र पर विचार करते हैं।

ऋग १।३५।६ में एक मन्त्र आता है, जो कि इस प्रकार है—

तिस्रो द्यावः सवितुर्द्वा उपस्थां
एका यमस्य भुवने विराषाट्।
आणिं न रथ्यममृताधि तस्थुरिह
ब्रवीतु य उ तच्चिकेतत्॥

अर्थात् सविता के तीन द्युलोक हैं, दो तो समीप में स्थित हैं, और उनमें से एक यम के भुवन में विराजमान है। जिस प्रकार [रथ्यं] रथ के सब अवयव आणिअक्ष के दोनों ओर विद्यमान कील के ऊपर आश्रित हैं। उसी प्रकार अमृत रूप सब इन्द्रियादि देव इन द्युलोकों

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

पर आश्रित हैं। जो तत्ववेत्ता इन बातों को जानता हो वह हमें बतावे।

इस उपर्युक्त मन्त्र में सविता के तीन द्युलोक बताये गये हैं अर्थात् ये तीन द्युलोक सविता के निवासस्थान हैं। सविता का काम प्रेरणा करने का है। जैसा कि शत० १।१।२।१७॥ में आता है कि 'सविता वै देवानां प्रसविता' अर्थात् सविता देवताओं का प्रेरक है। इस ब्रह्माण्ड में प्रेरणा का स्थान द्युलोक है, परन्तु हमारे शरीर में प्रेरणा का स्थान मस्तिष्क है, अर्थात् सम्पूर्ण शरीर की गतिविधियों का नियन्त्रण तथा प्रेरणा आदि मस्तिष्क से ही होती है। इसलिये वैदिक भाषा में मस्तिष्क का सविता का स्थान कहा जा सकता है। इस मस्तिष्क को द्युलोक तो वेद में अनेक स्थानों पर कहा गया है। इस मन्त्र में इस मस्तिष्क रूपी सविता के लोक को तीन द्युलोकों में विभक्त किया गया है। अर्थात् मस्तिष्करूपी द्युलोक के तीन भाग बताये गये हैं। ये तीन विभाग इस प्रकार हो सकते हैं – एक मस्तिष्क, दूसरा अनुमस्तिष्क और तीसरा सुषुम्णाशीर्षक। इस तीसरे द्युलोक के लिये मन्त्र में कहा गया है कि यह यम के भुवन में विराजमान है। यह तीसरा द्युलोक अर्थात् सुषुम्णाशीर्षक गर्दन के पिछले हिस्से में है। इसलिए आपाततः गर्दन का पिछला हिस्सा यम का भुवन कहलायेगा और फिर अथर्व ६।७।१॥ में विराट् शरीर का वर्णन करते हुए लिखा है कि अग्निर्ललाट यमः कृकाटम्' अर्थात् अग्नि ललाट है और यम कृकाट है। कृकाट गर्दन के पिछले हिस्से को कहते हैं। वाचस्पत्याभिधान कोष ने कृकाट का अर्थ घाटा किया है। और वाचस्पत्य, कल्पद्रुम, आपटे, विलियम मौनियर आदि सब ने कृकाट व घाटा का अर्थ गर्दन का पिछला हिस्सा किया है, इससे यह स्पष्ट है कि हमारे शरीर में यम का निवास गर्दन के पिछले हिस्से में है। इसलिए यही गर्दन का पिछला हिस्सा यमलोक अथवा यम भुवन हो सकता है।

अब विचारणीय यह है कि इस गर्दन के पिछले हिस्से अर्थात् यम के लोक में सविता का तीसरा द्युलोक कौनसा हो सकता है? अन्य दोनों मस्तिष्कों की तरह प्रेरणा व नियन्त्रण आदि का काम गर्दन में सुषुम्णा-शीर्षक का है। इसलिये यह सुषुम्णाशीर्षक सविता का तीसरा द्युलोक हुआ। ब्रह्माण्ड में जो कार्य द्युलोक का है, वही कार्य हमारे शरीर में इन तीन द्युलोकों का है। सुषुम्णा शीर्षक हमारे शरीर में श्वास, प्रश्वास-संस्थान, रक्त-संस्थान और नाड़ी-संस्थान, अन्नपाचन, हृदय आदि आन्तरिक गतिविधियों को प्रेरणा देता है और इन पर यही नियन्त्रण रखता है, या यह भी कह सकते हैं कि इन जीवनीय अंगों का केन्द्र सुषुम्णाशीर्षक में है। इस लिये यह सुषुम्णा-शीर्षक सविता का तीसरा द्युलोक है और यह यम के साम्राज्य में है।

अब स्वप्न के प्रकरण में जो यह कहा कि हे स्वप्न! तू यमलोक से अधिष्ठित होकर आया है, इसका भाव यह है कि सुप्तावस्था में बुद्धि व इन्द्रियादिकों के कार्य तो बन्द हो जाते हैं परन्तु सुषुम्णाशीर्षक से सम्बन्ध रखने वाले आन्तरिक कार्य होते रहते हैं। एक प्रकार से हम यह कह सकते हैं कि सुप्तावस्था में यह सुषुम्णा-शीर्षक ही सारे शरीर का स्वामी होता है। परन्तु स्वप्नावस्था में स्वप्न इस सुषुम्णा-शीर्षक का स्थान ले लेता है। सारे शरीर की सुप्तावस्था की गति-विधियां सुषुम्णा-शीर्षक के स्थान पर स्वप्न के

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

अधीन हो जाती हैं। यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाये तो स्वप्न में होता भी यही है। भय का स्वप्न हो तो श्वास प्रश्वास आदि आन्तरिक क्रियायें भय के अनुसार ही गति विधि करती हैं। यदि आनन्द का स्वप्न हो तो शरीर की सारी क्रियाएँ भी उसी के अनुसार अपना अपना कार्य करती हैं। इस प्रकार स्वप्नावस्था में सुषुम्णा शीर्षक के स्थान पर यह स्वप्न यमलोक से हमारे शरीर का अधिष्ठाता बन कर आता है। मन्त्र में कहा कि हे स्वप्न! तू यमलोक से अधिष्ठाता होकर आया है। आगे कहा कि 'प्रमदा मर्त्यान् प्रयुनक्षि' अर्थात् स्वप्न बड़े आनन्द से मनुष्यों को अपने व्यापार में लगाये रखता है। सुख के प्रसंग में तो मनुष्य नाना भांति की उड़ानें लिया ही करता है किन्तु दुःख प्रसंग के आने पर भी उससे मुक्त होने की कल्पना कर के आनन्द के बड़े बड़े स्वप्न जाल रच डालता है। कहने का भाव यह है कि सुख व दुःख का कैसा ही प्रसंग क्यों न हो, मनुष्य जाग्रत् स्वप्न तो आनन्द के ही लेता है. रात्रि स्वप्न में मनुष्य स्वप्न के बहुत ही अधीन होता है, इसलिए भी वह मनुष्य स्वप्न से अपना पिण्ड नहीं छुड़ा सकता।

इसी भाव को दर्शाने के लिये मन्त्र में स्वप्न को 'धीरः' ढीठ कहा है। अर्थात् बार बार हटाये जाने पर भी वह हिम्मत नहीं हारता। आगे कहा कि 'एकाकिना सरथं यासि' अर्थात् जीवात्मा वाले रथ पर एकाकी होकर चलता है। हमारे शरीर में स्वप्नावस्था में स्वप्न की वही स्थिति है जो कि जागृतावस्था में जीवात्मा की होती है। जागृतावस्था में इस शरीर रूपी रथ पर जीवात्मा स्वामी बन कर विराजमान होता है, तो स्वप्नावस्था में स्वप्न इसका स्वामी बना होता है। आगे स्वप्न को 'विद्वान्' कहा गया है। अर्थात् वह सब कुछ जानता है। बुद्धि, तर्क व समालोचना आदि का स्वप्न के ऊपर कोई प्रभाव नहीं। स्वप्न के समय स्वप्नगत बातें सब सत्य होती हैं। आगे कहा कि 'असुरस्य योनौ स्वप्नं मिमानः' आसुरी भावों के उत्पत्तिस्थान मन में वह स्वप्न का निर्माण करता है।

जन्म जन्मान्तरों के संस्कारों का स्वप्न में प्रकट होना--

अगला मन्त्र इस प्रकार है—

बन्धस्त्वाग्रे विश्वचया अपश्यत्
पुरा रात्र्या जनितोरेके अह्नि।
ततः स्वप्नेदमध्याबभूविथ
भिषग्भ्यो रूपमपगूहमानः ॥
(अ० १६. ५६. २ ॥)

अर्थात् हे स्वप्न! (अग्रे) पहले कभी (बन्धः) सबको अपने में बांधने वाले अथवा बन्धन के कारण भूत (विश्वचयाः) विश्व का संचय करने वाले मन ने (रात्र्याः पुरा) रात्रि से पहले अथवा (जनितोः पुरा) हमारे इस जन्म से पहले (एके अह्नि) किसी दिन तुझको (अपश्यत्) देखा था [घटना रूप में अनुभव किया था] हे स्वप्न! (भिषग्भ्यः) भिषगों से (रूपमपगूहमानः) अपने रूप को छिपाते हुये तूने (ततः) उस यम लोक से (इदमध्याबभूविथ) इस शरीर व मनका अधिष्ठातृत्व ले लिया है।

इस मन्त्र में मन को 'बन्ध' और 'विश्वचयाः' कहा गया है। मन को 'बन्ध' नाम से याद करने का भाव यह है कि जिस विचार या इच्छा को मन प्रबल रूप से बांधता है, वही स्वप्न में प्रकट होता है। दूसरा इसका भाव यह है कि जन्म-

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

मरण के बन्धन में मन ही कारण होता है। जैसा कहा भी है, 'मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः' अर्थात् बन्ध और मोक्ष में मनुष्य का मन कारण होता है। मन का अगला विशेषण 'विश्वचयाः' है, अर्थात् मन विश्व का सञ्चय करता है इस ब्रह्माण्ड में जिस पदार्थ आदि को वह देखता है उसका सञ्चय कर लेता है। इस लिये मन को हम विश्वकोष कह सकते हैं। इस विश्वकोष में से समय समय पर परिस्थिति के अनुसार अवसर पाकर पुरातन जन्मों का या इस जन्म की घटनाएँ स्वप्न में प्रकट होती रहती हैं। इन दोनों विशेषणों का एक सामूहिक अर्थ यह भी हो सकता है कि मन विश्व को सञ्चय करके अपने अन्दर बांध लेता है। इससे यह ध्वनि निकलती है कि जो बात स्मृति पटल पर नहीं रहती, वह विनष्ट हो गई हो, यह बात नहीं है वह हमारे अन्दर रहती अवश्य है, परन्तु मन के किसी गुह्य स्तर पर संस्कार-रूप में रहती है।

आधुनिक मनोवैज्ञानिक या मनोविश्लेषणकर्ता स्वप्न का कारण यह मानते हैं कि हमारी कई इच्छायें पूर्ण न होने की अवस्था में अव्यक्त मानस के स्तर में जा विराजती हैं। और वहां से फिर वे स्वप्न में अवसर पाकर प्रकट होती हैं। यह चेतना का एक स्वरूप है। एक प्रकार से यह संस्कारों व अपूर्ण इच्छाओं का कोष है। यह कोष इन संस्कारों को अपने अंदर बांधे रखता है। मन्त्र में इसी चेतना को 'बन्धः' बांधने वाली कहा है। इस चेतना के अलौकिक गुण को दिखाने के लिए इसे 'विश्वचयाः' कहा है। अर्थात् इस में विश्व का सचय है। वैदिक दृष्टि से यह मन का एक गुण है।

आगे मन्त्रार्ध से यह भाव टपकता है कि वे दुष्ट इच्छायें स्वप्न में प्रकट नहीं होतीं जिनका कि मानसिक रोगों के चिकित्सक ने इलाज कर दिया है। जो दुष्ट इच्छायें वैद्य से न पकड़ी जा सकीं वे ही स्वप्न में प्रकट होती हैं। दूसरे इस मन्त्र से वेद यह बताता है कि राष्ट्र की तरफ से मानसिक चिकित्सालय होने चाहिये जो कि मनुष्यों के बुरे विचारों, दुष्ट इच्छाओं तथा दुस्वप्न्यादियों को दूर करते हों। मन्त्र में निर्दिष्ट भिषक् अथर्ववेद के १६ वें कांड के ७, ८ सूक्तों में दर्शाये गये हैं।

सुस्वप्नों का दिव्यता से सम्बन्ध—

अगले मन्त्र में अच्छे स्वप्न का वर्णन किया गया है वह इस प्रकार है—

> बृहद्ग्रावासुरेभ्याऽधि देवानु-
> पावर्तत महिमानमिच्छन् ।
> तस्मै स्वप्नाय दधुराधिपत्यं
> त्रयस्त्रिं शासः स्वरानशानाः ॥
>
> (अथर्व १६. ५६. ३ ॥)

(बृहद्ग्रावा) महान् गतिवाला यह स्वप्न (महिमानमिच्छन्) अपनी महिमा को चाहता हुआ (असुरेभ्योऽधि) असुरों व आसुरी भावों के अधिष्ठातृत्व को छोड़कर (देवान् उपावर्तत) देवों वा दिव्य भावों को प्राप्त हुआ (तस्मै स्वप्नाय) ऐसे उस स्वप्न के लिये (स्वरानशानः) सुख व दिव्य प्रकाश प्राप्त करते हुये (त्रियस्त्रिं शासः) तैंतीस देवताओं ने (आधिपत्यं दधुः) अपना अधिपति उसे बनाया अथवा आधिपत्य उसे सौंपा'।

इस मन्त्र के पूर्वार्ध की व्याख्या पहले भी की जा चुकी है। यह मन्त्र अच्छे स्वप्न का वर्णन कर रहा है। इस मन्त्र में स्वप्न को महान् गतिवाला तथा महिमा चाहने वाला बताया गया

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

राष्ट्रभाषा का स्वरूप

महेन्द्र रायजादा साहित्यरत्न, एम. ए.

हिन्दी आज राष्ट्रभाषा के पद पर प्रतिष्ठित हो चुकी है। राष्ट्र-भाषा के इस गौरवपद को प्राप्त करने के लिये जो संघर्ष हुआ उससे हम सब लोग भली प्रकार परिचित हैं। और जिन विषम परिस्थितियों में वह राष्ट्र-भाषा के आसन पर समासीन हुई है उनसे भी हम अनभिज्ञ नहीं हैं। हिन्दी राष्ट्र-भाषा बन जाने के बाद अब हमारे सामने अत्यन्त महत्वपूर्ण एक प्रश्न आता है कि राष्ट्र-भाषा हिन्दी का स्वरूप क्या हो? आज हम यह भी देख रहे हैं कि आज भी कुछ लोग राष्ट्रभाषा का खुलकर विरोध कर रहे हैं। कुछ लोगों का विरोध करना उचित भी हो सकता है, पर कुछ लोग अपनी प्रकृति से लाचार हैं। निश्चय ही हमें इस प्रकार के विरोधों से भय खाने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि विरोध करना मानव का स्वभाव है। और शनैः शनैः ये विरोधी घटायें तिरोहित भी होती जा रही हैं। भाषावार प्रान्तों के निर्माण की बात असफल सिद्ध होकर लगभग समाप्त हो चुकी है।

वास्तव में दक्षिणापथ के लोगों को हिन्दी समझने और सीखने में कुछ कठिनाई भी हो सकती है। आज राष्ट्रभाषा को सबसे अधिक भय इन्हीं तामिल, तेलगू, मलयालम और कन्नड़ आदि भाषा भाषियों से है। उन लोगों का यह कथन है कि हमारी भाषा हिन्दी से किस बात में कम है जो हम राष्ट्रभाषा को अपनायें। पर कदाचित् वे आज इस बात से अनभिज्ञ हैं कि समूचे भारतवर्ष की एकता को बनाये रखने के लिये राष्ट्रभाषा जादू का काम करती है। राष्ट्र के कल्याण के लिये अपनी संकीर्ण मनोवृत्ति का परित्याग परम अपेक्षित है। अपनी भाषा के प्रति मोह होना बिल्कुल स्वाभाविक है। पर समस्त राष्ट्र के हित के लिये अपने मोह का परित्याग कर उदार बनना भी पूर्ण आवश्यक है। अतएव यह भी सम्भव है कि अपने देश के

[पृष्ठ २३ का शेष]

है। महिमा अर्थात् महत्वकांक्षा मनुष्य में महान् गति को पैदा करती है। महत्वाकांक्षा की पूर्ति में मनुष्य कभी भी अकर्मण्य नहीं रह सकता और मनुष्य में दिव्यता के पदार्पण से ही महत्वाकांक्षा पैदा होती है। आगे मन्त्रार्ध में कहा कि ३३ देवताओं ने अपना आधिपत्य स्वप्न को सौंप दिया। ये ३३ देवता सम्भवतः शरीरान्तर्गत (१० इन्द्रियां + १० प्राण + ४ अन्तःकरण + ६ गोलक) शक्तियां हों।

ये इन्द्रियादि देवता सामान्य मनुष्य पर अपना आधिपत्य रखते हैं। इनकी इच्छापूर्ति के लिये मनुष्य बुरे बुरे स्वप्न लेता है। परन्तु जब मनुष्य में दिव्यता पैदा होती है और दुःस्वप्नों का स्थान भद्र स्वप्न ले लेते हैं, तब इंद्रियादि मानवीय शक्तियां दिव्य विचारों के पीछे पीछे चलती हैं, असुरों को छोड़ कर देवों का आधिपत्य स्वीकार करती हैं। और दिव्य विचारों के पीछे चलकर ये मानवीय तैंतीस शक्तियां स्वर्ग अर्थात् दिव्य प्रकाश; दिव्य आनन्द का उपभोग करती हैं।

●

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

कल्याण के हेतु कुछ प्रान्तों के निवासियों को थोड़ा कष्ट भी उठाना पड़ेगा। यहां एक बार हिन्दी वालों से भी निवेदन करना है कि अपनी संकीर्ण मनोवृत्ति का परित्याग कर वे भी पर्याप्त उदार बने तथा अन्यान्य भाषाओं से अधिक-से-अधिक शब्दों को अपनी भाषा में लेकर हिन्दी को जन-जन की भाषा बनावें।

हिन्दी शब्द समूह एवं हिन्दी भाषा का इतिहास इस बात की पुष्टि करता है कि उसने सदैव अन्यान्य भाषाओं के शब्दों को उदारता-पूर्वक अपनाया है। भाषा वैज्ञानिकों का यह अभिमत है कि शब्द समूह की दृष्टि से प्रत्येक भाषा एक प्रकार से खिचड़ी-भाषा होती है और किसी भी भाषा के सम्बन्ध में हम यह नहीं कह सकते कि अमुक भाषा अपने विशुद्ध रूप में है। हिन्दी-भाषा के उदय से लेकर आज तक के शब्द-समूह का अध्ययन करने पर स्थूलरूप से तीन प्रकार के शब्द समूह हमें उपलब्ध होते हैं—

भारतीय आर्यभाषाओं का शब्द समूह—-

(क) तद्भव (ख) तत्सम और (ग) अर्धतत्सम। हिन्दी शब्दों में सबसे अधिक संख्या तद्भव शब्दों की है जैसे – कान्हा, कन्हैया आदि। तत्सम (संस्कृत के विशुद्ध शब्द) आधुनिक साहित्यिक भाषा में बहुत हैं। पर, आज तद्भव और अर्धतत्सम शब्दों का प्रयोग भी साहित्य में निरन्तर बढ़ता जाता है। जो संस्कृत भाषा के शब्द आधुनिक काल में विकृत हो गये हैं अर्धतत्सम कहलाते हैं। उदाहरणार्थ—कृष्ण तत्सम शब्द है, कान्ह तद्भव रूप है और किशन अर्धतत्सम रूप है।

(२) भारतीय अनार्य भाषाओं से आये हुये शब्द—-

प्राचीन काल में अनेक शब्द प्राचीन अनार्य भाषाओं से आर्य-भाषाओं में ले लिये गये हैं। इस प्रकार के शब्द हिन्दी भाषा में फिर भी बहुत कम हैं। द्राविड़ भाषाओं के शब्द प्रायः हिन्दी में बुरे अर्थों में प्रयुक्त होते हैं। द्राविड़ भाषा में पिल्ले शब्द का अर्थ पुत्र होता है पर हिन्दीभाषा में यही शब्द कुत्ते के बच्चे के अर्थ में प्रयुक्त होता है। हिन्दी भाषा के मूर्धन्य वर्ण (ट ठ ड ढ आदि) प्रायः द्राविड़ भाषा के हैं।

(३) विदेशी भाषाओं के शब्द

अनेक शताब्दियों से विदेशी शासन में रहने के कारण हिन्दी भाषा पर विदेशी शब्दों का बहुत अधिक प्रभाव पड़ा है। यह विदेशी प्रभाव दो श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है— (क मुसलमानी प्रभाव और (ख) यूरोपीय प्रभाव। १० वीं तथा ११ वीं शताब्दी की हिन्दी की रचनायें सदिग्ध हैं पर निश्चय ही १२ वीं शताब्दी से हिन्दी भाषा में उत्तम साहित्य का निर्माण होने लगा था। इसी बीच मुसलमान आक्रमणकारी अपने साथ कितने ही अरबी, फारसी एवं तुर्की भाषाओं के शब्द हमारे देश में लाये। कहना नहीं होगा कि इस प्रकार के कितने ही शब्द केवल हिन्दी भाषा द्वारा ही नहीं वरन् भारतवष की तत्कालीन प्रमुख भाषाओं (मराठी, बङ्गला, गुजराती आदि) द्वारा आत्मसात कर लिये गये। उदाहरणार्थ कुछ शब्द इस प्रकार हैं—बहादुर, शकल, सरल, जवाब, सवाल, नरम. गरम, दीदा, (आंख) कानून, कैंची, चाकू. चिक, कुली, शादी, बीबी आदि आदि। इसी प्रकार अँग्रेजी—शासन-काल में

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

भी अगणित शब्द इन भाषाओं द्वारा पचा लिये गये। उदाहरणार्थ—चाक, स्टेशन, बैंक, मोटर, रेडिओ, जज, जनवरी, फरवरी, अप्रेल, चिमनी, नोट, नोटिस, कमोज, सन्तरा, कूपन, कारतूस आदि आदि। इस प्रकार के शब्द आज हमारी भाषा से इतने अधिक हिल मिल गये हैं कि सहसा हमें विश्वास नहीं हो सकता कि ये शब्द अन्यान्य भाषाओं से लिये गये हैं। ये शब्द हिन्दी से बहिष्कृत नहीं किये जा सकते हैं अन्यथा हमारी भाषा की स्वाभाविक गति में रुकावट उत्पन्न हो जावेगी।

आज हिन्दी भाषा समस्त भारतवर्ष की राष्ट्रभाषा बन चुकी है। अतएव आज हमारे सामने सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि राष्ट्रभाषा हिन्दी का रूप क्या हो? विद्वानों में इस बात की आज चर्चा चल रही है। कुछ लोग इस बात का समर्थन कर रहे हैं कि हिन्दी साहित्य में केवल भारतीय शब्दों का ही व्यवहार होना चाहिये। पर मेरा नम्र निवेदन यह है कि इस प्रकार की मनोवृत्ति का अपनाया जाना हमारे राष्ट्र एवं हमारी राष्ट्रभाषा के लिये घातक एवं अकल्याणकारी ही सिद्ध होगा। विदेशी शब्दों का हिन्दी से बहिष्कार करना अपनी भाषा का क्षेत्र छोटा करने के साथ भाषा को पङ्गु बना देना ही होगा। संस्कृतियों की भांति भाषाओं में भी सदैव आदान प्रदान होता रहता है। भाषा में आत्मसात करने की एक अद्भुत शक्ति होती है जिससे कि वह अन्य भाषाओं के शब्द पचा जाती है। जैसा कि मैंने हिन्दी शब्द समूह का इतिहास प्रस्तुत करते हुये यह बात सिद्ध की है कि प्रारम्भ से ही हिन्दी भाषा ने अन्य भाषाओं के शब्दों को आत्मसात किया है। कारण कि भाषा किसी भी नियम का नियंत्रण स्वीकार नहीं करती है। उसकी धारा तो अजस्र निर्झरिणी की भांति स्वच्छन्द रूप से प्रवाहित रहती है।

अंग्रेजी भाषा में फ्रांसीसी, वर्मी, भारतीय, चीनी आदि भाषाओं के अगणित शब्द चले गये हैं। अंग्रेजी भाषा की उन्नति एवं प्रचुरता का एक बहुत बड़ा कारण यही है कि शब्दों को आत्मसात करने की शक्ति उसमें बहुत है। हिन्दी भाषा में भी इस शक्ति का प्राबल्य है। आज हिन्दी वालों को उदारतापूर्वक अन्यान्य समुन्नत भारतीय भाषाओं (बङ्गला, मराठी, गुजराती आदि) से शब्दों को ग्रहण करने के अतिरिक्त विदेशी भाषाओं के शब्दों को भी स्वाभाविक रूप से ग्रहण कर आत्मसात कर पचा डालना चाहिये। मेरे इस कथन का यह अर्थ नहीं है कि कोई भी शब्द हिन्दी में ठूस ठांस लिया जावे। पर मेरा तात्पर्य यह है कि जो विदेशी शब्द आसानी से पचाये जा सकते हैं उन्हें हम अवश्य ग्रहण कर लेना चाहिये। उन शब्दों को हिन्दी के सांचे में ढाल कर अपनी मोहर लगा देना चाहिये। पर ऐसा करने में अस्वाभाविकता को पास नहीं फटकने देना चाहिये। तभी हिन्दी भाषा राष्ट्रभाषा के पद को योग्यतापूर्वक निभाने में समर्थ सिद्ध होगी। हिन्दीभाषा को केवल भारत-राष्ट्र की ही नहीं वरन् विश्व की एक प्रमुख भाषा बनाने का हमारा दृष्टिकोण होना चाहिये। क्या हम आशा करें कि अंग्रेजी भाषा की भांति हमारी भाषा हिन्दी भी विश्व की भाषा बन सकेगी?

●

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

बालकों की दयनीय दशा

श्री रामसिंह ठाकुर

बच्चे राष्ट्र की अमूल्य सम्पत्ति है और उनके कल्याण पर ही देश का भविष्य निभर होता है किन्तु दुःख है कि हमारे देश में उनके हितों की अवहेलना हुई है ! मुझे योरोप के कई स्कूलों को देखने का अवसर मिला है अवसर ही नहीं मिला बल्कि एक में काम करने का भी सौभाग्य प्राप्त हुआ है । वहां मैंने देखा कि बच्चों की देखभाल करने के लिये कितना प्रयत्न किया जाता है, उनकी शिक्षा का ही नहीं किन्तु उनके स्वास्थ्य पर भी पूरा ध्यान दिया जाता है। प्रत्येक बालक को एक पौंड दूध व्यायाम के पश्चात् बिना किसी भेद-भाव के दिया जाता है। गरीब से गरीब विद्यार्थी का भोजन यदि हमारे यहां के बढ़िया से बढ़िया भोजन से तुलना की जाय तो वैज्ञानिक दृष्टि से बराबर अथवा अधिक पौष्टिक सिद्ध होगा ।

शिक्षा की व्यवस्था

ब्रिटेन में बच्चों की देख-भाल एवं कल्याण के लिये प्रशंसनीय कार्य हो रहा है १२ वर्ष तक बालक और बालिकाओं के लिये अनिवार्य शिक्षा है और उनके लिये नर्सरी स्कूल गरीब से गरीब बस्ती में विद्यमान हैं। ग्रामों में भी मैंने देखा कि निःशुल्क शिक्षा पढ़ाई की अच्छी व्यवस्था है । शहर अथवा गांव दोनों ही इलाकों में शिक्षा पर अधिक जोर दिया जाता है सत्य तो यह है कि वह शिक्षा तथा सामाजिक स्वच्छता में हम से बहुत अधिक बढ़े चढ़े हुये हैं।

रहन सहन

प्रत्येक मनुष्य अपने पर तथा उस के चारों तरफ इतनी सफाई रखता है कि कोई भी दर्शक यह उङ्गली नहीं उठा सकता कि यह स्थान मैला है । प्रत्येक घर के साथ एक छोटा सा बगीचा होता है । चलती फिरती गाड़ियों से बहुत काम लिया जाता है इन गाड़ियों से जिस प्रकार के काम लेने अनिवार्य होते हैं ठीक उसे उसी प्रकार से ही फिट कर लेते हैं। उदाहरणार्थ दान्त चिकित्सा, स्वास्थ्य-शिक्षा, सामुहिक रेडियो ग्राफी, इनके लिये अलग २ मोटरें हैं। प्रत्येक शिक्षा पाने वाले विद्यार्थी की डाक्टरी परीक्षा अनिवार्य है। हस्पताल में प्रसन्नता का जीवन देखने को मिलता है वहां न केवल रोगी की ही चिकित्सा होती है. बल्कि उनकी देख भाल करने वाली उपचारिका माता के समान उनका पालन पोषण करती है। खिलौने, रंग बिरंगी पुस्तकें तथा खेल की अन्य सुन्दर वस्तुएँ बालकों को प्रसन्न रखने के लिये उपलब्ध की जाती हैं।

शिक्षा की तुलना

कारखाने वालों के लिये आवश्यक है कि वह कर्मचारियों के बच्चों के लिये स्नानागार, स्कूल, पुस्तकालय आदि की व्यवस्था खूब रखे। पङ्गु और अङ्ग हीन बच्चों के लिये अलग २ स्कूल हैं। सत्य तो यह है कि बच्चों की अवहेलना किसी भी क्षेत्र में नहीं की जाती है। जब कि उसके विपरीत अपने देश के बालकों की दशा देखें तो हमारे लाखों बच्चों के लिये शिक्षा ही नहीं ; और यदि है भी तो उनकी शिक्षा की व्यवस्था सन्तोषजनक नहीं। कहीं २ तो शहरों की धर्मशालाओं में ही शिक्षणालय बना रखे हैं और कहीं २ गांव के बाहर जहां गांव का कूड़ा कचरा इकट्ठा किया जाता है वहां बने हुये हैं। कमरे रोशनदानों के बिना होते हैं और बच्चों के लिये खेल तथा पढ़ाई का सामान बहुत ही न्यून होता है। प्रकाश एवं जीवन हमारे ग्रामों तक

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

अभी पहुंच ही नहीं सका। ग्रामों को जाने दीजिये। शहर में भी ऐसे बहुत से बालक हैं जिनकी शिक्षा की व्यवस्था ही नहीं है। हमारी शिक्षा का मान तो बहुत ही नीचा है, क्योंकि हमारे अध्यापक कम वेतन पाते हैं। बालकों के लिये हस्पताल अलग स्थापित ही नहीं किये गये। शिक्षणालयों में बच्चों के लिये दूध का प्रश्न तो दूर रहा ? उनके भोजन की भी पूरी व्यवस्था नहीं होती। बालक और बच्चों वाली माताओं की मौत संख्या इस देश में जितनी ऊँची है शायद ही कहीं ऐसी हो।

हमारी अभिलाषा

इस पर भी हम आशा करते हैं कि हमारी यह भावी पीढ़ी भारत का सम्पन्न और बुद्धिमान बनायेगी। अभी तक तो हमारे पास एक सीधा सा उत्तर था कि हम बेबस हैं, क्या करें, विदेशी राज्य है, जब हमारे हाथ में सत्ता आयेगी तभी देखेंगे। जिन्होंने हम लोगों पर शासन किया था उन्होंने हमारी दंडनीय अवहेलना की थी।

किन्तु अब विलम्ब क्यों ?

अब भारत स्वाधीन है हमें अपना घर सम्भालना है। मुझे पूरा विश्वास है कि बच्चों की देख भाल हम सबका मुख्य कर्तव्य और प्रत्येक का महत्वपूर्ण कार्य होना चाहिये। बच्चों की देख-भाल का कार्य उनके माता पिता का है किन्तु दुःख है कि उनके माता पिता इन स्वास्थ्य तथा स्वच्छता के साधारण नियमों से अनभिज्ञ हैं। हमारा बयस्क समुदाय जिस अनुशासन में लिप्त है जब तक वह दूर नहीं होता, और जब तक हमारी स्त्रियों का विशाल समूह अपनी अज्ञानता एवं अन्य विश्वास से मुक्त नहीं होता। तब तक हमें यह आशा न करनी चाहिये कि हमारे बच्चों का पालन पोषण और देख भाल आदर्श ढग से हो सकेगा। फिर भी सामाजिक कार्यकर्त्ताओं के लिये यह एक भारी क्षेत्र है कि वह इस ओर अपने कार्यक्रम को बढ़ावें।

गुरुकुल और सरकार

जो संस्था यह शुभ कार्य कर रही है उनके साथ कन्धे के साथ कन्धा मिला कर कार्य करें। गुरुकुल इस ओर वर्षों से कार्य कर रहा है। क्या ही अच्छा हो कि सरकार और जनता इस में सहायक होकर इसे सफल करने में पूरा प्रयास करें। यदि हमारी गवर्नमेंट चोर बाजारी को बन्द करना चाहती है और देश की कुरीतियों को दूर करना चाहती है तो उस का यह कर्तव्य हो जाता है कि वह भारत के भावी बालकों को सच्चा एव स्वस्थ नागरिक बनाये और वह तभी संभव हो सकता है जब कि उन की शिक्षा दीक्षा का प्रबन्ध समुचित रूप से किया जाय।

उचित सुझाव

(१) अच्छे बड़े २ गांवों में शहरों से दूर स्कूल बनाये जायें। जहां पर शुद्ध जल तथा वायु प्राप्त हो सके। प्रत्येक स्कूल के साथ सुन्दर क्रीड़ा क्षेत्रों की व्यवस्था होनी चाहिये। (२) गांवों मे घूमने फिरने वाली गाड़ियों पर पुस्तकालय होने चाहिये। स्वच्छता और शिक्षा के लिये जितना सरकार इस ओर खर्च करे उतना ही थोड़ा है। (३) स्कूलों में फौजी ड्रिल और कालिजों में सैनिक शिक्षा अनिवार्य होनी चाहिये। (४) स्कूलों मे छात्रों के लिये शुद्ध दूध का प्रबंध होना आवश्यक है। (५) प्राइमरी शिक्षा अनिवार्य होनी चाहिये इसके साथ प्रौढ़ शिक्षा का भी ध्यान रखना चाहिये। जिनमें जीवनोपयोगी बातें हों।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गुरुकुल-समाचार

श्री शास्त्री जी का व्याख्यान

गुरुकुल की वाग्वर्द्धिनी सभा के पिछले सप्ताह में श्री दीनदयालु शास्त्री एम. एल. ए. ने आज कल देश में प्रचलित दो मुख्य विरोधी विचार धाराओं का विश्लेषण किया। उन्होंने कहा कि एक विचार धारा यह है कि देश का विभाजन धर्म के आधार पर हुआ है इस लिये भारत को जो कि स्पष्ट हो हिन्दू बहुल्य है हिन्दू राष्ट्र होना चाहिये। और पाकिस्तान के साथ हमारी नीति व्यवहारवादी और कुछ दृढ़ होनी चाहिये। दूसरी विचार धारा देश को धर्म निरपेक्ष राज्य बनाने के हक में है। इस विचार धारा के समर्थकों का कथन है कि पाकिस्तान के साथ हमारी नीति सुलह समझौते की होनी चाहिये। श्री शास्त्री जी ने कहा कि आज कल कांग्रेस में भी दोनों विचार धारायें काम कर रही हैं। और कांग्रेस के अध्यक्षीय चुनाव में इन दोनों विचार धाराओं का खुला संघर्ष हुआ। श्री टंडन जी और श्री कृपलानी जी, इन दो विविध विचार धाराओं के प्रतिनिधि समझे गये और तीसरे प्रतिद्वन्दी श्री शंकर राव देव सिर्फ इस उद्देश्य से खड़े किये गये थे कि श्री टंडन जी के वोट बट जायें। नासिक अधिवेशन से पूर्व प्रकाशित श्री पं० जवाहरलाल नेहरू जी के वक्तव्य को अनेक लोगों ने खुली धमकी कहा है। श्री शास्त्री जी ने कहा कि यह सत्य के साथ अन्याय है। क्योंकि नेहरू जी इस वक्तव्य द्वारा कांग्रेस की नीति को स्पष्ट करवाना चाहते थे। श्री टंडन जी के आदर्श और त्यागमय व्यक्तित्व पर प्रकाश डालते हुये शास्त्री जी ने बतलाया कि उत्तर प्रदेश की विधान सभा के स्पीकर पद से मुक्त होने के दिन ही तुरन्त उन्होंने स्पीकर का बंगला खाली कर दिया। आजकल टंडन जी विधान सभा के सदस्यों को मिलने वाले एक मामूली फ्लैट में रह रहे हैं। वक्ता ने बतलाया कि टंडन जी स्पीकर के बङ्गले से फ्लैट तक भी पैदल ही आये। वक्ता का मत था कि कांग्रेस कार्यकारिणी के निर्माण में जो बाधा है वह शीघ्र ही दूर हो जायेगी। संभवतः पं० नेहरू जी कार्यकारिणी में आ जायेंगे। अगर वे नहीं आये तो भी कार्यकारिणी से उनके सम्बन्ध में भी मैत्री पूर्ण भाव रहेंगे। वक्ता ने कहा कि अगले आने वाले निर्वाचन तक कांग्रेस में स्पष्ट मतभेद और दलबन्दी होने की संभावना नहीं है। एक प्रश्न के उत्तर में कहा कि श्री कृपलानी जी अपनी स्पष्टवादिता के कारण प्रस्तावित डेमोक्रेटिक पार्टी के सगठन में सफल नहीं हो सकेंगे। कांग्रेस अधिवेशन के प्रबन्ध आदि का वर्णन करते हुए उन्होंने कहा कि लगभग २० वर्ष बाद यही पहला बन्द अधिवेशन था। गांधी नगर की व्यवस्था को भी उन्होंने उत्तम बतलाया।

गुरुकुल कांगड़ी में डा० ताराचन्द का भाषण

२३ अक्टूबर को डा० ताराचन्द सैक्रेट्री शिक्षाविभाग गुरुकुल कांगड़ी में पधारे। स्टेशन से उन्हें लाने के लिये प्रो० इंद्र विद्यावाचस्पति कुलपति गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी तथा अन्य कार्यकर्ता पहुँचे।

२३ अक्टूबर को डा० साहब ने कुलपति, आचार्य तथा अन्य विभागों के अध्यक्षों के साथ गुरुकुल के प्रत्येक विभाग का निरीक्षण किया और उससे बड़े प्रभावित हुये। विश्वविद्यालय के हॉल में डा० साहिब के सम्मान में कुलवासियों की एक विराट सभा हुई। सर्व प्रथम राष्ट्रीय गान के पश्चात् कुलपति जी ने डाक्टर साहिब का स्वागत करते हुये उनका परिचय कराया और स्वामी श्रद्धानन्द जी द्वारा चलाये गये गुरुकुल के ५० वर्षीय इतिहास का सूक्ष्म दिग्दर्शन कराते हुये

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

कहा कि यह स्वामी जी का परीक्षण सफल रहा है। साथ ही उसमें उन्होंने बताया कि हमारे सामने शिक्षा की उन्नति के लिये एक ही उपाय है कि इस संस्था में पाश्चात्य और पूर्वीय ढङ्ग का सम्मिश्रण कर दिया जाय जैसा कि गुरुकुल कर रहा है। आगे यह भी कहा कि गुरुकुल में कई प्रकार के व्यक्ति आते हैं जिन में दानी महानुभाव दान देते हैं और नेतागण आशीर्वाद। इनकी तो हमें आवश्यकता है ही परन्तु सबसे बड़ी आवश्यकता परामर्श की है। आपने डाक्टर साहिब की ओर संबोधित करते हुये कहा कि आप हमारी त्रुटियों को बतायें एवं परामर्श दें क्योंकि आप केन्द्रीय सरकार के परामर्श दाता हैं। भाषण समाप्त करते हुये कुलपति जी ने डाक्टर साहिब से परामर्श देने की प्रार्थना की। इसके उपरान्त महाशय कृष्ण प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा पञ्जाब ने डा० साहिब का स्वागत किया और अपने ओजस्वी भाषण में गुरुकुल के प्राचीन उज्वल इतिहास का मान्य अतिथि को परिचय कराया और उन्होंने आगे चल कर कहा कि बीसवीं सदी में बहुत सी राष्ट्रीय संस्थायें खुली और थोड़े समय में चल कर समाप्त हो गई। लेकिन यह आर्य समाज से स्थापित किया हुआ गुरुकुल दिनों दिन उन्नति के पथ पर अग्रसर हो रहा है और इसने स्वतंत्रता की लड़ाई में अपना पूरा सहयोग दिया है तथा स्नातक बन्धु जेल गये। महात्मा गांधी जी के चलाये हुये आन्दोलन में मैंने भी कई बार जलयात्रा की है। अन्त में प्रधान जी ने गुरुकुल की ओर से धन्यवाद देते हुये प्रार्थना की कि वे अपना प्रेम गुरुकुल के प्रति सदा बनाये रखेंगे।

डाक्टर साहिब का भाषण

आपने मुझे यह जो विशेष सम्मान दिया है उसका मैं पात्र नहीं हूं। मैं गुरुकुल और आर्य समाज से तथा उसकी कार्य प्रगतियों से परिचित हूं। आर्य समाज के नेता लाला लाजपतराय से मेरा अच्छा स्नेह सम्बन्ध था। वे जब इलाहाबाद आते थे, मुझे उनसे मिलने का अवसर मिलता रहा है। आपके कुलपति जी के आग्रह पूर्ण आमन्त्रण के कारण मुझे आज यह गुरुकुल देखने का सौभाग्य मिला है। यहां के भवनों, स्वच्छ जलवायु और वातावरण का प्रभाव यहां बच्चों के मुख पर स्पष्ट दीख पड़ रहा है।

हमारा देश एक महान् देश है। परन्तु इसे महान् राष्ट्र मानने से कुछ लोग और राष्ट्र इंकार करते हैं। हमें महान् बन कर अपने पुराने गौरव को प्राप्त करना है। स्वाधीनता प्राप्ति के बाद हमारे देश की परिस्थितियां बदल गई हैं। मैं अनेक शिक्षा संस्थाओं को देखता हूं। परन्तु उन की शिक्षा को मैं अपूर्ण समझता हूं। पिछले पांच सौ वर्षों से यूरोप ने भौतिक विज्ञान में अद्भुत उन्नति की है परन्तु केवल भौतिक उन्नति ही से काम नहीं वन सकता। भारत के पुरुषों ने हमें बताया कि अन्तर्जगत की एक संस्कृति है। आज की दुनियां अन्तर्जगत की संस्कृति को कुछ महत्व नहीं देती है पर सच तो यह है कि संस्कृति के दोनों पहलुओं का हमें ध्यान रखना चाहिये। संस्कृति और शिक्षा का सार सत्य पर आश्रित है। अजाद व्यक्ति वही है जो हर बात को सत्य की तराजू पर तौलता है भारी को लेता है हल्के को छोड़ देता है। हमने अपना विधान अपने आप बनाया है। उसमें समानता और भ्रातृभाव पर बड़ा वल दिया गया है। इसे समता और बन्धुता का सच्चा अर्थ समझना चाहिये। तभी हम सच्चे अर्थों में देशभक्त माने जायेंगे। हमारे सामने ऊँच नीच और धर्म के भेद की बात नहीं आनी चाहिये।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गौशाला का उद्घाटन

अपरान्ह गौशाला में 'सेठ जयनारायण जी पोद्दार ट्रस्ट पार्श्व' का उद्घाटन करने के लिये सभा बुलाई गई जिसमें आचार्य प्रियव्रत जी ने गौशाला का संक्षिप्त परिचय दिया और बताया कि हम अब तक १ लाख ५८ हजार ८ सौ रुपया गोचर भूमि, भवन, तथा गाय भैंसों पर खर्च कर चुके हैं जो कि भिन्न भिन्न दानियों द्वारा प्राप्त हो चुका है। वह निम्न प्रकार है:—

सेठ जयनारायण जी पोद्दार ट्रस्ट कलकत्ता १००००), सेठ बिरला जी ५०००), गुप्त दान ७४५००)।

इसके अतिरिक्त आचार्य जी ने कहा कि गुरुकुल के ब्रह्मचारियों तथा कर्मचारियों के लिये हम शुद्ध घी की व्यवस्था करना चाहते हैं जिससे हम फार्मेसी की भांति आय का एक जरिया बना सकें।

अन्त में डाक्टर साहब ने गौशाला का उद्घाटन किया और उसके महत्व को बतलाते हुये कहा कि प्रत्येक विश्वविद्यालय में गौशाला और एग्रीकलचर का होना नितान्त आवश्यक है विदेशों में तो प्रत्येक विद्यार्थी को तीन पाव दूध शिक्षा विभाग की ओर से दिया जाता है लेकिन हमारे यहां भी इसका उचित प्रबन्ध होना चाहिये।

२३ अक्टूबर सायंकाल ठीक ५ बजे उनको एक चाय पार्टी दी गई जिसमें पंचपुरी के प्रतिष्ठित महानुभाव उपस्थित थे।

ऋतु और स्वास्थ्य

दीपमाला के पूर्व से ही शीतकाल का सौंदर्य और सुहावनापन कुल भूमि में दृष्टिगोचर हो रहा है। शीत के बढ़ते ही गुरुकुल के रोगीगृह में छात्रों की संख्या बहुत कम हो गई है। प्रभात में बहने वाला उत्तराखण्डीय शीतल पवन (ढाडू) बहना आरम्भ हो चुका है। गुरुकुल नगरी के अधिवासियों का स्वास्थ्य सुखावह और सुन्दर है। समीप के बनों में बेर आदि की बहार प्रारम्भ है।

●

कार्तिक मास में रोगी ब्रह्मचारियों का विवरण

नाम ब्र०	श्रेणी	नाम रोग	कितने दिन रोगी रहा
भानुदेव	१४	व्रण	५
शीलकान्त	१२	शूल	२
ओम्प्रकाश	१४	अतिसार	६
" (कालरा)	१४	उदरशूल	१
रवीन्द्र	१३	ज्वर	५
नरेश	१३	ज्वर	७
कृष्णरञ्जन	१३	चोट	३
रामचन्द्र	१२	चोट	१४
राजेन्द्रप्रकाश	११	व्रण	५
विश्वनाथ	१२	चोट	३
गिरीशचन्द्र	७	ज्वर	३
कृष्णकांत	७	चोट	३
अर्जुनदेव	५	ज्वर	३
देवेन्द्र	१२	ज्वर	२
कृष्णचन्द्र	५	ज्वर	३
विक्रमसिंह	५	ज्वर	२
रमेश (काशी)	५	"	४
हरिश्चन्द्र	४	"	३
अश्विनीकुमार	४	"	४
महेन्द्र	३	Burn	१६
शारदा	३	ज्वर	४
जगन्नाथ	२	शीतपित्त	४
प्रेमप्रकाश	२	अतिसार	३
मङ्गलसेन	२	ज्वर	३
कौशलकिशोर	२	श्वास	२

इस मास उपरोक्त ब्रह्मचारी रुग्ण हुये थे। अब सब स्वस्थ हैं।

●

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

प्रान्तीय सरकार को सप्लाई करने वाली

गुरुकुल रासायनिक उद्योगशाला

गुरुकुल कांगड़ी

में इस समय निम्न वस्तुएं बड़ी मात्रा में तय्यार की जा रही हैं। हस्पतालों, म्युनिसिपैलिटियों, मेलों तथा अन्य स्थानों पर भारी मात्रा में खरीद की जा रही हैं।

फ़िनायल

दो प्रकार, ३) वा ४॥) प्रति डिब्बा

साबुन

कपड़े धोने का तथा द्रव (Liquid Soap)

स्याही

लिखने की सब प्रकार की, विशेषतया बैंक इंक तथा फौन्टेन पैन इंक।

वार्निश तथा पेन्ट

कई प्रकार के, सब मुख्य रंगों के।

वर्म किलर

पिस्सू, मच्छर, कागज़ के कीड़ों को मारने के लिये, प्रति पौंड बोतल १॥)।

तथा अन्य उपयोगी वस्तुए मंगावें

सूचीपत्र तथा एजेन्सी नियम के लिये लिखें--

अध्यक्ष, गुरुकुल कैमिकल इण्डस्ट्रीज़

गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी की

विशेष गुणदायक औषधियां

च्यवनप्राश हाइपो

च्यवनप्राश में कैल्शियम व सोडियम आदि नवीन रासायनिक पदार्थ डालकर यह योग तय्यार किया गया है। खांसी, क्षय, निर्बलता दमा आदि में रामबाण है और शरीर वृद्धि के लिये उत्तम रसायन है।

मूल्य ३।) पाव।

सिद्ध मकरध्वज

स्वर्ण, कस्तूरी आदि बहुमूल्य वस्तुओं से तैयार किया गया है। सब प्रकार की निर्बलता को दूर करके शरीर में शक्ति व स्फूर्ति देता है व नया जीवन लाता है।

मूल्य ३॥) माशा, ४५) तोला।

बादाम पाक

बादाम, पिस्ता व अन्य गुणदायक वस्तुओं से तैयार किया गया है। स्वादिष्ट, बलवर्धक पाक है। मस्तिष्क व शारीरिक दुर्बलता को दूर कर शक्ति देता है।

मूल्य ४) पाव।

गुरुकुल चाय

जड़ी-बूटियों के योग से बनी देशी चाय है। सुख व स्वास्थ्य के लिये परिवार में इसका प्रयोग कीजिये। थकावट, हल्के बुखार, खांसी, जुकाम में तुरन्त लाभ दिखाती है।

मूल्य ।=) छटांक, १=) पाव।

बसन्त कुसुमाकर

सोना, चान्दी, मोती आदि से तैयार की गई यह औषधि बहुमूत्र और मधुमेह रोग में विशेष गुणकारी है। शरीर की नसों की निर्बलता को हटा कर समर्थ और बलवान बनाता है। मूल्य ३) माशा, ३६) तोला

चन्द्रप्रभा वटी

शिलाजीत, लोह भस्म, वंशलोचन आदि लाभदायक चीजों से तैयार की गई यह औषधि अनेक रोगों को दूर करके शरीर में नई शक्ति लाती है। खून की कमी, जिगर की निर्बलता, बवासीर तथा विशेषकर प्रमेह व स्वप्नदोष आदि में लाभदायक है।

मूल्य १) तोला, ४) छटांक।

महालोहादि रसायन

इसके सेवन से शरीर में नया रक्त पैदा होता है। प्रत्येक ऋतु में सेवन करने योग्य उत्तम औषधि है।

मूल्य ६) तोला।

द्राक्षासव

बलवर्धक, स्वादिष्ट पेय है। शारीरिक व मानसिक थकावट को दूर करके स्फूर्ति व शक्ति देता है।

मूल्य १।) पाव, २।) पौंड।

गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी (हरद्वार)

मुद्रक—श्री हरिवंश वेदालंकार। गुरुकुल मुद्रणालय, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

प्रकाशक—मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

स्वाध्याय के लिए चुनी हुई पुस्तकें

वैदिक साहित्य

वैदिक ब्रह्मचर्य-गीत श्री अभय २)
वैदिक विनय १, २, ३ भाग ,, २।), २।), २।)
ब्राह्मण की गौ ,, ।।।)
वैदिक अध्यात्मविद्या श्री भगवद्दत्त १।)
वैदिक स्वप्न विज्ञान ,, २)
वेदगीताञ्जली [वैदिक गीतियां] श्री वेदव्रत २)
वैदिक सूक्तियां श्री रामनाथ १।।।)
वरुण की नौका [दो भाग] श्री प्रियव्रत ६)
सोम-सरोवर, सजिल्द, अजिल्द श्री चमूपति २), १।।)
अथर्ववेदीय मन्त्र-विद्या श्री प्रियरत्न १।।)

धार्मिक साहित्य

सन्ध्या रहस्य श्री विश्वनाथ २)
धर्मोपदेश १, २, ३ भाग स्वा० श्रद्धानन्द १।), १), १।।)
आत्ममीमांसा श्री नन्दलाल २)
प्रार्थनावली ।)
आर्यसमाज और विचार संसार श्री चमूपति ।)
कविता मंजरी ।―)
कविता कुसुमाञ्जली ।)

स्वास्थ्य सम्बन्धी पुस्तकें

आहार [भोजन की पूर्ण जानकारी के लिए] ५)
लहसुन : प्याज श्री रामेश बेदी २।।)
शहद [शहद की पूरी जानकारी के लिए] ,, ३)
तुलसी [दूसरा परिवर्धित संस्करण] ,, २)
सोंठ [तीसरा परिवर्धित संस्करण] ,, १।।)
देहाती इलाज [दूसरा संस्करण] ,, १)
मिर्च [काली, सफेद और लाल] ,, १)
स्तूपनिर्माण कला सचित्र, सजिल्द, ३)
प्रमेह, श्वास, अर्शरोग १।)
जल चिकित्सा श्री देवराज १।।)

ऐतिहासिक ग्रन्थ

भारतवर्ष का इतिहास, तीन भाग श्री रामदेव ७)
बृहत्तर भारत [सचित्र] सजिल्द, अजिल्द ७), ६)
अपने देश की कथा [द्० संस्क०] सत्यकेतु १।≈)
योगेश्वर कृष्ण श्री चमूपति ४)
ऋषिदयानन्द का पत्र व्यवहार ।।)
हैदराबाद आर्य सत्याग्रह के अनुभव ।।)
महावीर गेरीबाल्डी श्री इन्द्र १।)

संस्कृत साहित्य

बालनीति कथामाला [तीसरा संस्करण] १)
नीतिशतक [संशोधित] ≈)
साहित्य-दर्पण [संशोधित] २)
संस्कृत प्रवेशिका, प्र० भाग [चौथा संस्क०] ।।।≈)
,, ,, २ भाग [तीसरा संस्करण] ।।≈)
अष्टाध्यायी, सटीक, पूर्वार्द्ध श्री गङ्गादत्त ७)
रघुवंश संशोधित [तीन सर्ग] ।)
साहित्य-सुधासंग्रह १, २, ३ बिन्दु १।), १।, १।)
संस्कृत साहित्य पाठावली ≈)

शालोपयोगी

विज्ञान प्रवेशिका २ य भाग श्री यज्ञदत्त १।)
गुणात्मक विश्लेषण [बी. एस. सी. के लिए] २।।)
भाषा प्रवेशिका [वर्धा योजनानुसार] ।।))
आर्यभाषा पाठावली [आठवां संस्करण] १।।)
ए गाइड टु दी स्टडी ऑफ संस्कृत ट्रांसलेशन एण्ड कम्पोजीशन, दूसरा संस्क०, ३३६ पृष्ठ १)

पता—प्रकाशन मन्दिर, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

ॐ

गुरुकुल-पत्रिका

श्रद्धानन्द जी का नाम याद करके बहादुरी, हिम्मत और त्याग की तसवीर सामने आ जाती है और इस तसवीर को देख कर कुछ अपनी भी हिम्मत बढ़ जाती है।

—जवाहरलाल नेहरु।

❀

स्वामी श्रद्धानन्द जी की याद आते ही १९१९ का दृश्य मेरी आंखों के सामने खड़ा हो जाता है। सरकारी सिपाही फायर करने की तैयारी में है। स्वामी जी छाती खोल कर सामने जाते हैं और कहते हैं—लो, चलाओ गोलियां। उन की उस वीरता पर कौन मुग्ध नहीं हो जाता! मैं चाहता हूँ कि उस वीर सन्यासी का स्मरण हमारे अन्दर सदैव वीरता और बलिदान के भावों को भरता रहे। - वल्लभभाई पटेल।

पौष २००७

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

वर्ष ३ अङ्क ५ **गुरुकुल-पत्रिका** पौष २००७

व्यवस्थापक
श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति
मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी।

सम्पादक
श्री सुखदेव विद्यावाचस्पति
श्री रामेश वेदी आयुर्वेदालंकार।

इस अङ्क में

अगले अंकों में

श्री अरविन्द	प्रोफेसर लालचन्द एम. ए.
मुझको तेरा एक सहारा	श्री वेदव्रत
स्वतन्त्र भारत के सच्चे शिक्षणालय की एक झलक	श्री रामसिंह ठाकुर
दूध की कल्प चिकित्सा के चमत्कार	प्रोफेसर रामचरण महेन्द्र एम. ए.

मूल्य देश में ४) वार्षिक
विदेश में ६) वार्षिक
एक प्रति छः आने

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

ॐ

गुरुकुल-पत्रिका

[गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की मासिक पत्रिका]

हमारे पथप्रदर्शक

डॉक्टर राजेन्द्रप्रसाद

स्वामी श्रद्धानन्द जी से प्रथम परिचय का सौभाग्य मुझे भागलपुर में हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के समय प्राप्त हुआ। उस समय तक स्वामी जी ने संन्यास नहीं लिया था और महात्मा मुन्शीराम के नाम से ही प्रसिद्ध थे। गुरुकुल की स्थापना करके राष्ट्रीय पद्धति से शिक्षा देना उन्होंने बहुत पहले ही आरम्भ कर दिया था। और गुरुकुल का काम शान से चल रहा था। आपके हिन्दी प्रेम और हिंदी-सेवा को देखकर ही सम्मेलन ने सभापति के पद पर आपका निर्वाचन किया था। सम्मेलन का काम जिस खूबी के साथ आपने निबाहा, वह मुझे आज भी अच्छी तरह याद है। पर स्वामी जी के और गुणों को भारतवर्ष १९१९ और उसके बाद ही पूरी तरह जान सका। स्पष्ट-वादिता और निर्भीकता के आप मूर्तिमान स्वरूप थे। वह निर्भीकता जिस प्रखर ज्योति के साथ अङ्गरेजी सरकार के सामने चमकती थी, उसी ज्योति के साथ औरों के मुकाबले में भी अपनी छटा दिखलाती थी। जो लोग काले कानून के विरोधी-आन्दोलन के समय दिल्ली के चांदनी चौक में मौजूद न भी थे, उनके हृदय-पट पर भी स्वामी जी की वह मूर्ति अमिट रूप से चित्रित है जो सीने को अङ्गरेज़ी गोलियों और संगीनों के सामने खोलकर हृदय की शुद्धता और निर्भीकता दिखलाती है। उसी शुद्धता ने जामा-मस्जिद के मञ्च पर से उपदेश करवाया और हिन्दु-मुस्लिम ऐक्य का मनोरम दृश्य दिखलाया और उसी दृढ़ता, सत्यनिष्ठा, स्पष्टवादिता और निर्भीकता ने आततायी के हाथों शरीरपात भी कराया। भारत के आधुनिक इतिहास में स्वामी जी का स्थान पथप्रदर्शक का है, और जिनको उनके साक्षात् का सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ, उनके लिये स्वामी जी का जीवन वृत्तान्त पढ़ना ही मनुष्य को उन्नति मार्ग पर अग्रसर करने वाला है। स्वामी जी ने गुरुकुल की स्थापना करके कुछ ब्रह्मचारियों के शिक्षण का ही प्रबन्ध नहीं किया उनका सारा जीवन देश के लिये एक महान् गुरुकुल का काम कर रहा है, और करता रहेगा।

●

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

श्रद्धाञ्जलियां

आत्म नियन्त्रण का अभ्यास

'जिस अभिलाषा से प्रेरित होकर स्वामी जी ने गुरुकुल की नींव डाली थी उसे वे सदा हृदय में रखते हुये और अपने प्रतिदिन के जीवन में आत्मनियन्त्रण का अभ्यास कर अपने को इतना शक्तिमान् बनायें कि वे देश के भविष्य निर्माण में ऊँचा भाग ले सकें।' —राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन।

❀

गुरुकुल अधिकाधिक उन्नत हो

'मेरा यह संक्षिप्त संदेश स्वामी जी के प्रति सम्मान और सदिच्छाओं के लिये समर्पित है। आशा है गुरुकुल कांगड़ी निरन्तर विशाल होता चला जायगा, और अपने अमर संस्थापक की आकांक्षाओं को पूर्ण करेगा; जिस की पुण्य-स्मृति आप २३ दिसम्बर को मनाने जा रहे हैं।' —राजगोपालाचार्य।

❀

साहसी श्रद्धानन्द

'मैं अपने को इस बात से गौरवान्वित समझता हूँ कि स्वामी जी की पुण्य स्मृति में मुझे भी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करने का अवसर दिया गया है। मुझे तो स्वामी जी के अनेक गुणों में उनका असीम साहस सब से अधिक आकर्षक प्रतीत होता है। शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और आध्यात्मिक साहस के साथ वे जन्म से मृत्यु तक कार्य करते रहे। उनका सात्विक हठ बहुत ही प्रिय था। उनका सारा जीवन वीरोचित था और अन्त में भी उन्हें वीर गति ही मिली। ऐसे ही महापुरुष हमारे देश का सिर इस गिरी अवस्था में भी उन्नत किये हुये हैं।

यद्यद्विभूतिमत्सत्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छत्वं, मम तेजोंशसंभवम्॥'

—श्री प्रकाश।

❀

भारत की सर्वश्रेष्ठ विभूति

'श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी का बलिदान दिवस २३ दिसम्बर को गुरुकुल में मनाया जायगा, यह जानकर खुशी हुई। स्वामी जी की पुण्य स्मृति को निरन्तर देश और समाज के सामने जीवित और जागृत रखना उपयोगी और आवश्यक है। स्वामी जी का स्थान हमारे देश की सर्वश्रेष्ठ विभूतियों में है और सदैव रहेगा। उनका देश प्रेम, भारतीय-संस्कृति और सभ्यता के प्रति अगाध श्रद्धा और विश्वास, अदम्य साहस और वीरता असाधारण त्याग, निर्बल और दलितों के प्रति आन्तरिक प्रेम और सहानुभूति और पुनीत सदाचार भारतीय पुरुष रत्नों के इतिहास में सदैव अंकित रहेंगे।

मैं आशा करता हूँ कि गुरुकुल उनके जीवन से शिक्षा-ग्रहण करता रहेगा और उनके सिद्धान्त और आदर्शों के आधार पर इस संस्था की बराबर उन्नति होती रहेगी।'

—गोविन्दवल्लभ पन्त।

❀

सेवा और त्याग की मूर्ति

'स्वामी श्रद्धानन्द इस देश के सर्वमान्य नेता थे। उनकी स्मृतियों को हम कभी भूल नहीं सकते। उनकी सेवा, उनका त्याग, उनकी कार्य क्षमता हमारे लिये आदर्शस्वरूप हैं। हमारा कर्त्तव्य है कि उनकी स्मृति में प्रतिवर्ष उनका गुणगान करें और अपने को इस योग्य बनायें कि उनका महान कार्य सुचारु रूप से सम्पन्न करें।' — अमरनाथ झा।

❀

राष्ट्रीय शिक्षणालय के प्रथम पुरोहित

स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज ने राष्ट्रीय सेवा के अनेक क्षेत्रों में अग्रदूत का कार्य किया है। राष्ट्रीय शिक्षा रूपी यज्ञ के तो वे प्रथम पुरोहित कहे जा सकते हैं। उनका बलिदान हम सबके जीवन को अनुप्राणित करे।

—आनन्द कौसल्यायन।

❀

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

वे सच्चे सेवक थे

'अमर हुतात्मा प्रातः स्मरणीय स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज का बलिदान-दिवस मनाना आपके लिये उपयुक्त ही है। गुरुकुल शिक्षा प्रणाली-जिसका केन्द्र गुरुकुल कांगड़ी है-के पुनरुद्धारक वे ही थे। वह उनके जीवन का एक प्रधान कार्य है। यों तो उनका प्रायः सम्पूर्ण जीवन आर्य समाज के लिये ही बीता था। रात दिन उसी चिन्ता में मग्न रहा करते थे। और अपने साथ समाज सेवकों के जवान इकट्ठे करके सदा उसी कार्य में लगे रहते थे। उनके लिये अक्षरशः यह कहा जा सकता है कि आर्यसमाज के लिये वे जिये और उसी के लिये मरे। उनके जीवन और मृत्यु से आर्यसमाज बहुत ऊँचा उठा।

मुझे सन्देह नहीं कि उनकी स्मृति हमें कर्त्तव्य पथ की ओर ले जाने में सहायक होगी। और गुरुकुल के ब्रह्मचारी अपना जीवन उस आदर्श पर ढालने का यत्न करेंगे।' —घनश्यामसिंह गुप्त।

❀

धर्म तथा राष्ट्र के निःस्वार्थ सेवक

'धर्म और राष्ट्र की निःस्वार्थ तथा निरन्तर सेवा का व्रत लेकर ही हम कुलपति अमर हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज के ऋण से मुक्त हो सकते हैं। इस अवसर पर मेरा यही सन्देश है कि ईश्वर हमें बल दें कि हम उनके पद चिन्हों पर चल सकें।'

--देशबन्धु गुप्त।

❀

अपूर्व-सेवावृत्ती

'गुरुकुल के छात्र स्वामी जी के जीवन से एक पवित्र पाठ सीख सकते हैं और वह यह कि स्वामी जी सेवा के लिये जिन्दा रहे और सेवा के ही लिये मरे। संक्षेप में यही मेरा सन्देश है।'

--घनश्यामदास बिडला।

❀

वे समस्त संसार को आर्य देखना चाहते थे

'श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी का शुद्धि सन्देश अर्थात् 'कृण्वन्तो-विश्वमार्यम्' के आदर्श का भारत तथा यूरोप, अमेरिका आदि अन्य देशों के लोगों में जो आर्यवंश के (रक्त के) होते हुये भी आर्य-धर्मी नहीं हैं उनमें आर्य-धर्म का प्रचार करना गुरुकुल के प्रत्येक स्नातक का विशेष ध्येय होना चाहिये।'

--जुगलकिशोर बिडला।

❀

निर्भय योद्धा

'स्वामी श्रद्धानन्द एक ऐसे पुरुष थे, जिन्हें 'यथा-वादी तथाकारी' कहा जा सकता है। अपनी मातृभूमि से सब तरह की बुराइयों का नाश करने में वह एक निर्भय योद्धा थे। वास्तव में उन्होंने अपना सभी कुछ होम कर अन्त में मातृभूमि की सेवा के लिये अपना जीवन भी समर्पित कर दिया। अपने उद्देश्य को पूरा करने के लिये उन्होंने अपने जीवन का भी मोह नहीं किया।'

—विधुशेखर भट्टाचार्य।

❀

जनता का निर्भीक सेवक

'स्वामी श्रद्धानन्द जी एक महापुरुष थे। उन्होंने अपना सारा समय हिन्दु जाति के उपकार और संगठन में लगा दिया और अन्त में इसी कारण उन्होंने अपने प्राण न्योछावर कर दिये। उनकी वर्षी मनाते समय उनके अनुयायियों के लिये मेरा यही सन्देश है कि सब निर्भीक जनता के सेवक बनने का यत्न करें।'

—बी. जी खेर।

❀

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

श्रद्धा का आनन्द

श्री आचार्य अभयदेव

मुन्शीराम से श्रद्धानन्द होने वाले हमारे कुलपिता ने सन्यासी बनते समय जिस महान् आनन्द की उपलब्ध की वह श्रद्धा का आनन्द था। उन्होंने संन्यासी होने पर लाहौर समाज के उत्सव पर जो 'श्रद्धा' पर व्याख्यान दिया था वह आज भी हमें ऊँचे उठने को ललकार रहा है, आज भी ज्योतिस्तम्भ का काम कर रहा है। वह व्याख्यान वस्तुतः फिर फिर पढ़ने योग्य है, आज भी ताजा है। उन्होंने उसके बाद जो साप्ताहिक पत्रिका गुरुकुल से निकाली उसका नाम 'श्रद्धा' रखा था। 'अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति' यह गीता का श्लोक वे अक्सर बोला करते थे। ज्ञानयुक्त श्रद्धा रखने के कारण वे कभी भी संशयात्मा, किंकर्त्तव्य-विमूढ़ या ढुलमिल मति एक क्षण भर के लिये भी नहीं होते थे। अन्दर से हमारा नाश कर देने वाला संशय राक्षस उनके सामने फटक नहीं सकता था। वे सदा श्रद्धापूर्ण थे, अतएव अजेय थे। वे वीर थे। वे बीहड़ जंगलों को चीर कर अपना नया सीधा रास्ता बनाने वाले शेर थे, दुनियां के अश्रद्धालुओं की बनाई हुई लम्बी चौड़ी चक्करदार पगडंडिओं में घूमते हुये सड़ना उन्हें सह्य न था। दुनियापन उन्हें फुसला नहीं सकता था, उनके सत्य के मार्ग पर कोई रुकावट नहीं खड़ी कर सकता था। जो सत्य होता था, कर्त्तव्य था उसे वे करते ही थे। अतः वे जिनके साम्राज्य में सूर्य अस्त नहीं होता उन अङ्गरेजों की संगीनों के सामने छाती तान कर खड़े हो सकते थे। मार्शल-ला के दिनों में जब पञ्जाब के आसमान में उड़ने वाले पक्षियों के भी पर जलते थे, तब वे पञ्जाब में घूम घूमकर पञ्जाब को होश में लाकर वहां राष्ट्रीय महासभा का अधिवेशन सफलतापूर्वक करा सकते थे, और अन्त में अम्लान चित्त से बल्कि उसकी हितकामना करते हुये अब्दुल रशीद की गोली भी खा सकते थे। सच तो यह है कि उनके लिये कुछ भी 'असम्भव' कहलाने वाला असम्भव नहीं था। यह सब इसी लिये था क्योंकि वे श्रद्धा के आनन्द में चूर थे, उन्होंने यह सोम रस अघा कर पी रखा था। तो उनके सामने दुनियां की कौन सी बाधा ठहर सकती थी।

व्यास जी ने योग भाष्य में श्रद्धा के विषय में क्या सुन्दर कहा है 'कल्याणी व जननी योगिनं पाति'। श्रद्धा कल्याणी माता की तरह योगी की रक्षा करती है। अध्यात्म मार्ग पर चलने वाले योगी को तो न केवल इस स्थूल जगत् के, किन्तु अन्य जगत् के बड़े भारी २ शक्तिशाली असुरों से मुकाबिले में आना पड़ता है वहां श्रद्धा शक्ति ही माता की तरह उनकी निरन्तर रक्षा करती है। हमारे इस जगत् में भी उन विकट घड़ियों में जब कि निराशा की घनघोर घटा छा जाती है और कुछ भी नजर नहीं आता, जब कि लगातार आपत्तियों से घबराकर मनुष्य का धैर्य समाप्त हो जाता है जबकि असुरों के सामने बेबस और परास्त होकर हम अपने दिव्य हथियार छोड़ने को तैयार हो जाते हैं उन विकट घड़ियों में भी वे ही लोग अडिग, अटल और अजेय रहते हैं जो श्रद्धामय दिव्य कवच से परिवेष्टित होते हैं, केवल उन्हीं की शान्ति अक्षुण्ण बनी रहती है जो कि श्रद्धामाता की गोद में शरण पा चुके होते हैं। अतः धन्य हैं वे लोग जिन्हें श्रद्धा प्राप्त हुई है और जिन्हें श्रद्धा का आनन्द प्राप्त हुआ है।

ऐसे ही धन्य हमारे श्रद्धानन्द जी महाराज थे। ईश्वर करे कि वे श्रद्धा के जिस दिव्य आनन्द को अपने जीवन द्वारा वर्षा कर गये हैं उसके कुछ छींटे पाकर हम भी कुछ अंश में श्रद्धामय और दिव्यसैनिक बन सकें और अपने जीवन को इस आनन्द द्वारा कृतकृत्य कर सकें।

●

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

जातिगुरु श्रद्धानन्द

काका कालेलकर

स्वामी श्रद्धानन्द जी में आर्य-जाति का मानोन्नत स्वभाव पूर्णतया प्रतिबिंबित था। वे अपने जमाने के सर्वाङ्गीण प्रतिनिधि थे। सामान्य परिस्थिति में रहते हुए भी आर्य पुरुष अपने पुरुषार्थ से कैसी उच्च और असामान्य कोटि तक पहुँच सकता है, इसका उदाहरण स्वामी जी के सफल जीवन में हम पाते हैं।

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने जो चैतन्य देश में प्रगट किया उसका ग्रहण अधिक से अधिक किसी ने किया था तो वे स्वामी श्रद्धानन्द ही थे। धर्मप्रचार, शिक्षा-प्रचार और लोकसेवा तीनों बातों में अपना जीवन व्यतीत कर के उन्होंने बलिदान के जल में जीवन यज्ञ का अवभृत स्नान किया। गुरु और शिष्य दोनों पुरुष सिंहों ने अपने निर्भय जीवन से मृत्यु को परास्त किया।

अनार्य हत्यारे का बदला न लेकर उनके असंख्य अनुयायियों ने अपना आर्यत्व ही सिद्ध किया है। निर्भय पुरुष का रक्त संस्कृति क्षेत्र का उत्तम खाद है। स्वामी श्रद्धानन्द जी ने जीवन भर अपने पसीने से सेवा की और अन्त में अपने खून से। इसीलिये वे अमरपद प्राप्त कर सके।

संस्था खोलना और चलाना आजकल सामान्य सी चीज़ हो गई है। क्योंकि अब जनता देख चुकी है कि लोक-जीवन में सुव्यवस्थित संस्थाओं का महत्व कितना है। लेकिन जब ऋषि दयानन्द सरस्वती ने आर्य-संस्कृति के आत्मा को जागृत करने के लिये सत्यार्थ-प्रकाश में नयी शिक्षा-प्रणाली का आदर्श पेश किया तब भारतवर्ष में स्वदेशी संस्थाएँ बहुत कम थीं। ऐसे समय पर सर्वस्व को छोड़कर अपने पुत्रों को साथ लेकर गंगा के तट पर जंगल में जाकर बसना केवल श्रद्धाधन पुरुष का ही काम था मानो वह एक किस्म का विश्वजित् यज्ञ ही था। मुन्शीराम जी चाहते तो वे किसी भी क्षेत्र में अपनी कार्यशक्ति का परिचय दे सकते। फौज में दाखिल होते तो नामांकित सेनानी हो जाते। किसी रियासत की सेवा में प्रवेश करते तो प्रजाहितैषी प्रधान बन जाते। राजनैतिक क्षेत्र में प्रवेश करते तो महासभा की धुरा का वहन करते। केवल धर्मोपदेशक बन बैठते तो हजारों सभाजय हासिल करते। साहित्य-सेवा का पेशा पसन्द करते तो साहित्य-सम्राटों से कर भार वसूल करने की योग्यता प्राप्त करते। परन्तु उन्होंने सब छोड़ कर शिक्षा का ही कार्य अपना जीवन कार्य बनाया। इसी लिये मेरा सिर उनके सामने झुकता है। शिक्षा का क्षेत्र जगत् में अभी उतना प्रतिष्ठित नहीं है कि जितना उसका अधिकार है। तो भी मनुष्य-जाति की उत्तम सेवा शिक्षा द्वारा ही होने को है।

शारीरिक शक्ति द्रव्यशक्ति, राजशक्ति, संघशक्ति इत्यादि सब शक्तियां शिक्षाशक्ति के मुकाबले में गौण हैं। धार्मिकता, सेवा, ज्ञानोपासना और बलिदान यही जीवन का सर्वस्व है। और इन जीवन तत्वों का पोषण केवल शिक्षा-प्रसार से ही हो सकता है। दीर्घदर्शी समाज-पुरुष ही इस बात को समझ कर शिक्षा के क्षेत्र में अपना जीवन प्रदान कर सकता है। वे सच्चे ब्राह्मण थे। और ब्राह्मण होने के कारण ही वे हरिजन सेवा की विशेष जुम्मेवारी अपने सिर पर है, ऐसा समझते थे। स्वामी श्रद्धानन्द जी को इसी लिये मैं जातिगुरु कहता हूँ।

कल्याण मार्ग के पथिक स्वामी श्रद्धानन्द जी की सेवा अनेक दृष्टि से अपूर्व है। राष्ट्रीय-शिक्षण, धर्म, जागृति, समाजसेवा आदि अनेक क्षेत्रों में उन्होंने भारतवर्ष को एक नया ही रास्ता दिखाया है। श्रद्धा के बल से ही वे यह सब कर सके। जिस दिन उन्होंने अपने प्रिय पुत्रों को लेकर गुरुकुल की स्थापना के संकल्प

[शेष पृष्ठ सात पर]

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

संयम-सीमा

श्री सत्यभूषण 'योगी' वेदालंकार

संयम की सीमा टूट गई, सीमा का संयम टूट गया !

[१]

वह निकला ले कर में झोली
क्या करते हो ? दुनिया बोली

वह ममता डोरी तोड़ चला
अपनेपन को झकझोर चला

करता निज सर्वस की होली
जग विस्मित था किस ओर चला !

वह बोला—गङ्गा को देखो, हिमगिरी का आंचल छूट गया !
संयम की सीमा टूट गई, सीमा का संयम टूट गया !!

[२]

आंखों में राजस आग लिए
अन्तर में दीपक—राग लिए

अभिमान लिए उत्थान लिए
अधरों में स्मिति की शान लिए

मस्तक पर ज्योति विहाग लिए
निज सत्ता में वरदान लिए

यह दुनिया उसको लूट गई या वह दुनिया को लूट गया !
संयम की सीमा टूट गई, सीमा का संयम टूट गया !!

[३]

जामा मस्जिद के आंगन में
जग न्हाया उस रस वर्षण में

वक्षस पर झेलीं संगीनें
उस कठिन-शैल के संगी ने

छह:

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

चिर यौवन के ऊर्मिल क्षण में
लेकर सपने झीने झीने
क्या कोई उस से रूठेगा जो बचपन से ही रूठ गया !
संयम की सीमा टूट गई सीमा का संयम टूट गया !!

[४]

वह यौवन के मादक क्षण में
ले ज्वाला भटका वन-वन में
अब आई उस पर क्षार जरा
उसका वह भोला भक्त डरा
बुझ जाय नहीं वह इस पन ने
ले आया साधन अग्नि भरा !
वह भी अपने उस प्रेमी को दो पिला अमृत के घूंट गया !
संयम की सीमा टूट गई, सीमा का संयम टूट गया !!

जातिगुरु श्रद्धानन्द

पृ० ५ का शेष

से गंगा के तट पर निवास किया वह दिन भारतवर्ष के वर्तमान इतिहास में महत्व का था। उस दिन उन्होंने हिन्दू जाति के उद्धार की नींव डाली, ऐसा कहा जा सकता है। जिस दिन उन्होंने अन्त्यज बालकों को अपनाया उसी दिन हिन्दू जाति को उन्होंने सगठित किया। और जिस समय उन्होंने पत्थर, गोली और खञ्जर की तरफ तुच्छता की नजर से देखा उसी दिन भारतवर्ष को उन्होंने निर्भय किया। अपनी अतुल श्रद्धा से उन्होंने अपना दीक्षा नाम कृतार्थ किया। सचमुच श्रद्धानन्द राष्ट्रमूर्ति थे। ऐसा समय जरूर आयेगा कि जब उनके द्वेषी और विरोधी भी स्वीकार करेंगे कि यह भारतवर्ष का आधुनिक संन्यासी मित्र की नजर से ही सभों की तरफ देखता था। कायरों के जमाने में इस पुरुषसिंह की निर्भयता बहुत लोग न समझे होंगे और संशय की नजर से उनकी तरफ देखा होगा तो वह स्वामी जी का दोष नहीं था। वैदिक आर्यों का स्वभाव हम श्रद्धानन्द जी में देख पाते हैं।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

कर्मयोगी श्रद्धानन्द

श्री अमृत वेदालङ्कार

"सत्य के प्रतिनिष्ठा का आदर्श श्रद्धानन्द इस दुर्बल देश को दे गये हैं। सत्य के प्रति श्रद्धा के उस श्रद्धानन्द को उनके चरित्र के मध्य हम समर्थक आकार में देख सकते हैं।"

ये शब्द विश्वकवि रवीद्रनाथ ठाकुर ने स्वामी श्रद्धानन्द जी के अमर बलिदान पर कहे थे। वास्तव में यही उनकी महानता और जीवन का सार है। 'श्रद्धा' का वेद-सम्मत अर्थ सत्य को धारण करने की भावना है। इसी भावना ने सम्वत् १९१३ की फाल्गुन कृष्ण त्रयोदशी (१८५६ ई०) को जालन्धर जिले के तलवन ग्राम में जन्मे बालक मुन्शीराम के बाल्यकाल में कुसंगति से पतनोन्मुख जीवन की कायापलट कर दी। उन्होंने स्वयं लिखा है कि सन् १८७९ में बरेली में महर्षि दयानन्द के क्षणिक सहवास ने मुझे अत्यन्त गिरी हुई अवस्था से उठाकर सच्चा जीवन लाभ करने के योग्य बनाया।'

आचरण गीता के अनुगामी

ऐसे प्रसंग सब के जीवनों में आते हैं किन्तु दुर्बल भोगवादी हृदय दुर्योधन की तरह 'जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिः' कह कर अधर्म मार्ग की ओर ही प्रवृत्त होते हैं। इसके विपरीत महान् आत्माएं कण्टकाकीर्ण बलिदान पथ पर बढ़ चलती हैं। नवयुवक मुन्शीराम ने भी दूसरा मार्ग चुना और जीवन में बुराई के साथ कभी समझौता नहीं किया। कठिनाइयों और विरोध में उनका उत्साह दुगुना हो जाता था। सिद्धान्त के प्रश्न पर बड़े से बड़े का और निकटतम सम्बन्धी का उन्होंने कभी लिहाज़ नहीं किया। मांस भक्षण और पाश्चात्य शिक्षा के विरोध में १८९३ में आर्यसमाज के दो दल हुए। उसके बाद से आपने महात्मा दल का नेतृत्व किया और अन्त तक आर्यों में जीवन का संचार करते रहे। आप 'आर्य' उसी को मानते थे जिसका आचरण श्रेष्ठ हो।

सच्ची राष्ट्रीय संस्था-गुरुकुल

प्राचीन भारतीय शिक्षा-प्रणाली को पुनर्जीवित करने के लिए आपने जो महान् प्रयत्न किया उसे हम गुरुकुल के रूप में पहचानते हैं। यह भी महर्षि के आदर्श पर आचरण का ही मुंह बोलता प्रकाशन था। किसी प्रतिक्रिया के बजाय चरित्र-बल और साधना के आधार पर सन् १९०२ में हरिद्वार से ५ मील दूर, गंगा पार जंगल में स्थापित यह क्षुद्र संस्था सब आघात प्रतिघातों को सह कर आज भी फल फूल रही है।

गुरुकुल को किन प्रलोभनों से बचा कर स्वामी जी ने बढ़ाया यह उन्हीं के शब्दों में सुनिये—

'गुरुकुल अपने जन्म दिन से अब तक नौकरशाही के जाल से बचा हुआ, अपना काम करता आया है। इसके संचालकों को क्या-क्या प्रलोभन नहीं दिये गये? जिन सुनहरी जंजीरों को जातीयता का अभिमान करने वाले अन्य शिक्षणालयों ने बड़ी खुशी से पहन लिया, मन लुभानेवाली वे जंजीरें न जाने कितनी बार उनके सामने पेश की गईं। परमेश्वर ने उनको ऐसी दासता से बचने की बुद्धि दी।'

हिन्दी के प्रथम प्रयोक्ता

राष्ट्रभाषा हिन्दी द्वारा गुरुकुल में विज्ञान जैसे विषयों की उच्च शिक्षा देकर आपने हिन्दी की राष्ट्रभाषा होने की योग्यता को आज से आधी सदी पहले प्रमाणित कर दिया था।

भागलपुर में हुए ४र्थ हिन्दी साहित्य सम्मेलन का सभापति (तब श्री मुन्शीराम) बना कर स्वामी जी की हिन्दी के प्रति सेवाओं के लिए कृतज्ञता प्रकट की गई थी। स्वामी जी की कथनी और करनी में शायद ही कभी अन्तर रहा हो। यही कारण था कि उनका चरण जो एक बार प्रगतिपथ पर बढ़ा तो फिर मुड़ा नहीं। यही बात उर्दू को छोड़ कर हिन्दी अपनाने के विषय

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

में भी हुई । हिन्दू-संस्कृति से प्रेम हो और हिन्दी छोड़ कर उर्दू का प्रयोग चलता रहे, यह असंगति उनकी जीवनधारा की गति के बिलकुल प्रतिकूल थी। इसी लिए उन्होंने अपना उर्दू पत्र 'सद्धर्म प्रचारक' सम्वत् १९६६ में एक रात में ही उर्दू से हिन्दी में कर दिया, जो आधुनिक युग में हिन्दी-प्रेम का ज्वलन्त उदाहरण था। पञ्जाब में आर्यसमाज द्वारा हिन्दी का प्रारम्भिक दिनों में जो प्रचार हुआ था, उस का सब श्रेय आपको ही है।

गान्धी जी को हिन्दी की दीक्षा

दक्षिण अफ्रीका सत्याग्रह में सहायतार्थ जो १५००) का स्वल्प धन गुरुकुल के ब्रह्मचारियों ने अपना घी-दूध छोड़ कर पत्थर ढोने की मजदूरी करके भेजा था, उसे स्व० गोखले ने १५००० रुपये से भी कीमती बताया था। उसके बाद गान्धी जी ने स्वामी जी (तब महात्मा मुन्शीराम) को पहला पत्र अंग्रेज़ी में लिखा जिसका उत्तर हिन्दी में देते हुए आपने लिखा—'जो व्यक्ति हिन्दी को देश की भाषा बनाना चाहता है, उसको कोई अधिकार नहीं कि वह दूसरी भाषा में पत्र व्यवहार करे।'

इसके बाद से गान्धी जी आपको हिन्दी में पत्र लिखने लग गये।

'जब बने देश के सन्यासी'

स्वामी जी देश-धर्म के उत्थान के लिए सन्यासी बने थे। उन्होंने लिखा है—

'मैंने सन्यास का अर्थ कर्म का न्यास नहीं समझा, प्रत्युत गुरुवर आचार्य दयानन्द के चरण चिह्नों पर चलने का यत्न करते हुए कर्म फल में अनासक्ति को ही सन्यास समझा है। इसलिये मैं उनके साथ सहमत नहीं जो कहते हैं कि 'सर्व कर्म-नासी' सन्यासी होता है।'

जलियांवाला बाग की पीड़ा से विह्वल हृदय 'गुरू का बाग़' में होने वाले अत्याचार से कैसे आखे मूंद सकता था? सत्य के लिये कष्ट सहने को सदा तैयार सन्यासी १० दिसम्बर सन् १९२२ को सवेरे अमृतसर पहुँचा। दिल्ली की शाही जामा मस्जद की शोभा बढ़ाने वाले आर्य सन्यासी ने अमृतसर के अकालबख्श की भी शोभा बढ़ाई। उनके उस भाषण में सरकार को उग्र राजद्रोह की गन्ध आई और ६७ वर्ष के उनके बूढ़े शरीर को बन्द कर दिया। किन्तु आप अवधि पूरी होने से पहले ही छोड़ दिए गये।

पहली आवश्यकता—चरित्र

जेल से आने के बाद अपने राजनीतिक जीवन के अनुभव के सार रूप में स्वामी जी ने कहा था—"मुझे निश्चय हुआ कि अभी चरित्र गठन में बड़ी कमी है। कम से कम मैं ऐसे सांचे में ढला हूँ कि कई अन्शों में स्वयं सदाचार की कमी अपने अन्दर अनुभव करते हुए भी चरित्रहीन पुरुषों के साथ काम नहीं कर सकता। मेरी सम्मति में भारतीय राष्ट्र की पहली आवश्यकता यह है कि जनता को ब्रह्मचारी बना कर और उसमें सहनशक्ति फूंक कर एक आत्मोन्नत स्वराज्य सेना खड़ी की जाय, तब दैयक्तिक गुलामी की जञ्जीरें काट कर अत्याचार से युद्ध हो सकेगा।"

कांग्रेस से त्यागपत्र

फिर १९२३ में आपने कांग्रेस के प्रधान मन्त्री को लिखा कि—"मैंने अमृतसर और मियांवाली जेलों में यह अनुभव किया है कि चरित्रगठन और अस्पृश्यतानिवारण द्वारा स्थापित हुए राष्ट्रीय ऐक्य के बिना कांग्रेस या उस सरीखी राजनीतिक संस्थाएँ कुछ भी नहीं कर सकेंगी। मैं अब अपना सब समय इस कार्य में लगाना चाहता हूं अतः मेरा त्यागपत्र स्वीकार करें।'

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

दलितोद्धार, शुद्धि और हिन्दू संगठन

नई पीढ़ी के चरित्र निर्माण में संलग्न भी आप देश की सामान्य गति से कभी अछूते नहीं रहे। गढ़वाल का अकाल, मोपला कांड, कोहाट, जलियांवाला बाग जहां भी आवश्यकता हुई स्वामी जी अग्रपंक्ति में दिखाई देते थे। सात करोड़ दलितों (अछूत या हरिजन शब्द उन्हें कभी सम्मत नहीं हुआ) के प्रश्न को आप हिंदू जाति की एकता और स्वराज्य की दृष्टि से इतना महत्त्वपूर्ण समझते थे कि मुख्यतः इसी कारण आप कांग्रेस से पृथक् हुए।

'जिन्हें अछूत बतला बतला कर जाति का चौथाई अङ्ग काट दिया गया है उन्हें भारतमाता के शत्रु बनाने का जो यत्न इङ्गलैंड और अमरीका की ओर से शुरू हो गया है उसका मुकाबला करके दिखला दिया जाय कि साठ करोड़ से एक भी कम भुजा भारत-जननी की नहीं है', इन शब्दों से प्रकट है कि इस प्रश्न की उपेक्षा वे नहीं सहन कर सकते थे। कांग्रेस ने अछूतों की समस्या को अपने प्रोग्राम में नाम के लिए ही रखा और मौ० मुहम्मद अली जैसे मुस्लिम कांग्रेसी नेता उन्हें लावारिस माल की तरह आधा-आधा बांट लेना चाहते हैं, यह देख वह कब कांग्रेस में टिक सकते थे? म० गान्धी ने सांप्रदायिक निर्णय के बाद दलितों की समस्या पर जितना ध्यान दिया उतना स्वामी जी १६२२ में चाहते थे। वह न हुआ तो उन्होंने हिन्दू-महासभा का दरवाज़ा खटखटाया। वहां से निराश हुए तो स्वतन्त्र रूप में इस कार्य को किया। अन्तिम वर्षों में हिन्दुओं का संगठन ही उनका एक मात्र लक्ष्य हो गया था। शुद्धि या भ्रातृमिलाप और दलितोद्धार इसी के भाग थे। वे जानते थे कि मुसलमान संगठित हैं और जब तक असंघटित हिन्दुओं को उनसे मिलाने का प्रयत्न किया जायगा वह हिन्दू जाति के लिए घातक होगा।' उनके अनुभवों का निचोड़ इन शब्दों में दिया जा सकता है।

"वह दिन दूर नहीं है जब आर्य हिंदू समाज संघ से सुसज्जित होकर व्यक्ति और समष्टि दोनों को बलवान् बना कर सारे संसार के अन्य समाजों की ओर दोस्ती का हाथ बढ़ायेगा।"

आपने एक बार फिर आर्यसमाज की शक्ति को संगठित कर इस महत्वकार्य में लगाना चाहा।

बलिदान के लिये सदासिद्ध

हिन्दू संगठन और शुद्धि के कारण कट्टर मुस्लिमों ने उन्हें इस्लाम का दुश्मन बना कर मिथ्या प्रचार शुरू किया। इन्हीं षड्यन्त्रों का परिणाम था अब्दुल रशीद का उस ७२ वर्ष के वृद्ध अनवरत परिश्रम से जर्जर, रोगी शरीर पर २३ दिसम्बर १६२६ को कुटिल प्रहार। स्वामी जी ने वस्तुतः उस दिन अमरता प्राप्त की और वे इसके लिए सदा तैयार थे।

योगेश्वर कृष्ण (दूसरा संस्करण) — लेखक प्रोफेसर विश्वनाथ विद्यालंकार।

उपासना का प्रत्येक धर्म में विशेष महत्व है। सृष्टि की सब से प्राचीन और सबसे नवीन वेदोक्त उपासना का आनन्द निराला ही है। यदि आप सन्ध्या के गूढ़ रहस्यों को हृदयंगम करके इस अनिर्वचनीय आनन्द का आस्वादन करना चाहते हैं तो इस पुस्तक को अवश्य पढ़िये। मूल्य २)

मिलने का पता—प्रकाशन मन्दिर, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

श्रद्धाञ्जलियां

सामाजिक और धार्मिक सुधारक

'श्रद्धानन्द जी का स्थान सामाजिक और धार्मिक सुधारकों में बहुत ऊँचा है। उन्होंने वैदिक संस्कृति का पुनरुत्थान करने का स्तुत्य प्रयत्न किया। उन्होंने देश की स्वतन्त्रता के लिये जो कुछ किया है वह हम भूल नहीं सकते। इस महान् आत्मा को मैं इस संदेश से श्रद्धाञ्जलि दे रहा हूं।'

—कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी।

❀

वे उज्वल तारे थे

'आज उनकी स्मृति हमारे दिलों में ताजी है। निस्सन्देह वे भारतीय गगन के उज्वल तारे थे। श्रद्धानन्द बलिदान-दिवस आयोजन की सफलता के लिये मेरी हार्दिक शुभ कामना स्वीकार कीजिये।'

—मैथिली शरण गुप्त।

❀

पावन स्मृति

'मुझे यह जान कर खुशी हुई कि आप 'श्रद्धानन्द अङ्क' निकाल रहे हैं। उनकी स्मृति कभी भुलाई नहीं जा सकती। स्वामी श्रद्धानन्द जी की पावन स्मृति में मेरी भी श्रद्धाञ्जलि स्वीकार कीजिये।'

—विजय लक्ष्मी पंडित।

❀

उस नर रत्न से भारत धन्य है

'यह जान कर बड़ी प्रसन्नता हुई कि आप आगामी २३ दिसम्बर को श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी का बलिदान दिवस मना रहे हैं। स्वामी जी की सेवायें, उनका साहस और प्रखर-प्रतिभा की बात जब याद आती है तो हृदय कृतज्ञता से भर जाता है। यह इस देश का परम सौभाग्य है कि उस दुःख दुर्दिन की अवस्था में भी उसे स्वामी जी जैसे नर रत्न को अपने बीच पाने का सौभाग्य हुआ था जिन्होंने न केवल अपने जीवन से बल्कि मृत्यु से भी देश को साहस और तपस्या के मार्ग में अग्रसर कर दिया। हम आपके अनुष्ठान की सफलता चाहते हैं।'

—क्षितिमोहन सेन।

❀

दूरदर्शी द्रष्टा

'स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानन्द जी का सब से बड़ा और महत्वपूर्ण काम था हिन्दी को शिक्षा का माध्यम बनाना। लोग हंसते थे पर वे साहसी थे, दूरदर्शी थे और द्रष्टा थे। जो चाहा कर दिखाया। आज जनता और सरकार दोनों उसका अनुकरण कर रहे हैं, धन्य हैं वे लोग जो उनकी चलाई संस्था का सञ्चालन कर रहे हैं।'

—रामनारायण मिश्र।

❀

उनके कार्य को जारी रखें

स्वामी जी की प्रतिभा बहुमुखी थी और देश के लिये उनका कार्य सर्वोत्कृष्ट था। उनके प्रति वास्तविक श्रद्धाञ्जलि यही हो सकती है कि हम उनके कार्य को जारी रखें और उनको सफल बनायें।

—जगजीवनराम।

❀

भारत के गौरव

स्वामी श्रद्धानन्द जी उन अमर आत्माओं में हैं जिन्होंने इस भारतवर्ष को उच्च उद्देश्यों से तथा अपने अनुकरणीय कार्यक्रम से ऊंचा उठाने का प्रयत्न किया है। इनकी सफल जीवनी हम सबों के लिये आदर्श है। उन्होंने धर्म की मर्यादा तथा भारतवर्ष का गौरव बढ़ाने में किसी कष्ट को कष्ट नहीं समझा, किसी भी बलिदान को ज्यादह नहीं माना। मैं उस अमर हुतात्मा को अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पण करते हुए अपने को गौरवान्वित मानता हूं। ईश्वर से सदैव मेरी यही प्रार्थना है कि

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

उनकी अमर कीर्ति गुरुकुल के रूप में सदा फलती फूलती रहे और आपका गुरुकुल भारतवर्ष की सेवा में तत्पर रहे।

-- जगलाल चौधरी, पटना।

❀

आर्य संस्कृति के गौरव

साम्प्रतं भारतवर्षं स्वाधीनतापदमारुढं, परन्तु यां संस्कृतिमाश्रित्य अखण्ड भारतवर्ष संगठन स्वप्नोऽस्माभिर्दृष्टः स तु सिद्धो नाभूदिति सर्वैरेव स्वीकरणीयम्। भारतीय संस्कृत्याजातिगठनं, तत्संस्कृति सिद्धया जातीयतया च भारतवर्षस्याखण्डस्वाधीनता सम्पादनं स्वर्गत भारतवरेण्य स्वामी श्रद्धानन्द महाराजस्य संकल्पितमासीत्। परन्तुतादृग् संकल्प पूरणायैव स महात्मा आत्म दानेन पवित्रभारतभूमिं स्वरुधिररञ्जितां विधाय स्वरारूढः। महात्मनस्तस्यायमितिहासः भारतीयानां चित्तेषु चिराङ्कितः स्थास्यति। भारतगौरव स्वामी श्रद्धानन्द महोदयः पवित्रघृतप्रदीप इव समन्ताहर पवित्रालोकं विकीर्य दिवमारूढवान्, तद् विकीर्ण पवित्रालोकोद्भासितहृदयानां सर्वेषांसाम्प्रतमिदमेव विधेयं यद्—ऐक्यमत्य सम्पादनद्वारा भारतीय-सनातनसंस्कृतेः पुनः प्रत्यानयनं, अपिच भगवता श्री कृष्णेन गीताप्रचारद्वारा या तावत् धर्मराज्यप्रतिष्ठा पाञ्चजन्यध्वानेनोद्घोषिता सा तु सुतरामेव कार्यतः सम्पादनीया साम्प्रतमस्माकम्। आर्यगौरव स्वामि श्रद्धानन्द महोदयया तात्विक श्रद्धानिवेदनकृते उदीयमानजातेर्दिव्यजीवनगठनाय सर्वैरेवनितराम् प्रयत्नो विधेयः दिव्य जीवनजातिप्रयायनमृते श्रुति स्मृति न्यायप्रवत्तिका विश्वमानवता सम्पादिनी आर्यसंस्कृति रशक्य रक्षैव। एतत् कृते त्यागवैराग्योपबृंहित जयध्वजामुत्तोल्यास्माकमभियानमावश्यकम्।

अयमेव स्वर्गत स्वामिमहाराजाय श्रद्धानिवेदनस्यामोघः पन्थाः। आशास्महे सर्वे नवतान्त्रिका इममेव पन्थानमनुसंरिव्यत्तीति।'

—मतिलाल राय।

❀

भारतीय संस्कृति के उद्बोधक

श्री पूज्यवर स्वामी श्रद्धानन्द के दर्शन का सौभाग्य केवल एक ही बार मुझे प्राप्त हुआ था। सम्भवतः काशी में। उन से भेंट या बातचीत करने के योग्य मैं नहीं था किन्तु उनकी आत्मकथा (कल्याणमार्ग का पथिक) पढ़कर मैंने बहुत कुछ रत्नकण संचित किये हैं, जो जीवन में अमृत-कण सिद्ध हुए हैं। वे हमारे प्रान्त भागलपुर में अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सम्भवतः चतुर्थ महाधिवेशन का सभापतित्व करने पधारे थे— महात्मा मुन्शीराम के रूप में। उनकी घननाद-गम्भीर वाणी आज भी कानों में गूञ्ज रही है। उनकी पौरुष प्रतीक प्रतिमा आज भी प्राचीन आर्यों की भव्य आकृति का स्मरण कराती है। उनका 'नैपोलियन बोनापार्ट' ग्रन्थ ओजस्विता का मूर्तरूप हैं। ऋषिवर दयानन्द को वे उसी तरह मिल गये जिस तरह परमहंस रामकृष्ण को स्वामी विवेकानन्द। हिन्दी जो आज राष्ट्रभाषा हो रही है उसके झंडे को सब से पहिले उन्होंने ही हिमालय पर स्थापित किया था। भारतीय संस्कृति मुमुर्षु हो रही थी, उसे उन्होंने अमृत के घूंट पिला दिये। आर्य सभ्यता और आर्य साहित्य के सुप्तलुप्तप्राय गौरव को जाग्रत एव उद्बुद्ध समृद्ध करके उन्होंने ऋषिवर के मिशन को खूब पूरा किया। राष्ट्रीय-आन्दोलन में उन की वीरता जग जाहिर है। वे योद्धा थे और हिन्दू हित में बहादुरी से जूझ गये। उन्हें शत कोटि प्रणाती शिवः।'

- शिवपूजन सहाय।

❀

जाज्वल्यमान सूर्य

'अमर हुतात्मा श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज ने सर्व प्रथम राष्ट्रीय शिक्षा-पद्धति की नींव डाली राष्ट्रभाषा को शिक्षा का माध्यम बनाया। विद्यार्थियों में राष्ट्रीय भावना जागृत की, भारतीय संस्कृति की ओर उनकी श्रद्धा और चेतना का विकास किया। उर्दू के

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

सद्धर्म प्रचारक को एक सप्ताह में हिन्दी का चोला पहनाया। यद्यपि इसमें उन्हें आर्थिक हानि हुई तथापि वे अपनी प्रतिज्ञा पर अटल और अडिग रहे। अपने पुत्रों को कॉलिज न भेज कर गुरुकुल पढ़ाया और जात-पात तोड़ कर उनके विवाह किये। आज के स्वप्नों को ऋषि श्रद्धानन्द ने लगभग चालीस वर्ष पूर्व सत्य कर दिखलाया। वे त्याग तपस्या की मूर्ति थे। जब त्याग और तपस्या केवल कहने भर की चीज थी तब उन्होंने उनका उच्च आदर्श संसार के सामने रखा, उससे महात्मा गान्धी, कवीन्द्र रवीन्द्र, योगिराज अरविन्द और सारा देश प्रभावित हुआ। हमारे राजर्षि प्रत्येक क्षेत्र में जाज्वल्यमान सूर्य की भान्ति चमके और हिमालय की तरह अटल रहे। आर्य समाज के तो वे प्राण ही थे। उन्हीं के बिना समाज आज निर्जीव सा दिखाई देता है मैं उस। प्रातः स्मरणीय प्रतापी नेता की विमुक्त आत्मा के प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूँ।'

—हरिशंकर शर्मा।

❀

मृत्यु के वश में न हों

'कुल गुरु का समस्त जीवन एक सन्देश था। अपनी दुर्वृत्तियों से कैसे युद्ध करके मन पर विजय प्राप्त की और किस प्रकार शुभ भावनाओं से स्वयं लाभ उठाया तथा दूसरों को कल्याणकर मार्ग पर अग्रसर किया—यह सब उनकी लिखी आत्मकथा में पढ़ते हैं। आधुनिक भारत का कदाचित् ही कोई नेता अपने नाम के प्रति इतना सार्थक होगा जितना श्रद्धानन्द जी थे। अविचल श्रद्धा, झूठे तर्क जाल एवं अज्ञान के अन्धकार से निकाल कर किस प्रकार मानव को ऊँचा उठाती है, किस प्रकार वह कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करती एवं श्रेय की ओर ले जाती है, यह उनके जीवन में व्यक्त है। इस अनात्मवादी युग में, जब कि हमारी संस्कृति पर अविश्वास का घना कुहरा छा गया है और हमारी आस्थायें आन्धी में उड़ी जा रही हैं, श्रद्धानन्द श्रद्धा के प्रतीक से हमें चुनौती देते हैं कि हम धारा में बह न जाँय मानों वेद की वाणी में वे कह रहे हों—

'मा मृत्यो उद्गात वशं'—प्राणी मृत्यु के वश में न हों, ऊपर उठें।'

—रामनाथ सुमन।

धन्य है वह जीवन !

स्वामी श्रद्धानन्द !
वे लक्ष्य पर पहुँचे !

उन्होंने सब कुछ पाया !
वे अपना नाम इतिहास में बहुत गहरा अंकित कर गये !

उन्हें मेरी श्रद्धांजलि !
प्रत्येक जीवन का कोई चिन्ह होता है। उन के जीवन का चिन्ह था 'सेवा'।

उनकी स्मृति नए उत्साह को जगा देवे और राष्ट्र के युवकों में नई रूह फूंक देवे।

गरीबों की इस सेवा के लिये जो धर्म और आज़ादी दोनों का दिल है; हमसे अलग हो कर भी वे मरे नहीं।

वे तो अब भी बोल रहे हैं।

और इन सब को, जिन्हें मैं सुना सकता हूँ, उस शहीद का वह सन्देश सुनाना चाहता हूँ जो इस क्षण मुझे आ रहा है।

यह वह सन्देश है जिस में प्राचीन नवीन का अभिनन्दन करता है—"धन्य है वह जीवन जो 'बलि' में प्रज्ज्वलित हो।"

—टी. एल. वास्वानी।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

दिव्य-नर

श्री रामदयालु गुप्त

सौम्य-संस्कृति, विश्व के महनीय तप का दिव्य-दर्शन,
प्राण सा प्रिय, रूप सा माधुर्य, श्रद्धा सा समर्पण,
व्योम सा विभु-ज्ञान, अणु, अवकाश सी प्रज्ञा कहां है ?;
मुनि-कुमारों सा ललित, विश्राम चिर, गुरुकुल जहां है ।

पुण्य-गंगा के पुलिन पर स्निग्ध-संसृति भी बसी है ?
या कि ऋषि ने ज्ञान से उद्दण्ड-मन की गति कसी है ?
या कि कलि-कंकाल में मन्दाकिनी-धारा बही है ?
सुप्त-जर्जर-प्राच्य-संस्कृति या कि फिर जाग्रत हुई है ?

घोर-तमसावृत-समय, प्रत्यूह सम्मुख व्याल के सम,
थे रचे परतन्त्रता के व्यूह प्रतिपद काल के सम,
धन्य है काली-निशा के बाद स्वर्ण-विहान के सम,
तुम चमक ही गये श्रद्धानन्द ! ज्योतिर्धाम के सम,

आज पुलकित-प्राण, हर्षित-हृदय, झंकृत-तार तन के,—
झुक रहे, यतिवर ! चरण पर भाव परवश आज मन के,
सौम्य-भावों से विचर्चित, कुलपिता ! मम वन्दना लो,
हे अमिय तप के निकेतन ! प्राण सी, लघु अर्चना लो ।

आज जैसे मिल रहा हो शून्य को खोया-किनारा,
या मिला अवकाश को तेरी पताका का सहारा ?
ऐहलौकिक-पुण्य का था या कि यह पहला-प्रदर्शन ?
विश्व के मानस-पटल पर बह रही जो सौम्य धारा ।

●

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

प्रतीक्षा

श्री विष्णुमित्र

उत स्वया तन्वा संवदे
तत्कदा न्वन्तर्वरुणे भवानि।
किं मे हव्यमहृणानो जुषेत
कदा मृडीकं सुमना अभिख्यम् ॥

ऋ० ७. ८६. २ ॥

भक्त कभी अपने इष्ट देव को देखने की इच्छा से तर्क वितर्क करता है। (उत) क्या मैं (स्वया-तन्वा) अपने शरीर के साथ (संवदे संवाद करता हूं। ऐसा तो प्रतीत नहीं होता मैं तो किसी और से कह रहा हूँ। मैं कहता हूँ कि (कदा) कब (वरुणे) इष्ट देव में (अन्तः भुवानि) अन्तर्भूत होऊंगा अर्थात् कब मैं इष्ट देव के ध्यान में निमग्न हो जाऊंगा। यह बार बार विचारता हूं। पर होता नहीं। और भी (किम्) क्या (अहृणानः) क्रोध न कर मेरी प्रार्थना से प्रसन्न हो कर वह देव (मेहव्यम्) मेरी प्रार्थना और आहुति को (जुषेत) ग्रहण करेंगे। (कदा) कब (सुमनाः) निश्चित होकर मैं (मुडीकं) अपने सुखकारी देव को (अभिख्यम्) देखूंगा।

ऐसे अधीर होने वाले भक्तों को चाहिये कि यदि भगवान् के दर्शन में देर हो रही हो तो वे घबरावें नहीं। देखा गया है कि इस मार्ग पर चलने वाले भक्त लोग कुछ देर के बाद ऊब से जाते हैं। और कहना शुरू कर देते हैं कि कुछ पल्ले नहीं पड़ा। अजी पहिले तो यह चंचल मन ही नहीं रुकता था। और नाना प्रकार के नाच नचाता था। जब इसका नाच कुछ कम हुआ तो आगे कुछ दिखाई नहीं देता। मेरे ख्याल में ऐसे समय भक्त को समझ लेना चाहिये कि वह देव उसे अभी इसी अवस्था में रखना चाहता है। इसी अवस्था में कल्याण समझता है। प्रतीक्षा की अवस्था कोई बुरी तो नहीं होती। मिलाप से तो प्रतीक्षा में विशेष आनन्द आया करता है। आप इस दृश्य को जरा सामने लावें। राम पिता की आज्ञा से बन को जाने के लिये तैयार हैं मगर अभी घर पर हैं। अब आप सोचें क्या तब अयोध्यावासी आनन्द में थे। या जब राम अयोध्या से दूर बन में थे और बनवास की घड़िया दिन प्रतिदिन समाप्त होती जा रहीं थीं तब प्रसन्न थे। पहिली अवस्था मिलाप की है परन्तु अयोध्यावासी अधीर थे। दूसरी अवस्था विछोड़े की है परन्तु सब प्रसन्न हो रहे थे। ऐसे ही प्रभु मिलन की प्रतीक्षा के समय को भी आनन्द दायक समझना चाहिये। प्रतीक्षा का यह समय बड़ी उत्सुकता का होता है। भक्त नित्य नये चाव से अपने मन मन्दिर को साफ करता है। और अश्रु धारा बहाकर मन मन्दिर के फर्श को धोता है। उसी अश्रु जल से आने के मार्ग पर छिड़काव भी करता है। श्रद्धा, प्रेम और भक्ति के पुष्पों की माला लिये प्रतीक्षा में खड़ा रहता है। और सोचता है कि अभी आये, अभी आये, अभी द्वार खुला। कितनी बार तो कोई आहट पाकर प्रकाश की ज्योति का कोई चिन्ह पाकर बहुत प्रसन्न हो जाता है। तब कह उठता है वह आये। न आने के संकेत को पाकर फिर प्रतीक्षा में लग जाता है। ऐसे ही नित्य मन्दिर सजाता है और आने की प्रतीक्षा करता है। पर वह घबराता नहीं। वह दृढ़ता से मन मन्दिर में बैठकर कहता है कि—

बैठे हैं तेरे दर पै,
तो कुछ कर के उठेंगे।
या वस्ल ही (मिलाप) मिलेगा,
और या मरके उठेंगे ॥

स्यालकोट में एक प्रभु भक्त थे जो मुसलमान थे। जिन्होंने जीवन भर नमाज न पढ़ी थी। यह उस समय का हाल है जब कि वहां चोर और डाकुओं का बड़ा जोर था। इनको पकड़ने और दबाने के लिये सरकार ने वार वटन साहब को भेजा। साहब ने नीच

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

जातियों की तीन चार हाजरी लेने का हुक्म दिया। ऐसा करने से चोरी कुछ कम हो गई। एक दिन शुक्रवार को मुसलमान नमाज पढ़ने जा रहे थे। लोगों ने इस मस्त शेख से पूछा शेख जी तुम क्यों नहीं जाते। शेख ने कहा इन लोगों ने चोरी की है इसी लिये हाजरी देने जा रहे हैं। मैंने चोरी थोड़े ही की है। जो मैं जाऊं। कहते हैं कि एक दिन इन्हीं शेख जी ने नमाज पढ़ी मगर एक निश्चय से यह कहकर कि—

सिजदे में सर झुकाऊँ,
तो उठना हराम है।
सिज़दे में गिर पड़ूं तो,
फिर उठना मुहाल है।

सर को उठाऊँ क्यों कर,
हर रग में यार है।

ज्यों ही सिर झुकाया। वह सिर फिर न उठा। बहुधा देखा गया है कि मिलाप हो ही जाता है। आज नहीं तो कल। कल नहीं तो परसों। इस जन्म में नहीं तो अगले जन्म में। बस प्रतीक्षा काल में श्रद्धा की मात्रा को बढ़ाते रहना चाहिये। संशय को निकट नहीं आने देना चाहिये। अधीर वा ऊब जाने से काम नहीं चलता। जब किसान बीज बोता है तो क्या वह उसका फल तत्काल पा लेता है। उसे प्रतीक्षा करनी होती है, आखिर फल पाता है।

गुरुकुल कांगड़ी में बनी
फ़िनाइल-स्याही-वार्निश
तथा अन्य उपयोगी वस्तुएँ काम में लावें
स्कूलों, कालेजों, हस्पतालों व स्वास्थ्य विभागों में वर्षों से प्रयुक्त हो रही हैं।
अपने नगर की एजेन्सी के लिए लिखें—
गुरुकुल कैमिकल इण्डस्ट्रीज़
गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

इच्छित आयु की प्राप्ति का रहस्य

प्रोफेसर रामचरण महेन्द्र एम. ए.

एक प्राचीन ऋषि का कथन है—'मनुष्य मरता नहीं प्रत्युत वह अपने को स्वयं ही मारता है।' यह कथन अनेकों के विषय में सत्य है। अपने मन द्वारा वे ऐसा विकृत काल्पनिक चित्र तैयार करते हैं कि दीर्घायु नहीं हो पाते। मनुष्य अपने ही विचारों से अल्प या दीर्घजीवी बनता है। चाहे गुप्त रूप से मन के किसी आन्तरिक कोने में कोई कल्पना करते रहें, तो भी परमेश्वर उसे देखते हैं और उसका फल देते हैं। मन एव मनुष्याणां कारणं बंधमोक्षयोः' यह अटल सिद्धान्त है।

दीर्घ जीवन के अनूठे नियम

दीर्घ जीवन का अटल संकल्प—संकल्प उस ठोस श्रद्धा युक्त विचार प्रणाली का नाम है जिसमें पूर्ण विश्वास ओतप्रोत हो, जिसमें निरन्तर उन्नति करने की निष्ठा हो। संकल्प में श्रद्धा वह महान् तत्व है जो प्रत्येक व्यक्ति की इच्छाएं, सभी कामनाएं पूर्ण कर सकता है।

'मैं दीर्घजीवी हूं, मुझे एक दीर्घ आयु प्रदान की गई है जिससे मैं स्वयं आनन्द प्राप्त करूं और मानव-समाज की सेवा करूं, मुझे एक बृहत् जीवन, एक दिव्य हेतु से दिया गया है' ऐसी दृढ़, पुष्ट विचारधारा से आप जीवन प्रारम्भ कीजये।

'मेरे पास दीर्घ जीवन प्राप्त करने के समस्त साधन प्रस्तुत हैं। मेरे पास किसी पदार्थ की न्यूनता नहीं है। प्रत्येक आवश्यक वस्तु मुझे यथेष्ट मात्रा में प्रदान की गई है। मुझे किसीसे कुछ मांगना नहीं है, न हाथ ही पसारना है। मैं अपने आप में पूर्ण हूँ, निर्विकार हूँ.गुप्त सामर्थ्य से युक्त हूँ।'—यह आपकी शिक्षा की दूसरी सोपान है। इन संकेतों को अन्तर्जगत में खूब पुष्ट करना चाहिये। जितना इनमें अधिक विश्वास जमता जायगा, इतनी ही गुप्त शक्ति प्रकट होती जायगी। दीर्घजीवन ही विश्वास, दृढ़ विश्वास में होता है। यों तो प्रत्येक विचार एक जीवित बल है किन्तु श्रद्धापूर्ण संकल्पों की शक्ति अत्यंत प्रचण्ड है।

'हमें सौ वर्ष से भी अधिक जीवित रहना है, हमें सब से अधिक ज्ञान, पवित्रता, सेवा करनी है, खूब आनन्द लूटना है—' ऐसी धारणा बना कर चलने से जीवन तो दीर्घ बनता ही है, समय का भी सदुपयोग होता चलता है।

जीवन की प्रत्येक घड़ी के ऊपर कड़ी नज़र रखिये और देखते चलिये कि हर एक क्षण का सदुपयोग हो रहा है कि नहीं? कार्य सम्पादिका शक्तियां, उत्साह, महत्वाकांक्षाएं उत्तरोत्तर बढ़ रही हैं या नहीं? यदि न हों तो समस्त बुद्धिमत्ता को व्यय करके ऐसी योजना बनाइये कि जिनके द्वारा आपके चिन्तन के क्षणों का सृजनात्मक प्रवृत्तियों में सदुपयोग होता चले।

जो समय व्यतीत हो गया उसके लिये शोक मत कीजिये, जो शेष है वह ही यथेष्ट है और इतना महत्व-पूर्ण है कि सदुपयोग किये जाने पर आपको दीर्घजीवी बना सकता है और ऐसे महत्वपूर्ण परिणाम उपस्थित कर सकता है कि जिन पर गर्व करते हुए अन्य सुख पूर्वक संसार से बिदा हो सकें।

दीर्घजीवन तथा अपनी शक्तियों में जितना अधिक आपको विश्वास होगा; जितने धैर्यपूर्वक आप हृदय को मजबूत बनाएंगे; उतनी ही मजबूती से आप अपनी मनोवांछनाओं को पूर्ण करेंगे।

आत्मविश्वास से दीर्घ जीवन की प्राप्ति—तुम्हारा विश्वास, तुम्हारी श्रद्धा, तुम्हारी आस्था ही वह बल है जो निर्भयतापूर्वक निर्देश करता है कि कार्य की ओर पैर उठा दो। दृढ़ता पूर्वक अग्रसर होते रहो। संसार में जो बड़े २ आविष्कार हुए हैं, अद्भुत कार्य

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

नित्यप्रति हो रहे हैं वे सब कुछ दृढ़ निश्चयी मनोबल वाले विश्वासियों के ही कार्य हैं। आत्मविश्वास में वह शक्ति है जो सौ वर्ष क्या, पांच सौ वर्ष का जीवन प्रदान कर सकता है।

'संशयात्मा विनश्यति' अर्थात् संशयी पुरुष का नाश होता है। अतः निश्चयी भाव से हमारा अवश्य उद्धार होगा किन्तु संशय से हमारा पतन अवश्यम्भावी है। हठ पूर्वक कुबुद्धि को, कुविचारों को, कुकल्पनाओं, अभद्र मंत्रणाओं को त्यागिये और आज से, इसी समय से, दीर्घ जीवन के अटल संकल्प को दृढ़ कीजिए। कहिए—

'क्या कभी दयासागर परमात्मा की यह मर्जी हो सकती है कि मैं केवल पचास-साठ वर्ष की आयु में ही ढलती अवस्था पर पहुँच जाउँ जबकि मेरे यौवन का आरम्भ तीस वर्ष से प्रारम्भ होता है। मैं देखता हूँ कि किसी जानवर को यौवन प्राप्त करने में जितना समय लगता है, उससे चौगुनी उसकी आयु होती है। वनस्पति का भी यही जीवन-क्रम है। तो मनुष्य के लिये क्या यह असंभव है कि वह चौगुने समय तक जिए ? अवश्य ही मैं अपनी शक्ति एव बल को कम से कम सौ वर्ष तक कायम रख सकता हूं।

विचारशक्ति द्वारा दीर्घ जीवन की साधना

जन समुदाय की एक बृहत् संख्या निज कुटिल विचारों द्वारा मृत्यु के मुख में प्रवेश करती है। मृत्यु का कारण अन्धकार, अज्ञान एवं अन्धविश्वास हैं। बुद्धिमान साधक इच्छाशक्ति की साधना द्वारा १०० वर्ष या इससे भी अधिक जीवित रह सकता है। इस सिद्धान्त को हम अच्छी तरह ग्रहण कर लें, आत्मा में बैठा लें, उसी में रमण करें, इसी का प्रचार करें तो हम अपनी तथा दूसरों की आयु वृद्धि कर सकते हैं। विचारों में दीर्घ-जीवन की स्फूर्ति ला कर केवल मनोबल द्वारा हम युवा रह सकते हैं।

जवानी के मधुर विचारों, प्यारी कल्पनाओं से आत्मा को हरा भरा रक्खो, वैसे ही विचार दूसरों को प्रदान करो, उन्हीं का विश्वास जमाए रहो। बस शाश्वत यौवन तत्व पर निर्भर रहने से तुम में यौवन का सौंदर्य निखर आयेगा।

हमारी आत्मा का सत्यस्वरूप, हमारा देवत्व ऐसा आलौकिक है कि वहां मृत्यु की छाया नहीं पड़ सकती, जनता अपना अधिकार नहीं चला सकती। उच्च मानसिक प्रेरणा को कोई नष्ट नहीं कर सकता। सुविचारों का प्रभाव एकदम शरीर के अंग प्रत्यङ्गों से प्रकट हो जाता है और यौवन के मधुर स्वप्नों द्वारा हमारे शरीर पर यौवन के चिह्न प्रकट हो आते हैं।

दीर्घ जीवन के विचार प्रचुर मात्रा में मनःप्रदेशों में आने दीजिए। मन में विचार बल एवं मनोबल से मिश्रित इच्छा उत्तेजित कीजिए। इसको सरल युक्ति यह है कि जब अवकाश प्राप्त हो तो निज अन्तःकरण में इस तत्व को दृढ़ करो कि तुम चिरकाल तक युवा बने रहोगे और तुम्हारे जीवनतत्व कभी क्षय को प्राप्त नहीं हो सकते। तुम्हारा अस्तित्व, अक्षय, अमर, निर्विकार रहेगा। तुम्हारी आत्मा को अत्यन्त शान्ति मिलेगी। तुम इस अविनाशी परब्रह्म, अमृत, नित्यधर्म और अखण्ड आनन्द के एक तत्व हो। तुम्हारा स्वरूप अव्यय है। तुम्हारा जीवन स्वतः असीम है। वह निरतिशय सुखरूप है। तुम्हारी आत्मा अज, नित्य, शाश्वत है, इन्हीं दिव्य विचारों का मनन-चिन्तन से अमरत्व प्राप्त होगा।

अनन्त जीवन के मानसिक प्रबोध— अनन्त जीवन के लिए आशावादी बने रहो। मृत्यु का अस्तित्व है—इस बात को कभी स्वीकार ही न करो। मृत्युके नाम से कदापि भयभीत न हो, न कभी निराश हो। 'मैं अक्षय आत्मा हूँ, अमर जीवन हूँ, अनन्त, अविनाशी और आनन्दमय तत्व हूँ, अनन्त शक्तियों का भण्डार हूँ।" इस को बलपूर्वक ध्यान करो तो मन में विलक्षण प्रेरणा प्रकट होगी। रात्रि में

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

सोने से पूर्व चिन्ता एवं भय के समस्त दुर्बल विचारों को हटा कर दस पन्द्रह मिनट यही संकल्प उच्चारण कीजिये कि मैं चिन्ता, भय, तथा सब अनिष्ट विचारों से मुक्त हूं, मैं सत् चित् आनन्द अपर अव्यय आत्मा हूँ, मैं अजर अमर पवित्र आत्मा हूं।"

जो व्यक्ति निज कुटिल अकल्याणकारी अनिष्ट वृत्तियों को रोकता है उन्हें दीर्घायु चिन्तन में संचलित करता है वही ज्ञानमय विजयी जीवन प्राप्त करता है। यह सब अन्तःकरण के असीम ज्ञान सामर्थ्य का ही चमत्कार हैं।

तुम वास्तव में अक्षय आत्मा की विभूति हो और सब कुछ करने में समर्थ हो। अपने स्वामित्व का भान करो। तुम अपने जीवन के अधिष्ठाता हो।

प्रेरक सत्ता से दीर्घजीवन याचना—प्रिय पाठक! आज से आप निज-जीवन को एक क्षण भी व्यर्थ न कीजिए। सदैव हितैषी भावनाओं में रमण कीजिये। जहां दुर्बलता, अपूर्णता, कमजोरियां, रोग आदि दृष्टिगोचर होते हैं, वहां बल, पूर्णता, एवं युग दर्शन की आदत डालिये। विचारों को उच्च बढ़ा कर हम अपनी आन्तरिक दशा को परिवर्तित कर सकते हैं और उत्कृष्ट मन की भूमिका में प्रवेश कर प्रेरक सत्ता के साथ सम्बन्ध स्थापित कर सकते हैं।

समस्त व्यवहार एवं क्रिया में मन को अन्तर स्थित प्रेरक सत्ता के साथ संयुक्त कीजिये, जिस से प्रेरक सदा तुम में शक्ति एवं सामर्थ्य का पूर्णतः से साक्षात्कार कर सके। शरीर की बाह्य इन्द्रियों से तथा मन के समस्त व्यापार को थोड़ी देर के लिए शमन करके अन्तर में गहरे उतर जाइये— मैं निर्विकल्प चैतन्य स्वरूप आत्मा हूं। प्रेरक-सत्ता से मुझ में कार्य साधक असीम बल प्राप्त हो रहा है। प्रतिक्षण नव-जीवन व सामर्थ्य मुझ में जाग्रत हो रहा है। मैं ईश्वरीय प्रेरक सत्ता से सम्बन्ध स्थापित कर अनन्त जीवन लाभ कर रहा हूं।

दीर्घ जीवन पर सुश्रुत के विचार

सुश्रुत के शरीर स्थान के ३५ वें अध्याय में इस विषय का विवेचन है जिसमें निर्देश किया गया है—

"मनुष्य का शरीर सप्त धातुओं से विनिर्मित है—रस, रुधिर मांस, मेद, अस्थि, मज्जा तथा वीर्य, इन सप्त धातुओं का बल ४० वर्ष तक विकसित होता है। हमारे शरीर की चार और अवस्थाएँ हैं— प्रथम वृद्धि है जो शरीर को १६ वर्ष से १०५ वर्ष तक पहुँचाती है तथा सप्त धातुओं के बल को बढ़ाती है।

दूसरी अवस्था पच्चीसवें वर्ष के अन्त में छब्बीसवें वर्ष में प्रारम्भ होती है। तृतीय सम्पूर्ण अवस्था है। यह चालीसवें वर्ष तक शरीर की समस्त धातुओं को पुष्टि करती है। अन्तिम अवस्था किंचित् परिहारिणी है। यह अवस्था शरीर की सब धातुओं को पूर्णता पर पहुँचाती है। इसके अनन्तर शरीर में जो धातु बढ़ती है वह शरीर में नहीं रहती। वे स्वप्नावस्था में वीर्यपात द्वारा निकल जाती हैं। अतएव चालीस वर्ष की पकी हुई आयु ही विवाह के योग्य आयु है। ४८ वें वर्ष में विवाह करना सर्वोत्तम है।

ऊपर लिखित नियमों के अनुसार शरीर में वीर्य आदि सत्वों का संचय होकर शरीर तैयार होने में जितने वर्ष लगते हैं उस से पांच गुनी आयु मुख्यतः मनुष्य की होती है। इस प्रकार जो व्यक्ति ब्रह्मचर्य का यथा योग्य पालन करेगा और आठों प्रकार के मैथुनों से बचा रहेगा, उसकी आयु १२५ वर्ष की होने की सम्भावना है।

दीर्घायु प्रदान करने वाला सनातन तत्व

हम दीर्घजीवी अवश्य होंगे—इस संकल्पको आप जितना

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

दृढ़ बनावेंगे, जितनी मजबूती से इसमें विश्वास करेंगे इतना ही वायुमंडल से दीर्घजीवन के तत्वों को आकर्षित करेंगे। मानसिक विचारों का प्रभाव महान् है। मानसिक दृढ़ता से अवश्य दीर्घ जीवन की प्राप्ति हो सकती है। केवल मन की दुर्बलता, काल्पनिक भय मनोजनित रोगों, स्वभावजन्य दुर्बलताओं के कारण अनेक व्यक्ति काल के ग्रास बनते देखे गये हैं।

तुम्हें दीर्घायु प्रदान करने वाला यन्त्र तुम्हारी आत्मा है। आत्म-शक्ति एवं दृढ़ मनोबल द्वारा तुम प्राण शक्ति उत्पन्न एवं इच्छानुसार विकीर्ण कर सकते हो। इच्छाशक्ति प्राणभूत विचार या मन है अतः वह आत्मा और सूक्ष्म आकाशभूत आत्मा या प्रकृति के मध्य सन्ताप का एक केन्द्र बन जाती है। आत्मा सनातन और चैतन्य प्राण-सूत्र है। यही महान् तत्व प्रकृति के विविध मंडलों में प्रकट हो रहा है।

संसार को हिला देने वाला बल अर्थात् ओजस-शक्ति का तुम्हारे मन में शब्द से निरूपण किया जा सकता है। यह शब्द है उद्बोधन या इच्छा शक्ति की अटल आज्ञा—इसे कोई नहीं टाल सकता। इच्छा की आज्ञा ब्रह्म वाक्य है। इसका उपयोग उच्चरित शब्द या समाहृत विचार में होना है। अपने मनोबल को प्रदीप्त, उसकी शक्ति का प्रचण्ड प्रकाश, तुम्हें आजन्म करना चाहिये। तुम अपनी दृढ़ शक्ति के अनुसार उद्-बोधन द्वारा सहस्रों वर्ष संसार का आनन्द लूट सकते हो।

यदि तुम्हारा स्वास्थ्य सर्वोत्तम प्रकार से परिपुष्ट नहीं है, तो तुम अपनी निर्बलताओं, वृद्धावस्था के चिह्नों, रोगों के विचार न करो प्रत्युत पूर्ण जीवन की प्राप्ति पर अपना समस्त मनोयोग एकाग्र कर दो। कोई भी अनिष्ट कल्पना मनोजगत् में प्रवेश न करने दो। उद्बोधन करो, "मैं पूर्ण स्वस्थ, निर्विकार, अविनाशी हूं। मेरी शक्तिए' अपार एवं अप्रमेय हैं, मेरी आत्मा तथा समग्र विश्व में संचरित पराशक्ति से मेरा तादात्म्य है।

अन्तःकरण की जीवन प्रदायिनी धारा—मृत्यु का कारण शरीर में नहीं, प्रत्युत मन में है। कोई चिकित्सा जो मन में परिवर्तन नहीं कर सकती, मनुष्य को दीर्घायु नहीं बना सकती। क्योंकि शरीर मन का केवल बाह्य रूप है। शरीर को स्वस्थ करने के लिये मन की प्रवृत्ति को बदलना आवश्यक है क्योंकि मन कारण तथा शरीर कार्य है।

जिसने निज मन को सुव्यवस्थित कर लिया है और "मैं दीर्घजीवी हूँ—" इस तत्व को मनोमन्दिर में दृढ़ता पूर्वक स्थित कर लिया है, उस साधक को ताकत की दवाइयां, बलवर्धक पदार्थ, पुष्टिकारक पाक, जूस, सार अथवा पाशविक दूषित पदार्थों के प्रयोग की आवश्यकता नहीं है। जिसके अन्तःकरण ने स्वास्थ्य, नवजीवन तथा जनस्फूर्ति का सञ्चार करने वाली विश्वव्यापी शक्ति का प्रवाह—द्वार खोल लिया है उसको रोगों के कीटाणुओं का भय नहीं।

जिन्हें अन्तःकरण की जीवन प्रदायिनी धारा का द्वार खोलना है उन्हें ईर्षा, क्रोध, उद्वेग, प्रतिहिंसा, कुढ़न, चिन्ता आदि की घातक भावनाओं से हृदय की रक्षा करनी चाहिये। प्रेम, केवल निस्वार्थ प्रेम की दृष्टि से समग्र विश्व को, विश्व के जीवों को निहारने का अभ्यास करना चाहिये।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

सादा-जीवन

श्री मां

पैगम्बर मोहम्मद, जिन्होंने अपना समस्त जीवन ही अरब निवासियों के शिक्षण और उत्थान में लगा दिया था, न तो धनी थे और न ही उनके पास सुख आराम का कोई साधन था। एक रात जब कि वे एक सख्त चटाई पर सो रहे थे तो उनकी देह पर उसकी रस्सियों और गांठों के निशान पड़ गये। एक मित्र से न रहा गया। वह बोला—"हे ईश्वर के दूत यह शय्या आपके लिये अत्यन्त कठोर है। यदि आपने मुझे आज्ञा दी होती तो मैं आपके लिये बड़ी प्रसन्नता पूर्वक एक कोमल शय्या तैयार कर देता। इससे आपका विश्राम अधिक सुखकर हो जाता। पैगम्बर ने उत्तर दिया—'भाई कोमल शय्या मेरे लिये नहीं है। मुझे इस संसार में कुछ काम करना है। जब मेरे शरीर को विश्राम की आवश्यकता होती है तो उसे मैं वह दे देता हूं, पर उस घुड़सवार की तरह, जो अपने घोड़े को धूप की तेजी स बचाने के लिये पल भर किसी पेड़ की छाया में बांध देता है और फिर आगे चल देता है।"

×

पैगम्बर का कहना था कि उन्हें संसार में कुछ कार्य करना है। इसी लिये उनका उच्च जीवन एक सादा जीवन बन गया था। अपने ध्येय में विश्वास रखते हुये वे सब अरबवासियों को शिक्षा देना चाहते थे। आमोद प्रमोद के साधनों में उनकी जरा भी आसक्ति न थी। उनका हृदय उच्चतर विचारों की ओर झुका हुआ था।

निम्नलिखित अरबी कहानी से हमें पता चलेगा कि एक स्वस्थ आत्मा को कोई भी वस्तु उतना संतोष नहीं पहुँचा सकती जितना कि सादा जीवन पहुँचाता है।

मैंजू खल्ब वंश की लड़की थी। अपने जीवन के प्रारम्भिक वर्ष उसने मरुभूमि के बीच तम्बू में व्यतीत किये थे।

संयोगवश उसका विवाह खलीफा म्युआविइा के साथ हो गया। खलीफा के पास बहुत धन था; दास दासियां भी प्रचुर संख्या में थे। पर वह उसके साथ रह कर प्रसन्न न थी।

चारों ओर भरपूर धन ऐश्वर्य होने पर भी उसके मन को विश्राम नहीं था। जब कभी वह अकेली होती वह अरबी भाषा के कुछ स्वरचित पद मधुर स्वर में गाने लगती। वह गाती:—

"ऊंट की खाल से बने हुये भूरे वस्त्र मेरी आंखों में इन राजसी वस्त्रों से कहीं सुन्दर हैं।

रहने के लिये मरुभूमि का तम्बू इस महल के विशाल कमरों से अधिक सुखकर हैं।

मुर्गी के बच्चे जो अरब में तम्बू के चारों ओर फुदकते फिरते हैं, इन पुष्ट और कीमती साज से सजे हुये खच्चरों से अधिक तेज और फुर्तीले हैं।

चौकसी पर रहने वाले कुत्ते की आवाज, जो किसी नये आदमी को देख कर भौंक उठता है, महल के चौकीदार की हाथी दांत से बनी हुई तुरही की आवाज से अधिक सुरीली है।"

ये पंक्तियां जब खलीफा के कान में पड़ीं तो उसने क्रोधित होकर अपनी स्त्री को महल से निकाल दिया। वह कवयित्री अपने सम्बन्धियों के पास लौट आई। उस ऐश्वर्ययुक्त महल से दूर आकर वह प्रसन्न ही हुई क्यों कि यह उसे हमेशा उदास कर दिया करता था।

×

प्रायः सभी देशों में अब लोग यह समझने लगे हैं कि सादा जीवन ऐसे जीवन से जो फिजूलखर्ची, दिखावे और मिथ्याभिमान पर अवलंबित है, कहीं अधिक वांछनीय है।

अधिकाधिक संख्या में अब पुरुष और स्त्रियां बहुमूल्य वस्तुयें खरीद सकने की क्षमता रखते हुये भी यह

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

सोचने लगे हैं कि उनके धन का और अच्छा उपयोग कैसे हो सकता है। वे बढ़िया खाने की तश्तरियों के स्थान पर स्वास्थ्यप्रद भोजन का व्यवहार पसन्द करने लगे हैं। बड़े बड़े भारी चटकीले भड़कीले सामान के स्थान पर वे अपने मकानों को हल्के, पायदार सामान से सजाना अधिक अच्छा समझते हैं, क्यों कि यह ऊपरी तड़क-भड़क सिवाय दिखावे के और किसी काम नहीं आती।

संसार की उन्नति में अपना जीवन उत्सर्ग करनेवाले श्रेष्ठ और उत्साही मनुष्य सदा ही शांति और मितव्ययता से रहना जानते हैं। ऐसा जीवन शरीर को भी स्वस्थ रखता है और मनुष्य को सर्वहित के कार्य में अधिकाधिक भाग लेने के योग्य बनाता है। ऐसे उदाहरणों से उन लोगों के सिर लज्जा से झुक जाते हैं जिन्होंने अपने चारों ओर निरर्थक चीजें जमा कर रखी हैं। और वे स्वयं भी अपने वस्त्रों, घर की साज-सामग्री तथा अपने नौकर-चाकरों के दास के अतिरिक्त और कुछ नहीं होते।

बिना गढ़ा खोदे टीला नहीं खड़ा किया जा सकता। एक का धन ऐश्वर्य प्रायः दूसरों की दुर्दशा का कारण होता है। इस संसार में बहुत से सुन्दर, महान तथा उपयोगी काम करने को पड़े हैं। फिर यह कैसे संभव है कि ऐसे लोग जिनमें बुद्धि का सर्वथा अभाव नहीं है अपना समय पैसे और विचारों को अनुपयोगी कार्यों में खर्च कर दें।

×

संत फरांस्वा (Saint Francois) का मुख्य काम था सत्य जीवन का प्रचार। यह काम वे धन की लालसा से नहीं करते थे। उनका अपना जीवन सादा था और उनकी सबसे बड़ी प्रसन्नता इस में थी कि वे अपने उदाहरण और उपदेशों से लोगों को शिक्षा दें। उन्हें जो कुछ खाने को मिल जाता वे उसी में संतुष्ट रहते।

एक दिन वे और उनका एक साथी मातेओ (Matteo) एक शहर के पास से गुजरे। मातेओ भिक्षा के लिये एक सड़क पर हो लिया और फरांस्वा दूसरी पर। फरांस्वा छोटे कद के तथा देखने में भी ऐसे वैसे ही थे जब कि उनका साथी ऊंचे डील-डौलवाला प्रभावशाली और सुन्दर था। लोगों ने इसको खूब भिक्षा दी पर बेचारे फरांस्वा थोड़े से अन्न के अतिरिक्त और कुछ इकट्ठा न कर सके।

शाम को शहर के दरवाजे के बाहर दोनों मिले। पास में ही बहती नदी के किनारे एक बड़ी चट्टान पर बैठ कर उन्होंने अपने सारे दिन की कमाई पर दृष्टि डाली। फरांस्वा प्रफुल्लित मुख से बोल उठे—"भाई मातेओ, हमें ऐसे बढ़िया भोज की आशा नहीं थी।" मातेओ ने उत्तर दिया—"रोटी के इन थोड़े से टुकड़ों में आपको भोज दिखाई दे रहा है! न हमारे पास कोई मेज है, न छुरी, न कांटा, और न ही कोई नौकर है।"

"भूख लगने पर सुन्दर चट्टान की मेज पर रखी रोटी हो और प्यास लगने पर नदी का निर्मल जल पीने के लिये हो, यह क्या दावत नहीं है?" फरांस्वा ने उत्तर दिया।

इसका यह अर्थ नहीं कि गरीब मनुष्य सदा अपनी दीन अवस्था में ही संतोष मानकर उसी में पड़ा रहे, वरन् इससे यह प्रकट होता है कि किस प्रकार बाह्य धन और सामग्रियों के अभाव में सुन्दर आत्माओं के अन्दर रहने वाले संतोष और प्रसन्नता रूपी धन उस स्थूल धन का स्थान ले लेते हैं।

×

इसमें कोई सन्देह नहीं कि सादा रहन सहन किसी भी व्यक्ति को हानी नहीं पहुँचाता। पर धन ऐश्वर्य के बाहुल्य के बारे में यह नहीं कहा जा सकता। निरर्थक चीजों का संग्रह प्रायः मनुष्य के लिये क्लेश का कारण बन जाता है।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

प्रसिद्ध बादशाह अकबर के राज्यकाल में आगरे में बनारसी दास नाम के एक जैन साधु रहते थे। एक दिन बादशाह ने उन्हें अपने महल में बुलवाया और उनसे कहा—"आपको जो चाहिये मुझसे मांग लीजिये। आपके धर्म पूर्ण जीवन के फलस्वरूप आप की सब इच्छायें पूरी की जायेंगी।"

"परब्रह्म ने मुझे आवश्यकता से अधिक दिया हुआ है," संत ने उत्तर दिया।

अकबर ने अनुरोध किया—"कुछ तो मांगिये"।

"तब राजन्, मैं यही मांगता हूं कि तुम मुझे फिर कभी अपने महल में न बुलाना। मेरा सारा समय भगवान् के कार्य के निमित्त ही है।"

"अच्छा ऐसा ही होगा, पर महाराज! अब आप से मेरी भी एक प्रार्थना है।

"कहो राजन्?"

"मुझे एक ऐसी सलाह दीजिये जिसको मैं सदा याद रखूं और उस पर पूरा अमल कर सकूं"

बनारसी दास ने एक क्षण सोच कर उत्तर दिया "इस बात का सदा ध्यान रखो कि तुम्हारा भोजन सदा शुद्ध और पवित्र हो, विशेषकर रात में मांस तथा पेय पदार्थ का ध्यान रखना।"

"मैं आपकी सलाह कभी नहीं भूलूंगा," बादशाह ने साधु को विश्वास दिलाया।

अवश्य ही वह सलाह उत्तम थी क्योंकि शुद्ध सात्विक भोजन और पेय पदार्थ शरीर को स्वस्थ बनाते हैं। ऐसा शरीर ही शुद्ध विचार और पवित्र जीवन का क्षेत्र बनने के योग्य हो सकता है।

जिस दिन वह साधु अकबर के पास आया था वह रोज़े का दिन था। अकबर को उस दिन रात्रि के पिछले पहर भोजन करना था। रसोइये शाम को ही भोजन तैयार कर चुके थे। सोने चांदी के थालों में सब सामग्री परोस कर वे रोज़े के खुलने के समय की प्रतीक्षा में बैठे हुये थे।

अभी रात कुछ बाकी थी जब अकबर ने खाना लाने का हुक्म दिया। वह जल्दी में था फिर भी उसे एक दम बनारसी दास के वचन याद आ गये—मांस और पेय पदार्थ का विशेष ध्यान रखना। उसने ध्यान पूर्वक अपने सामने रखे थाल को देखा। सैंकड़ों भूरी चींटियां उस पर चल रहीं थीं। नौकरों के बहुत सावधानी बरतने पर भी चींटियां उस भोजन पर चढ़ गईं थीं और वह अब खाने के काम का नहीं रह गया था।

अकबर ने थाल वापिस भेज दिया, पर इस घटना ने उसके मन में बनारसी दास की सलाह का महत्व और भी अधिक बढ़ा दिया।

यह तो तुम समझ गये होगे कि बनारसीदास ने अकबर को केवल चींटियों से ही सावधान रहने के लिये नहीं कहा था, वरन् उन सब भोजनों से, जो शरीर और मन के लिये अहितकर हैं।

अपथ्य भोजन से अनेक व्याधियां उत्पन्न होती हैं।

जो लोग जान बूझ कर दूषित भोज्य पदार्थ बेचते हैं उनका नागरिकों के प्रति किया गया अपराध अक्षमणीय है। केवल बासी और सड़े गले पदार्थ ही अहितकर नहीं वरन् वे सब चीज जिन्हें खाने से मन में या शरीर में किसी प्रकार का दोष उत्पन्न हो जाय, अवांछनीय है।

×

उपर्युक्त कहानी में यह नहीं कहा गया कि अकबर के प्याले में भी चींटियां थीं पर बनारसी दास ने उसे पेय पदार्थ की ओर से भी सावधान रहने के लिये कहा था।

यह सच है कि चमकते हुये प्याले आंखों को लुभावने लगते हैं, उनमें का तरल पदार्थ भी स्वादिष्ट और तरोताजगी देने वाला प्रतीत होता है पर वह होता है वास्तव में मनुष्य के लिये हानिकारक। पर

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

पर इनमें से भी सबसे अधिक हानिकारक होते हैं सुरा-पात्र।

पैगम्बर मोहम्मद की शिक्षा थी कि मदिरा पान तथा जुआ पाप है। इसलिये जो लोग कुरान के वचनों पर श्रद्धा रखते हैं उन्हें इन दोनों वचनों से बचना चाहिये।

पर संसार में सर्वत्र ऐसे लोग हैं जो मदिरा पान को उचित समझते हैं। हम उनके मत का मान करते हैं पर ये लोग यह कभी नहीं कहते कि मदिरा न पीना भी कोई अवगुण है।

कुछ लोग मदिरा पान को बुरा समझते हैं तो कुछ अच्छा भी समझते हैं पर ऐसा कोई भी नहीं है जो इसका न पीना दोष माने। इसका पीना लाभदायक है या नहीं यह बात विवादास्पद हो सकती है [illegible] इसका न पीना हानिकारक है यह बात किसी के [illegible] से नहीं निकलेगी। और यह तो प्रत्येक का [illegible]ास है ही कि इसके न पीने से पैसे की बचत [illegible]ती है।

प्रायः सभी देशों में इससे बचने के लिये समितियां बनाई गई हैं। इनके सदस्य मदिरा न छूने की प्रतिज्ञा करते हैं। कई शहरों में तो सौदागरों को इसके बेचने तक की मनाही करदी गई है।

इसके विपरीत कुछ स्थानों में, जहां अब तक लोग शराब को जानते भी नहीं थे, इसका व्यवहार होने लगा है। उदाहरणार्थ भारतवर्ष में, जहां शताब्दियों से इसका व्यवहार नहीं होता था अब यह प्रचलित हो गई है। प्राचीन कथाओं में वर्णित किसी भी राक्षस से यह कम भयानक नहीं है। वे दुर्दान्त राक्षस तो केवल शरीर को ही हानि पहुँचा सकते थे पर यह शराब तो विचार शक्ति के साथ साथ चरित्र को भी नष्ट-भ्रष्ट कर देने की शक्ति रखती है। सबसे पहले तो यह शरीर को ही हानि पहुँचाती है। जो माता पिता इसका अधिक प्रयोग करते हैं उनके बच्चों पर भी इसका बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। यह बुद्धि का नाश करती है और जिन्होंने मनुष्यमात्र का सेवक बनना था यह उन्हें अपना दास बना लेती है। हम सब में से प्रत्येक को मनुष्य मात्र का सेवक बनना चाहिये। यदि हम अपने खान पान से अपने मन और शरीर को दुर्बल बना लेंगे तो हम अयोग्य सेवक ही बन पायेंगे ऐसे सेवक जो अपना कार्य करने में असमर्थ होंगे।

वह सिपाही क्या हुआ जिसकी बांह कट गई हो? वह नाविक किस काम का जिसकी नाव का मस्तूल खो गया हो? वह घुड़सवार, जिसका घोड़ा लंगड़ा हो गया है क्या करेगा! और वह मनुष्य क्या होगा जिसका अपनी अमूल्य शक्तियों पर से अधिकार उठ गया है? वह पशु से भी गया बीता है। पशु भी वही खाता पीता है जो उसके लिये हितकर होता है।

रोमन कवि वरजिल (Virgil) को खेतों में रहना सहना बहुत पसंद था। पुष्ट और तगड़े बैल उन्हें विशेष प्रिय थे क्योंकि वे खेतों में हल चलाकर उन्हें फसल के लिये तैयार करते हैं। बैल का शरीर खूब मजबूत होता है, उसके पट्ठे बड़े पुष्ट होते हैं। वर्षों लगातार कठोर काम करने का वह अभ्यासी होता है।

वरजिल कहते हैं:—

"वह शराबों और दावतों से सदा दूर रहता है। घास-फूस खाता है और बहती नदियों और निर्मल झरनों के पानी से अपनी प्यास बुझाता है। कोई चिंता उसकी सुखद नींद में व्याघात नहीं पहुँचाती।"

बलवान होने के लिये संयमी बनो।

यदि तुम्हें कोई कहे कि दुर्बल बनो तो क्या तुम उससे रुष्ट न हो जाओगे?

खान पान का संयम जहां बलवानों की शक्ति वृद्धि करता है वहां दुर्बलों की शक्ति की रक्षा भी करता है।

बनारसीदास की सलाह थी। "खाने का ध्यान रखो।" "पीने का ध्यान रखो।"

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

विषैले और निर्विष सांपों की पहिचान

श्री रामेश बेदी

विषैले और निर्विष सांप में भेद

सब सांपों को इस अर्थ में विषैला कहा जाता है कि अपने शिकार को मारने या जड़ करने के लिए उन की लार में काफी विष होता है। परन्तु इनकी अधिक संख्या ऐसी है जिनका विष छोटे जीवों पर ही कार्य कर सकता है, बड़े प्राणियों पर नहीं। ऐसी जातियां मनुष्य के लिए हानिप्रद नहीं हैं इस लिए इन्हें विषहीन कहा जाता है। जब तक एक निश्चित विष-ग्रन्थि, इस से विष ले जाने वाला प्रणाली और सूचि-वेध कर के उस विष को आगे पहुँचाने वाले विषैले दांत विद्यमान न हों सांप विषैला नहीं होता।

घातक सांप कुल पांच

विभिन्न देशों में विषैले और विषहीन सांपों की प्रतिशतकता अलग-अलग होती है। जन्तु-शास्त्र के मोटे अनुमान के अनुसार भारत में सांपों की कुल जातियां तीन सौ तीस के करीब हैं। इन में से समुद्रीय सांपों की उनत्तीस और भूमि के सांपों की चालीस जातियां मनुष्य के लिए ज़हरीली कही जा सकती हैं।[1] भारत के अधिक खतरनाक भूमि के सांप ये हैं—दो फणी, दस प्रकार के कौड़िये, सात मूंगे सांप और मण्डलियों की सोलह जातियां। इन में से कुल पांच सांपों में एक हट्टे कट्टे जवान आदमी को मारने की शक्ति निश्चित रूप से होती है। इन पांच के नाम ये हैं—शेष नाग, फनियर, साधारण कौड़िया (Bungarus caerules), रसल मण्डली और फूर्सा। घातक विष वाले सांपों की इतनी कम संख्या होते हुए भी हर साल मनुष्यों की एक बड़ी संख्या सर्पदंश के कारण मौत का शिकार हो जाती है।

एक लाख से अधिक मौतें

सर्पदंश से होने वाली मौतों की संख्या संसार के दो देशों—भारत और ब्राज़ील—में उच्चतम है। एक लाख से अधिक आदमी हर साल सांप के काटने से दुनियां में मरते हैं। पहले जो ब्रिटिश भारत था, उस में हर साल बीस हज़ार से तेईस हज़ार तक जानें जाती हैं। शेर, चीते, बघियाड़, भालू, भेड़िये और मगरमच्छ आदि जंगली जानवरों से सब मिला कर जो मौतें हर साल होती हैं उस से यह संख्या करीब दस गुनी है। रियासतों के क्षेत्र को भी इस में मिला लिया जाय तो हम यह बिलकुल ठीक कह रहे होंगे कि अकेले भारत में हर रोज़ सौ आदमी सांप के काटने से मर जाते हैं। बंगाल, बिहार, उड़ीसा और उत्तर प्रदेश में सब से अधिक मौतें होती हैं।

अधिक मौतें अज्ञान से

दयनीय तो यह है कि रोज़ की इन सौ लाशों में अधिक ऐसी होती हैं जिन में घातक विष तो पहुँचाया ही नहीं गया होता। डसने वाला सांप बिलकुल विष-हीन होता है। भय, अज्ञान और चिकित्सा के अवैज्ञानिक

---

१. सुश्रुत ने सांपों की कुल अट्ठासी जातियां लिखी हैं जिन में से बारह निर्विष और शेष छिहत्तर विषैली समझी हैं। वृद्ध वाग्भट ने सोलह निर्विष जातियों का उल्लेख किया है जिन में से सात सुश्रुत के निर्विष सांपों की सूची में गिनी गई हैं और नौ नहीं। इस लिए सुश्रुत की बारह जातियां+वाग्भट की नौ जातियां=इक्कीस जातियां विषहीन हुईं। इस से पता लगता है कि आयुर्वेद के अनुसार सविष और निर्विष सांपों की संख्या चार में एक है।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

तरीकों से जान चली जाती है। लोग सांपों की भयङ्कर ज़हरीली किस्मों को विषहीन जातियों से अलग पहिचानना जान जांय तो यह भय और अज्ञान दूर किया जा सकता है और वर्तमान उच्च मृत्यु संख्या को कम किया जा सकता है।

देहातों में प्रचार आवश्यक

अधिक जानें गांवों में जाती हैं इस लिए विषैले और निर्विष सांपों की भेदक पहिचान करना देहातियों को अवश्य सिखाना चाहिए। इस विषयक पोस्टरों, पत्रकों और छोटी-छोटी पुस्तिकाओं का प्रचार गांवों में करना चाहिए। वही स्कूल मास्टर गांवों में नियुक्त किये जांय जिन्हें इस विषय का ज्ञान हो और दुर्घटना होने पर जो प्रारम्भिक उपचार देने की योग्यता रखते हों!

ठीक पहचान के लिए छिलकों का ज्ञान आवश्यक

सांप का रंग उसकी जाति नहीं बताता क्योंकि रंग प्राय: आस पास की चीज़ों के अनुरूप होता है। आकार और डीलडौल से जाति की पहिचान इस लिए नहीं होती कि आयु के साथ-साथ ये बदलते रह सकते हैं। ऊपर की रेखाओं या दूसरे निशानों से भी उस की सच्ची पहिचान इस लिए नहीं हो सकती कि आयु के अनुसार इन में परिवर्तन होता रह सकता है। बच्चों के निशान और रंग कुछ जातियों में युवावस्था से बिलकुल भिन्न होते हैं। इस प्रकार यह विदित होता है कि केवल रूप-रंग और बाहर की विशेषताएं हा किसी सांप की पहिचान करने में गलती भी करा सकती हैं, यद्यपि यह अनुमान करने में इस से मदद तो अवश्य मिलती है कि सांप किस विशेष टाइप का हो सकता है। इस लिए किसी सांप की ठीक-ठीक पहिचान के लिए वैज्ञानिक तरीके से छिलकों की विशेषताएं और उनका क्रम देखना चाहिए।

विषैले और निर्विष सांपों की पहिचान
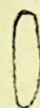
चित्र १—पूंछ ऐसी चपटी हो तो सांप विषैला होता है। समुद्रीय सांपों में ऐसी पूंछ होती है।
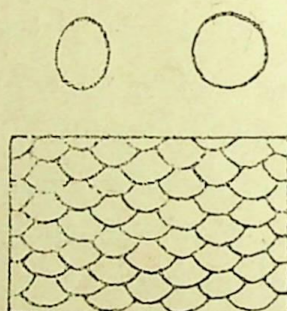
चित्र २—गोल या लगभग गोल पूंछ वाला सांप विषैला और निर्विष दोनों प्रकार का हो सकता है।
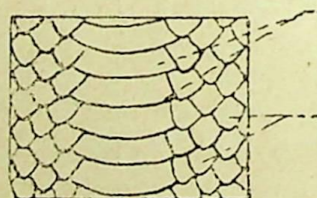
चित्र ३—पेट के सब छिलके छोटे हों तो विषहीन सांप है।

चित्र ४-पेट पर बीच वाला छिलका (प्लेट) बड़ा हो और उसके साथ छोटे छिलके भी हैं तो सांप विषहीन है।
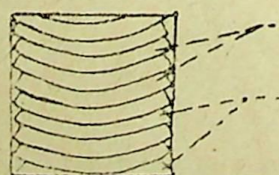
चित्र ५—छिलका (प्लेट) इतना बड़ा हो कि पेट की सारी चौड़ाई तक चला जाय। छोटा छिलका कोई न हो तो सांप विषैला और विषहीन दोनों प्रकार का हो सकता है।

सिंधु-सर्प

पतवार के फलक की तरह पूंछ चपटी और दबी हुई है तो यह सिन्धु-सर्प है और इस लिए ज़हरीला है।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

समुद्रीय सांपों के काटने की घटनाएं समुद्र के बीच में या तट पर ही हो सकती हैं। नदियों और तालाबों में रहने वाले सांप निर्विष हुआ करते हैं।

भूमि के सांप

पूछ गोल हो तो भूमि का सांप है और विषैला तथा निर्विष दोनों प्रकार का हो सकता है।

अधिक भूसर्पों में पेट की प्लेटें चौड़ी होती हैं और ये सांप सविष और विषहीन दोनों तरह के होते हैं। प्लेटें इतनी चौड़ी न हों कि सारे पेट को ढकें परन्तु पेट के बीच में ही रह जांय तो सांप निश्चित रूप से विषहीन है। दुमुही तथा अजगर जैसे डरावने और बड़े सांप इस प्रकार के होते हैं।

मण्डलियों की विशेषताएं

बिना गड्ढे वाले सब मण्डलियों के पेट पर चौड़ी प्लेटें और सिर पर छोटे छिलके होते हैं। ये ज़हरीले सांप हैं। भूमि के किसी दूसरे सांप में ये दोनों विशेषताएं एक साथ नहीं होतीं। मारने में सिर कुचला भी गया है तब भी यह बात पता लग जाती है और इस पहिचान में गलती नहीं लगती। इन दो विशेषताओं वाले सांप के आंख और नाक के बीच में गढ़ा है तो यह गर्तमण्डली होगा। कुछ गर्त मण्डलियों में सिर के त्वक् खण्ड (shields) बड़े होते हैं। गड्ढे से इन की पहिचान हो जाती है।

अजगर और मण्डली में भेद

एक ताज़ा मारा गया मण्डली अपनी प्राकृतिक जगह पर पड़ा है तो आस पास की घास पात से रंग में इतना अधिक मिल सकता है कि उस पर सहसा नज़र न पड़े। अजगर अपेक्षाकृत घने जंगलों में रहता है। इस लिए यदि रसल मण्डली ऐसे घने जंगलों में मिले तो न जानने वाला गलती से उसे अजगर का बच्चा समझ सकता है। रसल मंडली की लम्बाई चार फीट के करीब होती है और आम तौर पर यह वृक्षों पर नहीं पाया जाता। पानी के अच्छे निकास वाली स्थली अथवा पानी के किनारे इन का निवास होता है।

मण्डली की चार विशेषताएं

उड़ती नज़र और लापरवाही से देखने पर इन सांपों का रसल मंडली के साथ भ्रम हो सकता है—अजगर का बच्चा, रसल्स अर्थ स्नेक और रॉयल स्नेक। इस लिए रसल मंडली की निम्नलिखित चार विशेषताएं देखनी चाहिएं—१. पेट पर चौड़ी प्लेटें, २. पीठ तथा सिर पर एक जैसे ही छोटे-छोटे छिलके, ३. पीठ पर काले चकत्तों की तीन शृङ्खलाएं या जंजीरें—बाहर की दो पंक्तियों के चकत्तों के किनारे सफेद होते हैं, और ४. पूछ के नीचे प्लेटें विभक्त होती हैं।

फूर्सा की पहिचान

छिलकों की रचना में रसल मंडली से फूर्सा में भेद यह है कि इस की पूछ के नीचे की प्लेटें पूरी होती हैं, विभक्त नहीं।

गिंडोले जैसे सांप

पीठ के छोटे छिलकों के समान पेट पर भी छोटे छिलके हों, जैसा कि गिंडौले के सदृश अन्धे सांपों में होता है, तो सांप निश्चित रूप से विषहीन है।

फनियर की पहिचान

चौड़ी उदर प्लेटों वाले सांपों में मंडलियों की कोई विशेषताएं न मिलें तो मालूम करें कि यह फणी या कौड़िया तो नहीं। फणी के फन होता है इस लिए सांप यदि जीवित है तो उसे पहिचानने में कभी गलती नहीं होगी। गरदन पर ऐनक का सा या गोल सा जो निशान होता है उस से फनियर पहिचाना जाता है। ऊपर के गरदन के निचले पृष्ठ पर दो तीन पंक्तियां काली प्लेटों की हैं तो यह फनियर है। ओठ का तीसरा शल्क (shield) बहुत बड़ा होता है और नाक तथा आंख के त्वक् खण्ड को छूता है।

मूंगे सांप

मूंगे (कोरल) सांपों में भी यह विशेषता होती है

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

परन्तु उन के शरीर पर मूंगे के से निशान भी होते हैं। ये सांप इतने विषैले नहीं समझे जाते कि मनुष्य को मार सकें।

धामन से शेषनाग का भेद

पूर्व से आये सांपों के बक्सों को जिन में एक से अधिक जाति के सांप चौकन्ने धामन आदि मूषिक भोजी सांपों के साथ ही पैक कर दिये जाते रहे हैं। खोलने में डॉक्टर डिटमार सदा सतर्क रहे हैं। ये निर्विष सांप रूप-रंग में शेष नाग के साथ बहुत अधिक मेल खाते हैं और एक सूक्ष्मदर्शी आंखें ही शेष नागों के बच्चों और इन निर्विष सांपों में भेद कर सकती हैं।

कौड़िये की छह विशेषताएं

नीचे लिखी छह विशेषताएं जिस सांप में विद्यमान हों वह कौड़िया होगा—

१ पेट पर चौड़ी प्लेटें।

२ शल्कों (shields) से आवृत सिर।

३ गोल पूंछ।

४ रीढ़ के ऊपर के छिलके दूसरों से बड़े, सीधी एक रेखा में और करीब-करीब छह पहलू वाले।

५ निचले ओठ के दोनों ओर केवल चार शल्क।

६ पूंछ के नीचे प्लेटें पूरी, विभक्त नहीं।

चौथी और छठी विशेषताएं ही कौड़िये की पहिचान के लिए काफी होती हैं।

शेष सब विषहीन

काटने वाला सांप मण्डली, फणी, कौड़िया या सिन्धु सर्पों में से कोई नहीं है तो समझ लेना चाहिये कि वह निर्विष प्रकार का है, दंश घातक नहीं होगा और व्यक्ति को कुछ हानि नहीं होगी। विषैले सांपों के इन तीन बड़े समूहों की पहिचान में जो बातें ज़रूरी हैं उन्हें स्मरण रखना चाहिए। इन के अतिरिक्त सब सांप, चाहे वे देखने में कितने ही बड़े या भयङ्कर प्रतीत होते हों, निर्विष होते हैं।

विषहीन सांपों के दांत

निर्विष सांपों में ऊपर के जबड़े में दांतों की चार और नीचे के जबड़े में दो पंक्तियां होती हैं। ऊपर के जबड़े की दो पंक्तियां मुख की छत के मध्य में तालू में स्थित होती हैं। शेष दो ऊपर के जबड़े के दोनों किनारों पर होती हैं। इन सांपों में निचले जबड़े के दोनों किनारों पर एक-एक दन्त-पंक्ति होती है।

विषैले सांपों के दांत

विषैले सांपों में ऊपर के जबड़े में तालू के दांतों की पंक्तियां तो होती हैं परन्तु किनारों की दो पंक्तियां नहीं होतीं। उनके स्थान पर दो बड़े विषदन्त होते हैं। विषदन्त दोनों ओर प्रायः एक-एक होता है। परन्तु एक या अधिक फालतू विषदन्त भी हो सकते हैं जो एक थैली में बन्द रहते हैं। ये विशेष रूप से परिवर्तित दांत हैं जो गड्ढेदार या नलिकाकार होते हैं और दूसरे दांतों से प्रायः कुछ बड़े होते हैं। इसलिए यदि एक पिन ऊपर के जबड़े के किनारे पर फेरने से बहुत से दांत अनुभव हों तो बहुत सम्भवतः यह निर्विष सांप है। यदि एक ही दांत अनुभव हो और अपेक्षाकृत बड़ा हो तो सांप ज़हरीला है।

दांत की पहिचान ही अचूक नहीं

सविष और निर्विष सांपों को पहिचानने की यह सुगम विधि मुख्य-मुख्य सांपों की पहिचान में अवश्य मदद देती है परन्तु बहुत अधिक व्यापी रूप में यह लागू नहीं होती। इस प्रकरण में कहे गये ज़हरीले सांपों के प्रमुख चार समूहों की पहिचान में इसका आश्रय लिया जा सकता है परन्तु रूप-विद्या का विस्तृत ज्ञान प्राप्त कर लेने पर इस नियम के अपवाद भी मिल जाते हैं। इसलिए विषैले सांपों की अचूक पहिचान तो अगले पृष्ठ पर दिये गये चार्ट के अनुसार करनी चाहिये।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

वॉल का चार्ट

हज़ारों भारतीय सांपों का व्यवस्थित अध्ययन करने के बाद कर्नल वॉल ने एक बहुत उपयोगी चार्ट बनाया था। इस में उन्होंने प्रमुख ज़हरीले सांपों—सिन्धु सर्पों और भूसर्पों—के चार बड़े समूह की पहिचान बताई है। नीचे दी गई तालिका से विषैले और निर्विष सांपों के भेद का ज्ञान सरलता से हो जायगा।

सांप

पतवार के फलक की तरह पूंछ दबी हुई और चपटी		बेलने की तरह गोल और दबी हुई न हो
|		|
समुद्रीय सांप—विषैला		भूसर्प
|		|
पेट पर छिलके वैसे छोटे हों जैसे पीठ पर	पेट की प्लेटें बड़ी और चौड़ी हों लेकिन पेट की पूरी चौड़ाई को न ढक सकें	पेट की पूरी चौड़ाई को ढकने वाली चौड़ी प्लेटें हों
|	|	
निर्विष	निर्विष	
|	|	|
सिर पर छिलके वैसे छोटे हों जैसे पीठ पर	सिर पर छोटे छिलके या शल्क (shield) हों तथा नाक और आंख के बीच में गड्ढा हो	सिर पर शल्क (Shield) हों
|	|	|
मण्डली - विषैला	गर्तमंडली -- विषैला	|
|	|	
१. ऊपर के ओठ का तीसरा शल्क आंख और नाक के शल्क को छूता हुआ हो	२. पृष्ठवंशीय छिलके तुलना में बड़े हों और पीठ पर पट्टियां या आधे छल्ले हों, पूंछ के नीचे प्लेटें अविभक्त हों	३. नम्बर एक या दो में वर्णित कोई विशेषता न हो
|	|	|
फणी और मूंगे सांप	कौड़िया—विषैला	निर्विष
| विषैला |		
फन होगा　पेट पर मूंगों जैसी धारियों के निशान होंगे		

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

डसे गये स्थान से पहिचान

बहुधा ऐसा होता है कि डसने वाला सांप मारा नहीं जा सका और न ही देखा गया है । ऐसे उदाहरणों में भी दंश की विशेषताओं और दष्ट स्थान की अवस्था को देख कर यह कहना सम्भव होता है कि सांप विषैला था या विषहीन ।

दांतों के निशानों से पहिचान

विषैले सांपों के काटने पर प्रायः दो छिद्र बनते हैं जो लम्बे विषदन्तों के खुबने से बने होते हैं । सांप के मुख की चौड़ाई के अनुसार इन की आपस में दूरी भिन्न-भिन्न होती है । विषहीन सांप के दंश में दांतों की पंक्तियों की तरह बहुत से छिद्र पड़ सकते हैं । ज़हरीले दांतों के छिद्र निर्विष सांपों के दंश से अधिक गहरे हो सकते हैं । बहुत से उदाहरणों में सांप का मुंह डसे जाने वाले अंग को पकड़ने के लिए बहुत छोटा होता है । इस लिए उसे तिरछा हो कर काम करना पड़ता है । इस से दांत फिसल जाते हैं और नियमित दो छिद्र बनाने की बजाय खाल को फाड़ते हुए या खरोंचते हुए निकल जाते हैं जिस से ज़हरीले सांप का दंश प्रायः कर एक घाव सा बन जाता है, और क्योंकि सांप अपनी सुविधा के लिये तिरछा हो कर काटने की कोशिश करता है तो एक ही ओर का दांत गड़ने से छिद्र या खरोंच भी एक ही हो सकती है । छिद्र बहुत स्पष्ट नहीं है तो प्रवर्द्धक ताल से देखना चाहिये ।

दष्ट स्थान पर अन्य लक्षण

डसे हुये स्थान पर वेदना होती है । घाव में विष डाला गया है तो तुरन्त या कुछ ही देर बाद तीव्र वेदना ज़रूर अनुभव होती है और देर तक बनी रहती है । जलन होती है या ऐसा मालूम होता है कि किसी विषैले जीव का डंक लगा हो । सूचिविद्ध किये गये विष के परिमाण के अनुसार पीड़ा की तीव्रता का कम या अधिक होना स्वाभाविक है । जितनी बड़ी मात्रा में विष घाव में गया है उतनी ही तीव्र पीड़ा होगी । फनियर के दंश में वातनाड़ियों के पक्षाघात के कारण कुछ देर बाद वह स्थान सुन्न पड़ने लगता है । ज़हर डाला गया है तो डसा हुआ भाग तुरन्त सूज जायगा । कुछ देर के बाद सोज नहीं हुई तो दंश के साथ विष प्रविष्ट नहीं हुआ या सांप था ही निर्विष ।

छिद्रों से खून रिसना

साधारण सी खरोंच लग जाने पर भी खून बहने लगता है और कुछ मिनिटों के बाद वह स्वयं जम जाया करता है । खून के जमने की यह शक्ति सर्पविष से बहुत कम हो जाती है । छिद्रों पर खून जमने के बजाय लाल से पतले द्रव के रूप में लगातार कुछ घण्टों तक रिसा करता है । निर्विष सांप का दंश है तो खून के जमने से थोड़ी ही देर बाद छिद्र बन्द हो जायगे ।

खाल नीली पड़ जाना

दंश में ज़हर डाला गया है तो इस के चारों ओर का भाग कुछ मिनिटों में हरा या नीला सा और कभी-कभी जामनी हो जायगा, वह हिस्सा चोट खाया हुआ सा मालूम पड़ता है । दंश के चारों ओर त्वचा के नीचे रक्त स्राव हो जाने से ऐसा होता है । विष प्रविष्ट नहीं किया गया तो त्वचा के रंग में ऐसे परिवर्तन—सोज और रक्तस्राव—नहीं होंगे । दूसरे विषैले सांपों की अपेक्षा मण्डली के दंश में ये स्थानिक लक्षण अधिक स्पष्ट होते हैं ।

यह ध्यान में रखना चाहिए कि कस कर बंधे हुए बन्धन में ये लक्षण कुछ हद तक छिप जाते हैं क्योंकि खून का दौरा उसी जगह रुक जाने से बन्धन के नीचे के हिस्से में कुछ सोज हमेशा हो जाया करती है ।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गुरुकुल-समाचार

ऋतु—जाड़ा पूरे जोर पर हैं। प्रातः सायं अच्छी ठंड पड़ रही है। शीत के कारण वन उपवन भी ठिठरे हुए से खड़े प्रतीत होते हैं। प्रभात में गंगा-द्वार से ठाढू के झोंके भी आते रहते हैं। इन दिनों अध्ययन की कक्षाएं सुहावनी धूप में ही लग रही हैं। गुरुकुल के समीप की गेहूं की खेतियां शनैः शनैः पनप रही हैं। अवकाश के क्षणों में ब्रह्मचारी वन-यात्राओं पर जाते रहते हैं। गंगा पार के जंगलों में बेर और आंवलों की बहार है। ब्रह्मचारियों का स्वास्थ्य उत्तम है। सायंकालीन क्रीडाएं नियमित रूप से हो रही हैं।

विशिष्ट अतिथिगण

दीपावली के अवकाश के दिनों में तथा उसके बाद भी अनेक मान्य अभ्यागत गुरुकुल में आते रहे हैं।

पोरबन्दर (सौराष्ट्र देश) के प्रसिद्ध उद्योगपति और व्यापारी श्री सेठ नानजी भाई कालिदास मेहता गुरुकुल के पुराने प्रेमी हैं। उन्होंने दीपावली के पश्चात् गुरुकुल में पधार गुरुकुल का आतिथ्य स्वीकार किया। विद्यालय के सभा-भवन में आपने अपने युगांडा (पूर्व अफ्रीका) के साहसी और स्वावलम्बी जीवन के अनेक शिक्षाप्रद प्रसंग सुना कर ब्रह्मचारियों को लाभान्वित किया। गुरुकुल के कार्य-कलाप को निहार आपने बहुत प्रसन्नता प्रकट की।

डेलेवीयर युनिवर्सिटी (न्यूयार्क) के दर्शन-शास्त्र के उपाध्याय प्रो० फिलिप उस दिन गुरुकुल में पधारे। आपने गुरुकुल के पाश्चात्य दर्शन के उपाध्याय श्री प्रो० नन्दलाल जी खन्ना के साथ दार्शनिक विषयों पर विचार विमर्श किया। इसके अतिरिक्त भारतीय आयुर्वेद के दार्शनिक तत्व के विषय में गुरुकुल के चरकोपाध्याय श्री दिवाकरम् जी के साथ बड़े जिज्ञासुभाव से नाना प्रकार की चर्चाएं की। आप मानसिक उपचार और योग-चिकित्सा पर विशेष रूप से दिलचस्पी रखने वाले विद्वान् प्रतीत हुए।

इनके अतिरिक्त विभिन्न प्रान्तों के विविध क्षेत्रों में काम करने वाले कुछ एक विद्वान् सज्जनों ने पिछले दिनों गुरुकुल का अवलोकन किया और गुरुकुल की कार्य प्रवृत्तियों के प्रति अपना स्नेह प्रकट किया। इनमें निम्न-लिखित महानुभावों के नाम उल्लेखनीय हैं।

श्री त्र्यंबक रघुनाथ देवगिरीकर (मराठी चित्रमय जगत् मासिक पत्र के संपादक और भारतीय संसद के सदस्य) चित्रशाला प्रेस पूना के संचालक श्री दामोदर त्र्यंबक जोशी। सार्वजनिक कॉलेज सूरत के प्रस्तोता (रजिस्ट्रार) श्री ब्रजरत्नदास अकड़। मुम्बई के गुजराती दैनिक पत्र वंदेमातरम् के उपसंपादक श्री वल्लभदास अकड़। लखनऊ के पुरातत्व संग्रहालय के अध्यक्ष श्री मदनमोहन नागर। मथुरा के पुरातत्व-संग्रहालय के अध्यक्ष श्री कृष्णदत्त वाजपेयी।

आचार्य रामदेव स्मृति दिवस

गत ९ दिसम्बर को प्रातःकाल ९ बजे विद्यालय के प्रांगण में आचार्य प्रियव्रत जी के सभापतित्व में कुलवासियों ने आचार्य रामदेव-दिवस मनाया। ब्र० जयवीर, प्रो० लालचन्द जी, तथा प्रो० सुखदेव जी के भाषण हुए। प्रो० लालचन्द जी ने श्री रामदेव जी के जीवन पर प्रकाश डालते हुवे कहा कि वह गुरुकुल के प्रचार में तथा कार्य करने में सदा अथक रहे। उन का जीवन एक सच्चा ब्राह्मण-जीवन था। लोभ उन्हें छू तक नहीं गया था। इस के पश्चात् प्रो० सुखदेव जी ने आचार्य रामदेव जी की जीवनी पर बोलते हुए कहा कि यदि हम गुरुकुल के कुलपिता स्वामी श्रद्धानन्द जी के बाद किसी को दूसरा स्थान दे सकते हैं तो वह निःसंदेह आचार्य रामदेव जी का ही है। अन्त में आचार्य प्रियव्रत जी ने अपने बहुत से अनुभव आचार्य रामदेव जी के साथ रहने के बताये और कहा कि विद्याप्रेम उनका एक व्यसन सा बन गया था जिस प्रकार हम

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

भूख से व्याकुल होकर भोजनालय की ओर दौड़ते हैं ठीक उसी प्रकार आचार्य रामदेव जी यात्रा में पुस्तक खरीदने की ओर दौड़ते थे। वह कई विषयों के ज्ञाता थे। महात्मा गांधी जी सन् १६१४ में उनसे प्रथम मिलने पर ही उनकी कार्य-क्षमता और योग्यता से प्रभावित हो गये थे। गुरुकुल और आर्यसमाज की सेवा में ही उन्होंने अपने खून से पानी बना दिया था। भारत में राष्ट्रिय-शिक्षा के उन्नायकों में उनका महत्वपूर्ण स्थान था।

स्वर्गीय लाला नारायणदत्त जी

गुरुकुल के परमभक्त, आर्यसमाज के पुराने कर्मठ वीर और दिल्ली राजधानी की अनेक सार्वजनिक संस्थाओं के प्राण रूप श्री लाला नारायणदत्त जी ठेकेदार का ८२ वर्ष की परिपक्व आयु में निधन-वृत्तान्त सुन कर समस्त कुलवासी बहुत दुःखी हुए। गुरुकुल के स्थापना-काल से ही प्रशंसित लाला जी उसके परम सहायक और परिपोषक रहे। वर्षों तक वे गुरुकुल की स्वामिनी सभा (आर्य प्रतिनिधि सभा पञ्जाब) की अन्तरंग सभा के तथा गुरुकुल की विद्या सभा सदस्य चले आ रहे थे। उनके अनुभव, दूरदर्शिता और सुझाव संकट के समयों पर बहुत उपयोगी होते थे। गुरुकुल के प्रतिष्ठापक कुलगुरू स्वामी श्रद्धानन्द जी के वे परम मित्र और सहकर्मी थे। अखबारों की प्रसिद्धि से दूर रह कर और बिना बोले बहुत काम करने वाले आप निरीह समाज सेवक थे। समस्त कुलवासियों ने आपकी स्मृति में एकत्र होकर आपकी सेवाओं के प्रति श्रद्धाञ्जलियां अर्पित करके आपके आत्मीयजनों तथा विशाल मित्रगणों के प्रति सहानुभूति के भाव प्रकाशित किए हैं। सत्य ही गुरुकुल के लिए आपकी क्षति अपूरणीय है।

योगीराज श्री अरविन्द की स्मृति में

पांडीचेरी के परमहंस योगीप्रवर श्री अरविन्द के निर्वाण का समाचार रेडियो द्वारा ज्ञात होते ही गुरुकुल विश्वविद्यालय में शोक की छाया छा गई। अगले दिवस इस दिवंगत महाप्राण पुरुष के सम्मान में गुरुकुल के सब विभाग बन्द रहे। प्रातःकाल नौ बजे विद्यालय के आँगन महती सभा के रूप में समवेत होकर समस्त कुलवासियों ने श्री अरविन्द के दिव्य और प्रतिभावान् जीवन कार्यों के प्रति श्रद्धा के फूल चढ़ाए। गु० कु० के उपाचार्य श्री प्रो० लालचन्द जी ने विस्तार से उनके कार्यकलाप का परिचय देते हुए बतलाया कि प्राची और प्रतीची की ज्ञान-ज्योति से श्री अरविन्द का जीवन आलोकित था। भारतीय संस्कृति के इस महान ज्योतिर्धर ने एक महान् सन्त, महान् दार्शनिक, महान् साहित्यकार और महान् योगी के रूप में जगत् के लिए एक बड़ा भारी दाय प्रदान किया है। वे स्वयं दिव्य जीवन पथ के यात्री थे और जगत् को उसी पन्थ की ओर ले जाने के लिए पांडीचेरी के शांत एकांत आश्रम में बैठ कर गत चालीस वर्षों से साधना कर रहे थे। जगत् के चोटि के विद्वानों को उन्होंने अपनी प्रतिभा से आकृष्ट किया था। वे भारतीय-संस्कृति के अन्यतम प्रतिनिधि और उपदेष्टा थे। उनके यशोदीप्त जीवन और कार्यों के प्रति सारा भारत नतमस्तक है। श्री प्रो० सुखदेव जी और आचार्य श्री प्रियव्रत जी ने भी श्री अरविन्द की जीवन-साधना पर प्रकाश डालते हुए अपनी श्रद्धांजलियां अर्पित की।

पुरातत्व संग्रहालय

मथुरा के पुरातत्व संग्रहालय के अध्यक्ष श्री कृष्णदत्त वाजपेयी ने गुरुकुल के पुरातत्व संग्रहालय का अवलोकन करके निम्नलिखित रूप में अपने विचार प्रकट किए हैं—

आज मुझे गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के संग्रहालय को देखने का अवसर प्राप्त हुआ। यह संग्रहालय लगभग दस मास पूर्व ही अस्तित्व में आया

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

है। परन्तु इतने अल्पकाल में ही इसका जैसा रूप बन गया है वह इस की भावी उन्नति का द्योतक है।

संग्रहालय में प्राचीन वास्तुकला, मूर्तिकला, चित्र कला एवं मुद्राओं आदि के संकलन एव प्रदर्शन की व्यवस्था की गई है। कांगड़ा शैली के जो चित्र यहां प्रदर्शित हैं उन्हें देखकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई। आशा है इन चित्रों के संग्राहक महोदय पं० गंगाप्रसाद मिश्र स्थायी रूप से इन चित्रों को संग्रहालय के लिए प्रदान करने की कृपा करेंगे। कनखल की प्राचीन दीवालों पर मैंने अब से लगभग सवा सौ वर्ष के कुछ भित्ति चित्र देखे। इनमें से अनेक चित्र अच्छी कोटि के हैं। उनके प्रतिचित्र बनवा कर संग्रहालय के उत्साही अध्यक्ष ने यहां लगवा दिये हैं। इनके अतिरिक्त उन्होंने भारत की प्राचीन लिपियों के उद्भव एवं विकास सम्बन्धी चार्ट, कुछ शिला-लेखों की छापें तथा प्राचीन भारत के कई भौगोलिक मानचित्र भी संग्रहालय की दीवालों पर यथा-स्थान लगवा दिये हैं, जो विद्यार्थियों के लिए विशेष उपयोगी हैं।

सिक्कों का संग्रह थोड़े से ही काल में काफी अच्छा बन गया है। इस में पं० ठाकुरदत्त जी द्वारा प्रदत्त सिक्कों की संख्या सब से अधिक है।

पूज्य सरदार को श्रद्धांजलि

भारतीय स्वाधीनता संग्राम के महान् सेनानी सरदार श्री वल्लभभाई पटेल का दुःखद निधन समाचार गुरुकुल शिक्षा नगरी के निवासियों ने वज्राघात की तरह अनुभव किया। अपने इस प्यारे नेता के महाप्रयाण के विस्तृत समाचार जानने के लिए छोटे छोटे ब्रह्मचारी तक भी रेडियो वाले घरों की ओर दौड़ने लगे। समाचार मिलते ही गुरुकुल के समस्त विभाग सरदार श्री के सन्मान में बन्द कर दिए गए। विषाद की गहरी छाया कुल पर छाई हुई थी। सबके मन दुःख के आवेग से भरे हुए थे। समस्त कुलवासियों ने सायंकाल ४ बजे सार्वजनिक सभा के रूप में एकत्र होकर निम्नलिखित प्रस्ताव द्वारा इस दिवंगत राष्ट्र पुरुष के प्रति अपनी भावभीनी श्रद्धांजलियां अर्पित कीं --

गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी के समस्त ब्रह्मचारी, उपाध्याय और कार्यकर्ता नूतन भारत के महान् निर्माता, भारतीय गणराज्य के उपप्रधान मन्त्री, स्वाधीनता महासंग्राम के महान सेनानी और राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के अन्यतम सहकर्मी तथा दाहिने हाथ माननीय सरदार श्री वल्लभ भाई पटेल के एकाएक देहावसान पर अतिशय खेद अनुभव करते हैं। हमारे राष्ट्र की मुक्ति और उन्नति के लिए जीवन पर्यन्त जागजागरूक प्रहरी की भांति सदा सन्नद्ध रह कर कार्य करने वाले इस महान् राष्ट्र पुरुष की सुदीर्घ सेवाओं के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए उनके आत्मीय जनों, सहकर्मियों और मित्रों के साथ अपनी गहरी समवेदना और सहानुभूति प्रकाशित करते हैं। और परम पिता परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि वह उस महान् आत्मा को शांति और सद्गति प्रदान करे।

शिक्षापटल का चुनाव

गुरुकुल विश्वविद्यालय के शिक्षापटल का निर्वाचन प्रति तीन वर्ष बाद होता है। इस वर्ष शिक्षा पटल का नया चुनाव होना है। नियमों के अनुसार स्नातकों के दो प्रतिनिधि शिक्षापटल में होते हैं। उन सब स्नातकों को प्रतिनिधि निर्वाचन करने के लिए मत देने का अधिकार है, जिन्हें स्नातक बने कम से कम तीन वर्ष व्यतीत हो चुके हों। वाचस्पति परीक्षोत्तीर्ण स्नातकों के लिए यह तीन वर्ष की बाधा नहीं है। आप जिन दो स्नातकों को अपना प्रतिनिधि निर्वाचित करना चाहें, उनके नाम यथा सम्भव शीघ्र ही प्रस्तोता कार्यालय में भेजने की कृपा करें। ३१ दिसम्बर तक नाम प्रस्तोता कार्यालय में पहुँच जाना चाहिए।

नोट – निम्नलिखित स्नातक अन्य प्रकार से शिक्षापटल के सदस्य हो चुके हैं, अतः अपना वोट देते हुए इस का ध्यान रखना चाहिए।

सर्व श्री पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति, पं० प्रियव्रत वेदवाचस्पति, पं० सुखदेव जी वेदान्त वाचस्पति, पं० दीनदयालु जी शास्त्री, पं० यशःपाल जी सिद्धान्तालङ्कार, पं० भद्रसेन जी आयुर्वेदालंकार, पं० विश्वनाथ जी विद्यालङ्कार।

मुद्रक—श्री हरिवंश वेदालंकार। गुरुकुल मुद्रणालय, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।
प्रकाशक—मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी की
विशेष गुणदायक औषधियां

च्यवनप्राश हाइपो

च्यवनप्राश में कैल्शियम व सोडियम आदि नवीन रासायनिक पदार्थ डालकर यह योग तय्यार किया गया है। खांसी, क्षय, निबलता दमा आदि में रामबाण है और शरीर वृद्धि के लिये उत्तम रसायन है।

मूल्य ३।) पाव।

सिद्ध मकरध्वज

स्वर्ण, कस्तूरी आदि बहुमूल्य वस्तुओं से तैयार किया गया है। सब प्रकार की निर्बलता को दूर करके शरीर में शक्ति व स्फूर्ति देता है व नया जीवन लाता है।

मूल्य ३।।) माशा, ४५) तोला।

बादाम पाक

बादाम, पिस्ता व अन्य गुणदायक वस्तुओं से तैयार किया गया है। स्वादिष्ट, बलवर्धक पाक है। मस्तिष्क व शारीरिक दुर्बलता को दूर कर शक्ति देता है।

मूल्य ४) पाव।

गुरुकुल चाय

जड़ी-बूटियों के योग से बनी देशी चाय है। सुख व स्वास्थ्य के लिये परिवार में इसका प्रयोग कीजिये। थकावट, हल्के बुखार, खांसी, जुकाम में तुरन्त लाभ दिखाती है।

मूल्य ।-) छटांक, १=) पाव।

बसन्त कुसुमाकर

सोना, चान्दी, मोती आदि से तैयार की गई यह औषधि बहुमूत्र और मधुमेह रोग में विशेष गुणकारी है। शरीर की नसों की निबलता को हटा कर समर्थ और बलवान बनाता है। मूल्य ३) माशा, ३६) तोला

चन्द्रप्रभा वटी

शिलाजीत, लोह भस्म, वंशलोचन आदि लाभदायक चीजों से तैयार की गई यह औषधि अनेक रोगों को दूर करके शरीर में नई शक्ति लाती है। खून की कमी, जिगर की निबलता, बवासीर तथा विशेषकर प्रमेह व स्वप्नदोष आदि में लाभदायक है।

मूल्य १) तोला, ४) छटांक।

महालोहादि रसायन

इसके सेवन से शरीर में नया रक्त पैदा होता है। प्रत्येक ऋतु में सेवन करने योग्य उत्तम औषधि है।

मूल्य ६) तोला।

द्राक्षासव

बलवर्धक, स्वादिष्ट पेय है। शारीरिक व मानसिक थकावट को दूर करके स्फूर्ति व शक्ति देता है।

मूल्य १।) पाव, २।) पौंड।

गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी (हरद्वार)

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गुरुकुल पत्रिका

माघ
२००७

वर्ष ३
अङ्क ६

विद्ययाऽमृतमश्नुते ।
हरिद्वारीय गुरुकुल विश्वविद्यालय

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय - हरिद्वार

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

वर्ष ३
अङ्क ६

गुरुकुल-पत्रिका

माघ
२००७

व्यवस्थापक
श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति
मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी।

सम्पादक
श्री सुखदेव विद्यावाचस्पति
श्री रामेश बेदी आयुर्वेदालंकार।

इस अङ्क में

अगले अंकों में

भारतीय दृष्टि से मौलिक अध्ययन की आवश्यकता	श्री जयचन्द्र विद्यालंकार
सात मर्यादा	आचार्य विद्यानन्द
मांसाहारी वनस्पतियां	श्री रामकुमार गोयल
सातवाहन युग (३०० ईस्वी पूर्व) की वास्तुकला	श्री हरिदत्त वेदालंकार

अन्य अनेक विश्रुत लेखकों की सांस्कृतिक, साहित्यिक व स्वास्थ्य सम्बन्धी रचनाएं।

मूल्य देश में ४) वार्षिक
विदेश में ६) वार्षिक

एक प्रति
छः आने

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

ॐ

गुरुकुल-पत्रिका

[गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की मासिक पत्रिका]

मुझको तेरा एक सहारा !

ऋषिः – मेध्यातिथिप्रियमेधौ । देवता—इन्द्रः । छन्दः—गायत्री । स्वरः—षड्जः

न घेमन्यत् आपपन वज्रिन् अपसो नविष्टौ ।
तवेदु स्तोम चिकेत ॥

ऋक—८. २. १७. ॥ साम उ०—१. २. ३. ॥ अथर्व—२०. १४. २. ॥

[वज्रिन्] हे वज्रवाले ! मैं (अपसः) कर्म के (नविष्टौ) प्रारम्भ में (अन्यत् घा ईम्) अन्य किसी की भी न आपपन नहीं स्तुति करता (तव इत् उ) केवल तेरी ही (स्तोमं) स्तुति करना (चिकेत) जानता हूँ ।

हे मेरे क्षण-क्षण के मंगल ।
मुझको तेरा एक सहारा ॥

'आदि' करूँ प्रत्येक कार्य का,
लेकर पावन नाम ।
मुझको तेरी ही स्तुति प्यारी,
औरों से क्या काम ॥

जान गया हूँ तेरी ही तो,
दासी है सब शक्ति ।
सभी कार्य पूरे करती है,
देव ! भक्त की भक्ति ॥

तेरे हाथों वज्र महाबल,
जिसने सब असुरों को मारा ।
हे मेरे क्षण-क्षण के मंगल,
मुझको तेरा एक सहारा ॥

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

—श्री वेदव्रत वेदालङ्कार ।

प्रारम्भिक शिक्षा और सरकार

श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति

[१]

शिक्षा प्राप्त करना स्वतन्त्र देश के प्रत्येक नागरिक का अधिकार है।

नागरिक को जो शिक्षा दी जाय, वह ऐसी होनी चाहिए जो उसे शारीरिक और मानसिक दृष्टि से बलवान और चरित्रवान् व्यक्ति बनाये। ऐसा नागरिक ही राष्ट्र के लिए हितकारी हो सकता है, अन्य नहीं।

इस प्रकार संक्षेप में हम कह सकते हैं कि हमारे राष्ट्र की शिक्षा के सम्बन्ध में जो प्रश्न सब से पहले और अधिक ध्यान देने योग्य हैं वे दो हैं। एक यह कि देश के प्रत्येक नागरिक को शीघ्र से शीघ्र कैसे शिक्षित किया जाय, और दूसरा यह कि शिक्षा की प्रणाली में कौन से परिवर्तन किये जांय, जिससे वह शारीरिक, मानसिक और नैतिक दृष्टि से आदर्श नागरिक तैयार कर सके ?

इस लेख में मैं पहले प्रश्न पर विस्तार से विचार करूंगा।

[२]

स्वतन्त्र भारत के संविधान में जहां राज्य के र्त्तव्यों का उल्लेख किया गया है, वहां नागरिकों को शिक्षा देने का विशेष रूप से निर्देश है। कोई सरकार सभ्य और प्रजातन्त्री कहलाने के योग्य नहीं यदि वह अपने सब नागरिकों को कम से कम अक्षरों और अङ्कों के पढ़ने लिखने की शिक्षा नहीं देती। अंग्रेज़ी सरकार से हमारी एक बहुत भारी शिकायत यह थी कि उसने अन्य उन्नत देशों की भांति भारत में अनिवार्य और निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था नहीं की। अंग्रेजी सरकार की सर्वसाधारण भारतवासियों को अशिक्षित रखने की नीति उनकी विस्तृत साम्राज्य नीति का परिणाम था। उनका विचार था और वह ठीक भी था कि जिस दिन सर्वसाधारण भारतवासी शिक्षा पा जायंगे, उस दिन भारतवर्ष इङ्गलैंड के राजमुकुट में लगा हुआ हीरा नहीं रह सकेगा, वह स्वतन्त्र हो जायगा। प्रातः स्मरणीय श्री गोपाल कृष्ण गोखले ने १९१० में अनिवार्य शिक्षा का बिल उपस्थित करते हुए अंग्रेजी सरकार पर यह आरोप लगाया था कि वह जान-बूझ कर भारतवासियों को अशिक्षित रखती है।

स्वराज्य की स्थापना के साथ वह सब कुछ बदल जाना चाहिए था। यदि अंग्रेज शासकों का हित इसमें था कि सर्वसाधारण भारतवासी अशिक्षित रहें, तो वर्तमान सरकार का हित इसमें है कि देश का प्रत्येक नागरिक शीघ्र से शीघ्र साक्षर हो जाय। विशेषतः वयस्क मताधिकार ने यह अत्यन्त आवश्यक कर दिया है कि शिक्षा के सार्वदेशिक प्रचार में क्षणमात्र का भी विलम्ब न किया जाय। वर्तमान संविधान के अनुसार देश का प्रत्येक ऐसा निवासी, जो २१ वर्ष या उससे अधिक आयु का है, मत दे सकेगा। जो व्यक्ति निपट अनपढ़ है, वह नागरिकता और उसके कर्तव्यों को नहीं समझता, वह ठीक मत क्या दे सकेगा ? और यह दिन में सूर्य की तरह स्पष्ट सत्य है कि जहां समझदार मतदाता स्वतन्त्र राज्य का आधारस्तम्भ समझा जाता है वहां नासमझ मतदाता जनतन्त्री शासन का घोर शत्रु बन सकता है। मुसोलिनी और हिटलर जैसे तानाशाह अनाड़ी मतदाताओं की कृपा से ही उत्पन्न होते हैं। जब पढ़े-लिखे मूर्खों के प्रजातन्त्र राज में लोकमत के बल से तानाशाह बन सकते हैं तो भारत जैसे कम शिक्षा वाले देश के करोड़ों अनपढ़ वोटरों के गलत मत प्रदान का कैसा बुरा परिणाम हो सकता है, यह आसानी से समझा जा सकता है।

[३]

चिन्ता की बात यह है कि जिस शिक्षा की हमारे देश के नवोद्भूत प्रभुत्व सम्पन्न जनतन्त्र शासन की रक्षा और ठीक संचालन के लिये इतनी अधिक आवश्यकता है, अभी तक हमारी सरकार उस ओर बहुत ही कम ध्यान दे सकी है। यदि हम कहें कि कुछ भी

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

ध्यान नहीं दे सकी, तो यह अत्युक्ति न होगी।

पहले शिक्षितों की संख्या पर दृष्टि डालिये। हमारा चरम लक्ष्य यह है कि थोड़े से थोड़े समय में शिक्षा के योग्य आयु वाला प्रत्येक भारतवासी शिक्षित हो जाय। इस लक्ष्य को हमारी सरकार ने सदा स्वीकार किया है। अभी तो हमारी यह हालत है कि हमारे देश में साक्षरों की संख्या १५ प्रतिशत से अधिक नहीं है, १०० में से यदि १५ साक्षर हैं तो ८५ अनपढ़ हैं। स्वराज्य की स्थापना से पहले १९४४ में भारत सरकार की ओर से सार्जेंट रिपोर्ट नाम की जो रिपोर्ट प्रकाशित हुई थी, उसमें यह विचार प्रकट किया गया था कि चालीस वर्षों में भारतवर्ष को सौ प्रतिशत शिक्षित बनाया जा सकेगा। उसके पश्चात् आल इण्डिया एज्युकेशन कान्फ्रेंस की जो बैठक हुई, उसने ४० वर्षों के समय को बहुत लम्बा समझा और भारत को शत प्रतिशत शिक्षित करने के लिए १० वर्षों की योजना बनाई। उस योजना को बने तीन वर्षों से अधिक समय व्यतीत हो गया है। कान्फ्रेंस ने १० वर्षों का जो समय दिया था, उसका तीसरा भाग व्यतीत हो चुका है। यदि लक्ष्य तक पहुँचना हो तो अब तक ८५ प्रतिशत अशिक्षित भारतवासियों में से न्यून से न्यून २८ प्रतिशत का शिक्षित हो जाना आवश्यक था, परन्तु आप यह जान कर आश्चर्यित होंगे कि अब देश में शिक्षितों की संख्या में अढ़ाई तीन प्रतिशत से अधिक वृद्धि नहीं हुई। यदि इसी गति से देश में शिक्षा का विस्तार हो तो सारे देश के शिक्षित हो जाने में ३० वर्ष लग जाना असम्भव नहीं। इस अशिक्षा के क्या कुपरिणाम हो सकते हैं, यह आप इस बात से समझ सकते हैं कि हमारे देश में राष्ट्रपति और धारासभाओं के सदस्यों के चुनाव हर पांचवें वर्ष हुआ करेंगे। ३० वर्षों तक देश के अशिक्षित या अर्धशिक्षित रहने का अभिप्राय यह होगा कि ६ चुनावों में अशिक्षित मतदाता भाग लेंगे। क्या हमारा नवोद्भूत स्वतन्त्र राज्य-विधान अर्धशिक्षितों द्वारा ६ निर्वाचनों के धक्कों को सह सकेगा? वह बीच ही में विशीर्ण तो न हो जायगा?

[४]

कहा जा सकता है कि सरकार शिक्षा प्रचार की ओर ध्यान तो दे ही रही है, और क्या करे?

सरकार किसी कार्य में कितना ध्यान दे रही है, उसका अनुमान वार्षिक बजट से लगाया जा सकता है। सरकार का ध्यान जिस कार्य की ओर जितना अधिक होगा, उसका बजट भी उतना ही अधिक होगा। सरकार के प्रवक्ता बार २ कहते हैं कि देश की सुरक्षा की ओर हमारा पूरा ध्यान है, तभी तो हम राज्य की वार्षिक आय का आधे से अधिक भाग सेना पर खर्च कर रहे हैं। बजट में व्यय के मदों की तुलना करते हुए आसानी से समझा जा सकता है कि सरकार किस कार्य का कितना महत्व समझती है।

इस दृष्टि से देखें तो आप आश्चर्यित रह जायंगे। स्वतन्त्र भारत के वार्षिक बजट में शिक्षा के लिये इतनी कम राशि रखी जाती है कि उन्नत देशों से उसकी तुलना करने पर लज्जा से सिर झुक जाता है। हमारे देश के केन्द्रीय बजट में सम्पूर्ण व्यय की राशि में शिक्षा के लिये व्यय किये जाने वाला व्यय .९ (दशमलव नौ) अर्थात् १ प्रतिशत से भी कम है। प्रान्तों में शिक्षा के लिए जो व्यय किया जाता है, यदि उसे भी बीच में मिला लें तो वह केन्द्र और प्रान्तों के सम्मिलित व्यय-बजट का चार प्रतिशत भाग बनता है। इन आंकड़ों की क्षुद्रता को आप तब समझ सकेंगे जब अन्य देशों के आंकड़ों से उनकी तुलना करें। मैं कुछ आंकड़े नीचे देता हूं—

मिश्र	२० प्रतिशत
फ्रांस	१२ प्रतिशत
इङ्गलैंड	१२ प्रतिशत

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

चीन (केन्द्र)	२५ प्रतिशत
,, प्रान्त	२५ प्रतिशत
,, जिला	३५ प्रतिशत
भारत केन्द्र और प्रान्त मिला कर)	४ प्रतिशत
भारत (केवल केन्द्र)	.६ प्रतिशत

इन संख्याओं को देखिये और बताइये कि क्या हम अपने देश के ८५ प्रतिशत निवासियों के साथ न्याय कर रहे हैं ?

[५]

कुछ समय पूर्व यह समझा गया था कि मौलिक (बेसिक) शिक्षा के प्रयोग से देश की शिक्षा सम्बन्धी समस्या हल हो जायगी। गत पांच छः वर्षों के अनुभव ने उस आशा को निर्मूल कर दिया है। इस दृष्टि से मौलिक शिक्षा उपयुक्त सिद्ध हुई है कि वह बालक के मस्तिष्क के साथ ही साथ आंखों और हाथों को शिक्षित करती है। वह बालक की सर्वाङ्गीण शिक्षा में सहायक होती है, परन्तु मौलिक शिक्षा के उद्भावक महात्मा गान्धी जी की यह आशा पूरी नहीं हो सकी कि वह मौलिक शिक्षा देने वाले शिक्षणालय अपना खर्च आप निकाल लिया करेंगे। कुछेक प्रान्तों और केन्द्रों को छोड़ कर प्रायः सभी जगह मौलिक शिक्षा कुछ मंहगी सिद्ध हुई है। कम से कम निरक्षरता के मार्जन में उससे सहायता नहीं मिल सकती।

[६]

वयस्क मात्र में शिक्षा प्रचार के लिये एक नई आकर्षक योजना बनाई गई है, जो शिक्षा सम्बन्धी काफिलों की स्कीम कहलाती है। तीन चार लारियों में लद कर शहर से कुछ अफसर और उनके साथी गांव में जाते हैं। उनके साथ सिनेमा और रेडियो की मशीनें रहती हैं। गांव में जा कर वे कबड्डी, वालीबॉल आदि खेलों और कुश्तियों की व्यवस्था करते हैं, और रेडियो सिनेमा आदि द्वारा मनोरंजन और प्रचार करते हैं। उसे 'शिक्षा मेला' कहा जाता है। प्रायः एक और कभी दो दिन तक ऐसा मेला शहर में जमा होता है गये हुए महानुभाव घरों को वापिस चले जाते हैं, और मान लेते हैं कि गांव वालों में शिक्षा के प्रति गहरी रुचि उत्पन्न हो गई है। मैंने स्वयं गांव वालों से भली प्रकार पूछताछ की है और मेले के फलों को जांचा है। वस्तुतः शिक्षा प्रचार के सिलसिले में इन मेलों का प्रभाव नगण्य ही होता है। गांव वाले इन मेलों को मेला ही समझते हैं, और चाहते हैं कि वैसा मेला फिर से हो। उनकी मेला देखने की रुचि को यदि शिक्षा के प्रति रुचि समझा जाय, तो भ्रान्ति ही होगी। केवल दिल्ली में ही कारावान योजना पर खर्चने के लिये १३ लाख से अधिक राशि की स्वीकृति ली गई है। इस योजना से अन्य कुछ भी लाभ हो सकते हैं, परन्तु इससे देश भर को १० वर्षों में शिक्षित कर देने में कोई विशेष सहायता मिलने की आशा रखना व्यर्थ है।

मेरे इस लेख का उद्देश्य यह दिखाना है कि हमारी सरकार देश में सार्वजनीन प्रचार के लिये इस समय जो यत्न कर रही है, वह इतना क्षुद्र है कि उसे 'नहीं' के बराबर कह सकते हैं। यह स्थिति हमारे जनतन्त्र राज्य के जीवन के लिये अत्यन्त भयानक है। वयस्क मताधिकार और जनता की निरक्षरता—दो चीजें देर तक साथ-साथ नहीं रह सकतीं।

●

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

डेढ़ सौ वर्ष की आयु

श्री रजनीकान्त मोदी

अनादिकाल से मनुष्य समय की उन शक्तियों से लड़ता आ रहा है जो उस के शरीर के विसर्जन और विनाश में कारणभूत होती हैं। ऋग्वेद के एक वैदिक द्रष्टा का मन्त्र है : 'तू सौ शरद, सौ हेमन्त, सौ वसन्त जी सकता है।' उपनिषद् के एक ऋषि कहते हैं : 'जगत के सारे काम करते हुए, मनुष्य को सौ वर्ष जीने की कामना करनी चाहिए।

मनुष्य में दीर्घायुष्य की यह कामना क्यों है? आजकल मनुष्य की उम्र सत्तर बरस तक पहुँचती है तो वह सौ बरस जीना चाहता है। यदि हम सौ बरस जीने लग जांय, तो चाहेंगे कि डेढ़ सौ बरस जियें। विज्ञान के अनुसार मनुष्य को प्राकृतिक रूप से कम से कम डेढ़ सौ बरस जीना ही चाहिए, क्योंकि प्रत्येक पशु-प्राणी अपनी परिपक्वता की उम्र से पांच गुनी उम्र तक जीता है। मनुष्य की परिपक्वता की उम्र तीस बरस है, सो उस की प्राकृतिक मृत्यु १५० बरस की उम्र से पहिले नहीं होनी चाहिए। पर यदि दो एक पीढ़ियों में वैज्ञानिक की यह मानवी आयुष्य विस्तार को १५० बरस तक ले जाने की निश्चयात्मक आशा सफल हो जाती है तो यह निश्चित है कि फिर हम उस से भी अधिक जीने की कामना करने लगेंगे। असल बात तो यह है कि हम मौत को चाहते ही नहीं हैं; हम तो चिरकाल जीवित रहना चाहते हैं। हम समय के सारे आक्रमणों से खम ठोक कर लड़ना चाहते हैं। थोड़े में यह है कि हम अमरता चाहते हैं।

जब हम निराशा की पीड़ना से बेहद त्रस्त हो उठते हैं। तो कभी-कभी हम मरना चाहते हैं और यह सोचते हैं कि ऐसी यन्त्रणा की जिन्दगी से तो मौत ही भली। लेकिन इस तरह की भावना-मात्र मन की एक क्षणस्थायी हालत होती है, जो अधिक समय टिकती नहीं है। वह हमारी स्वाभाविक स्थिति नहीं है, वह तो बाहर की परिस्थिति द्वारा हमारे भीतर ठूंस दी जाती है। अन्तरंग भाव से मूलतया हम जीवन को प्यार करते हैं और मौत से डरते हैं।

प्रत्येक प्राणी रोग, क्षय और मरण के विरुद्ध लड़ता है। मनुष्य की जिन्दगी के हर पल में, सोते जागते, सचेत, अचेत हर अवस्था में यह संघर्ष चलता ही रहता है। हमारे सचेतन दैहिक मानस का इस संघर्ष से ना कुछ सा ही वास्ता होता है। क्योंकि वह संघर्ष हमारी सत्ता के किसी अव-मानसिक स्तर पर चलता रहता है। आयुष्य और जीवन संरक्षण की शक्तियां प्राण के स्तर पर विनाश और मरण की शक्तियों के विरुद्ध कटिबद्ध होकर खड़ी रहती हैं। सारा युद्ध वहीं पर होता है। मानवीय शरीर के रासायनिक उत्थ न-पतन प्राण की ही क्रिया-प्रक्रिया है।

यहीं वह सवाल उठता है जो लोग अक्सर पूछा करते हैं। क्या बुढ़ापा और मौत उतने ही अनिवार्य हैं और अटल हैं जितने कि वे माने जाते रहे हैं? जब से मानवता इस धरती पर प्रकट हुई है। मानवों ने जन्म लिया है, बूढ़े हुए हैं और फिर जीवन से विदा हो गए हैं। और इस चीज ने बुढ़ापे और मौत की अनिवार्यता के भाव मनुष्य में बहुत प्रबल कर दिया है। पर इस का मतलब यह नहीं होता कि मनुष्य के भीतर जिस अमरता की भावना, धारणा और कल्पना उस की सहज वृति के भीतर से ही होती रही है। वह भविष्य में भी प्राप्त नहीं की जा सकेगी। उपनिषद् कहते हैं:— 'हमें मृत्यु में से निकल कर अमरता में प्रवेश करना है।' मनुष्य की सत्ता के गम्भीरतम तल देश में से उठी आ रही यह अमरता की उत्कण्ठा क्या चीज है। जो अब तक के सारे संचित अनुभवों के विरोधी प्रमाणों के बावजूद भी अनिरुद्ध और अपराजित बढ़ती ही चली जा रही है।

श्री अरविन्द कहते हैं:— 'मृत्यु प्रकृति द्वारा जीवन

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

से पूछा जाने वाला प्रश्न है; वह जीवन को मौत के द्वारा याद दिलाती है कि उस ने अभी अपने आप को पाया नहीं है। यदि मौत का आक्रमण न होता तो प्राणी सदा एक अपरिपूर्ण जीवधारी के रूप में ही बन्दी हो रहता। मौत के तकाजे से मनुष्य के भीतर पूर्ण जीवन का भाव-विचार जागता है। और तब वह उस के साधन-सम्भावनाओं की खोज करता है। ऊपर जो परस्पर विरोधी लगने वाला तथ्य प्रकट किया गया है उसका समाधान यही है। जो भी अब तक हमने दैहिक अमरता प्राप्त नहीं की है। फिर भी हमारा लक्ष्य वही है, पर वह हमारा तात्कालिक लक्ष्य नहीं बल्कि चरम लक्ष्य है। आत्मा के अनवरत जीवन में मरण तो मात्र एक घटना है। चूंकि हम मौत को मानते हैं इसी से वह हमारे पास आती है। यह हमारे भीतर की संचित विरासत है जो इन सारे युगयुगान्तरों को पार करती आ रही है। पर इस मान्यता को हमें उलट देना होगा।

पर साथ ही हमें यह भी याद रखना है कि मात्र भौतिक देह की आयुष्य को किसी हद तक बढ़ा देने से फिल हाल अमरता प्राप्त नहीं हो सकती। यहां इस सम्बन्ध में भी श्री अरविन्द ने कहा है:—"यदि भौतिक विज्ञान या देवी-तन्त्र-विज्ञान शरीर जीवन की आयुष्य को अनिश्चित दीर्घकाल तक बढ़ाने के आवश्यक साधन परिस्थितियां उत्पन्न भी कर लेंगे तब भी यदि मनुष्य अपनी आन्तरिक विकसित सत्ता की अभिव्यक्ति के उपयुक्त अपने देह को भी नहीं बना लेता, या देह उस के अनुरूप नहीं हो जाता तो आत्मा उस शरीर को छोड़ने का कोई और उपाय खोज निकालेगी और वह देहान्तर कर ले जायगी। मौत के दैहिक और भौतिक कारण ही उस के एक मात्र और सच्चे कारण नहीं है; नवीन सत्ता के विकास की आध्यात्मिक आवश्यकता ही मृत्यु के अन्तरतम का सच्चा कारण है।" ऐसी ही किसी आन्तरिक आवश्यकता से प्रेरित होकर ही आत्मा यहां भौतिक चोले को धारण करती है और वैसी ही किसी दूसरी भिन्न प्रकार की आन्तरिक आवश्यकता से प्रेरित हो कर वह फिर उसे त्याग भी देती है। मौत और बुढ़ापे के दैहिक-भौतिक कारण तो मात्र बाहर दीखने के ही हैं। और अपने आन्तर प्रयोजन के लिए निरर्थक अथवा अनुकूल हो गए वर्तमान भौतिककोष का विसर्जन करने के लिए और अन्ततः उसे फेंक देने के लिए आत्मा इन कारणों को अपने उपाय बनाता है। जो भी शरीर अपने विकास और विनाश में अभी भी निम्न प्रकृति के नियमों का पालन करता है। पर इसी लिए यह आवश्यक नहीं कि भविष्य में भी वह सतत उन का पालन करता ही जाये और निरन्तर वह निम्न-प्रकृति का ही गुलाम बना रहे। निश्चेतन के भीतर से होने वाले विकास में शरीर और आत्मा के बीच इस प्रकार का सम्बन्ध एक अनिवार्य व्यवस्था थी। पर अब इस सम्बन्ध को उलटा जा सकता है और आत्मा वह हो सकती है। जो होना उस का सदा का अभिप्रेत रहा है—अर्थात् वह इस भौतिक देह की। और उसे आस्तित्व में थामें रखने वाली प्राण-शक्तियों की सच्ची स्वामिनी हो सकती है। यदि शरीर जड़ और हठाग्रही हो कर विकास का निरोध करे तो आत्मा अपनी इच्छा-शक्ति द्वारा उस पर काबू बैठा सकती है। मन चाहे काल तक शरीर को जीवित रखने के लिए तब वह सीधे जीवनोद्गम से ही जीवनी-शक्तियां प्राप्त कर सकता है। और इस के लिए आधुनिक वैज्ञानिक द्वारा बताये हुए पथ्यापथ्य, हार्मोन्स आदि पदार्थों पर निर्भर करना अब उसके लिए आवश्यक नहीं रह जाता है। अन्ततः आत्मा सत्ता के प्रत्येक जीवाणु में भगवान की चेतना और आनन्द के सारभूत द्रव्य को पिण्डदान कर सकती है; यह सारभूत द्रव्य अपने मौलिक रूप में ही अमर है। श्री अरविन्द के योग ने जिस पूर्ण और प्रगतिशील रूपान्तर का प्रत्यक्ष किया है उसका यही अन्तिम चरण है। इस

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

योग क्या है ?

श्री अरविन्द

योग का अर्थ है ज्ञान के लिये, प्रेम के लिये या कर्म के लिये परमात्मा से अन्तर्मिलन। योगी उससे अपना साक्षात् संबन्ध जोड़ता है जो मनुष्य के भीतर और उसके बाहर सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् है। वह अनन्त से अपना स्वर मिलाये रहता है, वह ईश्वर की शक्ति के लिये प्रणालिका बन जाता है जिससे वह शक्ति अपने आपको शान्त दया या सक्रिय परोपकार के द्वारा संसार में प्रवाहित कर सके। जब मनुष्य अपने ऊपर से स्वार्थी 'स्व' की केंचुली उतारकर ऊँचा उठता है और दूसरों के लिये तथा दूसरों के सुख दुःख का साथी बन जाता है;—जब वह पूर्णता से तथा प्रेम और उत्साह से काम करता है, पर फल की चिंता छोड़ देता है और न तो विजय के लिये उत्सुक रहता है, न ही पराजय से भयभीत होता है; जब वह अपने सब काम भगवान् को अर्पण कर देता है और प्रत्येक विचार, उच्चार और आचार को भगवान् की वेदी पर उत्सर्ग कर देता है; जब वह भय और घृणा, द्वेष और ग्लानि और राग से मुक्त हो जाता है और प्रकृति की शक्तियों की भांति, उतावली न करते हुये, विश्राम न लेते हुये, अटल तौर पर तथा पूर्णता से काम करता है; जब वह इस विचार से ऊंचा उठ जाता है कि वह शरीर या हृदय या मन है या इनका जोड़ है और अपने आपको तथा सच्ची आत्मा को पा लेता है; जब वह अपनी अमरता और मृत्यु की अवास्तविकता से अभिज्ञ हो जाता है; जब वह ज्ञान के उदय को अनुभव करता है और अपने आपको स्थितिशील अनुभव करता है तथा दिव्य शक्ति को अपने मन, अपनी वाणी, अपनी इन्द्रियों और अपने सब अंगों द्वारा निर्बाध कार्य करते हुये अनुभव करता है; वह जो कुछ स्वयं है और जो कुछ भी वह करता है या जो कुछ भी उसके पास है उस सबको इस प्रकार सबके स्वामी, मनुष्य-जाति के प्रेमी और सहायक पर उत्सर्ग करके जब वह उसमें स्थिर रूप से. निवास करता है और दुःख विक्षोभ तथा मिथ्या उत्तेजन से चलायमान नहीं होता तभी वह योग युक्त कहलाता है और वही है योग।

प्रकार के पिण्डदान या मूर्तीकरण द्वारा बाह्य देह आन्तरिक आत्मा के लिए उपयुक्त कारण बन जायगा; तब देह एक उपलब्ध मनोवैज्ञानिक पूर्णत्व का ही भौतिक प्रतिबिम्ब हो जायगा। तब आत्मा के लिये अपने इस पार्थिव वाहन को त्यागना आवश्यक नहीं रह जायगा।

यह सच है कि ये सारी बातें वैज्ञानिक आयुष्य-विजय-विद्या से बहुत परे चली जाती हैं। पर यह एक अशुभ लक्षण ही है कि वैज्ञानिक अपने ही दायरे और दिशा में आज मानवीय आयुष्य–विस्तार को बढ़ाने का प्रयत्न कर रहे हैं और आयु की इस सीमा से आगे बढ़ जाने को प्रयत्नशील हैं जिसे हम में से अधिकांश मनुष्य की प्राकृतिक और अनिवार्य आयु-मर्यादा मानते हैं। युग-युगों से पश्चिमी जगत् में सत्तर वर्ष की आयु की और पूर्व में 'शत शरद' की आयु की जो धारणा अब तक चली आई है, उसे आज हम लांघ गये हैं और उसके स्थान पर विज्ञान द्वारा १५० वर्ष की आयु की सम्भावना की धारणा हमारी चेतना में दृढ़तर हो गई है। यह वैज्ञानिक प्रगति भी सही दिशा में ही एक अगला कदम है। क्योंकि यह आवश्यक है कि हमारी मौत की मान्यता को समाप्त हो जाना चाहिये। मनुष्य जाति के भीतर की अन्तश्चेतना ही उसे वह प्रेरणा देती है जिससे वह उन पुरानी बद्धमूल धारणाओं और आदतों से मुक्त होकर आगे बढ़ता है, जो उसकी मानसिक बनावट में बहुत गहरी भिदी हुई होती है। भगवान् की ओर विकास का अनिवार्य अगला चरण भरने से पहले मानस की प्रगतिशील दर्शन चेतना को इस प्रकार की बद्धमूल धारणाओं और अवरोधों से मुक्त कर ही लेना होगा।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

भारतीय कला की विशेषताएं

श्री हरिदत्त वेदालंकार

भाव-व्यंजना की प्रधानता

भारतीय कला अपनी कतिपय विशेषताओं के कारण अन्य देशों की कलाओं से मौलिक रूप से भिन्न है। उसका मर्म जानने के लिए इनका परिज्ञान आवश्यक है। उसकी पहली विशेषता भाव-व्यंजना की प्रधानता है। कला, आकृति, प्रतिकृति और अभिव्यक्ति पर बल देने से प्राय: तीन बड़े हिस्सों में विभक्त की जाती हैं। जिस कला का उद्देश्य मुख्य रूप से सौंदर्यमयी आकृतियां बनाना होता है, वह आकृति-प्रधान कहलाती है। जिसमें रमणीय प्राकृतिक घटनाओं और मानवीय रूपों की यथार्थ प्रतिकृति बनाकर उन्हें सदैव के लिए स्मरणीय बना दिया जाता है, वह प्रतिकृति-प्रधान होती है और जिसमें किसी अमूर्त भाव को कलात्मक कृति द्वारा अभिव्यक्त किया जाय वह अभिव्यक्ति-प्रधान कला कही जाती है। चीनियों ने पहले प्रकार पर अधिक ध्यान दिया, उनकी कृतियां देखते ही हम उनके सौन्दर्य की प्रशंसा करने लगते हैं, यूनानी तथा पश्चिम की आधुनिक कला प्रतिकृति-प्रधान हैं, उसमें नर-नारी के आदर्श रमणीय रूप को हू बहू वैसे ही पत्थर में खोदने तथा चित्रपट पर अंकित करने का सफल और सराहनीय प्रयास किया गया है। पहली दृष्टि में ही उनकी कलाकृतियां प्रेक्षक को अपनी अङ्गसौष्ठव-प्रधान रमणीयता से प्रभावित कर लेती हैं। किन्तु भारतीय रचनाओं में ऐसी बात नहीं हैं, उनमें बाह्य सौन्दर्य दिखाने के बजाय आन्तरिक भावों के अंकन को बहुत महत्त्व दिया गया है। इसमें बाहरी सादृश्य की ओर नहीं, किन्तु अन्तस्तल के आलेखन की ओर अधिक ध्यान दिया जाता है। भारतीय कलाकारों ने भगवान् बुद्ध के अंग-प्रत्यंग गठन, मांस-पेशियों के सूक्ष्म चित्रण, मछलीदार भुजाओं के अंकन की अपेक्षा उनके मुख-मंडल पर निर्वाण और समाधि के दिव्य आनन्द को प्रदर्शित करने में अधिक हस्त कौशल प्रदर्शित किया है। भारतीय कला में प्रतिकृति-मूलक कृतियों का सर्वथा अभाव हो, सो बात नहीं; किन्तु प्रधानता भाव-व्यंजना की ही रही है। काव्य की भांति कला की आत्मा भी 'रस' ही मानी जाती थी। रस की अभिव्यक्ति ही कला का चरम लक्ष्य था। इसके अभाव में यूनानी तथा पश्चिमी कला चित्ताकर्षक होते हुए भी निष्प्राण और निर्जीव है. भारतीय कला कई बार उतनी यथार्थ और नयनाभिराम न होते हुए भी प्राणवान् और सजीव है।

धर्मतत्त्व की मुख्यता

दूसरी विशेषता भारतीयकला में धर्मतत्त्व की प्रधानता है। प्राचीन काल में कला धर्म की चेरी थी, इसके सभी अंगों का विकास धर्म के आश्रय से हुआ। मूर्तिकारों ने प्रधान रूप से महात्मा बुद्ध तथा पौराणिक देवी देवताओं की मूर्तियां बनाईं, वास्तुकला का विकास स्तूपों, विहारों और मन्दिरों द्वारा हुआ, चित्रकला का प्रधान विषय धार्मिक घटनाएं थीं। भारत में कला कला के लिए नहीं, किन्तु आत्मस्वरूप के साक्षात्कार या उसे परमतत्त्व की ओर उन्मुखीकरण के लिए थी। भारतीय कलाकारों के अनुसार विषयोपभोग में प्रवृत्त कराने वाली कला कला नहीं है, जिससे आत्मा परम तत्त्व में लीन हो, वही श्रेष्ठ कला है।[1] मूर्तिकला का प्रधान ध्येय उपासकों के हित के लिए भगवान् की प्रतिमा बनाना था (साधकानां हितार्थाय ब्रह्मणो रूप कल्पनम्) यही हाल अन्य कलाओं का था। किन्तु भगवान् असीम, अपरिमेय और अनन्त है इनकी सान्त प्रतिमा कैसे बन सकती है। अतः मूर्ति केवल उनकी प्रतीक है। भगवान् के विविध रूप हैं, अतः उनके प्रतीक भी विभिन्न होंगे। भारतीय कला इस

१ विश्रान्तिर्यस्य सम्भोगे सा कला न कला मता।
लीयते परमानन्दे ययात्मा सा परा कला॥

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

प्रतीकात्मकता से ओत-प्रोत है। कलाकारों का प्रधान ध्येय निगूढ़ दार्शनिक तत्त्वों को मूर्त रूप प्रदान करना था। इसीलिए इनके बारे में कहा जाता है कि वे पहले धर्मवेत्ता और दार्शनिक थे और बाद में कलाकार। उनका प्रधान उद्देश्य सूक्ष्म धार्मिक भावनाओं को स्थूल रूप देना था। उन्होंने सुन्दर कलाकृतियों का निर्माण किया, किन्तु आध्यात्मिक सत्य की अभिव्यक्ति के लिए ही। मध्य युग के योरोपीय कलाकारों की भांति भारतीय शिल्पियों ने जो कुछ बनाया, प्रायः भक्ति भाव से अनुप्राणित होकर ही। अजन्ता आदि के चित्रों के निर्माता वहां रहने वाले बौद्ध भिक्षु थे। उन्हें राजाओं को प्रसन्न करने के लिए या अपना पेट भरने के लिए नहीं किन्तु अपने चैत्यों और विहारों को अलंकृत करने के लिए कलात्मक सृष्टि करनी थी।

अनामता

भारतीय कला की तीसरी विशेषता अनामता है। कहा जाता है कि नाम और लौकैषणा की भावना महापुरुषों की अन्तिम दुर्बलता होती है। किन्तु अधिकांश भारतीय कलाकार इससे मुक्त थे। उन्होंने चित्रों या मूर्तियों पर अपने नाम की अपेक्षा कृति की उत्कृष्टता से अमर होना श्रेयस्कर समझा। नाम तो वहां दिया जाता है, जहां आत्माभिव्यक्ति और विज्ञापन की भावना प्रबल हो, उनका उद्देश्य तो दार्शनिक तथा धार्मिक भावनाओं की, तथा भगवान् की महिमा की अभिव्यंजना था, अतः उसमें भाव प्रधान और नाम गौण था। यही कारण है कि अजन्ता जैसे प्रसिद्ध चित्रों के निर्माताओं का नाम हमें ज्ञात नहीं है।

भारतीय कलाओं का विकास

सब भारतीय कलाओं का मूल वेद माना जाता है किन्तु वैदिक युग की मूर्ति, चित्र, वास्तु आदि कलाओं के कोई प्राचीन अवशेष नहीं मिलते। इसका प्रधान कारण यह है कि उस समय इमारतें, मन्दिर, मूर्तियां प्रायः लकड़ी की बनी होती थीं, भारत के आर्द्र जलवायु और दीमक के प्रभाव से इनका कोई निशान नहीं बचा। भारतीय कला के आरम्भिक इतिहास पर अन्धकार का पर्दा पड़ा हुआ है, वह पहली बार ईसा से २७०० वर्ष पूर्व मोहेञ्जोदड़ो में तथा दूसरी बार इसके २४०० वर्ष बाद तीसरी श० ई० पूर्व में अशोक के समय उठता है। दोनों कालों की कला अत्यन्त प्रौढ़ है। उसने कला-मर्मज्ञों को विस्मय में डाल दिया है। मोहेञ्जोदड़ो का ऊंचे ककुद वाला बैल तथा अन्य पशु इतने सुन्दर हैं कि मार्शल के शब्दों में इनकी कला को किसी भी तरह प्रारम्भिक नहीं कहा जा सकता। हड़प्पा की दो मूर्तियां देखकर तो वे इतने विस्मित हुए थे कि उन्हें पहले यह विश्वास ही नहीं हुआ कि ये मूर्तियां प्रागैतिहासिक काल की हो सकती हैं। इनकी गर्दन इतनी सुन्दर है कि पुरानी दुनिया में यूनानी युग से पहले वैसी रचना अन्यत्र कहीं नहीं पाई जाती। चौबीस शताब्दियों के अन्धकार के बाद हमें फिर मौर्य युग में भारतीय कला अत्यन्त परिपक्व और विकसित रूप में दिखाई देती है। अशोक स्तम्भ के शीर्ष पर बने सिंह उस समय की कला की दृष्टि से बेजोड़ हैं। मौर्य युग से ही मूर्ति तथा वास्तु कला के उदाहरण प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होते हैं, अतः इस युग से प्रत्येक काल के कला सम्बन्धी विकास पर संक्षिप्त प्रकाश डाला जायगा।

मौर्य युग

भारतीय कलाओं का विस्तृत इतिहास सम्राट् अशोक के समय से उपलब्ध होता है। उसने बौद्ध धर्म अंगीकार करने के बाद देश में कला को पूरा प्रोत्साहन दिया, धर्म-प्रचार के लिए बहुत अधिक स्मारक बनवाये। बौद्ध अनुश्रुति के अनुसार उसे ८४ हज़ार स्तूप बनाने का श्रेय दिया जाता है, वर्तमान समय में उसके उपलब्ध स्मारकों को चार भागों में बांटा जाता है। १. स्तूप, २. स्तम्भ, ३. गुहाएं, ४. राज-प्रासाद।

स्तूप

महात्मा बुद्ध की पवित्र धातु (भस्म) पर तथा

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

उनके सम्पर्क से पवित्र स्थानों पर वह स्तूपों का निर्माण करते थे। स्तूप उलटे कटोरे के आकार का पत्थरों या ईंटों का ठोस गुम्बद होता था। वैदिक काल से 'शव' को (बिना जलाये या जला कर) तोप कर जो तूदा बनाने की रीति चली आती थी, यह उसी का किंचित् विकास मात्र था। प्राचीन स्तूपों से मौर्यस्तूपों में यह विशेषता थी कि इनमें वह रक्षा के लिए चौखूंटी बाड़ लगा देते थे, आदरार्थ एक छत्र भी ऊपर स्थापित करते थे, चारों ओर के घेरों को प्रदक्षिणा का रूप दे देते थे और इस घेरे में, चारों दिशाओं में चार तोरण या द्वार बना देते थे। पहले कहा जा चुका है कि बौद्ध परम्परा के अनुसार अशोक ने ८४ हजार स्तूप बनवाये, उसके नौ सौ वर्ष बाद युआन च्वांग ने भारत-भ्रमण करते हुए उसके सैंकड़ों स्तूप इस देश में देखे। वर्तमान समय में इसका सर्वोत्तम स्मारक सांची का स्तूप है। इसके तोरण तो शुंग युग के हैं किन्तु मूल स्तूप इसी युग का है।

स्तम्भ

अशोकीय वास्तु के सुन्दरतम और विशिष्ट स्मारक स्तम्भ हैं। इस समय तेरह स्तम्भ दिल्ली, सारनाथ, मुजफ्फरपुर, चम्पारन के तीन गांवों, रुम्मिनदेई (बुद्ध की जन्मभूमि लुम्बिनी वन) तथा सांची आदि स्थानों में पाये जाते हैं। ये सब चुनार के लाल पत्थर के बने हुए हैं और दो भागों में हैं। लाट या प्रधान दण्डाकार हिस्सा तथा स्तम्भ शीर्ष या परगहा। समूची लाट और समूचा परगहा एकाश्मीय या एक ही पत्थर से तराशा हुआ है। दोनों पर ऐसी ओप (पालिश) है जिस पर से आंख भी फिसलती है। २२०० वर्ष बीत जाने पर भी ऐसा प्रतीत होता है कि यह पालिश अभी की गई है. दिल्ली वाले स्तम्भ में बढ़िया पालिश के कारण इतनी चमक है कि दर्शक उसे धातु का समझते रहे हैं। १७ वीं शती में टोम कोरियेट तथा १६ वीं शती में बिशप हेबर ने इसे पीतल का गढ़ा हुआ समझा था। यह ओप या पालिश भारत की प्रस्तर कला की ऐसी विशेषता है जो दुनिया में अन्य कहीं नहीं मिलती इसकी प्रक्रिया अब तक अज्ञात है और यह अशोक के पौत्र सम्प्रति के बाद से भारत से लुप्त हो जाती है। लाट गोल और नीचे से ऊपर तक चढ़ाव-उतारदार है। इस दृष्टि से चम्पारन के लौरिया नन्दगढ़ की लाट सब से सुन्दर है, नीचे उसका व्यास ३५½ इञ्च है और ऊपर २२½ इञ्च। लाटों की ऊंचाई तीस से चालीस फुट तक और भार १३५० मन (५० टन) तक है। इन भीमकाय एकाश्मीय स्तम्भों की गढ़ाई, खान से अपने अपने ठिकाने तक ढुलाई, इन स्थानों पर इनका खड़ा करना और इन पर परगहों का ठीक-ठीक बैठाना इस बात का प्रमाण है कि अशोकयुगीन शिल्पी और इञ्जीनियर कारीगरी में किसी अन्य देश के शिल्पियों से कम नहीं हैं। इन लाटों के शीर्ष या परगहों पर मौर्य मूर्ति कला अपने उत्कृष्ट रूप में मिलती है। इन पर शेर, हाथी, बैल या घोड़े की मूर्तियां बनी होती हैं। इनमें सारनाथ का शीर्ष सर्वश्रेष्ठ है। इसे कला मर्मज्ञों ने भारत में अब तक खोजी गई इस ढंग की वस्तुओं में सर्वोत्तम बताया है। महात्मा बुद्ध के धर्मचक्र प्रवर्तन के स्थान पर इस स्तम्भ को खड़ा किया गया था। इसके शीर्ष पर चार सिंहों की मूर्तियां हैं और उनके नीचे चारों दिशाओं में चार पहिये धर्म-चक्र-प्रवर्तन के सूचक हैं। पहले इन सिंहों पर भी एक बड़ा धर्म-चक्र था। 'सिंह पीठ से पीठ सटाये चारों दिशाओं की ओर दृढ़ता से बैठे हैं। उनकी आकृति भव्य, दर्शनीय और गौरवपूर्ण है, जिसमें कल्पना और वास्तविकता का सुन्दर सम्मिश्रण है। उनके गठीले अंग-प्रत्यंग सम विभक्त हैं और वे बड़ी सफाई से गढ़े गए हैं। उनकी फहराती हुई लहरदार केसर का एक एक बाल बड़ी सूक्ष्मता और चारुता से दिखाया गया है। इनमें इतनी नवीनता है कि यह आज के बने प्रतीत होते हैं।' इन मूर्तियों की कलाविदों ने मुक्त-कंठ से प्रशंसा

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

को है। स्मिथ ने लिखा है कि 'संसार के किसी भी देश की प्राचीन पशु-मूर्तियों में इस सुन्दर कृति से उत्कृष्ट या इसके टक्कर की चीज़ पाना असम्भव है।' सर जान मार्शल के शब्दों में 'शैली एवं निर्माण-पद्धति की दृष्टि से ये भारत द्वारा प्रसूत सुन्दरतम मूर्तियां हैं और प्राचीन जगत् में इस प्रकार की कोई वस्तु नहीं जो इनसे बढ़कर हो। भारत ने स्वतन्त्रता प्राप्त करने के बाद इन्हीं मूर्तियों को अपना राजचिह्न बनाया है। रामपुरवा (जि० चम्पारन) के स्तम्भ-शीर्ष पर बनी वृष मूर्ति बड़ी सजीव और ओजस्वी है।

गुहाएं

अशोक तथा उसके पौत्र दशरथ ने भिक्षुओं के निवास के लिये गुहा-गृहों को खुदवाया था। ऐसी गुहाएं गया के १६ मील उत्तर में बराबर नामक स्थान पर मिली हैं। ये बहुत ही कड़े तेलिया पत्थर से न केवल भगीरथ परिश्रम से काटी गई है किन्तु घुटाई या वज्र-लेप द्वारा 'शीशे की भांति' चमकाई भी गई हैं। यहां पुरानी ओप की कला अपनी पराकाष्ठा तक पहुँची हुई है।

प्रासाद

पाटलिपुत्र में अशोक ने बहुत ही भव्य-राज प्रासाद बनवाये। ये सात-आठ शतियों तक बने रहे। पांचवीं शती में फाहियान ने इनके निर्माण-कौशल की प्रशंसा करते हुए लिखा था कि ये मनुष्यों के बनाये हुए नहीं हो सकते, इनकी रचना देवताओं ने की है। सम्भवतः ये महल लकड़ी के थे, अतः खुदाई में इनके भग्नावशेषों के अतिरिक्त कुछ नहीं मिला।

नीरवता और वाक्

विश्व में दो महान शक्तियां हैं, नीरवता और वाक्। नीरवता सब प्रकार की तैयारी करती है, वाक् उत्पन्न करती है। नीरवता कार्य करती है, वाक् कार्य के लिये प्रेरणा प्रदान करती है। नीरवता बाधित करती है, वाक् अनुरोध करती है। संसार की सब अपरिमेय और अचिंत्य प्रक्रियायें अपने आपको अंदर ही अंदर पूर्ण बनाती हैं, उस गंभीर महामहिम नीरवता के अन्दर जो शब्द के कोलाहलपूर्ण और भ्रांति-जनक उपरीतल से आवृत होती है—ऊपर होती है अनगिनत तरंगों की हलचल, नीचे समुद्र की अथाह अदम्य जल राशि। मनुष्य तरंगों को देखते हैं, वे किंवदंती और सहस्रों आवाजों को सुनते हैं, और इनसे वे भविष्य की दिशा का और ईश्वरीय संकल्प के मर्म का निर्णय कर लेते हैं; परन्तु दस में से नौ अवस्थाओं में वे निर्णय गलत होते हैं। इसीलिये यह कहा जाता है कि इतिहास में सदा अप्रत्याशित घटना ही घटित होती है। परन्तु अप्रत्याशित घटना घटित नहीं होगी अगर मनुष्य अपनी आंखें उपरितल पर से हटा सकें और अंदर पैठकर सारतत्व को देख सकें, अगर वे प्रतीतियों को एक तरफ रखने और उनका भेदन कर उनसे परे निगूढ़ और प्रच्छन्न सद्वस्तु तक पहुँचने का अभ्यास करलें, अगर वे जीवन के शोर को सुनना बन्द कर दें और उसकी जगह उसकी नीरवता को सुनें।

—श्री अरविन्द।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

हठयोग

श्री स्वामी कृष्णानन्द

आजकल हठयोग को जो सर्व प्रियता तथा प्रतिष्ठा प्राप्त हो रही है उसका कारण इस योग से होने वाले शारीरिक लाभ हैं। अतः इस समय प्रायः इसी उद्देश्य को दृष्टि में रख कर लोग हठयोग की क्रियाओं को करते हैं। इस लिए इस से होने वाली आत्मिकोन्नति की उपेक्षा हो जाती है। हठयोग से शारीरिक स्वास्थ्य रक्षा के अतिरिक्त नीचे लिखे आध्यात्मिक लाभ होते हैं —

प्राण का सुषुम्ना में प्रवेश, प्राणलय, बिन्दु संरक्षण, ऊर्ध्वरेतस, इन्द्रिय विजय, मनः स्थिरता, मनोंविजय, मनोनाश, सूक्ष्म दिव्य दृष्टि, अन्य अलौकिक शक्तियां, अखंड वाङ् मनसागोचर आनन्दोपलब्धि, व्यष्टि आत्मा का समष्टि आत्मा से संयोग, आत्म दर्शन। पाश्चात्य संसार के डाक्टरों तथा वैज्ञानिकों ने हठयोग की प्राणायाम आदि क्रियाओं का जो खण्डन किया है, उसको वैज्ञानिक रीति के अनुसन्धानों तथा सैद्धान्तिक अनुशीलन से अयुक्त सिद्ध करने के प्रयत्न एक प्रकार से श्रेष्ठ हैं; क्योंकि इससे वैज्ञानिकों का उन्हीं की रीति तथा युक्ति से समाधान हो सकता है। परन्तु ये हठयोग की क्रियाएं साधारण वैज्ञानिक बुद्धि की खोज अथवा अनुसन्धान नहीं हैं। और न ही ये क्रियाएं वैज्ञानिक क्रम से अनेक परीक्षणों के पश्चात् भूलों के क्रमशः सुधार से संस्कार को प्राप्त होने वाले परिणाम ही हैं। ये तो जगत् गुरु ईश्वर की ओर से; जो कि सब ज्ञानों की खान है; मनुष्य को प्राप्त हुई हैं। हठयोग की विभिन्न क्रियाएं, तीन बन्ध, खेचरी आदि मुद्राएं, अनेक प्रकार के प्राणायाम और यहां तक कि सब प्रकार के आसन की ऐसी विशेषताओं से युक्त हैं कि मानवीय बुद्धि के निरीक्षण, विवेचन तथा सामञ्जस्य आदि उपायों से मनुष्य कभी भी किसी प्रकार इन को प्राप्त नहीं कर सकता। प्राणायाम की तुलना पाश्चात्य देशों के सांस लेने की व्यायाम से नहीं की जा सकती। इन दोनों प्रक्रियाओं में तो समानता नाम मात्र की भी नहीं है। प्राणायाम आदि हठयोग की प्रक्रियाओं का लक्ष्य तो कुण्डलिनी को जागृत करना तथा अन्य चक्रों में प्राण की गति की अनुभूतियां हैं यन्त्रों से सज्जित विज्ञान की सीमा से सर्वथा बाहर हैं। ये सूक्ष्म अनुभूतियां सूक्ष्म शरीर से सम्बन्ध रखती हैं और भौतिक जगत् में मानवीय शक्ति से जो सूक्ष्म से सूक्ष्म वीक्षण यन्त्र बन सकने की संभावना हो सकती है, उस यन्त्र में भी ऐसी सामर्थ्य कभी नहीं हो सकती कि वह इन को दिखा सके। कुण्डलिनी के जागृत होने पर हठयोग की अनेक क्रियाओं का अपने आप (स्वतः ही) साधक के शरीर से होने लग जाना इस बात का प्रबल प्रमाण है कि ये ईश्वरीय देन हैं। साधक की कुण्डलिनी के जागृत होने पर जब कि वह और किसी साधन में सलग्न होता है तो ऐसा होने लगता है कि योग के अन्य अंगों की क्रियाएं उसके शरीर से स्वतः ही होने लग जाती हैं जबकि साधक को न तो इन क्रियाओं का पूर्व कोई ज्ञान होता है और न ही वह इसके लिए प्रयत्न करता है। यह इन क्रियाओं के ईश्वरीय प्रदत्त होने का एक स्पष्ट प्रमाण है। अतः ये योग वैज्ञानिक अनुसंधानों के आश्रित नहीं हैं और न ही इनका उद्देश्य शारीरिक होता है। ये तो किसी ऊंची ऐसी शक्ति की प्रेरणाएं तथा ज्ञान हैं जो कि सर्वशक्ति, सर्व सामर्थ्य तथा पूर्ण ज्ञान से युक्त हैं।

हठयोग और भौतिक विज्ञान में संघर्ष

इस लिए भौतिक विज्ञान तथा उसके समर्थकों का साधारणतया यह अधिकार नहीं है कि वे इस क्षेत्र में प्रवेश करें और किसी प्रकार के अपने निर्णयों को इस योग पर भी थोपने का यत्न करें। यदि दो क्षेत्रों के सिद्धान्तों में कुछ संघर्ष हो तो ईश्वर प्रदत्त ज्ञान का अधिक आदर और महत्व होना चाहिए और यदि

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

धैर्य पूर्वक उदार हृदय से अनुसंधान को जारी रखा जाए तो इसका अवश्य यह परिणाम होगा कि मानवीय बुद्धि की सीमित शक्तियों के द्वारा निर्मित सिद्धान्तों और धारणाओं में सुधार करना पड़ेगा और भौतिक विज्ञान को यह स्वीकार करना पड़ेगा कि सूक्ष्म आध्यात्मिक क्षेत्र में उसकी गति नहीं हो सकती; परन्तु आजकल तो बात ही उलटी है।

हठयोग विषयक हमारी धारणाओं तथा क्रियाओं में सुधार की आवश्यकता

वे समाज, सभाएं तथा व्यक्ति जो कि हठयोग के प्रचार में रुचि रखते हैं यदि नीचे लिखी बातों को उचित महत्त्व दें तो वर्तमान काल के मनुष्य समाज की जो कि भौतिकता की प्रवृत्तियों से अपने सर्व क्षेत्रों की शान्ति को बुरी तरह से खो चुका है; विशेष सेवा कर सकेंगे।

१ ये क्रियाएं मनुष्य के शारीरिक क्षेत्र से ऊंचे क्षेत्रों में प्रभाव उत्पन्न करती हैं। और क्योंकि इनका मुख्य उद्देश्य ही मनुष्य की आध्यात्मिक उन्नति करना है, अतः इनका उपयोग केवल शारीरिक रोग निवृत्ति आदि स्थूल शारीरिक उद्देश्यों की पूर्ति में ही नहीं होना चाहिए। इनका उपयोग उन आध्यात्मिक परिवर्तनों के लिए होना चाहिए जिनका संक्षिप्त वर्णन ऊपर किया गया है।

२ इन क्रियाओं का आधार वे सूक्ष्म नियम हैं जो कि सूक्ष्म जगतों में कार्य करते हैं।

३ ये ईश्वरीय ज्ञान के भण्डार हैं, इन्हें मानवीय भौतिक विज्ञान के सिद्धान्तों की अपेक्षा अधिक आदर तथा महत्व मिलना चाहिये।

४ यदि पाश्चात्य वैज्ञानिक इन क्रियाओं का खण्डन करें तो उन्हें वैज्ञानिक युक्तियों से ही प्रत्युत्तर मिलना चाहिए। परन्तु अन्तिम विजय तो सफलता की है। हमें इन सिद्धान्तों की सत्यता को क्रियात्मक परिणामों से सिद्ध करना पड़ेगा। यदि परिणाम अनुकूल निकलें तो उनके अनुसार ही भौतिक विज्ञान के सिद्धान्तों में सुधार किये जाने चाहिएं।

५ भौतिक विज्ञान के स्थूल तथा आध्यात्मिक विज्ञान के सूक्ष्म क्षेत्रों में मन की पदार्थों को महत्त्व देने की प्रक्रिया सर्वथा विपरीत होती है। भौतिक विज्ञानवादी स्थूल जगत को ही वास्तविक सत्य, सूक्ष्म जगत का प्रभावक तथा नियन्ता मानता है और कई बार तो सूक्ष्म जगत के अस्तित्व से ही इन्कार कर देता है। इसके विपरीत आध्यात्मिक क्षेत्र में विचरण करने वाला मन सूक्ष्म जगत को वास्तविक सत्य, नित्य तथा जगत् का आधार और बाह्य भौतिक जगत का प्रभावक तथा नियन्ता मानता है। स्थूल शरीर, जीवन, मन तथा आत्मा के विषय में प्रचलित एक दूसरे से विरोधी मन्तव्य हमारी इस स्थापना को स्पष्टतया सिद्ध करते हैं। और यही बात हठयोग की क्रियाओं के सम्बन्ध में भी विरोधी भावनाओं के होने में वैसे ही लागू होती है।

गुरुकुल के स्नातक—आरम्भ काल से १९५० तक गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय से जो स्नातक निकले हैं उनका सचित्र परिचय इस पुस्तक में दिया गया है। समाज, राजनीति, व्यापार, पत्रकारिता आदि विविध क्षेत्रों में गुरुकुल के स्नातकों ने जो गौरवपूर्ण स्थान बना लिया है उसका ज्ञान इस से होता है। देश के प्रथम राष्ट्रीय शिक्षणालय के स्नातकों का विस्तृत परिचय देने वाली इस पुस्तक को आज ही मंगाइये।
मूल्य ३)।
मिलने का पता—
प्रकाशन मन्दिर, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

दूध की कल्प चिकित्सा

प्रोफेसर रामचरण महेन्द्र एम. ए.

कल्प मिश्रित भी होते हैं, किन्तु दुग्ध-कल्प में केवल दूध पर ही रहना होता है। रोगी के शरीर में प्रोटीन या जिन खनिज लवणों, विटेमिनों या चिकनाई की न्यूनता होती है, वह क्षतिपूर्ति दूध के तत्वों द्वारा होती है। प्रकृति ने दूध में वे सम्पूर्ण तत्व एकत्रित कर दिये हैं, जिनकी आवश्यकता मनुष्य शरीर की टूट फूट दूर करने, परिवर्द्धन, विकास तथा स्वस्थ रखने के लिए पड़ती है। कल्प द्वारा शरीर की कमी पूर्ण की जाती है। जब सब जीवन-तत्व उचित अनुपात में आजाते हैं, तो शरीर नया बन जाता है। दूध के तत्व शरीर में सीधे सम्मिलित हो जाने का महत्वपूर्ण गुण लिये रहते हैं। इस कारण दो सप्ताह में ही यथेष्ट लाभ दीखने लगता है।

ऐसा प्रयत्न करना चाहिये कि रोगी अधिक से अधिक मात्रा में दूध पचा सके, उसे खूब भूख लगे, दूध से उसे विरक्ति न हो जाय। बिना क्षुधा के दूध पीना या पिलाना हानि उत्पन्न करेगा। नियमित रूप से दूध पर रहने के लिये तेज भूख उपजाना अनिवार्य है। प्रश्न उठता है कि तेज क्षुधा किस प्रकार की जाय ? तेज भूख पैदा करने के अनेक उपाय हैं। सर्व प्रथम तो यह है कि कुछ दिन तक न खाया जाय, उपवास किया जाय। उपवास में भोजन नहीं किया जाता, इससे आँतें स्वयं मुलायम पड़ जाती हैं। उपवास काल में जल लिया जा सकता है जिससे आन्तरिक सफाई में आँतों को सरलता मिलती है। उपवास से इन्द्रियाँ निर्मल हो जाती हैं किन्तु साथ ही शरीर में कमजोरी आती है। यह निर्बलता हमें इस कारण और अधिक मालूम होती है क्योंकि हम सोचते रहते हैं कि आज हमने भोजन नहीं किया है अतः निर्बलता अवश्यम्भावी है।

उपवास लम्बे भी होते हैं तथा छोटे भी। हम छोटे उपवास के पक्ष में हैं। आरम्भिक शुद्धि के लिए दो-तीन दिन का व्रत यथेष्ट है। इन दिनों में पेट के ऊपर नया बोझ न पड़ेगा अतः पुराना सड़ा हुआ संचित विष धीरे-धीरे दूर होगा। प्रायः लोग नहीं जानते कि हम जितना भोजन करते हैं, उसका अधिकांश भाग अंतड़ियों में मल के रूप में इधर-उधर जमता रहता है। यही जमाव जीर्ण कब्ज उत्पन्न करता है। कोष्ठ बद्धता है ही क्या ? वृद्धावस्था में या आलसी जीवन व्यतीत करने से जब जीवन क्रियाएं मन्द पड़ जाती हैं, तो मल विसर्जन का कार्य करने वाले अवयव अपना काम उस सतर्कता से नहीं करते, जिससे उन्हें करना चाहिए। फिर एक और गलती हमसे होती चलती है। हम भोजन में खुज्जा या चोकर, तरकारियों के छिलके, चावल के कन इत्यादि ऐसे पदार्थ नहीं लेते जिनसे मल विसर्जन कार्य में कुछ सहायता मिलती। अतः बहुत सा मल बड़ी आँत की दीवारों में जमता रहता है। यही जीर्ण कब्ज बन कर अनेक उपद्रवों का कारण बनता है।

प्रायः जन साधारण इस पुराने जमाव को निकालने की ओर ध्यान नहीं देते। उनका आहार ज्यों का त्यों चला करता है। शरीर का अम्ल-तत्व जो कारबन से मिलता जुलता है, धीरे-धीरे बड़ी आंत में एकत्रित होता रहता है। इससे प्राण-शक्ति में तथा जीवन की अन्य क्रियाओं में व्यवधान उपस्थित होता है। संचित मल के कारण सिर दर्द, आलस्य एवं उदासीनता बनी रहती है। दुग्ध-कल्प से पूर्व शरीर शुद्धि-करण इसी लिये किया जाता है कि दूध के आहार से अधिक लाभ उठाया जा सके। इस शुद्धि का सर्वोत्तम उपाय उपवास ही है।

उपवास काल में शरीर तो शुद्ध होता ही है, मन भी विकार रहित बनता है—'आहारान् पचति शिखि दोषान् आहार वर्जितः।' उपवास से दोष भी पच

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

जाते हैं। यह एक स्वाभाविक एवं प्राकृतिक विधान है जिसके द्वारा अस्त-व्यस्त पाचन क्रिया पुनः सक्रिय की जा सकती है। यहां एकत्रित अपचा भोजन शरीर के उपयोग में आने लगता है। पाचक यन्त्र की श्लैष्मिक कलाएं संचित मल निकालना प्रारम्भ करती हैं। शरीर में रक्त संचार क्रिया जोरों से भोजन मांगने लगती है जिससे शरीर का संचित द्रव्य पच कर रक्त मांस में परिणत हो जाता है।

उपवास काल में शरीर की आंतड़ियों का धुल जाना आवश्यक है। अतः उपवास काल में विष निकालने के लिये जल का प्रयोग खूब कीजिये। संचित मल को निकालने के लिये जल सर्वोत्तम है। पानी के प्रयोग से मल, मूत्र तथा स्वेद निकलने के मार्ग साफ हो जायंगे। बदबूदार पसीना निकलेगा, उपवास काल में अच्छी तरह रगड़ रगड़ कर स्नान करना चाहिये। प्यास के अनुसार ही जल की मात्रा घटाई या बढ़ाई जाय। स्वाद परिवर्तन के निमित्त जल में नींबू का या अंगूर का रस भी दिया जा सकता है।

इस उपवास के पश्चात् दूसरी स्टेज में रसाहार पर रोगी रहे। जल के स्थान पर फलों का रस ग्रहण करें। उपवास फलों के रस द्वारा ही तोड़ा जाय किन्तु उस रस को चूस २ कर स्वाद लेते हुए लिया जाय। प्रतिदिन दिन भर में सेर सवा सेर तक आवश्यकतानुसार रसीले फलों को निचोड़ कर पिया जाय। दिन में तीन-चार बार रस पान किया जाय। इसमें खट्टे तथा मीठे फलों का संमिश्रण रह सकता है। संतरा इस दिशा में सर्वोत्तम रहेगा। किन्तु ध्यान रहे, गट गट कर रस एक बार में न पी लिया जाय। एक सन्तरे को निचोड़ कर एक बार में लिया जा सकता है। क्रमशः यह रस बढ़ाया भी जा सकता है। स्मरण रहे ताजे फलों का तुरन्त निकाला हुआ रस ही लिया जाय। रसीले फल जो इस प्रयोग में लाये जा सकते हैं, सन्तरे चकोतरे, जंभीरी, कागजी नींबू, टमाटर हैं।

तृतीय स्थिति फलाहार की है। संसार में यदि कोई ऐसी खाद्य वस्तु है जो पथ्य तथा औषधि दोनों साथ २ है तो वह फल ही है। एडाल्फ जुस्ट का कथन है कि दूध व फलों में सब रोगों को दूर करने की अद्भुत शक्ति होते हुए भी मनुष्य औषधियों से आरोग्य प्राप्त करना चाहता है, यह उसका दुर्भाग्य है। फल का प्रधान गुण क्षार-धर्मी होना है। इनका क्षार मानव शरीर में संचित समस्त विषों का परिहार करता है। जहां रेचक औषधियां हानि पहुँचाती हैं, वहां फलों का रेचक बृहत् आंत को कोमलता से साफ रखता है। सुपक्व फल अत्यन्त सुपाच्य होते हैं, फलों में यथेष्ट खुज्जा प्रस्तुत होने के कारण उससे मल की मात्रा में वृद्धि होती है। जब रसाहार के पश्चात् रोगी फलाहार पर रहता है तो तीव्र क्षुधा उत्पन्न होती है। जब रोगी को फलाहार पर रक्खा जाय तो यह स्मरण रखना चाहिए कि उसे ताजे खट्टे-मीठे दोनों प्रकार के फल उचित मात्रा में दिये जांय। मध्य में रसीले फल, टमाटर अंगूर, संतरे इत्यादि भी लिये जाते रहें। संतरे, टमाटर इत्यादि में प्रस्तुत अम्ल तथा शर्करा पाकस्थली की ग्रन्थियों को उत्तेजित कर पाचक रस यथेष्ट मात्रा में उत्पन्न करने में प्रचुर सहायता प्रदान करते हैं। वस्तुतः संतरे तथा टमाटर का रस सर्वोत्तम श्रेणी का क्षुधावर्द्धक आहार है। संतरा न मिलने पर नींबू का प्रयोग कर सकते हैं। रोगी के रक्त विकार दूर करने में आम, जामुन, अनन्नास, अंगूर इत्यादि बेजोड़ हैं। क्षुधा तीव्र करने में पपीता अपना सानी नहीं रखता।

फलाहार में दो बातें स्मरण रखिये। उपवास तथा रसाहार में तो आपको किसी प्राकृतिक चिकित्सक की देख रेख की आवश्यकता है किन्तु फलाहार तो रोगी स्वयं कर सकता है। फलाहार क्षुधा के अनुसार किया जाय और तीन या चार बार फल भोजन की भांति लिए जांय। इन फलों में ऐसे भी फल रहें जिनसे मल बने, पेट में कुछ बोझ भी रहे अर्थात्

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

यथेष्ट खुला रहे। ऐसे फल नासपाती, ककड़ी, खरबूजा, खीरा, सेव, अमरूद इत्यादि हैं। फलाहार काल में रोगी कुछ हलका व्यायाम भी ले, औक्सिजन अधिक से अधिक प्रयोग में ले और खुली वायु में टहलने, खेलने, कूदने में अधिकांश समय व्यतीत करे।

क्षुधा तीव्र करने के लिए एनिमा भी एक साधन है। कुछ विशेषज्ञों की राय है कि उपवास एवं एनिमा के संयोग से जीर्ण कोष्ठ बद्धता दूर की जा सकती है। योग की कई क्रियाएं भी बड़े महत्व की हैं। कुछ योगी नाभि तक जल में खड़े होकर अथवा बैठ कर नौलि-क्रिया से गुदा द्वारा जल को बड़ी आंतों में खींचते हैं। तत्पश्चात् नौलिक्रिया करके उस मल मिश्रित जल को त्याग दिया जाता है। इस प्रकार आंत की स्वच्छता से भूख तेजी से लगती है। एनिमा से गांठें, पुराना जमाव तथा गाढ़ा मल निकलता है तथा आन्तरिक अवयव सशक्त बनते हैं।

प्रारम्भिक शुद्धि के लिए उपरोक्त रीतियों से पर्याप्त लाभ उठाना चाहिए तब तक उपवास, एनिमा रसाहार तथा फलाहार कीजिए, जब तक दूध के लिए तेज भूख उत्पन्न न हो जाय। दुग्ध कल्प से पूर्ण तथा स्थायी लाभ प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि आप अपने पेट तथा आंतों की सफाई कर लें और दूध को अपना चमत्कार प्रदर्शन का अवसर प्रदान करें।

कल्प के लिए दूध का चुनाव

सर्वोत्तम दुग्ध गौ माता का है। गौ के दुग्ध की समता दूसरा नहीं कर सकता। गौ दुग्ध के विषय में चरक की उक्तियां यह स्पष्ट रूप से दिखला देती हैं कि भारतीय आयुर्वेद विज्ञान के प्रारम्भिक काल में भी औषध एवं खाद्य की दृष्टि से गौ दुग्ध की महिमा पहिचान ली गई थी। यह दूध बलवर्धक, संजीवनदायक, सात्विक एवं चित्त को प्रसन्न करने वाला होता है। यह आत्मा को बल देता है आयुवर्द्धक, कान्तिदाता, हड्डियों को जोड़ने वाला और यौवन प्रदान करने वाला है।

बकरी का दूध जल्दी पच जाने के कारण प्रायः चुना जाता है। गौ के दूध के पाचन में जहां दो घटे लगते हैं, वहां बकरी का दूध आध घंटे में ही पच जाता है। सम्भवतः इसका यह गुण इसके चिकनाई के कणों के कारण है, जो गौ के दूध की चिकनाई के कणों के पञ्चमांश तथा माता के दूध की चिकनाई के कणों के बराबर होते हैं। गौ, भैंस का दूध रखा रहने पर मलाई जल्दी आती है, बकरी के दूध पर वह बहुत धीरे धीरे आती है। जिन १२ प्राकृतिक लवणों की हमारे भोजन में आवश्यकता होती है, और जो सभी स्त्री के दूध में होते हैं, उनमें गौ के दूध में छः तथा बकरी के दूध में नौ होते हैं। अत्यन्त आवश्यक लवण, लोहा बकरी के दूध में गाय के दूध से सात से दस गुना तक अधिक मिलता है। डॉक्टर शर्मन ने एक बार १८ लड़कों पर, जिनका हाजमा बिगड़ गया था, भोजन के प्रयोग किए थे। उनका कथन है कि 'सत्रह लड़कों को बकरी का दूध ठीक २ पचने लगा था। कई लड़कों को तो इससे बहुत अधिक लाभ हुआ। जो गाय का दूध भी नहीं पचा पा रहे थे, वे बकरी का दूध मजे में पचा सके।' कल्प से पूर्ण लाभ उठाने के लिए इन्हीं दो में से एक का चुनाव करें।

दूध कैसा लेना चाहिये

सब से अच्छा दूध धारोष्ण, ताजा एवं फीका होता है तथा दुग्ध कल्प से पूर्ण इच्छित लाभ प्राप्त करने के लिए धारोष्ण फीके दूध को ही काम में लेना चाहिए। आप धारोष्ण ताजे दूध से बहुत शीघ्रता से शरीर की आवश्यकताओं को पूर्ण करने वाले समस्त पदार्थ, खनिज, लवण, फास्फोरस,

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

कैलशियम पा सकते हैं। जितना ही आप धारोष्ण दूध में परिवर्तन करेंगे; उतनी ही मात्रा में गुण, लाभ एवं विटामिन कम होते जायगे। हां, रोगी की परिस्थिति, अवस्था, व देश काल के अनुसार साधारण फेर फार किया जा सकता है।

अत्यन्त ठन्डा दूध कल्प में प्रयोग न करें। हां बिगड़ने के डर से आप उसे सम्भाल कर किसी ठंडे स्थान में पवित्रता से रख सकते हैं किन्तु बर्फ के सदृश ठन्डा दूध पान न करें। यदि दूध का पात्र बर्फ में रक्खा गया हो, तो उसे इतना गर्म कीजिये जितना गर्म रक्त होता है। खून जैसी गर्मी ही यथेष्ट है। इतनी गर्मी प्रायः धारोष्ण दूध में भी होती है। औटाकर दूध पीने से विटैमिन नष्ट होते हैं। गरिष्ठ बन कर ऐसा दूध कब्ज भी करता है। जहां तक हो मलाई न आने दीजिये। यदि थोड़ी बहुत आगई है तो मलाई को फैंट कर मिला लीजिए। यदि धारोष्ण पीए तो झाग सहित पीना उत्तम है क्यों कि दूध के झागों में अद्भुत गुण होते हैं। सेपरेटा (मक्खन निकला हुआ दूध) पीने से स्वाद और गुण परिवर्तित हो जाते हैं। लाभ प्रायः नहीं होता। बहुत दिन की ब्याई हुई गौ का दूध कुछ गरिष्ठ व कम गुणकारी होता है और महीने भर या दो माह की ब्याही हुई गौ का दूध कुछ हलका और लाभप्रद होता है। ऐसी गौ का दूध इतना सुपाच्य है कि आंतों को इसका रक्त बनाने में बहुत ही कम शक्ति व्यय करनी पड़ती है तथा जब यह पेट तथा आन्तों में होकर गुजरता है तो उनकी नसें व रग पट्ठे दूध का रस व सार ग्रहण करके पुष्ट व क्रियाशील बन जाते हैं। दुबले पतले व्यक्ति इस पुष्टि से मोटे हो जाते हैं।

●

गुरुकुल काँगड़ी में बनी

फ़ीनाइल-स्याही-वार्निश

तथा अन्य उपयोगी वस्तुएँ काम में लावें

स्कूलों, कालेजों, हस्पतालों व स्वास्थ्य विभागों में वर्षों से प्रयुक्त हो रही हैं।

अपने नगर की एजेन्सी के लिए लिखें—

गुरुकुल कैमिकल इण्डस्ट्रीज़

गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

श्री अरविन्द

प्रोफेसर लालचन्द्र एम. ए.

श्री अरविन्द के पिता का नाम कृष्णधन घोष था। ये विलायत से आई. एम. एस. होकर आए थे और बंगाल में सिविल सर्जन बने। तीव्र बुद्धि, कोमल हृदय, तरंगी, इतने उदार कि जो पास होता सब दान कर डालते। अपनी ज़रूरतों से बेपरवाह पर औरों के कष्टों को तीव्रता से अनुभव करने वाले, ऐसा था चरित्र इस पिता का। मगर यह थे पक्के साहब। दकिया नूसी बातों को नहीं मानते थे। और इन्हों ने अपने बच्चों की शिक्षा पश्चिमी ढङ्ग पर की। श्री कृष्णधन घोष को उन के मित्र लाड से स्वेज़ कैनाल कहते थे क्योंकि इन के यहां अङ्गरेज़ और बंगाली दोनों आते थे और दोनों का खूब आतिथ्य होता था। श्री अरविन्द के नाना का नाम था ऋषिराज नारायण घोष। यह यद्यपि पश्चमी शिक्षा पाए हुए थे, पर थे बहुत स्वदेश भक्त, अपनी प्राचीन संस्कृति पर नाज़ करने वाले और सुन्दर साहित्य द्वारा उस का प्रचार करने वाले।

श्री अरविन्द का जन्म १५ अगस्त १८७२ ई० में कलकत्ते में हुआ। ५ साल की आयु में पिता ने बालक को कॉन्वेन्ट स्कूल दार्जिलिंग में भरती कर दिया जहां सब काम अंग्रेजी में होता था। ७ साल की आयु में पुत्र को विलायत ले गये और वहां मानचेस्टर में एक अंग्रेज ड्रेवेट के घर शिक्षा के लिये रखा। फिर वह सेंट पौल्स स्कूल लंदन में प्रविष्ट हुए जहां उन्होंने अपने अध्यापकों को अपने उच्च चरित्र और विलक्षण प्रतिभा से बहुत प्रभावित किया। यहां से छात्रवृत्ति ले कर वह किंग्स कॉलेज, कैम्ब्रिज में प्रविष्ट हुए। यहां उन्होंने ट्राइप्स परीक्षा प्रथम विभाग में पास की, फिर सिविल सर्विस की परीक्षा में बैठे तो क्लासिक्स में अर्थात् ग्रीक और लैटिन में उन्होंने रिकॉर्ड मार्क्स प्राप्त किये, जब सवारि की परीक्षा का समय आया तो जान बूझ कर नहीं गये और इस तरह वह आई. सी. एस. अर्थात् इण्डियन सिविल सर्विस में नहीं आये। असल में प्रभु उनको आई. एस. इ. अर्थात् इण्डियन स्पिरिचुअल एम्पायर के लिये तय्यार कर रहा था। जब वह पढ़ते थे तो विलायत में भारतीयों का एक क्रान्तिकारी समाज बना जिसका नाम था 'लोटस एण्ड डैगर।' उस में आप जोरशोर से भाग लेते थे इस लिये सरकार की नज़र तभी से उन पर रहने लगी। आयर्लैंड उस समय स्वतन्त्रता के लिये संघर्ष कर रहा था। आपने आयर्लैंड और वहां के देशभक्तों पर अंग्रेजी में दर्दभरी और जोशीली कवितायें लिखीं। विलायत में उन्होंने अंग्रेजी, फ्रेंच, ग्रीक, लटिन भाषाओं पर तो पूरा प्रभुत्व पा ही लिया था इनके अतिरिक्त जर्मन इतनी सीख ली कि गेटे का 'फास्ट' मूल में पढ़ लिया और इटैलियन इतनी जान गये कि डैंटे क 'डिवायन कामिडि' मूल में पढ़ ली। इस तरह विलायत के १४ साल के वास में पश्चिम की पुरानी, मध्यकालीन और आधुनिक तीनों कालों की संस्कृति से गहरा परिचय कर लिया। बड़ौदा के गायकवाड़ इत्तिफाक से उस समय विलायत आए हुए थे एक मित्र के द्वारा उनसे भेंट हुई और परिणाम स्वरूप वह स्टेट सर्विस में आ गये।

१४ साल वह विलायत में रहे और सारा पश्चिम का ज्ञान हज़म किया। संस्कृत, बंगला, गुजराती, मराठी भाषाओं को सीखा और इनका साहित्य पढ़ा। बड़ौदा में पहले सेक्रेटेरियेट में काम करते रहे, फिर अंग्रेजी के उपाध्याय बने, फिर बड़ौदा कालिज में वाइस प्रिंसिपल बने, अपने पद का काम चातुर्य से करने के अतिरिक्त आप ने भारत का पुराना अमर साहित्य पढ़ा। वेद उपनिषत् इत्यादि का स्वाध्याय किया और कई एक कविताएं भी लिखीं। बड़ौदा में वह बहुत सरलता और तपस्या का जीवन बिताते थे। वहां रहते हुए उनकी शादी हुई, उन्होंने अपनी पत्नी को एक पत्र में लिखा कि तू ने एक पागल से शादी कर ली है, जिस के तीन पागलपन हैं। एक यह कि मैं अपनी भारत माता आज़ाद देखना चाहता हूँ, दूसरे यह कि भगवान्

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

का साक्षात् करना चाहता हूँ, तीसरा यह कि अपनी कमाई से मैं उतना ही अपने पास रखना चाहता हूं जितना केवल मेरे या मेरे परिवार के खाने पहनने इत्यादि के लिये अत्यावश्यक हो, शेष पर मैं कोई अपना स्वत्व नहीं रखना चाहता । शेष सब दरिद्र नारायण का है और उनको ही मैं दे देना चाहता हूँ।

वहां रहते हुए एक मराठे महात्मा लेले से उन्होंने योग-साधना भी सीखी । जब वह विलायत से वापस बम्बई उतरे तो उन्हें ऐसा अनुभव हुआ मानो एक विशाल शान्ति ने घेर लिया । यह वास्तव में भारत माता का अपने प्यारे लाल का स्वागत था, उस लाल का जिसने न केवल माता की बेड़ियां ही काटनी थीं परन्तु उस माता का नाम सारे संसार में फैलाना था और उसका मस्तिष्क सारे संसार में ऊंचा करना था । महात्मा लेले ने उनको कहा—मन को खाली कर दो, कोई विचार न आने दो । तीन दिन में वह मन को बिल्कुल खाली करने में सफल हुए और उन्होंने एक विचित्र चीज़ अनुभव की कि विचार बाहर से हमारे अन्दर आते हैं और हम भ्रम से उनको अपना मान लेते हैं । भारत का साहित्य पढ़ते, भारत की भाषाओं को पढ़ते, प्रोफेसर और प्रिंसिपल का काम करते, अंग्रेजी की कविताए लिखते और योग अभ्यास करते और बिना अपना नाम दिये राजनैतिक विषयों पर तेजस्वी और तीव्र लेख लिखते हुए उन्होंने बंगाल से पुकार सुनी, बंगाल का विभाजन कर दिया गया था । सारा बंगाल हिल उठा था, लोगों में नया जोश पैदा हो गया था, अब वह अपने आपको न रोक सके, प्रिंसिपल का पद छोड़ दिया । सात सौ रुपये की प्रतिष्ठित नौकरी को एक दम त्याग कर १५०) मासिक पर नेशनल कॉलेज, कलकत्ता के प्रिंसिपल बन गये । मगर वहां के अधिकारी उनको पूरी स्वतन्त्रता नहीं देते थे कि अपने विचार के अनुसार कॉलिज को चला दें तब उन्होंने वह काम भी छोड़ दिया और वन्दे मातरम् पत्र के सम्पादक बन गए । उनका सिद्धान्त था कि जो काम करना, तन, मन लगा कर करना । राजनीति में वह तिलक को नेता मानते थे । उनके लेख बड़े उग्र और युक्तियुक्त होते थे । उनके लेखों से जाति के अंदर एक नये जीवन का सचार हो गया । योग्यता तो उनके अन्दर थी ही पर उन के लेखों के प्रभाव का मुख्य रहस्य यह था कि भारत को माता समझते थे । जीवित जागृत, सुन्दर, सम्पन्न पर जंजीरों से जकड़ी हुई मां समझते थे और उनका सब काम अपने यश या अपने धन कमाने के लिए नहीं परन्तु भारत माता को आज़ाद करने के लिये एक उच्च विशुद्ध बुद्धि से होता था । इसीलिये उनके लेख सीधे दिल में चोट करते थे, मगर जो जोश उन्होंने इस तरह लोगों में पैदा किया वह देर तक न रह सका, क्योंकि लोग अभी तैय्यार नहीं थे । १९०७ में उन पर विद्रोह का अभियोग चलाया गया पर वह इस में बरी हो गए । १९०८ में अलीपुर षड्यन्त्र केस में वह फिर पकड़े गये और एक साल तक अलीपुर जेल में रहे । इस एक साल के कारावास के लिये जिसे वह आश्रमवास कहते थे वह अंग्रेजी सरकार का बहुत धन्यवाद करते थे, क्योंकि वहां उन को भगवान् के दर्शन हुए, वहां उन को ऐसा साक्षात् हुआ कि सब वस्तुओं में, सब व्यक्तियों में भगवान् बसा हुआ है । इस आश्रमवास के पश्चात् जब वह जेल से बाहर निकले तो उन्होंने अंग्रेजी में एक भाषण दिया, जिसका नाम उत्तरपाराभाषण है । यद्यपि वह साधारणतया बड़ी पंडिताई की भाषा लिखते थे पर इस भाषण में उनकी अंग्रेजी बहुत सरल है । छोटा सा पैम्फलेट है । जो अंग्रेजी जानता है और उसने वह भाषण नहीं पढ़ा वह सचमुच अभागा है, और जो हिन्दी जानता है और उसने अभी तक उसका हिन्दी अनुकरण नहीं पढ़ा वह भी अभागा है । पुस्तिका क्या है: एक आबदार बहुमूल्य हीरा है जिस से साबित होता है कि वह अब

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

अपनी मैं और मेरी से ऊपर उठ चुके थे। प्रभु को पूरा समर्पित हो चुके थे। प्रभु का आदेश पा चुके थे 'तेरा असली कार्य भारत की आत्मा को बचाना है, जिन सच्चाइयों ने भारत को अभी तक जीवित रखा है जो गूढ़ तत्व वेदों और उपनिषदों में लिखे हैं। उन को फिर पाओ, अपनी साधना से अपने योग अभ्यास से पाओ और पा कर ऐसा अमर साहित्य तय्यार कर जाओ जिस से भारत का सिर संसार में ऊंचा हो। भारत फिर संसार का अध्यात्मिक नेता बन और संसार में अज्ञान और कलह के स्थान पर प्रकाश, क्रान्ति और आनन्द का राज्य हो।" कुछ काल तो वह एक पत्र 'कर्मयोगी' अङ्गरेज़ी में और 'धर्म' बंगला में निकालते रहे जिन में बहुत ऊंचे स्तर से लिखे हुए लेख होते थे। जब उन्हों ने अपने ध्यान में देख लिया कि यह काम प्रभु अब औरों के सपुर्द करेंगे जो असहयोग आन्दोलन द्वारा भारत को आज़ाद कराएंगे तो जो काम केवल वह ही सब से अच्छा कर सकते थे और कोई इतना योग्य ही नहीं था। उस काम के लिए वह पहले चन्द्र नगर पीछे पांडीचेरी चले गए जहां उन्हों ने योग अभ्यास किया, वेद का स्वाध्याय किया और उस मासिक 'आर्य' पत्र में जिस में उन्हों ने अनेक गम्भीर विषयों पर क्रमिक लेख लिखे वह अमर साहित्य तय्यार किया जिस को पढ़ कर संसार के बड़े से बड़े विद्वान् भी चकित हैं। उन क्रमिक लेखों को इकट्ठा कर के कई बहुमूल्य पुस्तकें तय्यार हुई हैं और हो रही हैं। 'लाइफ़ डिवाइन' तीन मोटी जिल्दों में ११८३ पृष्ठों की एक पुस्तक है। सर फ्रान्सिस यंगहसबेण्ड पार्लियामेण्ट ऑफ़ रिलिजन का प्रधान था। उस ने लिखा है "लाइफ़ डिवाइन इस शती की सब से महान् पुस्तक है।" कोई गम्भीर विषय ऐसा नहीं जो उन्हों ने छुआ न हो और कोई विषय उन्हों ने छुआ नहीं जिस में उन्होंने जान न डाल दी हो। सब पक्षों को इतने सुन्दर ढङ्ग से रखा कि उन पक्षों के पोषक ने भी ऐसे सुन्दर ढङ्ग से नहीं रखा और जब रख दिया तो उस में जो कमी है वह भी बता दी। उदाहरणार्थ शंकर के वेदान्त को इतने सुन्दर ढङ्ग से रख दिया है कि वेदान्ती भी क्या रखते होंगे। फिर बता दिया कि ब्रह्म तो सत्य है पर जगत् भ्रम नहीं जगत् भी सत्य है, हर विचार का, हर दर्शन, का हर धर्म का उचित स्थान अपने ज्ञान चक्षु से देख कर उन्हों ने बता दिया है। कौन धर्म कब आया और क्यों आया उस को उस समय क्या ज़रूरत थी और उस से क्या लाभ हुआ। यह सब निष्पक्ष हो कर उन्हों ने बताया। यहां तक नास्तिक और सन्देहवादियों का ज्ञान की उन्नति में क्या हिस्सा है उन्हों ने इतनी सुन्दरता से रखा है कि एक बार तो नास्तिक भी वाहवाह कह उठे हैं। वह वास्तव में धीर पुरुष हैं। धीर नैतिक दृष्टि से, धीर बौद्धिक दृष्टि से, आपत्ति में अचल रहे। और भिन्न भिन्न पक्षों पर राय देने में भी वह धीर रहे। सब के गुण दोष बिना पक्षपात के बता कर वह सब को अपनी ओर खींचते हैं। लाइफ़ डिवाइन पुस्तक के पढ़ने से ऐसा पता चलता है कि वह अन्दर की दुनियां के सब से बड़े खोज करने वाले हैं। अपनी तीव्र अन्तर्दृष्टि से उन्होंने इस लोक का कोना कोना देख लिया है। माइण्ड से सूपर माइण्ड तक उन्होंने कई श्रेणियां बताईं। हायर माइण्ड, इलूमाइण्ड माइण्ड, इन्टूशन ओवर माइण्ड, सूपर माइण्ड। इन सब स्थितियों में चित्त की क्या अवस्था होती है, उसका अपने वैयक्तिक अनुभव के आधार पर बड़ा सूक्ष्म विवेचन किया है। इस में संसार के विकास का बहुत सुन्दर वर्णन किया गया है। दिव्यता प्रकृति में सुप्त थी। धीरे-धीरे जागने लगी। अन्नमय लोक में प्राणमय लोक व्यक्त हुआ, पौदे पैदा हुए, फिर पशु-पक्षी पैदा हुए, इसके बाद प्राणमय लोक में मनोमय लोक प्रगट हुआ। मनुष्य पैदा हुआ पर अभी विकास खतम नहीं हुआ। मनोमय लोक से विज्ञानमय लोक

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

प्रगट होने वाला है, सूपर माइण्ड का अवतरण होने वाला है और मनुष्यों में से वह जो बौद्धिक नैतिक और आध्यात्मिक दृष्टि से तैय्यार हैं एक सूपर मैन की सृष्टि होने वाली है जो चेतना और सामर्थ्य की दृष्टि से मनुष्यों से ऐसे ही भिन्न होंगे जैसे मनुष्य पशुओं से। सूपर मैन के अन्दर अदम्य शक्ति, निर्भ्रान्त ज्ञान और सारभौम प्रेम होगा। संसार के देशों के प्रधान और राजा इस जाति में से, जनक महाराज और अजातशत्रु की तरह राज करेंगे, सब कलह मिट जायंगे, शान्ति का साम्राज्य हो जायगा। क्योंकि हर एक देश के प्रधान हर एक देश के प्रधान में एक ही ब्रह्म देखेगा तो फिर झगड़ा किस का किस से होगा।

इस पुस्तक के अन्दर बड़े जटिल विषयों पर बड़ा सुन्दर, स्पष्ट और मौलिक विचार किया गया है। भगवान् आनन्द स्वरूप है तो संसार में दुःख क्यों ? पुनर्जन्म, कर्म फल, दिव्य जीवन ऐसे ऐसे अनेक गम्भीर विषयों पर जो उन्होंने स्वतन्त्र, युक्तियुक्त और मौलिक विचार लिखे हैं उनके पढ़ने से मनुष्य को अलौकिक प्रकाश और अवर्णनीय आनन्द मिलता है। मैंने तो अङ्गरेज़ी जानने का सब से बड़ा लाभ यह उठाया है कि श्री अरविन्द के ग्रन्थ पढ़े हैं, ग्रन्थ क्या पढ़े हैं अमृत पान किया है, और छक कर किया है। और अब भी कर रहा हूँ। स्वामी रामतीर्थ जी, स्वामी विवेकानन्द जी वगैरह ने जो लिखा है वह भी मैंने खूब पढ़ा है और बहुत आनन्द लिया है मगर यह सोमरस कुछ विलक्षण ही है। श्री अरविन्द एक चौमुखी प्रतिभा वाले महर्षि थे। यूरोप की सब मुख्य भाषायें, भारत की सब मुख्य भाषायें वे जानते थे। उन्होंने अङ्गरेज़ी में कविताएं लिखीं। गीता-प्रबन्ध लिखा, ईशउपनिषद्, केन उपनिषद्, माण्डूक उपनिषद् की टीकायें लिखीं वेद रहस्य लिखा। दयानन्द बंकीम और तिलक की सारगर्भित और संक्षिप्त जीवनयां लिखी हैं। तीन जिल्दें उन के पत्रों की निकल चुकी हैं। योग के आधार, योग प्रदीप, माता इत्यादि अनेक ग्रन्थ लिखे हैं। एक एक के अन्दर प्रकाश और आनन्द का सोमरस भरा पड़ा है। हाल ही में अमेरीका से एक बड़ा प्रोफेसर जिसका नाम स्पीलवेरी था भारत में यह देखने आया था कि अध्यात्मिकता भारत में वस्तुतः कहीं है भी या यों ही इसका शोर डाल रखा है। जब पांडीचेरी गया और योगीराज श्रीकृष्ण के दर्शन हुए तो गद्गद् हो गया और उसे विश्वास हो गया कि अध्यात्मिकता सचमुच भारत में जीवित जागृत है। अमेरिका जाकर उसने अपने एक पत्र में लिखा है कि मैं और मेरे शिष्य नियमपूर्वक नित्यप्रति बड़े शौक से और बड़ी श्रद्धा से लाइफ डिवाइन और एस्सेज़ औन दी गीता (जो अरविन्द की दो मुख्य पुस्तकें हैं) पढ़ते हैं और लाभ उठाते हैं। लन्दन के प्रसिद्ध पत्र टाइम्स के साहित्य परिशिष्ट में जोहन पुरे ने एक लेख में लिखा है कि श्री अरविन्द आधुनिक योग पर केवल मात्र एक ही मौलिक लेखक हैं। रोम्यां रोलां ने लिखा है कि श्री अरविन्द ने पूरब और पश्चिम की संस्कृतियों का सब से पूर्ण समन्वय किया है। श्री अरविन्द के आसपास का वातावरण अध्यात्मिक विकास के लिये बहुत सहायक है।

अगर है स्वर्ग कोई इस ज़मीं पर,
यहीं पर है, यहीं पर है, यहीं पर।

उच्च कोटि का मानसिक भोजन प्राप्त करने के लिए गुरुकुल-पत्रिका पढ़िये।
वार्षिक मूल्य देश में ४), विदेश में ६)।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

श्री जयचन्द्र विद्यालंकार

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के कोटा अधिवेशन के लिए निर्वाचित सभापति श्री जयचन्द्र विद्यालंकार इतिहास क्षेत्र के ख्यातिप्राप्त व्यक्ति हैं। उनका चौड़ा माथा, चमकीली और पैनी आंखें उनकी प्रतिभा और बुद्धि का आभास देते हैं। उनका पतला शरीर और गेहुँआ रंग उनके व्यक्तित्व के परिचायक हैं। गत २४ वर्ष से इस विद्वान् विचारक ने अपना सारा जीवन राष्ट्रीय शिक्षा के आदर्शों को चरितार्थ करने और भारतीय इतिहास एवं समाजशास्त्र के मौलिक अध्ययन और अन्वेषण द्वारा हिन्दी साहित्य की श्री-वृद्धि में लगाया है। भारतीय इतिहास का कोई भी युग या पहलू ऐसा नहीं जिस पर उनकी मौलिक खोजों ने नया प्रकाश न डाला हो। भारतीय इतिहास की घटनाओं की व्याख्या के लिए प्राचीन भू-अंकन की खोजों का सहारा लेने की नई परिपाटी का आपने आरम्भ किया है। यह कार्य मुख्यतः हिन्दी माध्यम से ही हुआ और इसे जानने और समझने के लिये अनेक अहिन्दीभाषी और विदेशी विद्वानों को भी हिन्दी सीखनी पड़ी है। हिन्दी के बहुत कम विद्वानों को ऐसा सौभाग्य प्राप्त हुआ है कि उनके अनुसन्धानों और कृतियों का अध्ययन करने के लिए ही अहिन्दीभाषी और विदेशी विद्वान् हिन्दी सीखें।

जन्म और बाल्यकाल

जयचन्द्र जी का जन्म १८९९ में पश्चिमी पञ्जाब (आधुनिक पाकिस्तान) के लायलपुर जिले की डिजकोट बस्ती में हुआ। डिजकोट ऐतिहासिक खण्डहरों का स्थान है। आपकी शिक्षा-दीक्षा भारत के प्रथम राष्ट्रीय शिक्षणालय गुरुकुल कांगड़ी में आधुनिक भारत में राष्ट्रीय शिक्षा के पिता महात्मा मुन्शीराम (स्वामी श्रद्धानन्द) की देखरेख में हुई। १९१६ में आप गुरुकुल से स्नातक बन कर निकले। इसके बाद गढ़वाल के भीषण अकाल, रोलट एक्ट विरोधी आन्दोलन आदि में कार्य करते रहे। १९१८ में पञ्जाब में मार्शलला लागू होने पर जब अमृतसर में जलियांवाला बाग की घटना घटी, तो स्वामी श्रद्धानन्द जी ने उस घटना की विस्तृत रिपोर्ट तैयार करने के लिए आपको ही पञ्जाब भेजा था।

कृतियां और अनुसन्धान

जयचन्द्र जी की पहली रचना 'भारतवर्ष में जातीय शिक्षा' नाम से सन् १९१९ में प्रकाशित हुई थी। इसमें जयचन्द्र जी ने राष्ट्र के उद्धारार्थ राष्ट्रीय शिक्षा के कार्यक्रम में भारतीय भाषाओं में उच्च वैज्ञानिक साहित्य के निर्माण के लिए आयोजन पूर्वक काम करने वाली राष्ट्रीय संस्थाओं की स्थापना पर बहुत अधिक बल दिया था, जिसका उल्लेख प्रसिद्ध भारतीय समाजशास्त्री प्रो० विनयकुमार सरकार ने उन्हीं दिनों अमरीका के एक वैज्ञानिक पत्र में बड़े आदर के साथ किया था।

उनकी दूसरी कृति 'भारतीय इतिहास का भौगोलिक आधार' १९२५ में प्रकाशित हुई। इसमें भारत के ऐतिहासिक और सामरिक भू-अंकन पर क्रमबद्ध रूप से पहले-पहल प्रकाश डाला गया था। १९२८ में देवघर षड्यन्त्र के मुकदमे में उनके छोटे भाई इन्द्रचन्द्र नारङ्ग की तलाशी में यह ग्रन्थ उनके पास से बरामद हुआ, जिसका अंग्रेजी अनुवाद कराकर सरकारी वकील ने उनके खिलाफ सबूत रूप में पेश करते हुए कहा कि भारत का सामरिक भू-अंकन उसमें होने से वह भारतीय क्रान्तिकारियों के बड़े काम की चीज है। अंग्रेज जज ने उसे पढ़ कर प्रत्याख्यान करते हुए कहा कि "यह ब्रिटिश साम्राज्य के लिए भी उतनी ही उपयोगी सिद्ध हो सकती है।" इसी ग्रन्थ का संशोधित और परिवर्धित रूप 'भारत भूमि और उसके निवासी' नाम से प्रकाशित हुआ। इस ग्रन्थ की प्रसिद्ध पुरातत्ववेत्ता स्व०

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

हीरालाल तथा नार्वेजियन पुरातत्ववेत्ता डा० स्टेनकेनो ने भारतीय भूगोल को शास्त्र का रूप देने के कारण बहुत प्रशंसा की। इस ग्रन्थ में महाकवि कालिदास के रघुवंश में वर्णित रघु और महाभारत के सभापर्व में वर्णित अर्जुन की उत्तर दिग्विजय में आये प्राचीन भारतीय भू-अंकन सम्बन्धी उल्लेखों पर गवेषणा करते हुए उन्होंने प्राचीन कम्बोज जनपद को पहचाना और ऋषिक तुखारों की पहचान भारतीय इतिहास में वर्णित कनिष्क आदि सम्राटों की जात 'यूचियों' से की, जिनकी भाषा का नाम मध्य एशिया में पाये गये उनके अपने प्राकृत लेखों में आर्षी मिलता है। डा० कोनो ने यह खोज करने वाले प्रथम विद्वान होने का श्रेय इन्हें दिया।

काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने १६३३ में जयचन्द्र जी की इस पुस्तक को उस वर्ष की सर्वोत्कृष्ट हिन्दी पुस्तक मान कर उन्हें प्रथम द्विवेदी पदक प्रदान किया। यह पदक आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने स्वयं प्रदान किया। इसी वर्ष जयचन्द्र जी की सब से प्रसिद्ध पुस्तक "भारतीय इतिहास की रूप रेखा" दो भागों में प्रकाशित हुई। इस ग्रन्थ की मौलिकता और प्रमाणिकता का सर्वत्र मान हुआ। हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने इस ग्रन्थ पर उस वर्ष का सर्वोत्कृष्ट इतिहास ग्रन्थ होने के नाते 'मंगलाप्रसाद पारितोषिक' भेंट किया।

अनुसन्धानों की सराहना

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन द्वारा स्व० डा० गौरी-शंकर हीराचन्द ओझा को उनकी ७० वीं जन्मगांठ पर भेंट किये गये भारतीय अनुशीलन ग्रन्थ में प्रकाशित जयचन्द्र जी के लेख (नकुल का पश्चिम दिग्विजय) से उनकी भारतीय इतिहास और प्राचीन भू-अंकन के प्रति गहरी अन्तर्दृष्टि प्रकट होती है। इस लेख में महाभारत के उद्योगपर्व में वर्णित भू-अंकन की पहचान की गई है और इसका उपयोग पूना के भण्डारकर ओरियन्टल रिसर्च इंस्टिच्यूट से निकलने वाले महाभारत के आलोचनात्मक संस्करण के उस प्रकरण के मूल पाठ संशोधन के समय भरपूर किया गया। इसी लेख में महाभारत में आये 'रोहीतक बहुधान्यक' की पहिचान वर्तमान रोहतक से की गई थी। दो वर्ष बाद स्व० डा० बीरबल साहनी ने रोहतक के पास खुदाई कराते हुए करीब दस हज़ार सिक्कों के सांचे ढूंढ निकाले जिनमें "यौधयानां बहुधान्यके" यौधयों के बहुधान्यक देश में लेख था। इससे जयचन्द्र जी के सुझाव की पुष्टि हो गई। डा० साहनी ने इस घटना का विवरण देते हुए जयचन्द्र जी का सादर उल्लेख किया है।

जयचन्द्र जी की तीसरी मुख्य कृति 'इतिहास-प्रवेश' या 'भारतीय इतिहास का दिग्दर्शन' प्रकाशित होने पर प्रो० विनय कुमार सरकार ने इसे रक्तमांस के बने नर-नारियों का इतिहास बताया। यह राजनीतिक घटनाओं का विवरण-मात्र न हो कर आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक इतिहास था। हिन्दू धर्म और इस्लाम के विभिन्न संसर्गों पर आपने जो प्रकाश डाला है वह मननीय है। इस ग्रन्थ के पढ़ने के लिए ही मद्रास विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग के अध्यक्ष प्रो० नीलकण्ठ शास्त्री ने हिन्दी सीखी। इस पुस्तक के सम्बन्ध में लिखते हुए श्री शास्त्री जी ने एक पत्र में लिखा, 'आपकी पुस्तकें और भाषण जो मैंने पढ़े, किसी भारतीय भाषा में पहले हैं, जिन्होंने मुझे विश्वास दिला दिया है कि अपनी जनता को अपना इतिहास उसकी अपनी भाषा में उसी के दृष्टिकोण से बताना सम्भव और आवश्यक दोनों ही है। यह कार्य कितना महत्वपूर्ण है, सो आपने मुझे समझा दिया है।

आपने भारतीय इतिहास परिषद्, जिसके सभा-

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

पति डा० राजेन्द्र प्रसाद हैं, के तत्वाधान में भारत का एक राष्ट्रीय इतिहास भारतीय विद्वानों से लिखवाने की योजना प्रस्तुत की। इस योजना में सम्पूर्ण भारत के चोटी के ऐतिहासिक विद्वानों ने सम्मिलित होने की स्वीकृति दी।

अन्य क्षेत्रों में

जयचन्द्र जी निरे ऐतिहासिक और साहित्यिक विद्वान ही नहीं, एक राजनीतिक कर्मी, संगठनकर्ता और विचारवान् नेता भी हैं। १६२० के बाद भारत में राज्यक्रान्ति के जो गुप्त या प्रकट प्रयत्न किये जाते रहे उन के मुख्य सगठनकर्ताओं और सञ्चालकों में से वे थे। अमर शहीद सरदार भगतसिंह सुखदेव आप के शिष्यों में से थे और उन्हें क्रान्ति संगठन के भीतर लाने और सिखाने-पढ़ाने का सारा श्रेय आपको ही है। प्रसिद्ध क्रान्किारी ज्योतिषचन्द्र घोष और शचीन्द्रनाथ सान्याल से आपका घनिष्ट परिचय और सम्बन्ध था। क्रान्तिकारियों से सम्बन्ध होते हुए भी आप त्रासवादी आन्दोलन के विरोधी थे। आपका कहना था कि सैनिक क्रान्ति से ही देश को आजादी मिल सकती है, और हमें सेनाओं में घुस कर काम करने वाले सैनिक नेताओं की आवश्यकता है। आतंकवादी और त्रासवादी तरीकों से संगठन नष्ट हो जायगा और यही हुआ भी। नेपाल राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष तथा नेपाल में हो रहे विद्रोह के नेता श्री मातृकाप्रसाद कोइराला भी आपके ही एक विद्यार्थी हैं।

जयचन्द्र जी के जीवन के इस पहलू पर टिप्पणी करते हुए स्व० शचीन्द्रनाथ सान्याल ने उनकी तुलना भारतीय क्रान्तिकारी दल में लेनिन से की थी और सक्रिय क्रान्ति आन्दोलन से हट जाने तथा पूर्णतः भारतीय इतिहास के क्षेत्र में लग जाने पर खेद प्रकट किया था। किन्तु ठीक जिन कारणों से रूस में लेनिन को वहां के पुराने क्रान्ति दलों से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर अध्ययन के लिए कुछ समय इंगलैंड में जाकर चुपचाप बैठने को बाधित होना पड़ा था, लगभग वही कारण जयचन्द्र जी को भी उस क्षेत्र से खींच कर भारतीय इतिहास के मनन और विश्लेषण की ओर लाने के निमित्त बने। और वे थे अपने देश की परिस्थिति का ठीक-ठीक अध्ययन और निदान करना, जिसके बिना देश में क्रान्ति का सुलझा हुआ वातावरण पैदा ही नहीं किया जा सकता था। यही कारण है कि भारतीय और नैपाली सीमाओं का जितना गहरा ज्ञान आपको है, शायद आज अन्य किसी इतिहासकार को नहीं है।

वरुण की नौका – लेखक श्री पं० प्रियव्रत जी आचार्य गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय। इस पुस्तक में वरुण सूक्तों में आये वेदमन्त्रों की विद्वत्तापूर्ण सरल व्याख्या की है। प्रतिपद के अर्थ के साथ मन्त्र के अर्थ को सुबोध और सुगम बनाने के लिए विस्तृत व्याख्या की गई है और अन्त में अपने आत्मा को ही सम्बोधित करके मन्त्र से प्राप्त होने वाली शिक्षा का सार संक्षेप में दिया गया है। पुस्तक के आरम्भ में स्वाध्यायशील लेखक ने वरुण-सम्बन्धी ३५ पृष्ठों की एक गवेषणापूर्ण भूमिका भी दी है।

कर्मफल विज्ञान के जिज्ञासुओं के लिए यह पुस्तक एक वरदान है। लेखक ने अत्यन्त सरल भाषा में सच्चे सुख का सच्चा उपाय इसमें बताया है। प्रभु कृपा किस पर होती है और कैसे कर्म करके हम प्रभु के प्यारे हो सकते हैं इत्यादि विषय पुस्तक में दार्शनिक गहराइयों के साथ सरल रूप में वर्णित हैं। मूल्य प्रथम भाग ३), द्वितीय भाग ३)। मिलने का पता—प्रकाशन मन्दिर, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

भारत का बौद्धिक पुनरुत्थान और ऋषि दयानन्द

श्री जयचन्द्र विद्यालंकार

एक ऐसी मार्मिक युगसंधि में, जब कि हमारे देश में डेढ़ सौ बरस से टिकी हुई राज्य-संस्था और उस पर आश्रित आर्थिक सामाजिक सांस्कृतिक ढांचे की जड़ें हिल चुकी हैं, किन्तु उनके स्थान में नई संस्थाएँ जम नहीं पा रही हैं, और इस कारण जनता का कष्ट चरम सीमा तक पहुँच रहा है, जब कि हमारी प्रत्येक करनी और प्रत्येक चूक का परिणाम दूरगामी हो सकता है, आप भारत की प्रधान वाणी के उपासकों ने उस वाणी की प्रमुख संस्था की बागडोर थामने की मुझे जो आज्ञा दी है, उसे सिर आँखों पर लेता हूँ।

पन्द्रह बरस की चुनौती

हमारे देश में युगपरिवर्तन की पुकार सन् १९०५ से व्यक्त रूप से उठती रही है। १९४७ में वह युग-परिवर्तन आता दिखाई दिया तो जनता ने जाना उसकी दबी हुई वाणी अपने देश में फिर खुल कर गूंजेगी। किन्तु आज एक बरस हुआ जब जनता के प्रतिनिधि कहलाने वालों ने स्वयं यह निश्चय किया कि भारत के शासन और शिक्षा में भारत की वाणी अभी पन्द्रह बरस तक और शायद उसके बाद भी मुंह में थाम कर रखना होगा। इन निश्चयों के बाद यह प्रकट है कि हमारा अभीष्ट नवयुग अभी नहीं आया, प्रत्युत हमने एक युगसंधि में प्रवेश किया है।

संविधान-सभा का उक्त निश्चय एक सीधी चुनौती है। उस चुनौती का रूप यह है कि भारत की वाणी में नये ज्ञान और नये विचारों वाला वाङ्मय कहाँ है। पर यह चुनौती तो कोई नई नहीं है। जनता के बहुत से सेवक इससे जूझते अपने जीवन दे चुके हैं। शंकर बालकृष्ण दीक्षित, जगदीशचन्द्र वसु, प्रफुल्लचन्द्र राय, गौरीशंकर ओझा, हरप्रसाद शास्त्री, सुधाकर द्विवेदी, काशीप्रसाद जायसवाल आदि कितने ही नामों का स्मरण इस प्रसंग में हो आता है। और मैं अपने जीवन के पिछले रास्ते की ओर गरदन घुमा कर देखता हूँ तो याद आता है कि इन्हीं आचार्यों की प्रेरणा और कृपा से मेरा जीवन भी आरम्भ से ही इस चुनौती का सामना करने के लिए निवेदित रहा है। आप हिन्दी जगत् के बौद्धिक प्रतिनिधियों ने उन अग्रणियों के इस अनुयायी को आज जो अपनी पांत के आगे खड़ा किया है, इससे प्रकट है कि आप पर स्थिति को खूब समझ रहे हैं और डट कर मोर्चा लेने को कटिबद्ध हैं। आपकी यह स्थिति की पहचान मुझे आपको आगे ले चलने का बल देगी और मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि इस मोर्चे को हम जीत कर छोड़ेंगे।

युरोप की चुनौती, भारत की मोहनिद्रा

हमारे देश का अंग्रेजी में सोचने वाला वकील-अमला वर्ग जो चुनौती हमें आज दे रहा है, वह वास्तव में साढ़े चार सौ बरस पुरानी है, और वह केवल हमारी भाषाओं के लिए नहीं प्रत्युत हमारे राष्ट्र के समूचे जीवन के लिए रही है।

१५०९ ई० की दीव की लड़ाई के बाद पुर्तगालियों ने हमारे समुद्र पर एकाधिपत्य कर लिया; उसके एक शताब्दी बाद ओलन्देज़ों (डचों) और अंग्रेज़ों ने आकर हमारे समुद्र में चाँचियागीरी शुरू की—हम डेढ़ शताब्दी तक पिटते लुटते और अपनी स्त्रियों पर बलात्कार होता देखते रहे, पर उसे रोक न सके। हमारी उस अशक्तता की जड़ में केवल हमारा जलयुद्ध विद्या में पिछड़ जाना था। उस कमी की ओर हमारा ध्यान जाता तो हम उसे आठ-दस बरस में ही पूरा कर सकते थे। पर हमारा ध्यान न गया। अठारहवीं सदी तक युरोप वाले स्थल-युद्ध की विद्या में भी हम से आगे निकल गये। एक फ्रांसीसी ने तब यह भी पहचान लिया कि हमारे ज्ञान-चक्षु जिस प्रकार मुंदे हैं उसी प्रकार हमारी जनता की राष्ट्रीय भावनाएं भी सुप्त हैं, और कि उस दशा में भारत से ही भाड़ैत सेना खड़ी कर उसे नई युद्धविद्या की कुछ बाहरी बातें सिखा कर

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

अपना उपकरण बनाया जा सकता और उसके द्वारा भारत को जीता जा सकता है। १७४० से १७५२ तक इस नये उपकरण की हाथों में लिये हुई युरोपी शक्ति से भारत के नेताओं ने पहली पछाड़ें खाईं। वे उस शक्ति को देख कर स्तब्ध रह गये, उन्होंने यह नहीं देखा कि उसकी तह में केवल दो वस्तुएं थीं—एक नई युद्धविद्या और दूसरे हमारी ही जनता की जहालत से लाभ उठाना।

जागृति के अग्रदूत

उस समय के भारत के पेशवा (प्रमुख नेता) बालाजीराव ने अपनी राजनीतिक परिस्थिति को देखने समझने में भी वैसी ही जड़ता दिखाई। उसकी मूर्खता की बदौलत सन् १७५६ में जब कोंकण के विजयदुर्ग से मराठा झंडा उतार कर क्लाइव और वाटसन ने अंग्रेजी झंडा फहराया, तब वहां दो मेधावी मराठे—हरि दामोदर और उसका पुत्र रघुनाथ हरि—उपस्थित थे, जो घटनाओं को अधिक सुलझी दृष्टि से देख रहे थे। वे पहले भारतीय थे जिन्होंने इस बात को पहचाना कि युरोपी लोग हम से ज्ञान की दौड़ में जो कुछ आगे निकल गये हैं, उसमें उन्हें पकड़े बिना हम उनका मुकाबला नहीं कर सकते। हरि दामोदर को उसी साल झांसी भेजा गया। वहां रघुनाथ हरि ने नये युरोपी विज्ञान को सीखने का भारत में पहला प्रयत्न किया। उसने एक पुस्तकालय और परीक्षणालय भी स्थापित किया, जो १८५८ में अंग्रेजों की बर्बरता से ध्वस्त होने तक बना रहा।

इस बीच भाड़ैत भारतीय सेना के उपकरण से अंग्रेज़ों ने अपना साम्राज्य खड़ा कर लिया। बंगाल और महाराष्ट्र पर उनकी मार पड़ने पर वहां राममोहन राय और गोपाल हरि देशमुख जैसे विचारनेता उठे जिन्होंने उस तथ्य को फिर देखा और कहा जिसे रघुनाथ हरि ने उनसे आधी पौनी शताब्दी पहले देख लिया था। राममोहन के सामने यह बात भी स्पष्ट थी कि नया ज्ञान भारतीयों तक उनकी अपनी देसी भाषाओं में ही पहुँच सकता है और पहुँचना चाहिए। गोपाल हरि ने तो अपने राजनीतिक और सामाजिक विचार महाराष्ट्र जनता को उसकी भाषा में ही दिये। इसके बाद विशेष कर महाराष्ट्र में, जहां के लोगों में अंग्रेजी राज से पहले भारत में सब से अधिक राजनीतिक चैतन्य था, अनेक विद्वानों ने युरोप के नये ज्ञान का तत्त्व जनता की भाषा में देना आरम्भ किया। वह प्रयत्न[1] बड़ा होनहार था, किन्तु अंग्रेज़ों को भारत की प्रतिभा का उस दिशा में जाना अभीष्ट न था। उन्होंने अपनी युनिवर्सिटियां स्थापित कर, उन युनिवर्सिटियों में अंग्रेज़ी साहित्य और कानून की शिक्षा को प्रमुख स्थान दे कर उनके विद्यार्थियों में अपने देश की परिस्थिति भाषा और संस्कृति से विरक्ति पैदा कर तथा सब ऊंचे नीचे पद मिलना उन युनिवर्सिटियों की डिग्रियों पर निर्भर कर भारत की जागती हुई प्रतिभा को फिर बांझपन की एक नई दिशा में फेर दिया। भारत में अंग्रेज़ी का बोलबाला हो जाने पर भारतीय भाषाओं में सहज ही पैदा हुई वैज्ञानिक वाङ्मय की वह पहली धारा छीज गई। इस ऐतिहासिक सचाई को आज अच्छी तरह हृदयंगत कर लेना आवश्यक है। इसके बाद उस धारा को यदि बहती रक्खा तो उन लोगों ने जो अंग्रेज़ों के पैदा किये वातावरण से लोहा ले कर भी उसे जारी रखते रहे।

राममोहन और गोपाल हरि ने भारत की कमज़ोरी के कारणों पर विचार किया था, तो भी उनका ध्यान इस मोटे तथ्य की ओर न गया था कि भारत के गले

---

१. महाराष्ट्र के उस पहले प्रयत्न का वृत्तान्त यशवन्तराव दाते ने अपने लेख 'शास्त्रीय वाङ्मयाचा आढावा में दिया है; बड़ोदा मराठी साहित्य सम्मेलन १९२१ उनके पास इस युग के मराठी वैज्ञानिक ग्रंथों का अच्छा संग्रह भी है।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

में गुलामी की जंजीर उसकी अपनी भाड़ैत सेना द्वारा ही डाली गई है। गोपाल हरि के समवयस्क नाना साहब और अज़ीमुल्ला ने इस तथ्य को पहचान लिया, और उस पहचान के ज़ोर पर ही भारत का पहला स्वतन्त्रा-युद्ध लड़ा। वह युद्ध अन्त में विफल हुआ इस कारण कि उन्होंने भारत की हार के इस दूसरे मुख्य कारण को न पहचाना था कि युरोप के लोग युद्धविद्या में भारतीयों से आगे निकल चुके हैं और कि उनका मुकाबला करने के लिए भारतीयों को उस विद्या में पैठ कर उसके सिद्धान्तों के अनुसार अपनी सेना का संचालन करना चाहिए। क्या उस युद्ध के बाद भारतीयों का ध्यान अपनी विफलता के इस कारण की ओर गया? और क्या उन्होंने इसे दूर करने का प्रयत्न किया? यदि नहीं तो कहना होगा कि भारतीय मस्तिष्क में कोई स्थायी विकार है, जिसके कारण वह अपनी स्थूल ऐतिहासिक परिस्थिति को भी नहीं देखता। अंग्रेज़ों ने यह वाद चलाया कि भारतीय मस्तिष्क दार्शनिक और पारलौकिक चिन्ता में ही ग्रस्त रहता है. अपनी आंख के सामने की ठोस लौकिक वस्तु को भी नहीं देखता, अतः भारतीयों के भाग में सदा ठोकरें और मार खाना ही है। और चूंकि भारतीय मस्तिष्क एशियाई मस्तिष्क का प्रतिनिधि था, अतः अठारह सौ सत्तरों में युरोप में यह विश्वास फैल गया कि समूचा विश्व युरोप की प्रभुता में आ जाने को है।

क्रान्तिवाद और बौद्धिक पुनरुत्थान

पर भारत चाहे कई शताब्दियों से मोहनिद्रा में पड़ा था तो भी उसकी वह निद्रा त्रैकालिक या सनातन नहीं थी। १८५७-५६ की विफलता के तुरन्त बाद भारत के श्रेष्ठ-मस्तिष्क ने उसके कारणों को देखा समझा, और उन्हें दूर करने का जो प्रयत्न आरम्भ किया उसी से भारत में पुनरुत्थान का आरम्भ हुआ और क्रान्ति की धारा जनमी। दयानन्द सरस्वती १८५७ के युग में भारत के श्रेष्ठ मन के प्रतिनिधि थे। हाल की खोज से प्रकट हुआ है कि १८५७-५६ की स्वाधीनता चेष्टा से भी उनका गहरा संपर्क था। जिस व्यक्ति का तरुण मन शिवलिंग पर चूहे की लीला देखकर ही जड़ तक हिल गया था, उसने भी १८५७-५६ की महान् घटनाओं के बीच विचरते हुए उनके विषय में यदि सोचा न होता तो हमें यह मानना ही पड़ता कि भारतीय मस्तिष्क में कोई त्रैकालिक विकार है। किन्तु दयानन्द और उनके शिष्यों के कार्य से प्रकट है कि उन्होंने अपनी परिस्थिति को भली भांति देखा-समझा और उसे समझ कर जो कुछ करना चाहिए था वही किया। दयानन्द ने धार्मिक-सामाजिक सुधार की लहर चलाई और उसके लिए आर्यसमाज की स्थापना की सो तो सुविदित है। किन्तु दयानन्द भारत का बौद्धिक पुनरुद्धार भी चाहते थे, भारत के पुराने ज्ञान के साथ आधुनिक विज्ञान का समन्वय करना होगा यह विचार भी स्पष्ट रूप से उनके सामने था। उनकी उस प्रेरणा को मूर्त्त रूप देने की नींव उनके शिष्य मुन्शीराम या श्रद्धानन्द ने डाली, जिससे राष्ट्रीय शिक्षा की लहर चली। दयानन्द ने यह भी पहचाना था कि अंग्रेज जहां भारतीय मस्तिष्क को अंग्रेजी साहित्य और कानू[न] में उलझाये रखना चाहेंगे, वहां जर्मनी की ऐतिहासि[क] स्थिति ऐसी है कि वह विज्ञान और शिल्प का तत्त्व खुल कर भारत को दे सकेगा। भारत को सामरिक शिक्षा की आवश्यकता थी। पर कोई भी राष्ट्र अपनी सामरिक शिक्षा की संस्थाओं में विशेष दशाओं के बिना विदेशी युवकों को घुसने नहीं देता। उन्नीसवीं सदी की चौथी चौथाई में जर्मनी एक नई शक्ति के रूप में उठ रहा था, उसके इङ्गलैंड का प्रतिद्वंद्वी बन खड़े होने के लक्षण थे। उस दशा में वह भारतीय युवकों को अभीष्ट शिक्षा दे सकता था, यदि वे युवक सुसंघठित भारतीय क्रान्ति दल की ओर से भेजे जांय। श्यामजी कृष्ण वर्मा और कृष्णसिंह बारहट जैसे दयानन्द के शिष्यों की कार्यावली पर ध्यान देने से स्पष्ट दिखाई देता है कि

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

दयानन्द के सामने यह समूचा चित्र था। उन लोगों ने गहरे सोये हुए भारत में जागृति की चिनगारियां सुलगा कर और उन चिनगारियों को बटोर कर पहले एक क्रान्ति-संघटन की नींव डाला, और जैसे ही वह संघटन खड़ा हुआ कि वे विदेशों से संपर्क कर भारत के लिए शक्तिदायी ज्ञान पाने के उपाय करने लगे। इसमें उनका दल सफल हुआ ही चाहता था कि पहला विश्वयुद्ध आ पहुँचा।

उक्त विवेचन से यह भी प्रकट है कि राष्ट्रीय शिक्षा की लहर तथा क्रान्ति संघटन की लहर एक ही पुनरुत्थान चेष्टा के दो पहलू थे। उनकी एकप्राणता को ये पहले क्रान्तिकारी और शिक्षानेता हर दम अनुभव करते थे। श्याम जी कृष्ण वर्मा जब उदयपुर के दीवान थे तब गौरीशंकर ओझा ने उनके सचिव रूप में काम करते हुए बराबर उनसे प्रेरणा पाई। काशीप्रसाद जायसवाल जब इङ्गलैंड पढ़ने गये तब श्याम जी और उनके साथी सरदारसिंह राणा, हरदयाल और विनायक सावरकर से ही उन्हें वह प्रेरणा मिली जिससे जीवन भर वे भारतीय इतिहास की साधना में लगे रहे। अन्तिम समय तक जायसवाल की इन लोगों से घनिष्ठता रही। मेघनाद साहा जैसे वैज्ञानिक को अपने जीवन की प्रेरणा नौजवानी में ढाका अनुशीलन समिति के सदस्य होने से ही प्राप्त हुई।

दयानन्द ने विज्ञान की शिक्षा के लिए जर्मनी से संपर्क करने का जब यत्न किया तभी बंगाल में महेन्द्रलाल सरकार ने भारतीय-विज्ञान संस्था की नींव डाली। दयानन्द के समकालीन बंकिमचन्द्र चैटर्जी के लेखों में भी क्रान्ति की वैसी ही विचारधारा है। इन दोनों ने पहलेपहल भारत के आदर्श पूर्ण स्वराज्य की घोषणा १८८०ओं में की। पीछे बंगाल में विवेकानन्द और पञ्जाब में रामतीर्थ ने भी उस धारा को पुष्ट किया। भारत की भाषाओं को सींचने की कैसी उमंगें और उन भाषाओं के क्षेत्रों को बहा कर उजाड़ देने की अंग्रेजों की प्रवृत्ति के विरुद्ध वैसी उग्र भावनाएं वह धारा लिये हुए थी सो बंकिमचन्द्र के लेखों और विष्णु शास्त्री चिपलूणकर के पहले निबन्ध से प्रकट है।

समूचे भारत में एकसूत्रता रखने को भारत की एक राष्ट्रभाषा और राष्ट्रलिपि थोड़े प्रयत्न से हो सकती है यह भी इस धारा के चिन्तकों ने देख लिया था। दयानन्द की मातृभाषा गुजराती थी और शिक्षा-दीक्षा सब संस्कृत में हुई थी। उन्होंने पहले संस्कृत द्वारा भारत के विभिन्न प्रान्तों को अपना सन्देश देना चाहा। किन्तु अपनी बंगाल की यात्रा में भूदेव मुखर्जी और केशवचन्द्र सेन जैसे विचार-नेताओं के संपर्क में आने पर उन्होंने शीघ्र समझ लिया कि इस युग में समूचे भारत की जनता को अपनी एकता का उद्बोधन कराने वाली एक वाणी हिन्दी ही हो सकती है। जिसे आज हम हिन्दी कहते हैं वह ऐतिहासिक कारणों से भारत की राष्ट्रभाषा १३वीं-१४वीं शताब्दी से थी ही। पर भारतीय पुनरुत्थान के प्रसंग में इस तथ्य को पहलेपहल पहचाना बंगाली विचार नेताओं ने।

१८९०ओं में इस धारा से सींचे क्षेत्रों में वैज्ञानिक वाङ्मय के पहले मौलिक फल आने लगे। भारतीय ज्योतिष का पहला वैज्ञानिक इतिहास शंकर दीक्षित ने मराठी में प्रकाशित किया; जगदीशचन्द्र बसु और प्रफुल्लचन्द्र राय की कृतियां बंगला में प्रकट हुईं; भारत की प्राचीन लिपियों का पहला शृंखलाबद्ध इतिहास गौरीशंकर ओझा ने हिन्दी में निकाला, और आधुनिक खोज के समन्वय द्वारा भारत का पहला शृंखलाबद्ध इतिहास हरप्रसाद शास्त्री ने बँगला में पेश किया। इस परम्परा में नवम्बर १८९४ में जब जगदीशचन्द्र ने विश्व में पहलेपहल बिना तार के बिजली की तरंग चला दिखाई, तब दुनिया ने देख लिया कि लौकिक विषयों में भारत की प्रतिभा कितनी गहरी पैठ सकती और कितनी ऊँची उठ सकती है। जगदीशचन्द्र ने अपने उस महान् आविष्कार का विवरण भी पहले बँगला में

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

दिवंगतं पटेलमहोदयं प्रति श्रद्धाञ्जलिः

[१]

देशोद्गतेः कर्मसु संप्रवृत्तं
स्वातन्त्र्य-संरक्षण दत्तचित्तम् ।
लोकोपकारेऽर्पित चित्तवित्तं
मान्यं पटेलं प्रणताः समेस्मः ॥

[२]

राष्ट्रीय नौका शुभकर्णधारं
मेधाविनं भारतमातृहारम् ।
द्रोहिभ्य आभीषण वाक्प्रहारं
मान्यं पटेलं प्रणताः समेस्मः ॥

[३]

सुस्पष्टवक्तारमृजुं सुधीरं
वीराग्रगण्यं सुगुणोपपन्नम् ।
अतुल्यदक्षं किल राजनीतौ
मान्यं पटेलं प्रणता वयं स्मः ॥

[४]

क्व लप्स्यते तादृशनीतिवेत्ता
क्व लप्स्यते दीनदयालु चेताः ।
क्व लप्स्यते वीर सुधीर नेता
इत्येव चिन्ताकुलमानसाः स्मः ॥

[५]

ददातु सोमः सुमतिं समेभ्यः
ददातु देवः सुबलं जनेभ्यः ।
सन्नेतृ मृत्योरविषह्यहानिं
सोढुं तथा तत्कृत कार्यपूर्त्यै ॥

धर्मदेवो विद्यावाचस्पतिः ।

हो दिया । यदि भारत की राजशक्ति भारत के अपने हाथों में होती तो इस धारा को नियमित और स्थायी करने के लिए उसने उसी दिन से सब उपाय कर दिये होते । पर भारत के अंग्रेज़ शासकों का स्पष्ट स्वार्थ इसमें था कि इस धारा के स्रोतों को जैसे भी बने सुखा दिया जाय ।

राष्ट्रीय स्वाधीनतावादी और अधिकारप्रार्थी

१८५७-५९ की क्रान्तिचेष्टा को कुचल देने के बाद जब १८८०ओं में उन्होंने फिर भारत में स्वदेशी राज्य और स्वदेशी भाषा की यह नई पुकार उठती सुनी, तब उन्हें डर हुआ कि इसका पर्यवसान १८५७ के से विस्फोट में हो सकता है । इस खतरे को दूर करने के लिए उन्होंने निश्चय किया कि भारत के असन्तोष को प्रकट करने का नेतृत्व उस अंग्रेज़ी-दीक्षित अंग्रेजीभाषी और अंग्रेजों पर निर्भर वर्ग के हाथ दिया जाय जिसकी मांगें स्वयं क्षुद्र होंगी और जिसकी भाषा को अंग्रेज बखूबी समझ सकेंगे । इस नीति के अनुसार १८८५ में गवर्नर-जनरल डफरिन की सलाह से अंग्रेज कामदार ह्यूम ने, जो सन् ५७ में इटावे का कलक्टर रहते हुए बुर्का पहन कर बच निकला था, इण्डियन नशनल कांग्रेस की स्थापना कराई । ये दो धारायें देश में साथ साथ चलती रहीं और इस शताब्दी के शुरू में जनता ने इन्हें 'गरम' और 'नरम' नाम दिये । दोनों की आन्तरिक प्रवृत्तियों को देखते हुए इन्हें क्रमशः राष्ट्रीय स्वाधीनतावादी और अधिकारप्रार्थी कहना चाहिए । नरम या अधिकारप्रार्थी पक्ष अंग्रेजी साम्राज्य को 'विधाता की देन मानता और उसके बाहर कभी जाने की कल्पना भी न करता था । गरम या राष्ट्रीय स्वाधीनतावादी पक्ष का कहना था कि 'हमें पूर्ण स्वाधीनता चाहिए...... फिरंगी की कृपा से मिले अधिकारों पर हम थूकेंगे; हम अपनी मुक्ति स्वयं पायेंगे ।'

[हिन्दी साहित्य सम्मेलन में दिये गये भाषण का अंश]

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

पुस्तक-परिचय

ब्रह्म-विद्या—लेखक, श्री स्वामी कृष्णानन्द सरस्वती। प्रकाशक--विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोधन संस्थान, साधु-आश्रम, होश्यारपुर। पृष्ठ संख्या ४६+२५०, आकार २०×२६=८, मूल्य ६) । यह पुस्तक तीन खण्डों में विभक्त है-साध, साधक तथा साधन। पुस्तक के लेखक अनुभवी, अभ्यासी तथा विद्वान् हैं। उन्होंने अत्यन्त सुन्दर तथा उपयोगी ढंग से इन विषयों का प्रतिपादन किया है। वर्तमान भौतिक-वाद प्रधान युग में आध्यात्मिकता की रुचि बहुत कम हो गई है। फिर भी मानसिक शान्ति चाहने वाले जिज्ञासु भी, चाहे अल्प संख्या में ही सही, परन्तु हैं अवश्य। ऐसे जिज्ञासुओं के लिए इस पुस्तक में बहुत उपयोगी सामग्री एकत्रित है। प्रथम खण्ड में इस विषय का विवेचन है कि प्राणी मात्र सुख चाहता है और ऐसा सुख चाहता है जो पूर्ण हो उस में कमी न हो तथा जो नित्य रहने वाला हो। ऐसे सुख की आशा भौतिक पदार्थों से जब पूरी नहीं हो पाती तभी मनुष्य अध्यात्म पथ की ओर अग्रसर होता है। द्वितीय खण्ड में साधक में जो योग्यता होनी चाहिए उस का शास्त्रीय प्रतिपादन है। तृतीय खण्ड में अध्यात्म पथ के सम्पूर्ण प्रचलित साधनों का विवेचन है। लेखक महोदय ने अत्यन्त योग्यतापूर्वक यह स्पष्ट करने का यत्न किया है कि इस समय साधकों को क्यों सफलता प्राप्त नहीं होती। उनका कथन है कि साधकों में एकांगिता है। कोई साधक योग को, कोई वैराग्य को, कोई भक्ति को, कोई शास्त्र पाठ को और कोई किसी अन्य हठयोगादि प्रक्रियाओं को ले लेता है। तथा दूसरे आवश्यक अंगों की अवहेलना करता है। जिस से साधन में पूर्णता नहीं आती। ये सब अध्यात्म-मार्ग के साधन एक दूसरे के पूरक हैं, विरोधी नहीं। साधक को सावधान करने के लिए ये प्रकरण बहुत उपयोगी हैं। इस से साधक को यह भली प्रकार ज्ञात हो सकता है कि किस साधन का क्या महत्त्व है और उस की क्या सीमाएं हैं। यह प्रकरण इस समय में जब कि सब साधन अलग अलग पड़े हुए हैं उन में सामञ्जस्य लाने के लिए बहुत उपयोगी है। इस से अध्यात्म पथ के जिज्ञासुओं का बहुत कल्याण होने की आशा है। साधन चतुष्टय, श्रवण, मनन, निदिध्यासन आदि बहिरंग तथा अन्तरंग साधनों की शास्त्रीय तथा क्रियात्मक व्याख्या की गयी है। सभी विषयों का प्रतिपादन शास्त्र प्रमाण उद्धृत करते हुए तथा युक्ति पूर्वक किया गया है। आशा है मानसिक शान्ति चाहने वाले सज्जनों को बहुत सहायता मिलेगी। पुस्तक की भाषा विषय के अनुरूप गम्भीर तथा प्राञ्जल है। पुस्तक की छपाई सुन्दर, अक्षर सुपाठ्य, आकार प्रकार आकर्षक है।

भारत का संविधान—लेखक प्रोफेसर रघुराज एम० ए०। पृष्ठ १६०, मूल्य १॥) । इस पुस्तक के प्रणेता राजनीति और अर्थशास्त्र के अच्छे विद्वान् और हिन्दी के लब्ध प्रतिष्ठ लेखक हैं। इस समय आप कलकत्ता विश्वविद्यालय के अर्थशास्त्र विभाग में कार्य कर रहे हैं। आप राजनीति और अर्थशास्त्र पर अनेक उत्तम ग्रन्थ लिख चुके हैं। उक्त पुस्तक में नवविधान के प्रत्येक पहलू पर अधिकारपूर्वक विचार किया गया है। १८६१ से लगा कर १६१६–३५ के गवर्मेन्ट ऑफ इन्डिया एक्ट, १६ जून १६४६ की कैबिनट मिशनयोजना, इन्डियन इन्डिपेंडेंस एक्ट तक एक विहंगम दृष्टि डालने के पश्चात्, नव संविधान की विशेषता, राष्ट्रपति, मन्त्रि-परिषद् (कैबिनट), संसद् (पार्लियामेन्ट), उच्चतमन्यायालय (सुप्रीम कोर्ट), राज्य कार्यपालिका (स्टेट एक्जीक्यूटिव), उच्चन्यायालय और अधीन न्यायालय, विधायिनी शक्तियों का विभाजन (डिस्ट्रीब्यूशन आफ लैजिस्लेटिव पावर्स), प्रशासन सम्बन्ध, केन्द्र प्रशासित प्रदेश, लोकसेवा-आयोग, (पब्लिक सर्विस कमीशन), आपात उपबन्ध (इमरजैन्सी प्रॉवीजन्स) आदि समस्त आवश्यक विषयों का वर्णन, समालोचना तथा संसार

[शेष पृष्ठ ३३ पर]

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गुरुकुल समाचार

ऋतु

मकर-संक्रांति चली गई, फिर भी शीत की प्रबलता है। प्रातः सायं अच्छी ठंड पड़ती है। मकर संक्रांति से पूर्व ही शीतकालीन वर्षा हो जाने से जाड़ा मानो नए जोर से पड़ने लगा है। इस बार यह वर्षा ठीक समय पर पड़ जाने से खेतियों को बहुत लाभ हुआ है। गत तीन वर्षों से यह वर्षा पिछड़ जाया करती थी। लोहड़ी और मकर-संक्रान्ति के ऋतु पर्व कुलवासियों ने आनंद से मनाए। लोहड़ी के दिन तो सवेरे बारह बजे तक वर्षा होती रहने के कारण रंग में भंग प्रतीत होता था। पर बाद को आकाश खुल गया और ब्रह्मचारियों ने उत्साह-पूर्वक काष्ठ एकत्र कर रात को प्रेम से दो स्थानों पर लोहड़ी प्रदीप्त की और रात को देर तक आमोद प्रमोद और क्रीड़ाएं होती रहीं। कुलवासियों का स्वास्थ्य बढ़िया है। रोगीगृह में आने वाले छात्रों की संख्या मामूली सी है।

भाषण-प्रतियोगिता में विजय

मेरठ कॉलेज के वार्षिक उत्सव पर अन्तः कॉलेज हिन्दी वादविवाद प्रतियोगिता आयोजित हुई थी। वाद-विवाद का विषय रक्खा गया था "निःशस्त्री-करण से ही विश्वशान्ति हो सकती है"। इस स्पर्द्धा में गुरुकुल महाविद्यालय के तृतीय वर्ष के ब्र० श्रुतिकांत और ब्र० नारायणदत्त ने भाग लिया था। इस वाक्-संघर्ष में गुरुकुल की शानदार विजय हुई। छात्र विजय-चिन्ह (चांदी की ढाल) जीत लाए हैं। इस के अतिरिक्त सर्वोत्तम वक्ताओं के प्रथम दो वैयक्तिक पुरस्कार भी क्रमशः ब्र० श्रुतिकान्त और ब्र० नारायणदत्त को ग्रन्थों के रूप में प्राप्त हुए हैं। दोनों ही छात्रों के भाषण बहुत प्रशंसनीय रहे। ब्र० श्रुतिकांत के भाषण की भाषा और बोलने की अदा ने जहां बहुत साधुवाद पाये वहां ब्र० नारायणदत्त के तर्कों और विषय प्रतिपादन के प्रकार ने श्रोताओं को प्रभावित किया। मेरठ कालेज के गुरुजनों ने तो विशेष रूप से इन दोनों छात्रों को आशीर्वाद और साधुवाद दिए हैं। विजयी छात्रों को बधाई है।

श्री श्रद्धानन्द बलिदान-पर्व

सदा की भांति इस पुण्य पर्व का प्रारम्भ २३ दिसम्बर से हुआ। प्रथम दिवस समस्त कुलवासी श्रद्धानन्द द्वार पर एकत्र हो कर गुरुकुल के दोनों वाद्य दलों के साथ शोभा-यात्रा [जलूस] के रूप में व्यवस्थित होकर, मार्ग में कुलमाता और कुलपिता के यशोगीत गाते हुए कुलपताका की छाया में पहुँचे। वहां श्री आचार्य प्रियव्रत जी ने कुलपताका फहराई। पताका गीत गाया गया और फिर वेद मन्दिर में स्मृति-सभा हुई। जिस में छात्रों और गुरुजनों ने श्रद्धेय कुलपिता के तेजस्वी जीवन और कार्यों पर विवेचना करते हुए श्रद्धा के फूल चढ़ाए।

इस पर्व के उपलक्ष में इस बार एक वॉलीबाल टूर्नामेंट किया गया था। जिसमें अन्त में गुरुकुल का प्रथम दल विजयी हुआ। मुकाबले में रुड़की का प्रताप क्रीड़ा-दल [क्लब] था। प्रतापदल की खेल भी अच्छी सराहनीय रही। श्रद्धानन्द चल विजयोपहार गु० कु० दल के नायक ब्र० कर्मवीर को दिया गया। सर्वश्रेष्ठ खिलाड़ी का पुरस्कार ब्रह्मचारी रवीन्द्र तृतीय वर्ष को मिला। वाद्यों के निर्घोष के साथ गुरुकुलाचार्य श्री प्रियव्रत जी ने पुरस्कार वितरण विधि को संपन्न किया।

संगीत सम्मेलन

विगत ६ और ७ जनवरी को गुरुकुल में शास्त्रीय संगीत का एक सुन्दर आयोजन हुआ। इस सम्मेलन में पूना के सुप्रसिद्ध संगीत-वेत्ता श्री विनायकराव पटवर्धन, श्री दत्तात्रेय विष्णु पलुस्कर जी तथा दिल्ली के गान्धर्व महाविद्यालय के सञ्चालक श्री विनयचन्द्र

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

अपनी कलाकार-मंडली सहित पधारे थे। दो दिन तक शास्त्रीय संगीत की मधुर मन्दाकिनी प्रवाहित होती रही। श्री पटवर्धन जी ने जयजयवंती और वागेश्वरी का मिश्र राग, भैरवी और आभोगी-कानड़ा प्रस्तुत किया। साथ ही आपने कर्नाटकी संगीत और उत्तर भारतीय संगीत के प्रभेद और विशेषताओं का उदाहरणपूर्वक विवेचन भी किया। पलुस्कर जी ने शंकरा राग और भैरवी से श्रोताओं को आनन्दित किया। श्री विनयचन्द्र जी के जलतरंग की बड़ी बहार रही। श्री बलवन्तराय [प्रभात संगीत-विद्यालय मुजफ्फरनगर के सञ्चालक] श्री महादेव देशपांडे तथा श्री भास्करराव वाईकर आदि संगीतज्ञों ने अपनी अपनी कलापूर्ण गीतियों से रसिकों को खूब छकाया। सितार-प्रवीण श्री अनिलचन्द्र घर का सितार वांदन और श्री चन्द्रप्रकाश जी का बांसुरी-वादन लाजवाब रहा। इन सब कलाकारों के संग तबला बजाने में श्री फकीरचन्द जी ने भी बड़ा कौशल प्रदर्शित किया। कलाकार स्वयं ही उनके तबला-वादन की तारीफ कर रहे थे। गुरुकुल के छात्रों ने वृन्दवादन [समूह वाद्य] के रूप में तथा ब्र० शीलकान्त ने अपने गान द्वारा गुरुकुल का प्रतिनिधित्व किया। आयोजन बड़ी सुन्दरता और सुव्यवस्था के साथ संपन्न हुआ। इस कलामय अनुष्ठान के लिए बड़े प्रेम और उत्साह के साथ तैयारी में जुटे रहने वाले छात्रों में ब्र० कर्मवीर, ब्र० भक्तप्रिय, ब्र० शीलकांत और ब्र० नरपति साधुवाद के पात्र हैं।

विशेष अतिथि

संगीताचार्य विनायकराव जी पटवर्धन के शिष्य और सूपा गुरुकुल के संगीत-शिक्षक श्री भास्करराव जी वाईकर कुछ काल तक गुरुकुल में रहे। आपकी उपस्थिति से महाविद्यालय विभाग के कई छात्रों ने संगीत और वादन कला में अच्छा लाभ उठाया। आप लगन और प्रेम के साथ शास्त्रीय संगीत और वाद्यों का परिचय छात्रों को देते रहे। उनकी ही प्रेरणा और प्रयत्न से गुरुकुल के छात्र संगीत सम्मेलन में वृन्दवादन का कार्य प्रस्तुत कर सके हैं। उनकी इस सहज कृपा और उदारता के लिए हम सब कृतज्ञ हैं।

वैज्ञानिक प्रदर्शनी

आयुर्वेद कालेज के ऊपर के तल्ले पर विद्यमान गुरुकुल का सामान्य संग्रहालय गत वर्ष से वैज्ञानिक संग्रहालय के रूप में परिवर्तित कर दिया गया है। उसमें विशेष रूप से वनस्पतिशास्त्र, प्राणी-विज्ञान, जीव-विज्ञान, रसायनशास्त्र आदि से सम्बद्ध वस्तुएं रखी जाती हैं। गत वर्षों में इस प्रदर्शनी में विविध सर्पों का अच्छा संग्रह किया गया था। इस वर्ष गुरुकुल के वनस्पतिशास्त्र और जीव-विज्ञान [बायोलोजी] के उपाध्याय श्री चम्पतस्वरूप जी के पुरुषार्थ से विविध कीड़ों तथा पतंगों का बहुत बढ़िया संग्रह बन सका है। इस प्रदेश में पाए जाने वाले कोई पांच सौ प्रकार के कीट और पतंगे व्यवस्थित वर्गीकरण पूर्वक पांच मंजूषाओं में सजाकर रखे गए हैं। वन्य-पशुओं के अस्थिपंजरों को एकत्र करने का भी प्रयत्न हो रहा है।

शोक-वार्ता

खेद का विषय है कि गुरुकुल के योग्य स्नातक श्री रामेश्वरप्रसाद बिसवां निवासी (जिला सीतापुर) का गत २० दिसम्बर १९५० को देहावसान हो गया है। आप ने गुरुकुल के आयुर्वेद महाविद्यालय से सम्वत् १९८९ वि० में आयुर्वेदालंकार की पदवी पाई थी। आप बड़े विनोद शील स्वभाव के थे। आपको व्यायाम का बड़ा शौक था। कुलवासी उनकी दिवंगत आत्मा की सद्गति के लिए प्रार्थना करते हैं।

आवश्यकता

जबलपुर में कार्य करने के लिए एक ऐसे

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

आयुर्वेदालंकार स्नातक की आवश्यकता है जो आर्य समाज के प्रचार कार्य में भी अच्छा सहयोग दे सकें। पत्र-व्यवहार का पता—ब्रह्मानन्द आयुर्वेदालंकार, पटियाला आयुर्वेद फार्मेसी, जबलपुर।

स्वास्थ्य समाचार

श्रेणी	नाम रोगी ब्र०	नाम रोग	कितने दिन
१३	मदनलाल	चोट	४
१३	नरेश	विषम ज्वर	८
१३	रवीन्द्र	”	७
१३	शिवकुमार	हर्निया	२०
१३	विश्वदेव	चोट	८
१२	विश्वनाथ	प्रतिश्याय ज्वर	३
१२	रामचन्द्र	”	३
११	ओमप्रकाश भरतपुर	”	४
७	रणजीत रुड़की	ज्वर	५
५	विनोद	”	२
४	हर्षवर्धन	प्रतिश्याय ज्वर	३
४	राजेन्द्र रुड़की	खुजली	७
३	श्यामसुन्दर	चोट	६
३	सन्तोषपाल	मोच	५
४	योगीराज	”	३
२	प्रेमप्रकाश	ज्वर कास	४
४	विजय कुमार	मम्स	७
३	धीरेन्द्र	ज्वर	४
१३	जीवन प्रकाश	ज्वर व चोट	७
५	शम्भूनाथ	ज्वर	६

उपरोक्त ब्रह्मचारी गत मास रुग्ण हुए थे, अब सब स्वस्थ हैं। ब्र० शिवकुमार १३श का हार्निया, ब्र० जितेन्द्र का टौन्सिल्स का औपरेशन सफलता पूर्वक हो गया है। इन दिनों सर्दी अच्छी पड़ रही है।

[पृष्ठ ३० का शेष]

के अन्य संविधानों से उन की तुलना, पुस्तक की विशेषतायें हैं। विधान में प्रयुक्त उन शब्दों, जिन से कि पाठक अभी पूरी तरह परिचित नहीं हैं, उन के अङ्गरेजी और सरल हिन्दी पर्याय भी कोष्ठक में दिए गए हैं। विधान जैसे गूढ़ विषय को लेखक ने खूब रोचक और सरल बना दिया है। भारतीय भाषाओं में अभी तक ऐसी कोई पुस्तक प्रकाशित नहीं हुई है जिस में प्रामाणिक और संक्षिप्त रूप से भारत के नव विधान की इतनी सुन्दर विवेचना हो। हमें आशा है कि सामान्य पाठकों तथा विद्यार्थियों में प्रस्तुत पुस्तक बहुत प्रिय होगी। प्रकाशक—एच० चटर्जी ऐण्ड कं० लिमिटेड, १६, श्यामाचरण दे स्ट्रीट, कलकत्ता १२।

वैदिक दैनन्दिनी (डायरी)—सन् १६५१ की यह डायरी आर्यप्रतिनिधि सभा पञ्जाब, जालन्धर शहर के मन्त्री ने प्रकाशित की है। मूल्य १) है। प्रत्येक पृष्ठ के ऊपर वैदिक वाङ्मय से चुने हुए सुभाषित दिए हैं। उन का हिन्दी अनुवाद साथ में होने से संस्कृत न जानने वाले भी उन वैदिक आदर्शों से प्रेरणा तथा उद्बोधन प्राप्त कर सकते हैं। हम इसका खूब प्रचार चाहते हैं।

रामेश बेदी।

मुद्रक—श्री हरिवंश वेदालंकार। गुरुकुल मुद्रणालय, गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार।
प्रकाशक—मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी की

विशेष गुणदायक औषधियां

च्यवनप्राश हाइपो

च्यवनप्राश में कैल्शियम व सोडियम आदि नवीन रासायनिक पदार्थ डालकर यह योग तय्यार किया गया है। खांसी, क्षय, निबलता दमा आदि में रामबाण है और शरीर वृद्धि के लिये उत्तम रसायन है।

मूल्य ३।) पाव।

सिद्ध मकरध्वज

स्वर्ण, कस्तूरी आदि बहुमूल्य वस्तुओं से तैयार किया गया है। सब प्रकार की निर्बलता को दूर करके शरीर में शक्ति व स्फूर्ति देता है व नया जीवन लाता है।

मूल्य ३।।।) माशा, ४५) तोला।

बादाम पाक

बादाम, पिस्ता व अन्य गुणदायक वस्तुओं से तैयार किया गया है। स्वादिष्ट, बलवर्धक पाक है। मस्तिष्क व शारीरिक दुर्बलता को दूर कर शक्ति देता है।

मूल्य ४) पाव।

गुरुकुल चाय

जड़ी-बूटियों के योग से बनी देशी चाय है। सुख व स्वास्थ्य के लिये परिवार में इसका प्रयोग कीजिये। थकावट, हल्के बुखार, खांसी, जुकाम में तुरन्त लाभ दिखाती है।

मूल्य ।-) छटांक, १=) पाव।

बसन्त कुसुमाकर

सोना, चान्दी, मोती आदि से तैयार की गई यह औषधि बहुमूत्र और मधुमेह रोग में विशेष गुणकारी है। शरीर की नसों की निबलता को हटा कर समर्थ और बलवान बनाता है। मूल्य ३) माशा, ३६) तोला

चन्द्रप्रभा वटी

शिलाजीत, लोह भस्म, वंशलोचन आदि लाभदायक चीजों से तैयार की गई यह औषधि अनेक रोगों को दूर करके शरीर में नई शक्ति लाती है। खून की कमी, जिगर की निबलता, बवासीर तथा विशेषकर प्रमेह व स्वप्नदोष आदि में लाभदायक है।

मूल्य १) तोला, ४) छटांक।

महालोहादि रसायन

इसके सेवन से शरीर में नया रक्त पैदा होता है। प्रत्येक ऋतु में सेवन करने योग्य उत्तम औषधि है।

मूल्य ६) तोला।

द्राक्षासव

बलवर्धक, स्वादिष्ट पेय है। शारीरिक व मानसिक थकावट को दूर करके स्फूर्ति व शक्ति देता है।

मूल्य १।) पाव, २।) पौंड।

गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी (हरद्वार)

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

वर्ष ३
अङ्क ७

गुरुकुल-पत्रिका

फाल्गुन
२००७

व्यवस्थापक
श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति
मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी।

सम्पादक
श्री सुखदेव विद्यावाचस्पति
श्री रामेश बेदी आयुर्वेदालंकार।

इस अङ्क में

अगले अंकों में

अग्निहोत्र क्यों करना चाहिए	श्री देवराज विद्यावाचस्पति
पक्षियों का अद्भुत संसार	प्रो० राधाकृष्ण कौशिक एम. एस. सी.
शरीर शुद्धि के सम्बन्ध में पूर्व से पश्चिम क्या सीख सकता है ?	डॉ. सुन्दरलाल भंडारी, एम. बी. बी. एस., पी. सी. एम. एस.

अन्य अनेक विश्रुत लेखकों की सांस्कृतिक, साहित्यिक व स्वास्थ्य सम्बन्धी रचनाएं।

मूल्य देश में ४) वार्षिक
विदेश में ६) वार्षिक

एक प्रति
छः आने

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

ॐ

गुरुकुल-पत्रिका

[गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की मासिक पत्रिका]

उद्बोधन

उद्बुध्यध्वं समनसः सखायः समग्निमिन्ध्वं बहवः सनीडाः ।
दधिक्रामग्निमुषसं च देवीमिन्द्रावतोऽवसे निह्वये वः ॥ ऋग् १० १०-१-१

मृत्योः पदं योपयन्तो यदैत द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः ।
आप्यायमानः प्रजया धनेन शुद्धाः पूता भवत यज्ञियासः ॥ ऋग्० १०-१८-२

अश्मन्वती रीयते संरभध्वमुत्तिष्ठत प्रतरता सखायः ।
अत्रा जहीत ये असन् दुरेवा अनमीवानुत्तरेमाभि वाजान् ॥ अथर्व. १२-२-२६

इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तं, न स्वप्नाय स्पृहन्ति ।
यन्ति प्रमादमतन्द्राः ॥ ऋग्. ८-२-१८

उठो, जागो, हे भाइयो ! मनोबल से अनुप्राणित हो जाओ । एक राष्ट्र के वासी तुम सब अपने अन्दर उत्साह की अग्नि को प्रदीप्त करो । तुम्हारी रक्षार्थ मैं उस 'अग्नि' का आह्वान करता हूं जिसे धारण करते ही मनुष्य क्रियाशील हो उठता है । तुम्हारी रक्षार्थ मैं प्रकाश से जगमगाती हुई उस 'उषा' का आह्वान करता हूँ जिस से जीवन ज्योतिर्मय हो उठते हैं । अपने जीवनों को 'अग्निमय' बनाओ, अपने जीवनों को ज्योतिर्मय बनाओ ।

हे भाइयो ! उठो, मौत के पैर को परे धकेल दो, श्रेष्ठ लम्बी आयु को धारण करो । धन-धान्य तथा प्रजा से फूलो-फलो और शुद्ध-पवित्र तथा परोपकारी जीवन वाले बनो ।

उठो, मित्रो ! देखो, वह सामने अनेक विघ्न-बाधाओं के पत्थरों से भरी संसार की दुस्तर नदी वेग से बहती चली जा रही है । उठो, तैयार हो जाओ, एक-दूसरे का हाथ पकड़ लो, मिल कर उद्यम करो और उसे पार कर जाओ । जो खोटी चालें हैं उन्हें यहीं छोड़ दो । आओ, विघ्न-बाधाओं की इस भयङ्कर नदी के पार उतर कर रोग-रहित ऐश्वर्य-सुख का उपभोग करें ।

हे मनुष्य ! जाग उठ, जाग उठ, सोया मत पड़ा रह । देख, जो व्यक्ति जाग कर शुभ कर्मों में लगता है उसी को देवता चाहते हैं । सोये पड़े रहने वाले से वे प्रीति नहीं करते । अच्छी तरह समझ ले, प्रमादी की कोई सहायता नहीं करता ।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

भारतीय दृष्टि से मौलिक अध्ययन की आवश्यकता

श्री जयचन्द्र विद्यालंकार

अपनी मुक्ति स्वयं पाने के जो उपाय राष्ट्रीय स्वाधीनतावादियों के सामने थे, उनमें अपनी शिक्षा को भारतीय भाषाओं के माध्यम से स्वयं संघटित करने का प्रमुख स्थान था। 'राष्ट्रीय शिक्षा' की इस लहर का आरम्भ महात्मा मुन्शीराम उर्फ स्वामी श्रद्धानन्द ने सन् १९०० में कांगड़ी गुरुकुल की स्थापना कर के किया। उस संस्था में भारतीय भाषा में आधुनिक विज्ञान की शिक्षा देने का सब से पहला प्रयत्न किया गया। गुरुकुल के उदाहरण से १९०५ में बंगाल में 'जातीय शिक्षा परिषद्' की स्थापना हुई। अधिकार-प्रार्थी पक्ष के लोग इन राष्ट्रीय शिक्षणालयों की उपेक्षा या उपहास करते थे। उनमें इतना आत्म-विश्वास कहाँ था कि अंग्रेज़ी सरकार की सहायता बिना स्वयं किसी बड़े संघटन-कार्य को उठाने की अथवा देसी भाषाओं को अंग्रेजी की सतह पर पहुँचाने की कल्पना कर सकते?

सन् १९१० में इस हिन्दी साहित्य-सम्मेलन की स्थापना हुई। ऐसी संस्था अधिकार-प्रार्थी 'साहब लोगों' की विचारधारा से कोई मेल न खा सकती थी। इसमें या तो ऐसे लोग थे। जिन्हें भारतीय संस्कृति, भाषा और लिपि पर अटूट श्रद्धा थी, और या यदि कोई राजनीतिक आकांक्षाओं वाले लोग थे तो प्रायः राष्ट्रीय स्वाधीनतावादी विचारधारा के। इसके संस्थापक श्री पुरुषोत्तमदास टंडन राजनीति में बाल गंगाधर तिलक के अनुयायी माने जाते थे; महात्मा मुन्शीराम इसके शुरू के सभापतियों में से थे। हिन्दी के वाङ्मय को सब प्रकार के विज्ञान से भरपूर करना और देश के शासन और शिक्षा में उसे अंग्रेजी के स्थान पर बिठाना इसके आरम्भ से उद्देश्य थे।

सन् १९१४ से ही कांगड़ी गुरुकुल में आधुनिक विज्ञान के पाठ्यग्रन्थ हिन्दी में तैयार कराने का प्रयत्न आरम्भ किया गया। उस प्रसङ्ग में दो चार बरस में ही यह अनुभव हो गया कि भारतीय भाषाओं में अभिष्ट वैज्ञानिक ग्रन्थ युरोपी भाषाओं के सीधे अनुवाद से तैयार नहीं हो सकते। वह अनुभव अत्यन्त महत्त्व का था और आज उसे हृदयंगत किये बिना हम एक पग भी आगे नहीं बढ़ सकते।

उदाहरण रूप में हमें अपनी भाषाओं में इतिहास-ग्रन्थ चाहिएं। पर युरोपीयों के लिखे इतिहासों के अनुवादों से हमारा काम नहीं चलता। भारतीय विद्वान् देश-विदेश के इतिहास का मूल स्रोतों से भारतीय दृष्टि से अध्ययन-मनन कर अपने परिपक्व विचारों को दर्ज करें तभी उनकी कृतियां हमारी इतिहास वाङ्मय की आवश्यकता को पूरा कर सकती हैं। भारतीय दृष्टि से लिखे इतिहास की मांग इस समय से देश में बराबर बनी रही और उस प्रकार के अध्ययन के लिए कोई सुविधा न होते हुए भी अनेक निष्ठावान् विद्वान् इस दिशा में काम करते रहे। साथ ही मैकाले शिक्षणालयों के जिन अध्यापकों ने अपने दिमाग अंग्रेजों के हाथ बेच रक्खे थे वे यह प्रश्न उठाते रहे कि भारतीय दृष्टि का अर्थ क्या है। इस प्रश्न का क्रियात्मक उत्तर मैं पिछले बत्तीस बरस से देता रहा हूँ और आज उसे देने को एक अलग व्याख्यान की आवश्यकता होगी। तो भी दो-एक बातें यहां कह ही दूं।

भारतीय इतिहास के पहले ही अध्याय में हमारे लिए प्रश्न उठता है कि हिमालय की सब से बड़ी चोटी का नाम क्या है। अंग्रेजों ने एक अंग्रेज का नाम उस पर मढ़ा है और दुनिया को यह दिखाने की कोशिश की है कि परलोकचिन्तक भारतीयों ने अपने देश की उस महान् प्राकृतिक विभूति पर कभी ध्यान ही नहीं दिया। पर नंगा पर्वत से नमचा बरुआ तक हिमालय की प्रत्येक चोटी को जिन भारतीयों ने नाम दिये थे, वे उसकी सब से बड़ी चोटी को ही देखने से चूक जाते यह बात साधारण बुद्धि से मानने की न थी, और जर्मन, स्वीड और फ्रांसीसी विद्वान् भारत के अंग्रेज शासकों को

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

वह नाम छिपाने का दोष देते रहे। हमारे देश की मैकाले-यूनिवर्सिटियों में वर्ड्सवर्थ और टेनिसन की अंग्रेजी पर खोजें होती रहीं, पर अपने देश के इस सीधे से प्रश्न पर ध्यान देने की किसी को न सूझी। अन्त में 'भारतभूमि और उसके निवासी' में यह सुझाया गया कि दूधकोसी दून में जा कर वह नाम खोजना चाहिए और एक अकिंचन सत्यान्वेषी ने सरगमाथा का नाम खोज निकाला जिसकी सचाई अन्य अनेक स्रोतों से प्रमाणित हुई। बाबूराम खरदार ने अपनी यह खोज एक भारतीय भाषा की पत्रिका[1] में प्रकाशित की, अतः हमारे देश के उन साहब लोगों ने जो अंग्रेजी की खिड़की में से ही दुनियां को देखते हैं, पिछले दस बरस से अपने को इस ज्ञान की किरण से वंचित रखा।

भारत के इतिहास को अंग्रेजों ने हिन्दू-मुस्लिम और ब्रितानवी युगों में बांटा था। पर जैसा कि मैंने इस सम्मेलन के नागपुर अधिवेशन (१९३६) की इतिहास-परिषद् के अध्यक्षीय भाषण में कहा था, 'यदि इतिहास का प्रयोजन राष्ट्रीय-जीवन के क्रमविकास को टटोलना है तो यह युगविभाग उस विकास की सर्वथा उपेक्षा ही नहीं करता प्रत्युत उसका गलत और भ्रान्त चित्र उपस्थित करता है।' उसका ठीक चित्र उपस्थित करने के लिए सर्वथा नये अध्ययन की आवश्यकता है। हमारे सल्तनत युग (११९४-१५०९) का इतिहास केवल फारसी-अरबी सामग्री के आधार पर कहा गया है, पर उसकी संस्कृत-देसी भाषा सामग्री भी उतने ही महत्त्व की है। दोनों सामग्रियों के सामञ्जस्यात्मक अध्ययन की मांग बराबर बनी है। राखालदास बनर्जी और गौरीशंकर ओझा ने उस प्रकार के अध्ययन के बढ़िया नमूने भी पेश किये हैं। पर मैकाले-युनिवर्सिटियों के कानों पर उस मांग से जूं न रेंगी। और चूंकि राखालदास और ओझा ने इस विषय की अपनी खोजें बंगला और हिन्दी द्वारा पेश की हैं, और वे कैम्ब्रिज और ऑक्सफोर्ड से जूठी होकर नहीं आई अतः उन युनिवर्सिटियों के लट्ठभारतीयों[2] ने आज तक उन्हें पढ़ने का कष्ट नहीं किया।

भारतीय इतिहास के ब्रितानवी युग के वृत्तान्त में अंग्रेजों ने किस प्रकार सत्य की हत्या की है और किस प्रकार भारतीय-दृष्टि से नये अध्ययन की आवश्यकता है, यह वामनदास वसु ने दिखाया है। वैसे अध्ययन के लिए दर्जनों सत्यान्वेषकों की आवश्यकता है।

इतिहास को छोड़ कर अब हम समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र और राजशास्त्र पर ध्यान दें। इन विषयों पर युरोपी भाषाओं में जो ग्रन्थ हैं, उनके सिद्धान्त युरोपी समाज के तजरबे, युरोपी इतिहास और युरोपी संस्थाओं को लक्ष्य में रख कर निश्चित हुए हैं। जैसे वैयक्तिक संपत्ति का विकास कैसे हुआ, पूंजीपति और श्रमी वर्गों के सम्बन्धों की परिणति कैसे हुई, विवाह की संस्था कैसे उगी, नगर-राष्ट्रों से बड़े राष्ट्र वैसे बने, इस प्रकार के प्रश्न उपस्थित होने पर युरोपी अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र और राजशास्त्र यूनान के तजरबे से आरम्भ करते और रोम और मध्यकालीन युरोप के जीवन-विकास को टटोलते हुए आधुनिक युरोप तक पहुँचते हैं। उनके लिए वैसा करना ठीक है। किन्तु जब उनके ग्रन्थों का शब्दानुवाद भारतीय भाषाओं में पेश किया जाता है, तब भारतीय पाठक को वह वस्तु अपनी नहीं लगती। उसके मन में आश्चर्यपूर्वक प्रश्न उठता है कि क्या भारत में सम्पत्ति-वर्ग-सम्बन्धों, विवाहों और राष्ट्रों का

---

१. काठमांडू से प्रकाशित पर्वतिया पत्रिका 'शारदा' १९४०।

२. 'ज्ञानलवदुर्विदग्ध' लोगों के लिए अंग्रेजी शब्द स्नौब' है। हमारी खड़ी बोली का 'लंठ', व्रजभाषा का 'लठापांडे' और काशी की पंडितमंडली का भोजपुरी शब्द 'लट्ठ-भारती' उस अर्थ की सुन्दर अभिव्यक्ति करते हैं।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

विकास नहीं हुआ, क्या भारत का तजरबा इन विषयों में शून्य है। भारतीय भाषाओं में इन शास्त्रों की जड़ तभी जमेगी जब हमारे विद्वान् अपने देश के इतिहास अपनी संस्थाओं और अपने स्वतन्त्र चिन्तन पर भारतीय सामाजिक विज्ञानों को खड़ा करेंगे। हो सकता है इस भारतीय-दृष्टि के अध्ययन से वे सिद्धान्त और भी पुष्ट और स्पष्ट हो जायँ जिन्हें युरोपी आचार्यों ने स्थापित किया है। हो सकता है हमें उनमें कुछ फेरफार करना पड़े। किन्तु हर दशा में भारतीय जनता को इन विषयों में तभी जगाया जा सकता है जब हम भारतीय सामग्री के भारतीय दृष्टि से अध्ययन-पूर्वक भारतीय भाषाओं में इन्हें पेश करें।

यह सोचा जा सकता था कि इतिहास और सामाजिक विज्ञानों पर यह बात लागू होगी, किन्तु भौतिक विज्ञान तो सब देशों के लिए एक से हैं, अतः उनके ग्रन्थों का युरोपी भाषाओं से सीधा अनुवाद किया जा सकेगा। पर ध्यान देने से प्रकट हुआ कि वह भी नहीं हो सकता। उदाहरण के लिए, जैसा कि मैंने बीरबल साहनी अभिनन्दनग्रन्थ में लिखा है, 'वनस्पतिशास्त्र पर युरोपी भाषाओं में जो कृतियां हैं उनके उदाहरण प्रथमतः और मुख्यतः युरोपी वनस्पति के हैं, उनकी परिभाषाएं युरोपी विचार की परम्परा के अनुसार नियत हुई हैं, और उनमें वैज्ञानिक विचार का विकास टटोला जाता है तो युरोप के वनस्पतिविषयक विचार का ही। भारतीय भाषाओं में प्रामाणिक और स्वाभाविक वनस्पतिशास्त्र तैयार हो सके इससे पहले भारतीय वनस्पतियों के विस्तृत और बारीक अध्ययन की, उस अध्ययन के परिणामों के संकलन की, तथा भारतीयों के पुराने वनस्पतिविषयक और उससे संबद्ध ज्ञान और विचार के ऐतिहासिक शृङ्खला में संकलन और मथन की आवश्यकता है।'

युरोपी विद्वानों ने न केवल अपने यहां के प्रत्युत भारत के सिवाय शेष जगत् के भी वनस्पतिविषयक ज्ञान का शृङ्खलाबद्ध इतिहास लिखा है। किन्तु भारत की उस विषय में देन इतनी अधिक है कि जब तक भारतीय स्वयं उस देन का इतिहास न पेश करें, दूसरा कोई नहीं कर सकता। इस प्रकार विश्व के वनस्पतिशास्त्रीय ज्ञान के इतिहास में आज केवल भारत का स्थान खाली पड़ा है।

ठीक यही बात समूचे जीवशास्त्र (बायोलोजी) पर लागू होती है। आयुर्वेद को लीजिए। हमारे आयुर्वेद ने अब तक जो पाश्चात्य आयुर्वेद से पछाड़ नहीं खाई उसका कारण केवल जनता का अन्धविश्वास नहीं है। जहां तक शरीर की रचना और उसकी भीतरी कार्यप्रक्रियाओं का प्रश्न है, उस सम्बन्ध में यदि हमारा आयुर्वेद और आधुनिक विज्ञान दो विरोधी बातें कहते हैं तो दोनों ठीक नहीं हो सकतीं। उस अंश में भारतीय आयुर्वेद को निरर्थक समझा जायगा। किन्तु त्रिदोष-सिद्धान्त जैसी अनेक स्थापनाएँ उसमें ऐसी हैं जो व्यवहार में बड़ी उपयोगी सिद्ध होती हैं और जिन्हें आधुनिक विज्ञान स्पष्ट गलत नहीं कह सकता। आधुनिक विज्ञान की दृष्टि से उनकी ठीक ठीक व्याख्या के लिए बड़े परिश्रम और मनन की आवश्यकता है। दूसरे जिस अंश में भारतीय आयुर्वेद की स्थापनाएँ गलत सिद्ध हो भी चुकी हैं उस अंश में भी उनका ऐतिहासिक मूल्य बहुत ही ऊँचा है, और आज विज्ञान के अध्ययन में विज्ञान के इतिहास पर बहुत बल दिया जाता है। इसके अतिरिक्त जहां औषधियों के गुण और प्रभाव का प्रश्न आता है, वहां भारतीय भाषाओं के ग्रन्थों में यदि हम युरोपी ग्रन्थों का अनुवादमात्र करके केवल युरोपी औषधियों का विवेचन करें तो यह अत्यन्त अनुपयुक्त होगा। यदि हम अपने ग्रन्थों में प्राचीन भारतीय आयुर्वेद को उद्धृतमात्र करते हुए भारतीय औषधियों के भी गुण लिख दें तो उस से आधुनिक जिज्ञासा की शान्ति नहीं होगी, कारण कि हमारे पुरखों ने उनके गुण अपने साधारण तजरबे के आधार पर लिखे थे, आज का विज्ञान औषधियों के

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गुण सूक्ष्म यन्त्रों और परीक्षणों से निश्चित् करता है, अतः प्राचीन आयुर्वेद के तजरबे को आधुनिक साधनों को जांचे बिना उद्धृत करने में आज सार्थकता नहीं है। इससे यह परिणाम निकला कि भारतीय भाषाओं में यदि हम नव्यआयुर्वेद का वाङ्मय उपस्थित करना चाहते हैं, तो हमें प्राचीन आयुर्वेद की ऐतिहासिक तहबन्दी सावधानी से करनी होगी, भारतीय ओषधियों के गुणों और प्रभावों के निर्णय के लिए अनेक परीक्षणालय स्थापित करने होंगे, उन परीक्षणालयों के परिणामों को प्रामाणिक रूप से दर्ज करने की परिपाटी चलानी होगी, और विदेशों की इस विषय की ज्ञान-प्रगति के साथ अपनी ज्ञान-प्रगति का बराबर सामञ्जस्य करना होगा।

आयुर्वेद के अन्तर्गत आहारशास्त्र (डायटिक्स) आजकल अत्यन्त प्रिय विषय है। आधुनिक आहारशास्त्र में विभिन्न भोजनों के पुष्टितत्त्वों (विटामिन) और उत्तापमान (केलोरिक वैल्यू) का हिसाब दिया जाता है। पर उपलब्ध ग्रन्थों में जिन खाद्यों की ऐसी छानबीन मिलती है वे सब युरोपी खाने के हैं। भारतीय भोजन की इस ढंग की छानबीन ही अभी नहीं हुई, और जो हुई भी है उसका ग्रन्थों में संकलन नहीं हुआ। इस दशा में युरोपी भाषाओं के इस विषय के ग्रन्थों का सीधा अनुवाद भारतीय भाषाओं में करने से भारतीय पाठकों के किस काम आयगा ?

श्री जयचन्द्र विद्यालंकार

जीव जगत् को छोड़ अब हम जड़ जगत् की ओर चलें। भूगर्भशास्त्र पर यदि हमें किसी भारतीय भाषा में लिखना है तो भारत की मिट्टियों-चट्टानों के उदाहरणों को उनमें प्रथम स्थान देना होगा। उनके विषय में काफी खोज हो चुकी है और अनेक अच्छी कृतियां अंग्रेज़ी में हैं। पर उनके अनुवाद भी हम किसी भारतीय भाषा में करना चाहें तो पहले अनेक प्रकार के पत्थरों और चट्टानों के भारत के विभिन्न प्रदेशों में प्रचलित नामों का संग्रह करना होगा। ग्रैनाइट, नीस, सोपस्टोन, कोबाल्ट आदि भारत के जिन प्रदेशों में पाये जाते हैं, वहाँ की जनता इनके नाम भी जानती है, जैसे तेलिया उरगा, गोरा पत्थर, सविता आदि। पर जनता में प्रचलित ये नाम कोशों में प्रायः नहीं पाये जाते, और इन नामों को खोजे और बटोरे बिना किसी भारतीय भाषा में भूगर्भशास्त्र पर अच्छा ग्रन्थ नहीं लिखा जा सकता।

शुद्ध विज्ञान पर लिखना भी भारतीय परिस्थिति और इतिहास से बच कर नहीं हो सकता। विज्ञान और दर्शन का विचार क्षेत्र प्रायः एक ही है। दोनों में अन्तर यह है कि विज्ञान में जहाँ केवल परखे सिद्धान्तों का समावेश होता है, वहाँ दर्शन में तर्कना-मूलक विचार भी रहता है। दोनों में बहुत कर समान परिभाषाएँ प्रयुक्त होती हैं। भारत में दार्शनिक चिन्तन काफी से अधिक हो चुका है। नये वैज्ञानिक चिन्तन का उस पुराने चिन्तन के साथ समन्वय किये बिना उसकी परिभाषाएँ ठीक से निश्चित नहीं हो पातीं। इसका एक अच्छा उदाहरण यह है कि अब तक जिन वैज्ञानिक परिभाषाओं को हिन्दी में चलाने का यत्न किया गया उनमें से सुधाकर द्विवेदी की निश्चित की हुई गणित की परिभाषाएँ सब से अधिक परिपक्व सिद्ध हुईं, कारण कि वे भारत के पुराने और विश्व के नये ज्ञानचिन्तन का पूरा सामञ्जस्य कर निश्चित की गई थीं। इस अंश में तुलनात्मक अध्ययन की दिशा आचार्य ब्रजेन्द्रनाथ शील ने १९१५ में दिखाई थी।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

वर्तमान शिक्षा प्रणाली

श्री वागीश्वर विद्यालंकार

शिक्षा का उद्देश्य विद्यार्थी का शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक विकास कर उसे उत्तम नागरिक बनाना है। यदि भारत में प्रचलित वर्तमान सरकारी शिक्षा प्रणाली की जांच इस दृष्टिकोण से की जाय तो अत्यन्त निराशा होती है। इस प्रणाली के प्रति निरन्तर बढ़ता हुआ असन्तोष अधिक दबाया नहीं जा सकता। कितने ही प्रान्तों में इस के दोषों पर विचार करने तथा इस में सुधार के उपायों का निर्देश करने के लिये कमीशन बनाए गए और उन्होंने अपने परामर्श पेश भी किए परन्तु अभी तक कुछ फल निकलता नहीं दीखता। बात यह है कि शिक्षा के मुख्य सिद्धान्त हैं, जब तक उन का अनुसरण नहीं किया जायगा सफलता न होगी। मैकाले महाशय ने काले अंग्रेज उत्पन्न करने के लिये इस मैशीन का निर्माण किया था। इसने कुछ समय तक खूब कार्य किया। परन्तु अब यह घिस चुकी है। दूसरी ओर भारतवासी भी अब जाग गए हैं। फलतः काले अंग्रेज बनने के लिये उनकी धुन काफी हद तक हट चुकी हैं। ऐसी दशा में इस शिक्षा प्रणाली का असफल हो जाना बिलकुल स्वाभाविक ही था।

अपने लगभग १०० वर्ष के जीवन काल में इस शिक्षा प्रणाली ने जो फल हमें दिया है वह अत्यन्त कटु है। युरोप में शारीरिक विकास को शिक्षा का अत्यन्त महत्वपूर्ण अंग समझा जाता है किन्तु आज भारतीय शिक्षा में स्वास्थ्य रक्षा तथा शारीरिक उन्नति के लिये कोई स्थान नहीं है। शिक्षणालय प्रायः शहरों की घनी आबादी के बीच में बनाए जाते हैं जहां का दूषित वातावरण विद्यार्थी के शरीर तथा मन दोनों को अस्वस्थ करता रहता है। युरोप में जहां प्रत्येक विद्यार्थी बाधित रूप से खेलों में भाग लेता है, उसे सैनिक शिक्षा प्राप्त करनी पड़ती है, वहां भारतीय विद्यार्थी के लिये इस प्रकार का कोई नियम नहीं है। गन्दे, अन्धेरे, अस्वस्थ घरों में निवास, अपुष्टि-कारक अपर्याप्त भोजन, कुसंगति, निचले दर्जे के चल चित्रपट और उस पर पढ़ाई लिखाई का अनावश्यक भारी बोझ विद्यार्थियों के शरीर को पनपने नहीं देते। बचपन से ही वे असाध्य रोगों के शिकार होने लगते हैं। दुबला-पतला शरीर, आंखों पर ऐनक, बदहजमी या बवासीर ये एक विद्यार्थी के आवश्यक चिन्ह हैं। मतलब यह है कि विद्यार्थी उतना ज्ञान उपार्जन नहीं करता जितना उसे करना चाहिए।

केवल पुस्तकें पढ़ा देने मात्र से ही यहां शिक्षकों के कर्त्तव्य की इतिश्री हो जाती है। बालकों को बुरी आदतों से बचा कर उन्हें सदाचारी बनाने की ओर किसी का ध्यान नहीं जाता। कोई २ शिक्षक तो

यह जो विवेचना मैंने आपके सामने की है, इसके तत्त्व सन् १९१० से १९१६ तक काँगड़ी गुरुकुल में अच्छी तरह पहचान लिये गये थे, भले ही उन्हें किसी ने वैसे स्पष्ट शब्दों में न रक्खा हो जैसे शब्दों में मैंने आज यहां रक्खा है। इन तत्वों को पहचान लेने पर यह बात स्पष्ट हो गई थी कि भारतीय भाषाओं में जिस वैज्ञानिक वाङ्मय की आवश्यकता है वह गहरे अध्ययन और खोज से तथा सुसंघटित सहोद्योगी श्रम से ही तैयार हो सकता है। किन्तु १९१६ से लेकर आज तक ३४ वर्षों में यह काम हुआ क्यों नहीं, यह प्रश्न अब आपके सामने आता है। आज जब हम इस कार्य को १५ बरस में या और भी जल्दी कर लेना चाहते हैं तब यह प्रश्न सब से अधिक महत्त्व का है। चौंतीस वर्षों के इस तजरबे से यदि हम नहीं सीखते तो हम फिर ठोकरें खायेंगे और खा कर भी कुछ न पायेंगे।

[हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के सभापतिपद से दिये गये भाषण का अंश]

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

उन्हें उलटे दुराचार की शिक्षा देने से भी नहीं चूकते।

घरों में माता या तो प्राय: अशिक्षित ही होती है। यदि कुछ शिक्षित भी हुई तो उसे गृह कार्यों से ही फ़ुर्सत नहीं मिलती जिससे कि वह बच्चे की ओर ध्यान दे सके। इस प्रकार की उपेक्षा से बच्चे का चरित्र बिगड़ता ही चला जाता है। किसी २ गरीब बालक को विद्यालय से लौट कर घर के कार्यों में सहायता करनी पड़ती है जिस से वह अपना सारा ध्यान एकमात्र पढ़ाई में नहीं लगा सकता। जिन विद्यार्थियों को बोर्डिंग हाउसों या होस्टलों में रहना पड़ता है उनकी अवस्था और भी अधिक खराब होती है। इन आश्रमों का वातावरण प्रायः अत्यन्त दूषित होता है। पूर्ण नियन्त्रण के अभाव में बहुत सी बुराइयां इन आश्रमों में उत्पन्न हो जाती है। जिन्हें न तो कोई रोकने का यत्न ही करता है न वे रोकी ही जा सकती हैं। इन आश्रमों के विद्यार्थी और भी अधिक उच्छृङ्खल, आचारहीन तथा शरारती हो जाते हैं। वे प्राय: किसी भी दुर्व्यसन से बचे नहीं रहते। इन आश्रमों में माता-पिता की दृष्टि से दूर रह कर अमीर, फिजूलखर्च बिगड़े हुए फैशनेबल विद्यार्थियों की देखा देखी देहातों के सीधे सादे विद्यार्थी भी इन बुराइयों में फंस जाते हैं। विद्यार्थियों में दुराचार सम्बन्धी रोगों की संख्या तीव्रगति से बढ़ रही है। शृङ्गार की सामग्री जितनी शहरों के विद्यार्थी खरीदते हैं उतनी साधारण सद्‌गृहस्थ महिलाएं भी नहीं खरीदतीं। नए से नए फैशन के शिकार पहले-पहल ये विद्यार्थी ही होते हैं। इस से स्पष्ट है कि देश के वे नवयुवक जिन्होंने जातीय-भवन की नींव में एक दिन पत्थर का काम देना है किस प्रकार खोखले और थोथे हो जाते हैं। क्या ये कभी राणा प्रताप और छत्रपति शिवाजी की तरह देश की स्वाधीनता के संग्राम में अपने जीवन की आहुति दे सकते हैं।

सरकारी शिक्षाप्रणाली द्वारा शिक्षित नवयुवकों का मानसिक विकास पूर्ण नहीं हो सकता। इसका सब से बड़ा कारण शिक्षा का माध्यम अपनी मातृभाषा का न होना है। विद्यार्थी के जीवन का बहुत सा अमूल्य भाग तो केवल अंग्रेज़ी भाषा सीखने में ही व्यय हो जाता है। बी ए. तक अंग्रेज़ी भाषा आवश्यक विषय के रूप में पढ़नी पड़ती है। तब भी उस पर विद्यार्थी को पूरा अधिकार प्राप्त नहीं होता। बोलचाल आदि के लिए काम चलाऊ अंग्रेजी सीख लेने पर भी उसके द्वारा गम्भीर तथा कठिन विषयों का अध्ययन वास्तविक अर्थों में किया ही नहीं जा सकता। किसी अन्य स्वतन्त्र देश के विद्यार्थी के साथ उस भारतीय विद्यार्थी की तुलना तो कीजिए जिसे ज्ञान-विज्ञान सीखने के लिये अपनी शिक्षा का सब से अधिक समय एक विदेशी भाषा पर खोना पड़ता है। यही कारण है कि अन्य देशों में साधारण ज्ञान तथा उच्च शिक्षा का स्टैन्डर्ड यहां की अपेक्षा कहीं अधिक उच्च है।

इसका दूसरा दोष यह है कि अध्यापक तथ विद्यार्थी का सम्बन्ध विद्यालय में केवल कुछ घंटों के लिये होता है। वे अध्यापक भी श्रेणी में अच्छी तरह से नहीं पढ़ाते जिस से कि विद्यार्थी घर पर बुला कर उन से पढ़े और इस प्रकार उन्हें आर्थिक लाभ हो। साथ ही यह भी बात है कि जब तक अध्यापक तथा विद्यार्थी में गुरु शिष्य की पवित्र भावना न हो और विद्यार्थी गुरुओं के निकट सहवास में रह कर उन के आचार-विचारों से निरन्तर कुछ न कुछ सीखते न रहें तब तक उनका विद्याभ्यास पूर्ण हो ही नहीं सकता। पुस्तकों तथा मौखिक उपदेशों की अपेक्षा कहीं अधिक गहरा प्रभाव उच्च जीवन का पड़ता है। किन्तु भारतीय विद्यार्थी इस से सर्वथा वंचित रहता है यह उसका बड़ा दुर्भाग्य है।

यह शिक्षा विद्यार्थी को योग्य बनाने के बदले अयोग्य बना देती है अपने हाथ से काम करने में उसे शरम आती है; परिश्रम वह कर नहीं सकता। नौकरी

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

आज-कल मिलती नहीं, कला-कौशल शिक्षणालयों में सिखाए नहीं जाते, व्यापार के लिये साधन नहीं, विद्यार्थी जीवन में आदत अपव्यय की पड़ जाती है, कॉलिज की फीस देते २ घर का दिवाला निकल जाता है, आत्म-विश्वास है नहीं, परिणाम यह होता है कि एक दिन वह आत्मघात द्वारा अपने जीवन के दुःखान्त नाटक का उपसंहार कर देता है।

इस दूषित शिक्षा का एक अत्यन्त विषमय प्रभाव यह हुआ है कि हम युरोपियन जातियों के मुकाबले में अपने आपको हीन समझने लगे हैं। भारतीय विद्यार्थी अपने पूर्वजों के उज्ज्वल इतिहास को उन को संस्कृति, उनकी सभ्यता को या तो जानता ही नहीं, यदि जानता है तो बिल्कुल अशुद्ध। उसे यही पढ़ाया जाता है कि वेद गड़रियों के गीत हैं। भारतीयों का कोई धर्म, कोई सदाचार, कोई राज्य कभी रहा ही नहीं। भारत का जल-वायु तथा भौगोलिक परिस्थितियां ही ऐसी हैं जिन में कोई जाति किसी प्रकार की उन्नति कर ही नहीं सकती। इसी लिये भारत सदा से बाहर के आक्रमणकारियों द्वारा लुटता, पिटता और जीता जाता रहा है। सदा से पराधीन रहा है। छोटी श्रेणियों से लेकर पर तक यही कहानी नाना सिद्धान्तों के रूप में हमें टाई जाती है धीरे २ हम स्वयं भी यही विश्वास करने लगते हैं कि हमारे पाश्चात्य गुरु जो कहते हैं वह अक्षरशः सत्य है। हमारे पूर्वज जंगली थे, उन्होंने कभी कोई आविष्कार नहीं किया, धार्मिक या राजनीतिक उन्नति नहीं की, विजय नहीं की, दार्शनिक विचार, आध्यात्मिक चिन्तन नहीं किया। प्रकृति, जीवात्मा तथा परमात्मा सम्बन्धी समस्याओं ने उन के ध्यान को कभी आकृष्ट किया ही नहीं। हम कपिल, व्यास, गौतम, कणाद, बुद्ध, चन्द्रगुप्त, अशोक, समुद्रगुप्त, कालिदास आदि के विषय में उतना नहीं जानते जितना एरिस्टोटल, प्लेटो, सिकन्दर शेक्सपीयर, मिल्टन, न्यूटन, कान्ट आदि के विषय में जानते हैं। इस शिक्षा ने सचमुच ही इन थोड़े से दिनों में हमारे हृदय को अभारतीय बना दिया है। हमें अपने धर्म, अपनी संस्कृति, अपने पूर्वजों और महापुरुषों से प्रेम नहीं रहा. इस अनर्थ परम्परा की समाप्ति यहीं नहीं हो जाती। अब कालिजों में सह-शिक्षा का भी परीक्षण और प्रचार हो रहा है। अमेरिका में इस सह-शिक्षा ने जो गुल खिलायें हैं उन्हें देखकर भी हमारी आंखें नहीं खुलती। हम अन्धे हो कर युरोप का अनुकरण कर रहे हैं। हमारी यह मानसिक दासता हमें कहां डुबाएगी, नहीं कहा जा सकता।

हमारी औसत आयु २३, २४ वर्ष है। उन में २२ वर्ष के लगभग तो यहां की उच्च शिक्षा प्राप्त करने में ही लग जाते हैं। इसके पश्चात् फिर विलायत जा कर भी न पढ़े तो क्या पढ़े। क्योंकि अच्छी नौकरी यदि मिल सकती है तो विलायती डिग्री के बल पर ही। हिन्दी और संस्कृत का अध्ययन भी विलायत में हो, इस से बढ़कर भारतीय शिक्षा-प्रणाली का उपहास क्या होगा? इतनी दौड़धूप करने के बाद भी मक्खी ने छींक दिया तो देखते ही रह जाते हैं। नौकरियां अब परीक्षाओं और योग्यता के आधार पर नहीं किन्तु सिफारिश के आधार पर मिलने लगी हैं।

यह तो हुई शिक्षा की बात, अब परीक्षा को लीजिये। प्रतिवर्ष परीक्षा परिणाम निकलने के पश्चात् असफल विद्यार्थियों द्वारा आत्मघात करने के समाचार सुनने में आते रहते हैं। काली माई बकरों और भैंसों की बलि मांगती है तो परीक्षा पिशाची नर बलि से कम में संतुष्ट नहीं होती। 'विद्ययाऽमृतमश्नुते' विद्या कभी अमृत प्राप्ति का साधन थी आज वह मृत्यु का कारण बन गयी है।

शिक्षाप्रणाली के दोष से परीक्षा को अनुचित महत्व मिल गया है। ऐसा कोई उपाय नहीं सूझता जिस से विद्यार्थी प्रतिदिन याद करके साथ-साथ ही परीक्षा दे दे। परीक्षा क्या है? रक्त पिपासु महाजन का चिट्ठा है, जिसे वर्ष या दो वर्ष बाद चक्र व्याज के साथ

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

अपना स्वास्थ्य, अपने शरीर का रक्त दे कर चुकाना पड़ता है। सब शिक्षाविज्ञ स्वीकार करते हैं कि प्रचलित परीक्षा पद्धति योग्यता की वास्तविक कसौटी नहीं। इस में कुछ तो स्मृति शक्ति का खेल है, कुछ भाग्य की करामात, तो भी पंचों का कहा सिर माथे, पर परनाला वहीं रहेगा। अभागा विद्यार्थी एक वर्ष एक पर्चे में अनुत्तीर्ण होता है तो दूसरे वर्ष दूसरे में। शिक्षा के कर्णधार कसम खाए बैठे हैं कि जब तक सब पर्चों में एक साथ उत्तीर्ण न होगा आगे कदम न बढ़ाने देंगे। कोई इस के विरुद्ध आन्दोलन करना चाहे तो नक्कारखाने में तूती की आवाज कौन सुनता है? जो इस चक्की में से सही सलामत निकल गए उन्हें क्या गरज पड़ी है कि इस के विरुद्ध आवाज उठाए जो इस में से निकले नहीं उन की सुनता कौन है।

समझ और स्मृति शक्ति में बड़ा अन्तर है। भारतीय विद्यार्थी के लिये अंग्रेजी भाषा सीखना, उतना समझने पर आश्रित नहीं जितना रटने पर। अपनी मातृभाषा में विषय का कितना ही विशद ज्ञान क्यों न हो, यदि विद्यार्थी उसे शुद्ध अंग्रेजी में नहीं लिख सकता तो परीक्षा की भूल-भुलैयां से निकल सकना उस के लिए असम्भव है। मतलब यह कि भारतीय विद्यार्थी के लिये आज मातृभाषा नहीं किन्तु अंग्रेजी ही 'त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव। त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव त्वमेव सर्वं मम देव देव' है संस्कृत या फारसी की ऊँची परीक्षा देकर केवल अंग्रेजी में बी. ए. और एम. ए. पास करने पर वह विद्यार्थी ग्रेजुएट बन सकता है जिसने एक भी विज्ञान नहीं पढ़ा किन्तु मातृभाषा द्वारा कई विज्ञानों की उच्च शिक्षा प्राप्त करके भी वह अपठित ही माना जाता है। हमारी लज्जा और वेदना की पराकाष्ठा हो जाती है जब हम अपने बड़े २ विद्यादिग्गजों और शिक्षा के कर्णधारों के मुख से यह सुनते हैं कि भारत में मातृभाषा द्वारा उच्च शिक्षा नहीं दी जा सकती। क्या परमात्मा ने संसार भर में छांट कर हिन्दी को ही ऐसा बनाया है कि उस में वह टूटी-फूटी शिक्षा भी नहीं दी जा सकती जिसे पूर्ण करने के लिए विलायत जाने की आवश्यकता शेष रह जाती है, सचाई तो यह है कि हम अपनी भाषा का आदर करना ही नहीं जानते। जब गुरुओं की यह मनोवृत्ति है तो शिष्यों का कहना ही क्या?

परीक्षक विद्यार्थी की वास्तविक योग्यता के विषय में वैयक्तिक रूप से कुछ भी नहीं जानता। वह केवल पर्चे को देखता है। एक २ परीक्षक को सैंकड़ों पर्चों की घास सी काटनी होती है फिर परीक्षक है भी मनुष्य ही। वह अपनी तात्कालिक मनोवृत्तियों से ऊपर नहीं उठ सकता। उस का प्रभाव उस के अंक देने पर पड़ता है। कितनी ही बार परीक्षक के भ्रम या असावधानता से विद्यार्थी अनुत्तीर्ण हो जाते हैं किन्तु उन्हें मुंह खोलने का अधिकार नहीं, खून के अपराधी को अपील का अधिकार है पर परीक्षार्थी उस से भी वंचित हैं। एक विषय में कुछ नम्बरों की कमी रही नहीं कि मामला फिर ३६५ दिन पीछे जा पड़ता है। गरीब विद्यार्थी के लघु जीवन के वर्ष कितने दयनीय रूप में सस्ते हैं? हमें इस बात की चिन्ता नहीं कि हम अपने नवयुवकों के जीवन के श्रेष्ठतम भाग को व्यर्थ के प्रपञ्चों में व्यर्थ न कर उन्हें शीघ्र योग्य बना राष्ट्र-निर्माण के महान् कार्य में लग जाने दें।

धन, जीवन, स्वास्थ्य, सदाचार, स्वधर्म और स्वसंस्कृति को खोकर प्राप्त किये हुए तथा कथित शिक्षा के कुछ अक्षर कितने महंगे हैं इसका अनुमान कीजिए। देश में प्रचलित वर्तमान शिक्षा प्रणाली की असफलता को सिद्ध करने के लिये अब भी क्या किसी अन्य प्रमाण की आवश्यकता है।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

सातवाहन युग की मूर्ति कला

श्री हरिदत्त वेदालंकर

मौर्यों के पतन से गुप्तों के उदय तक की पांच शतियां भारतीय कला के इतिहास में बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। इस समय सांची, भारहुत, बुद्ध गया, सांची, गांधार, अमरावती और नागार्जुनी कोंडा में विभिन्न प्रकार की कला-शैलियों का विकास हुआ। इनमें पहली तीन तो प्रधानतः शुंगकाल (१८८ ई० पू०—३० ई०) से सम्बद्ध हैं और शेष कुशाण-सातवाहनकाल (पू०—३०० ई०) से। इन दोनों कालों की एक बड़ी भेदक विशेषता यह है कि पहले काल में बुद्ध की कोई प्रतिमा या मूर्ति नहीं बनी, उन्हें सर्वत्र चरण, छत्र, पादुका, धर्मचक्र, आसन, कमल या स्वस्तिक के संकेत से प्रकट किया गया, किन्तु दूसरे काल में इनकी खूब मूर्तियां बनने लगीं। दूसरी विशेषता यह है कि भारहुत, सांची और बुद्ध गया के कलाकारों का विषय यद्यपि बौद्ध है, उनका उद्देश्य स्तूपों को अलंकृत करना है किन्तु मूर्तियां धार्मिक न होकर यथार्थवादी, प्राकृतिक और ऐन्द्रियिक हैं। इनमें धर्मतत्त्व की प्रधानता नहीं, किन्तु लोकजीवन का सच्चा प्रतिबिम्ब है। यह कला बौद्ध धर्म के द्वारा अनुप्राणित नहीं, प्रत्युत उस समय प्रचलित लोक-कला का बौद्ध धर्म की आवश्यकताओं के अनुसार बदला हुआ रूप है।

श्री हरिदत्त वेदालंकार

भारहुत

मध्यभारत के नागोद राज्य में दूसरी श० ई० पू० के मध्य में भारहुत में एक विशाल स्तूप की रचना हुई। दुर्भाग्यवश यह स्तूप विध्वस्त हो चुका है; किन्तु इसे घेरने वाली पत्थर की बाड़ें (वेष्टनियां) का कुछ भाग और इसका एक तोरण कलकत्ता के भारतीय संग्रहालय में सुरक्षित है। इससे भारतीय कला में एक नई प्रवृत्ति की सूचना मिलती है। अशोक कालीन बौद्ध कला बहुत सादी थी, उसमें प्रधानता पशु-मूर्त्तियों की ही थी, किन्तु नई कला में बुद्ध के जीवन से सम्बन्ध रखने वाले दृश्यों को पत्थर में तराशा जाने लगा। भारहुत की पत्थर की बाड़ ऐसे ही मूर्त्ति-शिल्प से अलंकृत है। इसमें आधा दर्जन तो बुद्ध के चरित्र से सम्बद्ध ऐतिहासिक दृश्य हैं और चालीस के लगभग जातक कथाओं का अंकन है, अनेक दृश्यों के नीचे मूर्त्ति का विषय लिखा हुआ है। पहले प्रकार के दृश्यों में जेतवन का दान विशेष रूप से उल्लेखनीय है। भारहुत कला में पशु-पक्षियों, नागराज और जानवरों की मूर्तियां बड़ी सजीव और स्वाभाविक हैं। इसमें केवल भक्ति भाव के ही नहीं अपितु हास्यरस के अनेक चित्र हैं। जातक दृश्यों में बन्दरों की लीलाएं हैं एक स्थान पर बन्दरों का दल एक हाथी को गाजे-बाजे से लिये जा रहा है। एक वह दृश्य भी कम हंसी का नहीं है, जिसमें एक मनुष्य का दांत हाथी द्वारा खींचे जाने वाले एक बड़े भारी संडासे से उखाड़ा जा रहा है, भारहुत के चित्र हमारे प्राचीन भारत के आमोद-प्रमोदपूर्ण लोक-जीवन का वास्तविक दिग्दर्शन कराते हैं उनमें धर्मग्रन्थों के दुःख और निराशावाद की हल्की सी झलक भी नहीं है। कला की दृष्टि से भारहुत की मानवीय मूर्तियां आकार और आसन में दोषपूर्ण हैं उनमें चपटापन है, किन्तु समग्र रूपेण ये तत्कालीन धार्मिक विश्वास, पहनावे आदि पर सुन्दर प्रकाश डालती हैं।

बुद्ध गया के प्रसिद्ध मन्दिर के चारों ओर एक छोटी बाड़ है। यह सम्भवतः पहली श० ई० पू० की

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

है। इस पर बने कमलों और प्राणियों के अलंकरण भारहुत जैसे हैं; किन्तु उसकी अपेक्षा अधिक सुन्दर हैं और यह सूचित करते हैं कि इस समय तक कला काफी उन्नत हो चुकी थी।

सांची

यह बुद्ध गया से भी अधिक उत्कृष्ट शिल्पकला का द्योतक है। इसमें तीन बड़े स्तूप हैं और सौभाग्यवश काल के क्रूर आघात होने पर भी काफी अच्छी अवस्था में हैं। अशोककालीन प्रधान स्तूप के ५४ फीट ऊँचे अर्ध गोलाकार गुम्बद के चारों ओर पत्थर की बाड़ है, प्रदक्षिणा के लिए पथ है तथा पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण में चार तोरण या द्वार हैं। प्रत्येक द्वार चौदह फुट ऊँचे दो वर्गाकार स्तम्भों से बना है, इनके ऊपर बीच में से तनिक कमानीदार तीन बड़ेरियां हैं। सांची में स्तूप की वेष्टनी तो सादी है, किन्तु चारों तोरण भारहुत की भांति बुद्ध-जीवन के तथा जातकों के दृश्यों को चित्रित करने वाली मूर्तियों से अलंकृत हैं। बड़ेरियों पर सिंह, हाथी, धर्मचक्रयक्ष, त्रिरत्न के चिह्न हैं। इन पर विपरीत दिशाओं में मुंह किये ऊंट, हिरन, बैल, मोर, हाथी आदि के जोड़े बड़ी सफाई और वास्तविकता से बने हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि सारा पशु जगत् भगवान् बुद्ध की उपासना के लिए उमड़ पड़ा है। खम्भे के निचले हिस्से में द्वार-रक्षक यक्ष बने हैं। खंभा पूरा होने पर बड़ेरियों का बोझ ढोने के लिए अन्दर की ओर चौमुखे हाथी तथा बौने बने हुए हैं तथा बाहर की ओर वृक्षवासिनी यक्षिणियां या वृक्षिकाएं। इनकी भाव-भंगी बड़ी मनोरम है। सांची की मूर्तियां और विषय भारहुत जैसे हैं; किन्तु इनके शिल्पियों ने भारहुत के मूर्तिकारों की अपेक्षा शिल्प तथा कलात्मक कल्पना में अधिक प्रौढ़ता प्रदर्शित की है, मनुष्यों को विभिन्न आसनों तथा भाव-भंगियों में अधिक सफाई से दिखाया है, इनमें सरल और सुस्पष्टरूप से पाषाण में जटिल कथाओं और भावों को प्रतिबिम्बित करने की अधिक सामर्थ्य है। भारहुत की भांति, यह स्तूप भी उस समय के लोक जीवन और संस्कृति का विश्वकोश है।

मथुरा महातीर्थ व्यापारिक केन्द्र तथा कुशाणों की राजधानी होने से ईसा की पहली शतियों में कला का एक महान् केन्द्र था।

मथुरा शैली

शुंगकाल में यहां भारहुत की लोक-कला तथा सांची की उन्नत शैली साथ-साथ चल रही थी। कुशाण काल में यह एक हो गई। पुरानी कलाओं में चपटापन अधिक था, यह इस युग में दूर हो गया। किन्तु भारहुत के अभिप्राय और अलंकरण बने रहे। मथुरा से इस काल की असंख्य मूर्तियां मिली हैं, यह इनका अक्षय कोश प्रतीत होता है। ये सभी मूर्तियां सफेद चित्ती वाले लाल रवादार पत्थर की हैं। मथुरा शैली के पुराने और पिछले दो बड़े भाग किये जाते हैं। पुराने काल की मूर्तियां लगभग भारहुत जैसी और काफी अनगढ़ हैं। किन्तु पिछले काल में वे काफी परिष्कृत हो जाती हैं और इनमें एक महत्त्वपूर्ण नवीनता बुद्ध की प्रतिमा है। बुद्ध की शिक्षा मूर्ति-पूजा के विरुद्ध थी, चिरकाल तक उनकी मूर्ति नहीं बनी, भारहुत और सांची में यही स्थिति थी, किन्तु भक्त भगवान् के दर्शन के लिए छटपटाते रहे। वे उनकी मूर्ति चाहते थे। मथुरा के कलाकारों ने उसे प्रस्तुत कर जन-साधारण की आकांक्षा को पूरा किया। बुद्ध की मूर्ति बनने से भारतीय कला में युगान्तर हो गया, अगली कई शतियों तक भारतीय शिल्पी बुद्ध की मूर्तियों द्वारा इस देश के आध्यात्मिक विचारों की उच्चतम अभिव्यक्ति करते रहे।

गान्धार शैली

जिस समय मथुरा के मूर्तिकार भगवान् बुद्ध की प्रतिमा बना रहे थे, लगभग उसी समय उत्तर-पश्चिमी भारत (गान्धार) में कुशाण राजाओं के प्रोत्साहन

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

से वहां के मूर्तिकार एक विशेष प्रकार की बुद्ध मूर्तियां बनाने लगे। ये सब प्रायः काले स्लेट के पत्थर की या कुछ चूने मसाले की बनी हैं। इस तरह की हजारों मूर्तियां अफगानिस्तान, तक्षशिला, उत्तर पश्चिमी सीमा प्रान्त से मिल चुकी हैं. इनका समय ५०-३०० ई० तक माना जाता है। गान्धार देश में विकसित होने के कारण, इन मूर्तियों की शैली को गान्धार शैली कहा जाता है। सरसरी तौर से देखने पर इनका सम्बन्ध यूनानी कला से प्रतीत होता है अतः इसे हिन्दयूनानी कला भी कहा जाता है। यूनान को सभ्यता का आदि स्रोत समझने वाले योरोपियन विद्वानों ने इस शैली को असाधारण महत्त्व दिया है, आज से दो तीन दशक पहले प्राचीन भारत में केवल इसी शैली को वास्तविक कलात्मक शैली समझा जाता था, अब तक अनेक कलाविदों की यह धारणा है कि समग्र भारतीय मूर्ति-कला का मूल यहीं है; किन्तु नई खोजों से यह बात भली भांति सिद्ध हो चुकी है कि इस शैली का महत्त्व अत्युक्तिपूर्ण है। इसका परवर्त्ती कला पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। गान्धार शैली के मूल तत्त्व भारतीय हैं, इसमें यूनानी मूर्तिकला की वास्तविकता और भारतीय कला का भावमय आध्यात्मिक अभिव्यंजना का प्रयत्न किया गया किन्तु इन दोनों के विजातीय होने से यह असफल हुआ और यह शैली स्वयमेव समाप्त हो गई।

गान्धार शैली की मूर्तियां अपनी कई विशेषताओं के कारण झट पहचानी जाती हैं। पहली विलक्षणता मानव शरीर का वास्तववादी दृष्टिकोण से अंकन है, इसमें अंग-प्रत्यंग और मांस-पेशियों को अधिक सूक्ष्मता और ध्यान के साथ चित्रित किया गया है। दूसरी विशेषता यह है कि मूर्तियों को मोटे कपड़े पहनाये गए हैं तथा उनकी सलवटें बड़ी सूक्ष्मता से दिखाई गई हैं इस शैली की बुद्ध मूर्तियां भारत में अन्यत्र पाई जाने वाली प्रतिमाओं से बिलकुल भिन्न हैं, ये प्रायः कुछ को शरीर से बिलकुल सटे, अंग-प्रत्यंग दिखाने वाले झीने या अर्ध पार दर्शक वस्त्रों में चित्रित करती हैं; और उन्हें आदर्श मानव के रूप में अंकित करती है। यूनानियों के लिए मनुष्य और मनुष्य की बुद्धि सभी कुछ थी, उन्होंने देवताओं को भी मानव रूप प्रदान किया; भारतीय देवताओं में श्रद्धा रखते थे. उन्होंने मनुष्य को भी देव बना डाला। यही कारण है कि यूनानी कला वास्तववादी है और भारतीय आदर्शवादी। पहली भौतिक है और दूसरी आध्यात्मिक। गान्धारशैली में इन दोनों का सम्मिश्रण था। गान्धार कलाकार की आत्मा और हृदय भारतीय था किन्तु बाह्य शरीर यूनानी। यह शैली मध्य एशिया होती हुई चीन और जापान तक पहुँची तथा इसने उन देशों की कला को प्रभावित किया। पहले यह समझा जाता था कि बुद्ध की मूर्ति सबसे पहले इन्हीं कलाकारों ने बनाई, भारतीयों ने इसका अनुकरण किया किन्तु अब यह सिद्धांत अमान्य हो चुका है। हम पहले देख चुके हैं कि मथुरा के मूर्तिकारों ने इसका स्वतन्त्र रूप से विकास किया। दोनों में भारी अन्तर है। पहली यथार्थवादी है, उसमें भौतिक सौन्दर्य और अंग-सौष्ठव पर अधिक ध्यान दिया गया है, दूसरी आदर्शवादी है, इसमें शारीरिक रचना की अपेक्षा मुख-मण्डल पर दिव्य दीप्ति लाने का अधिक प्रयत्न है।

अमरावती शैली

दूसरी श० उत्तरार्ध से दक्षिण में कृष्णा नदी के निचले भाग में अमरावती (जि० गुण्टूर) जगय्यापेट और नागार्जुनी कोंडा में एक विशिष्ट शैली का विकास हुआ। अमरावती में न केवल स्तूप की बाड़ या वेष्टनी संगमरमर की थी; किन्तु सारा गुम्बद इसी पत्थर के शिलाफलकों से ढका हुआ था। भारहुत की भांति इसकी सारी बाड़ मूर्तियों से अलंकृत थी। किन्तु ये वहां की मूर्तियों से कई दृष्टियों में भिन्न हैं। इनमें कुछ को प्रतीकों तथा मूर्तियों दोनों प्रकार से व्यक्त किया गया है, अतः यह भारहुत और सांची तथा मथुरा

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

और गान्धारकलाओं का संक्रांतिकाल माना जाता है। यहां बुद्ध भगवान् की छः छः फुट से ऊंची खड़ी मूर्तियां बहुत गम्भीर उदासीन और वैराग्य भाव से परिपूर्ण हैं। यहां बड़े कठिन आसनों में सुन्दर पतली और प्रसन्न आकृतियां अंकित हैं. दृश्यों में बहुत अधिक ब्यौरा भरने का यत्न किया गया है। वनस्पतियों और पुष्पों विशेषतः कमलों के अलंकरण बहुत सुन्दर हैं। सारी कला भक्ति भाव से ओत-प्रोत है। बुद्ध के चरण-चिह्न के सम्मुख नत उपासिकाओं का दृश्य बहुत भव्य है। हास्यरस की भी कमी नहीं है। ऐसा अनुमान है कि सत्रह हजार वर्ग फुट में इस प्रकार की मूर्तियां बनी हुई थीं। अखंड अवस्था में सफेद संगमरमर का यह स्तूप बहुत ही भव्य रहा होगा, दुर्भाग्यवश सौ वर्ष पहले चूना बनाने के लिए इसका बहुत बड़ा भाग फूंक दिया गया।

गुण्टूर जि० में ही नागार्जुनी कोंडा नामक स्थान पर एक अन्य स्तूप मिलता है। इसका शिल्प अमरावती जैसा उत्कृष्ट नहीं। बुद्ध जन्म का एक सुन्दर दृश्य यहां से मिला है। इसकी तथा अमरावती की मूर्तियों पर कुछ रोमन प्रभाव है।

सातवाहन युग की वास्तु-कला प्रधानतः पहाड़ों की चट्टानों में काटी हुई गुहाएं हैं। इनके काटने की पद्धति तो अशोक के समय से शुरू हो गई थी, किन्तु उस समय तक ये सादे कमरे थे, अब इन्हें स्तम्भ-पंक्तियों तथा मूर्तियों से अलंकृत किया जाने लगा। ये प्रायः दो प्रकार की होती थीं, चैत्य और विहार। चैत्य तो उपासना के लिए सुन्दर मन्दिर था और विहार भिक्षुओं का निवास स्थान। चैत्य एक आयातकार लम्बा हाल होता था, इसमें दोनों ओर दो स्तम्भ पंक्तियाँ और अन्दर अर्धवृत्ताकार सिरे पर एक छोटा सा स्तूप होता था। सामने की दीवार और दरवाजों पर चित्र बने होते थे। विहारों में एक केन्द्रीय हाल के चारों ओर कोठरियां होती थीं। चैत्य गुहाएं कार्ले कन्हेरी भाजा, नासिक आदि स्थानों पर महाराष्ट्र में पाई गई हैं। वहां इन्हें 'लेण' कहते हैं। इनमें सबसे सुन्दर कार्लेलेण है। उड़ीसा में इस प्रकार की गुहाएं गुम्फाएं कहलाती हैं। ये सब जैन मन्दिर हैं।

सातवाहन युग में कुछ स्तम्भ भी बने। इनमें दूसरी शती ई० पू० का विदिशा के पास यूनानी राजदूत हेलिउदोर द्वारा स्थापित गरुड़ध्वज सबसे अधिक प्रसिद्ध है। किन्तु इन स्तम्भों में अशोक कालीन चमक नहीं, इस काल में पिछले युग की भांति सुन्दर पशुमूर्तियां भी नहीं बनीं, किन्तु इस काल को सब से बड़ी देन बुद्ध की तथा अन्य मानवीय मूर्तियां और गुहा मन्दिर हैं।

गुरुकुल काँगड़ी में बनी
फ़ीनाइल-स्याही-वार्निश
तथा अन्य उपयोगी वस्तुएँ काम में लावें
स्कूलों, कालेजों, हस्पतालों व स्वास्थ्य विभागों में वर्षों से प्रयुक्त हो रही हैं।
अपने नगर की एजेन्सी के लिए लिखें—
गुरुकुल कैमिकल इण्डस्ट्रीज़
गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

साहस

श्री मां

अलमोड़े के राजा के पहाड़ी प्रदेश पर कुछ आक्रमणकारियों ने धावा बोल दिया। उनको मार भगाने के लिये एक नई सेना खड़ी की गई। उसमें कई लोगों ने अपना नाम दिया। प्रत्येक को एक बढ़िया तलवार दी गई।

राजा ने आज्ञा दी—'बढ़े चलो।'

उसी दम सब ने बड़े ज़ोर-शोर से अपनी मियानों में से तलवारें खींच लीं और उन्हें ऊपर चमकाकर वे सब जोर से चिल्लाये।

'यह क्या ?' राजा ने पूछा।

उन्होंने उत्तर दिया—'स्वामी, हम तैयार हो रहे हैं जिससे हमारे शत्रु कहीं हमें असावधान पाकर हम पर चढ़ न आवें।'

'तुम डरपोक और घबराये हुए हो' राजा ने उनसे कहा, 'तुमसे कुछ न होगा। जाओ, अपने घर लौट जाओ।'

तुम देखोगे कि राजा ने इस प्रकार तलवारें खींच लेने और शोर गुल मचाने को जरा भी महत्त्व नहीं दिया। वह जानता था कि सच्ची वीरता में हल्ला करने और तलवारें बजाने की आवश्यकता नहीं होती।

इसके विपरीत, निम्नलिखित कहानी में तुम देखोगे कि कितनी शांतिपूर्वक लोगों ने एक कार्य किया और किस प्रकार समुद्र के बड़े खतरे के सामने भी वे वीरतापूर्वक डटे रहे।

सन् १६१० के मार्च महीने के अन्त में स्काटलैंड का एक जहाज आस्ट्रेलिया के यात्रियों को आशा अन्तरीप ला रहा था। आकाश में बादल का नाम-निशान नहीं था। समुद्र नीला और शांत था।

अचानक आस्ट्रेलिया के पश्चिमी किनारे से छः मील दूर जहाज एक चट्टान से जा टकराया।

जहाज के सब कर्मचारी एकदम इधर-उधर भागने लगे। सभी अपने कार्य में व्यस्त थे। सीटियों की आवाज सुनाई देने लगी। पर इस हलचल का कारण न तो कुप्रबन्ध था और न भय।

एक हुक्म गूंज उठा—

'डोंगियों पर चढ़ो।'

यात्रियों ने सुरक्षा की पेटियां पहन लीं।

एक नेत्रहीन व्यक्ति अपने नौकर का हाथ थामे डैक पर आया। सबने उसके लिये रास्ता छोड़ दिया। वह दुर्बल था। सब चाहते थे कि पहले उसको सहायता मिले।

कुछ क्षणों के बाद ही जहाज खाली हो गया, और फिर शीघ्र ही वह नीचे बैठ गया।

डोंगी पर बैठी हुई एक स्त्री ने गाना शुरू किया। लहरों के शोरगुल से बीच-बीच में गाने की आवाज दब जाती थीं पर फिर भी जो एक-आध कड़ी मल्लाहों के कान में पड़ जाती थी उससे उनके बाहुओं को बल मिल रहा था।

'किनारे की ओर बढ़ो, नाविको, किनारे की ओर बढ़ो।'

अन्त में वे सब जहाज की दुर्घटना से बचे हुए लोग किनारे तक पहुँच गये और दयालु मछुओं द्वारा किनारे पर लाये गये।

एक यात्री के भी प्राण नहीं गये। इस प्रकार चार सौ पचास व्यक्तियों ने अपने शांत-संयत स्वभाव से अपनी रक्षा कर ली।

अब मैं तुम्हें एक ऐसे शांतिपूर्ण साहस के विषय में बताती हूँ जिससे बिना किसी प्रदर्शन और धूम-धड़ाके के कई उपयोगी और भले कार्य किये हैं।

एक ग्राम के साथ-साथ एक गहरी नदी बहती थी। उसमें केवल हिन्दुओं के पांच सौ घर थे। उन ग्रामवासियों ने अभी तक भगवान् बुद्ध के उपदेश नहीं सुने थे। सो बुद्ध ने उनके पास जाने और उनको अपना उत्कृष्ट मार्ग बताने का निश्चय किया।

वे एक विशाल वृक्ष के नीचे बैठ गये। वृक्ष की शाखाएं नदी के किनारे तक फैली हुई थीं। ग्रामवासी

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

सब नदी के परले किनारे पर इकट्ठे हुए थे। अब बुद्ध ने अपनी आवाज उठाई और उन्हें पवित्रता और प्रेम का सन्देश सुनाया। उनके उपदेश एक चमत्कारक ढंग से उस बहते हुए पानी के ऊपर होते हुए नदी के परले किनारे तक पहुँच गये। फिर भी उन लोगों ने उनके वचनों पर विश्वास करना अंगीकार नहीं किया और उनके विरुद्ध वे बड़बड़ाने लगे।

उनमें से एक अभी और जानना चाहता था। उसने बुद्ध के निकट जाना चाहा, पर वहां न कोई नौका थी और न पुल ही था। उस मनुष्य ने मन में दृढ़ साहस रख नदी के गहरे पानी में चलना शुरू कर दिया। इस प्रकार वह उस गुरु के पास पहुँच गया। उसने उन्हें प्रणाम किया तथा बड़े हर्ष से उनके उपदेश सुने।

जैसा कि कहानी में कहा गया है कि उस मनुष्य ने चल कर नदी पार की थी, हम नहीं जानते। पर फिर भी उसने इस मार्ग पर चलकर हर तरह से साहस का ही परिचय दिया था, ऐसा मार्ग जो उन्नति-पथ की ओर ले जाता है। उसके उदाहरण से गांव के दूसरे लोगों ने भी फिर बुद्ध के उपदेश सुने और उनके अन्तःकरण उन अत्यन्त शुद्ध विचारों की ओर खुल गये।

× × ×

एक साहस है जो नदियां लांघ सकता है। एक ऐसा है जो मनुष्य को न्यायपथ पर ले जाता है। पर सत्य मार्ग पर चलना शुरू करने की अपेक्षा उस पर दृढ़ रहने के लिये जिस साहस की आवश्यकता पड़ती है वह उससे भी बड़ा है।

मुर्गी और उसके बच्चों का एक दृष्टान्त सुनो।

गौतम बुद्ध ने अपने शिष्यों से कहा था कि तुम अपनी ओर से पूरा प्रयत्न करो, फिर इस पर विश्वास रखो कि उन प्रयत्नों का फल तुम्हें मिलेगा ही।

उसने उनसे कहा—बिल्कुल उसी तरह जिस तरह मुर्गी अंडे देकर उन्हें सेती है, पर वह इस बात की जरा भी चिन्ता नहीं करती कि, क्या मेरे बच्चे अपनी चोंचों से अंडा फोड़कर दिन के प्रकाश में आ जाने में समर्थ हो जायंगे? तुम्हें अब अधिक डर नहीं होना चाहिए। यदि तुम सत्य मार्ग पर दृढ़ रहोगे तो तुम प्रकाश तक भी अवश्य पहुँचोगे।

ठीक रास्ते पर चलना, आवेगों, मूढ़ विचारों और कष्टों का सामना करना, सदा आगे ही, प्रकाश की ओर बढ़ने के प्रयत्न में लगे रहना ही सच्चा साहस है।

× × ×

प्राचीन समय में ब्रह्मदत्त नाम का एक राजा बनारस में राज करता था। उसके शत्रुओं में से एक ने—जो किसी और देश का राजा था—अपने हाथी को युद्ध की शिक्षा दी थी।

लड़ाई की घोषणा हो गई। वह विशाल हाथी अपने स्वामी राजा को बनारस की चारदीवारी तक ले आया।

दीवारों के ऊपर से उन घिरे सैनिकों ने उबलते द्रव्यों और गोफन द्वारा फेंके हुए पत्थरों की उन पर झड़ी लगा दी। इस भयानक वर्षा के सामने एक बार तो हाथी पीछे हट गया। पर जिस आदमी ने उसे सधाया था वह उसकी ओर दौड़ा और बोला—

'अरे हस्ती, तू तो वीर है; वीर के समान कार्य कर और फाटक को जमीन पर दे मार।'

इन शब्दों से उत्साहित हो उस विशाल जन्तु ने फाटक पर एक जोर की चोट की, अन्दर प्रवेश किया और इस प्रकार राजा को विजय दिलाई।

इसी प्रकार साहस बाधाओं और कठिनाइयों को जीत कर विजय का पथ प्रशस्त करता है।

× × ×

देखो, किस प्रकार सब को, चाहे वे मनुष्य हों या पशु, बढ़ावे के शब्दों से सहायता पहुँचाई जा सकती है।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

मुसलमानों की एक अच्छी पुस्तक में उदारहृदय व्यक्ति आबू सैयद की एक कहानी है। वह हमें बड़ा अच्छा उदाहरण देती है।

एक बार वह ज्वर से पीड़ित हुआ। उसके मित्र-गण उसके स्वास्थ्य का हाल-चाल पूछने उसके घर गये। कवि के लड़के ने द्वार पर उनका स्वागत किया। उसके होठों पर मुस्कराहट थी क्योंकि रोगी पहले से अच्छा था। वे लोग उसके कमरे में पहुँचे और बैठ गये। अपने सदैव के हंसोड़ स्वभाव के अनुसार उसे बोलते सुनकर सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। अब क्योंकि गर्मी बढ़ चली थी, उसे नींद आ गई। और लोग भी सब सो गये।

सायंकाल तक सब उठ बैठे। आबू सैयद ने अभ्या-गतों का जलपान से सत्कार किया और कमरे को सुवासित करने के लिए धूपबत्तियां जला दी।

आबू सैयद ने तब प्रार्थना की, फिर उसने उठ कर एक छोटी सी स्वरचित कविता पढ़नी आरम्भ की—

'दुःख के समय निराश न हो, क्योंकि प्रसन्नता की एक घड़ी तेरे सारे दुःख दर्द भगा देगी।

मरुभूमि की तेज गर्म हवा बह रही है, पर वह ठंडे समीर में बदल सकती है।

काली घटा उमड़ रही है, पर वह जल-प्रलय करने से पहले ही हट सकती है।

आग लग सकती है, पर तुम्हारे सन्दूकों और पेढियों को छुए बगैर बुझ जायगी।

शोक आता है, पर चला जाता है। इसलिये जब विपत्ति आवे धैर्यवान् बनो।

समय सब चमत्कारों से बड़ा है। ईश्वर की कृपा से तुम्हें सदा अपने कल्याण की आशा करनी चाहिए।'

इस आशा से भरी सुन्दर कविता को सुन कर सब प्रसन्नता और बल अनुभव करते हुए अपने-अपने घर लौट गये। इस प्रकार एक रोगी मित्र ने अपने स्वस्थ मित्रों की सहायता की।

यह निश्चय है कि जो लोग स्वयं साहसी होते हैं वे ही दूसरों को साहस बधा सकते हैं, ठीक उसी प्रकार जैसे एक जलती मोमबत्ती अपनी लौ से दूसरी मोम-बत्तियों को जला सकती है।

वीर बालको और बालिकाओ, तुमने यह कहानी पढ़ी है। तुम दूसरे को साहस बंधाना सीखो और स्वयं भी साहसी बनो।

भारतीय मन की प्रधान प्रेरणा

आध्यात्मिकता ही भारतीय मन की मुख्य कुञ्जी है—अनन्तता की भावना उसकी सहजात भावना है। भारत ने आदि काल में ही यह देख लिया और अपने तर्क बुद्धि के युग में तथा अपने बढ़ते हुए अज्ञान के युग में भी उसने वह अंतर्दृष्टि कभी नहीं खोई कि जीवन को केवल उसकी बाह्य परिस्थिति के प्रकाश में ही ठीक-ठीक नहीं देखा जा सकता और न वह केवल उन्हीं की शक्ति से पूरी तरह बिताया जा सकता है। वह प्राकृतिक नियमों तथा शक्तियों के महत्ता के प्रति जागरूक था, उसे भौतिक विज्ञानों के महत्त्व का सूक्ष्म बोध था; वह साधारण जीवन की कलाओं को संगठित करना जानता था। परन्तु उसने यह देखा कि भौतिकता को अपनी पूरी सार्थकता तब तक नहीं प्राप्त होती, जब तक वह अति भौतिक से ठीक सम्बन्ध स्थापित नहीं कर लेती; उसने देखा कि संसार की जटिलता की व्याख्या मनुष्य की वर्तमान परिभाषाओं से नहीं की जा सकती और न मनुष्य की स्थूल दृष्टि से समझी जा सकती है, और यह कि विश्व के मूल में कुछ अन्य शक्तियां भी हैं तथा स्वयं मनुष्य के भीतर भी कुछ शक्तियां हैं, जिन्हें वह साधारणतया नहीं जानता।

—श्री अरविन्द।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गुरुकुल-संग्रहालय

श्री रामेश वेदी

गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी की यह नवीन संस्था संवत् २००६ में प्रारम्भ हुई थी। इस अल्पकाल में इसकी उन्नति और विस्तार तथा लोकशिक्षण के महत्व-पूर्ण कार्य की सराहना देश के अनेक विद्वानों और पुरातत्त्वज्ञों ने मुक्त-कंठ से की है।

भारत सरकार के राष्ट्रीय संग्रहालय (नेशनल म्यूज़ियम) नई दिल्ली के अध्यक्ष श्र वासुदेव शरण अग्रवाल एम. ए., पी. एच डी., डी. लिट् ने संग्रहालय की स्थापना के अवसर पर निम्न उद्‌गार प्रकट किये थे—'मुझे यह देख कर प्रसन्नता हुई कि आरम्भ में ही आपने अपने संग्रहालय में प्राचीन मूर्तियां, भित्ति-चित्रों और मुद्राओं, इन तीनों क्षेत्रों में सफल आरम्भ किया है।

पुराने सिक्के

'आपके संग्रहालय में सिक्कों के संग्रह की भी अच्छी शुरुआत हुई है। पुराने चांदी के आहत सिक्कों के कुछ नमूने आप यहां देख सकते हैं। पाणिनि ने अपने

चतुर्मुख ब्रह्मा—उत्तर भारत के प्रस्तर शिल्प का सुन्दरतम नमूना। गुरुकुल संग्रहालय में सुरक्षित।

एक सूत्र में रूप से आहत कार्षापण का उल्लेख किया है। अंग्रेज़ी में इन्हें पंचमार्क्ड सिक्के कहते हैं जिन पर तरह-तरह के रूप या सिम्बल ठप्पे से ठोके जाते थे। इन सिक्कों को देख कर पाणिनि के 'रूपादाहत प्रशंसयोः' सूत्र का अर्थ ठीक-ठीक समझ आ सकता है। उत्तर मौर्यकाल के ढले हुए सिक्के, कुषाणों के मोटे पैसे, कन्नौज के गुर्जर प्रतिहार राजा भोजदेव के आदिवराह द्रम्म, सामन्तदेव के द्रम्म, अलाउद्दीन के सिक्के, जिन पर देवनागरीअक्षरों में 'सुलतान अलाउद्दीन' लिखा है, मुगलों के रुपये और अंग्रेजी सिक्के संग्रहालय में इकट्ठे हैं।

ब्राह्मी आदि प्राचीन भारतीय लिपियों के ६० पत्रक जो आपके संग्रहालय में तैयार हुए हैं, छात्रों के लिये बहुत ही उपयोगी सिद्ध होंगे।'

संग्रहालय भवन

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA
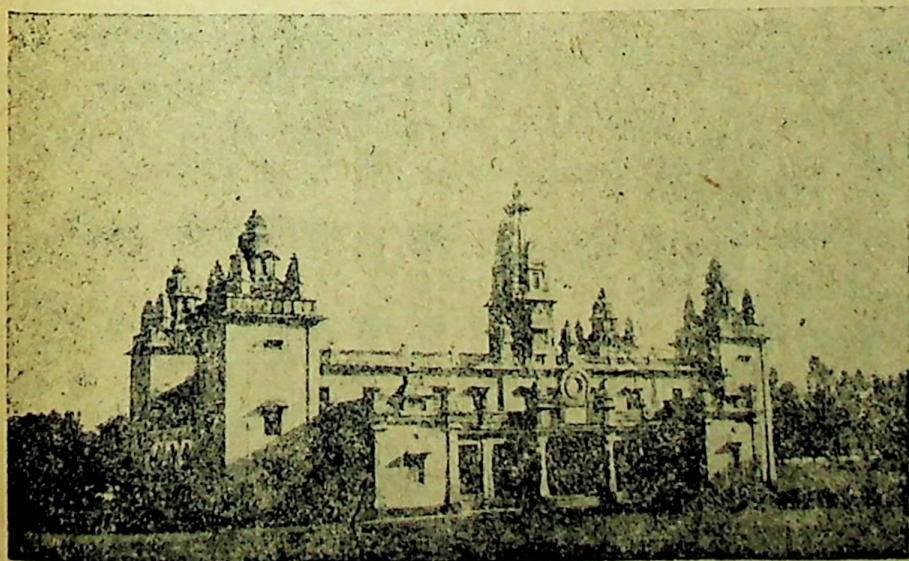
श्रेष्ठतम मूर्तियां

प्रयाग म्यूनिसिपल म्यूज़ियम के अध्यक्ष श्री सतीशचन्द्र काला ने संग्रहालय भवन की विशाल गैलरियों को एक आदर्श स्थान बताते हुए अमृत बाज़ार पत्रिका में एक लेख द्वारा इसके विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाला था। उन्होंने लिखा था—

प्रतीक्षा [गुरुकुल संग्रहालय की आर्ट गैलरी से]

संग्रहालय में मूर्ति-शिल्प के भी कुछ सुन्दर उदाहरण हैं। हरिद्वार भारत का एक प्रधान तीर्थ है। अनादि काल से हिन्दू धर्मावलम्बी 'हर की पैड़ी' पर गंगा में पवित्र स्नान करने के लिये आते रहे हैं। अनेक शतियों के सुदीर्घ काल में इस स्थान पर अनेक धर्मस्थान बने किन्तु वे नष्ट हो चुके हैं। संग्रहालय के अधिकारी इन अवशेषों की बड़े उत्साह से खोज कर रहे हैं। संग्रहालय में ५०० ई० से ९०० ई० तक की बौद्ध, जैन और हिन्दू मूर्तियां हैं। शिव, विष्णु, महिषासुरमर्दिनी, चतुर्मुख ब्रह्मा की मूर्त्तियां शिल्प कला के उत्तम उदाहरण हैं। चतुर्मुख ब्रह्मा की मूर्ति में आकारचित्रण का सुन्दर प्रयत्न किया गया है, इसकी गणना उत्तर भारत की सुन्दरतम मूर्तियों में होनी चाहिये।

स्मृति [गुरुकुल संग्रहालय की आर्ट गैलरी से]

कांगड़ा कला की शृङ्खलायें

उत्तर प्रदेश में विलीन टिहरी राज्य हरिद्वार के बिलकुल सन्निकट है। यह तथ्य सुविदित ही है कि राजपूताना और पञ्जाब की पहाड़ियों के हिन्दू राजाओं की भांति टिहरी राज्य के नरेशों ने भी

CC-0 Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

शुक क्रीड़ा [गुरुकुल संग्रहालय की आर्ट गैलरी से]

मूलतः मुगल दरबारों में रहने वाले हिन्दू चित्रकारों को संरक्षण प्रदान किया था। कांगड़ा शैली का एक उत्कृष्टतम चित्रकार मोलाराम, चैतू तथा मनकू और ज्वालाराम—ये सभी कलाकार टिहरी नरेशों के सुखद आश्रय में रहे थे। इन कलाकारों द्वारा प्रवर्तित परम्परा संभवतः इन प्रदेशों में काफी देर तक बनी रही किन्तु क्रमशः बढ़ते हुए सांस्कृतिक अधःपात में इन अवशेषों के अन्तिम चिन्ह भी लुप्त हो गये।

एक नई खोज

कनखल में निर्मला अखाड़ा नाम की एक बड़ी इमारत है इसकी दीवारों पर लगभग २०० फीट में, १९वीं शती के मध्य में बने भित्तिचित्र हैं। इन सौ वर्षों में इन चित्रों की सूक्ष्म योजनाएं और बारीकियां आश्चर्यजनक रूप से संरक्षित रही हैं। यह बात विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है कि इन में से कुछ चित्र ठेठ ईस्ट इण्डिया कम्पनी शैली के हैं। चित्रों से यह स्पष्ट है कि इनका निर्माण बहुत कुशल हाथों से नहीं हुआ किन्तु फिर भी कहीं-कहीं महान् कला के चिन्ह दृष्टिगोचर होते हैं। 'राम का अभिषेक', 'झूले की नारियां', 'आसावरी' और 'टोडी रागिनियां', 'राजाओं की शोभायात्रा', 'गजेन्द्रमोक्ष', 'समुद्र-मन्थन', 'राधा-कृष्ण' के चित्रों में प्राचीन कांगड़ा कला के कतिपय आवश्यक तत्त्व पाये जाते हैं। गुरुकुल संग्रहालय के अधिकारियों ने इन भित्ति-चित्रों के कई फोटो तैयार करवाये हैं। इस प्रकार भावी सन्ततियों के लिए एक लुप्त होती हुई शृङ्खला

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

उन्नीस फिरंगी [गुरुकुल संग्रहालय की आर्ट गैलरी से]

दर्पण देखती हुई एक सम्भ्रात महिला अपनी परिचारिकाओं के साथ

को सुरक्षित बना दिया गया है।

मथुरा पुरातत्व संग्रहालय के अध्यक्ष श्री कृष्णदत्त वाजपेयी ने निम्नलिखित रूप में अपने विचार प्रकट किए हैं—

'अल्पकाल में ही इसका जैसा रूप बन गया है वह इसकी भावी उन्नति का द्योतक है। कांगड़ा शैली के जो चित्र यहां प्रदर्शित हैं उन्हें देख कर अत्यन्त प्रसन्नता हुई। आशा है इन चित्रों के संग्राहक महोदय पण्डित गंगा प्रसादमिश्र स्थायी रूप से इन चित्रों को संग्रहालय के लिए प्रदान करने की कृपा करेंगे।
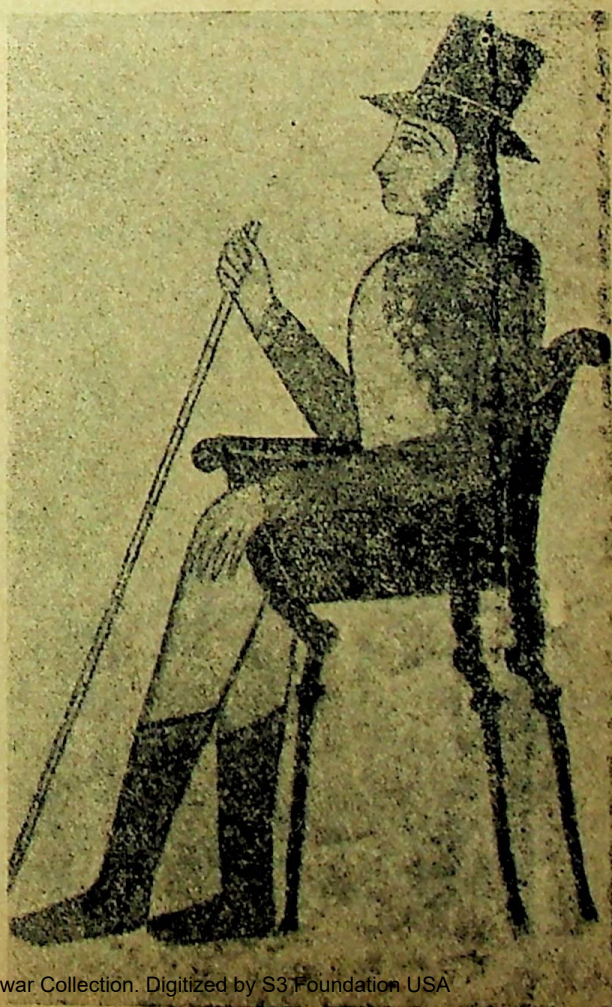
सुंदर संग्रहालय

श्रीयुत के. एन. पुरी पुरातत्व अधीक्षक (सुपरिन्टेण्डेंट ऑफ् आर्कियोलोजी) दिल्ली विभाग ने इसका अवलोकन करके लिखा था—

'वेद मन्दिर की गैलरियों में हाल में ही संस्थापित संग्रहालय अभी निर्माणावस्था में है किन्तु जिस उत्साह से इस का आरम्भ हुआ है, उससे यह आशा होती है कि यह संस्था विश्वविद्यालय का सुन्दर संग्रहालय बन जायगा।'
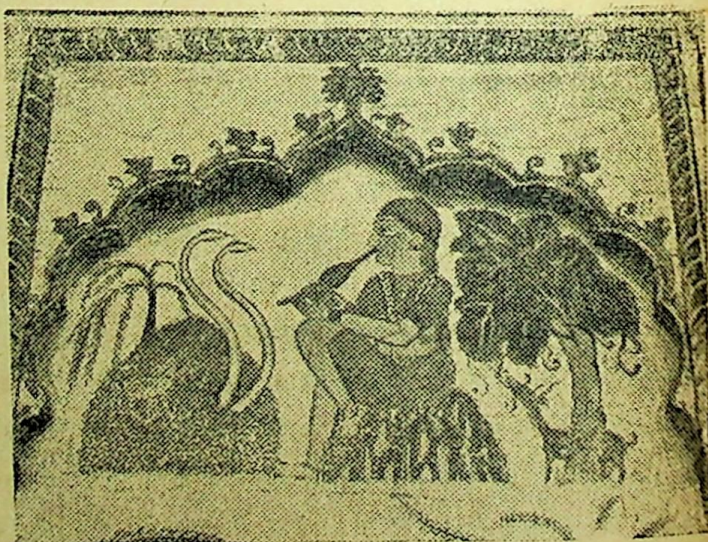
आसावरी रागिनी [गुरुकुल संग्रहालय की आर्ट गैलरी से]

★

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

क्या सभ्यता विनाशोन्मुख है ?

श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति

यह प्रश्न आज पहली बार नहीं पूछा जा रहा। मनुष्य जाति के युगों में फैले हुए इतिहास में विचार-शील लोगों ने कई बार यह प्रश्न उठाया और उसके उत्तर देने का यत्न भी किया। प्रश्न उठाने का तात्पर्य यह होता है कि यदि उस समय की सभ्यता को विनाश से बचाने का कोई उपाय हो सके तो वह किया जाय। समय-समय पर दूरदर्शी चिकित्सकों ने सभ्यता में लगे हुए रोगाणुओं के इलाज प्रस्तुत किये हैं? परन्तु यह आश्चर्य की बात है कि जब एक बार किसी जाति के शरीर में क्षय के कीटाणु प्रविष्ट हो जाते हैं, तब वह जाति चाहे सभ्य हो या असभ्य, उसका विनाश से बचना कठिन हो जाता है। महाकवि कालिदास ने कहा है—

'नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण'

जैसे गाड़ी के पहिये की अरायें क्रम से ऊपर और नीचे आती और जाती हैं, इसी प्रकार इस पृथ्वी की जातियां मानों किसी विधान से बंधी हुई हैं, आकाश में चढ़ती और पाताल में गिरती रहती हैं।

एक बार मनुष्य जाति के विस्तृत इतिहास का सिंहावलोकन करके देखिये, आपको सभ्यताओं के उत्थान और पतन का क्रम विधि के विधान के समान निश्चितरूप से चलता हुआ दिखाई देगा। हम अत्यन्त प्राचीन इतिहास को छोड़ देते हैं और अर्वाचीन, प्राचीनकाल का निरीक्षण करते हैं, तो हम ईरान, यूनान और रोम की सभ्यताओं को बर्साती मेघ की तरह उमड़ता और कुछ देर तक बरस अन्त में हवा के प्रचंड झोंकों के सामने बिखरता देखते हैं। दारा का साम्राज्य क्या कभी नष्ट होने वाला प्रतीत होता था? सिकन्दर जब अफ्रीका और एशिया की जातियों को पद-दलित करता हुआ भारत की सीमाओं में प्रविष्ट हुआ, तब क्या कोई सोचता था कि एक दिन यूनान की उत्कृष्ट सभ्यता और संस्कृति को ग्रहण लग जायगा। रोम के शासक तो एक समय 'आसमुद्रक्षितीश' अर्थात् समुद्र मेखला पृथ्वी के मालिक बन गये थे। क्या जूलियस सीजर और उसके उत्तराधिकारियों को कभी यह कल्पना भी हो सकती थी कि एक दिन राज्य, शक्ति कला, साहित्य और विभूति रूपी चार खंभों पर खड़ा हुआ, रोमन साम्राज्य मिट्टी में मिल जायगा?

दूर क्यों जायें, महाभारत के संग्राम से पूर्व के समय की भारतीय विभूति किसी अन्य देश से कम नहीं थी। उस समय की संस्कृति, सभ्यता और विभूति का वर्णन पढ़ कर विश्वास भी नहीं होता कि आज से इतना समय पूर्व वह सब कुछ हो सकता था। कुछ लोग तो कपोल-कल्पित और असम्भव ही मानते हैं, परन्तु वह यदि सर्वांश में नहीं तो अधिकांश में अवश्य सत्य था और यह भी सत्य है कि सृष्टि के नियमों के प्रभाव से वह सब कुछ नष्ट हो गया और अनेक शताब्दियों के लिये हमारे देश पर गहरा अन्धकार छा गया।

सभी जातियों के उत्थान और पतन के इतिहास को पढ़ने से एक बात मन पर स्पष्ट रेखाओं में अंकित हो जाती है। कुछ विचारक मानते हैं कि मनुष्य अपने मन को चारों ओर की परिस्थितियों से सर्वथा अलग-अलग करके स्वतन्त्र विचार कर सकता है। इतिहास का अनुशीलन बताता है कि बात इससे विपरीत है। मनुष्य के दार्शनिक, धार्मिक और नैतिक विचारों पर समय का बहुत गहरा प्रभाव रहता है। इसका एक प्रबल प्रमाण यह है, जब कोई जाति अभ्युदय की ओर जा रही होती है, तब उसके विचारों की विचारशैली प्रायः एक सी हो जाती है। उस जाति के विचारकों को यह अनुभव होने लगता है कि संसार वस्तुतः उन्नति की ओर जा रहा है। वह यह भी मानने लगते हैं कि मानव जाति को उन्नति की चरम-सीमा तक पहुँचाने के लिए जिस सभ्यता और संस्कृति की आवश्यकता है उसके प्रतिनिधि हम हैं। इस कारण संसार के जन्म-

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

सिद्ध नेता भी हमी हैं। इतिहास में जब किसी भी जाति का सितारा चढ़ा है, तभी उसमें ऐसे दार्शनिक और कवि उत्पन्न होते रहे हैं जो अपनी जाति के नेतृत्व का बलपूर्वक समर्थन करते रहे हैं। १९ वीं सदी में पश्चिम का भाग्य चमक रहा था, योरुप के व्यापारी और साहसिक पुरुष भूमंडल पर छा गये थे, प्रतीत होता था कि मानव जाति कुछ ही वर्षों में यूरोपियन जातियों की मानसिक और राजनैतिक दासी बन जायगी। उस समय यूरोप में विकासवाद ने जन्म लिया। विकासवाद की मौनरूप भावना यह थी कि सृष्टि में निरन्तर जो विकास हो रहा है, उसकी सबसे बढ़िया और परिष्कृत उपज योरुप की जातियां हैं, जो अपनी सभ्यता का वरदान देकर मनुष्यमात्र को विकास की ऊंची से ऊंची चोटी तक पहुँचायेगी। १९ वीं शताब्दी का अन्त होते-होते यूरोप की जातियों की नेतृत्व की होड़ चरम सीमा तक पहुँच गई। अंग्रेज विचारकों की सम्मति बन गई थी कि ऐंग्लो-सैक्सन जाति विकास का सर्वोत्कृष्ट नमूना है, तो जर्मन तत्ववेत्ता सिद्ध करने लगे थे कि संसार के नेतृत्व का अधिकार केवल जर्मन को है। फ्रेंच लोग अपनी प्रमुखता का का दावा सदा ही करते रहे हैं। इस प्रकार पाश्चात्य सभ्यता २० वीं सदी के आरम्भ में उस स्थान पर पहुँच गई थी, जहां भारतीय सभ्यता को हम महाभारत युद्ध से पूर्व पहुँचा हुआ पाते हैं। भारत के नेताओं की उस समय की मनोवृत्ति को बहुत संक्षेप में जानना हो तो दुर्योधन के निम्नलिखित वाक्य का अभिप्राय समझना पर्याप्त है—

'सूच्यग्रम् नेव दास्यामि बिना युद्धेन केशव।'

हे केशव! मैं युद्ध के बिना पांडवों को भूमि का उतना भाग भी देना नहीं चाहता, जितना सूई के अग्रभाग से छेदा जा सके। २० वीं शताब्दी के आरंभ में यूरोप की मनोवृत्ति भी यही हो गई थी। जब किसी जाति में यह मनोवृत्ति उत्पन्न हो जाये, तब समझ लो कि वह उन्नति की चोटी से गिरावट की खाई की ओर जाने लगी है। अत्यन्त अभ्युदय के कारण जो मनोवृत्ति उत्पन्न होती है, वह उन प्रवृत्तियों को पैदा कर देती है, जिनसे जातियों का पतन अनिवार्य हो जाता है। जब सृष्टि नियम के अनुसार प्राकृतिक उन्नति के सूर्य पर क्षीणता और विनाश के बादल छाने लगते हैं, तब उस जाति के विचारक इस प्रश्न पर विचार करने लगते हैं कि क्या हमारी सभ्यता विनाशोन्मुख है? यदि है तो उस विनाश से बचने का उपाय क्या है? आज पाश्चात्य जगत् उस स्थिति में आ गया है कि उसके विचारक इन प्रश्नों पर विचार करने के लिए बाधित हो गये हैं।

मैंने अभी कहा था कि इस समय पाश्चात्य सभ्यता की लगभग वही दशा है, जो महाभारत के समय भारतीय सभ्यता की थी। जब रोग एक-सा है तो उसका निदान और उपाय भी एक सा होना चाहिए। महाभारत के युद्ध में शस्त्रों और अस्त्रों का आदान-प्रदान होने से पहले भगवान् कृष्ण ने सभ्यता रूपी रोग के कारणों का बहुत सुन्दर विवेचन किया था। वह विवेचन यद्यपि व्यक्ति विषयक है, परन्तु वह लागू होता है राष्ट्रों पर भी। भगवान् ने कहा—

ध्यायतो विषयान्पुंसः संगस्तेषूपजायते,
संगात् संजायते कामः कामात्क्रोधोभिजायते।
क्रोधात्भवति संमोहः, सम्मोहात् स्मृतिविभ्रमः।
स्मृति भ्रंशात् बुद्धिनाशो, बुद्धि नाशात् प्रणश्यति॥

आजकल की आर्थिक भाषा में उसका अभिप्राय यह होगा कि जब मनुष्य विषयों के सुखों को अपना ध्येय बतलाते हैं, तब उनकी आवश्यकतायें बढ़ जाती हैं, आवश्यकताओं के बढ़ जाने से औरों के साथ प्रतिस्पर्धा का राष्ट्रों के संघर्ष के रूप में परिवर्तित होना अवश्यंभावी है। वही युद्ध है। युद्ध करने वालों की बुद्धि नष्ट हो जाती है और बुद्धि के नष्ट हो जाने से चाहे वह व्यक्ति हो या जाति, उसका सर्वनाश हो जाता है।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

सिद्ध नेता भी हमी हैं। इतिहास में जब किसी भी जाति का सितारा चढ़ा है, तभी उसमें ऐसे दार्शनिक और कवि उत्पन्न होते रहे हैं जो अपनी जाति के नेतृत्व का बलपूर्वक समर्थन करते रहे हैं। १९ वीं सदी में पश्चिम का भाग्य चमक रहा था, योरुप के व्यापारी और साहसिक पुरुष भूमंडल पर छा गये थे, प्रतीत होता था कि मानव जाति कुछ ही वर्षों में यूरोपियन जातियों की मानसिक और राजनैतिक दासी बन जायगी। उस समय यूरोप में विकासवाद ने जन्म लिया। विकासवाद की मौनरूप भावना यह थी कि सृष्टि में निरन्तर जो विकास हो रहा है, उसकी सबसे बढ़िया और परिष्कृत उपज योरुप की जातियां हैं, जो अपनी सभ्यता का वरदान देकर मनुष्यमात्र को विकास की ऊंची से ऊंची चोटी तक पहुँचायेगी। १९ वीं शताब्दी का अन्त होते-होते यूरोप की जातियों की नेतृत्व की होड़ चरम सीमा तक पहुँच गई। अंग्रेज विचारकों की सम्मति बन गई थी कि ऐंग्लो-सैक्सन जाति विकास का सर्वोत्कृष्ट नमूना है, तो जर्मन तत्ववेत्ता सिद्ध करने लगे थे कि संसार के नेतृत्व का अधिकार केवल जर्मन को है। फ्रेंच लोग अपनी प्रमुखता का का दावा सदा ही करते रहे हैं। इस प्रकार पाश्चात्य सभ्यता २० वीं सदी के आरम्भ में उस स्थान पर पहुँच गई थी, जहां भारतीय सभ्यता को हम महाभारत युद्ध से पूर्व पहुँचा हुआ पाते हैं। भारत के नेताओं की उस समय की मनोवृत्ति को बहुत संक्षेप में जानना हो तो दुर्योधन के निम्नलिखित वाक्य का अभिप्राय समझना पर्याप्त है—

'सूच्यग्रम् नेव दास्यामि बिना युद्धेन केशव।'

हे केशव। मैं युद्ध के बिना पांडवों को भूमि का उतना भाग भी देना नहीं चाहता, जितना सूई के अग्रभाग से छेदा जा सके। २० वीं शताब्दी के आरंभ में यूरोप की मनोवृत्ति भी यही हो गई थी। जब किसी जाति में यह मनोवृत्ति उत्पन्न हो जाये, तब समझ लो कि वह उन्नति की चोटी से गिरावट की खाई की ओर जाने लगी है। अत्यन्त अभ्युदय के कारण जो मनोवृत्ति उत्पन्न होती है, वह उन प्रवृत्तियों को पैदा कर देती है, जिनसे जातियों का पतन अनिवार्य हो जाता है। जब सृष्टि नियम के अनुसार प्राकृतिक उन्नति के सूर्य पर क्षीणता और विनाश के बादल छाने लगते हैं, तब उस जाति के विचारक इस प्रश्न पर विचार करने लगते हैं कि क्या हमारी सभ्यता विनाशोन्मुख है? यदि है तो उस विनाश से बचने का उपाय क्या है? आज पाश्चात्य जगत् उस स्थिति में आ गया है कि उसके विचारक इन प्रश्नों पर विचार करने के लिए बाधित हो गये हैं।

मैंने अभी कहा था कि इस समय पाश्चात्य सभ्यता की लगभग वही दशा है, जो महाभारत के समय भारतीय सभ्यता की थी। जब रोग एक-सा है तो उसका निदान और उपाय भी एक सा होना चाहिए। महाभारत के युद्ध में शस्त्रों और अस्त्रों का आदान-प्रदान होने से पहले भगवान् कृष्ण ने सभ्यता रूपी रोग के कारणों का बहुत सुन्दर विवेचन किया था। वह विवेचन यद्यपि व्यक्ति विषयक है, परन्तु वह लागू होता है राष्ट्रों पर भी। भगवान् ने कहा—

ध्यायतो विषयान्पुंसः संगस्तेषूपजायते,
संगात् संजायते कामः कामात्क्रोधोभिजायते।
क्रोधात्भवति संम्मोहः, सम्मोहात् स्मृतिविभ्रमः।
स्मृति भ्रंशात् बुद्धिनाशो, बुद्धि नाशात् प्रणश्यति॥

आजकल की आर्थिक भाषा में उसका अभिप्राय यह होगा कि जब मनुष्य विषयों के सुखों को अपना ध्येय बतलाते हैं, तब उनकी आवश्यकतायें बढ़ जाती हैं, आवश्यकताओं के बढ़ जाने से औरों के साथ प्रतिस्पर्धा का राष्ट्रों के संघर्ष के रूप में परिवर्तित होना अवश्यंभावी है। वही युद्ध है। युद्ध करने वालों की बुद्धि नष्ट हो जाती है और बुद्धि के नष्ट हो जाने से चाहे वह व्यक्ति हो या जाति, उसका सर्वनाश हो जाता है।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

यह सांसारिक अभ्युदय के आरम्भ होने से लेकर सर्वनाश तक का क्रम संसार के इतिहास में हम भूमंडल के भिन्न-भिन्न भागों में जातियों के उत्थान और पतन का जो निरन्तर अभिनय देखते हैं, उसका संचालन इसी क्रम के अनुसार होता है। जाति अपनी सभ्यता का परिष्कार लेकर उठती है। जाति के वीर पुत्र बुद्धि और साहस के बल से विजय प्राप्त करते और चारों ओर छा जाते हैं, जिससे जाति की अभिलाषायें बढ़ जाती हैं। मस्तक में अभिमान भर जाता है और हृदय में यह वासना उत्पन्न होती है कि हम संसार भर को अपने आधीन करके विश्व की विभूति का उपभोग करें। जब यह अवस्था उत्पन्न हो जाये, तब समझो कि उस जाति के अधःपतन और विनाश का प्रारम्भ होने वाला है।

महाभारत के युद्ध से पूर्व व्यास मुनि ने अपनी जाति की यह दशा योग की दृष्टि से देख ली थी, तभी तो उन्होंने कहा था—'ऊर्ध्वबाहुर्ब्रवीमेतत् न च कश्चिच्छृणोति मे। धर्मादर्थश्च कामश्च, कस्मात् धर्मो न सेव्यते।' मैं हाथ उठा कर यह घोषणा करता हूँ, परन्तु मेरी बात कोई सुनता नहीं है कि जब सांसारिक विभूति और सुख धर्म से ही प्राप्त हो सकते हैं, तो मनुष्य धर्म का सेवन ही क्यों नहीं करते। व्यास मुनि ने अपनी जाति की रक्षा का एकमात्र यही उपाय समझा था कि लोग प्रकृति सेवा छोड़ कर धर्म के मार्ग का अनुसरण करें।

परन्तु यहां पहुँच कर मुझे कुछ रुक जाना चाहिये बहुत से श्रोता शायद भगवान् कृष्ण के किये हुए विवेचन से तो सहमत हों, परन्तु व्यास मुनि की बताई हुई औषधि को अंगीकार नहीं करेंगे। वह कहेंगे कि धर्म नाम की वस्तु का मनुष्य की अशान्ति अथवा उन्नति से कोई सम्बन्ध नहीं, उल्टा धर्म ने तो मनुष्य जाति में सदा लड़ाई झगड़े ही पैदा किये हैं। योरुप और एशिया की जातियों के इतिहास धार्मिक युद्धों से भरे पड़े हैं। आज भी भारत में धर्म ही आपसी वैमनस्य का कारण बना हुआ है, ऐसी दशा में हम यह कैसे मान लें कि धर्म कैसे बने। युद्ध बन्द हो जायगा तो मनुष्य जाति सर्वनाश से बच जायगी।

इस आपत्ति के उत्तर में मैं धर्म के विषय पर लंबा व्याख्यान न देकर धर्म की व्याख्या व्यास मुनि के शब्दों में ही करूंगा। व्यास मुनि कहते है—

श्रूयतां धर्म सर्वस्वं, श्रुत्वा चैवावधार्यताम्।
आत्मनः प्रतिकूलानि, परेषां न समाचरेत्॥

धर्म का रहस्य सुनो और सुनकर उसे हृदयंगम कर लो। वह यह है कि जो तुम्हारी अपनी आत्मा को प्रिय है उसे दूसरों के लिये भी प्रिय समझो। अर्थात् जिसे तुम अपने लिये हितकर समझते हो उसी को दूसरों के लिये भी हितकर मानो और जो तुम्हें स्वयं बुरा लगता है, यह निश्चय रखो वह दूसरों को भी बुरा लगेगा। बस यही धर्म का रहस्य है। मनु ने कहा है-'न लिंगं धर्म कारणम्' किसी वेश भूषा में या किसी पूजन के ढंग में अथवा किताब या ईंट पत्थर में धर्म नहीं है। असली धर्म वह है, जो मनुष्य को यह सिखाता है कि उसे दूसरों से वैसा व्यवहार करना चाहिये जैसे व्यवहार की वह स्वय इच्छा रखता है क्योंकि सब मनुष्य विधाता की दृष्टि में समान हैं। यों तो सभी धर्मों के आचार्यों और प्रचारकों ने सिद्धान्त रूप से मनुष्य जाति की समानता और एकता का उपदेश दिया है परन्तु दुःख की बात है कि उनके अनुयायियों ने असली धर्म को छोड़ दिया, उसकी छाया को पकड़ लिया और क्योंकि छाया एक असत्य वस्तु थी इस लिये आपस में लड़ने, झगड़ने लगे।

इस थोड़े से समय में मैंने दो प्रश्नों का उत्तर देने का यत्न किया है। मूल प्रश्न यह था कि सभ्यता क्या विनाश पथ पर है ? इस प्रश्न को मैंने यह रूप दे दिया है, वर्तमान सभ्यता से मेरा अभिप्राय पाश्चात्य सभ्यता से है। मेरा उत्तर यह है कि हां, वर्तमान सभ्यता पूरे वेग से विनाश

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

सप्त मर्यादा

आचार्य विद्यानन्द विदेह

सप्त मर्यादाः कवयस्ततक्षुस्तासामेकामिदभ्यंहुरो गात् ॥
ऋ० १०. ५. ६. ॥

(कवयः) मेधावियों ने (सप्त मर्यादाः) सात मर्यादायें (ततक्षुः) निर्धारित की हैं। (तासां) उन में से (एकां इत्) एक को भी (अभि गात्) लांघा कि (अंहुरः) पापी हुआ।

ज्ञानियों ने लोककल्याण के लिये सात सुन्दर मर्यादायें बांधी हैं। पहली मर्यादा है दर्शन की। निस्सन्देह नेत्र देखने के लिये हैं, परन्तु दर्शन की, देखने की, मर्यादा है। देखो, पर सुदृष्टि से देखो कुदृष्टि से नहीं। सुदृष्टि से देखना दर्शन की मर्यादा का पालन करना है। ऐसा करने से मनुष्य पुण्य का सम्पादन करता है। कुदृष्टि से देखना दर्शन की मर्यादा का उल्लंघन करना है। ऐसा करने वाला मनुष्य पापी होता है, समाज के लिये भयंकर अभिशाप होता है। पराई नारी को माता, भगिनी और पुत्री की दृष्टि से देखे। परवैभव को देखकर ललचाना या जलना पाप है। अपने पुरुषार्थ से वैभव सम्पादन करो, परधन का अवलोकन करके विकार और विषमता को प्राप्त मत होओ।

दूसरी मर्यादा श्रवण की है। निश्चय ही कान सुनने के लिये हैं, परन्तु सुनने की, श्रवण करने की भी एक मर्यादा है। शुभ सुनो, सत्य सुनो, भद्र सुनो, वेद सुनो, शास्त्र सुनो, वीरगाथा सुनो, सत्पुरुषों के सच्चरित्र सुनो, सदुपदेश सुनो, सद्गान सुनो, इतिहास सुनो, वीरांगनाओं की वीरतायें सुनो, भजन सुनो, स्तवन सुनो, अभिनन्दन सुनो, परन्तु अश्लील मत सुनो, निन्दा मत सुनो, असत्य मत सुनो, झगड़े टंटे मत सुनो। शुभ और सत्य सुनना श्रवण की मर्यादा का पालन करना है, पुण्योपार्जन करना है। अशुभ और असत्य सुनना श्रवण की मर्यादा का लांघना है, पापी बनना है।

तीसरी मर्यादा है भक्षण की। भक्ष्य का भक्षण करो, पेय का पान करो, अभक्ष्य का भक्षण न करो, अपेय का पान न करो। भक्ष्य का भक्षण और पेय का पान सुन्दर मर्यादा है। इसके पालन से सुख की वृद्धि और पुण्य की प्राप्ति होती है। अभक्ष्य का भक्षण और अपेय का पान भक्षण-मर्यादा का उल्लंघन है। इससे रोगों की वृद्धि और पाप का संचय होता है। रोग और पाप विनाश की ओर ले जाते हैं। पुण्य की वृद्धि से सुख का विस्तार और आनन्द का प्रसार होता है।

चौथी मर्यादा भाषण की है। सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् ब्रूयान्नसत्यमप्रियम्। मनुष्य सत्य बोले, सत्य को अप्रियता के साथ न बोले। बोलो, सत्य बोलो, भद्र बोलो, मा निन्दत, निन्दा मत करो, अश्लील मत बोलो, वृथा बकवास मत करो; निरर्थक बातें मत करो। यह भाषण की मर्यादा है। इस मर्यादा के पालन से परिवार, समाज और संसार में विश्वास, व्यवस्था और शान्ति का

की ओर जा रही है। दूसरा प्रश्न यह है कि क्या धर्म उसे विनाश के गढ़े में गिरने से बचा सकता है। इसका उत्तर केवल हां या ना में नहीं दिया जा सकता। शायद यह अणुबम की सभ्यता उस कोटि तक पहुँच गई है जहां उसका एक बार विनाश होना आवश्यक है। यदि गिरावट का रास्ता रोकने के लिये धर्म आवेगा तो वह भी अणुबम से जला दिया जावेगा। परन्तु यह बात सत्य है यदि मनुष्य जाति उस विशुद्ध रूप में धर्म को स्वीकार करे जिसकी घोषणा व्यास मुनि ने की थी, तो सामान्यरूप से मनुष्य जाति और मानवीय सभ्यता की रक्षा अब भी हो सकती है।
—अ० भा० रेडियो के सौजन्य से।

★

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

साम्राज्य होगा। असत्य, अश्लील, अप्रिय बोलना और निन्दा करना भाषण-मर्यादा का लांघना है। इस मर्यादोल्लंघन से अविश्वास, अव्यवस्था और अशान्ति फैलती है सत्य, शील और प्रिय भाषण धर्म है। तद्विपरीत अधर्म है। यतो धर्मस्ततो जयः। जहां धर्म है वहीं जय है। जहां अधर्म है वहां विनाश है, भारी हानि है।

पांचवी मर्यादा है स्पर्श की। पुरुष केवल अपनी पत्नी के शरीर का ही स्पर्श करे, अन्य का नहीं। स्त्री केवल अपने पति के ही शरीर का स्पर्श करे, अन्य का नहीं। यही गार्हस्थ्य जीवन की मर्यादा है। यही चरित्र का स्तम्भ है। सदाचार का सोपान है। इस मर्यादित ब्रह्मचर्य का, इस गार्हपत्य संयम का कदापि अतिक्रमण न करे। इस मर्यादा का पालन करना धर्म है, परम धर्म है। इसका त्याग पाप है, महापाप है। जिस परिवार, देश और समाज में इस मर्यादा का आस्था के साथ पालन होता है वह परिवार, समाज और राष्ट्र परम पावन और महासौभाग्यशाली है, जहां इसके विपरीत है वहां कलह, क्लेश, दौमर्नस्यता, दुराचार, दुःख, दारुण रौरव और घोर नरक है।

छठी मर्यादा मनन-विचार की है। विचारों में निर्मलता हो, विमलता हो, शुद्धता हो, पवित्रता हो, उदारता हो, दृढ़ता हो, निष्कपटता हो, निर्विकारता हो। यह मर्यादा है, इसका पालन करना चाहिये। विचारों का संसार में अद्भुत चमत्कार है। विचारों की विषमता से वातावरण विषम हो जाता है और परिवार, समाज तथा संसार में अकथनीय यातना होती है। भद्र विचार, सुन्दर विचार, दिव्य विचार जगत में सुख सौभाग्य की रचना करते हैं। अभद्र विचारों से नारकीयता का प्रसार होता है। दिव्य विचार देवत्व की स्थापना करते हैं और आसुरी विचार असुरत्व को जन्म देते हैं। परहित, लोकसेवा और विश्वकल्याण के विचारों से विश्व स्वर्ग हो जाता है। स्वार्थमय, अनुदार, अनुचित, संकुचित और अपावन विचारों से संसार रहने योग्य नहीं रहता। विचारों की मर्यादा पालन करने से स्व पर सबको श्रेय और प्रेय की उपलब्धि होगी। विचारों की अमर्यादा से सब कुछ नष्ट हो जायेगा। विचारों के अनुसार ही कर्म और वचन होते हैं। यन्मनसा ध्यायति, तद्वाचा वदति। यद्वाचा वदति, तत्कर्मणा करोति। यत्कर्मणा करोति तदभिसम्पद्यते। विचार के अनुरूप ही वचन, कर्म और प्राप्ति होती है। विचार-मर्यादा मानवधर्म है। विचार-अमर्यादा दानवता है। मानव! मानव बन। मानव होकर दानव मत बन।

सातवीं मर्यादा है सत्कार। बड़ों का आदर और छोटों का पालन-पोषण, यह मर्यादा है। आदर-सत्कार-आतिथ्य मानवता का दुग्ध है, सार है। निर्धन से निर्धन व्यक्ति भी मधुर मुस्कान, अभिवादन, आसन और शीतल जल से सत्कार करके सौजन्य का परिचय दे सकता है। छोटे को भी छोटा समझ कर उसका निरादर मत करो। छोटे के सीने में भी एक वेदनशील हृदय है। मिलने पर छोटे से उसका योगक्षेम पूछो, मेरे योग्य क्या सेवा है, ऐसा बोलो, उसका हृदय संतुष्ट हो जायगा। बिना कुछ व्यय किये भी प्रत्येक का यथा योग्य सत्कार करके प्रत्येक हृदय में स्थान पाया जा सकता है। जैसा हृदय मेरा है, वैसा ही दूसरों का है, यह विचार कर किसी का निरादर, तिरस्कार, अपमान मत करो। इस पर विचार करो, अमल करो और इस पृथ्वी पर सर्वत्र स्वर्ग, स्वर्ग से बढ़िया स्वर्ग निर्माण करो। इस मर्यादा में एक गहन रहस्य है, समझो और वर्तो।

इन सात वैदिक मर्यादाओं का पालन परम धर्म है, परम कर्तव्य है, परम पुण्य है, तद्विपरीत घोर अधर्म और घोर पाप है। जो इनमें से प्रत्येक का पालन करता है वही धर्मात्मा और पुण्यात्मा है। जो इनमें से एक का भी अतिक्रमण करता है, वह अधर्मात्मा है, महापापी है।

★

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

दूध की कल्प चिकित्सा

प्रोफेसर रामचरण महेन्द्र एम. ए.

प्रसिद्ध अमेरिकन चिकित्सक श्री मैकफडन का विचार है कि दूध के प्रयोगों के निमित्त वसन्त या प्रारम्भिक ग्रीष्म ऋतुएं सर्व श्रेष्ठ हैं। वसन्त तथा ग्रीष्म ऋतुओं में गौ, भैंस, बकरियां नई हरी-हरी घास पत्तिए खाती हैं। इससे दूध बड़ा पौष्टिक तथा रोग-नाशक होता है। यदि मिल सके तो कल्प के लिये उन गायों का दूध लीजिये जो गांव या बाहर जगल की शुद्ध वायु में रहती तथा पवित्र वस्तुएं खाती हैं। एक तो इन ऋतुओं में दूध देने वाले पशु स्वयं ही नवीन रक्त से पूर्ण रहते हैं दूसरे मौसम का प्रभाव भी गुण-दायक सिद्ध होता है।

प्रारम्भ में यथाशक्ति कम ही दूध पीजिये। दूध पर रहने की आदत धीरे २ पड़ती है। जल्दी न करें। प्रथम दिन दो-दो घंटे पश्चात एक-एक पाव दूध प्रयोग में लायें। सायंकाल को देखिये कि पाव-पाव दूध आपको माफिक आया या नहीं? पेट में भारीपन तो नहीं हुआ है? खट्टी डकारें, वमन या उबकाई तो नहीं आती हैं? यदि पेट की हालत ठीक है और अरुचि नहीं है, तो दूसरे दिन थोड़ी सी मात्रा बढ़ाइये। समय भी कम कम कीजिए। अब घंटे-घंटे बाद दूध पीकर देखिए। दो-एक दिन इसी अन्तर से दुग्ध पीकर देखिए कि पेट को उस पर रहने की आदत हो गई है या नहीं? यदि नहीं तो इसका यह अभिप्राय है कि आपने दुग्ध अधिक ले लिया है या दुग्ध खराब रक्खा हुआ या बासी रहा है। इससे बड़े सावधान रहिए। संक्षेप में, पहले दिन पाव-पाव भर दुग्ध दो-दो घंटे के बाद। दूसरे दिन दूध डेढ़ घंटे बाद; तीसरे दिन एक घंटे पश्चात् दिया जाय। प्रति दिन पांच सेर से अधिक न दिया जाय। आयु, स्वास्थ्य, रुचि, परिस्थिति, का पूरा पूरा ध्यान रक्खा जाय। जायका ठीक रखने के लिए एक-दो संतरे या नींबू भी दिये जा सकते हैं।

कल्प में दूध का परिमाण

रोगी कितना दूध कल्प में पान करे, इसका निर्णय रोगी की अवस्था, स्वास्थ्य, क्षुधा इत्यादि पर निर्भर है। कोई व्यक्ति अधिक दूध पचा पाता है तो कोई कम। पहलवान प्रायः साधारण व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक दूध पचा पाते हैं। स्त्रियां तथा बालक युवकों से भी कम पचा पाते हैं। रोगी स्वयं इस बात का निर्णय करे कि वह कितना दूध पचा पाता है। कृत्रिम उपायों जैसे चूर्ण इत्यादि से भूख बढ़ाने का प्रयत्न न किया जाय। जब रोगी कहे, तभी पाव भर दूध दिया जाय जिसे वह चूस-चूस कर सानन्द पान करे। पाव भर दूध पीने में चार-पांच मिनट का समय तक लिया जाय। दूध के घूंट को कुछ काल तक मुंह में रोक कर लार मिश्रित की जाय। फिर उसे प्रसन्न होते हुए उदरस्थ किया जाय।

कुछ प्राकृतिक चिकित्सकों का मत है कि मनुष्य की लम्बाई हमें दूध पीने की मात्रा निश्चित करने में सहायता करती है। लम्बाई जितने फीट हो, उतने ही सेर दूध लिया जाय। प्रायः मनुष्य पाच-छः फीट लम्बा होता है, चौबीस घंटे में अपनी लम्बाई के अनुसार ही दूध पिये, अधिक नहीं। हम इस मत से सहमत नहीं हैं। हमारी राय में रोगी की आयु प्रकृति, स्वास्थ्य एवं अवस्था से ही दूध की मात्रा निर्णय करनी चाहिये। उपवास काल में पेट नरम होता है अतः प्रारम्भ में इतना दूध पान नहीं किया जा सकता। इसे दुग्ध पान की चरम सीमा ही समझना चाहिए। इच्छानुसार तथा पाचन शक्ति के अनुसार ही रोगी दूध ले। दो दो घंटे पश्चात पाव-पाव भर दूध लें या भूख के अनु-सार एक-एक घंटे बाद भी। इच्छा न रहते हुए दूध पिलाने से रोगी को बदहाजमा हो सकता है तथा दस्त एवं वमन प्रारम्भ हो सकती है। अतः सम्भल कर ही

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

स्वतंत्र भारत के सच्चे विद्यालय की एक झलक

श्री रामसिंह एम. ठाकुर

सच्चे शिक्षणालय वे ही हैं जहां विश्व-व्यापी ज्ञान की शिक्षा दी जाती है। हमारे प्राचीन ऋषि अपने आश्रमों में वेदों और शास्त्रों के अतिरिक्त अन्य बहुत से विषयों की भी शिक्षा दिया करते थे। ये संस्थायें ही वस्तुतः सच्चे अर्थों में विश्वविद्यालय हुआ करती थीं। उन में सब विषय पढ़ाये जाते थे जो उस समय तक ज्ञात थे। इन विषयों क सूची वर्तमान विश्वविद्यालयों में पढ़ाये जाने वाले विषयों के मुकाबले में कम नहीं उतरती। यदि हम डेढ़ हजार वर्ष पुराने नालन्दा विश्व-विद्यालय के इतिहास को देखें तो मालूम होगा कि उस में १०० विषयों की शिक्षा दी जाती थी, विश्वविद्यालय में १००० विद्वान् तो ऐसे थे जो १० विषयों में निपुण थे और ५०० विद्वान् ३० विषयों के और दस विद्वान ५० विषयों के पंडित थे। कुलपति श्री शीलभद्र जी १०० विषयों के पंडित थे, यही नहीं दरवाजे पर द्वार पंडित बैठे रहते थे, ये द्वार पंडित भी बड़े उच्चकोटि

दूध की मात्रा में अभिवृद्धि कीजिए। प्रारम्भ में कम मात्रा में दूध पिएं और पाचनशक्ति के विकास के अनुसार परिमाण को बढ़ाते रहें।

यह सम्भव है कि कुछ रोगी शुद्ध दूध हजम न कर सकें और वह उन्हें भारी सिद्ध हो। ऐसे रोगियों को दूध में कुछ जल मिला लेना चाहिए। पानी मिला कर दूध पतला हो जायगा तथा सरलता से पच सकेगा। प्रारम्भ करते समय इसी प्रकार पतला दूध लिया जा सकता है। बच्चों तथा रोगियों को ऐसा दूध बड़ा हितकर सिद्ध होता है। रसाहार तथा जल लेते रहने से शरीर को तरल पदार्थों पर रहने की आदत हो जाती है। अतः दूध तक आने के लिए जल में दूध मिश्रित करके देना अच्छा है। धीरे-धीरे जल की मात्रा कम करते रहना चाहिए, यहां तक कि शुद्ध दूध पर आ जायं। अधिक लाभ शुद्ध धारोष्ण दूध से ही होता है।

कुछ व्यक्ति अधिक लाभ के लालच में बहुत गाढ़ा कढ़ाई में कढ़ाया हुआ दूध लिया करते हैं। ऐसा दूध बड़ी कठिनाई से पचता है। इसे पचाने के लिए व्यायाम की भी बहुत आवश्यकता पड़ती है। रोगी को गाढ़ा किया हुआ दूध न दीजिए वरन् मलाई तक उतार कर या छान कर प्रयोग में लाइये। यह मलाई चिकनाई लिए हुए होती है। संभव है रोगी प्रारम्भ में इतनी चिकनाई न पचा सके। अधिक देर तक रक्खा हुआ दूध भी हानि करता है। जितना शुद्ध तथा ताजा दूध ले सकें उतना ही उत्तम तथा स्वास्थ्यप्रद है। उत्तम कच्चे दूध को ढक कर ठंडक में यत्नपूर्वक रक्खा जाय तो चार घटे तक उसमें विकार न आवेगा। चार घटे तक दूध में शक्ति रहती है, बाद में वह खराब होने लगता है। कल्प के लिए धारोष्ण दूध ही सर्वोत्तम सिद्ध होता है।

कल्प का मध्य एवं अन्त

कल्प कितने दिन चले, यह निर्णय करना कठिन है। जब रोग जड़ मूल से चला जाय, तब कल्प समाप्त कर देना चाहिए। साधारणतः दुग्ध-कल्प काफी लम्बा चलता है। कम से कम छः सात सप्ताह का समय तो लेना ही चाहिए। इससे अधिक भी समय लेना हो तो आवश्यकतानुसार किसी योग्य अनुभवी प्राकृतिक चिकित्सक की सम्मति से ले सकते हैं। कुछ जीर्ण रोगी ऐसे होते हैं जिन्हें तीन-चार मास तक करा सकते हैं। जो कमजोर तथा क्षीणकाय हैं, उन्हें विशेषतः अधिक लम्बे कल्पों की आवश्यकता पड़ती है। जो साधारण स्वास्थ्य के लिए कल्प करते हैं उन्हें छः सप्ताह काफी हैं। इतने समय में ही रोगी को दुग्ध से अरुचि होने लगती है जब ऐसा हो जाय तो कल्प समाप्त कर दें।

★

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

के विद्वान् होते थे। २० प्रतिशत विद्यार्थी इस कुल में प्रवेश कर पाते थे और शेष ८० प्रतिशत को निराश होकर लौटना पड़ता था। फिर भी इस विश्वविद्यालय की सर्व प्रियता इतनी बढ़ी-चढ़ी थी कि अध्यापकों की संख्या १००० थी। विद्यार्थी स्वस्थ, निरोग, संयमी और विनयशील थे। आरोग्य, पवित्रता और शुद्धाचरण उन के जीवन का मुख्य अंग था। गुरुकुल ने इन्हीं उच्च आदर्शों को अपने सामने रखा है।

गुरुकुल की एक झांकी

वेद ने ब्राह्मण की उत्पत्ति के योग्य स्थान पर्वतों के निकट नदियों के संगम ही बतलाए हैं। इसके अनुसार श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी ने गुरुकुल की स्थापना अत्यन्त अनुकूल परिस्थितियों में की थी। यहां एक और भारतीय आदर्श के समान उन्नत तपस्वियों के जीवन सा कठोर, मनस्वी के निश्चय सा दृढ़ तथा महापुरुषों के हृदय जैसा सुविशाल हिमाचल खड़ा है दूसरी ओर ऋषियों की शिक्षा के समान कल्याणकारी महाकवि की प्रतिमा सी अमृत वर्षिणी महात्माओं की विमल दृष्टि सी पापहारिणी तथा माता के स्तन्य सी मधुर भगवती भागीरथी अपने कल-कल निनाद से किसी अलौकिक संदेश को सुना रही है। यहां का वायु-मंडल कलाकार की कल्पना के समान स्वतन्त्र, शिशु की मुस्कान सा निर्दोष तथा बाल रवि की रश्मियों का स्फूर्तिदायक है। यहां के सघन सुनील आम्रकुञ्जों में किसी अलक्ष्य संगीत की ध्वनि गूंज रही है। हिमालय के इन्हीं प्रदेशों, भागीरथी के इन्हीं तटों, उत्तराखंड के इन्हीं वनों में वैदिक आर्यों की युग-युग की साधना आज निःश्वास ले रही है। कुम्भ महापर्व में अपनी शक्ति को अल्प देख ऋषि दयानन्द ने सर्वमेध यज्ञ कर इसी स्थान में तपस्या द्वारा असीम बल संचय किया था। वर्ष की सभी ऋतुएं यहां दिल खोल कर अपनी ललित लीला का अभिनय करती हुई आती हैं और चली जाती हैं। ऐसी ही परिस्थितियों में तो नव-युवकों की अन्तर्निहित शक्तियों का स्वाभाविक पूर्ण विकास संभव है। वन्य पशुओं से व्याप्त भीषण निर्जन वनों में भ्रमण हृदय को निर्भय बनाता है। हिमाच्छादित गिरि शिखरों से अठखेलियां करते, मोटे से मोटे गरम कपड़ों में भी घुस कर हृत्कम्प उत्पन्न करने वाले गंगा की तरंगों से शीतल पौष-माघ के पश्चिमी पवन तथा वैशाख-ज्येष्ठ की प्रखर सूर्य रश्मियों से संतप्त, लता द्रुमों को झुलसाती तीव्र लूहों से शरीर कष्ट-सहिष्णु बनता है। वसन्त तथा वर्षा की वर्णनातीत प्राकृतिक शोभा मानव हृदय में कवित्व एवं दार्शनिकता की उद्भावना करती है। पर्वतों पर भागते-भागते चढ़ जाना, नदी में मीलों तैरना, दूर दिगन्तों तक दृष्टि का अप्रतिहत प्रसार आत्म-विश्वास तथा उत्साह के साथ-साथ हृदय की भावनाओं को विशाल बनाते हैं। ग्राम और नगरों के दूषित प्रभाव यहां फटकने नहीं पाते।
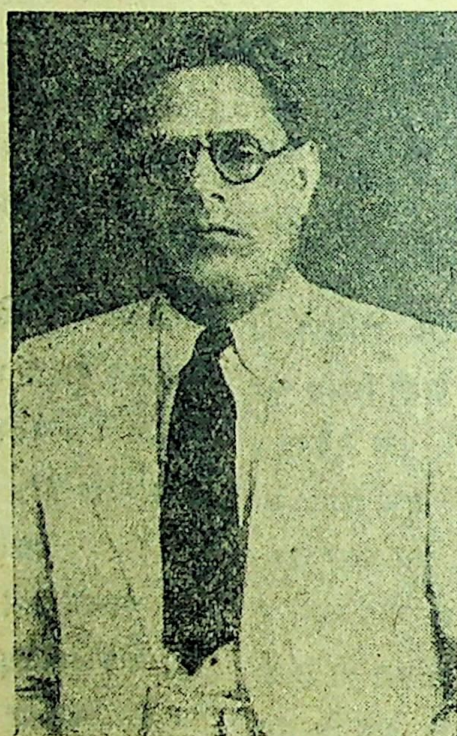
श्री ठाकुर एम. रामसिंह

शारीरिक विकास

ऐसी उत्कृष्ट परिस्थिति में सदाचारी गुरुओं का सहवास उत्तम भोजन व्यायाम तथा धार्मिक शिक्षा सोने में सुहागे का काम करते हैं। भोजन में दूध फल आदि पर विशेष ध्यान दिया जाता है और वर्ष में एक बार उनके स्वास्थ्य की विशेष परीक्षा अवश्य की जाती है। गुरुकुल का प्रत्येक ब्रह्मचारी खेल में भाग लेता

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

है जिससे उस में खिलाड़ी की भावना का विकास होता है। व्यायाम, कुश्ती आदि के अतिरिक्त गर्मियों में ब्रह्मचारी तैरने का भी अभ्यास करते हैं जो कि एक अत्यन्त उपयोगी कला है। गढ़ मुक्तेश्वर के गंगा स्नान के मेले पर प्रतिवर्ष तैरने की खुली प्रतियोगिता होती है। उस में गुरुकुल के ब्रह्मचारी प्रायः प्रथम पारितोषिक प्राप्त करते हैं। गुरुकुल की हॉकी टीम दूर दूर तक प्रसिद्ध है। ब्रह्मचारियों का मुख्य कार्य खेल नहीं। प्रतिवर्ष कुछ खिलाड़ी अपनी शिक्षा समाप्त कर यहां से चले जाते हैं इस प्रकार हमारी टीम सदा बदलती रहती है इस त्रुटि के रहते हुए भी गुरुकुल की टीम ने कई सान्मुख्यों में शानदार विजय प्राप्त की है। जिसके कारण उसे अनेक सान्मुख्यों में आग्रह-पूर्वक बुलाया जाता है। मेरठ, शाहजहांपुर, बिजनौर, सहारनपुर आदि स्थानों में गुरुकुल दल ने समय-समय पर बहुत प्रशंसा प्राप्त की है।

मानसिक विकास

श्रेणी के लिये नियत पाठ्य पुस्तकें पढ़ने के साथ-साथ वक्तृत्व तथा लेखन कला की विशेष उन्नति करने के लिये ब्रह्मचारियों ने अपनी आश्रम-सभाएं बना रखी हैं। संस्कृत, हिन्दी और अंग्रेजी तीनों भाषाओं में वाद-विवाद तथा वक्तृत्व का अभ्यास करने के लिये अलग-अलग सभाएं हैं। इन सभाओं की सफलता का सब से बड़ा प्रमाण यह है कि गुरुकुल के ब्रह्मचारी जब जब विभिन्न विश्वविद्यालयों की हिन्दी तथा संस्कृत व्याख्यान प्रतियोगिताओं में भाग लेने गये तब वे सर्व प्रथम रहे। इस से यह भी सिद्ध होता है कि अन्य विश्वविद्यालयों की अपेक्षा गुरुकुल में छात्रों का मानसिक विकास कहीं अधिक होता है अपने इस मानसिक विकास को बढ़ाने के लिये ब्रह्मचारी समय-समय पर अपने उपाध्यायों तथा बाहर के विद्वानों के विद्वत्ता पूर्ण व्याख्यान भी करवाते हैं। लेखनकला की उन्नति के लिये ये सभाएं अपनी पत्रिकाएं भी प्रकाशित करती हैं उन में उच्चकोटि के निबन्ध, गल्प, कविताएं, सामयिक टिप्पणियां आदि रहती हैं। इन सभाओं के कारण ही गुरुकुल के अनेक स्नातक सफल लेखक, यशस्वी कवि, कृतकार्य सम्पादक तथा प्रसिद्ध वक्ता बने हैं। तेईस, चौबीस वर्ष की छोटी सी आयु में ग्रन्थ-रचना कर मंगलाप्रसाद पारितोषिक प्राप्त करने का सौभाग्य गुरुकुल के स्नातकों को ही प्राप्त है।

गुरुकुल के स्नातक अन्य विश्वविद्यालयों के स्नातकों की अपेक्षा प्रायः अधिक धार्मिक वृत्ति वाले, देशप्रेमी, ईमानदार, सदाचारी, सेवाव्रती तथा तपस्वी होते हैं। हाथ से काम करने में वे संकोच या लज्जा अनुभव नहीं करते। गुरुकुल में उन सब उपायों तथा साधनों पर विशेष बल दिया जाता है जिन से नवयुवकों के शरीर, मन तथा आत्मा का स्वाभाविक विकास अधिक हो सके। गुरुकुल में प्राचीन शास्त्रों और वेदों के गम्भीर अध्ययन के साथ-साथ आधुनिक नवीन विज्ञानों तथा अंग्रेजी भाषा और साहित्य का भी उच्च ज्ञान उन्हें करवा दिया जाता है।

मातृभाषा द्वारा उच्चतम शिक्षा

जो बुराई संसार में किसी भी सभ्य देश के विश्वविद्यालयों में नहीं है तथा भारत का कोई भी सरकारी शिक्षणालय जिस से बचा हुआ नहीं वह है विदेशी भाषा द्वारा शिक्षा। हमारा तो दृढ़ विश्वास है कि शिक्षा का माध्यम बन सकने की योग्यता अन्य भाषा में हो ही नहीं सकती। अन्य भाषा द्वारा साधारण से साधारण विषय को भी समझना विद्यार्थी के लिये कठिन होता है। कठिन विषय को तो प्रायः उन्हीं शब्दों में रट लेने के सिवाय अन्य कोई उपाय ही नहीं। इस प्रकार रटे हुए शब्द विद्यार्थी के मस्तिष्क में विजातीय द्रव्य की तरह संचित हो जाते हैं जो परीक्षा के बाद इस प्रकार उड़ जाते हैं—जिस प्रकार पिंजरा खुलने पर पक्षी। उन में निहित विचार विद्यार्थी के विचार के भाग नहीं बन जाते। विद्यार्थी विषय को समझ नहीं

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

सकता इस लिये उसे बाजारू नोटस तथा समरियां ज्यों की त्यों याद करने के लिये बाधित होना पड़ता है। यदि विषय समझ में आजाए तो उसे रटने की आवश्यकता नही होती। मातृभाषा द्वारा शिक्षा प्राप्त करते समय केवल विषय की कठिनाई को ही हल करना पड़ता है किन्तु अन्य भाषा में पढ़ते हुए भाषा तथा विषय दोनों को समझना पड़ता है। कभी-कभी भाषा के कारण ही विषय समझ में नहीं आता। अन्य भाषा द्वारा शिक्षा देने से विद्यार्थी के मस्तिष्क पर दुगना बोझ पड़ता है यह बड़ा भारी अत्याचार है। पुस्तकें मातृभाषा में हों तो अब की अपेक्षा कहीं अधिक ज्ञान वह भी बड़ी सुगमता से और थोड़े समय में प्राप्त किया जा सकता है। स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् देश के नेताओं का ध्यान इस बुराई की ओर अब गया अवश्य है, किन्तु वे भी इसे दूर करने के लिये अभ पर्याप्त चिन्तित नहीं हैं। श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी ने इसे बहुत पहले अनुभव कर लिया था। इस लिये उन्होंने गुरुकुल में प्रारम्भ से ही उच्च शिक्षा का माध्यम भी हिन्दी को रखा। गुरुकुल की यह एक बहुत बड़ी विशेषता है यहां यह परीक्षण आधी शती से सफलता पूर्वक चल रहा है।

वेदादि प्राचीन शास्त्रों का अध्ययन

गुरुकुल एक धार्मिक तथा राष्ट्रिय संस्था है किन्तु यहां की शिक्षा अत्यन्त उदार है। उच्चतम शिक्षा प्राप्त करके भी यहां के विद्यार्थी का झुकाव न तो नास्तिकता की ओर होता है न वह किसी सिद्धान्त को आंख मीच कर यों ही मान लेने के लिये तैयार होता है। उस में अन्य धर्मों के प्रति सहिष्णुता ही नहीं, पूर्ण सहानुभूति भी होती है।। वेदों, दर्शनों तथा साहित्य का जितना गम्भीर, व्यापक तथा धार्मिक अध्ययन यहां करवाया जाता है उतना भारत के अन्य किसी भी विश्वविद्यालय में नहीं करवाया जाता। भारतीय प्राचीन साहित्य की प्रायः सभी शाखाओं में यहां के विद्यार्थी की बेरोक-टोक गति हो जाती है। वह उन में अनुसन्धान के योग्य हो जाता है, वेदों पर पाश्चात्य विद्वानों के आक्षेपों का समाधान उसे बताया जाता है, वेद को समझने के लिये जिस साहित्य को पहले पढ़ने की आवश्यकता पड़ती है अर्थात् व्याकरण, निरुक्त, प्रातिशाख्य, ज्योतिष आदि वह सब उसे पढ़ाया जाता है, इस प्रकार वह वेद सम्बन्धी अपने अध्ययन को स्वतन्त्र रूप में आगे बढ़ाने के योग्य हो जाता है। वह दर्शनों के सिद्धान्तों को खूब समझता है, उन्हें दूसरों को सरल भाषा में समझा सकता है। संस्कृत-साहित्य पर उसका पूर्ण अधिकार हो जाता है। वह कवियों की सूक्ष्म आलोचना तुलनात्मक, मनोवैज्ञानिक तथा ऐतिहासिक दृष्टिकोण से कर सकता है, उसे प्राकृत भाषा तथा पाली से भी परिचित करवा दिया जाता है जिस से कि वह जैन, बौद्ध साहित्य आदि में अनुसन्धान के कार्य कर सके। गुरुकुल का विद्यार्थी अंग्रेजी कवियों के साथ-साथ वाल्मीकि, कालिदास आदि को खूब जानता है।

भारतवर्ष के सांस्कृतिक नवजागरण में गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी अपनी अमूल्य सेवाएं देता रहा है। इस विद्यातीर्थ से प्रतिवर्ष ऐसे तरुण विचारक और ज्ञानयात्री बाहर निकलते हैं जो राष्ट्र के चरित्र और इतिहास के निर्माण में अपनी विशेष देन दे सकते हैं, यदि उन को अपनी शक्तियों की अभिव्यक्ति के लिये अनुकूल अवस्थाएं अवसर और उचित प्रोत्साहन प्रदान किया जाय। गुरुकुल श्रद्धानन्द जी के इस शिक्षा-तपोवन और संस्कृति-तीर्थ की तुलना पश्चिमी देशों के उन आश्रमिक विद्यालयों (पब्लिक स्कूल्स) से सहज में ही की जा सकती है। जो समसामयिक मानव-समाज की विचार-संस्कृति और चरित्र संघटन में अपना महत्त्वपूर्ण मार्ग प्रदान करते हैं।

★

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गुरुकुल समाचार

ऋतु—बसन्त पंचमी बीत गई तथापि अभी शीत का जोर कम नहीं हुआ है। प्रातः सायं अच्छी सर्दी पड़ रही है। पतझड़ के पवन-झकोरे अभी तक गरम लबादे लपेटने को बाध्य कर रहे हैं। शहतूत आड़ू, शीशम आदि के वृक्ष-विहीन होकर पतझड़ का वैभव प्रदर्शित कर रहे हैं। अभी तक ढाक के पेड़ों पर टेसू की रंगत नहीं आई है। गुरुकुल के चहुँ ओर की खेतियों में सरसों की अपूर्व बहार है। गेहूँ और चने के खेत भी लहरा रहे हैं। कुलवासियों का स्वास्थ्य अच्छा है।

गणराज्य दिवस

२६ जनवरी को समस्त कुलवासियों ने स्नेह और उत्साह के साथ गणराज्य दिवस मनाया। प्रातःकाल आठ बजे समस्त कुलवासी झंडा चौक में समवेत हुए। विश्वविद्यालय के वाद्यदल द्वारा बजाए जाते हुए मधुर और उद्‌बोधक स्वरों ने वातावरण को भव्य और चेतनापूर्ण बनाया हुआ था। सबने मिल राष्ट्रीय गान गाया। तदनन्तर गुरुकुलाचार्य श्री पं० प्रियव्रत जी ने दिवस के महत्व को समझाते हुए राष्ट्र की स्वातन्त्र्य-लक्ष्मी की सच्ची पूजा और उसकी सुरक्षा को लक्ष्य करके एक छोटा प्रवचन करते हुए नवीन राष्ट्रपताका को फहराने की विधि सम्पन्न की। वन्दे-मातरम् गीत गाया, ध्वज-वन्दन किया गया और शहीदों तथा राष्ट्र-विभूतियों के नाम पर जय के नारे लगाए गए। सायंकाल के समय क्रीडा-सान्मुख्यों के उत्साहक कार्यक्रम होते रहे।

महात्मा गान्धी दिवस

महात्मा गांधी जी के बलिदान दिवस के उपलक्ष्य में समस्त कुलवासियों की एक सभा आचार्य श्री पं० प्रियव्रत जी की अध्यक्षता में विद्यालय-प्रार्थना भवन में सम्पन्न हुई। जिसमें ब्रह्मचारियों और गुरुजनों ने चरित्र नायक के जीवन-दर्शन और कार्यकलापों पर नाना दृष्टियों से विचार करते हुए उनकी अद्‌भुत सेवाओं के प्रति श्रद्धा के फूल चढ़ाए। श्री शंकरदेव विद्यालंकार ने गांधी-अर्थशास्त्र के विकेन्द्रीकरण सिद्धांत के विषय में विशेष रूप से प्रकाश डाला। श्री आचार्य जी ने भी गांधी जी के अपरिग्रह सिद्धांत की चर्चा करते हुए विश्वशांति के लिए अपरिग्रह पालन कितना जरूरी है इस तत्व को समझाया।

वसन्त पञ्चमी

११ फरवरी को कुलवासियों ने वसन्तोत्सव प्रेम-पूर्वक मनाया। दूधियाबन्द के समीप नहर के तीर पर सुहावने स्थान पर प्रातः कुलवन्दना के अनन्तर वॉली-बॉल का सान्मुख्य रचा गया। अपराह्न में प्रीतिभोज सम्पन्न हुआ। तत्पश्चात् साहित्योपाध्याय श्री पं० वागीश्वर जी विद्यालंकार की अध्यक्षता में साहित्य-गोष्ठी और गीतों का कार्यक्रम हुआ। सारा दिन आनन्द और उल्लास से व्यतीत हुआ।

अन्तर्विद्यालय प्रतियोगिताएं
[छात्रों के यशस्वी कार्यकलाप]

गतवर्ष से पंचपुरी में स्थित विद्यालयों (हाई स्कूलों) में एक बहुत अच्छी प्रवृत्ति प्रारम्भ हुई है। जनवरी मास में समस्त विद्यालयों के छात्रों की शारीरिक और मानसिक तालीम और उसकी प्रगति का परिचय पाने के लिए विविध प्रतियोगिताएं और स्पर्धाएं आयोजित होती हैं। इनमें विजय पाने वाली संस्थाओं तथा यशस्वी छात्रों को पुरस्कार दिए जाते हैं। इन कार्यक्रमों में बड़े उत्साह, उल्लास और जिन्दादिली का वातावरण रहता है। ये कार्यक्रम तीन प्रकार के होते हैं।

(क) मैदानी सामूहिक खेलों में सान्मुख्य।
(ख) ओलम्पिक क्रीडाओं की स्पर्धाएं।
(ग) बौद्धिक प्रगति प्रदर्शक संघर्ष।

इस बार इन उत्साहप्रद कार्यों में गुरुकुल के विद्यालय विभाग के छात्रों ने बड़ी दिलचस्पी और दक्षता प्रदर्शित की है। उन्होंने प्रभूत मात्रा में पुरस्कार प्राप्त करके अपनी मातृ-संस्था की शान बढ़ाई है।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

ब्रह्मचारियों द्वारा जीते गए पुरस्कारों का क्रम इस प्रकार है—

१. हॉकी के टूर्नामेंट में—गुरुकुल-दल ने चांदी का प्याला प्राप्त किया।

२. ओलम्पिक क्रीड़ाओं में प्रथम आने पर सर्वोत्कृष्ट रहने पर चांदी की ढाल प्राप्त की।

३. हिन्दी भाषण-प्रतियोगिता में चांदी का प्याला प्राप्त किया।

४. तकली द्वारा सूत कातने की स्पर्धा में चांदी का प्याला जीत लाए।

व्यक्तिरूप में यशस्वी होने वाले छात्रों के नाम तथा उनके कार्यों का विवरण इस प्रकार है—

१. सौ गज की दौड़ में ब्र० विजय ६म श्रेणी तथा ब्र० ताराचन्द ६म श्रेणी प्रथम और द्वितीय रहे।

२. ४४० गज की दौड़ में भी ब्र० विजय और ब्र० ताराचन्द प्रथम और द्वितीय आए।

३. ८८० गज की दौड़ में ब्र० विजय दूसरे पर आया।

४. झंडी दौड़ में ब्र० विजय, ताराचन्द, सुधीरकुमार ६म तथा रघुवीर ८म की मंडली प्रथम नम्बर पर आई।

५. हनुमान कूद (लम्बी कूद) में ब्र० विजय द्वितीय आया।

६. कवायद (ड्रिल) में गुरुकुल दल दूसरे पर रहा।

७. सुभाषण में ब्र० नृपेन्द्र ८म तृतीय रहा।

८. सुलेखन में ब्र० कुलदीप ८म द्वितीय रहा।

९. तकली कातने की स्पर्धा में ब्र० कुलदीप ८म प्रथम रहा।

१०. हिन्दी वाद-विवाद में ब्र० जयवीर ८म द्वितीय तथा विजय ६म तृतीय रहा।

११. तात्कालिक भाषण में ब्र० विजय ६म प्रथम आया।

प्राथमिक विभाग के छात्रों का विवरण इस प्रकार है—

१. सौ गज की दौड़ में ब्र० श्रीकृष्ण ६ष्ठ और शिवाजी ६ष्ठ क्रमशः २य और ३य नम्बर पर आए।

२. ४४० गज की दौड़ में ब्र० शिवाजी २य और श्रीकृष्ण ३य रहा।

३. झंडी दौड़ में ब्र० गोपाल ५ष्ठ, शिवाजी ६ष्ठ, धनपति ५म और श्रीकृष्ण की मंडली प्रथम नम्बर पर आई।

४. तीन टांग की दौड़ में ब्र० योगेन्द्र और श्रीकृष्ण की जोड़ी दूसरे पर आई और सुरेन्द्र ४र्थ तथा अश्विनी कुमार ४र्थ की जोड़ी तीसरे नम्बर पर आई।

भाषण प्रतियोगिता में विजय

देहरादून की आर्यकुमार सभा ने बड़े पैमाने पर विद्यार्थियों की एक हिन्दी भाषण प्रतियोगिता का आयोजन किया था। प्रतियोगिता में केवल कॉलेजों की १२वीं कक्षा तक के विद्यार्थी भाग ले सकते थे। इसमें भाग लेने के लिए गुरुकुल महाविद्यालय की ११वीं श्रेणी के दो ब्र० ओम्प्रकाश और सत्यव्रत गए थे। कुल बाईस संस्थाओं ने प्रतियोगिता में भाग लिया था। हर्ष का विषय है कि प्रतियोगिता में गुरुकुल कांगड़ी के प्रतिनिधियों ने शानदार विजय प्राप्त की की है। गुरुकुल को चांदी का एक चल-विजय चिह्न (ढाल) प्राप्त हुआ है। वाद-विवाद का विषय यह था—'धर्मानुप्राणित राजनीति से ही रामराज्य की स्थापना हो सकती है।' सर्वोत्तम वक्ता का पुरस्कार भी गुरुकुल के ब्रह्मचारी ओम्प्रकाश को प्राप्त हुआ है।

गुरुकुल महोत्सव

इस वर्ष गुरुकुल का वार्षिक महोत्सव १३-१४-१५ और १६ एप्रिल को मनाया जाना निश्चित हुआ है। नवीन छात्रों का प्रवेश भी इसी समय होगा। जो सज्जन अपने बालकों को प्रविष्ट कराना चाहें उन्हें पहिले से प्रवेश-पत्र मंगा कर अपने बालक के प्रवेश

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

की स्वीकृति मंगा लेनी चाहिए। उत्सव की तैयारी प्रारम्भ हो गई है।

स्नातक भीष्मदेव जी का अवसान

शोक का विषय है कि गुरुकुल के प्रिय और होनहार स्नातक भीष्मदेव जी वेदालंकार का पिछले दिनों अपने वतन नवसारी में देहावसान हो गया। वे पिछले ४-५ मास से बीमार चले आ रहे थे। गत वर्ष वे संस्कृत-साहित्य विषय लेकर एम. ए. की परीक्षा के लिए मेरठ केन्द्र में बैठे थे और यशस्वी अंकों से प्रथम वर्ष में उत्तीर्ण हुए थे। स्नातक होने के बाद से वे गुरुकुल सूपा (नवसारी) में अध्यापन कार्य कर रहे थे। आपका अपना प्रिय विषय दर्शन-शास्त्र था। श्री अरविन्द के तत्वज्ञान के प्रति आपका विशेष प्रेम था। आप बड़े साधु स्वभाव के विनम्र व्यक्ति थे। आपके अवसान पर सब कुलवासी दुःखी है और आपके आत्मीयजनों तथा मित्रों के साथ सहानुभूति व्यक्त करते हैं। आपकी विद्यालय की शिक्षा गुरुकुल सूपा में हुई थी और सन् १९४२ में आप कांगड़ी से स्नातक हुए थे।

गुरुकुल के स्नातक—आरम्भ काल से १९५० तक गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय से जो स्नातक निकले हैं उनका सचित्र परिचय इस पुस्तक में दिया गया है। समाज, राजनीति, व्यापार, पत्रकारिता आदि विविध क्षेत्रों में गुरुकुल के स्नातकों ने जो गौरवपूर्ण स्थान बना लिया है उसका ज्ञान इस से होता है। देश के प्रथम राष्ट्रीय शिक्षणालय के स्नातकों का विस्तृत परि-देने वाली इस पुस्तक को आज ही मंगाइये। मूल्य ३)।

वरुण की नौका—लेखक श्री पं० प्रियव्रत जी आचार्य गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय। इस पुस्तक में वरुण सूक्तों में आये वेदमन्त्रों की विद्वत्तापूर्ण सरल व्याख्या की है। मूल्य प्रथम भाग ३), द्वितीय भाग ३)।

मिलने का पता—प्रकाशन मन्दिर, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार।

स्वास्थ्य समाचार माघ मास

श्रेणी	नाम रोगी ब्रह्मचारी	नाम रोग	कितने दिन रोगी
१५	कर्मवीर	प्रतिश्याय ज्वर	११ दिन
१५	सुरेशचन्द्र	चोट	५
१३	रवीन्द्र	चोट	२
१३	नारायणदत्त	कास	६
१३	ओमप्रकाश	चोट	३
१२	रामप्रकाश	प्रतिश्याय ज्वर	५
१२	गोपालकृष्ण	,, ,,	५
१२	स्वतन्त्रकुमार	,, ,,	५
११	बालकृष्ण	आन्तशूल	२
११	रघुनाथ	ज्वर	२
९	अभयदेव	चोट	५
९	सुधीर	ज्वर	४
९	विजयकुमार	चोट	५
९	रमेश	ज्वर	६
८	जितेन्द्र	चोट	६
६	जितेन्द्र	निमोनिया	१२
४	त्रिपुरेन्द्र	,,	६
५	हेमचन्द्र	ज्वरकास	३
६	हरिश्चन्द्र	,,	३
६	गोपाल	,,	३
६	रवीन्द्र	ज्वर	३
७	देवेन्द्र	प्रतिश्याय	४
५	सुभाष	,,	५
२	सुभाष	,,	५
२	प्रमोद	,,	३
३	जितेन्द्र	,,	५
२	कौशल किशोर	मम्पज	१२
२	राकेश	चोट	४

उपर्युक्त ब्रह्मचारी रुग्ण हुए थे। अब सब स्वस्थ हैं।

★

मुद्रक—श्री हरिवंश वेदालंकार। गुरुकुल मुद्रणालय, गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार।
प्रकाशक—मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी की

विशेष गुणदायक औषधियां

च्यवनप्राश हाइपो

च्यवनप्राश में कैल्शियम व सोडियम आदि नवीन रासायनिक पदार्थ डालकर यह योग तय्यार किया गया है। खांसी, क्षय, निर्बलता दमा आदि में रामबाण है और शरीर वृद्धि के लिये उत्तम रसायन है।

मूल्य ३।) पाव।

सिद्ध मकरध्वज

स्वर्ण, कस्तूरी आदि बहुमूल्य वस्तुओं से तैयार किया गया है। सब प्रकार की निर्बलता को दूर करके शरीर में शक्ति व स्फूर्ति देता है व नया जीवन लाता है।

मूल्य ३॥) माशा, ४५) तोला।

बादाम पाक

बादाम, पिस्ता व अन्य गुणदायक वस्तुओं से तैयार किया गया है। स्वादिष्ट, बलवर्धक पाक है। मस्तिष्क व शारीरिक दुर्बलता को दूर कर शक्ति देता है।

मूल्य ४) पाव।

गुरुकुल चाय

जड़ी-बूटियों के योग से बनी देशी चाय है। सुख व स्वास्थ्य के लिये परिवार में इसका प्रयोग कीजिये। थकावट, हल्के बुखार, खांसी, जुकाम में तुरन्त लाभ दिखाती है।

मूल्य ।-) छटांक, १।=) पाव।

बसन्त कुसुमाकर

सोना, चान्दी, मोती आदि से तैयार की गई यह औषधि बहुमूत्र और मधुमेह रोग में विशेष गुणकारी है। शरीर की नसों की निर्बलता को हटा कर समर्थ और बलवान बनाता है। मूल्य ३) माशा, ३६) तोला

चन्द्रप्रभा वटी

शिलाजीत, लोह भस्म, वंशलोचन आदि लाभदायक चीजों से तैयार की गई यह औषधि अनेक रोगों को दूर करके शरीर में नई शक्ति लाती है। खून की कमी, जिगर की निर्बलता, बवासीर तथा विशेषकर प्रमेह व स्वप्नदोष आदि में लाभदायक है।

मूल्य १) तोला, ४) छटांक।

महालोहादि रसायन

इसके सेवन से शरीर में नया रक्त पैदा होता है। प्रत्येक ऋतु में सेवन करने योग्य उत्तम औषधि है।

मूल्य ६) तोला।

द्राक्षासव

बलवर्धक, स्वादिष्ट पेय है। शारीरिक व मानसिक थकावट को दूर करके स्फूर्ति व शक्ति देता है।

मूल्य १।) पाव, २।) पौंड।

गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी (हरद्वार)

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

वर्ष ३
अङ्क ८

गुरुकुल-पत्रिका

चैत्र
२००७

व्यवस्थापक
श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति
मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी।

सम्पादक
श्री सुखदेव विद्यावाचस्पति
श्री रामेश बेदी आयुर्वेदालंकार।

इस अङ्क में

अगले अंकों में

संस्कृत भाषा	श्री वासुदेव शरण अग्रवाल
विदेशों में आम भेजना	श्री रामेश बेदी
गुप्तकालीन मूर्तिकला	श्री कृष्णदत्त वाजपेयी
धूम्रपान से हानियां	श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

अन्य अनेक विश्रुत लेखकों की सांस्कृतिक, साहित्यिक व स्वास्थ्य सम्बन्धी रचनाएं।

मूल्य देश में ४) वार्षिक
विदेश में ६) वार्षिक
एक प्रति छः आने

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

ॐ

गुरुकुल-पत्रिका

[गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की मासिक पत्रिका]

अग्निहोत्र क्यों करना चाहिए ?

श्री देवराज विद्यावाचस्पति

शश्वद्ध वा एष न सम्भवति योऽग्निहोत्रं न जुहोति तस्मादग्निहोत्रं होतव्यम्।

श० ब्रा० २. २. ४. ८।

वह मनुष्य कभी फूलता फलता नहीं जो अग्निहोत्र नहीं करता, इस कारण अग्निहोत्र करना चाहिए।

संसार में विचारों का शासन है। मनुष्यों के मन में विचार उठते हैं। विचारों के ऊपर मनुष्य अपनी जान खेल जाते हैं। विचारों के ऊपर मनुष्य अपना तन, मन, धन न्योछावर कर देते हैं। विचार अग्नि हैं। मनुष्य विचारों का पुतला है। मनुष्य अग्नि का पुञ्ज है। जिस मनुष्य से विचारों का उद्‌गम नहीं होता, जो मनुष्य बुझा हुआ है, वह मनुष्य मनुष्य नहीं—वह केवल पशु है—दूसरी अग्नियों की भोग्य सामग्री है।

विचारवान् मनुष्य अपने मन के द्वारा यज्ञ करता है। अर्थात् वाक् का प्रयोग करता है। वाक् यज्ञ में सत्य का व्रत धारण करता है। कहा है—

'चक्षुर्वै सत्यम्।'

जो बात देखा है—स्वयं अनुभूत है वह सत्य है। जो सत्य का व्रत धारण करता है वह कहता है देखी हुई बात को अपनी वाणी से कहूँगा, अपनी अनुभव की हुई बात दूसरों को बतलाने के लिये वाणी का प्रयोग करूंगा। वाणी जिस रूप में प्रकट होती है वह रूप वाणी को मन के द्वारा प्राप्त होता है। वाणी से मनुष्य के मन का भान होता है। मन का स्वरूप मनुष्य की वाणी में उतर आता है। वाणी की प्लेट पर मन का फोटो खिंच जाता है। मन के अन्दर जो २ विचार उठते हैं उन विचारों का स्वरूप ही मन का स्वरूप होता है। किसी विचार की अत्यन्त प्रबलता वा टिकाव का परिणाम यह होता है कि वह विचार वाणी के रूप में फूट निकलता है। विचार अग्नि हैं वे वाणी का रूप धारण करके मुख से प्रकट हो जाते हैं।

'अग्निर्वाग् भूत्वा मुखं प्राविशत्।'

मनुष्य जब व्रत धारण करता है तो अपने कर्मक्षेत्र को सीमित करता है अपनी सीमा के केन्द्र में केन्द्रित करता है। ऐसा करने से ही वह अपने व्रत का पालन कर सकता है और इसी प्रकार ही उसका यज्ञ पूरा हो सकता है। अपनी क्रियाओं को केन्द्रित करने से वा एक लक्ष्य में बांधने से मनुष्य की आत्मा में एक प्रकार का बल उत्पन्न हो जाता है जिसका नाम श्रद्धा है। इस श्रद्धा बल के भरोसे पर ही व्रत का पालन होता है व्रत में सफलता मिलती है। जिस श्रद्धा बल के आश्रय मनुष्य को अपने व्रत में—अपने निश्चित कार्य में—सफलता मिलती है वह श्रद्धाबल ही मनुष्य के आत्मा के स्वरूप को प्रकट करता है।

'यो यच्छ्रद्धः स एव सः।'

श्रद्धा के द्वारा मनुष्य की व्रत में (कार्य में) तत्परता का नाम ही दीक्षा है। मैं इस कार्य को कर ही डालूंगा

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

करके ही छोड़ूंगा—इस प्रकार की धी का (प्रबल बुद्धि का वा विचार का) अपने मन में बैठा लेना ही दीक्षा है। धियः क्षयः, धीक्षयः, धीक्षः एव धीक्षा, दीक्षा एव दीक्षा। व्रत ग्रहण करना व्रत के प्रति मनुष्य की श्रद्धा को प्रकट करता है। श्रद्धा ही दीक्षा है। श्रद्धा के द्वारा मनुष्य अपने आपको व्रत के लिये (कर्तव्य के लिये) अर्पण कर देता है, अपने आपको आहुत कर देता है, अपने आप को हविः बना कर व्रत की अग्नि में छोड़ देता है। व्रत का पालन करते हुए मनुष्य का तन मन धन स्वाहा हो जाता है परन्तु उसकी आत्मा अमर होकर उज्वल होकर उस अग्नि में से निकल जाती है।

इस प्रकार अग्नि में अपना बीज वपन करने से वा अग्निहोत्र करने से प्रजा के रूप में जो अपना उज्वल रूप तैयार होता है उस से मनुष्य संसार में फूलता फलता है, ख्याति प्राप्त करता है अपने कार्य का आगे प्रसार करता है। वाकूरूप में प्रकाशित हुई उसकी अपनी महिमा सर्वत्र फैल जाती है। जहां २ उसकी महिमा फैलती है वहां २ उसका आधान होता है। एक नये विचार को फैलाने वाले मनुष्य की अपनी महिमा का प्रसार ही उसका स्वाहा (स्वो वै मा महिमाऽऽह इति स्वाहा) उच्चारण है। स्वाहा बोलने से उस देवता की महिमा प्रकट होती है जिस के लिये स्वाहा उच्चारण किया जाता है। उसकी महिमा के क्षेत्र में आये हुए मनुष्य उस व्रतपति की अग्नि में अपना स्वहवन कर डालते हैं—अपने आपको उसके मिशन के अर्पण कर देते हैं। इस प्रकार वह व्रत-पति अग्नि सूर्य के समान सर्वत्र चमकता है, अपने यश के द्वारा वायु के समान सर्वत्र गति करता है और अपने विचारों के द्वारा अपने क्षेत्र के चारों ओर चक्कर लगाता है। इस प्रकार जो अग्निहोत्र करता है वह अवश्य ही संसार में फूलता फलता और ख्याति को प्राप्त करता है। मनुष्यों को चाहिए कि जो मनुष्य अपने २ क्षेत्रों में सफलता चाहें वे अवश्य इस प्रकार अग्निहोत्र किया करें।

जो मनुष्य अपने आपको किसी उद्देश्य की पूर्ति में खपा देता है उसके लिये लोगों के दिल में आशङ्का उठती है कि इस प्रकार अपने आपको खपा देने से क्या लाभ। संसार में रहकर संसार का सुख नहीं भोगा और आराम से जिन्दगी न बिताई तो संसार में रहने का क्या लाभ। संसार की स्टेज पर इतने लोग आये अपना २ खेल खेलकर चले गये मृत्यु के फंदे में फंसने से कोई न बचा, इस लिये किसी कार्य के पीछे तुल जाना यह बड़ी मूर्खता है कोई बुद्धिमानी का लक्षण नहीं है। मृत्यु अग्नि सब को अपना ग्रास बना रहा है। देखते २ तो मनुष्य सब कुछ है परन्तु ज्यों ही उसका ग्रास बना वह खतम हुआ। इसलिये किसी कार्य के पीछे मर मिटने की अर्थात् अग्निहोत्र करने की कुछ आवश्यकता नहीं है। यह आशंका मनुष्यों को समय २ पर हुआ करती है। इसका फल यह होता है कि मनुष्यों के जीवन निराशामय हो जाते हैं, जीवनों में कुछ जीवन प्रतीत नहीं होता. जाति में निष्प्राणता छा जाती है। मुर्दा जाति जीते जी भी मुर्दे से ज्यादह नहीं रहती। ऐसी निष्प्राण जाति प्राणवान् जातियों से ठुकराई जाती है, पद दलित की जाती है, मट्टी में रोंधी जाती है।

बुद्धिमान् मनुष्यों के दिलों में जीवन के सम्बन्ध में जब इस प्रकार की आशंका उत्पन्न होती है तो उसका परिणाम बुरा नहीं निकलता अच्छा ही निकलता है। बुद्धिमान मनुष्य जीवन के सतत प्रवाह को अनुभव करते हैं वे देखते हैं किसी कार्य को जिम्मेवारी के साथ करने में मनुष्य मृज जाता है उसका कालुष्य नष्ट हो जाता है उसकी मैल छुंट जाती है उसकी मुर्दानगी काफूर हो जाती है। वे देखते हैं आग के अन्दर डाला हुआ सोना आग के तीव्र ताप से कुन्दन हो जाता है उसके सब मैल कट जाते हैं। मैल में सने हुए सोने

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

की आत्मा सोना ही है और शुद्ध सोने की आत्मा भी वही सोना है। आग में तपने से सोना सोना हो जाता है, पहले भी सोना होता है और पीछे भी सोना रहता है, आग का तपना सोने को नेस्त नाबूद नहीं कर देती उसको मिटा नहीं देती प्रत्युत उसको चमका देती है। इसी प्रकार किसी कार्य की जिम्मेवारी को उठाना अपने आपको मृत्यु के मुख में रखना है। जिम्मेवारी अग्नि का स्वरूप है, जिम्मेवारी को धारण करना आग में प्रवेश करना है। जिम्मेवारी की आग मनुष्य के जीवन के मैल को छांट देती है। इस आग में पड़कर मनुष्य अपने दुर्वृत्तियों के—पाप के बने हुए मैले शरीर को भस्म कर नये शुद्ध चमकीले रूप को धारण करता है उसका दूसरा जन्म होता है वह नवीन बन जाता है वह द्विज बन जाता है। जिम्मेवारी की आग में से उत्पन्न हुए सत्य स्वरूप निर्मल उज्वल रूप इस वीर नवीन कुमार पर चारों ओर से देवों की दृष्टि पड़ती है—चारों ओर से देव उसे देखने आते हैं। अग्नि उसमें नेतृत्व को देखते हैं। पवन उसमें क्रियाशीलता—कर्म कुशलता को देखते हैं। सूर्य उसमें प्रकाश, तेज और उदात्तता को देखते हैं। जहां २ मनुष्यों पर उसके नेतृत्व का क्रियाशील जीवन का, प्रकाश, तेज और उदात्तता का प्रभाव पड़ता है वहां २ मनुष्य वीर बन जाते हैं कोई उसके नेतृत्व की भावना से भावित होकर अग्नि बन जाते हैं, कोई उसकी कर्मशीलता से भावित होकर वायु बन जाते हैं और कोई उसके प्रकाश, तेज और उदात्तता के प्रभाव से सूर्य बन जाते हैं। इसी प्रकार इन वीरों की सन्तानों में इसी जीवन का, अग्नि का आधान होता है तो वीरों के वीर पैदा होते हैं। आग से आग पैदा होती है और यदि आग न हो तो कोयले का टुकड़ा कोयला ही रहता है निस्तेज बेकदर रहता है, निस्तेज निर्वीय जिससे चाहे जैसे ठुकराया जाता है, जिससे चाहे जैसे दबाया और तंग किया जा सकता है। जो अग्निहोत्र नहीं करता वह निस्तेज है निर्वीर्य है निष्प्राण है निर्जीव है मुर्दा है, दूसरों से हमेशा पददलित होने के योग्य है ठुकराया जाने के लायक है।

अग्निहोत्र करने वाले वीर कहते हैं कि हम अपने पिता की औलाद हैं—जैसा वह था वैसे ही हम हैं—तो हम भी ऐसी औलाद पैदा करें जो हमारे अनुरूप हो—जैसे हम हैं वैसी ही हो।

'ते उ ह एते (वीराः) ऊचुः वयं प्रजापतिं पितरमनु स्मो हन्त वयं तत्सृजाम यदस्मानन्वसत्।'

॥ श० ब्रा० २. २ ४ ११ ॥

यह है अग्निहोत्र का महत्व कि पुत्र कह सकता है कि मैं अपने बाप की औलाद हूं। जैसा मेरा पिता था वैसा ही मैं हूं। मुझे देख लो जैसा मैं हूँ वैसा ही मेरा बाप था और जैसा मैं हूँ वैसा ही मेरा पुत्र होगा। जिस घर के अन्दर पिता से पुत्र अलग चले और पुत्र से पिता नाराज रहे उस घर में अग्निहोत्र नहीं होता। ऐसे घरों में किसी उद्देश्य विशेष को, विचार विशेष को जीवन में किसी कार्य विशेष को (यज्ञ को) पूरा करने की धगस में सहायक प्राप्त करने को सन्तानें उत्पन्न नहीं की जातीं। बिना किसी उद्देश्य के केवल अपनी काम वासना को तृप्त करने की गरज से जो सन्तानें उत्पन्न हो जाती हैं वे सन्तानें अपने बाप की सन्तानें नहीं कहला सकतीं क्योंकि वे संसार में किसी उद्देश्य विशेष को पूरा करने के लिये माता पिता की ओर से नहीं भेजी गईं। वे सन्तानें उस पत्र के समान हैं जिसे पता बिना लिखे लैटर बक्स में छोड़ दिया गया है। जिस पत्र का पता नहीं उसने कहां जाना है बे पते की सन्तानों पर लावारिस सन्तानों पर माता पिता कुछ क्लेम नहीं कर सकते उनसे किसी अपनी आशा को पूर्ण करने का दावा नहीं कर सकते।

★

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

वैदिक शिक्षा प्रणाली

श्री विष्णुमित्र

जितना हमारी क्रिया का दूसरों पर प्रभाव होता है उतना उपदेशों का नहीं। वर्तमान युग के महात्मा गान्धी के उपदेशों का इसी लिये प्रभाव होता था कि वह जिसका उपदेश करना चाहते पहिले वे उसे अपने जीवन में करके दिखाते। वे धार्मिक उपदेष्टा थे साथ ही नीतिज्ञ भी थे। उनकी नीति धर्म को साथ लेकर चलती थी। अमली क्रियाओं द्वारा जो शिक्षा दी जाती है उसका असर जनता पर और बच्चों पर जल्द होता है। जो बिना अमल के अर्थात् बिना स्वयं किये दी जाती है उसका कोई असर नहीं होता। स्वामी सर्वदानन्द जी एक आप बीति कहानी सुनाया करते थे कि मैं एक आर्य्य पुरुष के घर में ठहरा हुआ था। उस आर्य्य पुरुष को हुक्का पीने की आदत थी। मैंने उन्हें कहा कि इस आदत को छोड़ दीजिये अन्यथा यह दोष आप के बच्चों में भी जायगा। उसी समय उस आर्य्य ने अपने बालक को बुलाया और उससे कहा कि कुन्दन लाल बताओ हुक्का पीने में क्या २ हानियें हैं। वह लगातार आध घंटा बोलता रहा। थोड़ी देर के बाद पिता जी के बाहर चले जाने पर देखा कि वही बालक दूसरे कमरे में हुक्का पी रहा है। आर्य्य पुरुष के आने पर मैंने उन्हें दिखाया। तब वे गुस्से में आकर बच्चे को भला बुरा कहने लगे। तब मैंने कहा कि महाशय जो कुछ आपने सिखाया था बच्चे ने कह सुनाया और जो कुछ आपने किया था उसने कर दिखाया।

विद्वान् तो यहां तक कहते हैं कि हमारी क्रियाओं का ही नहीं प्रत्युत हमारे मन के विचारों का भी दूसरों पर प्रभाव होता है। देखी हुई घटना है कि एक बुढ़िया ने एक घुड़ सवार से कहा कि बेटा, अगले ग्राम तक इस मेरे पोते को घोड़े पर बिठाले। घुड़ सवार ने इनकार कर दिया। थोड़ी दूर जाकर घुड़ सवार ने विचारा कि मैंने गलती की। बच्चा बड़ा सुन्दर था। घर में कोई बच्चा न था। यदि मैं घर ले जाता तो बुढ़िया मेरा क्या कर लेती। यह विचार कर वहीं खड़ा हो गया। बुढ़िया के आने पर उसने कहा कि बुढ़िया ला बिठा दे। बुढ़िया बोली बच्चा, जिसने तुझे ऐसा सुझाया है। उसने मुझे भी सुझा दिया है।

वेद भी कहता है कि—मनः पश्चात् अनुगच्छति रश्मयः। मन से निकले हुए विचार बाद में रश्मियों के रूप में वायु-मण्डल में जाते हैं। जैसे प्रत्येक उच्चारण किया गया शब्द परमाणुओं द्वारा कहां का कहां चला जाता है।

इसी प्रकार मन के विचार भी इन्हीं द्वारा बराबर जाते हैं। कोई विचार कोई शब्द निकला हुआ नष्ट नहीं होता है। इन सतत परमाणुओं में बना रहता है। जैसे रेडियो द्वारा आकाश में अनेक शब्द होते हुए भी जिसे हम सुनना चाहते हैं सुन लेते हैं वैसे ही विचार भी जाने जा सकते हैं। जर्मनी के वैज्ञानिक ब्रेडक ने विचारों का उस समय फोटो लिया जबकि एक युवक दूर बैठी अपनी स्त्री के विचारों में मग्न था। फोटो लेने पर विचारों के साथ उसकी स्त्री का चित्र प्लेट पर आया। अमली शिक्षा के अतिरिक्त दूसरी शिक्षा गुरु-शिष्य संवाद के रूप में दी जाय—वह प्रश्नोत्तर के रूप में होनी चाहिये। छोटे बच्चे बचपन में इतने प्रश्न करते हैं कि कभी २ माता पिता तंग आ जाते हैं। बच्चों की यह आयु ज्ञान बढ़ाने की है। इसी लिये वेद कहता है कि बच्चों को जब पढ़ाओ उनसे जितने बन पड़े प्रश्न करो। जब वे जवाब न दे सकें तब उन के पूछने पर समझाओ। गुरु इस प्रकार प्रश्न करे कि—

कोऽस्य वेद भुवनस्य नाभिम्। को द्यावा पृथिवी अन्तरिक्षम्। कः सूर्य्यस्य वेद बृहतः को जनित्रम्। को वेद चन्द्रमसे यतो जाः।

बालको बताओ तुममें से इस भूमि के मध्य का तथा पृथिवी और अन्तरिक्ष को कौन जानता है। और इतने बड़े सूर्य्य को किसने बनाया। चन्द्रमा कहां से वा किससे पैदा हुआ।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

शिक्षा का माध्यम

श्री जयचन्द्र विद्यालंकार

दयानन्द और महेन्द्रलाल सरकार के विज्ञान की शिक्षा के लिए स्वतन्त्र प्रयत्न करने के बाद भारत के सरकारी शिक्षणालयों में विज्ञान परीक्षणालय स्थापित किये गये। बंगाल जातीय शिक्षा परिषद् द्वारा ही विज्ञान और शिल्प की उच्चतम शिक्षा भारतीयों द्वारा ही दिलाने के उपाय किये जाने के बाद कलकत्ता यूनिवर्सिटी में उस अंश में सुधार किये गये। सरकारी शिक्षणालयों में भारतीय इतिहास का शिक्षण और विविध खोज का आयोजन भी जातीय शिक्षा परिषद् के देखादेखी आरम्भ किया गया। बंगाल में फैले उस उग्र स्वदेशी वातावरण में कलकत्ता युनिवर्सिटी एक ऐसे व्यक्ति के हाथ में आ गई जो विचारों में लगभग पूरे राष्ट्रीय स्वाधीनतावादी थे। उन आशुतोष मुखर्जी ने उसे अनेक अंशों में नये सांचे में ढाल दिया, यद्यपि अपनी अभिलाषानुसार वे उसमें शिक्षा का माध्यम बंगला को न बना सके।

कांगड़ी गुरुकुल के उदाहरण से शिक्षा के माध्यम का प्रश्न पहले विश्वयुद्ध के समय उग्र हो उठा, विशेष कर उस समय जब कि मदनमोहन मालवीय ने हिन्दू युनिवर्सिटी की स्थापना के लिए हिन्दू संस्कृति के नाम पर देश से अनुरोध किया, और महात्मा मुन्शीराम ने आन्दोलन उठाया कि उस युनिवर्सिटी में शिक्षा का माध्यम हिन्दी हो। सैडलर कमीशन की तभी नियुक्ति हुई। आशुतोष उसके सदस्य थे और वे समूचे कमीशन को कांगड़ी लाये। वहां उस कमीशन ने आधुनिक अर्थशास्त्र के इस जटिल प्रश्न पर कि एकधात्विक (मौनोमैटेलिक) और द्विधात्विक (बाइमैटेलिक) मुद्राप्रणाली के आपेक्षिक गुण-दोष क्या हैं, गुरुकुल महाविद्यालय के विद्यार्थियों से हिन्दी में वादविवाद करा के देखा। मैंने स्वयं उस विवाद में भाग लिया था और दो वर्ष हुए मेरे श्रद्धेय गुरु पं० योगेन्द्रनाथ भट्टाचार्य ने मुझे वह बात याद दिलाई थी, जो मेरी वक्तृता को सुन कर आशुतोष ने अपने साथियों से कही थी। उनके मुंह से निकला था—विद व्हाट फैसिलिटी ही इज़ एक्स्प्रेसिंग हिज़ आइडियाज़—कैसी सरलता से वह अपने विचार व्यक्त कर रहा है।

सैडलर कमीशन को और तब से मैकाले शिक्षा प्रणाली के सब कर्ता-धर्ताओं को सिद्धान्त रूप से यह मानना पड़ा कि भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक विचार

क्लिष्ट प्रश्न का उत्तर न आने पर बच्चे पूछते हैं कि—

गुरोपृच्छामित्वा परमन्तं पृथिव्याः। पृच्छामि यत्र भुवनस्यनाभिः। पृच्छामित्वा वृष्णोऽश्वस्यरेतः। पृच्छामि वाचः परमं व्योम।

बच्चों ने कहा कि गुरु आप ही बतायें—इस पृथिवी का अन्त कहां है। और मध्य कौन है। इस वर्षणशील सूर्य्य का पुत्र कौनसा है और इस वेद वाणी का उद्गम स्थान कौन है।

गुरु का उत्तर—

इयं वेदिः परोऽन्तः पृथिव्याः।
अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः॥
अयंसोमो वृष्णो ऽश्वस्य रेतः।
ब्रह्मायं वाचः परमं व्योम॥

गुरु ने यज्ञ वेदी पर हाथ रख कर बताया कि यही पृथिवी का अन्त है और यही पृथिवी का मध्य है क्यों कि गोल वस्तु पर जहां उंगली रखी जाय वहीं उसका अन्त और वहीं मध्य होता है। चन्द्रमा सूर्य का पुत्र है क्योंकि इससे ही बना है। और वेद वाणी का उद्गम स्थान ब्रह्म है। शिक्षक कैसा होना चाहिये। उसे शिक्षा प्रेम से देनी चाहिये। और वह शिक्षा बालक की रुचि के अनुसार देनी चाहिये, इत्यादि विषयों पर फिर भी लिखने का यत्न किया जायगा।

★

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

व्यक्त किये जा सकते हैं। उपेक्षा और उपहास का अध्याय उस दिन समाप्त हुआ, बहानेबाज़ी और टाल-मटोल का आरम्भ हुआ। यदि कांगड़ी के अनुभव से वे सीखना चाहते तो तीन न हीं तो छः मास के अन्दर समूचे भारत में शिक्षा का माध्यम मातृभाषाएं बनाई जा सकती थीं। किन्तु तब से लेकर अपने भारत छोड़ने तक के तीस बरस अंग्रेज शासकों ने हीले-हवाले में टाल दिये।

उनके बहाने क्या थे? एक यह कि भारतीय भाषाओं में पाठ्य ग्रन्थ कहां हैं, उन पाठ्य ग्रन्थों के लिए वैज्ञानिक परिभाषाएं कैसे बनेंगी? दूसरा यह कि भारत में तो अनेक भाषाएं हैं, उस दशा में भारतीय भाषाओं को शिक्षा-माध्यम बनाने से देश में एकता कैसे रहेगी, और कलकत्ता युनिवर्सिटी के तमिल अध्यापक या इलाहाबाद युनिवर्सिटी के बंगाली अध्यापक स्थानीय भाषा में कैसे पढ़ा सकेंगे?

जहां तक भारत की अनेक भाषाओं और देश की एकता का प्रश्न है उस पर हम आगे विचार करेंगे। पाठ्य ग्रन्थ और वैज्ञानिक परिभाषाएँ आरम्भ में कांगड़ी में भी न थीं और अब भी ऊपर तक की नहीं हैं। वहां भी मराठे और बंगाली, तमिल और पंजाबी भारत के सब प्रांतों के आदर्शोपासक अध्यापक आते जो एक मास में टूटी फूटी हिन्दी सीख जाते थे। जिन प्रो० सेवाराम फेरवानी से अर्थशास्त्र की शिक्षा पा कर हमें सैडलर कमीशन के सामने विवाद की योग्यता प्राप्त हुई थी वे स्वयं सिन्धी थे। पाठ-कक्षाओं में खिचड़ी भाषा चलती जैसी इस युग के शिक्षित भारतीयों की आपसी बोलचाल में चलती है। अंग्रेज़ी के अनेक पारिभाषिक शब्द उसमें मिले रहते, पर वाक्यरचना हिन्दी ही होती। अध्यापक का काम वहां अपनी लफ्फाज़ी बघारना नहीं प्रत्युत विद्यार्थियों को ज्ञान देना और उनकी सोचने की शक्ति को जगाना होता। विद्यार्थी अपनी भाषा में खुल कर प्रश्न करते। उस प्रश्नोत्तर द्वारा वे ज्ञान की तह तक पहुँचते और उनकी सोचने की शक्ति जगती। वे अपने परीक्षापत्र भी अपनी उसी खिचड़ी भाषा में लिखते। कक्षाओं में खुल कर अपनी भाषा में पूछ सकना और परीक्षाओं में प्रश्नों का उत्तर अपनी भाषा में दे सकना यह मातृभाषा द्वारा शिक्षा का निष्कर्ष और उसका सब से बड़ा वरदान है। अंग्रेज़ी पाठ्य-ग्रन्थों और परिभाषाओं का प्रयोग करते हुए भी इसे प्राप्त करने में कोई कठिनाई नहीं है। मैकाले शिक्षणालयों का सब से बड़ा अभिशाप यह था कि वहां विद्यार्थियों को ऐसा करने की और अध्यापकों को अपनी भाषा में बोलने की इजाज़त न थी। विद्यार्थी को कोई सन्देह रहे और कुछ पूछना चाहे तो तब तक नहीं पूछ सकता जब तक अपने प्रश्न को अंग्रेज़ी में न रख सके। घर में, बाज़ार में वह पूछना चाहे कि प्रयाग से कोटा का सीधा रास्ता कौन सा है तो, यदि बताने वाला उसका समभाषी रहे तो अपनी भाषा में और यदि अन्यभाषी रहे तो टूटी-फूटी मिश्रित भाषा में पूछ लेता। पर पाठ-कक्षा में वही बात पूछनी हो तो, चाहे उसका अध्यापक समभाषी भी हो, वह उससे साधारण रूप से बात नहीं कर सकता, उन दोनों को अंग्रेज मालिक की भाषा में बोलने का स्वांग करना पड़ता। यों विद्यार्थियों की जिज्ञासा मर जाती और वे किसी भी ज्ञान की तह में न पैठ पाते। उनकी दिमागी शक्ति बहुत कुछ अंग्रेज़ी पर अधिकार करने में खर्च हो जाती और जब वे विभिन्न विषयों की चर्चा करते तो केवल अंग्रेजी के बड़े-बड़े शब्द दोहराया करते। अध्यापक भी खुल कर अपने विचार नहीं प्रकट कर पाते और न गहरा सोच सकते। उनमें से ९९ प्रतिशत केवल अंग्रेज़ी पाठ्यग्रन्थों की बातों को तोतों की या ग्रामोफोनों की तरह दोहराया करते।

यही कारण था कि इन पाठ्यग्रन्थों में जो भी ऊलजलूल बातें उन्हें मिलती रहीं उन्हें वे बिना सोचे अपने छात्रों के दिमागों में भरते रहे। इङ्गलैंड के

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

एक विख्यात अर्थशास्त्री के पाठ्यग्रन्थ में जब हमें यह पढ़ाया गया कि श्रम की कार्यक्षमता (एफीशिएन्सी ऑफ़ लेबर) को जो वस्तुएं निर्धारित करती हैं उनमें से नृवंश या नस्ल भी एक है, और उसका यह उदाहरण दिया गया कि एक अमरीकी जितना काम करता है, उसके बराबर काम पन्द्रह हिन्दुस्तानी कर पाते हैं, तब कांगड़ी में हमें अच्छी तरह पूछने-सोचने की आदत होने के कारण मैंने अपने अध्यापक से पूछा कि यदि ऐसी बात है तो कलफ़ोर्निया और कनाडा के खेत मालिक क्यों पञ्जाबी मज़दूरों को अधिक पसन्द करते हैं और क्यों उन्हें वहां से निकालने को कानून का सहारा लिया जा रहा है ? मेरे अध्यापक भी तब सोच में पड़ गये। किन्तु मैकाले शिक्षणालयों में ऐसी बातें सवा शताब्दी तक बराबर पढ़ाई जाती रहीं और उन शिक्षणालयों के अध्यापकों ने हिन्दी में भी पाठ्य-ग्रन्थों के नाम पर जो कूड़ा-कचरा डाला उनमें भी वे बातें दोहराई जाती रहीं। १९४१ में मेरे बच्चे ने जो तब हिन्दू यूनिवर्सिटी के स्कूल की छठी कक्षा में पढ़ता था, मुझे अपनी भूवृत्त (भूगोल) की पाठ्य पुस्तक में से दिखा कर पूछा कि क्या यह ठीक है कि भारत के लोग नाविक जीवन में अंग्रेजों से इस कारण पीछे हैं कि भारत की तटरेखा इंगलैंड की तरह दन्तुरित नहीं है। मैंने कहा, यदि ऐसी बात होती तो फिलीपीन के लोग नाविक जीवन में बहुत ही बढ़े चढ़े होते; और यह तुरन्त उसकी समझ में आ गया। ये उदाहरण अपवाद नहीं हैं, ये मैकाले-शिक्षणालयों की साधारण दशा को प्रकट करते हैं।

और ऐसा क्यों न होता जब कि वे शिक्षणालय अंग्रेजी साम्राज्य के कल-पुर्जे-मुन्शी, अमले, वकील आदि तैयार करने को ही खड़े किये गये थे ? लार्ड कर्जन ने अंग्रेज पूञ्जीपतियों को याद दिलाया था कि 'आप दामरारा (ब्रितानवी गिआना) और नाटाल के खेतों-बगीचों का विदोहन करते हैं तो हिन्दुस्तानी कुली मजदूरों द्वारा, मिस्र को सींचते हैं और नील नदी को बांधते हैं तो सधे हुए हिन्दुस्तानी अफसरों द्वारा; मध्य अफरीका और स्याम की संपद् निकालते हैं तो हिन्दुस्तानी जंगल-अफसरों द्वारा; दुनिया के सब छिपे स्थानों की खोज करते हैं तो हिन्दुस्तानी पैमाइशकारों द्वारा। इनमें से कुली-मजदूरों को छोड़ कर और सब उपकरणों को तैयार करने के कारखाने मैकाले शिक्षणालय थे, जिनकी बदौलत भारतीय हर तरह से अंग्रेज का उपकरण बना हुआ था। जब उसे अपने मालिक का उपकरण ही बनना था तब मालिक की भाषा ही सीखनी चाहिए थी। उसे स्वतन्त्र सोचने देना अभीष्ट होता तब तो मातृभाषा में शिक्षा दी जाती। कवि अकबर ने कहा था—

तोप खिसकी, प्रोफेसर पहुँचे।
यह बसूला हटा तो रन्दा है।

अंग्रेजी तोपों से भारत के जीते जाने के बाद अंग्रेज प्रोफेसर यहां वही काम कर रहे थे जो बसूले के बाद रन्दा करता है। जब भारत के दिमाग पर रन्दा फेरना ही इस शिक्षा को उद्दिष्ट था, तो उस दिमाग का विकास करने वाली मातृ-भाषा की खुराक उसे क्यों दी जाती। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने लिखा था—

भीतर तत्व न, झूठी तेज़ी ?
क्यों सखि सज्जन, नहिं अंग्रेजी।

भारत को जिस ज्ञान से शक्ति मिल सकती थी वह इस पढ़ाई में न था, इसमें केवल वह दिखावटी तेजी थी जिससे वह अंग्रेजों का उपकरण बन सकता था और जिनका स्वार्थ भारत को उपकरण बनाये रखने में था वे उस शिक्षापद्धति में सुधार क्यों कर होने देते ? तीस बरस की बहानेबाज़ी की यही व्याख्या है।

बनारस हिन्दू युनिवर्सिटी इस घोषित उद्देश्य के साथ चली थी कि वह हिन्दी को शिक्षा का माध्यम बनाएगी। पचीस बरस में वह इन्टरमीडिएट की दो कक्षाओं तक यह सुधार कर सकी। क्या इससे प्रकट

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

व्यक्ति समाज, और सदाचार

श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

आज मानव जीवन इतना अस्त-व्यस्त हो गया है कि सदाचार की ओर उसका ध्यान ही नहीं जाता। लोककल्याण तथा विश्वशांति के लिये अनेकानेक-लौकिक-प्रस्ताव किए जाते हैं, परन्तु वे निरर्थक ही सिद्ध हो रहे हैं। इसका कारण यही है कि मनुष्य-समाज अपने जीवन के सत्यात्मक-पक्ष को देख नहीं पाया है। मरु-मरीचिका को ही जलाशय जानकर वह व्यर्थ ही कुलांचें भर रहा है। इसी लिए हम नित्यप्रति सुनते हैं कि विश्व विनाश और मृत्यु, पाप और दुराचार, असभ्यता तथा नारकीयता का प्राबल्य है। यदि हम कुछ देर तक ध्यानपूर्वक मनन करें तो इसी निष्कर्ष पर आएंगे कि मानवधर्म के सदाचार-रूप व्यावहारिक कर्म का विस्मरण ही समस्त मानव-समाज की अशांति का मूल कारण है। हमारा अधोगतिमान् दृष्टिकोण ही हमारे विश्व में अन्याय का साम्राज्य पसारे है। हमारी नैतिक-दुर्बलताएं हमारे भौतिक दुःख और क्लेश को जन्म देती हैं। शास्त्र-निषिद्ध कर्मानुसरणकर, निज-निज धर्मानुसार कर्तव्यों को त्यागते हुए ही हमारा लौकिक-आचार अपने सत्ययुगी अधिष्ठान से नीचे की ओर पतित किया गया है। यदि समाज अथवा राष्ट्र का प्रत्येक व्यक्ति किसी भी कार्य को करने के पूर्व ही यह विचार करे कि तद्-विचारित कार्य सदाचारप्रभव धर्म की उपक्रमणिका में आता है या नहीं, तो वह निश्चय ही अपने जीवन को सफल और कल्याणमय और विमल तथा पवित्र बना सकेगा। यदि परधनलोलुप व्यक्ति यह सोचे कि वह उचित कार्य नहीं कर रहा है; यदि मद्य पीने वाला यह सोचे कि मद्यपान तद्विचारितदृष्ट या अनुचित है, यदि हिंसातुर व्यक्ति यह सोचे कि हिंसा सदाचार नहीं—किन्तु महापाप है, तो वह अपने को इन दुष्कर्मों से विरत रखने की चेष्टा अवश्य करेगा। परिणाम यही होगा कि हमारे संसार में नित्यप्रति जो अमानुषिक कर्म होते रहते हैं, वे नहीं होवेंगे। किसी की चोरी नहीं होवेगी, किसी का पुत्र कुचरित्र नहीं होवेगा, किसी का सतीत्व हरण नहीं होवेगा, किसी के प्राणों का हनन भी नहीं होगा। सभी मिलनसार, एक सिद्धान्ती, दयानुरक्त, मैत्रीयुक्त, परोपकारी, त्यागी और निःस्वार्थ होकर सर्वतोमुखी-शांति के लक्षणों का श्री गणेश कर पाएंगे।

तब सदाचार की मीमांसा क्या है? अथवा सदाचार केवलमात्र लौकिक-मानव-समाज का सुधारमात्र है? सदाचार यदि इसे अपने भारतीय-तत्वज्ञान की दृष्टि से देखा जाय तो मनुष्य के जीवन में उन आध्यात्मिक व्यवहारों का मौलिक स्वरूप है, जिससे विश्वधर्म या लोकधर्म की मर्यादा का प्रतिष्ठापन होता है। यह समझना हमारी भूल होगी कि सदाचार मनुष्य के किसी ऐसे समय की विचार-शृङ्खला है, अथवा वाणी का कौतुक है, जबकि मानव-क्षेत्र परिमित विज्ञान होने के कारण आदर्शवाद की ओर जा रहा था, जबकि उसका सामाजिक भूगोल तथा राजनीतिक प्रश्न कुछ ही परिवारों में सीमित था—क्योंकि सदाचार, तथागत शास्त्रों के अनुसार, जिनका क्षेत्र आज से भी विशालतर जान पड़ता है, मनुष्य के मन, कर्म और वचन की पवित्र धारा का वह सुन्दर समन्वय है. जहां पर मनुष्य मनुष्य के सम्बन्ध को उचित-रीति से जानता है और उस सम्बन्ध का नियमानुकूल अनुपालन भी करता है तथा तद्फलतः वह दूसरे के विनाश का विचार नहीं करेगा

होता है कि उसके कर्ता-धर्ता सचाई से यह सुधार चाहते थे? आशुतोष मुखर्जी सचाई से यह चाहते थे, पर विरोधी शक्तियों के कारण न कर सके; उनकी सचाई का प्रमाण यह है कि उन्होंने बहानेबाज़ी नहीं की।

★

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

उसके प्रति कटु-शब्दों का प्रयोग भी नहीं करेगा और तद्-निषिद्ध दुष्कर्म करने को उद्यत भी नहीं होगा। अतः यह प्रत्यक्ष सिद्ध होता है कि सदाचार सत्य आचरण है, जो आचरण दूसरे के मनोविज्ञान की कसौटी पर ठीक उसी तरह खरे उतरें, जैसे उनका स्वरूप है। सदाचार तो मनोविज्ञान, व्यवहार तथा आध्यात्मिक कर्मों का केन्द्रीयकरण है, जिसका प्रभाव मनुष्य के आजीवनोपरान्त कर्मों में शत-प्रतिशत के अनुपात से क्रियात्मक होता रहता है।

हम नित्यप्रति धर्मग्रन्थ (शास्त्र) अध्ययन करते हैं, तो ऐसा प्रतीत होता है कि सदाचार का स्वरूप आध्यात्मिक और व्यावहारिक दोनों है और पुराणों में इसे लोक धर्म का सजीव रूप दिया गया है। परन्तु जो कुछ भी हो, हम अपने शास्त्रों से यही सार जान पाए हैं कि सदाचार का सूत्रपात हमारे जीवन के ईश्वरीयकरण से है—जिसका परिणाम निश्चयतः ऐसा ही होना चाहिये। यदि वटवृक्षारोपण किया जाय तो छाया भी तो मिलेगी ही, तदनुसार यदि जीवन में ईश्वरीय जीवन की स्फूर्ति संचरित कर दी जाय तो कालान्तर में इसका विकास भी ईश्वरीय ही होगा। अतः हम इस परिणाम पर आते हैं कि सदाचार का श्री गणेश मनुष्य की आध्यात्मिकता के जागरण से होता है। जब अनुभूति का अध्यात्मकरण हुआ तो सदाचार का सूर्योदय हो जाता है।

इस प्रकार सदाचार के साधारणतः तीन गम्भीर स्वरूप होते हैं, जो हमारे जीवन के सभी कर्मों और सभी विचारों और सभी अनुभूतियों को अनुस्यूत किए हुए हैं—

सदाचार का प्रथम सत्य आध्यात्मिक जीवन है, जो सर्व प्रधान तथा सर्व व्याप्त माना जाता है, जैसे जल की अति व्याप्ति जल के समस्त विकारों और विकल्पों में भी मानी जाती है। दैवी-सम्पत सम्पन्न होना इस जीवन का उपादान कारण है। श्रीमद् भगवद्गीता और मनुस्मृति के सिद्धान्तों में यही प्रतिध्वनि है कि प्रत्येक मनुष्य को सर्व प्रथम अपने आध्यात्मिक क्षेत्र में सद्गुणों की अनुभूति का विकास करना चाहिए। अपनी-अपनी अनुभूतियों को सर्वथा सद्गुणों का स्वरूप देकर, आप निश्चयतः उसी का अभिव्याख्यान करेंगे तथा व्यवहार भी कर सकेंगे। 'जैसी अनुभूति होती है, वैसा ही व्यवहार भी'—यह विद्वानों का सर्वसम्मत-सिद्धान्त है और यही हमारी भारतीय सदाचार प्रणाली है, जो पाश्चात्य सदाचार विज्ञान से विकासमान् दृष्टिकोणतया महत्तम है। आप लोगों ने सुना तो होगा, 'जैसी गति वैसी मति यही है जग की रीति।' इससे स्पष्ट यही अभिव्यक्त हो रहा है कि हमारी अनुभूतियां ही हमारे विचार का, तदनुसार व्यवहार का निर्णय कर पायेंगी। यदि हमारी अनुभूति में सर्वात्मभाव तथा एकात्मक सत्य का अनुभव होगा तो हम अपने को सत्य, अहिंसा, आत्मसंयम, निरंहकारिता तथा अन्यान्य शास्त्रोक्त गुणों के लिए सचेष्ट कर सकेंगे, जिसकी प्रतिच्छाया हमारे व्यावहारिक स्तर पर अवश्य पड़ेगी ही।

अपनी आध्यात्मिक प्रकृति को अराग-द्वेषादि सद्गुणों से अलंकृत करने के उपरान्त ही हम अपने जीवन के प्रत्येक व्यवहार में शान्ति और कल्याण और सर्वभूत-हित की रूप रेखा का अवतरण कर सकते हैं। अतः सदाचार का सर्वप्रथम दृष्टिकोण आध्यात्मिकता या ईश्वरीय जीवन है। जहां मनुष्य पारस्परिक भेदभाव से परे, विश्व को केवल एक परिवार ही नहीं—अपितु अपना स्वरूप ही जानता है और यह अनुभव करता है कि समस्त विश्व निसन्देह उसका ही जल-बिन्दु, तरंग, सागर तथा वाष्पवत् विकास है और वह सर्वकर्म अध्यक्ष, सभी जीवों में अधिवास करने वाला तथा सब का आत्मा है। वह किसी का अहित नहीं चाहता। वह किसी के प्रति अन्य तथा इतर-भाव से अभिव्यक्ति नहीं करता। वह परवित्तहरण ही क्यों करेगा, जबकि वह ईशावास्यमिदं सर्वम्—को अपने सदाचार का सर्व

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

प्रधान दृष्टिकोण स्थिर किए है। हमारे प्राचीन, वैदिक-कालीन, वीतराग, तपस्वी, ऋषि-महर्षिगण इसके युग स्मरणीय आदर्श थे।

ऐसा मनुष्य या समाज या राष्ट्र अपने प्रतिवासी के दुःखों में दुःखित होगा ही, क्योंकि वही तो सब में है। अतः वह अपने प्रतिवासी आत्मा के यत्-किंचित् दुःखों के समूल निवारण के लिए प्रयत्न करता रहेगा। स्वभावतः ही दया, मैत्री, करुणा, उपकार तथा अन्य मानसिक सदाचार सम्बन्धी सद्गुणों का आविर्भाव उसमें होगा। यदि किसी समाज के ऊपर आर्थिक संकट आया हो तो तत्कथित सदाचारशील व्यक्ति ही उस संकट निवारण के उपायों के लिए कटिबद्ध हो जाता है। वह नवीनतर और नवीनतम प्रयोगों द्वारा अपने पराए के हित और कल्याण और शांति की विधि के अनुसन्धान में तत्पर हो जाता है। यह सदाचार का मानसिक स्वरूप है, जिसे मनोवैज्ञानिक सदाचार भी कहते हैं। महात्मा बुद्ध इस कोटि के आदर्श थे।

सदाचार का तीसरा स्वरूप व्यावहारिक है। इससे यह अर्थ नहीं कि वह स्वतन्त्र अग हो। व्यावहारिक तथा मौलिक सदाचार सर्वदा आध्यात्मिक अनुभूति तथा मनोवैज्ञानिक आधारों पर ही प्रतिष्ठित रहा है। इसका कारण स्पष्ट है कि जब तक आप अपने जीवन के अनुभवों और विचारों को सत्य के पवित्र मन्त्र में दीक्षित नहीं कर लेंगे, तब तक कैसे सम्भव है कि आप सदाचारपरायण हों। आपका आचार आपके विचारों का द्योतक है अर्थात् प्रतिबिम्ब है। तात्पर्य कि आपके विचारों के अनुसार ही आपकी क्रियाशक्ति सुकर्म तथा दुष्कर्म का निर्णय करेगी। यदि आप मुझे किसी प्रकार का भीषण कष्ट देना चाहते हैं और यह निश्चय करते हैं कि किसी निकट भविष्य में उचित अवसर पाकर, आप मेरा तिरस्कार करेंगे, या मुझे निश्चित कष्ट देंगे, तो क्या आप व्यवहार करते समय तद्विचारित निश्चय का पालन करने को विवश नहीं होंगे? इसी प्रकार आप यदि किसी अनाथ बालक के दुःखों की अनुभूति कर, उसके दुःख निवारण के लिए विचार कर उसके जीवन की आवश्यक सुविधाओं की व्यवस्था करने को सन्नद्ध होते हैं तो संसार में कोई भी शक्ति ऐसी नहीं जो आप के इन आदर्श विचारों को पलट दे। मैंने कुछ लोगों को कहते सुना है—क्या करें, मन में उसकी दशा पर तरस आता है। परन्तु कभी-कभी उसकी बातें सहन नहीं हो सकतीं। जो लोग इस प्रकार के विजातीय सिद्धान्तों को जन्म देते हैं, वे सदाचार के आध्यात्मिक तथा मानसिक स्वरूपों में स्थिर नहीं हो पाए हैं और उनके उपरोक्त कथन से हमें यही समझना चाहिए कि वे सत्यतः अपने मन के अन्दर भी उसी प्रकार का निश्चय किए हैं, जो उन्होंने बाहर प्रकट किया है।

ऐसा व्यक्ति जिसने तद्वर्णित तीसरे अंग का सद्-अनुशीलन कर पाया है, वह आध्यात्मिक तथा मानसिक सदाचार का व्यावहारिक आदर्श होना चाहिए। महात्मा गान्धी जी को यदि हम इस समन्वय का व्यावहारिक आदर्श मानें तो सर्वथा उचित ही होगा।

अतः पाठक, समझ गए होंगे कि सदाचार मनुष्य जीवन का एक विशिष्ट विज्ञान है, जिसका यहां पर अति संक्षेप में दिग्दर्शन कराया गया है और जिसका विशद् व्याख्यान हमारे धर्म-ग्रन्थों में किया गया है। सदाचार जितना व्यावहारिक दीखता है, उतना ही—किसी अवस्था में उससे भी अधिक मात्रा में आध्यात्मिक है। सदाचार के अर्थ केवल समाज सुधार विषयक आचरण ही नहीं। समाज तो इस विराट्-सदाचार का एक रोममात्र है। समाज से ही सदाचार की पूर्ति नहीं हो सकती। ईश्वर पर ही विश्वास कर, उसको ही एक मात्र उपास्य जानना तथा उसी को सर्वभूतमय देखना ही सदाचार की भूमिका है। जप, कीर्तन, सत्संग, योगाभ्यास, आत्म-विचार, सच्छास्त्र मनन, यम-नियमादि का संपालन सदाचार का

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

प्रथम सोपान है । सद्गुण सदाचार के प्रथम सोपान को पार करके, स्वतः ही आपके जीवन में ओतप्रोत हो जाते हैं, आपको विशेष श्रम नहीं करना पड़ेगा। यदि आधार दृढ़ हो गया तो आप विशालतर से विशालतर भवन का भी निर्माण आसानी से कर सकते हैं। इसी प्रकार ईश्वर चिन्तन के लिए जपादि नित्य धर्मों का अक्षरशः पालन करते हुए आप अपने जीवन के सभी कार्यों को यथा योग्य रीति करते रहें और किसी को दुःख और क्लेश न दें तो आप सहसा ही एक दिन अनुभव करेंगे कि सदाचार आपके जीवन का अभिन्न अंग हो गया है और आपके आचरण की व्याप्त हो गयी है, जिसके अतिरिक्त आप अन्य किसी प्रकार के भौतिक आचरण को श्रेय नहीं समझते। जिस तरह फिटकरी धीरे-धीरे आश्चर्यपूर्ण आचरण से जल में मिल जाती है, उसी प्रकार आपका जीवन भी जप, कीर्तन और ईश्वर प्रेम में धीरे-धीरे आश्चर्यपूर्ण आचरण द्वारा समाधिस्थ होता जायगा और आप काम करते हुए भोजन करते हुए, तथा संसार के अन्य कार्यों को करते हुए भी अपने सदाचरण से विचलित नहीं हो पाएंगे। परन्तु ईश्वर भावना का परित्याग कर यदि केवलमात्र लौकिक, सामाजिक व्यवहारों का पालन करोगे तो वह सीमित और अस्थायी ही रह जायगा; और आप उसमें शाश्वत जीवन संचरित कर ही नहीं पाएंगे। कभी-कभी तो आप उकता कर अपनी सदाचरण की निष्ठा को तिलांजलि भी दे देंगे। यह कोई असम्भव नहीं, कई उदाहरण आपको मिलते रहते हैं। परन्तु यदि आपने भगवद् प्रेम, नाम स्मरण तथा अन्य शास्त्रोक्त नित्य विधियों को अपने जीवन क्षेत्र के अनुसार संपादित किया तो आप सच्चे सदाचार की आधार-शिला की प्रतिष्ठा कर पाएंगे, जिस पर जन-कल्याण का विशाल प्रासाद बनाया जा सकेगा; प्रत्येक व्यक्ति जिसकी सुदृढ़ ईंट होगी, एकता तथा समभाव जिसको संवलित कर पाएंगे तथा सत्य प्रेम, आनन्द, चिर कल्याण और देवत्व हमारे विशाल-प्रासाद की महामहनीय शोभा होंगे। क्या तब भी विश्वशांति एक समस्या बनी रहेगी?

★

गुरुकुल काँगड़ी में बनी

फिनाइल-स्याही-वार्निश

तथा अन्य उपयोगी वस्तुएँ काम में लावें

स्कूलों, कालेजों, हस्पतालों व स्वास्थ्य विभागों में वर्षों से प्रयुक्त हो रही हैं।

अपने नगर की एजेन्सी के लिए लिखें—

गुरुकुल कैमिकल इण्डस्ट्रीज़

गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

हठयोग के अधिकारी

श्री स्वामी कृष्णानन्द

प्राणक्रिया, हठयोग, नादोपासना, वासनाक्षय [वैराग्य], सामान्य निरोधाभ्यास मात्र तथा तत्त्व-ज्ञान [निदिध्यासन] के द्वारा मनोनाश अथवा असम्प्रज्ञात समाधि—इन सब अवस्थाओं में शास्त्र को प्रायः मन की एक ही स्थिति अभिप्रेत है; परन्तु उपायों के भिन्न २ होने से और शास्त्र के तथ्य तात्पर्य की अनभिज्ञता के कारण प्रत्येक साधन के द्वारा एक फल का होना सम्भव नहीं है। प्राणायाम आदि हठयोगिक क्रियाओं तथा नादोपासना से कुण्डलिनी शक्ति के उद्‌बोधन के द्वारा जब सुषुम्ना का मार्ग खुलता है, तो प्राण ईडा, पिंगला के मार्ग को छोड़ कर सुषुम्ना में प्रवेश करता है। प्राण-क्रिया मद्धम होता है। ब्रह्मरंध्र में प्राण के प्रविष्ट होने पर प्राणगति नितान्त बन्द हो जाता है। जीव की सम्पूर्ण गति प्राण के अधीन है। बाह्य संसार में भौतिक गति भी वायु स्पन्दन के आधीन है। तब प्राण की गति के रुक जाने से शरीर, इन्द्रिय व्यापार सहित मन की गति भी निरुद्ध हो जाती है। मनोव्यापार के शून्य हो जाने पर असम्प्रज्ञात अवस्था लाभ होती है।

इस साधन में प्राण क्रिया मुख्य है। इस के निरोध से अन्य जो कुछ सिद्धि होती हैं, वह विचार तथा लक्ष्य के अनुसार इस के उपयोग से ही होती है। बहुधा मन चक्रगत महाशक्ति कुण्डलिनी के अनेक विचित्र कार्यों में ही रम जाता है। कई वार साधक सिद्धियों से ही कृत कृत्यता मान बैठता है। अन्ततः ब्रह्मरन्ध्र से पूर्व शून्यादि स्थानों में पहुँचने पर, इन को ही अपना परम लक्ष्य समझ कर ऐसी जड़ समाधि को ही असम्प्रज्ञात तथा स्वरूप स्थिति मान कर प्रयत्न करना छोड़ देता है।

यह सब कुछ इस लिए होता है कि श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरु के आदेशानुसार साधना नहीं होती, अथवा साधक पूर्ण वैराग्यवान नहीं होता और मध्य मार्ग की विचित्रताओं में ही फंस जाता है। क्योंकि उसे आत्मस्वरूप तथा ज्ञान समाधि के शास्त्रोक्त अभिप्राय का यथार्थ बोध नहीं होता अतः उसे स्वरूप स्थिति तथा अनुभूति के विषय में भ्रान्ति का होना स्वाभाविक होता है।

योगाभ्यासियों को योग के महत्व के विषय में प्रायः भ्रान्ति होती है। वे लोग शास्त्र आदि के कार्यों को भी योग साधना मात्र से निकालने का दुःसाहस करते हैं। परन्तु योग साधन के अधिकारी के लक्षण, यथार्थ मार्ग, मार्ग के विघ्न, योग सिद्धि के लक्षण, योग का लक्ष्य, योग के सहकारी साधन, योग की चर्म सीमा अथवा योग का प्रयोजन आदि अनेक अत्यन्त उपयोगी विषयों का ज्ञान श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरु के द्वारा शास्त्राभ्यास के बिना नहीं होता। यह भी सत्य है कि गुरु के द्वारा शास्त्र के स्वाध्यायमात्र से ही परम लक्ष्य ब्रह्मात्म साक्षात्कार की सिद्धि नहीं हो जाती। योग के अनुष्ठान के बिना साक्षात्कार प्रायः असम्भव ही है। परन्तु बिना शास्त्र स्वाध्याय के उपर्युक्त विषयों का परोक्ष रूप यथार्थ बोध न होने के कारण योग के द्वारा आत्म प्रत्यक्षरूपी फल की उपलब्धी नहीं होती। सर्वज्ञ, अनादि, ईश्वर के उपदेश परम प्रमाण श्रुति-शास्त्र-का तथ्य महत्व न होने से साधक शास्त्र अभ्यास रूप परम सामर्थ्यशाली तथा अनिवार्य साधन का निरादर करता है और उस का फल यह होता है कि उसे लक्ष्यादि के विषय में यथार्थ परोक्ष ज्ञान नहीं होता तथा वैराग्यादि अधिकारी सामग्री की न्यूनता के कारण वह मध्य के माया के अत्यन्त तुच्छ खेल में ही रम जाता है। अथवा जड़ समाधिरूपी लय को ही स्वरूप स्थिति मान

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

बैठता है।

इस प्रकार यदि हठयोग का भी शास्त्र सम्मत अभ्यास न हो तो पहिले तो हठयोग की परम स्थिति उन्मनि अथवा समाधि का लाभ ही नहीं होता, यदि लाभ हो भी जाय तो उस का शास्त्रोपदिष्ट उचित उपयोग नहीं होता और साधक परम लक्ष्य से वञ्चित रह जाता है। जैसे पहले भी कहा गया है कि इस यांत्रिक क्रिया का मुख्य फल प्राण गति-स्पन्दन-को रोकना है। परन्तु केवल इस से लक्ष्य की सिद्धि नहीं हो सकती। लक्ष्य तो अखण्ड आत्मा के प्रत्यक्ष से ही सिद्ध होता है। उसके लिए यह प्राण का निरोध कई प्रकार से उपयोगी है; परन्तु अनभिज्ञता के कारण इस का सदुपयोग नहीं हो पाता। पहिले तो आसन, प्राणायाम, मुद्रा, षट्क्रिया, बन्ध आदि में से किसी एक भाग के ही अनन्त मायिक रूपों के अनुष्ठान में जीवन बीत जाता है; तुच्छ साधन को ही साध्य मान कर व्यवहार किया जाता है। इस खेल तमाशे से अपना तथा दूसरों का मन बहलाया जाता है; और इसे ही सांसारिक उपभोग का साधन बना लिया जाता है। योग, सिनेमा तथा सर्कस आदि का रूप धारण कर लेता है।

षट्क्रियादि साधनों में साध्य दृष्टि आदि की भ्रान्ति के कारण ये साधन अपने यथार्थ परिमित रूप में नहीं रहते, जिसके कारण प्रायः अनेक शारीरिक तथा मानसिक दुःसाध्य रोग उत्पन्न हो जाते हैं। साधक स्वयं दुःख का जीवन बिताता है और सर्व व्याधि के नाशक वीर्य के रक्षक, बल ओज के वर्धक योग के भी अपमान और निन्दा का कारण बन कर घोर पाप का भागी होता है, और इस के कटु फल को जन्म जन्मान्तर में भोगता है। ऐसी अवस्थाओं में स्वयं भी परम साधन योग में अश्रद्धा करने लगता है। अज्ञान के कारण हठयोग के सदुपयोग के अभाव में इस प्रकार के अनेक दोष हो सकते हैं। अतः हठयोग के द्वारा परम सिद्धि के लाभार्थ इन सब बातों की जानकारी का होना सर्व प्रथम आवश्यक है कि हठयोग का अधिकारी कौन है, हठयोग के मुख्य तथा गौण प्रयोजन क्या हैं; तथा इस के साधारण और स्वतन्त्र लक्ष्य की सिद्धि में अन्य किन २ साधनों का समावेश होना आवश्यक है।

हठयोग का साध्य आत्म साक्षात्कार तथा मनोनाश है। साधन प्राण स्पन्दन का निरोध है। इस में असफलता के निम्नलिखित कारण हैं:—१ चक्रभेदन के द्वारा होने वाली सिद्धियों में अनुराग। २ वैराग्य का अभाव। ३ शास्त्राध्ययन तथा श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरु का अभाव।

★

गुरुकुल के स्नातक—आरम्भ काल से १९५० तक गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय से जो स्नातक निकले हैं उनका सचित्र परिचय इस पुस्तक में दिया गया है। समाज, राजनीति, व्यापार, पत्रकारिता आदि विविध क्षेत्रों में गुरुकुल के स्नातकों ने जो गौरवपूर्ण स्थान बना लिया है उसका ज्ञान इस से होता है। देश के प्रथम राष्ट्रीय शिक्षणालय के स्नातकों का विस्तृत परिचय देने वाली इस पुस्तक को आज ही मंगाइये। मूल्य ३)।

मिलने का पता—

प्रकाशन मन्दिर, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

स्वास्थ्यविज्ञान के सम्बन्ध में भारत से पश्चिमी देश क्या सीख सकते हैं?

श्री डा० सुन्दरलाल भण्डारी एम. बी. बी. एस., पी. सी. एम. एस.

अपने चौदह मास के योरोपीय निवास में पाश्चात्य लोगों के उच्च जीवनतल और साधारण स्वच्छता का मेरे ऊपर विशेष प्रभाव पड़ा। निस्सन्देह वैज्ञानिक उन्नति और आविष्कारों में पश्चिम ने पूर्व को बहुत पीछे छोड़ दिया है। परिणामतः ऐसी अनेक बातें हैं कि जिनको पूर्व पश्चिम से सीख सकता है। तथापि ऐसी अनेक महत्वपूर्ण बातें हैं कि जिनको पश्चिम पूर्व से सीख सकता है। मैं योग के सम्बन्ध में कुछ न कहूँगा। क्योंकि पाश्चत्य देशों में प्रायः लोग योग का नाम तक नहीं जानते हैं। मैं पौरस्त्य दर्शन के विषय में भी कुछ न कहूँगा क्योंकि इस सम्बन्ध में तो यह कहा जाता है कि जहां पाश्चात्य-दर्शन का अन्त होता है, वहां पौरस्त्य दर्शन आरम्भ होता है। किन्तु कुछ शब्द स्वास्थ्य-विज्ञान के सम्बन्ध में कहूँगा कि जिस के विषय में पश्चिम को इतना अधिक घमण्ड है और स्वास्थ्य विज्ञान के विषय में भी मैं केवल शारीरिक स्वास्थ्य विज्ञान के सम्बन्ध में उल्लेख करूंगा। यह जानकर आश्चर्य होगा कि प्राचीन ऋषि मुनियों ने शारीरिक स्वच्छता के सम्बन्ध में किस प्रकार सूक्ष्म दृष्टि से ऐसे युग में विवेचन किया था कि जब कीटाणु विज्ञान से लोग प्रायः अनभिज्ञ कहे जाते हैं। यह बात भी रूचिकर होगी कि अन्य प्रकार से स्वतंत्रता पूर्वक अनेक वैज्ञानिक क्षेत्रों में आश्चर्य-जनक और महत्वपूर्ण अनुसंधान करने वाले लोग भी जीवन संबंधी अनेक साधारण किन्तु महत्वपूर्ण बातों को दृष्टिपथ से ओझल कर जाते हैं। उदाहरणार्थ पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने दो सौ मील प्रति घंटे की गति से चलने वाले वायुयान का तो निर्माण कर लिया किंतु आज तक किसी ऐसे दन्तशोधक (टूथ ब्रुश) का आविष्कार न कर सके जो दांतों को पूर्ण रूप से पवित्र और स्वच्छ करने वाली साधारण वृक्ष की दन्तधावन की समता कर सके। वह यक्ष्मा सम्बन्धी कीटाणुओं का शोध तो कर सके किन्तु इस साधारण बात को न समझ सके कि भोजन के पूर्व और पश्चात् मुख को जल से स्वच्छ करना कितना महत्वपूर्ण है। इस प्रसंग में यह बात स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि इस लेख का प्रयोजन किसी को अपमानित करना या किसी की भावना को ठेस पहुँचाना नहीं है। किन्तु इस लेख को मनुष्य मात्र के हितार्थ और सर्व साधारण के निमित्त आदर्श सभ्यता की ओर पथ प्रदर्शन मात्र है।

दन्तधावन की प्रथा

(अ) दांतों को दिन में प्रातःकाल और सोने के पूर्व ताजी कोमल दन्त-धावन से स्वच्छ करना। इस को दन्तधावन विषयक स्वास्थ्य-विज्ञान कह सकते हैं। यह हमारे पूर्वजों का एक सरलतम और अत्यन्त आश्चर्य-जनक आविष्कार है। इस सिद्धान्त का उल्लेख आयुर्वेद के सब से प्राचीन ग्रन्थ चरक में किया गया है। यह ग्रन्थ लगभग ईसा से चार सौ वर्ष पूर्व लिखा गया है और इस के अनुसार आर्यों तथा हिन्दुओं के अत्यन्त अशिक्षित वंशज भी आज तक व्यवहार करते हुए पाए जाते हैं। न केवल दन्तधावन के नाम का ही वर्णन मिलता है अपितु उनकी डेढ़ बित्ता लम्बाई तथा कनिष्ठिका जैसी मुटाई होने का भी उल्लेख मिलता है। पाश्चात्य लोग धीरे-धीरे दांतों को स्वच्छ रखने के सिद्धान्त को तो स्वीकार करने लगे हैं और इस सम्बन्ध में ब्रश और पाउडर को भी प्रायः प्रयोग करते हैं। किन्तु निम्नलिखित कारणों से अभी तक दन्तधावन के समान किसी प्रकार के टूथ ब्रश का आविष्कार नहीं कर पाया है—

(१) यह नितान्त असम्भव है कि किसी प्रकार भी टूथ ब्रुश को नितांत विषरहित (Aseptic)

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

रख सकें और एक ही वस्तु का बार बार प्रयोग अत्यन्त घृणास्पद है। दातून प्रतिदिन नवीन ही प्रयोग में लाई जाती है।

(२) टूथ ब्रुश में जो बाल लगे होते हैं वह या तो मसूड़ों के लिये बहुत कठोर और हानिकर अथवा बहुत कोमल होते हैं जो दांतों को स्वच्छ करने में सर्वथा अनुपयुक्त है। दातून में रेशे कोमल और आवश्यकतानुसार कठोर होने के कारण दांतों को स्वच्छ करने के लिये एक आदर्श साधन है।

(३) टूथ ब्रुश की सतह चिकनी होने के कारण स्वच्छ करने में सर्वथा अनुपयुक्त है। दातून में खुरदरी और छिद्र युक्त सतह होती जो कि स्वच्छ करने का एक आदर्श संघर्षक उपाय है।

(४) वृक्ष का ताजा रस आयुर्वेदिक गुणों को रखता है जो मसूड़ों के लिये लाभदायक होता है। दातून के ये गुण किसी प्रकार के टूथ ब्रुश में संभव नहीं है।

(५) सब से अन्तिम किन्तु अत्यन्त महत्वपूर्ण बात यह है कि टूथ ब्रुश के बालों में एक प्रकार का मारक और संक्रामक रोगप्रद विष रहता है कि जिस के संपर्क से टिटैनस, अन्थ्रेस और इरिसिपिलास नामक रोगों के उत्पन्न होने की आशंका है। यह भी अत्यन्त कठिन है कि ब्रुशों को किसी प्रकार उक्त विष के प्रभावों से रहित रक्खा जा सके क्योंकि विषप्रद कीटाणुओं के सूक्ष्म अण्डे ब्रुश के उबाले जाने पर भी नहीं मरते हैं। ऐसा अनुभव किया गया है। उदाहरणार्थ ऐसी अनेक मृत्यु घटनाएं हुई हैं कि जिनमें बाल बनाने के ब्रुश से इस प्रकार रोग उत्पन्न हुए हैं।

कुल्ला करने की परिपाटी

(ब) भोजन के पूर्व और पश्चात् पानी से कुल्ला करना। पाश्चात्य देशों में भोजन करने के पूर्व और भोजन के पश्चात् कुल्ला करने की प्रथा नहीं है। पूर्व में भोजन के पश्चात् कुल्ला करके भली प्रकार मुंह साफ किये बिना और हाथ धोये बिना मनुष्य अपवित्र समझा जाता है तथा किसी खाद्य पदार्थ के स्पर्श करने के अयोग्य माना जाता है। इसी प्रकार पाश्चात्य देशों में बिना मुंह धोय ही शय्याचाय (बेड टी) को पीने की प्रथा है। पूर्व में ऐसा करने पर कोई विचार भी नहीं कर सकता है। यहां तक कि शौच जाकर अच्छी तरह हाथ मुंह आदि धोये बिना किसी चीज के खाने का विचार नहीं कर सकता है। पाश्चात्यों की यह प्रथा किस प्रकार हानिकारक है, यह निम्नलिखित परीक्षण से प्रकट हो जायगी।

प्रातःकाल उठते ही मुंह में कुछ जल भरकर भली भांति गरारी सहित कुल्ला करके पांच मिनट जल को मुख में रखने के उपरान्त एक स्वच्छ शीशे के ग्लास में डाल दीजिये। ग्लास में पड़े हुये गदले और मलिन पीत रंग के दूषित जल को देख कर आश्चर्य होगा, जो मुख से निकला है। यदि कोई मनुष्य बिना कुल्ला किये कोई वस्तु खावे तो यह सब दूषित और विषाक्त वस्तुयें भोजन के साथ पेट में चली जावेंगी और सब में मिल कर उसको भी विषैला बना देंगी। यही साधारण प्रयोग सिद्ध करेगा कि किस प्रकार भोजन के पश्चात् किये हुये कुल्ले के जल में भोजन संबंधी विषैला मल मुंह से जल के साथ निकलता है। यदि भोजन करने के पश्चात् तुरन्त ही जल से मुंह को साफ नहीं किया जाये तो भोजन कण सड़ने लगेंगे और दांत सम्बन्धी अनेक रोगों को उत्पन्न करेंगे। यह दोनों बातें दांतों की रक्षा और उन को मोतियों की भांति श्वेत और चमकीले रखने में अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यह तो सर्वसाधारण को विदित है कि पूर्व में किसी व्यक्ति के बत्तीस दांत चिरकाल तक बने रहना एक साधारण बात है। इसके विपरीत पाश्चात्य देशों में प्रायः लोगों के सड़े, पीले और रोगग्रस्त दांतों का होना एक साधारण बात है।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

(२) शौच (कमोड) सम्बन्धी स्वास्थ्य-विज्ञान

नग्न होकर किसी ऐसे कमोड पर बैठना कि जिस को सैंकड़ों मनुष्य उपयोग में ला चुके हों केवल अरुचिकर ही नहीं है अपितु अत्यन्त भयावह प्रथा है। मैंने देखा है कि बैठने का स्थान चिपचिपा हो जाता है। किन्तु सब से अधिक भय दाद, खाज, आकौता और विविध प्रकार के मूत्र सम्बन्धी संक्रामक रोगों के लग जाने की आशङ्का है। मेरा विश्वास है कि ज्यों-ज्यों चिकित्सा विज्ञान उन्नति करेगा त्यों-त्यों पाश्चात्य लोग किसी भिन्न प्रकार के कमोड का विकास करेंगे अथवा पूर्व में प्रचलित बैठ कर शौच करने के प्रकार को अपनाएंगे जो दो प्रकार से उपयोगी है:—

[अ] उदर का निचला भाग जांघों से दबा रहता है जो कि एक Truss (हरनिया बन्धक) का कार्य देती है। इस से हरनिया रोग होने की सम्भावना नहीं रहती है।

[ब] उदरस्थ मांसपेशियां इस प्रकार आश्रित होकर मल को दबा कर निकाल देने में यह विशेष रूप से साधक होती है।

(३) शौच के पश्चात् गुह्य अङ्ग को जल से धोना

यह अत्यन्त स्वास्थ्यकर वैज्ञानिक प्रथा पूर्व में भी केवल आर्य अथवा हिन्दुओं के ही भाग्य में आई है। हिन्दू लोग शौच के पश्चात् जल से अंग-प्रक्षालन करने की प्रथा अनादि काल से अपने बचपन में सीखते आए हैं। यहां तक कि एक बालक भी जब तक शौच के पश्चात् पानी लेकर अपने को स्वच्छ नहीं कर लेता तब तक अपने को अपवित्र और किसी वस्तु को छूने के अयोग्य समझता है। पश्चिम में लोग कागज का प्रयोग करते हैं और समझते हैं कि यह पर्याप्त है। यह पर्याप्त नहीं है इस के लिए किसी युक्ति प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। कागज से अच्छी प्रकार रगड़ने के पश्चात् भी सम्बन्धित भाग को देखने पर यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि उपर्युक्त प्रथा हानिप्रद है। योरोप के प्रथम महान युद्ध के समय मुझ को एक बार अंगरेज़ सिपाहियों की एक टुकड़ी का निरीक्षण करने का अवसर मिला था। क्योंकि रणक्षेत्र में पानी की कमी रहती थी, इस लिए प्रतिदिन स्नान सम्भव न था गुह्यांगों के बालों में शुष्क मल को लगा हुआ देखना बहुत ग्लानिकर दृश्य था। ईश्वर जाने यह कितने दिनों से लगा हुआ था। ऐसा एक ही दृश्य इस बात को सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है कि शौचोपरान्त जल से प्रक्षालन करना जल का दुरुपयोग नहीं है।

एक और लाभ पानी प्रयोग का यह भी है कि जल प्रक्षालन से गुह्येन्द्रिय के निम्न भाग का आंतरिक भाग जल से ही स्वच्छ हो सकता है। कागज प्रयोग से किसी प्रकार इस भाग का स्वच्छ होना सम्भव नहीं है। यह एक साधारण अनुभव की बात है कि गुह्येन्द्रिय प्रदेश में लगा मल शीघ्र शुष्क होकर अनेक प्रकार के नासूर आदि रोगों को उत्पन्न करता है। दूसरी ओर अत्यन्त कोमल कागज भी घर्षण से गुह्येन्द्रिय के कोमल भाग में क्षत उत्पन्न कर देता है कि जिस से अनेक प्रकार के रोग हो जाते हैं।

(४) स्नान सम्बन्धी स्वास्थ्य-विज्ञान

पाश्चात्य देशों में लोग टब में स्नान करते हैं। टब का जो जल उन के पैरों, गुह्येन्द्रियों और अन्य अंगों के मल को स्वच्छ करता है, वही उनके मुख को भी धोने के काम में लाया जाता है। प्रायः सभी लोग गुह्यांगों के शौच के पश्चात् पानी से नहीं धोते हैं। यह स्पष्ट है कि यह प्रथा अत्यन्त घृणित है। चाहे स्नान प्रतिदिन किया जाये या सप्ताह में किया जाये, फिर भी स्नान के समय साबुन आदि लगा कर टब में ही धोने से सब प्रकार मल, दोष, साबुन

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

आदि का एक मिश्रण जल के ऊपर मैल की एक तह बना देते हैं और टब में स्नान कर के बाहर निकलते समय वह जल के ऊपर की मैल तह स्नान करने वाले के समस्त शरीर में चक्र वृद्धि व्याज रूप में लग जाती है। इस प्रकार स्नान करने वाले को स्नान के पश्चात् और भी अधिक मलिन होने का सहज ही अवसर प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार स्नान करने का कष्ट उठाना व्यर्थ हो जाता है। चाहे कोई कितना भी प्रयत्न करे टब में से बाहर आने पर इस मलिनता से शरीर को बचाना असम्भव ही हो जाता है!

दूसरा स्नान का प्रकार जापानियों का है वे टब स्नान करने के पूर्व नल के नीचे अपने शरीर को भली भांति स्वच्छ कर लेते हैं। इस विधि से भी एक बार नल के नीचे शरीर को पूर्ण रूप से धो लेने के पश्चात् टब का स्नान व्यथ, अनावश्यक और निष्प्रयोजक हो जाता है। स्विटज़रलेंड के यक्ष्मा विशेषज्ञ डा० जैकुआर्ड के मतानुसार अति स्नान उसी प्रकार स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है कि जैसे अल्प स्नान या अस्नान। ज्यों-ज्यों विज्ञान उन्नत होता जाता है त्यों-त्यों लोग अधिक वैज्ञानिक स्नान विधि का अनुसरण करने लगेंगे। पूर्व में लोग स्नान करने के लिए या तो बहती धार में बैठ जाते हैं, या अपने शरीर और शिर और धड़ पर जल उडेलते हैं। यह प्रारम्भिक स्नान विधि है किन्तु निश्चय ही स्वास्थ्य-विज्ञान से अधिक सम्मत है।

(५) मुख और पैर विषयक स्वास्थ्य

मानव के शारीरिक यन्त्र के लिए पैर शरीर रक्षा और संक्रामक रोगों से बचने के लिए अत्यन्त महत्व रखते हैं। यह ध्यान में रहे कि पैरों की स्वच्छता किसी प्रकार से भी मुख की स्वच्छता से कम महत्वपूर्ण नहीं है। पूर्व में जब लोग स्नान नहीं भी करते हैं तो भी मुख, हाथ और पैरों को धो डालते हैं। पश्चिम में लोग इस के लिए एक ही पात्र में जल रखते हैं और उसी जल में साबुन आदि से मुख, हाथ आदि धोते हैं। उसी प्रयुक्त जल का बार बार प्रयोग करते हैं जो कि स्वास्थ्य-विज्ञान के सर्वथा विपरीत है। इस प्रकार से साबुन का जो एक मिश्रण बन जाता है, वह चाहे जितना धोने पर भी मुखादि में अंशतः लगा ही रहता है और अनेक प्रकार से हानिकारक सिद्ध होता है। किन्तु पैरों को धोने की कोई व्यवस्था नहीं होती है सिवाय स्नान के समय जो प्रायः एक सप्ताह में एक बार किया जाता है। यह स्पष्ट ही है कि यह प्रथा ठीक नहीं है। पैर स्वेद से, मैले स्थानों में तथा शौचनालय आदि में जाने से प्रायः मलीन हो हो जाते हैं और उनको प्रतिदिन धोने की भी आवश्यकता है। पैरों का प्रक्षालन थकावट दूर करता है, और दिन भर के काम के पश्चात् भूख को बढ़ाता है। योरोप के किन्हीं किन्हीं देशों के कतिपय होटलों में पैर धोने की प्रथा प्रारम्भ हो गई है किन्तु अभी तक सर्व साधारण में इसका प्रचार नहीं हुआ है। मुझे विश्वास है कि कुछ दिनों में इसका प्रचार बढ़ेगा और धीरे धीरे इंगलैंड और अमेरिका में यह प्रथा प्रचलित हो जायगी।

अन्त में इन शब्दों के साथ मैं इस लेख को समाप्त करता हूँ कि किप्लिंग के इन शब्दों के होते हुए भी कि पूर्व और पश्चिम कभी नहीं मिल सकते हैं, पूर्व और पश्चिम मिल कर संसार के कल्याण की शीघ्रतर साधना कर सकते हैं, इसकी अपेक्षा कि दोनों पृथक् प्रयास करें। पाश्चात्य देशों के प्रमुख लोगों के द्वारा मृत शरीरों की दाह प्रथा का अनुसरण पूर्व की एक महान् विजय है। यह भी विशेष आश्चर्य की बात है कि यह अत्यन्त वैज्ञानिक प्रथा पूर्व में भी हिन्दुओं में ही पाई जाती है।

★

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

निराशा का अन्त

प्रो० रामचरण महेन्द्र एम. ए.

जब मनुष्य का मन किसी प्रकार की चिन्ता से एक वार आक्रान्त हो जाता है, तो धीरे धीरे अपनी मानसिक स्थिरता, संतुलन और दृढ़ता खो देता है। बुलबुले के समान प्रतिकूलता, दुःख और उद्वेग उसे पर्वत सदृश दीख पड़ते हैं। प्रतिकूल विचारों के चिन्तन से मन अव्यवस्थित हो आता है, मन के दुर्बल बनने से शरीर दुर्बल बन जाता है। यह चिंता ही अनेक प्रकार के छोटे मोटे शारीरिक रोगों के रूप में प्रकट होती है। नैराश्य के अधिक दिन तक रहने से शरीर का बल, प्रतिभा, बुद्धि का विकास, आन्तरिक आह्लाद और आध्यात्मिक सामर्थ्य नष्ट भ्रष्ट हो जाते हैं।

चिंता का एक स्थायी कारण होता है, कुछ सामयिक कारण उस प्रधान कारण से मिल जाते हैं और मूल कारण को बढ़ाते रहते हैं। यह स्थायी कारण मनुष्य के गुप्त मन के किसी स्तर में छिपा रहता है। चतुर मानस-चिकित्सक इसे विश्लेषण द्वारा चेतना के समक्ष लाते हैं। यह मूल कारण मानसिक अन्तर्द्वन्द्व का मुख्य कारण बन जाता है। सामयिक कारण कोई भी हो सकता है।

जब नैराश्य एक भावना-ग्रन्थि के रूप में परिणत होकर गुप्त मन में निवास करने लगता है, तब मनुष्य का मन मानसिक अन्तर्द्वन्द्व के कारण निर्बल पड़ जाता है। फिर तो साधारण सी घटना भी मन में पुरानी दुःखद स्मृतिएं जागृत कर देती है। मान लीजिये एक स्त्री के कई बच्चे साधारण बीमारी में ही मर चुके हैं, कोई बचता नहीं। यदि उसका कोई पुत्र जीवित रहे, और जरा भी जुकाम, खांसी से ग्रस्त हो, तो उसके मन में बेचैनी बनी रहती है इस बेचैनी से उसके शरीर में थकावट उत्पन्न होती है। स्थायी चिंता किसी भी सामयिक कारण से उत्तेजित होकर चेतना पर अधिकार कर लेती है। यहां चिंता का कारण भय और मानसिक निर्बलता है। कमजोर मन पर अभद्र कल्पनाएं और कुत्सित निर्देश शीघ्र ही अपना प्रभाव डालते हैं। यह भय भी एक भावना-ग्रन्थि बन जाता है।

नैराश्य से क्लान्त रोगी का मन भाग्यवादी होता है, कर्तव्यवादी नहीं। जो परमेश्वर करेगा, वही होगा। हम तो अदृष्ट के हाथों में खिलौना मात्र हैं, भाग्य हमें जिधर ले जायगा, उधर ही चले जायंगे ऐसी दुर्बल विचार-धारा रखने वाला व्यक्ति अभागा होता है। वह ज्योतिषी, फकीर, झाड़फूंक करने वालों के पास जाता है और भाग्यफल पूछता है। जैसा उसे ज्योतिषी बता देता है, वैसे ही वह करने लगता है। स्वयं अपने भाग्य का फैसला करना नहीं जानता। उसका निर्बल मन तुरन्त ज्योतिषी के बुरे संकेत ग्रहण कर लेता है। ज्यों ज्यों वह इन अकल्याणकारी भावों को दबाने की चेष्टा करता है, त्यों त्यों उसके दुर्बल मन पर इनका अधिकाधिक प्रभाव गहरा पड़ता जाता है। यह आन्तरिक दुर्बलता शारीरिक रोग के रूप में प्रगट हो जाती है। हमें अपने निजी अनुभव में ज्ञात हुआ है कि अनेक शारीरिक रोग भी मानसिक निर्बलता—सन्देह, शंका, चिंता, भय, ग्लानि तथा मानसिक विकारों से उत्पन्न हुए और हमने उनको मानसिक चिकित्सा द्वारा ही अच्छा भी किया। पहले रोगी को नैराश्य की मानसिक चिकित्सा द्वारा ही अच्छा भी किया। पहले रोगी को नैराश्य की मानसिक ग्रन्थि से मुक्त करना पड़ा। तत्पश्चात् उसका शरीर रोग ठीक हुआ। जैसे-जैसे रोगी ने मानसिक सबलता धारण की आत्मश्रद्धा, तथा आन्तरिक विश्वास की वृद्धि की, वैसे-वैसे उसका स्वास्थ्य पूर्ववत् होता गया। यदि आन्तरिक जगत् में पूर्ण समस्वरता, शान्ति, सरलता रहे, तो कोई भी मानसिक या शारीरिक विकार संभव नहीं है।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

नैराश्य रोग से मुक्त होने का उपाय इस विकार को दमन कर देना नहीं है। अनेक व्यक्ति निराश व्यक्त को अच्छे २ दृश्य दिखा कर उसकी पुरानी दुःखद स्मृतियों को भुलाने या दबाने की चेष्टा करते हैं। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से इस मानसिक विकार की मानसिक ग्रन्थि को सुलझाना ही सुखी होने का एक मात्र उपाय है। किसी भी विकार को दबा देने भर से काम न चलेगा। दमन की प्रतिक्रिया स्वरूप तो भावना-ग्रन्थि और भी जटिल बनती जायगी। दमन से थोड़े दिनों के लिये यह संभव हो सकता है कि रोग न बढ़े किन्तु जरा सा संघर्ष या दुःखद अवसर आते ही वह पुनः आन्तरिक जगत् से उमड़ पड़ेगा। कोई भी रोग दमन से विनष्ट नहीं होता। अल्पकाल के लिए अदृश्य हो जाता है। यह मनोवैज्ञानिक नियम नैराश्य तथा चिंता के विषय में भी सच है।

नैराश्य से मुक्ति के लिए उसका कारण सुलझा कर खोज निकालिये। यदि स्वयं समझ में न आये, तो किसी योग्य मनोवैज्ञानिक के पास जाकर समझिये। अपनी मानसिक गुत्थियों को सुलझाना इस विकार से बचने का सर्वोत्तम उपाय है। जब इस इस ग्रन्थि का कारण चेतना के समक्ष आयेगा तो वह स्वयमेव अच्छा हो जायगा। मनोविश्लेषण द्वारा जब विगत कटु अनुभूतियां रोगी की चेतना की सतह पर लाई जाती हैं और जब रोगी आत्म-स्वीकृति कर लेता है, अर्थात् सन्देह, भय, ग्लानि, चिंता की व्यर्थता मान लेता है तो वह ग्रन्थि सुलझ जाती है और मानसिक विकार नष्ट हो जाता है।

नैराश्य को दूर करने के दो मुख्य उपाय हैं—

[१] मन को निर्बल न होने देना।

[२] चिंता से न घबराना और नित्य प्रसन्न रहना।

मन को सबल बनाना

मन को ऐसे विचारों से भरे रखिये जो हितकर, शांतिकर, पुष्टकर हों अर्थात् जिनसे आपको वास्तविक शक्ति और आत्मविश्वास मिले, आत्मश्रद्धा में वृद्धि हो। आत्मश्रद्धा युक्त अवस्था में हम इस बात को जानते हैं कि परमात्मा हमारे अभीष्ट के लिए हमारे अन्तर जगत् में है। अपनी शक्तियों में अखण्ड विश्वास नितान्त आवश्यक तत्व है। हम सबल हैं, प्रत्येक ओर से सतर्क और पुष्ट हैं—ऐसी विचार धारा से मन पुष्ट होता है।

मन की शक्ति का ह्रास अन्तर्द्वन्द्व से होता है। अतः आप किसी भी संघर्ष में न फंसिये संघर्ष को विरोधी वासनाओं या विचार धाराओं का विषमता से उत्पन्न होता है। इस विषमता से सावधान रहिये। अपने आदर्श इतने ऊंचे न बना लीजिये कि वे कभी पूर्ण न हों। और आदर्शों तथा भोगेच्छाओं में विषमता न बनी रहे। अपने आदर्शों और इच्छाओं में समता उत्पन्न कीजिये। समता से स्थायी मानसिक शान्ति प्राप्त होती है।

इच्छाओं का शोध कीजये अर्थात् इच्छाओं, वासनाओं तथा अपनी शक्ति के प्रकाशन के लिए कोई उत्तम कार्य ढूंढ निकालिये। उन्हीं में संलग्न रह कर अपने आदर्शों को व्यवहार के योग्य बनाइये। संसार में इच्छाओं के शोध के लिये आप को अनेक उत्तम कार्य मिल जायेंगे। स्वदेश सेवा, समाज सुधार, साहित्य सेवा, भजन पूजन, अध्ययन, फूल पौधों से प्रेम, पशुपक्षियों का अध्ययन, विज्ञान, मैशीनरी से दिलचस्पी, घर की सफाई, बच्चों को पढ़ाने का काम,—कोई भी उपयोगी कार्य ले कर उस में अपने आपको व्यस्त रखिये। मन का उपयोग करने से ही मानसिक शक्तियों का विकास होता है।

मन में नये उत्तम विचारों से भरे रक्खो।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

मस्तिष्क में जितने ही नवीन शान्तिदायक विचार आयेंगे, उतना ही मन सबल होगा। खेद, शोक, चिन्ता और भविष्य के कल्पित दुःखों के विचार स्मरण बल, पुरुषार्थ, स्फूर्ति व सामर्थ्य को नष्ट कर डालते हैं। निरुपयोगी विचारों का बहिष्कार कीजिए। नवीन जीवन का नियम यही है कि निरुपयोगी विचारों को स्वभाव को निर्मूल करो और मन को सामर्थ्य युक्त नवीन उत्पादक विचारों को वृद्धि करो। नवीन विचार—उत्साह, प्रेम, उन्नति, विश्वास, प्रगति, शांति की भावनाओं का स्वागत करने से मस्तिष्क का मानस व्यापार व्यापक होता है, मन प्रफुल्लित हो जाता है, जीवन व बल की वृद्धि होती है, मन व बुद्धि तेजस्वी बनते हैं। इच्छानुसार मानसिक शक्तियें जाग्रत होती हैं।

नैराश्य से ग्रसित व्यक्ति को आन्तरिक संतुलन प्राप्त करने की दृढ़ प्रतिज्ञा और उस पर अमल करना चाहिए। चिन्ता से घबराना नहीं चाहिए। वरन् चिन्ता के कारणों को सुलझा कर एक-एक को दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए। प्रत्येक कारण को या तो स्वयं ही अथवा दूसरों की सहायता से सुलझा कर नष्ट कर देना चाहिये। चुपचुप मन में न ठहरने देना चाहिये। मन की अद्भुत शक्तियों का ह्रास अन्तर्द्वन्द्व से होता है अतः इसे मानसिक जगत् में स्थान न देना चाहिए।

आपको जब चिन्ता आये तो उसका सामना समझदारी से करना चाहिए। जब आप चिन्तित हों तो यह समझिये कि मनन की आवश्यकता आ पड़ी है। आप सोच विचार कर चिंता का कारण दूर कर दीजिये। और सबलता ले आइये। अनेक बार मनुष्य आचरण के प्रतिकूल कार्य कर बैठता है। फलतः उसका मन आत्मग्लानि से भर जाता है। आत्मा उसकी भर्त्सना करती है। अपने दुष्कृत्यों के लिए पश्चाताप आवश्यक है। अवश्य! किन्तु स्थायी रूप से इसे मन में स्थान देने से यह मानसिक रोग बन जाता है। आत्मग्लानि का अर्थ यही होना चाहिए कि भविष्य में हम वे दुष्कृत्य न करें, आगे को सम्हल जांय, ठीक मार्ग ग्रहण कर लें। आप पुण्य को, सत्य को, प्रेम को ग्रहण करने का प्रण करें, मन में शुभ कल्पनाएं रक्खें शुभ भावनाओं में रमण करें यही नैराश्य से मुक्त होने का सर्वोत्तम उपाय है।

मानसिक अन्तर्द्वन्द्व से मुक्त होने के लिए आत्मनिर्देश या सजेशन से सहायता लीजिये। मन को बलवान् बनाने का एकमात्र उपाय आत्मनिर्देश ही है। अपनी आत्मा के सर्वोत्तम गुण विकसित एवं जाग्रत करने के लिये निर्देश का ही उपयोग कीजिये!

★

अथर्ववेदीय मन्त्रविद्या—लेखक पं० प्रियरत्नजी आर्ष, 'अथर्ववेद में जादू टोने, तन्त्र-मन्त्र, झाड़फूंक का विधान है' ऐसा बहुत से विद्वानों का मत है। प्रस्तुत पुस्तक में आयुर्वेद व अन्य वैज्ञानिक साधनों द्वारा सिद्ध किया है कि वस्तुतः जिन मन्त्रों को जादू टोना, तन्त्र-मन्त्र आदि से सम्बद्ध किया जाता है वे सम्मोहन विद्या व चिकित्सा-शास्त्र के द्योतक हैं। पं० प्रियरत्न जी वेदों के अद्वितीय विद्वान् हैं। इस पुस्तक का परायण करके आप भी उनकी विद्वता का परिचय प्राप्त कीजिये। मूल्य १॥) । मिलने का पता—प्रकाशन मन्दिर, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

पक्षियों का अद्भुत संसार

श्री राधाकृष्ण कौशिक एम. एस. सी.

विचित्रता सदा से ध्यान आकर्षित करती रही है और भविष्य में भी इसी प्रकार करती रहेगी। समाचार पत्रों में भी ऐसी बातें न केवल प्रथम पृष्ठ पर स्थान पाती हैं प्रत्युत मोटे-मोटे अक्षरों में प्रकाशित की जाती हैं। पक्षिगण (Aves) नभचर होने के कारण साधारणतया ही दृष्टि में आते हैं, परन्तु इनमें से कुछ अपनी विशेष वेषभूषा व आकार के कारण, कुछ डिम्बोषणीय प्रकृति के कारण, कुछ सुमधुर कलरव और कुछ पंखों के होते हुये भी उड़ने में असमर्थ होने के कारण विशेषरूप से अपनी ओर ध्यान आकर्षित करते हैं।

यद्यपि शुतरमुर्ग (Ostrich), इमू (Emu), उष्ट्र=याति (Rhea) और केसोवरी (Cassowary) जैसे भीमकाय पक्षियों को उड़ने में असमर्थ देख कोई आश्चर्य नहीं होता, परन्तु ऊर्ध्वस्थायी अर्थात् पेनग्वीन (Penguins), कीविक (Kiwic), ऊलूक-तोता (Owl-parrot), बिना उड़ने वाले पनकौए (Cormorants) आदि साधारण परिमाण के पक्षियों की अक्षमता देख कर बड़ा विचित्र प्रतीत होता है।

वृद्ध के समान लंगड़ा कर चलने वाले पक्षी

इस प्रकार चलने वाले पक्षियों में ऊर्ध्वस्थायी (Penguins) सब से प्रमुख हैं। ये प्राणी-उद्यान (Zoological-gardens) में विशेषकर रखे जाते हैं और विदूषक के समान खड़े होने के ढग के कारण यात्रियों का ध्यान स्वयं ही उनकी ओर चला जाता है। पैर छोटे व शरीर से बहुत पीछे निकले हुए होने के कारण यह मनुष्य की तरह बिलकुल सीधा खड़ा रहता है और पंजों का कुछ भाग आगे की ओर प्रवर्द्धित होने से बड़ी अनोखी तरह छोटे २ डग भर कर वृद्धों की तरह लंगड़ा कर चलता है। इस प्रकार इसकी चाल बड़ी अजीब मालूम होती है और आकर्षण का कारण बन जाती है।

ऊर्ध्वस्थायी (Penguin) के डैने शल्क (scales) जैसे पंखों से ढके रहते हैं और दृढ़ क्षेपणी (stiff paddle) अथवा पतवार का काम देते हैं। तैरने में पक्षी इनका पूर्ण लाभ उठाता है और जल में इतनी तीव्रगति से चलता है कि मछली आदि अपने खाद्य को बड़ी सुगमता से पकड़ लेता है।

खड़े खड़े अंडे सेने वाला पक्षी

ऊर्ध्वस्थायी (Penguins) की अनेक जातियां हैं परन्तु उत्तरी-ध्रुव का राज-ऊर्ध्वस्थायी (King penguin) सब से बड़ा होता है। यह खड़ी हालत में ४ फीट ऊँचा और कभी कभी ८० पौंड से भी अधिक भारी होता है। इसकी नीड व डिम्बोषण सम्बन्धी प्रकृति विशेषरूप से उल्लेखनीय है। मादा प्रतिवर्ष हेमन्त ऋतु के मध्य में केवल एक अंडा देती है जिसको उदर और पैरों के बीच में रख खड़े रह कर सेने का कार्य करती है। और पिछले भाग की ढीली त्वचा से एक प्रकार की थैली बना कर ढक लेती है जिससे अंडे को गर्मी पहुँचती रहती है।

छोटे आकार वाले ऊर्ध्वस्थायी में काले पंख वाला अर्थात् अन्तरीपीय ऊर्ध्वस्थायी (Cap penguin) सब से अधिक परिचित है। लन्दन के प्राणी-उद्यान में कितने ही पाले-पोषे भी गये हैं। इसके सम्बन्ध में सब से बड़ी विचित्र बात यह है कि नैसर्गिक वातावरण में तो केवल हेमन्त ऋतु में ही अंडे देता है परन्तु कौतुकागार के बन्दी-गृह में किसी भी समय प्रजनन के कार्य में लीन हो जाता है।

घोर निद्रा में दिन व्यतीत करने वाला पक्षी

न्यूजीलैंड की कीवक (Kiwic) की तीन जातियां हैं। आकार में यह घरेलू मुर्गी के बराबर होती है। इसके डैने (wings) इतने सूक्ष्म होते हैं कि

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

पूर्णतया पंखों से ढक लाने के कारण तनिक भी मालूम नहीं होते। डैनों की इस हीन अवस्था के कारण यह पक्षी होते हुये भी थलचर जीवन (terrestrial life) व्यतीत करती हैं। इसके उपरान्त ये रात्रिचर (nocturnal) अर्थात् 'निशाचर' भी हैं। सूर्योदय से सूर्यास्त तक अपना सम्पूर्ण दिवस एक भूमिगत छिद्र (under ground hole) में पड़ कर ऐसी घोर निद्रा में व्यतीत करती है कि उठा कर ले जाने पर भी निद्रा भंग नहीं होती। केवल रात्रि के अगाध अन्धकार में कीड़े-मकोड़ों और विशेषकर केंचुओं (Earth worms) का भक्षण करने के लिये अपने शयन-कक्ष से बाहर निकलती है। इसने उदर पूर्ति के लिये जीवों को चुगने में भी एक असाधारण विधि को अंगीकार किया है।

कीविक अपनी तीखी व लम्बी चोंच मिट्टी में घुसेड़ कर नासारन्ध्र (nostrils) से ध्वनि सहित बड़ी तीव्रता से श्वास छोड़ती है, जिससे मिट्टी इधर-उधर हो जाती है और कीड़े सुगमता से दृष्टि में आ जाते हैं। इस विशेष साधन के लिये अन्य पक्षियों की उपेक्षा इसके नासारन्ध्र चोंच के सिरे पर स्थित होते।

मादा कीविक अपने भूमिगत बिल में प्रायः एक और कभी २ दो अंडे देती है। जिनके सेने का भार नर को संभालना पड़ता है। पक्षी को देखते हुये इसके अंडे काफी बड़े होते हैं। लन्दन के कौतुकागार में एक कीविक ने अंडा दिया. जिसका भार १४½ औंस था, अर्थात् वह मुर्गी के औसतन अडे से छः गुना अधिक भारी उतरा, जबकि कीविक, जैसा कि प्रारम्भ में ही वर्णन किया जा चुका है कि एक मुर्गी से अधिक बड़ी नहीं होती।

भौंडा स्वरूप

साधारणतया पक्षी सुन्दर ही होते हैं, परन्तु कुछ की विशेषता उनका विचित्र व भौंडा आकार है। इनमें से धनेश (Horn-bill) और टूकन (Toucan) वृहत् चोंच के कारण बड़े अजीब व भौंडे जैसे प्रतीत होते हैं। टूकन की चोंच चमकदार व रंगबिरंगी होती है। जिसमें काला, पीला, लाल, नीला और हरे रंग की झलक होती है। धनेश की चोंच के ऊपरी पर टोप जैसा प्रवर्द्धन होता है, मानो मनोरञ्जन के लिये विदूषक ने टोप यथा स्थान न पहिन कर आगे रख लिया हो। इस प्रतियोगिता में गैंड़ा-धनेश (Rhimoceros Horn-bill) सब से बाजी मार गया है। इसका अग्रभाग गैंडे के शृङ्ग के समान एकदम ऊपर को मुड़ा होता है जिसके कारण उसका स्वरूप बड़ा विचित्र व भौंडा प्रतीत होता है। उड़ने के दृष्टिकोण से ये पक्षी बड़े सुस्त और अत्यधिक भार के होते हैं।

धनेश की चोंच के बने आभूषण

यद्यपि धनेश और टूकन की चोंच इतनी बड़ी व लम्बी होती है, परन्तु आकार के अनुसार भारी नहीं होती। क्योंकि अन्दर से कोषावान (Cellular) होती है। परन्तु सुमात्रा और बोर्नियो का टोप वाला धनेश (Helmet hornbill) इसका प्रतिवाद है। इसकी चोंच केवल ठोस ही नहीं होती प्रत्युत हाथी दांत जैसे वयन (texture) की होती है। वहां के आदिवासी चोंच के लोभ से इस पक्षी को पकड़ लेते हैं और चोच के कत्तलों को काट कर खुदाई और नक्काशी का काम करके सुन्दर आभूषण व पिने बनाते हैं।

नीड में बंदी पत्नी

धनेश की नीड सम्बन्धी प्रकृति भी बड़ी अनोखी है। नारी किसी शुष्क वृक्ष के खोखले तने के छिद्र में अडे देती है। नीड-निर्माण के पश्चात् वह उसके अन्दर अपना स्थान ग्रहण कर लेती है और नर फलों की लुगदी को अपने उदर-यूष से मिश्रित कर आवागमन के द्वार को लीप कर बन्द कर देता है। परन्तु इसमें एक सूक्ष्म दरार रहने दी जाती है जिस में से

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

बन्दी पत्नी भोजन ग्रहण करने के लिये अपनी चोंच बाहर निकाल सकती है। नर खाद्य-सामग्री एकत्रित करके लाता है और उसको पेषणी (Gizzard) की त्वचा से बनी एक थैली में से वटिका के रूप में निकाल कर नारी की चोंच में डाल देता है। इस प्रकार बन्दी पत्नी अपने नैसर्गिक शत्रुओं के भय से मुक्त होकर डिम्बोषण (incubation) में लीन रहती है। जब बच्चे दो तीन सप्ताह के हो जाते हैं तो माता अपनी चोंच से भित्ति को फोड़ कर प्रसूतिका गृह से निकलती है और द्वार को लीप कर फिर बन्द कर देती है। जिससे नवजात शिशु अन्दर सुरक्षित रहें। बाहर आकर माता अपनी बढ़ती हुई गृहस्थी के लिये खाद्य-संग्रह करने में अपने पति का हाथ बटाती है और अपनी आवश्यकताओं की भी पूर्ति करती है। अन्ततः वह दिन भी आता है जब बच्चे स्वावलम्बी होने के योग्य हो जाते हैं और घौंसले को तोड़ कर कर्मण्य जीवन व्यतीत करते हैं।

बन्दी अवस्था में नारी धनेश की अंडे सेने तथा बच्चों के पालन-पोषण की अवधि में यदि नर की मृत्यु हो जाती है तो गृहस्थ के सम्मुख भोजन प्राप्ति की विकट समस्या उत्पन्न हो जाती है। ऐसे अकाल समय में सजातीय बन्धु सहायता के लिये आगे आ जाते हैं तथा उनको उदर-ज्वाला से मुक्त करते हैं। और इस प्रकार पिता का पद ग्रहण कर लेते हैं।

मृत धनेश के सम्बन्ध में आदिवासियों के अन्धविश्वास

दक्षिण अफ्रीका के आदिवासियों में वहां के धनेश के सम्बन्ध में एक बड़ा विचित्र अन्धविश्वास प्रचलित है कि यदि किसी शुष्क नदी नाले में मृत धनेश डाल दिया तो स्रोत फिर चालू हो जाता है। उनका कथन है कि पक्षी का शव पड़ जाने से स्रोत दूषित हो जाता है। इस लिये वर्षा शीघ्र ही होती है जिससे जल प्रवाह द्वारा दूषित वस्तु बह कर वह पुनः स्वच्छ हो जाये। आदिवासियों में जन्तु व पक्षियों के सम्बन्ध में इस प्रकार के अनेकों अन्ध-विश्वास घर किये हुये हैं।

अफ्रीका और मैडागासकर छत्रधारी अंबर (tufted umbre) नामक विचित्र पक्षी का घर है। यह 'हथोड़ा शिर' नाम से भी पुकारा जाता है। इसका आकार कौए के बराबर होता है और क्योंकि सिर के पिछले पंख छत्र अथवा कलंगी के समान इस प्रकार फैले होते हैं कि शिर का आकार हथौड़े जैसा प्रतीत होता है। इसी कारण इस का नाम 'हथोडा शिर' पड़ गया है। यह पक्षी अपनी भौंडी शकल के उपरान्त अपने वृहद् घौंसलों के कारण भी प्रसिद्ध है। घौंसला छोटी २ लकड़ियों का बनाया जाता है, जिसका व्यास लगभग ६ फीट अर्थात् दो गज का होता है और यह इतना सुदृढ़ होता है कि एक मनुष्य के भार से भी कोई हानि नहीं होती। तीन विभाग होने के कारण घौंसला इतना विस्तृत होता है। एक विभाग बैठक अथवा हाल का काम देता है, दूसरा 'प्रसूतिका गृह' का, जहां अंडे दिये व सेये जाते हैं, और तीसरा 'शयन-गृह' होता है जहां चलने-फिरने के योग्य हो जाने पर बच्चों का स्थान परिवर्तन कर दिया जाता है।

ठण्डा रखने के लिये अंडों को सेने वाले पक्षी

यह सब ही जानते होंगे कि पक्षिगण 'डिम्बोषण अवधि' (incubation period) में अंडों को ऊष्ण रखने के लिये सेते हैं। जिस से नियत समय पर उनका विकास हो जायें। यही अधिकांश पक्षियों के लिये भी सत्य है। परन्तु एक पक्षी शीतल रखने के ध्येय से अंडों पर बैठता है। यह सूक्ष्म पक्षी मिश्र का काली पीठ वाला कोर्सर (Courser) अथवा मगर-मच्छ पक्षी (Crocodile bird) कहलाता है। परिमाण में एक स्टार्लिंग (Starling) के बराबर होता है। यह रेतिया में कई इञ्च गहरे उथले गड्ढे खोदकर दो तीन अंडे देता है और पुनः उनको

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

बालू से बूर देता है। सायं व प्रातः दोनों समय निर्शंक होकर अंडों को छोड़ जाता है। परन्तु जैसे २ सूर्य मध्याह्न में चढ़ता जाता है, उसकी किरणों से बालू तप्त हो जाती है। उस समय सूर्य के उग्र ताप से अपनी छिपी हुयी निधि की रक्षा के हेतु उन 'घौंसलों' पर आ बैठता है, जिस से उन पर छाया हो जाती है। यदि पक्षी इस ओर तनिक भी उदासीन हो जाये तो सूर्य की गर्मी से अंडों का जल भुन कर भुर्ता बन जाये। जिस प्रकार ज्येष्ठ-वैसाख की गर्मी में हम खस की टट्टियों का प्रयोग करते हैं उसी प्रकार यह पक्षी नदी नाले में जाकर अपने उर (breast) को जल से तर कर लेने के पश्चात् अंडो पर आ बैठता है। रेत से ढके हुये अंडों को शीतल रखने के लिये कभी कभी यह पक्षी पानी घूंट लाकर उन पर छिड़क देता है। साधारणतया पक्षी अपने अंडों को गरम रखने के लिये उन पर बठते हैं, परन्तु उपरोक्त उदाहरण इसका अपवाद है जहां अडों को शीतल रखने के लिये विभिन्न युक्तियों की शरण ली है।

इस पक्षी का मगर-मच्छ के साथ भी बड़ा विचित्र पारस्परिक सम्बन्ध है। यह उरगम ताल-तलैयों व नदी-नालों से बाहर निकल कर सूर्य स्नान के लिये रेतिया में लोट मारना बहुत पसन्द करते हैं और प्रायः इस समय उनका मुंह भी पूर्णतया खुला रहता है। 'मगर-मच्छ पक्षी' भी उड़ कर इसके समीप ही आ बैठता है और फुदक फुदक कर उसके मुंह में से 'जोख (Leech) तथा अन्य छिपे हुये कीड़ों को चोंच से पकड़ कर खाता रहता है। यद्यपि मगर-मच्छ एक अत्यन्त क्रूर व धोखेबाज जन्तु है परन्तु इस पक्षी को नहीं निगलता। इस अनुदार व्यवहार से ऐसा प्रतीत होता है कि मगर इस पक्षी का अत्यन्त आभारी है क्योंकि इस क्रिया से मगर चिपटी हुई जोंखों से मुक्त हो जाता। यद्यपि पक्षी उसके दांतों के नीचे से कीड़े बटोरता रहता है परन्तु मगर जबड़ों को उस समय तक खुला ही रखता है जब तक कि पक्षी उसके मुंह में विचरता रहता है। इन दो प्राणियों का पारस्परिक सम्बन्ध सचमुच ही जन्तु जगत् की एक महान् विचित्रता है। इस 'सहजीवन' (Sym brosis) से दोनों ही जन्तुओं को सम्पूर्ण लाभ है। एक ओर तो मगर की रक्त-चूसने वाले कीड़ों व जोखों से रक्षा होती है और दूसरी ओर पक्षी को बड़ी सुगमता से भर पेट भोजन उपलब्ध होता है।

★

विभिन्न धर्म

प्रत्येक धर्म ने मानवजाति को सहायता पहुँचाई है। पैगनिज्म (प्राचीन यूनान का देव-पूजक धर्म) ने मनुष्य के अन्दर सौंदर्य के प्रकाश को विकसित किया है, उसके जीवन की विशालता और उच्चता को बढ़ाया है और बहुमुखी पूर्णता के उसके उद्देश्य को उन्नत किया है। ईसाइयत ने उसे दिव्य प्रेम और दयालुता व सहृदयता का कुछ दर्शन कराया है। बौद्ध धर्म ने उसे अधिक ज्ञानी, अधिक विनीत और अधिक पवित्र होने का एक उत्कृष्ट मार्ग दिखाया है। यहूदी धर्म और इस्लाम ने उसे धार्मिक भाव से क्रिया में सच्चे होना और ईश्वर के प्रति उत्कट भक्ति वाला होना सिखाया है। हिन्दू धर्म ने उसके आगे बड़ी से बड़ी और गहरी से गहरी आध्यात्मिक संभावनाओं को खोल दिया है। एक बड़ा काम सिद्ध हो जायगा, जब ये सब ईश्वर-दर्शन परस्पर आलिंगन कर लेंगे और अपने आपको एक दूसरे के प्रतिरूप बना लेंगे। पर बौद्धिक सिद्धांत-वादिता और सांप्रदायिक अहंकार मार्ग में बाधक हैं।

—श्री अरविन्द।

★

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

मांसाहारी वनस्पतियां

श्री राजकुमार गोयल

मांसाहारी पौदों में कुछ ऐसी रचनाएं होती हैं जो पूर्णतया फूलों जैसा आकार बना लेते हैं और उन्हीं की तरह आकर्षक वर्ण व मनमोहक गन्ध तथा मधुरस से परिपूर्ण होती हैं परन्तु बीजोत्पादन से इनका तनिक भी प्रयोजन नहीं होता। यथार्थ में ये कीट जाल हैं जिनकी सुन्दर छटा, वर्ण व्यवस्था, मनमोहक गन्ध और मधुरस कीड़ों को इन जालों में फंसने के लिये आमन्त्रित करते रहते हैं। रस स्वादन के लिये आये हुये दीन अतिथि इन शिकञ्जों में फंस जाते हैं जहां से उनका फिर कभी निस्तार नहीं होता। यहीं उनकी मृत्यु होती है और अन्त में पच जाते हैं।

ये 'मिथ्या-पुष्प' कीटाशी हैं और विभिन्न प्रकार के होते हैं। इनमें से अधिकांश कलश पादप पिचर्स प्लाण्ट के नाम से प्रचलित हैं, क्योंकि ये बहुत कुछ कलश के आकार के होते हैं। इनका आधे से अधिक भाग मधुरस से भरा होता है।

कीटाशी अथवा मांसाहारी पौधों के ज्ञान के लिये हम संसार के महान् प्रकृति वेत्ता चार्ल्स डारविन के सबसे अधिक आभारी हैं। इतने कीटाशियों में से एक भी पौधा ऐसा नहीं है जो कि कीट-भोज पर ही पूर्णतया निर्भर हो। अन्य वनस्पतियों के समान इनमें भी हरी पत्तियां होती हैं और उसी प्रकार भूमि से अपना भोजन प्राप्त कर सूर्य की किरणों द्वारा कार्बोनीकरण (कार्बन एसिमिलेशन) करते हैं। निःसन्देह ये पौधे कीट भोज के अभाव में जीवित रह सकते हैं परन्तु मांस भोज अधिक पुष्टीकर होता है। जर्मनी के बनस्पति विशेषज्ञ जूलियस वोन सेश् ने एक इसी प्रकार के प्रश्न के उत्तर में कहा है कि 'यद्यपि पोलैंड और आयरलैंड के वासी आलू पर निर्वाह करते हैं परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि शोरबा उनके लिये अधिक उपयोगी और पुष्टीकर नहीं होगा।' अधिकांश कीटाशी पौधे दलदलों में उगते पाये जाते हैं, ऐसे स्थान की मिट्टी में प्रायः नत्रजन का अभाव रहता है, क्योंकि ऐसे स्थानों में बहुत ही कम पेड़ पौधे और जन्तु पाये जाते हैं और जो भी कुछ अल्प मात्रा में नत्रजन मिट्टी में प्रस्तुत होती है वह भी शीघ्र जमीन की गहरी सतह में पहुँच जाने के कारण पौधों के लिये अप्राप्य हो जाती है। पेड़ पौधों के दृष्टिकोण से नत्रजन उसके लवण नाइट्राइट्स और नाइट्रेट्स के रूप में अत्यन्त घुलनशील होने से अगाध पानी के साथ बहुत गहरी सतह में पहुँच कर पौधों को नहीं मिल पाती। नियमित रूप से नत्रजन का भाग पाने में असफल होने के कारण इन पौधों ने इस आवश्यक पदार्थ की पूर्ति के लिये हिंसा करने की असाधारण विधि को अपनाया है। पूर्णतया स्वस्थ और हृष्ट-पुष्ट रहने के लिये हमको भी नत्रजन की आवश्यकता पड़ती है जिसका हम दाल, मांस, अंडे आदि के रूप में सेवन करते हैं। ये पौधे साधारण विधि से नत्रजन का नियमित भाग न पाकर हिंसक और मांसाहारी बन गये हैं जोकि वनस्पति जगत की एक अत्यन्त ही महत्वपूर्ण घटना है।

सम्भवतः इस हिंसक प्रवृत्ति का प्रारम्भ दंशक रोम [स्टिंगिंग हेअर्स] से हुआ है। इस प्रकार के रोम दंशरोम [कुल अर्टिकेसी] की पत्तियों पर पाये जाते हैं जिससे कोमल पत्तियों की जन्तुओं से रक्षा हो सके। इससे ऊँची श्रेणी के वे पौधे हैं जिनमें दश रोम पुष्पों के वृन्त पर विद्यमान होते हैं। ये अनुपयोगी कीटों को पुष्प तक पहुँचा कर पराग-कण नष्ट करने से रोकते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ पौधों ने मृत कीड़ों के शरीर को शोषण करके लाभ उठाया है और इस प्रकार कनक पर्णी (ड्रौसेरा) जैसे कीटाशी पौधों का विकास प्रतीत होता है। जिनमें पत्तियां पर विषम रोम अथवा अंगक (टेन्टेकल्स) होते हैं जो सूक्ष्म जन्तुओं व कीड़ों को पकड़ने, मारने और अन्त में भक्षण करने में सहायता देते हैं।

कनक पर्णी की कुछ जातियां हिमालय के मदानों नीलगिरी और पंजाब की पहाड़ियों पर पाई जाती हैं।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

यह एक सूक्ष्म पौधा है जिसकी रक्त वर्ण पत्तियों पर लगभग दो सौ चमकते हुए गदाकार रोम होते हैं। इनके सिरे सूर्य की रश्मियों में ओस की बूंदों के समान चमकते हैं। इस लिये इस पर्ण को 'सूर्य की ओस' (सन-ड्यू) के नाम से भी सम्बोधित करते हैं। सूर्य की किरणों से इनकी ऐसी छटा हो जाती है मानो छोटी-छोटी लाल मखमली गद्दी पर सहस्रों सुनहली आलपिनें लगी हों।

कनकपर्णी की पत्तियों के किनारे के रोम सब से बड़े होते हैं और अन्दर वाले क्रमश: छोटे होते जाते हैं। बीच के रोम सबसे छोटे होते हैं और सीधे खड़े रहते हैं। प्रकाश में इन पत्तियों से ठीक फूल का भ्रम होता है, जिन्हें मधुरस से परिपूर्ण समझ कर पतंगे अनायास ही उन पर आ बैठते हैं। परन्तु ज्यों ही एक सूक्ष्म पतंगा एक अंगक पर बैठता है त्योंही उसके पंख इस चिपचिपे रस में फंस जाते हैं और अन्य अंगक चारों ओर से झुक कर इसे घेर लेते हैं। जब पतंगे अपने को मुक्त करने के लिये उड़ने की चेष्टा करते हैं तो उनके अंग और भी अधिक फंस जाते हैं। साथ ही साथ पतंगे के अंग के संघर्षण से ग्रन्थियों में से रस और भी अधिक वेग से बहने लगता है। इसमें प्रत्या-मीन पाचक रस (प्रोटीन्स डाइजेस्टिंग ऐन्ज़ाइम) होता है जिसकी प्रक्रिया से कुछ ही दिनों में पंजर को छोड़कर समस्त शरीर का शोषण हो जाता है और इस क्रिया के समाप्त होने पर अगक फिर उठ कर सीधे खड़े हो जाते हैं। साथ ही साथ पत्ती के उदासर्ग (सीरेशन) तथा कीट शरीर के पाच्य अंगों का शोषण हो जाता है और कठिनि (चीटीन) के पंजर का वायु के झोंके द्वारा निष्कासन होता है। दो, तीन दिन के पश्चात ये पत्तियां फिर शिकार पकड़ने के योग्य हो जाती हैं और इस प्रकार यह चक्र चालू रहता है।

मनोरञ्जन के लिये कनकपर्णी के साथ छोटी-मोटी चाल भी खेली जाती है। उदाहरणार्थ यदि मांस का एक छोटा सा टुकड़ा उसके समीप लाया जाय तो उस ओर के अंगक इस प्रकार आगे बढ़ आते हैं जैसे कि मनुष्य मिठाई के लिये हाथ आगे फैला देता है। यदि मांस का टुकड़ा अधिक दूर नहीं होता है तो अन्त में अंगक उसको घेर कर भक्षण करने में सफल हो जाते हैं। यदि कागज़ की एक गोली अंगकों के मध्य में गेर दी जाय तो लसीला रस का उदासर्जन नहीं होता और वे शीघ्र ही अपनी साधारण स्थिति में आ जाते हैं।
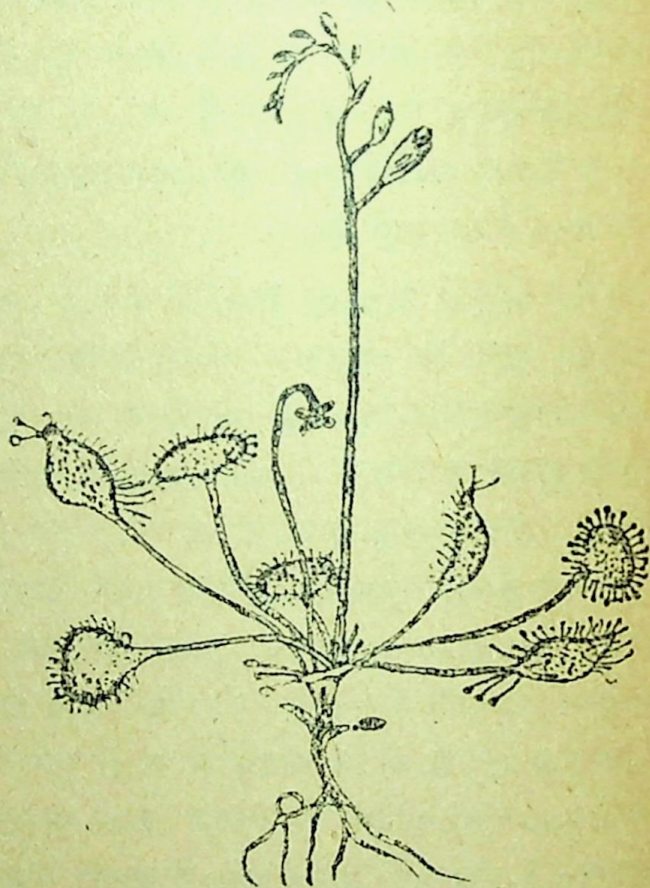
कनकपर्णी

कनकपर्णी का एक निकट सम्बन्धी ओसपर्णी (ड्रोसोफाइलम) है। यह पुर्तगाल में बहुतायत से पाया जाता है और वहां के किसान अपने घरों में इसको मक्खी पकड़ने के प्रयोग में लाते हैं और इस प्रकार ही टांग देते हैं जिस प्रकार मक्खी पकड़ने के कागजों का प्रयोग किया जाता है।

एक दूसरा कीटाशी पौधा नवनीतपर्णी (बटर-वोर्ट) है। यह भी प्राय: उन्हीं स्थानों में पाया जाता है। जहां पर कनकपर्णी पाया जाता है। यह एक सूक्ष्म पौधा है जिसकी पत्तियां एक इञ्च से तीन इञ्च

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

तक लम्बी होती हैं। इन पत्तियों पर एक पीत वर्ण मक्खन जैसा पदार्थ पुता होता है।

नवनीतपर्णी की पत्तियां जमीन पर बिछी रहती हैं जिनके किनारे ऊपर उठे रहते हैं। जब कोई पतंगा इनके ऊपर आकर बैठता है तो यह पत्तियां बन्द होने लगती हैं और कीट को बन्दी बना लेती हैं। इनके ऊपर स्थित अणवीक्षीय ग्रन्थियां (माईक्रोस्कोपिक ग्लैंड्स) पाचक रस छोड़ती हैं जिसके प्रभाव से प्रत्यामीन (प्रोटीन्स) प्रचूषण योग्य बन जाते हैं। इस क्रिया के पश्चात पत्तियां फिर खुलने लगती हैं।

इससे भी अधिक उपज्ञावी (इन्जीनियस) विधि का सूक्ष्म कीट पकड़ने वाले पौधे पुटकी (ब्लेड्डर वोर्ट) द्वारा होता है जो कि काश्मीर के खड्डों में और डल झील (डल लेक) में बहुतायत से पाया जाता है। अन्य जलीय वनस्पतियों की भांति पुटकी की पत्तियां भी बहुत कटी हुई होती हैं जिनमें से कुछ के सिरे अत्यन्त सूक्ष्म फुग्गों में परिवर्तित हो जाते हैं और प्रत्येक में केवल एक ओर द्वार होता है।

ये सूक्ष्म थैलियां पाश (ट्रैप) का काम करती हैं। इनके मुख पर अन्दर की ओर खुलने वाला एक ढकन होता है। विशेष साधन से थैलियों का पानी बाहर निकल जाता है और उसकी दिवारें सुकड़ जाती हैं। साइक्लोप्स, डेफनिया तथा अन्य कठिनिनः क्रस्टेसीन जब द्वार-पाश के रोम छूते हैं, तब द्वार खुल जाता है, और थैली की दिवार बाहर की ओर बढ़ती है। इस प्रकार आकार में परिवर्तन के कारण बाहर से पानी अन्दर की ओर घुसता है जिसके साथ सूक्ष्म कीट भी घुस जाते हैं। कीट के प्रवेश करते ही द्वार बन्द हो जाता है, और वह पुटकी के अन्दर बन्दी हो जाता है। उसके अन्दर श्वासावरोध और उदर ज्वाला से पीड़ित होकर एक दो दिन में मृत्यु को प्राप्त होता है। हृष्ट पुष्ट होने पर ६-७ दिन तक इस यन्त्रणा को भोगता हुआ शरीरांत कर देता है। और वे वहां पर पड़े-पड़े सड़ते रहते हैं। यह क्रिया जीवाणुओं (बैक्टीरीया) के प्रभाव से होती है। पुटकी के अन्दर विशेष कोष होते हैं जो मृत जीवों के शरीर से उपयोगी जैविक (औरगेनिक) पदार्थों का शोषण कर पौधे के अङ्गों में पहुँचाते हैं।

इसी सिद्धांत के विस्तृत रूप का प्रदर्शन कलश-पादप (पिचर्स प्लान्ट) में पाया जाता है। कलश-पादप कई प्रकार के होते हैं, जिनमें सब से सुन्दर व आकर्षक घटपर्णी (नेपेन्थेस) है। यह भूमध्य रेखा के निकटवर्ती एशियाई प्रदेशों, उत्तरी आस्ट्रेलिया, मेडागास्कर और सब से अधिक उत्तरी बोरनियों में पाये जाते हैं। कलश-पादप दो प्रकार के होते हैं। एक तो वह जो दलदल में उगते हैं और जिनके लम्बे परन्तु सकड़े फूलदान जैसे कलश झड़ी हुई पत्तियों से न्यूनाधिक ढके रहते हैं। दूसरे वह हैं जिनका आकार जग के समान होता है और हरी पत्ती के सिरे से प्रवर्द्धित प्रतान (टेन्ड्रील) के सिरे पर कलश लटके रहते हैं, जो किसी दूसरी शाखा पर लिपटी रहती है।

प्रारुपिक (टिपिकल) कलश एक इञ्च हो अथवा एक फुट हो बेल जैसे प्रतान के सिरे पर लटका रहता है। जर्मनी के प्राविज्ञानाचार्य कार्ल वोन गोयबिल के मतानुसार कलश यथार्थ रूप में पत्रदल (लेमिना) का रूपान्तर है। प्रारम्भ में कलश का मुख ढकन से बन्द रहता है, परन्तु पूर्ण विकसित अवस्था में यह ढकन खुल जाता है और मुख के ऊपर झुका रहता है जिस से कलश वर्षा में न भर जाये। इन में तथा अन्य प्रकार के कलशों में ढकन और भी आकर्षक रंगों से सजे होते हैं जिस से पतंगे उनको पुष्प समझकर आ बैठते हैं। ये ढकन नवनीतपर्णी के पत्रदल अथवा कनकपर्णी के अंगकों के

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

समान बार बार खुल और भिड़ नहीं सकते। ढक्कन एक बार खुलने के पश्चात् सदा ही खुला रहता है।

पतंगे, जो सदैव मधु की खोज में उड़ते फिरते है, कलश की सुन्दरता से आकर्षित हो कर सहसा उन के अन्दर घुस जाते हैं। परन्तु कलश का द्वार ढलवां होने के कारण ये अनायास ही कलश के उदर में जा गिरते हैं। कलश की दिवार बहुत ही चिकनी और फिसलनी होती है जिसके कारण कीटों को रेंग कर चढ़ना अत्यन्त ही कठिन हो जाता है। अगर कोई पतंगा चढ़ने में सफल भी हो जाता है तो उस से ऊपर की दिवार पर स्थित, नीचे की ओर झुके हुए कटिये, एक बाढ़ का काम देते हैं जिस से कीट का निकलना कठिन ही नहीं वरन् असम्भव हो जाता है। किसी-किसी कलश में कटियों की दोहरी झालर भी पाई जाती है। कलश के उदर में तरल पदार्थ भरा होता है जिस में बहुत से कीट पहली ही डुबकी में प्राण त्याग देते हैं। पतंगे जो एक बार कलश ए अन्दर घुस जाते हैं वहीं पड़े पड़े सड़ते रहते हैं।

कलश का रस गुण में कुछ अम्लीय (एसिडिक) होता है, और विशेषकर निचले भाग में स्थित ग्रन्थियों से निकलता है। यह रस गुण और क्रिया में हमारे उदर-यूष (गेस्ट्रिक ज्यूस) के समान होता है और इसमें जैविक अम्ल (ऑरगेनिक एसिड) के साथ पाचि[पेप्सीन]भी मिश्रित होता है। इसमें कीड़ों मकोड़ों को पचा कर प्रचूषण करने की क्षमता होती है। इसलिए जितने भी कीड़े मकोड़े कलश में बन्दी हो जाते हैं वे वहीं सड़ते गलते रहते हैं और अन्त में मज्ज हो जाते हैं।

ग्रीष्म ऋतु में दूर-दूर तक जल का नाम निशान नहीं होता, उस समय पतंगों के अतिरिक्त चूहे इत्यादि भी जल की खोज में इन कलशों में घुस जाते हैं और इन के शिकार बन जाते हैं। इस से यह ज्ञात होता है कि 'मिथ्या पुष्प' कीटों को छोड़ कर चूहे इत्यादि को भी अपनी तुंबियों में फंसा लेते हैं। परन्तु ऐसा कम ही होता है।
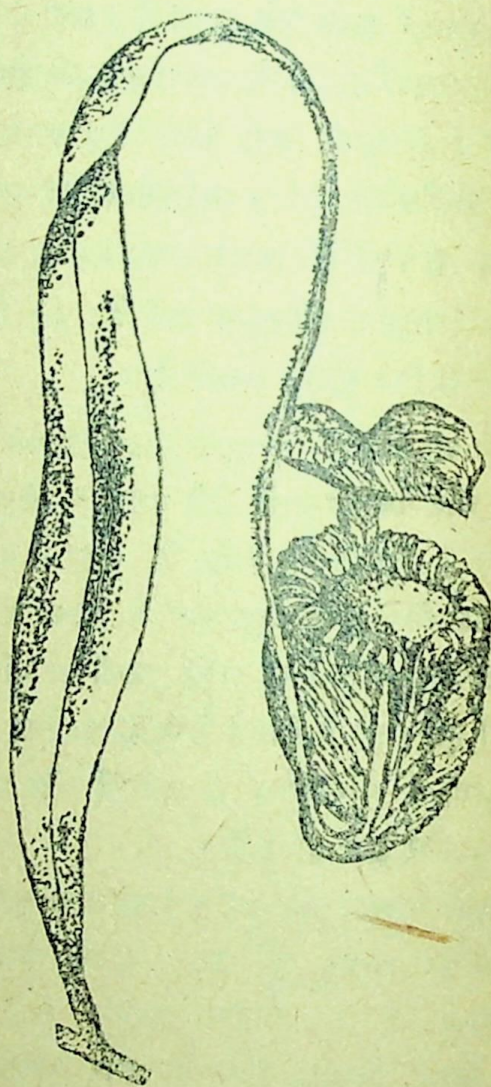
घटपर्णी

घटपर्णी के अतिरिक्त फूलदान व भूपू के आकार के अन्य पर्याण पर्णी (सेमेसीनिया) और आस्ट्रेलिया का कुम्भपर्णी (सेफेलोटस) भी हैं, जिन में सामान्य पत्तियों के साथ-साथ परिवर्तित तूंबिया भी होती हैं।

पर्याणपर्णी की तूंबी भूपूदार होती है। जो कि सपक्ष पत्रवृन्त (विंग्ड पीटियोल) का रूपांतर मात्र है, और ढक्कन पत्रदल का। इनमें किसी प्रकार का विकार [एन्ज़ाइम] या अम्ल [एसिड] नहीं

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

निकलता परन्तु जीवाणुओं [बैक्टीरिया] के उत्पत्ति से विशलेषण होता है जिसको ये पौधे शोषण कर लेते हैं।

कुम्भपर्णी [सेफैलोटस] में भी किसी प्रकार का पाचक रस नहीं निकलता परन्तु एक अम्लिक यूष निकलता है। यह साधारण प्रकार के सड़ने को रोकता है, परन्तु विशेष प्रकार के जीवाणुओं की उत्पत्ति में सहायक होता हैं।

पर्णपर्णी [साना सीनिया] का एक निकट सम्बन्धी केलीफोर्निया का कलश पर्णपर्णी [डार्लिङ्गटोनिया] है, कीट पकड़ने की विधि में यह पर्णपर्णी से मिलता जुलता है।

बहुत से कलशों व तूंबियों में बहुत कम कीट पाये जाते हैं। उनमें पाचन क्रिया जीवाणुओं की उत्पत्ति से नहीं होती। परन्तु अत्यधिक कीट फंस जाने से रस कम पड़ जाता है और कलश की अन्तर वस्तु सड़ने लगती है। कभी-कभी यह विलक्षण घटना भी देखने में आई है कि कलश द्रव में उपस्थित जीव जीवित अवस्था में ही रहते हैं। सम्भवत: आन्त्रिय पराश्रयी [इन्टर्नल पैरासाइट] जीवों के समान कलश के जीव भी पाचन क्रिया से अप्रभावित रहते हैं।

कीटाशी पौधों में सब से विचित्र कपाटपर्णी [वीनस फ्लाई ट्रैप] है। यह संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में और उससे भी अधिक उत्तरी और दक्षिणी केरोलिना के दलदलों में पाया जाता है। इसकी पत्तियों की व्यवस्था पाटलक विधि [नौमेंट्टे फेशन] के अनुसार होती है। प्रत्येक पत्ती में दो पालि [लोबेस्] होती हैं, जो मध्य-नाड़ी [मिड रिब] से संयुक्त रहती हैं और कपाट के समान खुल और भिड़ सकती हैं। पालि के सिरे पर कुण्ट-सूची [ब्रिस्टल्स] की एक कतार होती है, जो कि चूहेदान के दांतों की तरह काम करती है और पत्ती एक चूहेदानी का। पत्ती की सतह पर अनेकों ग्रन्थियां होती हैं जिनसे पाचक रस निकलता है। प्रत्येक पालि पर तीन रोम होते हैं जो अत्यन्त द्रुष [सेन्सिटिव] होते हैं।

जब पत्तियां हरिता [मौस्सी] बिछौने पर फैली होती हैं। तब वे कीटों के लिए बड़ा ही आकर्षक वेदि का काम देती है। जैसे ही कीट या पतंगा कुंठ-सूची के सम्पर्क में आता है, पत्ती की दोनों पालियां कपाट के पलड़ों के समान बन्द होने लगती हैं। और अन्त में उदर का काम देती हैं, जिन से हमेशा पाचक रस बहता है। पत्तियों की ऊपरी सतह पर स्थित रक्त-वर्ण ग्रन्थियों से यह रस निकलता है और इन्हीं के द्वारा अन्त में प्रचूषण कर लिया जाता है। अजैविक [इन और्गेनिक] तथा नत्रजन रहित पदार्थों को पत्तियों पर डालने से किसी प्रकार की उत्तेजना नहीं होती। यह बड़े आश्चर्य की बात है कि वनस्पति जगत् का यह विचित्र हिंसक पौधा इस विशेषता के होते हुये भी विलुप्ति की ओर अग्रसर हो रहा है।

कपाटपर्णी का एक प्रतिरूप बड़ा भृंगी [एल्ड्रोवेण्डा] है। यद्यपि यह विश्वव्यापी है जिस पर भी अभी तक इसकी एक ही जाति पाई गई है। बंगाल, क्यून्सलैंड तथा योरोप में यह बहुतायत से पाया जाता है। कभी-कभी इसकी पत्तियों में हवा के बुलबुले पाये जाते हैं इसलिए आरम्भ में इसको पुटकी समझने का भ्रम हो गया था। यह पौधा मूल रहित होता है और स्वच्छन्दता से पानी पर उतराता है। इसकी ऊपरी नतोदर ग्रन्थीमय पालियों तथा मध्य नाड़ी पर सहस्रों लम्बे और तीखे रोम होते हैं, ये अत्यन्त ही द्रुष होते हैं और रोम छूते ही पत्तियां बन्द होने लगती हैं। २४ से ३६ घण्टे पश्चात् पत्तियां इस क्रिया को दोहराने के लिए फिर खुल जाती हैं।

★

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गुरुवर्याय श्रद्धानन्दाय श्रद्धाञ्जलिः

श्री धर्मदेवो विद्यावाचस्पतिः।

[१]

भक्तश्रेष्ठः परजनहिते सर्वदा दत्तचित्तः
श्रद्धां शुद्धां विमलहृदये मातरं मन्यमानः।
शिक्षां हृद्यां शुभ गुरुकुले सन्ददानो बटुभ्यः
श्रद्धानन्दो गुरुजनवरः सर्वदा वन्दनीयः॥

★

[२]

निर्भीको यः सरलहृदयः सत्यवाक् स्पष्टवक्ता
देवे भक्तिं परमविमलामादधानो ऽविकम्पाम्।
शुद्धिद्वारा सकल मनुजान् दीक्षमाणः सुधर्मे
श्रद्धानन्दो गुरुजनवरो ऽसौ सदा वन्दनीयः॥

★

[३]

दत्वा तन्वो मुदितमनसा यो बलिं धर्मवेदौ
प्राप्तो लोके ह्यमरपदवीं त्यागशीलो महात्मा।
आसीत्सर्वं विमल चरितं यस्य सद्यशरूपं
श्रद्धानन्दो गुरुजनवरो ऽसौ सदा वन्दनीयः॥

★

[४]

अन्यायं यः सकलमहसा रोद्धुकामः प्रयेते
सत्याहिंसा बलयुत इहान्यायिनो योद्धुकामः।
कारा-कष्टं वयसि चरमे यः समोदं विषेहे
श्रद्धानन्दो गुरुजनवरो ऽसौ सदा वन्दनीयः॥

★

[४]

येते नित्यं दलित-पतितान् मानवानुद्दिधीर्षुः
पूतान् सर्वान् श्रुतिवचनतः पावनः संचिकीर्षुः।
अस्पृश्यत्वं सम सममना दूरयन् जातिभेदं
श्रद्धानन्दो गुरुजनवरो ऽसौ सदा वन्दनीयः॥

★

[५]

देवेन्द्रं तं भुवन-पितरं प्रार्थयामो महेशं
दद्याच्छक्तिं यतिपथि सदा निर्भयत्वेन गन्तुम्।
श्रद्धां शुद्धां सकलमनुजेष्वादध्यात्कृपालु-
र्भूयाद् येनाखिलजनगणादर्शभूतः समाजः॥

★

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

पुस्तक परिचय

वैदिक योग पद्धति—लेखक आचार्य विदेह। प्रकाशक—वेद संस्थान, अजमेर। मूल्य ।=)। ईश-विश्वास, आत्म-विश्वास, आकांक्षा, श्रद्धा, पवित्रता, अनासक्ति, ब्रह्मवृत्ति, समाधि आदि शीर्षकों के नीचे लेखक ने वेद मन्त्रों को देते हुए उनकी सुन्दर व्याख्या की है। अपने जीवनों में मधुरता, आत्म-विश्वास, पवित्रता आदि कल्याणकारी भावनाओं को भरने के लिए इस पुस्तिका से प्रत्येक नागरिक को प्रेरणा प्राप्त करनी चाहिए।

वैदिक बाल-शिक्षा—लेखक और प्रकाशक वही। मूल्य ।=)। चुने हुए वेद के मन्त्रों से बच्चों को तेजस्विता, माता पिता की सेवा, सत्य-भाषण, समय पालन, निन्दा त्याग, अग्रणीयता, चोरी-त्याग, सहनशीलता आदि गुणों को अपने अन्दर ग्रहण करने की शिक्षा दी गई है। इस पुस्तक को स्कूलों में धर्मशिक्षा की पाठ्य पुस्तक के रूप में पढ़ाने से बालकों का बहुत उपकार हो सकता है। माता पिताओं को भी इसका स्वाध्याय करना चाहिए।

सार्वभौम आर्य साम्राज्य—लेखक तथा प्रकाशक वही। मूल्य आठ आने। वैदिक आदर्शों के अनुसार राष्ट्र का गठन और वर्धन जिस प्रकार का होना चाहिए उसी प्रकार के सार्वभौम आर्य-साम्राज्य की कल्पना लेखक ने की है। यह साम्राज्य किसी का शोषक न होकर सबको धारण और पोषण करने वाला होगा।

आर्य समाज का साप्ताहिक अधिवेशन—लेखक तथा प्रकाशक वही। मूल्य तीन आने। आर्य समाजों के साप्ताहिक अधिवेशनों कार्यक्रम क्या रहना चाहिए, यह इस पुस्तिका में बताया गया है। सन्ध्या और हवन के मन्त्रों का सरल अर्थ भी दिया गया है।

संस्कार विधि विमर्श—लेखक श्री अत्रिदेव गुप्त विद्यालंकार। प्रकाशक— नरेन्द्र शशि, काशी विश्वविद्यालय, बनारस। पृष्ठ संख्य १२५। मूल्य तीन रुपये। भारतीय जीवन में संस्कारों का ऊंचा स्थान है। इन संस्कारों से हमारे अन्दर अनेक गुणों को आधान करने और दुर्गुणों को निकालने की प्रेरणा मिलती सोलहों संस्कारों की क्या विधि है और उनका चिकित्सा और प्रजाशास्त्र के आधार पर क्या महत्व है यह इस पुस्तक में स्पष्ट किया गया है।

आयुर्वेद (मासिक)—सम्पादक, श्री गौरी शंकर गुप्त। प्रकाशक-श्याम सुन्दर रसायन शाला, काशी। वार्षिक मूल्य ३)। आयुर्वेद के पहले वर्ष का पहला अंक हमारे सामने है। आयुर्वेद के सभी अंगों पर अन्वेषण पूर्ण ठोस साहित्य का प्रकाशन इसका उद्देश्य है। इस आदर्श लक्ष्य की प्राप्ति के लिए हम 'आयुर्वेद' को उत्तरोत्तर फलता फूलता देखना चाहते हैं।

—रामेश बेदी।

★

वरुण की नौका—लेखक श्री प्रियव्रत, आचार्य, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय। कर्मफल, पुण्य, पाप, कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य की इस पुस्तक में मीमांसा है। राजा वरुण प्रभु की आंखें सब जगह पर हैं। कर्मफल विज्ञान के जिज्ञासुओं के लिये यह पुस्तक एक वरदान है। लेखक ने अत्यन्त सरल भाषा में सच्चे सुख का सच्चा उपाय इसमें बताया है। प्रभु की कृपा किस पर होती है और कैसे कर्म करके हम प्रभु के प्यारे हो सकते हैं इत्यादि विषय पुस्तक में दार्शनिक गहराईयों के साथ सरल रूप में वर्णित हैं। मूल्य प्रथम भाग ३), द्वितीय भाग ३)।

मिलने का पता—प्रकाशन मन्दिर, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गुरुकुल-समाचार

ऋतु – ऋतुराज की सवारी अपनी पूरी आन-बान शान से विराज रही है। प्रकृति में चहुँ ओर आमोद और उल्लास दृष्टि-गोचर हो रहा है। आम्रकुञ्ज मंजरियों से झुके जा रहे हैं। फरवरी के मध्य से ही पपीहे की पुकार और कोकिल का कलरव कुल के वनकुंजों को गुंजा रहा है। शहतूत की बहार है। लुकाट प्रारम्भ हो गए। प्रातः सायं खुशनुमा सर्दी हो जाती है। गेहूँ और चने की खेतियां अच्छी अवस्था में हैं। छात्रों का आरोग्य बहुत अच्छा है।

कुल जन्मोत्सव

विगत २२ फरवरी को कुलवासियों ने कुल का जन्मोत्सव बड़े आमोद और प्रेम के साथ मनाया। सुहावने प्रभात में सब कुलवासी कुल पताका की छाया में समवेत हुए। वाद्य-निर्घोष के साथ नवीन पताका फहराई गई। श्री आचार्य प्रियव्रत जी ने पताका फहराते हुए कुल के आदर्शों की ओर कुल वासियों का ध्यान आकृष्ट करते हुए एक छोटा सा प्रवचन किया। तदनन्तर वेद मन्दिर में कुलसभा हुई। जिसमें ब्रह्मचारियों और गुरुजनों ने इस वर्ष की अपनी सफलताओं और कार्य प्रवृत्तियों पर विचार करते हुए नए वर्ष की आशाएँ व आकांक्षाएं अभिव्यक्त कीं। सायंकाल विविध क्रीड़ाओं में सान्मुख्य खेले गए।

परीक्षाएं

महाविद्यालय विभाग की परीक्षाएं ६ मार्च से प्रारम्भ हो चुकी हैं और २५ मार्च तक समाप्त हो जायेंगी। विद्यालय विभाग की वार्षिक परीक्षाएं २५ मार्च से प्रारम्भ होंगी और एक सप्ताह तक चालू रहेंगी छात्रगण अध्ययन में खूब दत्तचित्त हैं।

प्रकाशन-विभाग

प्रकाशन विभाग का काम अच्छी गति से चल रहा है। फरवरी मास में 'सरल शब्द-रूपावली' प्रकाशित हुई है। संस्कृत भाषा के शिक्षार्थियों के लिए यह बहुत उपयोगी हैं। बाजार में उपलब्ध होने वाली रूपावलियों में यह सब से अच्छी कही जा सकती है। रूपों की भिन्नताएं तथा रूपविषयक सब प्रकार के नियम-उपनियम हिन्दी भाषा में बड़ी खूबी से समझाए गए हैं। साथ ही कारक विभक्तियों के अर्थ आदि भी समझाए गए हैं। इसका संपादन गुरुकुल के अध्यापक श्री पं० धर्मदेव जी वेदवाचस्पति ने किया है।

स्वर्गीय आचार्य रामदेव जी के भारतीय इतिहास का दूसरा खंड बहुत दिनों अप्राप्य हो रहा था उसकी सजिल्द नवीन आवृत्ति बहुत सुन्दर रूप में इस मास में प्रकट हो गई है।

अपने देश की कथा (डॉक्टर सत्यकेतु विद्यालंकार लिखित) का भी नवीन संशोधित तृतीय संस्करण इस मास प्रकाशित हो गया है। यह पुस्तक बनारस की संस्कृत परीक्षाओं में पाठ्य-पुस्तक के रूप में स्वीकृत हुई है।

विशेष अतिथि

उस दिन भारत सरकार के खाद्य मन्त्री माननीय श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी ने गुरुकुल की मुलाकात की। उनके साथ श्रीमती लीलावती मुन्शी भी थी। गुरुकुल शिक्षा नगर की परिक्रमा करके आप लोगों ने बड़ी प्रसन्नता और परितोष प्रकट किया।

गत मास में कुल में दो विदेशी यात्री पधारे। इनमें मालकम विली महोदय न्यूयार्क के समीप एक विद्यालय के प्रधानाध्यापक थे। आप भारतीय संस्कृति के विशेष प्रेमी हैं और न्यूयार्क के रामकृष्ण मिशन आश्रम से सम्बन्ध रखते हैं। दूसरे सज्जन मारकोस लोना बारोस चिली देश के एक पत्रकार थे। आप भारतीय वेष-भूषा धारण किए हुए थे।

★

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

स्वाध्याय के लिए चुनी हुई पुस्तकें

वैदिक साहित्य

वैदिक ब्रह्मचर्य-गीत	श्री अभय	२)
वैदिक विनय १, २, ३ भाग	,,	२।), २।), २।)
ब्राह्मण की गौ	,,	।।।)
वैदिक अध्यात्मविद्या	श्री भगवद्दत्त	१।)
वैदिक स्वप्न विज्ञान	,,	२)
वेदगीताञ्जली [वैदिक गीतियां]	श्री वेदव्रत	२)
वैदिक सूक्तियां	श्री रामनाथ	१।।)
वरुण की नौका [दो भाग]	श्री प्रियव्रत	६)
सोम-सरोवर, सजिल्द, अजिल्द	श्री चमूपति	२), १।)
अथर्ववेदीय मन्त्र-विद्या	श्री प्रियरत्न	१।।)

धार्मिक साहित्य

सन्ध्या रहस्य	श्री विश्वनाथ	२)
धर्मोपदेश १, २, ३ भाग	स्वा० श्रद्धानन्द	१।), १), १।।)
आत्ममीमांसा	श्री नन्दलाल	२)
प्रार्थनावली		।)
आर्यसमाज और विचार संसार	श्री चमूपति	।)
कविता मंजरी		।–)
कविता कुसुमाञ्जली		।)

स्वास्थ्य सम्बन्धी पुस्तकें

आहार भोजन की पूर्ण जानकारी के लिए		४)
लहसुन : प्याज	श्री रामेश बेदी	२।।)
शहद [शहद की पूरी जानकारी के लिए]	,,	३)
तुलसी [दूसरा परिवर्धित संस्करण]	,,	२)
सौंठ [तीसरा परिवर्धित संस्करण]	,,	१।।)
देहाती इलाज [दूसरा संस्करण]	,,	१)
मिर्च [काली, सफेद और लाल]	,,	४)
स्तूपनिर्माण कला सचित्र, सजिल्द		३)
प्रमेह, श्वास, अर्शरोग		१।)
जल चिकित्सा	श्री देवराज	१।।)

ऐतिहासिक ग्रन्थ

भारतवर्ष का इतिहास, तीन भाग	श्री रामदेव	७)
बृहत्तर भारत [सचित्र] सजिल्द, अजिल्द		७), ६)
अपने देश की कथा [दू० संस्क०]	सत्यकेतु	१।≈)
योगेश्वर कृष्ण	श्री चमूपति	४)
ऋषिदयानन्द का पत्र व्यवहार		।।:)
हैदराबाद आर्य सत्याग्रह के अनुभव		।।)
महावीर गेरीबाल्डी	श्री इन्द्र	१।)

संस्कृत साहित्य

बालनीति कथामाला [तीसरा संस्करण]		१)
नीतिशतक [संशोधित]		=)
साहित्य-दर्पण [संशोधित]		२)
संस्कृत प्रवेशिका, प्र० भाग [चौथा संस्क०]		।।।≈)
,, ,, २ भाग [तीसरा संस्करण]		।।=)
अष्टाध्यायी, सटीक, पूर्वार्द्ध	श्री गङ्गादत्त	७)
रघुवंश संशोधित [तीन सर्ग]		।)
साहित्य-सुधासंग्रह १, २, ३ बिन्दु		१।), १।), १।)
संस्कृत साहित्य पाठावली		=)

शालोपयोगी

विज्ञान प्रवेशिका २ य भाग	श्री यज्ञदत्त	१।)
गुणात्मक विश्लेषण [बी. एस. सी. के लिए]		२।।)
भाषा प्रवेशिका [वर्धा योजनानुसार]		।।।)
आर्यभाषा पाठावली [आठवां संस्करण]		१।)
ए गाइड टु दी स्टडी ऑफ संस्कृत ट्रांसलेशन एण्ड कम्पोजीशन, दूसरा संस्क०, ३३६ पृष्ठ		१)

पता—प्रकाशन मन्दिर, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

मुद्रक—श्री हरिवंश वेदालंकार। गुरुकुल मुद्रणालय, गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार।
प्रकाशक—मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी की

विशेष गुणदायक औषधियां

च्यवनप्राश स्पेशल

च्यवनप्राश में कैल्शियम व सोडियम आदि नवीन रासायनिक पदार्थ डालकर यह योग तय्यार किया गया है। खांसी, क्षय, निबलता दमा आदि में रामबाण है और शरीर वृद्धि के लिये उत्तम रसायन है।

मूल्य ३।) पाव।

सिद्ध मकरध्वज

स्वर्ण, कस्तूरी आदि बहुमूल्य वस्तुओं से तैयार किया गया है। सब प्रकार की निर्बलता को दूर करके शरीर में शक्ति व स्फूर्ति देता है व नया जीवन लाता है।

मूल्य ३॥) माशा, ४५) तोला।

बादाम पाक

बादाम, पिस्ता व अन्य गुणदायक वस्तुओं से तैयार किया गया है। स्वादिष्ट, बलवर्धक पाक है। मस्तिष्क व शारीरिक दुर्बलता को दूर कर शक्ति देता है।

मूल्य ४) पाव।

गुरुकुल चाय

जड़ी-बूटियों के योग से बनी देशी चाय है। सुख व स्वास्थ्य के लिये परिवार में इसका प्रयोग कीजिये। थकावट, हल्के बुखार, खांसी, जुकाम में तुरन्त लाभ दिखाती है।

मूल्य ।=) छटांक, १=) पाव।

बसन्त कुसुमाकर

सोना, चान्दी, मोती आदि से तैयार की गई यह औषधि बहुमूत्र और मधुमेह रोग में विशेष गुणकारी है। शरीर की नसों की निबलता को हटा कर समर्थ और बलवान बनाता है। मूल्य ३) माशा, ३६) तोला

चन्द्रप्रभा वटी

शिलाजीत, लोह भस्म, वंशलोचन आदि लाभदायक चीजों से तैयार की गई यह औषधि अनेक रोगों को दूर करके शरीर में नई शक्ति लाती है। खून की कमी, जिगर की निबलता, बवासीर तथा विशेषकर प्रमेह व स्वप्नदोष आदि में लाभदायक है।

मूल्य १) तोला, ४) छटांक।

महालोहादि रसायन

इसके सेवन से शरीर में नया रक्त पैदा होता है। प्रत्येक ऋतु में सेवन करने योग्य उत्तम औषधि है।

मूल्य ६) तोला।

द्राक्षासव

बलवर्धक, स्वादिष्ट पेय है। शारीरिक व मानसिक थकावट को दूर करके स्फूर्ति व शक्ति देता है।

मूल्य १।) पाव, २।) पौंड।

गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी (हरद्वार)

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

वर्ष ३ अङ्क ९

गुरुकुल-पत्रिका

वैशाख २००८

व्यवस्थापक
श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति
मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी।

सम्पादक
श्री सुखदेव दर्शन वाचस्पति
श्री रामेश बेदी आयुर्वेदालंकार।

इस अङ्क में

अगले अंकों में

सत्य की महिमा	श्री स्वामी व्रतानन्द
आयुर्यज्ञेन कल्पताम्	वैद्य श्री ठाकुरदत्त
श्री अरविन्द का महाप्रयाण	डॉक्टर इन्द्रसेन
हास्योपचार सर्वोत्तम है	प्रो० रामचरण महेन्द्र
गर्मियों में पित्त से रक्षा	श्री रामेश बेदी
चुराई हुई गौओं की खोज	श्री रामनाथ वेदालंकार

अन्य अनेक विश्रुत लेखकों की सांस्कृतिक, साहित्यिक व स्वास्थ्य सम्बन्धी रचनाएं।

मूल्य देश में ४) वार्षिक
विदेश में ६) वार्षिक

एक प्रति छः आने

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

ॐ

गुरुकुल-पत्रिका

[गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की मासिक पत्रिका]

संस्कृत-भाषा

श्री वासुदेवशरण अग्रवाल

संस्कृत स्वतन्त्र भारत की राष्ट्रभाषा थी। वह बहुत अंशों में आज भी हमारी धार्मिक भाषा बनी है। सचाई से देखा जाय, तो हमारे सांस्कृतिक विचारों की भाषा भी संस्कृत ही है। इस भाषा से हमारी आज की मातृभाषाएँ निकली हैं। संस्कृत की क्षीर-गंगा का जल आज भी उनमें मिल कर उन्हें उज्ज्वल कर रहा है। आज अपने ज्ञान की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए फिर हम संस्कृत के द्वार पर आए हैं। स्वराज्य-सम्पन्न देश में मनुष्य जिस प्रकार ऊंचे धरातल पर लोक-कल्याण, चरित्र-निर्माण, विश्व-प्रेम, कलात्मक संस्कृति एवं अध्यात्म जीवन की बात सोचते थे, उसका पञ्चायतनी देवमन्दिर संस्कृत-साहित्य है। उस ज्ञान-मन्दिर में प्रवेश करने का अपना जन्मसिद्ध अधिकार हमें प्राप्त करना चाहिए। राष्ट्र के नये संविधान में इसे मान लिया गया है। संविधान के इस अंश का महत्व अभी पूरी तरह हृदय में नहीं बैठा। हमारी वैज्ञानिक और सांस्कृतिक शब्दावली संस्कृतरूपी कल्प-वृक्ष पर पल्लवित होगी। संस्कृत की छाया में खड़े हो कर शब्दों के क्षेत्र में हम जो चाहें, प्राप्त कर सकते हैं। संस्कृत भाषा और संस्कृत-साहित्य से हमारे उठते हुए नये राष्ट्र का परिचय होना अत्यन्त आवश्यक है। हमारे विचारकों का ताना-बाना बहुत-कुछ संस्कृत-साहित्य में निहित सूत्रों से बना है, चाहे उस भाषा से आज हमारा साक्षात् परिचय छूटा हुआ हो।

संस्कृत-भाषा से हम प्रेम करने लगें, तो यह हमारे भीतर ही है। जिसे हिन्दी, गुजराती, मराठी, बंगला, पञ्जाबी, राजस्थानी आदि प्रान्तीय भाषाओं में से किसी एक भाषा का भी अच्छा ज्ञान है, पचहत्तर प्रतिशत व्यावहारिक संस्कृत से उसका परिचय अपने-आप हो चुका। यदि एक बार इस दृष्टिकोण से वह देखने लगे, तो उसे अपने भीतर तिल की ओट में संस्कृत का पहाड़ रखा हुआ मिलेगा। संस्कृत को क्लिष्ट कह कर टालते रहना केवल बुद्धि का आलस्य है। अनजान के लिए संस्कृत का व्याकरण जगल की तरह है; किन्तु एक बार यदि उसका नक्शा हम समझ लें, तो फिर सब सरल हो जाता है और भूल-भटक का डर नहीं रहता। संस्कृत-भाषा संसार की अन्य भाषाओं की तरह दो प्रकार के शब्दों से बनी है—संज्ञाओं से और धातुओं से।

शब्दों के रूपों की दृष्टि से संज्ञाओं को अलग और धातुओं को अलग जान लेना चाहिए। संस्कृत सीखने का सरल सूत्र यह है कि हर एक संज्ञा-शब्द के अन्तिम अक्षर को देखना चाहिए। मेरे अनुभव की बात है कि राम शब्दों में कितने अक्षर हैं, इस प्रश्न के

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

उत्तर में बी० ए० और शास्त्री तक के छात्रों ने दो अक्षर बताए। वस्तुतः स्वर और व्यंजन दोनों के अक्षरों को अलग-अलग करने से राम = र् + आ + म् + अ, अतएव राम में चार अक्षर हैं। अन्त का अक्षर 'अ' या अकार है, इसीलिए राम अकारांत शब्द कहलाता है। बालक, पंडित, चन्द्र, सूर्य, आदि देखने में भिन्न हैं; पर सब अकारान्त हैं, इसलिए व्याकरण की दृष्टि से सब के रूप एक-से होते हैं। अकेले राम शब्द को जब हम कण्ठ कर लेते हैं, तो संस्कृत-भाषा के सब अकारान्त शब्दों के रूप हमें तत्काल कण्ठस्थ हो जाते हैं। यह कितनी सरल युक्ति है। एक शब्द का पक्का अभ्यास कर लेने से यदि दस-बीस हज़ार शब्द भी उस तरह के हों, तो व्याकरण की दृष्टि से उसी दिन वे हमारे लिए सुबोध बन जाते हैं और राम की तरह उन के अर्थों का भी हमें निश्चयपूर्वक ज्ञान हो जाता है। यह सरल युक्ति संस्कृत सीखने के आधारशिला है। अ आ इ ई उ ऊ आदि गिनती के स्वर हैं। इन से अन्त होने वाले शब्दों के रूपों का एक बार अभ्यास कर लेना चाहिए। फिर जीवन भर के लिए वह पूंजी काम देती है।

संस्कृत की धातुओं की कथा इस प्रकार है। प्रत्येक भाषा में धातुएं होती हैं। हम चाहें तो अपनी-अपनी भाषा की धातुओं का संग्रह कर के उनका धातु-पाठ बना सकते हैं। पाणिनि ने साहित्य और बोलचाल की सभी धातुओं को लेकर धातु-पाठ के रूप में इकट्ठा किया। उसमें लगभग १९५० धातुएँ हैं। इन में लगभग दो-तिहाई धातुएँ सिर्फ बोलचाल के काम में आती थीं। साहित्य में प्रयुक्त धातुओं की संख्या लगभग चार सौ होगी। इनमें भी दो सौ ऐसी हैं, जिनका अधिक काम पड़ता है। इनमें तीन चौथाई ऐसी हैं, जिनसे निकली हुई धातुएँ प्रान्तीत भाषाओं में काम आती हैं, जैसे—हंसना, खाना, पीना, पढ़ना, चलना, चरना, आना, जाना, गाना इत्यादि, या उन से बने हुए कई-कई शब्द हमारी मातृभाषाओं में प्रचलित हैं। प्रत्येक प्रान्तीय बोली के धातु पाठ का संग्रह किया जाय, तो उसमें धातुओं की संख्या लगभग १२०० से १५०० तक होगी। इन में से दो तिहाई धातुएँ संस्कृत की परम्परा से हमें मिली हैं। हमारी भाषाओं के धातु-पाठ में विदेशी धातुएं नहीं खप सकीं। हिन्दी में अरबी-फारसी की धातुएँ एक दर्जन से अधिक न होंगी। विदेशी भाषाओं के संज्ञा-शब्द अपनी भाषाओं में लिए जा सकते हैं, धातुएँ और अव्यय नहीं। इस प्रकार संस्कृत के धातु पाठ को अपना समझ कर श्रद्धा और प्रेम से एक बार हमें देखना चाहिए। तब उसके साथ सम्बन्ध की निकटता हमें ज्ञात होगी। कहते हैं, लगभग एक हज़ार फ्रान्सीसी शब्द सीख लेने से अंग्रेज़ी जानने वाला फ्रान्सीसी भाषा पढ़ और समझ सकता है। संस्कृत और हमारी मातृ-भाषाओं के बीच में तो इतनी दूरी भी नहीं है।

रूपों की दृष्टि से संस्कृत के धातु-पाठ को यों समझना चाहिए। पाणिनि ने सब धातुओं को दस गणों में बांटा है। एक गण में जो धातुएँ हैं, उनके रूप एक जैसे चलते हैं। इसलिए शुरू में ही एक एक गण की एक-एक धातु को लेकर दस धातुओं के रूप कण्ठ कर लेने या समझ लेने चाहिएँ। इस से धातुओं के रूपों की समस्या संस्कृत का व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करने के इच्छुक व्यक्ति के लिए प्रायः हल हो जायगी। दस गणों में भी पहले भ्वादिगण में ही एक हज़ार दस धातुएँ हैं। उनके रूप में एक भू धातु या वद् धातु कण्ठ कर लेने से समझ में आ जाते हैं। भ्वादिगण, दिवादिगण (एक सौ चालीस धातु), तुदादिगण (एक सौ पचास धातु) और चुरादिगण (चार सौ दस धातु) की धातुओं के रूप परस्पर बहुत निकट हैं। इस प्रकार लगभग सत्रह

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

सौ धातुओं के रूप वर्तमान काल, आज्ञा, विधि लिङ्, अनद्यतनभूत, सामान्य भविष्य इन पांच लकारों में एक-से ही सामान्य नियमों से चलते हैं और वप् धातु के अनुसार उनके रूप भी प्रत्येक पाठक स्वयं दुहरा सकता है। इतनी सरल व्यवस्था पाणिनि-व्याकरण के कारण संस्कृत-भाषा में उपलब्ध होती है। लकारों के नाम भी बारहखड़ी के अनुसार हैं, जैसे—लट्, लिट्, लुट्, लृट्, लेट्, लोट्; लङ्, लिङ्, लुङ्, लङ्।

संस्कृत में धातुओं से प्रत्यय लगा कर जो शब्द बनते हैं, उन्हें 'कृदन्त' कहते हैं, जैसे पठ् धातु से पाठ, पठन, पाठक आदि। संज्ञा-शब्दों से प्रत्यय लगा कर जो विशेषण या दूसरे शब्द बनते हैं, उन्हें तद्धित कहते हैं, जैसे वर्ष से वार्षिक; वसन्त से वासन्ती। पाठकों को चाहिए कि इस भेद को एक बार अच्छी तरह पकड़ लें और फिर जो शब्द सामने आवे, उसको पहचान निकालने का प्रयत्न करें कि वह कृदन्त है या तद्धित। अगर कृदन्त है, तो किस धातु से वह बना है। जिस धातु से जो शब्द बनता है, उस धातु का अर्थ शब्द के अर्थ में रहता ही है। तद्धित शब्दों की बनावट और अर्थ अभ्यास से अधिक समझ में आने लगते हैं। उनके लिए विशेष चिन्ता की आवश्यकता नहीं। कृदन्त-प्रत्ययों का सरगम बारहखड़ी के अनुसार बना है। मूल प्रत्यय 'त्' है, उसी में स्वर मिला कर क्रम से ये प्रत्यय बन जाते हैं—

(१) अ+त्=अत्। वर्तमान काल का प्रत्यय। जैसे पठ्+अत्=पठत् (पढ़ता हुआ) गम् (गच्छ्) +अत्=गच्छत् (जाता हुआ)।

(२) त्+अ=त। भूतकाल का प्रत्यय; कर्मवाच्य। जैसे गम्+त=गत (गया)। दृश्+त=दृष्ट (देखा गया)।

(३) तवत्। भूतकाल का प्रत्यय, कर्तृवाच्य। जैसे दृश्+तवत्=दृष्टवान=उसने देखा।

(४) तव्य=करना चाहिए। जैसे कृ+तव्य=कर्तव्य। दृश्+तव्य=द्रष्टव्य। मन्+तव्य।

(५) त्+इ=ति। भाववाचक संज्ञा। जैसे गम्+ति=गति। दृश्+ति=दृष्टि। मन्+ति=मति।

(६) त्+उ=तुम्। करने को, जाने को इत्यादि। जैसे गम+तुम्=गन्तुम्। कृ+तुम्=कर्तुम्।

(७) त्+वा=त्वा। पूर्वकालिक क्रिया. करके। जैसे कृ+त्वा=कृत्वा।

(८) त्+ऋ=तृ। कार्य करने वाला। जैसे कृ+तृ= कर्तृ, कर्त्ता। हृ+तृ=हर्ता। दा+तृ=दातृ, दाता।

त्वा और तुम् लगा कर जो शब्द बनते हैं, वे अव्यय होते हैं और उनके रूप नहीं बदलते। बाकी के रूप स्वरान्त संज्ञा-शब्दों की तरह होते हैं। जैसे गत अकारान्त, गति इकारान्त, गन्तृ ऋकारान्त और गतवत् (ग+तवत्) तकारान्त हैं, और उनके रूप उसी प्रकार की संज्ञाओं की भांति होते हैं। यह सारी प्रक्रिया सरल और सुबोध है।

हिन्दी अथवा अपनी मातृभाषा के द्वारा जो शब्द हमारे सामने आवें, उनके स्वरूप को उसी तरह पहचान कर मन में रख लेने से हम देखेंगे कि अनेक शब्दों के शुद्ध रूपों से हमारा परिचय हो जायगा और व्याकरण की उलझन भी न उठानी पड़ेगी। उदाहरण के लिए, गम् धातु से ति प्रत्यय जोड़ते हुए म् का लोप हो जाता है। गति शब्द से सब परिचित हैं, इसलिए इस शब्द में धातु के मकार के लोप को स्वीकार कर लेना चाहिए। उसी वज़न पर नकारान्त मकारान्त धातुओं से बनने वाले दूसरे शब्दों को भी—जैसे रति, नति, मति—सरलता से जाना जा सकता है। इन प्रत्ययों को धातुओं में जोड़ने पर अनेक प्रकार के नये शब्दों का मंजर हमारे साथ लग जाता है।

संस्कृत में दो तरह के शब्द और हैं—एक उपसर्ग, दूसरे अव्यय। उपसर्ग धातुओं से पहले जोड़े

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

जाते हैं और उनके अर्थों में विशेषता उत्पन्न करते हैं, जैसे गति शब्द से आगति, प्रगति, अनुगति, संगति, सुगति, दुर्गति आदि। हृ-धातु से प्रहार, अपहार, संहार, अनुहार, निहार, विहार, आहार, प्रतिहार, परिहार। अनेक शब्दों में दो या तीन उपसर्ग भी जुड़े हुए मिलेंगे, जैसे उप+आ+हार=उपहार। अति+आ+चार=अत्याचार ; निर्+आ+हार=निराहार ; सम+आ+चार=समाचार। उपसर्ग गिनती के बाईस हैं—[१] प्र, [२] परा, [३] अप, [४] सम्, [५] अनु, [६] अव, [७] [illegible] [८] निर, [९] दुस्, [१०] दुर्, [११] वि, [१२] आ, [१३] नि, [१४] अधि, [१५] अपि, [१६] अति, [१७] सु, [१८] उद्, [१९] अभि, [२०] प्रति, [२१] परि, (२२) उप। इन्हें कंठ कर लेना चाहिए। अनेक धातुओं में उपसर्ग और प्रत्यय जोड़ कर शब्दों का अखूट भंडार सामने आ जाता है। अपने अद्भुत गुण के कारण संस्कृत-भाषा संसार की सब भाषाओं में विलक्षण है। उपसर्ग और प्रत्यय इस भाषा की प्राणशक्ति हैं, जिन के द्वारा असंख्य अर्थों को प्रकट करने वाले शब्द सरलता से बनाए गए और आगे भी बनते रहेंगे। उपसर्गों का भाषा के उपर भारी ऋण है।

अव्यय देश, काल, प्रकार, हर्ष, शोक आदि प्रकट करने के लिए प्रत्येक भाषा में होते हैं और उसी प्रकार संस्कृत में भी हैं। गिनती में वे थोड़े ही होते हैं। एक बार उन्हें जान लेना चाहिए। इस प्रकार संस्कृत-भाषा के व्याकरण का ठाठ बना है। इसकी रूपरेखा मन में स्पष्ट हो जाने से व्याकरण की भूल भुलैयों में भटकना नहीं पड़ता। मनुष्य बहुत-कुछ अपना रास्ता पा लेता है। संस्कृत-भाषा व्याकरण के नियमों से बन्धी है। यही उसका जीवन है। नियम न हों, तो भाषा का परिचय प्राप्त करना क्लिष्ट हो जाता है। संसार की पुरानी भाषाएं, जिनके व्याकरण नहीं हैं, आज दुरूह हो गई हैं। उनमें बहुत सी बातें अटकलपच्चू जानी जाती हैं। किन्तु संस्कृत दो-ढाई हजार वर्ष पहले जिस प्रकार समझी जाती थी, वैसे ही आज भी थोड़े प्रयत्न से हम उसे सीख सकते हैं। सचमुच भगवान् पाणिनि ने संस्कृत-भाषा को नियमबद्ध करके उसे अमर बना दिया। भूतकाल में संस्कृत से जितना राष्ट्र का हित हुआ, उससे भी अधिक हित भविष्य में उसके द्वारा होने वाला है। हमारे साहित्य के विकास की बागडोर संस्कृत से प्राप्त होने वाली शब्दावली के हाथों में है। विज्ञान, कला, संस्कृति और साहित्य सबके विकास के लिए संस्कृत-भाषा कामधेनु गऊ के समान सिद्ध होगी। अतएव जिस पाठ्य-प्रणाली में संस्कृत को स्थान नहीं दिया गया, वह अधूरी रहेगी। विद्यालयों में दसवीं श्रेणी तक यदि ऊपर बताए हुए सरल-सुबोध ढंग से संस्कृत की शिक्षा दे दी जाय, तो जन्म-भर के लिए विद्यार्थी के भाषा-विषयक ज्ञान की नींव पक्की हो जायगी।

★

वरुण की नौका—लेखक श्री प्रियव्रत, आचार्य, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय। कर्मफल, पुण्य, पाप, कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य की इस पुस्तक में मीमांसा है। राजा वरुण प्रभु की आंखें सब जगह पर हैं। कर्मफल विज्ञान के जिज्ञासुओं के लिये यह पुस्तक एक वरदान है। लेखक ने अत्यन्त सरल भाषा में सच्चे सुख का सच्चा उपाय इसमें बताया है। प्रभु की कृपा किस पर होती है और कैसे कर्म करके हम प्रभु के प्यारे हो सकते हैं इत्यादि विषय पुस्तक में दार्शनिक गहराईयों के साथ सरल रूप में वर्णित हैं। मूल्य प्रथम भाग ३), द्वितीय भाग ३)।

मिलने का पता—प्रकाशन मन्दिर, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

भारत की भाषा-लिपि-विषयक स्थिति

श्री जयचन्द्र विद्यालंकार

भाषा अनैक्य का प्रश्न

भारत में सैकड़ों भाषाएँ होने की बात पर बल देने से अंग्रेज साम्राज्यवादी कभी न चूकते थे। सर जार्ज ग्रियर्सन ने भारत की भाषा-पर्यवेक्षा करके कुल १७६ भाषाएं और ५४४ बोलियां या विभाषाएं गिनाई। गोरखपुर और झांसी प्रदेशों में उन्होंने दो भिन्न भाषाएँ बताई हैं। जब उनके ध्यान में यह लाया गया कि गोरखपुर और झांसी की बोलियों का अन्तर उतने से अधिक नहीं है जितना इङ्गलैंड में डेवन और ऐबर्डीन की बोलियों का, तब उन्होंने कहा कि इंगलैंड की भाषा जांच उन्होंने नहीं की, पर यदि निरुक्तिशास्त्रीय जांच से डेवन और ऐबर्डीन में विभिन्न भाषाएं होना सिद्ध हो तो उन्हें वैसा कहने में आपत्ति न होगी। ग्रियर्सन की १७६ भाषाओं में से ११३ हिमालय और पूर्वी-सीमा की किरात भाषाएँ हैं, जिनमें से प्रत्येक के औसत न बोलने वाले १७ हज़ार हैं। दूसरी तरफ १७ आर्यावर्ती भाषाएँ हैं, जिनके बोलने वालों की सख्या २२ करोड़ ६० लाख है। भारत की बोलियां और भाषाएँ अपने औसत विस्तार क्षेत्र और बोलने वालों की संख्या में दूसरे देशों की भाषाओं से भिन्न नहीं हैं। उलटा यहां यदि कोई विशेषताएँ हैं तो वे ऐक्यसूचक हैं। 'कोस कोस पर बदले पानी, चार कोस पर बानी' यह नियम केवल भारत पर नहीं, सारे संसार पर लागू होता है।

चार भाषा वंश

पठान प्रदेश सहित अखण्डित उत्तर भारत, दक्षिण भारत के उत्तरी अंश और सिंहल में सब मिला कर १२ आर्य भाषाएँ पढ़ने-लिखने में चलती हैं। भाषा विज्ञानी उनके अतिरिक्त ३-४ भाषाएँ और गिनते हैं। इन आर्यावर्ती (इन्दो-आर्यन) भाषाओं के बोलने वाले अखण्डित भारत की जन संख्या में ७६·१४ फी सदी थे। दक्खिन भारत के शेष अंश में चार लिखित द्राविड भाषाएँ हैं जिनके बोलने वाले भारत की कुल जन संख्या के २०·६ फी सदी थे। भारत के उत्तरी और पूरबी छोर पर तिब्बत और बरमा की भाषाओं से मिलती कुछ बोलियां हैं। तिब्बत-बरमा में एक ही नृवंश के लोग रहते हैं जिन्हें हमारे पुरखा किरात कहते थे। वे चीन-किरात वंश का एक स्कन्ध हैं। भारत की कुल जन संख्या में १·७ फी सदी लोग किरातभाषी थे। बिहार, बंगाल, उड़ीसा की सीमा तथा खासी जयन्तिया पहाड़ियों में संथाल, मुन्डा, शबर आदि लोग हैं। इनके भाषा समूह को मुंड या निषाद कहा जाता है। भारत और चीन के विशाल प्रायद्वीप में किसी समय इसी वंश के लोग रहते थे; सुवर्ण द्वीपों (इन्दोनीशिया) में तथा उनके आगे प्रशान्त महासागर के दूर दूर तक के द्वीपों में भी उसी वंश के लोग हैं। संसार के आग्नेय (दक्खिन-पूरबी) कोण में बसे होने के कारण इस वंश का नाम एक जर्मन विद्वान् ने आग्नेय (Austric) रक्खा। भारत में आग्नेय-भाषी कुल जन-संख्या के १·३ फी सदी हैं। यों भारत की बड़ी भाषाएं डेढ़ दर्जन के लगभग हैं और उनमें से एक एक का क्षेत्र युरोप के भाषाक्षेत्रों के प्रायः समान है।

भारतीय भाषाओं का मूल्याङ्कन

भगवान बुद्ध के युग में कुरुक्षेत्र से राजमहल और हिमालय से सातपुड़ा तक का देश मध्यदेश कहलाता था। बाद में कई बार कुरुक्षेत्र से प्रयाग तक ही मध्य-देश गिना जाता रहा। उसके पूरब, दक्खिन, पच्छिम और उत्तर-पच्छिम के विभाग क्रमशः प्राच्यदेश, दक्षिणापथ, पश्चिम देश और उत्तरापथ थे। भारत की जनता और भाषाओं के विभाजन को और समूचे भारतीय इतिहास को समझने के लिए यह विभाजन अत्यन्त महत्त्व का है।

बुद्ध के समय जो भारत का मध्यदेश था, आज-

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

कल उसी में पढ़ने-लिखने की भाषा हिन्दी है। भाषा विज्ञानियों के अनुसार इसमें चार भाषाएँ हैं—हिन्दी, राजस्थानी, कोशली और बिहारी। हिन्दी की पांच बोलियां हैं—खड़ी बोली, ब्रजभाषा, कन्नौजी, बुन्देली और बाँगरू। खड़ी बोली गंगा-जमना-दोआब के उपरले भाग अर्थात् बुलन्दशहर, मेरठ, मुजफ्फरनगर, सहारनपुर जिलों और देहरादून के दक्खिनी अंश की, उसके पूरब रुहेलखण्ड की तथा उसके पच्छिम (खरड़ और रोपड़ तहसीलों से रहित) अम्बाला जिले की बोली है। खड़ी बोली के दक्खिन में ब्रजभाषा का क्षेत्र लगा है, अर्थात्— अलीगढ़, एटा, मैनपुरी, मथुरा, आगरा, भरतपुर आदि। ब्रज के के दक्खिन पूरब कन्नौजी का— इटावा, फर्रुखाबाद, कानपुर। खड़ी बोली के पश्चिम करनाल ज़िले और रोहतक-हिसार ज़िलों के अंश को लेकर घाघर नदी तक का बाँगर (सूखी ऊँची भूमि) बाँगरू बोली का क्षेत्र है। ब्रज और कनौजी के दक्खिन जमना से ताप्ती तक बुन्देली का क्षेत्र फैला है।

कोशली की कहने को तीन पर वस्तुत: दो बोलियां हैं। वे तीन हैं, अवधी, बघेली, छत्तीसगढ़ी। अवधी और बघेली एक ही बोली के स्थान-भेद से दो नाम हैं। बिहारी की भी तीन बोलियां हैं—भोजपुरी, मगही, मैथिली। राजस्थानी की छः बोलियां हैं। प्राचीन प्राच्य देश में बिहार को छोड़ कर आज तीन भाषाएँ हैं— बँगला, असमिया और उड़िया। प्राचीन दक्षिणापथ में दो आर्य भाषाएँ हैं—मराठी और सिंहली। पश्चिम देश में गुजराती और सिन्धी। उत्तर-पच्छिम में पंजाबी कश्मीरी और पश्तो, तथा उत्तर में पहाड़ी या पर्बतिया।

राष्ट्रभाषा

भाषाविज्ञान की दृष्टि से हिन्दी आर्यावर्त्त (अर्थात् भारतीय आर्य-भाषा-क्षेत्र) की केन्द्रीय भाषा है और उसकी भी केन्द्रीय बोली ब्रजभाषा। खड़ी बोली ब्रज-भाषा का पंजाबी में ढलता रूप है। जब कोई गुजराती बंगाली से मिलता है या पहाड़ी मराठे से तो वे स्वभावत: हिन्दी में बोलने का यत्न करते हैं। यों तो सभी आर्यावर्ती भाषाओं की भीतरी एकता ऐसी है कि 'बंगाल से पंजाब तक ..तथा राजपूताना, मध्य-भारत और गुजरात में भी जनता का समूचा शब्द-कोश जिसमें साधारण बर्ताव के लगभग सब शब्द हैं, उच्चारणभेदों को छोड़ कर एक ही हैं' (ग्रियर्सन, 'भारत भूमि' पृष्ठ ३२४ पर उद्धृत)।

इतिहास से प्रकट हुआ है कि आज जो खड़ी बोली और ब्रजभाषा के क्षेत्र हैं, उनमें से किसी एक की बोली वैदिक काल से आज तक सदा ही इस प्रकार भारत के विभिन्न भाषाक्षेत्रों के बीच साधारण विनिमय की भाषा बनती रही है। ऋग्वेद की छान्दस संस्कृत, फिर लौकिक संस्कृत, पालि, शौरसेनी प्राकृत, शौरसेन अपभ्रंश, जो अपने अपने समय भारत की राष्ट्रभाषा का काम देती रहीं, सब क्रमशः इसी प्रदेश की बोलियां थीं। जैसा कि मनमोहन घोष ने दिखाया है, महाराष्ट्री प्राकृत भी इसी प्रदेश की थी, पर उसके नाम की व्याख्या नहीं की जा सकी। मेरा विचार है कि उसे महाराष्ट्री उसी अर्थ में कहा जाता था जिस अर्थ में आज हम हिन्दी को राष्ट्रभाषा कहते हैं।

भाषाक्षेत्र = प्राचीन जनपद

आज जिस क्षेत्र में खड़ी बोली बोली जाती है वह प्राचीन कुरु और उत्तर पञ्चाल है, कनौजी का क्षेत्र पुराना दक्षिण पञ्चाल, ब्रजभाषा का शूरसेन, बाँगरू का कुरुक्षेत्र, राजस्थानी की मेवाती बोली का मत्स्य इत्यादि। अफगानिस्तान और पामीर सहित समूचे भारत में आज जो भाषाओं और बोलयों के क्षेत्र हैं, वे भारत के प्राचीन जनपदों से मिलते हैं, जिस से यह सूचित होता है कि वे वैदिक काल और महाजनपद काल में 'जनों' (कबीलों) के बसने से निश्चित हुए थे।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

नागरी लिपि

हिन्दी, मराठी, पर्वतिया (तथा राजस्थानी, कोशली और मैथिली भी जब लिखी जायें तब) एक ही देवनागरी लिपि में लिखी जाती हैं। यों हिन्दी जितने क्षेत्र में पढ़ी-लिखी जाती है, नागरी उससे अधिक विस्तृत क्षेत्र में।

ब्राह्मी वर्णमाला

नागरी, बंगला, गुजराती, उड़िया आदि लिपियां देखने में कुछ कुछ भिन्न हैं, पर उन सब की वर्णमाला एक है—अर्थात् स्वरों और व्यंजनों की ध्वनियां, उन का क्रम, उन्हें मिलाने की शैली सब एक। उस वर्णमाला में न केवल सिंहली सहित सब आर्यावर्त्ती भाषाएँ लिखी जाती हैं, प्रत्युत चार द्राविड भाषाएँ—तेलुगु, कन्नड, तमिल, मलयालम—भी, तथा भारत के बाहर चीनकिरात वंश की तिब्बती, बरमी और स्यामी भी, एवं आग्नेय वंश की हिन्द-चीन की कम्बुजी तथा सुवर्णद्वीपों की कई भाषाएँ भी। पहले यह वर्णमाला अफगानिस्तान और मध्य एशिया में भी चलती थी और समूचे सुवर्णद्वीपों और फिलिपीन में भी। इस वर्णमाला का नाम ब्रामी है। ब्राह्मी का पहले एक ही रूप था, पर छठी शताब्दी के बाद जब हमारे राष्ट्र की प्रगतिशीलता क्षीण होने से भारत और बृहत्तर भारत के विभिन्न प्रदेशों में लोगों का परस्पर-संचार घटता गया, तब स्थानीय लेखन-सामग्री की भिन्नता से अनेक लिपियां पैदा हो गईं।

ब्राह्मी की वैज्ञानिकता

इस वर्णमाला में ध्वनियों का विश्लेषण और उनका 'स्थान' 'प्रयत्न' के अनुसार वर्गीकरण अत्यन्त पूर्ण है, जिससे आंख के द्वारा प्रत्येक शब्द का ठीक उच्चारण विदित हो जाता है। इस लिए जैसा कि आइज़क टेलर ने कहा था, "यह मानव इतिहास की सबसे पूर्ण वैज्ञानिक ईजाद है' और जैसा कि अर्स्किन पेरी ने कहा था, "इसका मूल्य इस बात से जाना जाता है कि हिन्दू बच्चे ज्यों ही प्रत्येक अक्षर का मूल्य जान चुकते हैं कि वे सीधे पढ़ने से समर्थ हो जाते हैं, फलतः युरोप में जिस बात को सीखने में प्रायः बरसों लग जाते हैं वह भारत में तीन महीनों में ही आ जाती है।"

नई परिभाषाएं

आर्यावर्त्ती भाषाओं में संस्कृत के जो शब्द रूपान्तरित हो गये हैं वे तद्भव कहलाते हैं, और जो संस्कृत रूप में ही बर्ते जाते हैं वे तत्सम। इन भाषाओं को जब कभी किन्हीं नये विचारों को व्यक्त करने के लिए नई परिभाषाएँ टकसालने की आवश्यकता होती है, ये प्रायः संस्कृत की खान से नये तत्सम या उधार-शब्द ले लेती हैं। संस्कृत तत्सम शब्द द्राविड भाषाओं, बरमी, स्यामी और सुवर्णद्वीपी भाषाओं में भी खूब चलते हैं और नये शब्दों के लिए वे भाषाएँ भी संस्कृत की खान से खुल कर लेती हैं।

उर्दू

सत्रहवीं शताब्दी में खड़ी बोली क्षेत्र से दक्खिन गये हुए कुलीन मुस्लिम वर्ग ने उस बोली को फारसी-अरबी लिपि में लिखना शुरू किया। उसमें फ़ारसी-अरबी शब्द कभी कभी अधिक रहते ही थे। वही उर्दू कहलाई। आगे चल कर, विशेष कर अंग्रेजी ज़माने में उर्दू में फ़ारसी-अरबी तत्सम शब्दों की मात्रा बढ़ती गई। हिन्दी और उर्दू एक ही भाषा की दो शैलियां हैं, पर लिपि और तत्सम शब्दों के कारण उनकी भिन्नता है।

उर्दू और अन्य भारतीय भाषाएं

जिन अंशों में हिन्दी की भारत और बृहत्तर

(शेष पृष्ठ ८ पर)

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

राष्ट्रभाषा और राष्ट्रीय शिक्षण

श्री देवराज विद्यावाचस्पति

जर्मन लोगों ने जब फ्रांस पर विजय प्राप्त की तब घोषणा कर दी कि अगले दिन से शिक्षणालयों में पढ़ाई जर्मन भाषा में होगी, फ्रांसीसी भाषा में नहीं। लड़के जब अपनी पाठशाला में गये तो उदास थे। उनके अध्यापक पाठ आरम्भ नहीं करते परन्तु अपने विद्यार्थियों को उपदेश देते हैं कि आज हम पराधीन हैं, हमें आज्ञा हुई है कि जर्मन भाषा में पढ़ाई होगी, फ्रैंच भाषा में नहीं। अध्यापक ने कहा कि किसी देश को सर्वदा आधीन रखने के लिए सबसे अधिक आवश्यक है कि वहां की भाषा में ज्ञान का देना लेना बन्द कर दिया जाय. आज वैसा ही हो रहा है। वहां के अध्यापक अपने होनहार विद्यार्थियों से आशा प्रकट करते हैं कि ज्ञान शून्य रहना अधिक अच्छा है. परन्तु विदेशी भाषा के द्वारा ज्ञान ग्रहण करना अच्छा नहीं। घरों के अन्दर माता पिताओं ने भी अपने बच्चों के हृदयों में स्वदेशी भाषा के प्रति महत्वपूर्ण भावों को भर दिया। परिणाम यह हुआ कि शिक्षणालयों में पाठ बन्द रहे, जर्मन भाषा को किसी ने नहीं अपनाया। अन्त को फ्रांस की विजय हुई और शिक्षणालयों में सब काम फ्रैंच भाषा में होने लगा।

इस स्वतन्त्र भारत के लोग जो अंग्रेजी पढ़-लिख कर अपने आपको विद्वान् समझे बैठे हैं वस्तुतः उनके मुकाबले के भारतीय गौरव के विनाशक इस ससार में ढूंढने से भी कठिनता से मिलेंगे। अपने देश में सम्पूर्ण शिक्षण राष्ट्रभाषा वा प्रान्तीय भाषा में ही होना चाहिए और अंग्रेजी भाषा का बहिष्कार करना चाहिए।

इस भारत की राष्ट्रभाषा और प्रान्तीय भाषाओं का आधार संस्कृत-भाषा है। जिन भाषाओं का आधार इतनी सम्पन्न भाषा हो वे भाषायें उत्कर्ष को क्यों नहीं प्राप्त होंगी। परन्तु इसके लिये थोड़ा श्रम उठाना पड़ेगा। जो लोग अंग्रेजी और प्रांतीय भाषा दोनों में निष्णात हैं, वे जिस विषय के अच्छे ज्ञाता हों उस विषय की एक या दो पुस्तकों का सुन्दर अनुवाद किसी भारतीय भाषा में कर डालें। पारिभाषिक शब्दों की रचना संस्कृत भाषा द्वारा करें। जिन शब्दों के लिये कोई शब्द न मिले वहां वहीं अंग्रेजी का शब्द रखें। इस प्रकार कार्य हो सकेगा। करने से सब कुछ होगा न करने से कुछ नहीं होगा।

(पृष्ठ ७ का शेष)

भारत की दूसरी सब भाषाओं से समानता है, ठीक उन्हीं अंशों में उर्दू ने उन से नाता तोड़ लिया है।

फारसी लिपि के दांव

फ़ारसी-अरबी लिपि अत्यन्त अवैज्ञानिक, अपूर्ण और दुष्पाठ्य है। इसी से शिक्षा-प्रसार में वह बड़ी बाधक है। जन-साधारण के लिए उसके दुरूह होने से अंग्रेजी ज़माने में जब शासन के निचले स्तर में उसका प्रयोग होता रहा, वह निचले दर्जे के अमलों के लिए जनता के पीडन का अच्छा साधन रही। भारतीय नामों को उसमें लिख कर ठीक पढ़ना लगभग असम्भव है, इस कारण भारत के प्राचीन इतिहास और संस्कृति-विषयक वाङ्मय के लिए वह अत्यन्त अनुपयुक्त है।

★

★

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

धूम्रपान से हानियां और बचने के उपाय

श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

(आजकल अनेकों दुर्व्यसनों में धूम्रपान का स्थान अत्यन्त प्रमुख है। इसकी ख्याति पारिवारिक भी हो चुकी है। कई स्थानों में तो बाप और बेटे साथ-साथ अर्थात् एक दूसरे के सामने धूम्रपान किया करते हैं। इससे हमारे युवकों को कितनी हानियां पहुँच रहीं हैं; वे स्वयं इसकी कल्पना नहीं कर पाते। माया प्रबल है। अत: किसी शारीरिक रोग का कारण धूम्रपान पर स्थापित न कर किसी और दिशा की ओर आकूल किया जाता है। यदि ऐसी ही अवस्था रहीं तो हमारे देश की आयु का क्षय और भी अधिक होता जायगा, तथा अनेकों रोग उत्पन्न होते जायेंगे। वैसे अभी भी रोगों की कमी नहीं हैं। प्रत्येक भारतीय व्यक्ति प्रसव-भूमि के उपरान्त श्मशान भूमि तक जाने की अवधि को किसी न किसी रोग से व्याप्त देखता है। सम्भवतः उन लोगों को अंगुलियों में गिना जा सकेगा, जो स्वस्थ और नीरोग देह को प्राप्त किए हों। नीचे के विस्तार-पूर्वक-विवेचन से पाठक स्वयं जान जायेंगे कि इसमें कितनी हानियां अन्तर्निहित हैं और किस प्रकार इसका निवारण होना चाहिए)।

सिगरेट, बीड़ी, तम्बाकू ही धूम्रपान का पर्याय है। यह आजकल हमारे देश में अत्यधिक रूप से प्रचलित हैं। हमने तो यहां तक देखा है, कि कुछ लोग भांग, गांजा, चरस तक की सीमा को पार कर देते हैं और उस पर भी कहते हैं, कि 'पेट दर्द के लिए, शीत निवारण के लिए यह अत्यन्त लाभदायक हैं।' आपने भी देखा होगा कि कोई बाबा लोग भांग और गांजा पीते हैं और यह विवरण देते हैं कि 'समाधि का अवतरण शीघ्र ही होता है।' मुझे तो नहीं मालूम कि कौन से शास्त्र में इसका विधान बतलाया गया है। परन्तु इतना तो अवश्य मालूम है कि इस लत से मैंने अपनी दो ही आंखों से सहस्रों को दूषित होते देखा है।

यह तो सत्य है कि यह मादक पदार्थ यदि सेवन किए जाते हैं, तो मनुष्य के मस्तिष्क में ही प्रभावोत्पादन करते हैं, क्योंकि शरीर-विज्ञान के अनुसार और हमारे प्राणायाम विज्ञान के अनुसार प्राण का प्रथम शिबिर अथवा प्रथम विश्राम मस्तिष्क ही है। अनुभव से हमें यह भी मालूम हुआ है कि मस्तिष्क के उसी स्थान पर ही चक्षुकेन्द्र भी है, जो पारस्परिक-संयोग से ज्योति और बुद्धि और जीवन और तद्गत चेतना का स्फुरण निरन्तरतः करता रहता है। जब कभी आप श्वास को रोकते हैं, तो आप अनुभव करेंगे कि आपका मस्तिष्क भावशून्य हो गया और नेत्रों के समक्ष तारे नाच रहे हैं। तथा आपका हृदय भी तीव्रत्व को प्राप्त होता जा रहा है। यदि आपकी श्वास बलात्कार रोका जाए तो आप अवश्यमेव किंचित् क्षणों में अपने को निश्चेतन होता हुआ अनुभव करेंगे। यह मानसिक प्रभाव की विपुलता है, जिसका समस्त शरीर पर व्याप्तिकरण है। अत: जब हम धूम्रपान करते है, तो यह निश्चय है कि जो पीला पदार्थ धूम्रपान करने वालों के हाथों में लगा रहता है, वह अवश्य अन्दर भी तो उपलिप्त होगा ही और जो धूंआ और जो वासना बाहर है, उसका कोई प्रधान अंश अन्दर भी तो जायगा ही। और हम यह भी अवश्य कहेंगे कि शरीर के उस अत्यन्त सुकोमल भाग में यह शक्ति नहीं कि वह इन अप्राकृतिक प्रवेशकों का स्थानान्तरण स्वीकार कर सके। मस्तिष्क चक्षुनाड़ी और अन्य आंतरिक-जीवन-केन्द्रों की प्राकृतिक मधुरता इस प्रकार निर्मित की गई है कि बाहरी शरीर के किसी भी भाग में सुई चुभते ही समस्त शरीर साक्षीत्व को प्राप्त करता है। क्या आपके हाथों पर मक्खी के बैठते ही आपको समस्त शरीर पर इसका स्फुरण नहीं ज्ञात होता है?

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

इसी प्रकार प्रत्येक रूप का विश्लेषण करना चाहिए। जहां तक आज तक हमारे विज्ञानवेत्ताओं ने जान पाया है, हम यही निश्चय कहेंगे कि धूम्रपान, किसी भी कोटि का क्यों न हो, किसी भी महान् कार्य के लिए क्यों न हो, परन्तु शरीर, मन और विचारों के लिए हानिकर है ही।

सन् १९३० की बात है। मैं कैलाश सरोवर की यात्रा पर किसी सम्भ्रान्त रियासती महाराज के साथ जा रहा था। अल्मोड़ा में हमारा साक्षात्कार कई ऐसे बाबा लोगों से हुआ, जो विश्राम केन्द्र पर पहुँचते ही आसन लगा लेते थे और चिलम पर चिलम पीते जाते थे। समग्र रात्रि यही करते करते न जाने उन्होंने कितनी बार चिलम भरी और अर्द्ध रात्रि के उपरान्त उनकी निश्चेतना अश्लीलता में परिवर्तित हो गई और लगे वे गन्दी-गन्दी कहानियां कहने। यहां तक कि श्री राम और सीता, श्रीकृष्ण और राधा, श्री शंकर और उमा को भी उन्होंने अपने उस अमानुषिक विषय का नायक बनाना प्रारम्भ किया। वे इस प्रकार बेसुध थे कि उन्हें यह भ्रान्ति ही हो गई कि वे किसी महाराजा के शिविर के अन्दर हैं और इस प्रकार का व्यवहार उनके लिये योग्य नहीं। न वे लोग सो ही सकते थे, क्योंकि उनकी नाड़ियां इस सीमा तक उत्तेजित हो गईं थीं, जिसको शान्त करने के लिए कोई उपाय ही नहीं हो सकता था।

दूसरे दिन जब यात्रा प्रस्थित हुई तो महाराज ने स्वयं उन लोगों से पूछा कि 'आप पिछली रात इतना क्यों चिल्ला रहे थे,' तो उन लोगों का उत्तर सन्तोषजनक नहीं था। उन्होंने अपने कार्य की ही महत्ता को स्वीकृत कराते हुए, यह सिद्ध किया कि तत्कथित आचार द्वारा ही वे अपने शम्भु को मिल सकेंगे। क्या ही आश्चर्य ? उन लोगों को यह स्मरण नहीं रहा कि वे लोग गत रात्रि को किस प्रकार के अश्लील वाक्यों का प्रयोग कर रहे थे। उनके मानस प्रदेश में एक अनुभूति थी कि वे गत रात्रि समाधि में थे, न कि गन्दी २ बातें करते हुए। साथ-साथ उन्होंने यह भी कहा कि जो लोग इसका सेवन नहीं करते वे मुक्ति और समाधि के भागी नहीं हो सकते। महाराजा ने मेरी ओर दृष्टिपात किया और हंस पड़े।

उपरोक्त दृष्टान्त को सत्य ही जानना और इसका सार यही है, किस प्रकार मनुष्य अपने व्यसनों की सार्थकता को सिद्ध करने के लिए अपना-अपना विवाद उपस्थित करता है। परन्तु ध्यानपूर्वक किसी को यह विचार करने का अवसर नहीं मिला कि कितनी बुराइयां इसमें हैं। नित्य संचित वीर्य का कितना अंश नित्यप्रति स्वाहा होता है, इसका किसी को ध्यान नहीं। वे तो समझते हैं, कि केवल मात्र यौन-सम्बन्ध से ही वीर्य का नाश होता है। यौन-सम्बन्धादि मात्र के सम्बन्धों से वीर्य का पतन होता है, अर्थात् मनुष्य की शक्ति स्वरूपाकार होकर, अपने केन्द्र से पतित होती है। परन्तु तदुक्त दुर्गुणों के व्यवहरण से वीर्य का स्वरूपक पतन नहीं—अपितु वीर्यनाश होता है, अर्थात् वीर्य की शक्ति का वाष्पीकरण सा होता है,—अथवा कई बार तो यही भी देखा गया है, कि वीर्य का संचय यथापूर्व था, परन्तु उसमें शक्ति की मात्रा नहीं ही थी। अतः आप अधिकतर आजकल लोगों को देखेंगे कि थोड़ी-थोड़ी बातों में क्रोधित हो जाते हैं। यह वीर्यनाश का प्रथम लक्षण है।

इसके अतिरिक्त—इन व्यसनों में मनुष्य को दासता स्वीकार कराने का प्राबल्य है। ऐसे लोगों को शीघ्र ही अपना दास बनाया जा सकता है। आप दो चिलम पिलाइये और महा-अधम और जघन्य कार्य भी करा लीजिए। वे आनन्द और उत्साह से करेंगे।

अतः यह स्पष्ट निश्चित हो सकता है कि नशा पीने वाला देश अवश्यमेव राष्ट्रीय उन्नति नहीं कर सकता। साधारणतः देखा भी जायगा तो उस देश की चरित्र-

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

हीनता और दुर्गुण परायणता अत्यधिक मात्रा में होगी। ऐसे देश के जनसाधारण के विचारों को जिस ओर चाहो, उसी ओर पल्टा जा सकता है, क्योंकि उनकी अपनी कोई स्थिर बुद्धि (नीति) नहीं होती। परिणाम यह होता है कि उनका नैतिक-पतन राष्ट्रीय पतन का स्वरूप धारण कर लेता है। आज कोई सत्ता है, तो वे कल को किसी अन्य सत्ता को स्वीकार कर पूर्वस्थित-सत्ता को विनष्ट करने का विचार करेंगे। यदि आज एक शासन को उन्होंने ग्रहण किया है तो कल किसी अन्य शासन से प्रभावित होकर वे उसी के राग अलापने लग जायेंगे। हम लोगों में इस गुण का प्राबल्य है। हम लोग किसी भी शासन-पद्धति से प्रभावित हो जाते हैं, क्योंकि हमारा कोई निश्चित विचार नहीं है।

पाकिटमारी, चोरी की जननी के नाते इसका दुष्प्राबल्य जनता के लिये अहितकर ही हुआ है। बचपन में ही बालक जब इस दुर्व्यसन के लक्ष्य हो जाते हैं, तो वे किसी न किसी प्रकार इसकी पूर्ति करते ही हैं। पहिले अपने पिता की जेब से चोरी करना इस का श्रीगणेश है। और जब वे आयुप्राप्त हो जाते हैं, तो उनके मस्तिष्क पर इसका प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता। अन्यान्य दुश्चरित्रों का अवतरण होता जाता है। क्योंकि ऐसा व्यक्ति अपने चरित्र को, अपनी नैतिकता को स्वतन्त्र नहीं रख सकता। दूसरों की देखा देखी वह भी उस कार्य को करने पर सन्नद्ध हो जाता है, चाहे उसका परिणाम विनाशकारी ही क्यों न हो? क्रमशः इस एक ही दुर्गति से मनुष्य के जीवन में कई ऐसे विनाशकारी तत्वों का उद्दीपन होता है, जो उस के जीवन की सभी अवस्थाओं को दुःखमय कर देतीं हैं। आर्थिक सङ्कट के कारण वह अपने जीवन को सुखी नहीं बना पाता। अपनी आर्थिक-समस्या की पूर्ति करने के लिये वह कई ऐसे अभ्यासों का अवलम्बन करता है, जो चरित्रता की दृष्टि से प्रशंसनीय नहीं हो सकते। स्वभावतः चोरी और हत्या का श्रीगणेश होता है। यदि उनके घर में पर्याप्त धन हुआ तो वे विलास में ही तन्मय रहते हैं, अतः इस प्रकार अपने जीवन को होम करते रहते हैं। यदि ऐसा नहीं हुआ तो किसी न किसी प्रकार तो वे अपनी लत को सन्तुष्ट करते ही हैं। फलतः उनका जीवन आधि-व्याधियों से ग्रस्त ही रहता है। अजीर्ण, सिरदर्द, निर्बलता तो निश्चय ही है, साथ साथ कई ऐसे संक्रामक रोगों से वे आक्रान्त हो जाते हैं, जो यथास्थिति के अनुसार ही आते हैं। दमा, क्षय, कुष्ट रोगों से ही हम इनके परिणाम का पता पा लेते हैं। कोई कोई लोग इन परिणामों को अपने भाग्य के सिर मढ़ देते हैं, तो उचित नहीं! परन्तु इतना भी है, उनके तत्कथित कर्मों के फलस्वरूप ही वे रोग उनको ग्रस्त करते रहते हैं। मोतियाबिन्दु, हृत्कम्पत, आमाशय का वर्म्म तथा तथाविध कई रोग इस विष के कारण हमारे देशवासियों को दुःखी करते रहते हैं।" पाश्चात्यों को ही देखिये। देखने में हमें भ्रम ही होता है, परन्तु विदेश में चिकित्सक रहने के नाते मैं इस को स्पष्ट करना चाहता हूँ कि वे लोग हमसे कहीं अधिक इन दुष्परिणामों से आक्रान्त रहते हैं। परन्तु 'दूर के ढोल सदा सुहावने' ही लगते हैं, इस उक्ति के अनुसार हम उनकी यथास्थिति का परिचय नहीं पा सकते। पाश्चात्य देशवासियों के रोगों और उनके चारित्रिक दुर्गुणों का विवेचन एक असम्भव सी कथा हो जाती है। सच पूछा जाय तो हम कहेंगे कि हमारे देश में प्रचलित असभ्य-कृतियों और रोगों और कुरीतियों का आदि-स्थान पश्चिम ही है। प्राचीनकाल का भारत बली और सच्चरित्र और धर्म-कर्मपरायण था केवल मात्र इन्हीं दुर्गुणों के न होने से।

"जहां चाह है, वहां राह भी निश्चत ही है।" यह हमारे शास्त्रों की उक्ति है। कई साधकों ने इसका प्रयोग भी किया है। और यह भी सिद्ध है कि वे सफल उतरे। यदि आप धूम्रपान से उत्पन्न होने वाले रोगों से मुक्त होना चाहें तो यही एक सर्वप्रथम राह है।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

यह कहना उचित नहीं कि "कितना प्रयत्न करते रहने पर भी यह लत नहीं छूटती ।" यह तो हमारी नपुंसकता का अथवा दुर्बलता का परिचय देना है। दृढ़ निश्चय से आप क्या नहीं कर सकते ? जिस प्रकार आप किसी व्यक्ति पर अप्रसन्न होने पर उसके नाश का संकल्प करते हैं और उसमें सफलता पाने का श्रेय लेते हैं, उसी प्रकार इसके दमन की भी चेष्टा करनी होगी। हमारे परिचित कई एक वकील साहब भी हैं, जो गत १५ सालों से इसके शिकार बने हुए थे—परन्तु एक दिन मेरे कहने से उन्होंने प्रण कर लिया कि कार्यं वा साधयामि शरीरं वा पातयामि । अर्थात् ? या तो धूम्र पान ही त्याग कर रहूँगा चाहे प्राण भी चले जांय सत्यतः यह औषधि अचूक सिद्ध हुई।

अतः सर्वप्रथम साधक को अपने मन में विचार सहित इसके अवगुणों का विचार करना होगा और जैसे आप शत्रु को देखते हैं । सदा उसी प्रतिपक्ष-भावना से देखना होगा, यदि वैसा आपने किया तो यह विश्वाससहित कहा जा सकता है कि आप सहसा ही इस व्यसन से मुक्ति पा जायेंगे। संकल्प की उपासना करनी चाहिए और दृढ़ निश्चयी बनना चाहिये। जिस प्रकार अपने जीवन के अनेक कार्यों का संकल्प करते हैं, उसी दृढ़ता से इसका भी संकल्प कीजिये। 'आज और पी लें कल को तो इसका त्याग ही करेंगे'—ऐसा कहना एक दम अनुचित है। उसी क्षण, जबकि इस के त्याग का विचार आये, हमें दत्त-चित हो कटिबद्ध हो जाना चाहिये। यही सफलता की कुंजी है।

दूसरे कुसंगति का एक दम त्याग कर दो। जहां इन वस्तुओं का उपयोग होता हो, वहां जाना ही बन्द कर दो। क्योंकि ऐसे स्थानों में जाकर आपकी वासना को बल मिलता है और आप अपने निश्चय को पूर्ण नहीं कर सकते । ऐसे लोगों के साथ जाना ही नहीं, जो आपको इन अवगुणों के लिए प्रोत्साहित करें। होटलों में बैठना भी आपके निश्चय को निर्बल करता पड़ेगा । अपने जीवन का एक क्रम बनाने से आप को ज्ञात होगा कि आप सफल होते जा रहे हैं।

आप यह नहीं समझना कि इस अवगुण से मुक्ति पाना असम्भव है। मैं आपको विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि आप अवश्यमेव इसका त्याग कर पायेंगे, यदि आप सत्यपरायण होकर, संकल्प करें कि इसका निवारण मनुष्य जीवन के सुख के लिए अनिवार्य है। जैसा पाश्चात्य चिकित्सक ने कहा कि सभी रोगों का मूल भोजन का न पचना और मल-रोध है, उसी प्रकार मैं भी कहना चाहता हूं कि भोजन के न पचने और मलरोध होने का कारण हमारे यह अवगुण ही हैं, जो कालक्रम से हमारे शरीर को विषाक्त कर देते हैं।

यदि आपको मन्दाग्नि का रोग हो तो नित्यप्रति व्यायाम करने से और योगसाधनों का अभ्यास करने से आप अपनी—शरीर-विषयक—त्रुटियों का परिहार कर सकेंगे । सात्विकता और पुष्टिकारक तथा नियमित दिनचर्या आपको इस योग्य बना देंगे कि आप इस की गन्ध से भागेंगे। यह कोई मनगढ़न्त बात नहीं, अपितु अनुभूत सत्य है। जिसका उपक्रमण कई सत्यनिष्ठ-व्यक्ति कर रहे हैं। नित्यप्रति इनके गुण-दोषों का विवेचन कीजिये और श्री ईश्वर से यह प्रार्थना कीजिये कि आप इस रोग से मुक्त होने की शक्ति प्राप्त करें।

इसके अतिरिक्त यह बताना आवश्यक होगा कि इस गुरुतर-कार्य के भविष्य का उत्तर दायित्व भी हमारे देश के प्रत्येक गृहपितामह को ग्रहण करना होगा। उनको यह ध्यान होगा कि यदि वे किसी-

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

विदेशों में आम भेजना

श्री रामेश बेदी

भारत का एकाधिकार

भारत में आम की खेती मानवीय स्मृति के पहिले से हो रही है। फलों की खेती किये जाने की विद्या के विद्वानों और ऐतिहासिकों का विश्वास है कि भारत इस फल का आदि घर है। इसकी प्राचीनता का यह प्रमाण काफी है कि इस देश में आम की पांच सौ से अधिक किस्में बोई जा रही हैं। आम की पैदावार भारत का नैसर्गिक एकाधिकार है। इस एकाधिकार का कारण यह है कि जल वायु और भूमि की अवस्थायें इस स्वादु फल को पैदा करने में विशेषरूप से अनुकूल है।

पवित्र फल

यह फल और वृक्ष इस देश में इतना पवित्र समझा जाता है कि इसके पत्ते और फूल बहुत से धार्मिक कार्यों में प्रयुक्त होते हैं। वसन्त में आम की मंजरी विष्णु को भेंट की जाती है और शिवरात्रि पर शिव जी के ऊपर चढ़ाई जाती है। शिव पुराण में आम के फलों को देवता पर समर्पित करने का बड़ा महत्व लिखा है। आम के अलावा बहुत कम फल ऐसे होंगे जो हमारे देश के लोकगीतों और धार्मिक उत्सवों में आम की तरह घुल मिल गये हों। भारतीय कवि तो जैसे आम पर ही लट्टू थे।

भारत का सर्वश्रेष्ठ फल

अकबर के शासन काल में दरभंगा के पास लाख बाग में आम के एक लाख पौदे लगाये गये थे। तुगलक शासकों के काल में अगणित पौधे रोपे गये थे। इस से इस फल की लोकप्रियता प्रगट होती है। करीब छः सौ साल पहिले मुहम्मद तुगलक शाह के समय एक पर्शियन कवि अमीर खुसरो ने कहा था "आम बगीचे का अभिमान है। भारत के चुने हुए फलों में यह सर्वोत्कृष्ट है। दूसरे फलों को तो पकने पर खाने से सन्तुष्ट होती है। परन्तु आम विकास की हर अवस्था में अच्छा होता है।" पापीनो लिखता है—"समशीतोष्ण उत्तरी अमेरिका में सेब का जो महत्व समझा जाता है उसकी तुलना में गरम देशों में रहने वाले करोड़ों आदमियों के लिये आम कहीं अधिक महत्व की चीज है।"

विदेशों को क्यों भेजा जाय?

आम भारत में एक विशेष मौसम में पैदा होते हैं, और यह मौसम थोड़े समय तक ही रहता है। आम पड़े रहने से आठ दस दिन में खराब हो जाते हैं। इस लिये आमों की बहुतायत के दिनों में सारी पैदावार का ठीक-ठीक उपयोग हो नहीं पाता। विदेशों में आम नहीं पैदा होता और वहां इसकी मांग है। यदि इसे विदेशों में भेजने के तरीके मालूम कर लिये जांय तो हमारा देश इस देहाती धन्धे से बहुत धन कमा सकता है।

ग्यारह करोड़ मन पैदावार

खेती की पैदावार को बाजार में समुचित रूप से खपाने का आयोजन करने वाले भारत सरकार के एग्रिकल्चर मार्केटिंग एडवाइजर की रिपोर्ट के अनुसार भारत में सब प्रकार के फलों की खेती के लिये कुल क्षेत्र १६ लाख एकड़ से कुछ अधिक है। इस सूची में आम का नम्बर सब से ऊपर है, और यह ६६७३४० एकड़ जमीन में बोया जा रहा है। एक अन्य सूचना के अनुसार यह ग्यारह लाख एकड़ से अधिक भूमि में लगाया जाता है। एक एकड़ में औसत पचास वृक्ष गिने जांय और प्रति वृक्ष से हर साल दो मन पैदावार लगाई जाय तो भारत में आम की पैदावार ग्यारह करोड़ मन जा पहुँचती है।

अल्फान्जो सबसे बढ़िया किस्म

बम्बई के कृषि विभाग ने आमों को बाहर भेजने

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

की कोशिशें की हैं। बाहर भेजने के लिये अल्फान्जो सब से अच्छी किस्म साबित हुई है। क्योंकि यह पैक करने, रखने और निर्यात के प्रभाव से सबसे कम प्रभावित होता है।

फलों का चुनाव

पूरा पकने से पहिले फलों का रंग जब जतूनी होता है तब फल तोड़ कर इङ्गलैंड भेजने के लिये सर्वथा अच्छे रहते हैं। यह बहुत गौर से देख लेना चाहिये कि विदेश भेजने के लिये जो फल चुने गये हों वे रोग और कीड़ों के आक्रमण से अथवा दाग धब्बे या किसी भी प्रकार की चोट से रहित हैं।

ग्रेड बनाना

बम्बई से जो आम इंगलैंड भेजे गये थे, कीड़ों और रोगों के विशेषज्ञों एण्ट् प्रोलो जिस्ट और पैथोलोजिस्ट ने उनकी परीक्षा कर ली थी। उसके बाद उनके दो ग्रेड बनाये गये थे। १. विशेष और २. व्यापारी। अट्ठाईस तोला या इससे अधिक भार के फलों को पहले ग्रेड में रखा गया था। दूसरे ग्रेड में फलों को भार के अनुसार दो श्रेणियों में बांट दिया गया था। चौबीस से अट्ठाईस तोला तक भार के फलों को पहली श्रेणी में और बीस से चौबीस तोला तक के फलों को दूसरी श्रेणी में रखा गया।

पैक करना

ग्रेड बनाये हुए फलों को सिम्बल की लकड़ी से बने विशेष प्रकार के बक्सों में बन्द किया गया। प्रत्येक बक्स इतना ही बड़ा था कि इसमें एक दर्जन फलों की एक तह आ जाय। एक तह में दो पंक्तियां रखी जाती थीं। दोनों पंक्तियों के बीच में लकड़ी की एक पट्टी रखी होती थी। जिससे बक्से के दो खाने बन जाते थे। ये बक्से ऐसे बनाये गये थे, जिनमें हवा आने के लिये विशेष प्रबन्ध था। बक्स में रखने से पहिले प्रत्येक आम टिशू पेपर में लपेट दिया जाता था। बीच के खाली स्थान में लकड़ी की बहुत बढ़िया किस्म की छीलन भरा जाता था। इससे फल अपनी जगह से हिलडुल नहीं सकते थे। ऐसे पांच बक्सों को बांध कर एक पैकट बनाया जाता था। यह पैकेट इंगलैंड भेजने के लिये जहाजों पर लाद दिये जाते थे।

जहाज की यात्रा

यह देखा गया है कि जहाज के ठंडे कमरों में रखे हुए फलों के मुकाबले में यह बहुत अच्छी हालत में पहुँचे। तीन चार सप्ताह तक आमों को अच्छी अवस्था में रखे रहने देने के लिये चालीस या पैंतालीस फार्नहाइट तापमान काफी अच्छा रहता है। बम्बई से लन्दन तक पहुँचने में स्टीमर को इतना समय लग जाता है। इंगलैंड में पहुँच कर अल्फान्जो आम सवा आठ आने का एक के हिसाब से बिक जाता है।

खाद्योजों का अच्छा स्रोत

बम्बई सरकार के परीक्षणों में जब आम इंगलैंड पहुँचे तो उनमें कुछ फल लन्दन के साम्राज्य पटल इम्पायर मार्केटिंग बोर्ड को परामर्श और सुझाव के लिये भेंट कर दिये गये। कुल फल खाद्योजों के विटामिन की खोज के लिये लन्दन की लिस्टर इंस्टीट्यूट को भेज दिये गये थे। खाद्योजों का अध्ययन बताता है कि अल्फान्जो आमों में खाद्योज ए और सी बहुत अधिक होते हैं और विश्वास किया जाता है कि सुप्रसिद्ध ब्रोले सेवों की तुलना में भी बहुत अधिक होते हैं। इस तथ्य के कारण योरोपियन बाजार के लिये यह एक नया पुष्टिदायक फल है, इसी लिये डेन्मार्क जर्मनी, फ्रान्स आदि में भी इसकी मांग पैदा हो गई थ।

व्यापारियों के लिये निर्देश

बम्बई सरकार के परीक्षणों को हम संक्षेप में कह सकते हैं कि इन प्रयत्नों में देखा गया है। आम का फल यदि ठंडे कमरों में रखा जाय तो इंगलैंड अच्छी हालत में पहुँच सकता है। डेक पर फल खराब हो जाता है। चौबीस से अट्ठाईस तोला भर के फलों

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

की कीमत अधिक मिलती है। हवाई जहाज के द्वारा भेजे जांय तो खर्च इतना बढ़ जाता है कि इस सौदे में मुनाफा लेने की कोई गुञ्जाइश नहीं रहती। समुद्र के सीधे मार्ग द्वारा भेजने से लाभ रहता है। अभी इस बात की आवश्यकता है कि लम्बी यात्रा से स्थान स्थान पर आमों की परीक्षा करके उनके खराब होने के कारणों की पूर्ण वैज्ञानिक खोज की जाय। इंगलैंड में पहुँच कर आम एक सप्ताह तक दुकानों में ठीक अवस्था में रह सकता है। इस लिये भेजने वाले व्यापारियों को इंगलैंड में उनकी सन्तोषजनक खपत का प्रबन्ध पहिले से ही कर लेना चाहिये। इंगलैंड में पहुँचते ही इसे जितना सभव हो जल्दी बिक जाना चाहिये। एक बात और यह ध्यान देने योग्य है कि पश्चिम में अधिक लोगों के लिये यह नया फल है। इसलिये जिन स्थानों पर इसे खाने के लिये लोगों का झुकाव नहीं है, वहां इसके लिये स्वाद पैदा करना पड़ेगा। सामान्यतया यह फल सब जगह बहुत पसन्द किया जाता है। इस लिये व्यापारियों को चाहिये कि बाहर के देशों को भेजने के लिये वे बहुत बढ़िया किस्म के फलों को ही चुनने का विशेष ध्यान रखें। जिससे इस फल की मांग उत्तरोत्तर बढ़ती चली जाय।

विशेषज्ञों के लिये नया क्षेत्र

भारत में फलों का व्यवसाय पहले पूर्णतया अशिक्षित लोगों के हाथों में रहा है। इसलिये हमारे देश का यह बड़ा भारी व्यवसाय सदा उपेक्षित रहा है। विश्वविद्यालयों से कृषि और उद्योग धन्धों की शिक्षा प्राप्त करके जो नवयुवक निकल रहे हों, उनका ध्यान फल संरक्षण जैसे महत्वपूर्ण विषय की ओर गया है। जिसके परिणामस्वरूप हम फल संरक्षण के कुछ कारखानों को सफलता पूर्वक काम करता हुआ देखते हैं। इन शिक्षित युवकों का ध्यान हम आमों के बाहर भेजने के नये धन्धे की ओर खींचना चाहेंगे। जिससे बढ़िया किस्म के आमों की खेती को प्रोत्साहन मिले और हमारी राष्ट्रीय संपत्ति बढ़े।

★

गुप्तकालीन मूर्त्तिकला

[२० पृष्ठ का शेष]

देवता की। इन मूर्तियों से तत्कालीन वेश भूषा का अच्छा परिचय प्राप्त होता है। चन्द्रगुप्त प्रथम और कुमारगुप्त प्रथम के वे सिक्के जिन में राजा-रानी साथ-साथ दिखाये गये हैं। समुद्रगुप्त तथा कुमारगुप्त के वीणांकित एवं अश्वमेधवाले सिक्के तथा चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य और कुमारगुप्त के सिंहवधांकित सिक्के विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

गुप्तकालीन मूर्तिकला की कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं जिन्हें ध्यान में रखना आवश्यक है। इस काल की मूर्तियां प्रायः पतले आकार की मिलती हैं तथा उन के चेहरे चौड़े या स्थूल न हो कर लम्बे मिलते हैं। अंगों में एक प्रकार का लोच रहता है तथा खड़े होने के ढंग में आकर्षक भंगिमा। वस्त्र भूषण सूक्ष्म रहते हैं, जो बोझीले न होकर केवल मूर्ति की सौन्दर्य-वृद्धि में योग देते हैं। इस काल की मूर्तियों में अंग-प्रत्यंगों का निखरा हुआ संयमित रूप देखने को मिलता है। और सब से बड़ी बात रहती है—अभीष्ट भावों को व्यक्त करने की पूर्ण क्षमता, जो कलाकृतियों को अमरत्व प्रदान करती है।

★ ★

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी के ५१ वें वार्षिकोत्सव पर

श्री आनन्द स्वामी जी महाराज

का

दीक्षान्त-अभिभाषण

दीक्षान्त समारोह के इस शुभ अवसर पर आप सब लोग यहां पर इकट्ठे हुए हैं। जो नये स्नातक गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी से पूरी शिक्षा ग्रहण करने के पश्चात् जीवन के नये क्षेत्र में प्रविष्ट हो रहे हैं—उन के लिये तमाम नर नारी यह शुभ कामना करें कि परमात्मा इन्हें अपने कार्य में सफल बनावे। नये स्नातकों का जीवन के नये क्षेत्र में स्वागत करते हुए कुछ समझ में नहीं आता कि किन शब्दों में स्वागत किया जाय। आज जिस परिस्थिति से गुजर रहे हैं वह बड़ी भयंकर है, चारों ओर हा-हाकार मचा हुआ है और कोई नहीं कह सकता कि कल क्या हो जायगा। मायावाद और भोगवाद के दावानल में लगभग संसार के प्राणी जल रहे हैं, ऐसी परिस्थिति में आपका स्वागत किन शब्दों में करूं। परन्तु इस का अभिप्राय यह नहीं है कि आप निराश हो जायें। संसार में किसी भी वस्तु के लिए न्यूनता नहीं है और यदि गत दो तीन सौ वर्षों की अपेक्षा आज की अवस्था देखी जाय तो जीवन को सुखी बनाने की सामग्री बहुत अधिक बढ़ गई है। दुनिया में सोने की मात्रा गत दो सौ वर्षों की अपेक्षा अधिक है। कपड़े की ओर देखे तो पहले इतनी मिलें और कारखाने कहां थे? इसी प्रकार अन्न उपजाने के लिये साइबेरिया जैसे स्थानों में भी अन्न पैदा हो चुका है और भारत की बंजर भूमि भी आबाद हो चुकी है परन्तु देखा यह जा रहा है, अन्न संकट और वस्त्र संकट बढ़ ही रहा है। सोना और धन अधिक होते हुए भी संसार के लोग निर्धनता की घोषणा करते रहते हैं, मुझे तो इस का एक मात्र कारण यही प्रतीत होता है कि तृष्णा बहुत अधिक बढ़ गई है। वेद भगवान के अन्दर एक मन्त्र है—

'अपां मध्ये तस्थिवांसं तृष्णाऽ
विदज्जरितारं मृड: सुक्षत्र मृडय।'

इस के अर्थ यह है कि पानी के बीचोबीच में खड़ा हूँ और प्यास से मर रहा हूँ। भगवान् मेरी रक्षा करो। ठीक आज संसार की यही अवस्था है। सुख-सम्पत्ति के सारे साधनों के जलों के बीच खड़े होकर के भी चिल्ला रहे हैं कि हमारे पास कुछ नहीं रहा तृष्णा की यह आग तो कदापि बुझ नहीं सकती और इस आग को बढ़ाने वाला आधुनिक काल का भोगवाद और मायावाद है और यह पाश्चात्य शिक्षा, पाश्चात्य सभ्यता तथा पाश्चात्य विचारधारा की देन है। गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी का दीक्षान्त समारोह दूसरी यूनिवर्सिटियों के कन्वोकेशन से बहुत भिन्न है क्योंकि गुरुकुल कांगड़ी और इस जैसी दूसरी संस्थायें एक ऐसी विचार धारा अपने विद्यार्थियों में प्रवाहित करती है जिस से यह तृष्णा बढ़ने न पाये अपितु कम होती चली जावे। एक व्यक्ति के सुधार या उद्धार तथा किसी जाति के उत्थान या राष्ट्र के निर्माण के लिये सब से प्रथम साधन यह है कि एक ऐसी ऐसी विचार धारा चलाई जाय जो उन में मानवता की भावनाओं को जागृत कर दे। गुरुकुल शिक्षा प्रणाली में यही विशेषता है और इसी विशेष विचारधारा का प्रभाव था कि दुनिया ने अपने जन्मकाल से लेकर आज से छः हजार वर्ष पूर्व तक बड़े सुख चैन से जीवन

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

अध्यापकों, शिक्षा संस्था के सञ्चालकों तथा विश्वविद्यालयों के स्नातकों को चाहिए कि देशभक्ति प्रकट करें और भारतीय भाषाओं को समृद्ध बनावें। कहा जाता है कि अंग्रेज़ी भाषा में विद्यमान ग्रन्थों की तुलना में भारतीय भाषा में पुस्तकें नहीं हैं। यदि यह बात ठीक है तो इस दोष को दूर करने का दायित्व उन्हीं लोगों पर है जो ऐसी शिकायत करते हैं। ये लोग अपने स्वभाव पर बल नहीं डाल सकते और राष्ट्रहित के लिए कुछ करते नहीं हैं। भारत के निर्धन बालकों पर बल डालते हैं और उन्हें बलात् अंग्रेजी पढ़ने के लिए बाधित करते हैं। ये लोग यदि स्वयं आत्म संयम पूर्वक अनुवाद आदि का काम नहीं कर सकते तो इनका कोई अधिकार नहीं है कि दूसरे लोगों को अंग्रेजी पढ़ने के लिए बाधित करें। होना यह चाहिए कि भारतीय छात्र संघ ऐसे अंग्रेजी पढ़े लिखों का बहिष्कार करे। भारतीय भाषाओं में ही पढ़ाने के लिए पढ़ाने वालों को बाध्य किया जाय। यदि ऐसा किया जाय तो एक वर्ष के अन्दर अन्दर अंग्रेजी की सब अच्छी अच्छी पुस्तकों का भाषान्तर छप कर तैयार हो जाय। जितने छापेखाने हैं वे उन अनुवाद की हुई पुस्तकों को वा उनके समकक्ष नई लिखी पुस्तकों को छापने का अपना विशेष काम समझें। इस के अतिरिक्त जब तक विदेशी भाषा को हम अपनायेंगे, तब तक विदेशी भाषा में लिखित पुस्तकों की हमें चाह रहेगी। अपनी भारतीय भाषाओं के लिए हम अल्प मनोयोग देंगे। विदेशी भाषा की पुस्तकें खरीदने के लिए देश का रुपया व्यर्थ ही विदेशों में जायगा या विदेशी पूंजी से चलती फर्मों में जायगा, इससे देश को आर्थिक हानि होगी। इस आर्थिक हानि से बचने के लिए हमें सावधान रहना चाहिये। ग्रन्थ लेखक महोदय यदि किसी उपयोगी विदेशी शब्द का अर्थ लिख कर हमारे पास भेज देंगे तो हमें पूर्ण आशा है कि हम उस विदेशी शब्द के लिए भारतीय शब्द दे सकेंगे।

भारतीय कार्य कुशल विद्वानों की सेवा में हमारा नम्र निवेदन है कि वे भारतीय विश्वविद्यालयों की ओर विशेष ध्यान दें। अहमदाबाद में गुजरात यूनिवर्सिटी की स्थापना हुई है। यहां शिक्षण आदि का सब काम गुजराती भाषा में होगा ऐसी दृढ़ धारणा गुजराती भाषा भाषी विद्वानों की है। पूना में एक यूनीवर्सिटी की स्थापना हो चुकी है। इसमें सब काम मराठी भाषा में ही होना चाहिये। दोनों यूनीवर्सिटियों को मिलाने वाली भाषा संस्कृत और राष्ट्रभाषा रहनी चाहिए।

★

गुरुकुल कांगड़ी में बनी

फ़िनाइल-स्याही-वार्निश

तथा अन्य उपयोगी वस्तुएँ काम में लावें

स्कूलों, कालेजों, हस्पतालों व स्वास्थ्य विभागों में वर्षों से प्रयुक्त हो रही हैं।

अपने नगर की एजेन्सी के लिए लिखें—

गुरुकुल कैमिकल इण्डस्ट्रीज़

गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

आत्म-हत्याएं क्यों ?

प्रो० रामचरण महेन्द्र एम. ए.

आधुनिक युग में मरने वाले व्यक्तियों की संख्या निरन्तर वृद्धि पर है। कम होते होते मनुष्य अल्पायु होता जा रहा है। भारत के व्यक्तियों की औसत आयु ३० वर्ष है जब कि जापान की ४०, रूस ४५, फ्रांस की ५६, कैनाडा ६०, अमेरिका ६२, नार्वे ६३, न्यूजीलैंड की ६७ है। आज का जीवन इतना अप्राकृतिक हो चला है कि उस से आयु क्षीण होती जा रही है। जीवन तो अक्षय है, उसका उत्तरोत्तर विकास हो सकता है किन्तु हम स्वयं अपनी गलतियों और मूर्खताओं से जीवन रज्जु को काट देते हैं।

अल्पायु का प्रधान कारण है समय से 'पूर्व अपनी शक्तियों का अपव्यय करना।' शक्तियां यदि उसी अनुपात में बढ़ती रहें जिस अनुपात में व्यय होती हैं, तब तो स्वास्थ्य बना रह सकता है, किन्तु यदि उन्हें फजूल खर्च किया जाय, तो कब तक जीवन रह सकता है? शक्तियों का अपव्यय हम अनेक विधियों से करते हैं। कैसे खेद का विषय है कि लोग जानते तक नहीं कि वे शक्तियों का अपव्यय कर रहे हैं और वे लगातार मूर्खता भरे अन्धकार में अपना सर्वनाश किया करते हैं। जीवन शक्ति का अपव्यय मुख्यतः निम्न प्रकार से होता है—

अब्रह्मचर्य

अनियमित विहार से आयु क्षीण होना निश्चित है। वीर्य ही शक्ति है, जीवन धन है। एक बार व्यय हो जाने पर वह बाज़ार में खरीदा नहीं जा सकता। सम्पूर्ण शरीर जब पूरा तरह कार्य करता है तब ४० ग्रास आहार से एक बूंद रक्त और ४० बूंद रक्त से एक बूंद वीर्य तैयार होता है। वैज्ञानिकों का मत है कि दो तोला वीर्य के लिए एक सेर रक्त और एक सेर रक्त के लिए एक मन आहार की आवश्यकता है। आज हम जो भोजन करते हैं, उसका वीर्य बनने में पूरा एक महीना लग जाता है। अब विचारिये कि इस बहुमूल्य जीवन तत्व का अपव्यय भला कैसे पूरा हो सकता है? इसी के आधीन मनुष्य की सम्पूर्ण शारीरिक और मानसिक शक्तियां, बल, बुद्धि, आयु रहती है। व्यभिचारी पुरुष क्षणिक सुख के लोभ में आकर वीर्य नाश नाना विधियों से कर डालते हैं। यह एक प्रकार की आत्म-हत्या ही समझिये।

नशेबाजी

संसार में जितने मादक द्रव्य हैं, उनका शरीर पर बड़ा घातक प्रभाव पड़ता है। हम मानते हैं कि कभी कभी दवाई के रूप में भी इनका उपयोग होता है किन्तु आज कल तो धड़ाधड़ मादक द्रव्यों का प्रचार बढ़ रहा है। मनुष्य बुद्धि शून्य होकर राक्षस बना दीखता है।

शराब को लीजिए। बुरी समझते हुए भी अनेक व्यक्तियों ने इसे अपना लिया है। संसार के डाक्टर आज इस नतीजे पर पहुँचे हैं कि शराब का विष और क्षय, न्यूमोनिया, विषम ज्वर, हैजा, लू, पेट, जिगर, गुर्दा, हृदय, रक्तवाहिनियां, स्नायुविकार तथा मस्तिष्क के कई रोगों का जनक है। शराब का उपयोग साधारण श्रमजीवी उत्तेजना के लिए करते हैं। उन्हें मालूम नहीं कि यह शरीर परमेश्वर का मन्दिर है। इसमें परमेश्वर विराजते हैं। प्रकृति मनुष्य की माता भी है, और गुरू भी। प्रकृति ने शरीर ही में ऐसी २ गुप्त शक्तियां भरी हैं कि उन्हें शराब जैसी उत्तेजक वस्तु की आवश्यकता नहीं पड़न चाहिए। शराब खोरी विनाश है। श्री वैजनाथ महोदय ने लिखा है 'शराब काय शक्ति को घटाती है, रोजी छूट जाती है तो मनुष्य बाल बच्चों का पोषण नहीं कर पाता, गृह सौख्य का नाश हो जाता है। मानव जाति के सर्वनाश के लिए ही शराब की उत्पत्ति हुई है और वह इस पर तुली हुई है। शराब और व्यभिचार में गाढ़ी मित्रता है। जहां २ शराब है, वहां वहां व्यभिचार भी जरूर होता है। शराब पीते ही नीति अनीति की भावना तथा आत्मसंयम धूल में मिल जाता है

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

और स्त्री पुरुष ऐसी २ कुचेष्टाएँ करने लगते हैं जो अच्छी हालत में वे स्वप्न में भी न करते।"

अफीम और तम्बाकू बदन के रक्त को सुखा डालते हैं, मन्दाग्नि उत्पन्न करते हैं। अफीम से बालक तक निःसत्व हो जाते हैं। श्रीयुत पैहम लिखते हैं नियमित रूप से अफीम का प्रयोग करने वाले व्यक्ति को नीचे लिखी बिमारियां हो जाती हैं—कब्ज, रक्त की कमी, मन्दाग्नि, हृदय, फेफड़े और गुर्दों के रोग, स्नायुजन्य कमजोरी, फुर्तीलेपन का अभाव, आलस्य, निद्रालुता, चित्तभ्रम, नैतिक भावना की कमी, काम का भार आ पड़ने पर चीं बोल देना, नैतिक अविश्वास और अन्त में मृत्यु।

तम्बाकू भी कम शैतान नहीं है। महात्मा गांधी ने लिखा है—"मैं सदा इस टेव को जंगली हानिकारक और गन्दी मानता आया हूँ। अब तक मैं यह न समझ पाया कि सिगरेट पीने का इतना जबरदस्त शौक दुनियां को क्यों है ?" तम्बाकू से क्षय होना अवश्यम्भावी है। क्षय फेफड़ों का रोग है। दूषित वायु जब पुनः पुनः अन्दर जायगी तो निश्चय ही यह रोग हो जायगा। इस के अतिरिक्त हृदयरोग, उदर रोग, नेत्ररोग, नपुंसकता, पागलपन इत्यादि रोग भी तम्बाकू के व्यसन से उत्पन्न होते हैं। डा० रगलेस्टर के अनुसार तम्बाकू से पाचन यन्त्रों की शुद्ध, रक्त उत्पन्न करने की शक्ति कम होकर सब प्रकार के अजीर्ण सम्बन्धी रोग उत्पन्न हो जाते हैं।" पंडित ठाकुरदत्त शर्मा के अनुसार अजीर्ण, कास, फेफड़ों के तमाम रोग, त्वचा रोग, निद्रानाश, दुःस्वप्न, चक्कर, नेत्र रोग, हृदय और मस्तिष्क की निर्बलता और उन्माद तम्बाकू से होने वाले सामान्य रोग हैं।

भांग, गांजा, चरस—ये सब प्रत्यक्ष विष हैं। चाय और कॉफी भी आयु के नाश करने वाले हैं। कॉफी में कैफीन, टैनिन इत्यादि विष मिले हुए होते हैं। चाय में थीन नामक ज़हर होता है। चाय और काफी पीने से दांतों की जड़ें कमजोर हो जाती हैं। स्नायुओं को क्षणिक उत्तेजना तो मिलती है, किन्तु शक्ति या रक्त नहीं बढ़ने पाता।

स्मरण रखिये, मादक पदार्थ विषैले हैं। आपकी आयु, बल, बुद्धि, उत्साह और नैतिकता का ह्रास करने वाले हैं। इन का पान जहर का पान है। खतरों से भरा है, आत्महत्या के बराबर है। आप जानते बूझते क्यों विष पान कर रहे हैं ?

व्यभिचार

यह पाप भयंकर राक्षस है जो देखते देखते मनुष्य के पतन का कारण बनता है। आज का बहुत सा साहित्य हमारी भोली जनता को मृत्यु के मुंह में ढकेल रहा है। व्यभिचार वह सामाजिक बुराई है, जो प्रत्येक राष्ट्र के लिए हानिकारक है। स्त्री पुरुष के जीवन सत्व को नष्ट करने के अनेक नए तरीके निकाल लिए हैं जिनकी चर्चा करना भी पाप है। स्मरण रखिये, आप व्यभिचार कर जगत् की आंखों से बच सकते हैं किन्तु प्रकृति बड़ी कठोर है। व्यभिचार का दंड उसके दरबार में गर्मी, सूजाक, स्वप्नदोष, नपुंसकता, नामर्दी इत्यादि मूत्र रोगों के रूप में मिलता है। घर का गन्दा कामोत्तेजक वातावरण, सिनेमा, दुश्चरित्र व्यक्ति, अश्लील चित्र पुस्तकें इत्यादि से अत्यधिक सावधान रहें। इनमें लिप्त हो कर आत्म हत्या न कर बैठें।

चटोरापन

कुछ लोग चाट पकोड़ी दरबतर मिठाईयां, बाजारू मसालेदार पकवान, दाल सेव इत्यादि आवश्यकता से अधिक खाते हैं। भूख न होने पर भी वे पेट को इन जायकेदार वस्तुओं से भर डालते हैं। आवश्य-

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

कता से अधिक केवल स्वाद के लिए खाना अपनी कब्र दांतों से खोदना है। बड़े शहरों में रहने वाले फैशनेविल व्यक्तियों की चटोरेपन की आदत बड़ी भारी कमजोरी है। अतः अनियमित आहार विहार न कर बैठें। बड़ी सोच समझ कर चलें।

मानसिक दुर्बलताएँ

मृत्यु को पास लाने में मानसिक उद्वेग, क्लेश, दुःख, निराशा, कुढन, अहितकर चिंतन इत्यादि विकारों का बड़ा हाथ है। ये शत्रु दीखते नहीं, किन्तु अन्दर ही अन्दर शरीर को जर्जर कर देते हैं।

प्रकृति नहीं चाहती कि हम इन विकारों के वशीभूत होकर जीवन का क्षय कर दें। प्रकृति ने हमें पूर्ण नीरोग, आनन्द और प्रसन्नता में रहने वाला प्राणी बनाया है। अनाकांक्षित विकार सब मानसिक शक्ति के आधीन है। मानसिक शक्ति द्वारा यदि श्रद्धा पूर्वक आत्मविश्वास धारण किया जाय तो ये विकार सुगमता पूर्वक दूर किये जा सकते हैं।

प्रकृति बड़ी दयालु एव चतुर है। वह प्रत्येक मनुष्य को अपनी कमजोरियां सुधारने का अवसर प्रदान करती है। जब हम उत्साह, आनन्द, आशा, प्रेम, सत्य की बात सोचते हैं तो हृदय में नव जीवन का सञ्चार होने लगता है, नसों में नया जोश, नवीन उत्साह आता है किन्तु जब हम अवांछित मनोविकारों में फसते हैं तो हमारी कार्य शक्तियां पंगु हो जाती हैं। यह इसीलिए कि फिक्र, क्लेश दुःख कुढ़न, क्रोध के विचार अप्राकृतिक हैं। वे मनुष्य के लिए नहीं हैं। उन्हीं में लिप्त रहना प्रकृति से दूर जाना है।

प्रो० जेम्स कहते हैं कि "यदि तुम दिन भर चिंतित अवस्था में बैठे रहोगे और बोलते समय बड़ी दुःखभरी आवाज़ में बोलोगे तो इसका तुम्हारे शरीर पर बड़ा बुरा प्रभाव होगा। डा० जार्ज विलियन कहते हैं कि "चिन्ता शरीर के अन्दर ऐसे अदृश्य घाव करती है जिसका प्रभाव दिमाग के कुछ जीवकोष्ठों पर पड़ता है। धीरे धीरे वह असर नसों में फैलता है और बीमारियां पास आती हैं। दुर्विचार से ज्ञान तन्तु निर्बल होते हैं। जो मनुष्य अपने दुर्विचार उद्वेगों और विकारों का अनुयायी बनता है, वह मृत्यु को बुलाता है।

★ ★

अथर्ववेदीय मन्त्रविद्या— लेखक-पं० प्रियरत्न जी आर्ष, 'अथर्ववेद में जादू टोने, तन्त्र-मन्त्र, झाड़-फूंक का विधान है' ऐसा बहुत से विद्वानों का मत है। प्रस्तुत पुस्तक में आयुर्वेद व अन्य वैज्ञानिक साधनों द्वारा सिद्ध किया है कि वस्तुतः जिन मन्त्रों को जादू टोना, तन्त्र मन्त्र आदि से सम्बद्ध किया जाता है वे सम्मोहन विद्या व चिकित्सा-शास्त्र के द्योतक हैं। पं० प्रियरत्न जी वेदों के अद्वितीय विद्वान् हैं। इस पुस्तक का पारायण करके आप भी उनकी विद्वत्ता का परिचय प्राप्त कीजिये। मूल्य १॥)।

मिलने का पता— प्रकाशन मन्दिर, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

व्यतीत किया ।

महर्षि दयानन्द जी ने सत्यार्थप्रकाश में लिखा है कि भारतवासियों का पतन महाभारत युद्ध से एक हज़ार वर्ष पूर्व प्रारम्भ हो गया था परन्तु फिर भी हमारी प्राचीन संस्कृति और सभ्यता के टूटे फूटे चिन्ह इन गुज़रे हुए पांच हज़ार वर्षों में भी दृष्टि-गोचर होते हैं और हमारे अधःपतन की अवस्था में भी दूसरे देशों की अपेक्षा भारतीय संस्कृति मानवता की ओर अधिक ले जाने वाली है । भारत के प्रधान मन्त्री प० जवाहर लाल नेहरू जी ने अन्य देशों की अवस्था और आधुनिक काल की नित्य नई बढ़ती हुई समस्याओं को देख कर अहमदाबाद (गुजरात) के विद्यार्थियों के समक्ष ३१ जनवरी सन् १९५१ को यह भाषण देते हुए कहा कि "मैं समझता हूँ कि प्राचीन भारत में आज की अपेक्षा बहुत अधिक समानता, एकता और खुशहाली थी और लोग ज्यादा सुखी थे । इसी प्रकार सरदार पटेल ने जो शब्द कहे वह यह थे—

We must follow our culture, our own civilisation. We can not borrow the very element of life from others. Our life is essentially different from that of foreign countries.

अर्थात् हमें अपनी ही सस्कृति को अपनाना चाहिये । हां अपनी ही सभ्यता को, हम अपने जीवन के लिये दूसरों की विचारधारा की भीख नहीं मांग सकते । हमारा जीवन विदेशियों की अपेक्षा सर्वथा भिन्न है ।

अब आप देखिये कि जब प्राचीन भारत अपनी कल्चर और विचार धारा के कारण सुखी था और इसके साथ जब से हम अपनी संस्कृति को भूले हैं तब से हम ही नहीं अपितु सारा संसार ही दुःखी हो उठा है ।

गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का उद्देश्य आज से ७५ वर्ष पूर्व महर्षि दयानन्द जी ने यह बताया था कि मानव को सच्चा मानव बनाने वाली संस्कृति फिर जाग उठे ।

आज कल्चर तथा संस्कृति के सम्बन्ध में भी बहुत मतभेद है, परन्तु वेद ने इस का निपटारा कर दिया है । वेद में संस्कृत के लिए एक शब्द 'विश्व वारा' आता है अर्थात् सब से श्रेष्ठ सम्पूर्ण दोषों को हटाने वाली और सुन्दरता लाने वाली । विश्व वारा को गुण धारण और दोष निवारण में भी प्रकट किया जा सकता है । जिस के द्वारा कोई वस्तु सुन्दर बनाई जाय और उस के सारे दोष हटा दिये जायें तो वह सुन्दर संस्कृति कहलाती है । संसार पर दृष्टि डाल कर देखिये कि किस जाति या देश ने ऐसी संस्कृति संसार के सामने रखी जो इस कसौटी पर पूरी उतर सके । भारत के उज्जवल भूत को मानने वाले तो यह घोषणा कर सकते हैं कि उन की वैदिक संस्कृति ने दुनिया को छह हज़ार वर्ष कम दो अरब वर्षों तक सुखी, सुन्दर तथा शांतिमय बनाए रखा और यदि संसार फिर सुखी होना चाहता है तो इसी संस्कृति को अपनाना होगा । हमारी संस्कृति जहां भौतिक-उन्नति की ओर ले जाती है वहां अध्यात्मिक मार्ग पर भी चलाती है । शंका उठाई जा सकती है कि भोगवाद और त्यागवाद साथ साथ कैसे चल सकते हैं । इस के लिए मैं यह कहना चाहता हूँ कि वेद ने धन, ऐश्वर्य, वैभव प्राप्त करने का आदेश दिया है साथ में यह भी कहा है कि इस में लिप्त न हो जाना । नदी के किनारे आप जायें तो आप देखेंगे कि कुछ नैया तैर रही हैं और कुछ जल में डूबी हुई हैं । जो डूब गई हैं उन में छिद्र हो जाने के कारण जल प्रवेश कर गया और वह डूब गई । जो तैर रही है उन में छिद्र नहीं हुए, जल उन में घुस नहीं सका ।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

वह आप भी तैरती है और यात्रियों को भी पार ले जाती है। धन उपार्जन करो। लक्ष्मी के जल में तैरो। परन्तु सावधान। तुम्हारे हृदय में छिद्र न होने पायें। छिद्र हो गया तो धन का जल मन में प्रवेश कर जायगा तब धन में डूब जाना पड़ेगा, न आप तर सकोगे और न अन्य साथियों को पार ले जा सकोगे।

लक्ष्मी के बिना तो कोई कार्य चलता नहीं। नारायण भी लक्ष्मी के बिना पूर्ण नहीं होता क्योंकि पूरा नाम लक्ष्मी नारायण है? धन कमाओ परन्तु धन में ऐसे रहो जैसे कमल पुष्प तालाब के जल में रहता है। जल जितना बढ़ता है कमल पुष्प उतना और ऊँचा हो जाता है जल में डूबता नहीं? वेद भगवान् ने इस सम्बन्ध में बहुत सुन्दर आदेश दिया है। यजुर्वेद के ४० अध्याय के पहले मन्त्र में भोगवाद और त्यागवाद का साफ उपदेश है। वेद की स्पष्ट आज्ञा है कि 'त्यक्तेन भुञ्जीथा' अर्थात् त्याग भाव से भोगो। परमात्मा ने जो यह सुन्दर सृष्टि बनाई है और इस में जो सुन्दर फल और दूध आदि अमृत बनाये हैं, नाना प्रकार का सौन्दय प्रकट किया है। हे मनुष्य यह सब कुछ तेरे भोग के लिए है इन का भोग कर परन्तु त्याग भाव से भोग कर। त्याग भाव से भोग करने का प्रयोजन क्या है? इस को स्पष्ट करने के लिए मैं एक घटना आप को सुनाता हूँ। हैदराबाद रियासत में जब हवन करना, ओ३म् की पताका फहराना, स्कूल तथा पाठशालायें खोलना, वेद उपनिषद्, गीता की कथायें करना मन्दिरों की मुरम्मत करना, मन्दिरों पर कलश चढ़ाना कानूनी तौर पर जुर्म हो गया तो सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा ने मीर हुसमान अलि खां निज़ाम बहादुर के पास कितने ही मैमोरियल भेजे, कितने ही डेपुटेशन भेजे परन्तु निज़ाम टस से मस न हुआ। तब शोलापुर में श्रीयुत् अयने के प्रधानत्व में आर्य समाज का विराट सम्मेलन हुआ। वहां पर निश्चय हुआ कि यदि इस धार्मिक अत्याचार को समाप्त न करे तो अहिंसात्मक सत्याग्रह प्रारम्भ कर दिया जावे। तब महात्मा नारायण स्वामी जी ने अपनी आहुति दी और लगभग २५ हज़ार सत्याग्रही हैदराबाद स्टेट की जेलों में बन्द हो गये। जेलों में हर एक सत्याग्रही को ४ चीजें मिली हुई थी। १. तसला २. चम्पू, ३. टाट, ४. कम्बल। भोजन के समय तसले में दाल लेते और सोते समय इसी तसले का सिरहाना बना लेते। प्रातःकाल सब सत्याग्रही अपने तसले, चम्पू खूब मांजते और मैं कहता मेरा तसला और चम्पू अधिक चमक गया है। राजगुरु जी कहते मेरा चमक गया। इसी प्रकार कम्बल और टाट का भी पूरा उपयोग करते और सम्भाल कर रखते। इसी प्रकार रहते-रहते सात आठ महीने बीत गये, तब एक दिन निज़ाम के अधिकारी जेल में पहुँचे और महात्मा नारायण स्वामी जी और मुझे कहने लगे कि जेल से बाहिर जाओ। मैंने मनोरञ्जन के लिए कहा कि क्यों? कोई भूकम्प आने वाला है। राज अधिकारियों ने कहा नहीं? अपितु निज़ाम ने आप की सब मांगे पूरी कर दी हैं। हवन करो, ओ३म् के झण्डे फहराओ, स्कूल तथा पाठशालायें खोलो, मन्दिर पर कलश चढ़ाओ, मन्दिरों की मरम्मत कराओ अर्थात् जो तुम्हारी इच्छा हो करो। अब आप को जेल से मुक्त किया जाता है। यह सुन कर हम रोने लगे। हे चम्पू हमने तुम्हें चमकाया था, हे तसले तुझे मांजा था, हे टूटे हुए टाट और फटे हुए कम्बल अब तू हमें कहां मिलेगा? इन सब चीजों को जिन्हें आठ महीने भली भांति भोग किया, इन्हें अपनी छाती से लगा कर विलाप नहीं करने लगे कि तुम अब हमें कहां मिलोगे? नहीं अपितु पूरी प्रसन्नता से हम ने इन सब वस्तुओं का त्याग कर दिया

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

और जेल अधिकारियों से कहा कि यह पड़े हैं आप के ताले, सम्भालो अपने चम्मू तथा कम्बल और टाट। हम हंसते खेलते जेल से बाहिर निकल आये। इस को कहते हैं 'त्यक्तेन भुञ्जिथा' जितना कमा सकते हो कमाओ धन संग्रह भी करो, मकान भी बनाओ, मोटरें भी रखो और पूर्ण प्रसन्नता से इनका भोग करो परन्तु जब भारत माता रो उठे, जब गो माता का करुण क्रन्दन सुनाई दे कि मेरी रक्षा के लिए तुम्हारे नौजवान बेटे का बलिदान की आवश्यकता है या जब कोई विधवा माई, अनाथ बच्चा पुकार उठे कि मेरी जीवन रक्षा के लिए तेरे धन की आवश्यकता है तब मैं कहूं ले जाओ मेरे बेटे, ले जाओ मेरी धन सम्पत्ति ले जाओ मेरी मोटरें, ले जाओ मेरी ज़मीन और बंगले, ले जाओ मेरे शरीर के रक्त की एक-एक बिन्दु यह है 'त्यक्तेन भुञ्जिथा'। यह है संस्कृति जिस का वेद आदेश देता है। इसी संस्कृति को पुनर्जीवित करने के लिए ऋषि दयानन्द के आदेशानुसार महात्मा मुन्शीराम जी ने सब से पूर्व गुजरांवाले और फिर काँगड़ी ग्राम में गुरुकुल की स्थापना की और इस कलि काल में प्राचीन शिक्षा प्रणाली के वह सुन्दर दृश्य दिखलाये जिन्हें सच्चा मानव देखने के लिए तरसता रहता है। यही संस्कृति मानवता लाने वाली है आज संसार इसी लिए दुःखी है कि मानव मानव नहीं रहा अपितु दानव बन गया है। गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी के सुन्दर वातावरण में रह कर शिक्षा प्राप्त करने वाले स्नातको! दुनियां तुम्हारी ओर देख रही है। दूसरी यूनिवर्सिटियों की शिक्षा तो बहुधा भौतिकवाद और भोगवाद की ओर ले जाने वाली है परन्तु गुरुकुल शिक्षा प्रणाली जहां भौतिक वस्तुओं पर विजय प्राप्त करने का आदेश देती है वहां शांति के स्रोत ब्रह्म ज्ञान का भी आदेश देती है। आज संसार जल रहा है। परिस्थिति भयंकर है। मायावाद के विचार धारा की तरंगे अति तीव्र हो चुकी हैं। इन्सान शैतान बन चुका है। ऐसी अवस्था में आप जीवन के नये क्षेत्र में प्रवेश कर रहे हैं। वीरता इसी में है कि चाहे शत्रु चारों ओर खड़े हों, बिजलियां टूट रही हों, आंधियों का वेग प्रबल हो फिर भी मन इतना बलवान हो कि वह सब इन विघ्न बाधाओं को दूर कर के पार निकल जाये। कवि ने कितना अच्छा कहा है—

वह पथ क्या, पथिक कुशलता क्या,
जिस पथ पर बिखरे शूल न हों।
नाविक को वह धैर्य परीक्षा क्या
जब धारा हो प्रतिकूल न हो॥

मानवता का दृढ़ संकल्प लेकर आगे आओ और दुःखी संसार को सुखी बनाओ। ऋषि दयानन्द का उदाहरण सामने रखो। जिस ने केवल मानवता के लिए अपना बलिदान दे डाला। ऋषि दयानन्द ने वेद को इसी लिए अपनाया कि उस में केवल मानवता के आदेश हैं। उस में किसी देश विशेष का अथवा किसी एक सम्प्रदाय या फिरके का वर्णन नहीं, उस में यह कहीं नहीं लिखा कि—कृश्चियन भव, मुहम्मद भव, रशियन भव, अमेरिकन भव, बल्कि उस में तो मनुर्भव लिखा अर्थात् मनुष्य बन और इसी मानवता का आदेश वेद द्वारा दिया गया है। आपने इस पवित्र गुरुकुल भूमि में रह कर वही अमृत पान किया है। तुम्हारे हृदय का दीपक जल पड़ा है। उठो! और मानवता के अन्धकार को मिटाने के लिए मानवता के दीपक स्थान-स्थान पर जगा दो।

★

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी के ५१ वें वार्षिकोत्सव पर

माननीय श्री चन्द्रभान जी गुप्ता, स्वास्थ्य मन्त्री, उत्तर प्रदेश

का अभिभाषण

कुलपति जी ! बहिनो और भाइयो !

मैं नहीं जानता कि इस सभा में मुझे बोलने का क्या अधिकार है। आप सब उपस्थित महानुभाव अपने आगमन को तीर्थयात्रा समझते होंगे। मैं और मेरे भाई भी विद्यार्थी काल में यहां तीर्थ यात्रा के रूप में आया करते थे और साधु सन्तों के व्याख्यानों से प्रोत्साहित हो कर वापिस जाते थे। परन्तु मेरे पास कोई ऐसे विचार नहीं हैं जिन से आप को प्रोत्साहन दे सकूं। इस लिए इस समय इस सभा में मैं कुछ कहने का अधिकारी नहीं हूं केवल कुलपति जी की आज्ञा से कुछ कहने आया हूं।

आर्य समाज एव गुरुकुल के कार्य को बताने की आवश्यकता नहीं। ऋषि दयानन्द के समय देश की क्या दशा थी यह भी आप लोग जानते है। उन्होंने बृटिश काल में विदेशी सभ्यता से हमें किस प्रकार बचाया था ऐसे समय में उन्होंने आर्य समाज को जन्म दिया और आर्य संस्थाओं को स्थापित करने का बीज बोया। ऋषि के विचारों को दृष्टि में रखते हुए आर्य समाज ने अनेक सस्थायें स्थापित की। आर्य समाज ने स्वतन्त्रता के संग्राम में नवयुवकों को परिवर्तन किया। उन्हें ऋषि दयानन्द का यह सिद्धांत बतलाया कि विदेशी शासन अच्छे से अच्छा होता हुआ स्वदेशी राज्य से बुरा है। आर्य समाज के बाद कांग्रेस के प्रयत्न से देश स्वतन्त्र हुआ और अब स्वदेशी राज्य की स्थापना भी हो गई है परन्तु कल्पना का भारत नहीं बन पाया।

आज प्रश्न यह है कि उस कल्पना के भारत को बनाने में हम क्या हिस्सा ले सकते हैं और किस प्रकार लक्ष्य तक पहुँच सकते हैं। जिन संस्थाओं द्वारा यह स्वराज्य प्राप्ति का कार्य हुआ वे सराहनीय हैं परन्तु अभी हमारी जिम्मेवारियां समाप्त नहीं हुई। जिस भारत को हम बनाना चाहते हैं उस के लिए यदि हम खून पसीना बहाने में असमर्थ हैं तो वह भारत नहीं बन सकता। यदि हम देश की आत्मा को उस की संस्कृति को पुनर्जीवित करने का प्रयत्न नहीं करते तो हम कर्तव्य से विमुख होंगे। आज तो विदेशी शासन के समाप्त होने के बाद उत्तरदायित्व के बढ़ जाने के कारण हमें अधिक त्याग व परिश्रम की आवश्यकता है। किसी भी क्षेत्र में कार्य करते हुए उक्त विचार धारा को ध्यान में रखने से ही काम होगा। प्रायः यह भ्रम फैला हुआ है कि हम ने अपना काम कर लिया है अब सारा काम सरकार का है। यह भ्रम हमें दूर कर देना चाहिये। दुनियां की जातियां अपनी जनता के त्याग और बलिदान से ही उठी हैं। यदि हम नेताओं पर ही भरोसा कर के बैठ गये तो हम अकर्मण्य हो जायेंगे। आज अधिक प्रयत्न करने की आवश्यकता है। वह प्रयत्न केवल नेहरु व पन्त नहीं कर सकते, सभी के संघठित प्रयत्न की आवश्यकता है।

चिर-काल की पराधीनता के कारण हमारा चरित्र कमजोर हो गया है। जनतन्त्रात्मक राज्य को सही रूप में चलाने के लिए नागरिकों को अपनी चरित्र परम्परा को उत्तम बनाना होगा। इस कार्य को वही संस्थायें कर सकती हैं जो अब तक उसे प्रचारित करती रही हैं। छूत छात असमानता तथा अन्य कु-

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

प्रथाओं के रहते हुए लोक तन्त्रात्मक राज्य चलना असम्भव है।

आर्य समाज कांग्रेस तथा महात्मा गांधी के प्रयत्न के बावजूद आज भी छूतछात आदि कुरीतियां विद्यमान हैं। आर्य समाज के लिए इस दिशा में अब भी क्षेत्र खुला हुआ है। अभी इसे पूरा करने की आवश्यकता है। इस के लिये तन, मन, धन लगाना पड़ेगा। केवल प्रस्ताव पास करने से काम न चलेगा। प्रायः कांग्रेस पर अनेक दोषारोपण किये जाते हैं परन्तु देखा गया है कि जो लोग दोषारोप करते हैं वे ही स्वयं इन बुराइयों में फंसे हैं। यदि हम इन बुराइयों में फंसे हो तो वह कैसे दूर होगी। इसे दूर करने के लिए सद्भावना और सद्विचार की आवश्यकता है। वातावरण को सुधारने के लिए महापुरुषों से प्रेरणा लेने की आवश्यकता है। महात्मा गान्धी तथा ऋषि दयानन्द ने अपने आचरण से जनता को अपनी ओर आकृष्ट किया था इसी प्रकार हम भी अपने सद्गुणों द्वारा देश को ऊंचा उठा सकते हैं। टीका-टिप्पणी करने या गाली-गलोच देने से यह अवगुण दूर नहीं होंगे बल्कि प्राप्त सुगमता भी छिन जायगी। जिन कठिनाइयों व परेशानियों से हमें यह आज़ादी मिली है उनकी कल्पना भी हम ने न की थी। अतः अब हमें शक्ति को गवा कर दल बन्दी में फंस कर देश को नष्ट नहीं करना। हमें तो संघटित होकर कार्य करना होगा। यदि हम संसार को कोई संदेश देना चाहते हैं तो हमें स्वयं पहले बलवान बनना होगा। देश में वस्त्र व भोजन की कमी है उस के दूर करने के साधनों को जुटाना होगा। विभाजन से हमारी अधिकांश अच्छी भूमि पाकिस्तान में चली गई है। विदेशी व्यापार के लिए हमारे पास क्षमता नहीं रह, यदि हम उत्पादन न बढ़ायेंगे और उनके निजी इस्तेमाल में कमी न करेंगे तो विदेशों से व्यापार कैसे कर सकते हैं। आज तो कष्ट उठाना ही पड़ेगा। रूस के किसानों व मज़दूरों ने वर्षों तक सामान उत्पन्न करके भी स्वयं उसका उपभोग नहीं किया, तभी कुछ वर्ष बाद वह खुशहाल बन सके। हमें भी वही मार्ग अपनाना होगा। यदि हम ऐसा नहीं करते तो इस से हमारी अधीरता एवं स्वार्थ-परता प्रकट होती है। यदि हम कष्ट उठायेंगे तो वह स्वप्न मय भारत मूर्त रूप में दिखाई देगा। यदि हम अपने देश में अपने भाईयों से दुर्व्यवहार करें तो प्रवासी भाईयों के सम्बन्ध में अफरिका से क्या कह सकते हैं। हैं। देश में अन्नाभाव के होते हुए क्या यह अच्छा होगा कि देश का एक भाग भूखा मरे और शेष भाग में छः छटांक अन्न खाया जाये। हमारे लिए सभी प्रान्त एक समान हैं। अतः स्वयं कष्ट उठा कर भी भाईयों की सेवा करना हमारा धर्म है। विलगता को जन्म देने वाली विचारधारा को अपनाना खतरनाक है। हम ऋषि दयानन्द तथा महात्मा गान्धी के ऋणी हैं और उस ऋण से तभी मुक्त हो सकते हैं जब कि हम उन के उपदेशों को अपने आचरण में लावें। मैं आप को विश्वास दिलाता हूँ कि यदि हम ने इस दिशा में प्रयत्न किया तो हमारे देश की आध्यात्मिकता समस्त विश्व में छाप देती दिखाई देगी अन्यथा हम स्वयं भी नष्ट हो जायेंगे।

★

उच्चकोटि का मानसिक भोज़न प्राप्त करने के लिए गुरुकुल-पत्रिका पढ़िये।
वार्षिक मूल्य देश में ४), विदेश में ६)।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गुरुकुल-समाचार

ऋतु—गर्मियां प्रारम्भ हो गईं। दिन को ताप पड़ता है और रात्रियां अभी तक शीतल हैं। प्रातः काल को भी अच्छी ठंड हो जाती है। उत्सव के बाद समीपस्थ प्रदेशों में वर्षा हो जाने से वातावरण में यह शीतलता बनी हुई है। बन और वाटिकाएँ नए पत्तों से लहलहा रही हैं। आम्रकुञ्जों में कोकिलों और चातकों के आलाप बढ़ते जा रहे हैं। नहर स्नान और तैरियों का क्रम प्रारम्भ हो गया है। वन-यात्राएँ भी चालू हैं। ब्रह्मचारियों का स्वास्थ्य बहुत अच्छा है। रोगीगृह खाली है।

नया सत्र

वार्षिक परीक्षाओं का परिणाम निकल चुका है और नवीन सत्र की पढ़ाईयां प्रारम्भ हो गई हैं। परिवर्तित पाठ्यक्रम के अनुसार नवीन पुस्तकें वितीर्ण हो चुकी हैं।

महोत्सव के समाचार

कुल का ५१ वां वार्षिक महोत्सव गत १३-१४-१५-१६ एप्रिल के दिनों में प्रति वर्ष की तरह बड़े उत्साह और प्रेम के साथ मनाया गया। उसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

प्रथम दिवस प्रातः बृहद् यज्ञ के पश्चात् श्री स्वामी अभेदानन्द जी ने 'ओम्' की नवीन पताका का आरोहण करके उत्सव का प्रारम्भ किया। उक्त स्वामी जी ने ही मुख्य पण्डाल में 'ईश्वरभक्ति' विषय पर मांगलिक प्रवचन किया।

इसके अनन्तर गुरुकुल के भूतपूर्व वेदोपाध्याय श्री पं० विश्वनाथ जी विद्यालंकार की अध्यक्षता में 'वेद सम्मेलन' प्रारम्भ हुआ। सम्मेलन में महाविद्यालय के निम्न-लिखित छात्रों ने वैदिक विषयों पर निबन्ध पाठ किया—

ब्रह्मचारी	विषय
ब्र० ओम्प्रकाश ११श	अग्नि की महिमा
ब्र० रघुनाथ ११श	वेद में कृषि
ब्र० चन्द्रभानु १३श	वैदिक राज्यव्यवस्था

गुरुकुल में वेद के प्रो० रामनाथ जी वेदालकार ने ऋग्वेद के 'सरमा पणि सम्वाद' को लेकर एक खोजपूर्ण निबन्ध पढ़ा। सभापति जी ने अपने व्याख्यान में बताया कि प्राचीन वैदिक कर्मकाण्ड का विषय बड़ा जटिल है। आवश्यकता इस बात की है आर्यसमाज की दृष्टि से कर्मकाण्ड के विभिन्न क्रिया-कलापों की सुसंगत और उपयोगी व्याख्या की जाय। कर्मकाण्ड की जटिलता और अस्पष्टता के कारण ही जन-सामान्य की उसके प्रति अश्रद्धा हो जाती है।

अपराह्न में श्री ज्ञानचन्द्र जी बी० ए० ने 'संस्कृति' विषय को लेकर एक मनोहर भाषण किया। आपने बताया कि वेद के आधार जो संस्कृति बताई जाती है वह सार्वजनीन, सार्वभौमिक है। वह संस्कृति सर्वतोभद्र है और विश्वमंगल-कारिणी है।

इसके अनन्तर सरस्वती सम्मेलन का आयोजन किया गया। इसके सभापति का आसन प्राच्य महाविद्यालय जालन्धर के आचार्य डाक्टर सूर्यकांत जी ने अलंकृत किया था। इस सम्मेलन में विद्यालय विभाग के छात्रों ने आगामी चुनाव के लिए विभिन्न राजनीतिक दलों के प्रतिनिधियों के रूप में अपनी कार्य-प्रणाली और विचारधारा की श्रेष्ठता को बताने वाले व्याख्यान संस्कृत भाषा में दिए।

महाविद्यालय विभाग के छात्रों ने 'निःशस्त्रीकरण से ही विश्वशांति संभव है' इस विषय पर अस्खलित संस्कृत भाषा में अपने विचार प्रकट किए। सभापति जी ने गुरुकुल के छात्रों की संस्कृत भाषण पटुता पर साधुवाद देते हुए देववाणी के गौरव और उसके अध्यापन की आवश्यकता पर सुन्दर विचार प्रकट किए।

मध्याह्नोत्तर साढ़े तीन बजे उत्तर-प्रदेश के स्वायत्त शासन के मन्त्री मान्यवर श्री आत्माराम गोविन्द खेर मंडप में पधारे। आप का कुल की ओर से स्वागत

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

किया गया। श्री खैर महोदय ने धर्म का स्वरूप समझाते हुए समाज व्यवस्था और शिष्ट नागरिकता पर अपने विचार प्रकट किए। आपने यह भी बताया बताया कि अपने कारावास के दिनों वे गुरुकुल के कई स्नातकों के निकट संपर्क में आए थे। जिनकी सच्चरित्रता और ईमानदारी से वे बहुत प्रभावित हुए थे।

रात्रि में भारतीय-संसद् के प्रसिद्ध सदस्य प्रो० शिब्बनलाल जी सक्सेना ने समाजवाद और भारतीय समस्याओं पर एक ओजस्वी व्याख्यान दिया। आपके विचार और आर्यसमाज के समाजशास्त्र विषयक आदर्शों में अद्भुत समानता और सामञ्जस्य प्रतीत हुआ। कुलपति श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति ने कुल में पधारने के लिए आपका अभिनन्दन किया।

तत्पश्चात् श्री पं० ठाकुरदत्त जी अमृतधारा ने 'आयुर्यज्ञेन कल्पताम्' विषय पर सुन्दर शिक्षाप्रद भाषण दिया। आपने स्वामी दयानन्द जी के भाष्य के भाव के अनुसार कुछ मन्त्रों की व्याख्या करते हुए मानवीय आयुष्य को दीर्घ बनाने के लिए आवश्यक बातें बताईं।

उत्सव के दूसरे दिन का कार्य मांगलिक यज्ञ से प्रारम्भ हुआ। तत्पश्चात् चित्तौड़ गुरुकुल प्रतिष्ठाता और आचार्य श्री स्वामी व्रतानन्द जी महाराज ने 'सत्य की महिमा' विषय को लेकर बोधप्रद प्रवचन किया। आपने प्रवचन से पूर्व अपनी एक सात्विक कविता रचना भी सुनाई।

तदुपरान्त डाक्टर सूर्यकांत जी ने भारत से बाहर भारतीय सभ्यता और संस्कृति के प्रभाव और प्रसार पर एक खोजपूर्ण व्याख्यान दिया। आपने बताया कि किस प्रकार हमारे पूर्वज धर्मप्रचार और ज्ञान प्रसार की अदम्य आकांक्षा को लेकर सारे एशिया में फैल गए। दुर्गम गिरि-मालाएँ और ऊत्तुङ्ग तरंग वाली सागर सरिताएँ पार करके उन्होंने भारतीय शील, चरित्र और सभ्यता की विजय-वैजयन्ती विदेशों में फहरायी थी।

अपराह्न में भजन-कीर्तन हो जाने पर विद्यालय विभाग के कुछ छात्रों ने शिक्षा-प्रसार के लिए चित्र-पटों (सिनेमा) का उपयोग लाभकारी है या नहीं इस विषय पर एक मनोहर वाद-विवाद किया। सभापति का आसन श्रीमान् पं० विष्णुमित्र जी ने ग्रहण किया था। प्राथमिक विभाग के छोटे बटुकों ने संस्कृत में श्लोक पाठ और अन्त्याक्षरी का मनोहर कार्यक्रम प्रस्तुत किया।

इसके पश्चात् प्रसिद्ध पर्यटक, विचारक और सुलेखक श्री स्वामी सत्यदेव जी परिव्राजक ने 'कौमें कैसे उठा करती हैं'—इस विषय पर बड़ा प्रभावोत्पादक और अमेरिका के इतिहास की उज्ज्वल घटनाओं से भरा हुआ एक भाषण दिया। भारत की सामयिक समस्याओं और उलझनों को सुलझाने के लिए भी आपने अन्य देशों के इतिहास की घटनाओं के आधार पर बहुत कीमती विचार प्रकट किए।

रात्रि को आर्य समाज के प्रसिद्ध व्याख्याता और सुलेखक श्री क्षितीश जी विद्यालंकार ने 'सोने का मन्दिर और माटी की मूरत' विषय पर घटनाओं और तथ्यों से भरा हुआ भाषण देते हुए भारत की सामयिक समस्या और उनके निवारण के लिए महत्वपूर्ण विचार प्रकट किए। उनके बाद व्याख्यान पीठ पर आये आर्य जगत् के मूर्धन्य मनीषी और प्रोज्वल वक्ता श्री पं० बुद्धदेव जी विद्यालंकार। आपने अपने बुलन्द नाद में साम्यवाद, समाजवाद और आत्यन्तिक अहिंसावाद आदि भिन्न भिन्न वाद और प्रोग्राम किस प्रकार विफल और बेबस हो रहे हैं इस बात को ऐतिहासिक घटनाओं और विद्वानों के अवतरणों से समझाया। संसार की और भारत की नैतिकता आज संकट में है, ज्ञानप्रदाता गुरुजन आज सारे विश्व में किस प्रकार अपमानित हो रहे हैं और अनुशासन

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

हीनता किस उग्र रूप में हमारे सामने खड़ी है—इन बातों पर प्रकाश डाला। इन संकटों से त्राण पाने के लिए पाखंड खंडिनी पताका का उठाने वाला दयानन्द हमको बुला रहा है—यह थी आपके भाषण की चरम घोषणा।

तीसरे दिन का अरुणोदय होते ही समस्त कुल-वासी और उत्सव के माननीय मेहमानगण वेद कालेज के प्रांगण में कुल-पताका की छाया में समवेत हुए। वहां वाद्य-निर्घोषों और कुलपिता तथा कुलमाता के जयनादों के साथ कुल के अधिनायक श्री इन्द्र विद्या-वाचस्पति ने नवीन कुलपताका का आरोहण किया। आपने अपने लघु प्रवचन में कुल के आदर्शों और ध्येयों का उद्बोधन किया। उसके पश्चात् समस्त कुलवासी प्रतिवर्ष की परम्पराओं के अनुसार शोभा यात्रा (जुलूस) के लिए व्यवस्थित होकर दीक्षान्त-समारोह के लिए उत्सव मंडप की ओर प्रस्थित हुए। आगे और पीछे विश्वविद्यालय के दोनों वाद्य-दल मधुर स्वरों में बाजे बजा रहे थे।

मंडप में पहुँचने पर समस्त देवमंडली के यथास्थान बैठ जाने पर कुलवन्दना गाई गई। शंखनाद के साथ दीक्षान्त विधि प्रारंभ हुई। व्रत ग्रहण करके नवस्नातकों ने यज्ञ किया और आचार्य श्री प्रियव्रत जी द्वारा ग्यारह नवस्नातकों को प्रमाण-पत्र प्रदान किए गए। श्री आचार्य जी ने उपनिषत्कालीन मुनियों के उस प्रसिद्ध उपदेश (सत्यंवद, धर्मंचर) द्वारा स्नातकों को प्रबोधित किया। इसके पश्चात् पूज्य श्री आनन्द स्वामी जी महाराज ने दीक्षान्त प्रवचन किया (भाषण अन्यत्र छपा है) इसके पश्चात् संन्यासी महात्माओं की ओर से स्वामी श्री अभेदानन्द जी ने नवस्नातकों को आशीर्वाद दिया। स्नातकों ने समस्त देवमंडली को अञ्जलिबद्ध होकर प्रणाम किए। कुल-गीत गाया गया और बड़ी शोभा और शान के साथ दीक्षान्त विधि समाप्त हुई।

इसके अनन्तर आर्यजगत् के लब्ध प्रतिष्ठ विद्वान् पं० गंगा प्रसाद जी उपाध्याय (प्रयाग निवासी) को उनकी लिखी 'वैदिक संस्कृति' पुस्तक पर 'श्री ठाकुरदत्त जी अमृतधारा धर्मार्थ ट्रस्ट' की ओर से ५००) रुपये का पारितोषिक प्रदान करने की विधि संपन्न हुई। श्री उपाध्याय जी ने बड़े विनयभाव से यह राशि सार्वदेशिक सभा दिल्ली को समर्पित कर दी और निवेदन किया कि आर्य साहित्य में उत्कृष्ट ग्रन्थ लिखने वाले सज्जनों को पुरस्कार देने वाली निधि में यह राशि जमा कर ली जाय।

मध्याह्न में प्रतिवर्ष की तरह नवस्नातकों की ओर से मान्य अभ्यागतों और पुराने स्नातकों को महा-विद्यालय भंडार में एक प्रीतिभोज दिया गया।

मध्याह्न में भजनों के पश्चात् सुविदित आर्य विद्वान् गंगा प्रसाद जी उपाध्याय का भावपूर्ण भाषण हुआ। आपने बताया कि उन्नीसवीं सदी के सभी भारतीय सुधारक और देश उन्नायक अपनी विचार भूमिका में वेदों के विषय में उपेक्षावान् रहे। अकेले महर्षि दयानन्द सरस्वती ऐसे थे जिन्होंने वेदों को मूल आधार न मानने के विषय में किसी भी विद्वान् से या कार्यकर्ता से समझौता नहीं किया। उनका दृढ़ मन्तव्य था कि भारतवर्ष समस्त चिंताधारा, कार्य कलाप, परम्परा और संस्कृति की आधार भित्ति वेद ही है। मध्यकाल में संस्कृत के पंडित भी वेदों की शिक्षा के लिए आग्रहवान् नहीं रहे। मूलस्रोत की ओर जाने का सिंहनाद करने वाले अकेले दयानन्द सरस्वती थे।

इसके उपरान्त गुरुकुलाचार्य श्री प० प्रियव्रत जी गुरुकुल शिक्षाविधि पर एक ओजस्वी व्याख्यान देते हुए इस शिक्षा की मौलिक विशेषताओं का स्पष्टीकरण किया और गुरुकुल के लिए धन संग्रह की अपील की। धन संग्रह के अन्त में की गई घोषणा के अनुसार इस वार गुरुकुल को एक लाख सैंतीस हजार रुपये दान में प्राप्त हुए।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

रात्रि में गुरुकुल के कुलपति श्री पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति का 'भारतीय संस्कृति का स्वरूप' विषय पर सारगर्भित और विचारोत्तेजक भाषण हुआ। आपने दिल्ली के संस्कृति-सम्मेलन का जिक्र करते हुए बताया कि देश के अच्छे अच्छे मनीषी संस्कृति के स्वरूप के विषय में नाना विचार रखते हैं। भारतीय संस्कृति सदा से उदार और समन्वयवादी रही है। हमें अपने जीवन और अपनी संस्कृति के विषय में उदार होना चाहिए। नाना धर्म और नाना विचार वाले लोगों के लिए अपनी वेदी खुली रखनी चाहिए। हम में यह आत्म-विश्वास और तेज होना चाहिए कि हमारी वेदी पर जो कोई भी आयेगा पावन हो जायगा। हमारे पूर्वज इसी प्रकार जगत् समस्त के लोगों को पावन करते आए हैं।

कुलपति जी के व्याख्यान के पश्चात् स्वामी वेदानन्द जी का मनोहर भाषण हुआ।

उत्सव के चौथे दिन श्री आचार्य प्रियव्रत जी ने नवप्रविष्ट ब्रह्मचारियों को उपवीत प्रदान किया, गायत्री मन्त्र की दीक्षा दी और उनका वेदारम्भ संस्कार करते हुए ब्रह्मचर्य व्रत का उपदेश किया। इस वर्ष कुल ८० ब्रह्मचारी प्रविष्ट हुए।

उपराह्न में श्रीमान् आनन्द स्वामी जी महाराज का गायत्री मन्त्र की महिमा और उसके जप के प्रभाव पर व्याख्यान हुआ। फिर श्रीयुत विश्वनाथ जी त्यागी ने आर्यसमाज की विचार धारा पर राजनैतिक आंदोलनों का किस प्रकार प्रभाव पड़ता रहा इसका ऐतिहासिक विवेचन किया। तदनन्तर अपने सूबे के खाद्यमन्त्री श्रीयुत चन्द्रभानु जी गुप्ता का सामाजिक चरित्र शुद्धि और नागरिकता पर भाषण हुआ। आपने बताया कि किस प्रकार पहले पहल आर्यसमाज ने जनता के चरित्र-निर्माण और जीवन-सुधार का प्रशस्त मार्ग-दर्शन किया था। आज तो उसके कार्यक्रम की प्रजा को अधिक जरूरत है। व्याख्यान के पश्चात् माल-मंत्री महोदय ने गुरुकुल आयुर्वेद फार्मेसी के नये भवन की आधार शिला स्थापित करने की विधि की।

रात को श्रीयुत दीनदयालु जी शास्त्री (गुरुकुल के व्यवसायाध्यक्ष) के सभापतित्व में व्यायाम सम्मेलन संपन्न हुआ। जिसमें गुरुकुल के ब्रह्मचारियों के सामूहिक व्यायाम और अंगबल के प्रयोग हुए। अन्त में कुलमाता, भारतमाता और वैदिकधर्म के जयकारों के साथ उत्सव की समाप्ति हुई।

श्रद्धानन्द टूर्नामेन्ट

दिसम्बर के अन्तिम सप्ताह में श्रद्धानन्द बलिदान पर्व पर होने वाला यह वार्षिक टूर्नामेंट इस वर्ष उत्सव के दिनों में संपन्न हुआ। टूर्नामेंट का उद्घाटन समारोह गुरुकुल के उपाध्याय डाक्टर सुन्दरलाल जी भंडारी के कर कमलों से ६ एप्रिल को हुआ। इसमें रुड़की, सहारनपुर, दिल्ली, कपूरथला, देहरादून, मेरठ, बरेली आदि स्थानों से आई हुई कुल तेरह पार्टियों ने भाग लिया। अंतिम सामुख्य १५ एप्रिल को वाई. एम. सी. ए. दिल्ली तथा स्पोर्टिंग क्लब सहारनपुर के दलों में हुआ। दोनों दलों का खूब मुकाबला रहा। विशेष समय देने पर भी दोनों में से कोई दल विजयी नहीं हुआ। दोनों ही दल खूब डट कर जूझते रहे। अन्त में दोनों ही दल समान रहे। फलतः विजयोपहार छः छः महीने के लिए दोनों दलों के पास रहने का निर्णय किया गया और कुलपति श्री इन्द्र जी विद्यावाचस्पति ने चमकदार खिलाड़ियों को पुरस्कार प्रदान किए।

★

मुद्रक—श्री हरिवंश वेदालंकार। गुरुकुल मुद्रणालय, गुरुकुल कांगड़ी हरद्वार।
प्रकाशक—मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी की
विशेष गुणदायक औषधियां

च्यवनप्राश हाइपो

च्यवनप्राश में कैल्शियम व सोडियम आदि नवीन रासायनिक पदार्थ डालकर यह योग तय्यार किया गया है। खांसी, क्षय, निबलता दमा आदि में रामबाण है और शरीर वृद्धि के लिये उत्तम रसायन है।

मूल्य ३।) पाव।

सिद्ध मकरध्वज

स्वर्ण, कस्तूरी आदि बहुमूल्य वस्तुओं से तैयार किया गया है। सब प्रकार की निर्बलता को दूर करके शरीर में शक्ति व स्फूर्ति देता व नया जीवन लाता है।

मूल्य ३॥।) माशा, ४५) तोला।

बादाम पाक

बादाम, पिस्ता व अन्य गुणदायक वस्तुओं से तैयार किया गया है। स्वादिष्ट, बलवर्धक पाक है। मस्तिष्क व शारीरिक दुर्बलता को दूर कर शक्ति देता है।

मूल्य ४) पाव।

गुरुकुल चाय

जड़ी-बूटियों के योग से बनी देशी चाय है। सुख व स्वास्थ्य के लिये परिवार में इसका प्रयोग कीजिये। थकावट, हल्के बुखार, खांसी, जुकाम में तुरन्त लाभ दिखाती है।

मूल्य ।=) छटांक, १=) पाव।

बसन्त कुसुमाकर

सोना, चान्दी, मोती आदि से तैयार की गई यह औषधि बहुमूत्र और मधुमेह रोग में विशेष गुणकारी है। शरीर की नसों की निबलता को हटा कर समर्थ और बलवान बनाता है। मूल्य ३) माशा, ३६) तोला

चन्द्रप्रभा बटी

शिलाजीव, लोह भस्म, वंशलोचन आदि लाभदायक चीजों से तैयार की गई यह औषधि अनेक रोगों को दूर करके शरीर में नई शक्ति लाती है। खून की कमी, जिगर की निबलता, बवासीर तथा विशेषकर प्रमेह व स्वप्नदोष आदि में लाभदायक है।

मूल्य १) तोला, ४) छटांक।

महालोहादि रसायन

इसके सेवन से शरीर में नया रक्त पैदा होता है। प्रत्येक ऋतु में सेवन करने योग्य उत्तम औषधि है।

मूल्य ६) तोला।

द्राक्षासव

बलवर्धक, स्वादिष्ट पेय है। शारीरिक व मानसिक थकावट को दूर करके स्फूर्ति व शक्ति देता है।

मूल्य २।) पाव, २।) पौंड।

गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी (हरद्वार)

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गुरुकुल पत्रिका

ज्येष्ठ
२००६

विद्ययाऽमृतमश्नुते ।
गुरुकुल विश्वविद्यालय

वर्ष १
अङ्क १०

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय - हरिद्वार

वर्ष ३
अङ्क १०

गुरुकुल-पत्रिका

ज्येष्ठ
२००८

व्यवस्थापक
श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति
मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ा।

सम्पादक
श्री सुखदेव
दर्शनवाचस्पति

श्री रामेश बेदी
आयुर्वेदालंकार।

इस अङ्क में

अगले अंकों में

अन्य अनेक विश्रुत लेखकों की सांस्कृतिक, साहित्यिक व स्वास्थ्य सम्बन्धी रचनाएं।

मूल्य देश में ४) वार्षिक
विदेश में ६) वार्षिक

एक प्रति
छः आने

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

प्रकार का कार्य गांधी और उन के साथी ही कर सकते थे जिन्हें बौद्धिक पुनरुत्थान से कोई मतलब न था। और, यह पन्थों के समझौतों पर राष्ट्र की एकता खड़ी करने की उस मूर्खतापूर्ण नीति का कार्य था, जिस से गांधी-युग के सत्ताइस बरसों में पन्थों के झगड़े क्रमशः बढ़ते ही गये और अन्त में देश का विभाजन हो कर रहा। जब १९२४ में चित्तरञ्जनदास ने 'बंगाल ठहराव' के नाम से पन्थों का ठहराव किया, तब मैंने एक लेख लिखा था— राष्ट्रीय ठहराव—अर्थात् शर्तें पूरी हों तो देशभक्ति नहीं तो देशद्रोह (प्रभा, कानपुर,... ...१९२४)। सुभाषचन्द्र वसु ने लिखा है कि दास और उन के साथियों ने अपनी गलती शीघ्र पहचान ली थी। १९३१ के शुरू में गांधी-इर्विन-समझौता होने पर गांधी जब जिन्ना को मनाने-रिझाने में लगे थे, तब सुभाषचन्द्र ने उन से कहा था कि क्यों एक देशद्रोही की मिन्नत कर के आप उस का महत्त्व बढ़ा रहे हैं। आप को तो चाहिये कि केवल राष्ट्रवादी हिन्दुओं और राष्ट्रवादी मुस्लिमों की साझी माग सामने रखें जिस में संयुक्त निर्वाचन पहली बात हो। पर गांधी जी की समझ में यह बात न आई। वे १९२१ से ऐसे लोगों की संगत में पड़ चुके थे जिन के लिए स्वराज्य का अर्थ अपने लिए ऊंचे अधिकार पाना मात्र था। जिन्हें अपने तबके के मुसलमानों द्वारा ढिठाई से अपने लिए अधिकारों की माग की जाने पर उन के साथ मोल भाव कर समझौता करने के सिवाय और कोई रास्ता दिखाई न देता था।

अंग्रेज़ों की चतुर भेदनीति और गांधी जी की इस बहक से फिर हिन्दुस्तानी का आन्दोलन खड़ा हुआ। कहा गया कि हिन्दी उर्दू को मिला कर एक हिन्दुस्तानी भाषा बनानी चाहिए, जिस में संस्कृत और अरबी-फारसी दोनों ओर के कठिन शब्दों के प्रयोग से परहेज किया जाय और जनता की बोलचाल की भाषा बर्त्ती जाय। ठीक। किन्तु प्राथमिक पाठशालाओं की पढ़ाई में 'अन्तरीप' कहा जाय कि 'रास', समत्रिबाहु त्रिभुज' कहा जाय कि 'मसल्लस मुत्साविउल्-इज़ला'? अथवा, विद्यार्थियों को उतनी ही शिक्षा दी जाय जितनी साझी बोली में दी जा सकती हो? १९२७ में हा मैंने इस प्रचार के सम्बन्ध में लिखा था कि यदि पहले विश्व-युद्ध में इङ्गलैंड पर जर्मन अधिकार कर लेते और वहां कोई ऐसा पन्थ होता जो कहता कि हम ईसाई होने के नाते अपनी भाषा को हिब्रू में भी लिखेंगे और उस में जब नये शब्दों की आवश्यकता होगी तो लातीनी-यूनानी की बजाय हिब्रू से ही लेंगे तो इङ्गलैंड के जर्मन शासक इस हिब्रू-अंग्रेजी और लातीनी-अंग्रेजी का झगड़ा मिटा कर इन्हें एक करने और अंग्रेज बच्चों की शिक्षा को बाजारू बोलचाल की अंग्रेजी तक परिमित रखने की बात उठाने में अपना बड़ा लाभ देखते। बोलचाल की हिन्दुस्तानी में ठुमरी गाई जा सकती थी, विज्ञान की शिक्षा नहीं दी जा सकती थी, न भारत का संविधान लिखा जा सकता था। क्या इस साधारण बात को हमारे नेता देख न सकते थे?

गांधी जी की यह बात ठीक थी कि जहां तक हो सके ग्रन्थों में जनता की बोलचाल की निकटतम भाषा लिखी जाय। किन्तु शैली के इस प्रश्न को हिन्दी वाले पहले ही सुलझा चुके थे. इस विषय में उन्हें उपदेश की आवश्यकता न थी। पहलेपहल नागरी का प्रचार बढ़ा तो शिवप्रसाद सितारे-हिन्द जैसे लेखकों ने ऐसी भाषा लिखी जिसमें फारसी-अरबी का बहुत तेज छौंक रहा। उसकी प्रतिक्रिया

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

से ऐसी सम्प्रदाय उठा जो रुमाल की बजाय मुख-मार्जन वस्त्रखंड लिखने लगा। पर ये बातें १६१०-१२ से पहले की हैं। महावीरप्रसाद द्विवेदी और उन के समकालीनों ने इस के बाद जो शैली स्थापित कर दी, उस में सब धाराओं का सुन्दर मेल है और परिपक्वता है। सब लेखकों को किसी यांत्रिक शैली में कोई नहीं बांध सकता। विषय के अनुसार, पाठकों की रुचि के अनुसार, लेखक की प्रतिभा के अनुसार शैली-भेद होगा ही। मेरी कलम से साधारणतया सरल भाषा निकलती है। दूसरी तरफ, डा० भगवानदास दार्शनिक विषयों पर लिखते हैं तो संस्कृत और फारसी-अरबी तीनों के भारी-भरकम शब्द साथ-साथ बैठाते हैं। उस शैली में उन की गहरी समन्वय दृष्टि और उन का अभिजात व्यक्तित्व छलकता है। उनका बड़े बड़े शब्दों को जोड़ना उन के विचारों के साथ खूब फबता है। मैं उन की कृति से ज्ञान पाऊं और रस लूं कि शैली-भेद को ले कर उन से लट्ठबाजी करने चलूं?

और ये शैली के उपदेशक हैं कौन? इन्होंने कब कितनी पंक्तियां जनता की भाषा में लिखी हैं? अथवा कौन से कितने हिन्दी ग्रन्थों को पढ़ कर उन की शैली से ऊब कर उपदेश देना शुरू किया? जवाहरलाल नेहरु जब चियाङ्ग काई शेक से मिलने चुङ्गकिङ्ग गये थे तब एक चीनी ग्रन्थकार ने उन से पूछा था कि आपने अपनी मूल चिट्ठियां अंग्रेजी में लिखी थीं न? नेहरु ननु नच करने लगे तो उस ने कहा, मैं कारण नहीं पूछता, केवल यह निश्चय करना चाहता हूँ कि आपने अंग्रेजी में ही लिखी थीं। ऐसी दशा होते हुए भी आज हरेक राजनीतिक फेरी वाला यह मानता है कि वह हिन्दी के पुराने लेखकों को शैली का उपदेश दे सकता है! इस प्रवृत्ति को न टोकने का फल यह हुआ कि कुछ बे-लगाम लोग नागरी और अरबी लिपि के समन्वय से दोनों से बेहतर लिपि के विकास की भी डींगें हांकने लगे। कश्मीर के शिक्षा-विभाग के एक सञ्चालक ने सब से आगे रहने के लिए नागरी वर्णमाला का क्रम अलिफ बे पे......के अनुसार अ ब प......किया। ऐसे लोगों को मानसिक चिकित्सालयों में स्थान मिलना चाहिये था, पर वे अब भी हमारे शिक्षा विभाग में ऊंचे पदों पर हैं।

गांधी जी की पुकार सुन कर यदि हमारे लेखकों ने जनता की बोली से सम्पर्क बढ़ाया होता तो अच्छा ही होता। जनता हिमालय की सब से ऊंची चोटी को क्या कह कर पुकारती है, अपने पड़ोस की भू-रचना के तथ्यों को किन परिभाषाओं में व्यक्त करती है। अनेक पत्थरों मिट्टियों के, वृक्ष-वनस्पति के, मछलियों, पशुओं और पक्षियों के क्या नाम काम में लाती है। हमें अपने वैज्ञानिक वाङ्मय के लिए भी इस जानकारी की सख्त जरूरत है। पर क्या किसी हिन्दुस्तानी वाले ने हमें एक भी नया शब्द ढूंढ कर दिया? या इस दिशा की ओर एक पग भी बढ़ाया? जिन्हें हिन्दी वाला कहा जाता है उन्होंने भी इस दिशा में यथेष्ट न किया, तो भी कुछ तो किया ही है। राय कृष्णदास जैसे संस्कृताऊ हिन्दी के लेखक ने मुगल चित्रकला की शिल्पशाली के साथ-साथ उस की परिभाषाओं को भी, जो कि जनता की बोलचाल के शब्द हैं, 'गहरे पानी पैठ' जैसे ढूंढा और पाया है, उस तरह की खोज तो हमारे देश में और किसी से भी नहीं बन पड़ी।

गांधी जी या उन के एकाध बहके हुए साथी को छोड़ कर कोई भी हिन्दुस्तानी वाला ऐसा नहीं है जिस ने सचाई या ईमानदारी से हिन्दुस्तानी की पुकार उठाई हो। जिस किसी ने उठाई, उसकी

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

या तो इस से जीविका चलती थी, या हैसियत बनती थी और या इस लिए उठाई कि हिन्दी-उर्दू-हिन्दुस्तानी का यह झगड़ा बना रहे तो अपनी अंग्रेजी चलती रहे, जिस से अपना नेतृत्व बना रहे।

यों अंग्रेजों की कुटिल नीति और कांग्रेस नेताओं की नालायकी से यह गुत्थी और भी उलझ गई। पहले राष्ट्रवादियों ने उस का जो सुलझाव चाहा था वह और भी कठिन हो गया। उर्दू को यदि हिन्दी की बराबरी में राष्ट्रभाषा पद पर न बिठाया जाता और यदि उन दोनों की लिपियों में साझी भाषा लिखने की अनर्गल बात न उठाई जाती तो भी उर्दू के कारण यह समस्या तो थी ही कि उत्तरी हिन्दुस्तान में हिन्दू और मुस्लिम पन्थों के लोग एक-भाषी होते हुए भी दो विभिन्न लिपियों को बर्तने से जड़ से ही अलग अलग शिक्षा पाते। मुस्लिम पन्थ के लोग अपने देश के पुराने इतिहास से सम्पर्क न कर पाते और हिन्दुओं की संकीर्णता के कारण जो सामाजिक पार्थक्य पहले से था वह और बढ़ता जाता। युक्त प्रान्त में पहला कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल स्थापित होने पर १९३७ में यह प्रश्न सामने आया कि इस अंश में अंग्रेजों की चलाई पद्धति को कैसे बदला जाय। इस के लिए एक समिति नियुक्त की गई; जिस के अध्यक्ष नरेन्द्रदेव थे। उस समिति ने यह सुझाव दिया कि हिन्दी पढ़ने वाले बालकों के लिए एक वर्ष या छः मास उर्दू और उर्दू पढ़ने वालों के लिए उतना ही समय हिन्दी पढ़ना बाधित कर दिया जाय। हिन्दी वाले इस सुझाव से बहुत बिगड़े। यह ठीक था कि इस से प्रांत के बच्चों के दिमागों पर अनावश्यक बोझ लदता। तो भी इस से बेहतर कोई सुलझाव तब हो न सकता था। यदि हिन्दी पाठी बच्चों को अपना वह समय जो वास्तविक ज्ञान को प्राप्त करने में लगाया जा सकता एक फालतू लिपि सीखने में देना पड़ता, तो यह उनके समाज की संकीर्णता के लिए उचित दण्ड होता। उस दण्ड द्वारा समाज के भीतर की खाई यों पटने लगती कि हिन्दी वाले तो छः मास उर्दू सीख कर उसे प्रायः याद न रख पाते या उस का विशेष उपयोग न कर पाते, पर उर्दू वाले छः मास हिन्दी सीख कर उसे प्रायः भूल न पाते, उस की सुगमता और उसके वाङ्मय की ओर आकर्षित होते चलते।

उस समय तो वही सुलझाव ठीक था। पर आज जब कि अलग लिपि और अलग भाषा शैली का आग्रह करने वाले दो राष्ट्रों की झूठी पुकार मचा कर जाते जाते अंग्रेजों के हाथों देश के दो टुकड़े करा के अपने दो करोड़ देशभाइयों की बरबादी और दस लाख की हत्या करा चुके, तब उन के दुराग्रह पर किसी प्रकार भी कान नहीं दिया जा सकता। जिस प्रदेश में उन्हें रहना है वहां की साधारण प्रचलित लिपि और भाषा शैली उन्हें सीखनी ही चाहिए।

★

उच्चकोटि का मानसिक भोजन प्राप्त करने के लिए गुरुकुल-पत्रिका पढ़िये।

वार्षिक मूल्य देश में ४), विदेश में ६)।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गुप्तकालीन सामाजिक दशा

श्री हरिदत्त वेदालङ्कार

वर्ण-व्यवस्था

भारतीय समाज का मूल आधार वर्ण-व्यवस्था समझी जाती है; किन्तु गुप्त युग तक यह बहुत लचकीली थी। जात-पांत का विचार परिपक्व नहीं हुआ था। खान-पान, विवाह और पेशे विषयक वर्तमान कठोर व्यवस्थाएं नहीं चालू हुई थीं। इस काल की स्मृतियों में केवल शूद्रों के साथ ही खान-पान का निषेध है; किन्तु इन में भी अपने कृषक, नाई, ग्वाले और पारिवारिक मित्र को अपवाद माना गया है। शूद्र होने पर भी इन के साथ खान-पान में कोई दोष नहीं है। उस समय समाज में प्रायः सवर्ण विवाह होने लगे थे किन्तु असवर्ण विवाहों को भी वैध माना जाता था। अनुलोम (उच्च वर्ण के पुरुष के साथ निम्न वर्ण की स्त्री का सम्बन्ध) और प्रतिलोम (निम्न वर्ण के वर के साथ उच्च वर्ण की कन्या का सम्बन्ध) दोनों प्रकार के विवाह प्रचलित थे। वाकाटक राजा रुद्रसेन ने कट्टर ब्राह्मण होते हुए प्रभावती गुप्ता का विवाह वैश्य जातीय गुप्त कुल में किया। ब्राह्मण कदम्बों ने भी अपनी कन्यायें गुप्तों को दी थीं। विभिन्न वर्णों के अतिरिक्त विभिन्न जातियों में भी विवाह होता था। आन्ध्र के ब्राह्मण इक्ष्वाकु राजाओं ने उज्जयिनी के शक राज-परिवार की कन्या स्वीकार की थी।

गुप्त युग में पेशों की दृष्टि से भी वर्ण-व्यवस्था के नियम सर्वमान्य नहीं हुए थे। ब्राह्मण अध्ययन-अध्यापन आदि स्मृति-प्रतिपादित छः कर्मों के अतिरिक्त व्यापार, शिल्प और नौकरी के पेशे करते थे। वे क्षत्रियों का काम करने, स्रुवा छोड़ कर तलवार पकड़ने में भी संकोच नहीं करते थे। वाकाटक और कदम्ब वंशों के संस्थापक विन्ध्यशक्ति और मयूर शर्मा ब्राह्मण थे। गुप्त सम्राट् वैश्य थे। अनेक क्षत्रिय व्यापार और व्यवसाय करते थे। इस युग में शूद्रों का काम तीनों वर्णों की सेवा नहीं था। वे व्यापारी, शिल्पी और कृषक का काम कर सकते थे। उन में अनेक सेना में ऊंचे पदों तक पहुँचते थे।

इस काल में यद्यपि स्मृतिकार सवर्ण विवाहों पर बल दे रहे थे; किन्तु उन की व्यवस्था सर्वमान्य नहीं हुई थी। इस लिए इस समय हिन्दू समाज ने बाहर से आने वाली विदेशी जातियों को अपने में पचा लिया।

विदेशियों को हिन्दू बनाना

गुप्त युग से पहले मौर्य तथा सातवाहन युगों में भारतीय समाज ने यूनानी, शक, पह्लव और कुशाण अपने में विलीन कर लिए थे। १५० ई० तक पञ्जाब के कुशाण और पश्चिमी भारत के शक भारतीय बन चुके थे। तीसरी शताब्दि में आन्ध्र के इक्ष्वाकु राजा के पाणिग्रहण में दोष नहीं समझते थे। गुप्त युग में भी हिन्दू समाज की पाचन शक्ति बड़ी जबरदस्त थी, वे एक पीढ़ी में ही विदेशी को भारतीय बना लेते थे। हूण आक्रांता तोरमाण का बेटा मिहिरकुल पक्का शैव था। इसी समय जावा, सुमात्रा, बोर्नियो आदि द्वीपुओं तथा इराक और सीरिया में हिन्दू धर्म फैला हुआ था। यह सम्भव है कि इन सब प्रदेशों में काफी विदेशियों को हिन्दू बनाया गया हो। इन सब उदाहरणों से स्पष्ट है कि इस समय तक वर्तमान काल का यह विचार दृढ़ मूल नहीं हुआ कि हिन्दू समाज में प्रवेश केवल जन्म द्वारा हो सकता है। हिन्दू धर्म से जो भी प्रभावित हो, वह हिन्दू आचार-विचार और संकल्प ग्रहण कर के एक ही पीढ़ी

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

में शादी-ब्याह द्वारा हिन्दू समाज का अभिन्न अंग बन जाता था। कट्टर ब्राह्मण भी विदेशियों के साथ विवाह बुरा नहीं समझते थे। इस प्रकार हिन्दू समाज में दूसरी जातियों को अपने में विलीन करने की सामर्थ्य गुप्त युग तक प्रचुर मात्रा में विद्यमान थी। यह शक्ति मध्य युग में बिलकुल नष्ट हो गई।

अस्पृश्यता

किन्तु वर्तमान छूत-छात उस समय में थोड़ी-बहुत मात्रा में अवश्य थी। फाहियान के वर्णन से स्पष्ट है कि चाण्डाल मुख्य बस्ती से बाहर रहते थे और बस्ती में आने पर सड़क पर लकड़ी पीटते हुए चलते थे ताकि उस के शब्द से सब लोगों को उन की उपस्थिति का ज्ञान हो सके और वे उन के सम्पर्क से दूषित होने से बचे रहें।

गुप्त युग में बाल-विवाहों का प्रचलन काफी हो गया था। इस से पहले युगों के मनु आदि स्मृतिकार उपयुक्त वर न मिलने पर कन्या के पिता को उसे अविवाहित रखने की अनुमति देते हैं, किन्तु इस युग की याज्ञवल्य और नारद-जैसी स्मृतियां ऋतु काल से पहले कन्या की शादी न करने वाले अभिभावकों को नरकगामी बताती हैं। उस समय विधवा-विवाह की प्रथा भी प्रचलित थी। चन्द्रगुप्त द्वितीय ने सम्भवतः ३७५ ई० में ध्रुवदेवी से इसी प्रकार का विवाह किया था। कुछ अवस्थाओं में स्त्री अपना पहला पति छोड़ कर दूसरे पुरुष से विवाह कर सकती थी। दूसरा विवाह न करने वाली विधवाएँ प्रायः ब्रह्मचारिणी रहती थीं। सती प्रथा का व्यापक प्रचार और धार्मिक महत्व न था। इस युग में सती होने का केवल एक ही ऐतिहासिक प्रमाण मिलता है। भानुगुप्त के सेनापति गोपराज की मृत्यु के पश्चात् उन की पत्नी चिता पर चढ़ी थी।

स्त्रियों की स्थिति

उच्च वर्गों में इस समय स्त्रियों की स्थिति बड़ी उन्नत थी। वे शासन-प्रबन्ध में प्रमुख भाग लेती थीं। कुछ प्रांतों में, विशेषतः कन्नड़ प्रदेश में, वे वे प्रांतीय शासक और गांव के मुखिया का भी कार्य करती थीं। दक्षिण में स्त्रियों को पृथक् पर्दे में रखने की परिपाटी नहीं थी। वहां के राज-परिवारों की स्त्रियां अभिलेखों में न केवल संगीत और नृत्य में प्रवीण बताई गई हैं किन्तु वे सार्वजनिक रूप से इन कलाओं में अपने नैपुण्य का भी प्रदर्शन करती थीं। कुलीन स्त्रियां उच्च शिक्षा प्राप्त करती थीं।

किन्तु यह उन्नत स्थिति उच्च वर्ग की नारियों की ही थी। साधारण स्त्रियों की दशा गिर रही थी। बाल-विवाह प्रचलित होने से उन का उपनयन असम्भव हो गया। याज्ञवल्क्य ने उन्हें उपनयन और वेदाध्ययन का अनधिकारी माना। वैदिक शिक्षा न होने पर भी स्त्रियों को कला और साहित्य की शिक्षा दी जाती रही। इस युग में शील भट्टारिका आदि अनेक स्त्री लेखिकाएं और कवयित्रियां हुईं। स्त्रियों के पुराने अर्धांगिनी और समानता के आदर्श में इस युग में परिवर्तन आने लगा। स्त्रियों पर पति की प्रभुता बढ़ने लगी। कालिदास ने लिखा है—'पति ही स्त्री का स्वामी है, वह जो चाहे कर सकता है।'

जीवन का आदर्श

गुप्त युग की एक बड़ी विशेषता यह है कि इस समय तक भारतीयों का सामाजिक और वैयक्तिक जीवन बड़ा सन्तुलित था। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष नामक चारों पुरुषार्थों का उचित उपभोग जीवन का आदर्श समझा जाता था। बाद

[शेष पृष्ठ १४ पर]

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

दाम्पत्य जीवन आत्मिक-प्रगति के इतिहास का दूसरा अध्याय है

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

जीवन के गहन अन्धकार में, मानव-दीनता के मध्य प्रदेश में, मन, वाणी और प्राण के मूल में ही ईश्वर का शब्द, आनन्द का विद्य द्-गृह और विश्व का अदृश्य-नियन्ता है, जो सब के कामों का साक्षी, सब की आत्मा में व्यापक, सब की एकमात्र शरण, विश्व-सखा और इन्दु-सूर्य का तेजस्वी व्यक्तित्व सृष्टि के संपालन के लिए प्रदान करने वाला है। हम उसके चरणों में बारम्बार अपना प्रणाम समर्पण करते हैं।

ईश्वर के इस शब्द को सुनना, उसकी प्रदर्शित की हुई आत्म-ज्योति में निर्भय होकर पुरोगामी होना, उसके आनन्द और मंगलमय-सौंदर्य का पान करना, उसकी सत्य-रूपात्मक-सत्ता का साक्षात्कार करना, उसमें तन्मय हो जाना और उसके स्वरूपात्मक-आदर्श के सर्वभूतहित-निष्काम-सेवा, ज्ञान, श्रद्धा और प्रेम-रूप तत्व को अपने जीवन का मुख्यतम सदाचार निश्चित करना हमारे अहोपुण्य जीवन का लक्ष्य है। जिस प्रकार जीवन के दो विन्दुओं में विद्यार्थी जीवन और सैनिक जीवन को ही सर्वत्र ओतप्रोत माना गया है, उसी प्रकार दाम्पत्य-जीवन भी मनुष्य के जीवन की प्रगति का दूसरा अध्याय है। विद्यार्थी जीवन की साधना व्यक्ति को शुद्ध-बुद्ध और निर्मल-चक्षु करती है, जिस से वह दृश्य पदार्थ के अधिष्ठान आत्मा की सत्यता का ज्ञान करे। सैनिक जीवन मनुष्य की अनुभूतियों को कठोरताओं का सामना कराता हुआ, संघर्ष और अशान्ति के बीच भी, उसे शनैः शनैः परम-सिद्धि की ओर ले जाता है। जहां विद्यार्थी जीवन मनुष्य के अवयव का पोषक है, वहां सैनिक जीवन उसके अवयवों की पूर्ति का आधार है।

इसी प्रकार दाम्पत्य जीवन भी दो विभिन्न-व्यक्तियों को एक सिद्धांतवादिता में ग्रथितकर, केवलमात्र सामाजिक सम्बन्ध का ही द्योतक नहीं है। प्रत्युत वह दो पृथक्तम जीवनों के आदर्श का समन्वय तथा जीवन दर्शन का दूसरा अध्याय है; जहां मनुष्य द्वैत को अद्वैत की स्वाभाविक भावना से परिज्ञात करता है। केवल मात्र यही नहीं, वह बाहुल्य के द्वारा ही, अनेकता के द्वारा ही एकता का अनुभव करता है।

जिस दिन आप दाम्पत्य जीवन के प्रवेश का संकल्प कर रहे हो, उसी दिन यह भी जानो कि आप पुण्यतम जीवन के आध्यात्मिक ध्येय के दूसरे मंच पर पदार्पण कर चुके हो। क्योंकि यह जीवन का एक ऐसा स्तर है, जहां आप स्वभावतः पारस्परिक सहयोग, प्रेम, व्यवहारप्रियता, और जीवन के अर्थ को जान पाते हो। आपको जीवन के उत्तरदायित्व का गुरुतर भार वहन करना होगा ही और यहीं आपकी सच्ची परीक्षा हो सकेगी। कितना धैर्य आप में है, कितनी समझ आपने संचित की है और किस प्रकार आप समय-समय पर पारिवारिक कलहों का और कष्टों का निवारण शान्ति से कर पाते हो। कितनी बार आप ने सत्यशीलता को इस दाम्पत्य जीवन की कसौटी पर कसना होगा, यह आप तभी निश्चय कर पायेंगे, जब इस जीवन का सच्चा अर्थ समझ लें। यह भी तो सैनिक जीवन है। क्या धनी क्या निर्धन सभी को इस जीवन के द्वन्द्वों का सामना करना पड़ेगा ही। और कई बार आपको निराशा का सामना करना पड़ेगा। यदि आप दोनों का स्वभाव एक सार नहीं हुआ तो आप को किस प्रकार इस समस्या का समाधान करना चाहिए,

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

वह आप अब अपने जीवन के इस दूसरे अध्याय में पढ़ेंगे। अतः आप जान गये होंगे कि आपका यह नवजीवन साधारण-जीवन का द्योतक नहीं। आज से आपने अपने जीवन की सत्यता का साक्षात्कार करने का संकल्प किया है। इसी विधान के अनुकूल आप अपने जीवन के सभी क्षेत्रों में सात्त्विक-प्रगति का सूत्रपात करते हुए, आत्मनिष्ठा और साफल्य का सेहरा बांध लें, क्योंकि आज दो जीवन 'परस्परं भावयन्तः' के सिद्धान्त पथ पर जीवन-श्रेय के महामहिम-ईश्वरत्व की प्राप्ति के लिए सन्नद्ध हो चुके हैं।

आज से आप का जीवन एक सतत–संग्राम होगा—भले ही वह मध्यम हो अथवा तीव्र। अतः आप को विशेष ध्यान रखना होगा कि आप किसी प्रकार भी इस संग्राम में अपने व्यक्तित्व को पराजित न होने दें, अर्थात् जीवन के मायामय–भूल-भुलैयों में अपना पथ खो कर, गृहस्थी के इस परम-पावन तीर्थ को अशांति-संकुलित न कर दें।

मैं जानता हूँ कि आप को कई प्रकार की कठिनाइयों का सामना भी करना होगा परन्तु वे सर्वथा आभास मात्र ही होंगी। समय-समय पर स्वभाव की तारतम्यता पारस्परिक-कलह को भी जन्म दे सकती हैं, जैसा आजकल सर्वथा सर्वत्र देखा जाता है। परन्तु आप को मैं सावधान करना चाहता हूँ कि किसी भी अवस्था में आप अपने पवित्र-सम्बन्ध को विच्छिन्न न होने देना। आधुनिक सभ्यता के किसी भी कलिदूषित-आचार का व्यवहार नहीं करना। कोयले से हीरा ले कर चले जाना ही उत्तम है। आप को शिक्षा भी मिल चुकी है। आप विश्व की स्थिति से भी परिचित हैं। अतः आप को अपनी विद्या का सदुपयोग करना होगा और इस विधि से ही शांति और आनन्द की प्राप्ति करनी और करानी होगी।

आप आज देवों के साक्षीत्व में इस सम्बन्ध संयोजित हो रहे हैं, यह सदा स्मरण रहे। आपने संकल्प किया है कि आप सदाचार और सतीत्व का पालन करेंगे। मैं आप से अनुरोध करूंगा कि आप अपने संकल्प को दृढ़ बनाने के लिए नित्य प्रति साधना करें और किसी भी अवस्था में अपने उपास्य को न भूलें, अपने लक्ष्य को विस्मृत न करें, अपने जीवन की सत्यता को दूषित न होने दें तथा अपनी आगामी सन्ताना के लिए धार्मिक संस्कार का बीज वपन करें।

कभी भी इन विषय-पदार्थों की ओर अधिक नहीं दौड़ना, क्योंकि इन का परिणाम सदा ही दुःखदायी होता आया है। सरलता को अपनाकर ही आप अपने जीवन के अशंकित-मारू को शांत कर पायेंगे। सुख तो सर्वदा भूमा में। 'यो वै भूमा तत्सुखं'–यही तो श्रुति का वचन है। 'नाल्पे सुखमस्ति'–इस अल्प भोग वर्ग में सच्चा सुख कहां! क्या हमारा जीवन इसी लिए हुआ है? यदि ऐसा है तो हम किस रूप में अन्य योनियों से व्यक्ति-और गौरव पदवी समन्वित हो पायेंगे? हमारे जीवन का अर्थ तो कुछ और है। वह है इस देह में, इस अनेकता में, इस संसार में, इस द्वन्द्व में, इन रागद्वेषादि-आक्रमणों में–सच्ची शांति का उद्बोधन प्राप्त करना, जिस को हम शिक्षा के अभाव से भूल ही गए हैं। परन्तु मैं न तो भूला हूँ और न आप को ही भुलाना चाहता हूँ। यदि आप सच पूछें तो मेरा आदर्श दाम्पत्य-जीवन को महत्व ही देता आया है। परन्तु कब? जब कि दोनों सत्य-व्यवहार पर हों और सच्चरित्रता को न भूलें।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

मैं कोई नई बात नहीं कर रहा हूँ। आपने सती सावित्री, मदालसा, अनुसूया, अरुन्धती तथा अन्यान्य भारतीय-नारियों का उपाख्यान पढ़ा ही होगा और आप अवश्य जान पायेंगे कि किस प्रकार उन लोगों ने अपने जीवन को हम लोगों के लिए आदर्श रूप में अमर कर दिया। अतः आप भी आत्म दानशीलता को अपने जीवन का सदाचार विकाशक-अंग बनायें। कीर्तन और ईश्वर भजन सदा और करते रहना।

आप दोनों पवित्र-सूत्र में आबद्ध हो रहे हैं। आपने प्रतिज्ञा की है और आप उस प्रतिज्ञा का अनुपालन करते हुए, वेदों की आज्ञा के अनुसार शतशरद्जीवी होवें और सदा चिरकल्याण और सौभाग्य, तुष्टि-पुष्टि, भक्ति-मुक्ति का संप्रसाद प्राप्त करें, देवत्व पदवी समभिलंकृत होवें तथा आजीवन एक आत्मा, एक हृदय, एक तत्त्व, एक विचार और एक विश्व की रचना में कृतकर्म होते हुए, वेदोक्त परम-श्रेय के भागी और श्रुतिमार्ग के यशस्वी होवें।

★

गुप्तकालीन सामाजिक दशा

[पृष्ठ ११ का शेष]

में भारतीय जीवन में धर्म की प्रधानता हो गई। परलोक के लिए इहलोक की उपेक्षा की जाने लगी, अधिकांश समय व्रत तथा पूजा-पाठ को दिया जाने लगा, सन्यास को उच्च और काम को हेय दृष्टि से देखा जाने लगा, किन्तु गुप्त युग तक ऐसा नहीं था। अर्थ और काम की धर्म और मोक्ष के समान महत्ता थी। समाज चारों पुरुषार्थों की प्राप्ति के लिए तुल्य रूप से यत्न करता था। गुप्त युग की चौमुखी उन्नति का मूल कारण यही है। इस काल में जहां धर्म और दर्शन में उन्नति हुई वहां साहित्य ललित एवं उपयोगी कलाओं और विज्ञानों का भी उत्कर्ष हुआ।

★

वैदिक ब्रह्मचर्य गीत—लेखक श्री अभय विद्यालंकार। वेद में ब्रह्मचर्य की महिमा क्या बताई गई है, ब्रह्मचारी कौन होता है और ब्रह्मचारी में कितनी महान् शक्ति बताई गई है—इस का वर्णन आपको इस पुस्तक में मिलेगा। इस में अथर्ववेद के ब्रह्मचर्य-सूक्त का एक-एक मन्त्र लेकर उस की विस्तृत व्याख्या की गई है और अन्त में शब्दार्थ दे दिया गया है। अपने जीवन को ऊंचा और सुखी बनाना चाहने वाले इसे अवश्य पढ़ें और अपने बच्चों के हाथ में इसकी एक प्रति अवश्य दें। मूल्य २)

पता--प्रकाशन मन्दिर, गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी, हरिद्वार।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

हास्योपचार सर्वोत्तम है

प्रो० रामचरण महेन्द्र एम. ए.

प्रसन्नता जन्तुनाशक औषधि है, जिस व्यक्ति ने यह तत्व सर्व प्रथम मालूम किया होगा उसकी गिनती महा चिकित्सकों में होनी चाहिए। हास्य तथा प्रसन्नता शरीर तथा मन पर आश्चर्यजनक प्रभाव डालते हैं। और शोक, भय, चिन्ता, क्लेश जैसी प्राणघातक वृत्तियों का उन्मूलन क्षण भर में कर डालते हैं। आनन्द ईश्वरीय गुण है। चिन्ता, क्लेश इत्यादि आसुरी तत्व हैं। ईश्वरीय गुण का प्रतीक आनन्द शरीर में मधुर रस उत्पन्न करता है और किसी अव्यक्त मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रिया से शरीर और मन पर तत्काल शान्ति का अलौकिक प्रभाव डालता है। जिस समय आनन्द तथा प्रसन्नता अपना प्रभाव प्रकट करते हैं तो समस्त प्रतिकूल प्रसंग विलीन हो जाते हैं। शरीर के अणु-अणु में नवोत्साह का संचार हो उठता है।

हँसने से तात्पर्य है कि आपके मुख की कली फूल की पखुरी की भांति खिल उठे, रोम रोम में नव स्फूर्ति दौड़ जाय, जीवन रस से, नई शक्ति से, ओत-प्रोत हो उठे, मन की दुर्बलता, क्लेश, चिन्ता, दुःख की मलिनता या बिकार धुल जांय। मुसकराहट ज्ञान तन्तुओं में जो कुछ दुर्बलता अथवा चिन्ता होती है उसे तत्काल दूर करती है। आनन्द का प्रभाव शरीर तथा मन के कण कण में होती है। जिस जगह औषधि लाभ नहीं पहुँचाती, जहां इंजेक्शन, कुनैन या अन्य कृत्रिम साधन कार्य नहीं करते, वहां हास्य भाव अपना कार्य करता है।

विपत्ति, चिन्ता तथा व्याधि की हास्य के साथ शत्रुता है इस लिए प्रसन्नता की जितनी अधिकता होगी, उतनी ही व्याधि की न्यूनता होगी। जो हंसते हुए जीवन बितायेगा उसका जीवन उतना ही स्वस्थ होगा। यदि आप रोग तथा व्याधि से मुक्ति चाहते हैं, जीवन का बीमा चाहते हैं, सौ वर्ष तक जीना चाहते हैं तो एक ही मार्ग आपके समक्ष है—अन्तर से, वास्तविक अन्तःकरण से—हंसो। खूब खिलखिला कर हास्य फैलाओ। हंस हंस कर रोग व्याधियों को मार भगाओ। हंसो और सारा संसार तुम्हारे साथ आनन्द से विभोर हो खिल खिला उठेगा। रोओ, किन्तु तुम्हारे साथ रोने वाला और कोई न मिलेगा। यदि तुम सुख से जीवन व्यतीत करना चाहते हो तो हास्य की महिमा को अविलंब समझो और आज से अभी से उसका अभ्यास प्रारम्भ कर दो। अपने जीवन को हास्य से मधुर बनाओ। स्वयं भी हंसो, तथा दूसरों को भी हंसाओ।

जब हम हंसते हुए जीवन व्यतीत करते हैं तो हमारे लिए सारा संसार परिवर्तित हो जाता है और हम उसे एक नवीन दृष्टिकोण से निरीक्षण करने लगते हैं। मनुष्य को यह गांठ बांध लेना चाहिए कि जिस प्रकार भोजन, जल, वायु इत्यादि जीवन शक्ति के पोषक तत्व हैं, उसी प्रकार और सच पूछा जाय तो उससे भी अधिक हास्य तत्व-आनन्द में मग्न रहना आवश्यक है।

अतः हसें, खिलखिला कर, बिना किसी प्रतिबन्ध के, हंसें। जब समस्त संसार आपको रुलाने को, जीवन के युद्ध में जब आँधी और तूफान वेग से आता दिखाई देता हो, जब यह प्रतीत होता हो कि जीवन नौका उलट कर समुद्र की लहरों में विलीन हो जायगी, तब खिलखिला कर हंस दें। आंधी, तूफान शान्त हो जायगा, जीवन नौका पुनः आनन्द से चलने लगेगी, हृदय खुशी से उछलने लगेगा।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

खुल कर हँसने से फेफड़े, पेट आदि के आन्तरिक अवयवों को व्यायाम प्राप्त होता है। हृदय अधिक तीव्रगति से कार्य करने लगता है। रक्त का प्रवाह बढ़ जाता है, हास्य नेत्रों की शक्ति को तेजवान करता है, छाती फैलती है और शरीर के प्रत्येक अंग को स्वास्थ्यप्रद गर्मी पहुँचती है। कठिन परिश्रम के मध्य में खुल कर हँस लेने से, मस्तिष्क को बहुत कुछ विश्राम प्राप्त हो जाता है, थकावट दूर हो जाती है और पुनः नवीन जोश से काम में जी लग जाता है।

हास्योपचार के लिये सहनशीलता की आवश्यकता है। जो जरा सी बात पर उद्विग्न हो उठता है, वह कैसे हंस कर रोग दूर कर सकता है? हँस वही सकता है जिसमें दूसरों के अपराध क्षमा कर टाल देने की शक्ति हो, प्रतिहिंसा की ज्वाला हृदय में न सुलगती हो। यदि आपके विरुद्ध कोई अपशब्द कहे तब भी उद्विग्न न हों। यदि कोई आपको रुलाने के लिए तैयार बैठा हो, हानि का हिमालय टूट पड़ने को हो, तो भी हंसें।

आप हंसना सीखिये। दूध पीने वाला बालक जैसे निर्दोष हंसी हंसता है, वैसी ही हंसी, मस्ती बिखेरने वाली हंसी सर्वोत्तम दवा है। हास्य सेवन का आनन्द लें। हंसने वालों का संग करें, आनन्द जनक भविष्य को ही अपने सामने रक्खें, प्रत्येक पहलू में आनन्द ही देखें, बरतें, सुनें और सुनायें। हास्य ही आपके दुःख दर्द की एकमात्र दवा है।

हँसना और प्रसन्न रहना आप अपने स्वभाव का एक अंग बना लीजिए। खुशी में, सफलता में, प्राप्ति में, सम्पन्नता में तो हर किसी को हंसी आती है, असंस्कृत मनुष्य भी प्रसन्न होते, इसमें कोई विशेष बात नहीं। आपको जिस कलापूर्ण हंसी का अभ्यास करना है वह है हर स्थिति की प्रसन्नता। जब परिस्थितियां आपके विपरीत हों, असफलता का अन्धकार छाया हुआ हो, हानि हो रही हो, दिन काटना कठिन हो रहा हो उस स्थिति में भी खिल खिला कर हँस पड़ना चाहिए।

नमकीन और मीठा दोनों ही स्वाद अपने अपने ढंग का प्रसन्नतादायक स्वाद देते हैं, विपत्ति और सम्पत्ति दोनों ही स्थितियों में आपको आशान्वित, प्रसन्नचित्त, उत्साहित और प्रयत्नशील रहना चाहिए। प्रसन्नता द्वारा अनेक शारीरिक और मानसिक रोगों का अभाव और उपचार हो जाता है। प्रसन्न रहना, निरोग जीवन का ऐसा राज मार्ग है जिस पर चल कर आप आसानी से स्वस्थ, बलवान और दीर्घजीवी बन सकते हैं।

★

वरुण की नौका—लेखक श्री प्रियव्रत, आचार्य, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय। कर्मफल, पुण्य, पाप, कर्तव्य और अकर्तव्य की इस पुस्तक में मीमांसा है। राजा वरुण प्रभु की आंखें सब जगह पर हैं। कर्मफल विज्ञान के जिज्ञासुओं के लिये यह पुस्तक एक वरदान है। लेखक ने अत्यन्त सरल भाषा में सच्चे सुख का सच्चा उपाय इसमें बताया है। प्रभु की कृपा किस पर होती है और कैसे कर्म करके हम प्रभु के प्यारे हो सकते हैं इत्यादि विषय पुस्तक में दार्शनिक गहराइयों के साथ सरल रूप में वर्णित हैं।

मूल्य प्रथम भाग ३), द्वितीय भाग ३)।

पता—प्रकाशन मन्दिर, गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी, हरिद्वार।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

हरिद्वार का नया संग्रहालय

[गुरुकुल विश्वविद्यालय का पुरातत्व संग्रहालय]

श्री मदनमोहन नागर एम. ए. अध्यक्ष, प्रांतीय संग्रहालय, लखनऊ।

हरिद्वार भारतवर्ष का एक अति प्राचीन महत्वपूर्ण तीर्थ स्थान है और इस के प्राचीन ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक गौरव को देख कर उत्तरप्रदेशीय सरकार द्वारा स्थापित संग्रहालय-पुनर्निर्माणसमिति ने दो वर्ष पूर्व अपनी रिपोर्ट में सरकार को यह सुझाव दिया था कि इस नगरी में एक प्रादेशिक संग्रहालय खोला जाय। हर्ष का विषय है कि गुरुकुल विश्वविद्यालय ने अग्रसर होकर इस कार्य को अपने हाथों में लिया है। और हमें आशा है कि इसके सतत प्रयत्न तथा भविष्य में मिलने वाली सरकारी सहायता से यह संग्रहालय विशेष उन्नति करेगा तथा कालान्तर में एक प्रादेशिक संग्रहालय का रूप धारण कर के हरिद्वार और उस के समीपवर्ती प्रदेश में बिखरी हुई वस्तुओं को एकत्रित कर के वहां के प्राचीन इतिहास और संस्कृति पर अमूल्य प्रकाश डालने में सहायक होगा।
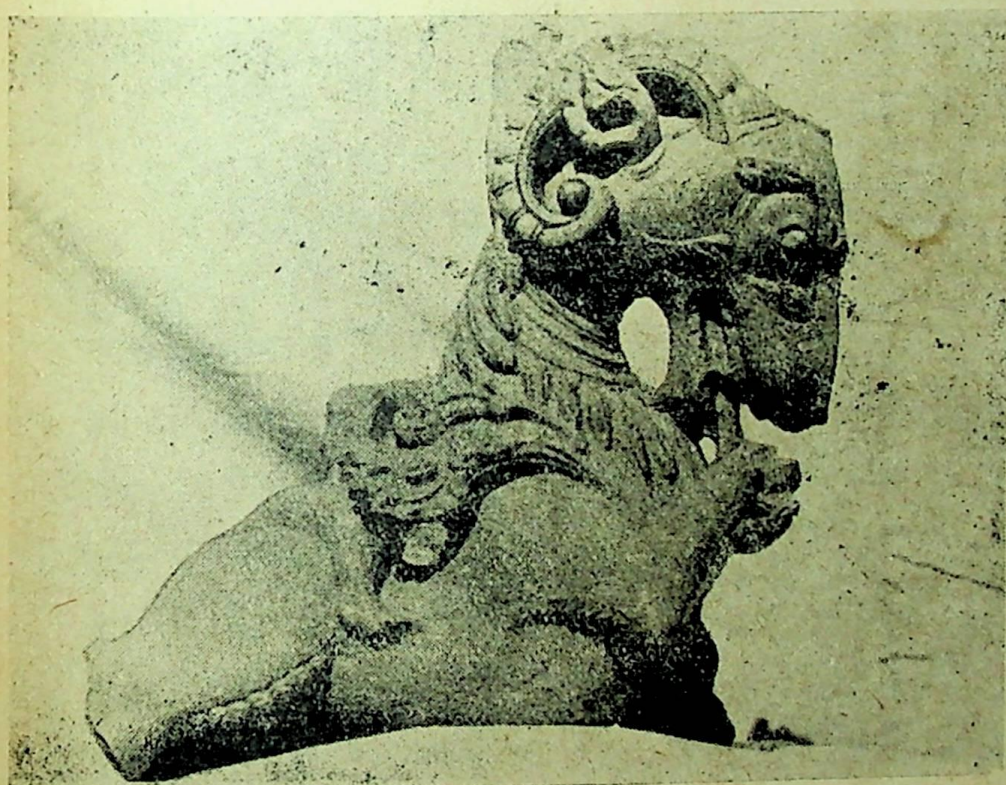
अग्निवाहन मेष

★ मायापुर में खुदाई से प्राप्त। मेष पर सवार अग्नि की मूर्ति दुर्भाग्यवश बिल्कुल खंडित हो चुकी है। मथुरा का लाल पत्थर, काल लगभग ८ वीं शती ई०। गुरुकुल संग्रहालय में सुरक्षित।

मुझे आज प्रथमवार गुरुकुल विश्वविद्यालय के अन्तर्गत स्थापित संग्रहालय देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। संग्रहालय एक भव्य भवन में स्थापित है और इस का संग्रह चार विभागों में यथा प्राचीन

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

मूर्तियां, प्राचीन सिक्के, चित्र तथा अन्य स्थानीय कला में विभाजित किया गया है। यद्यपि संग्रहालय स्थापित करने का यह प्रयास केवल एक वर्ष का का ही है, तथापि इतने थोड़े समय में इतनी सुन्दर तथा उपयोगी वस्तुओं का
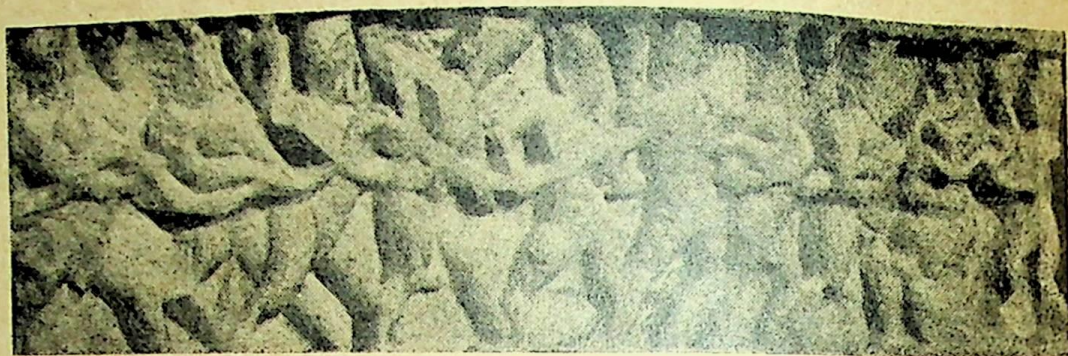
समुद्रमन्थन

★ झींवरहेड़ी (जि० सहारनपुर) से प्राप्त। इस फलक में देवताओं द्वारा समुद्रमन्थन के दृश्य का बहुत ही सजीव अङ्कन है। काल १० वीं शती ई०।
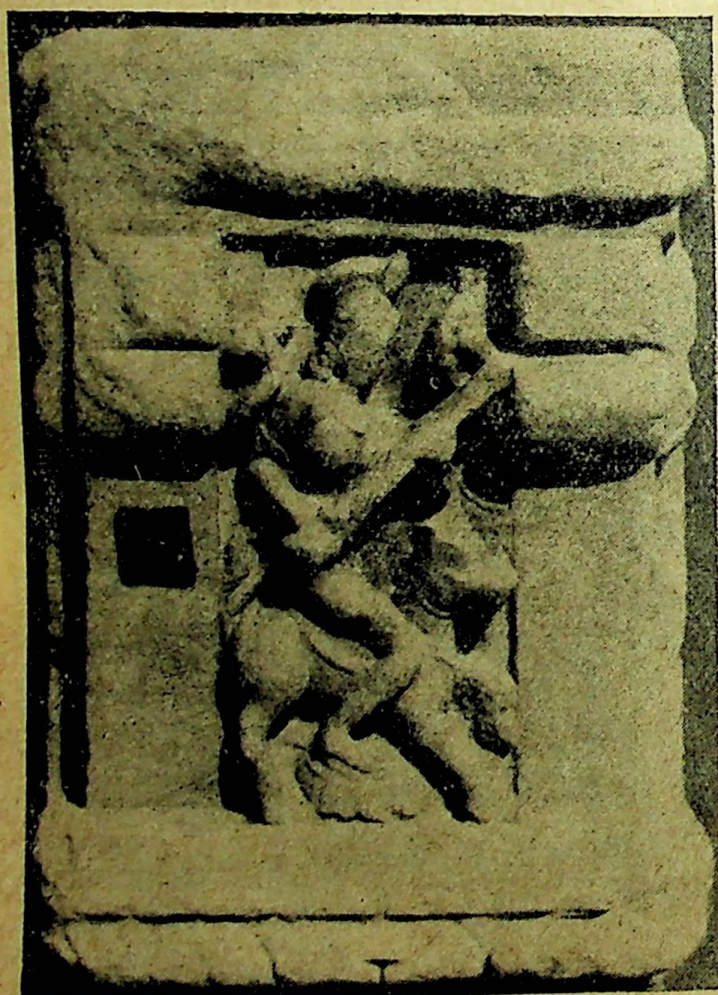
प्रचुरमात्रा में संग्रह कर लेना तथा उन्हें सुव्यवस्थित एवं सुसंगठित रूप से प्रदर्शित करना केवल अधिकारियों के अथक प्रयास तथा लगन को सूचित करता है।

संग्रहालय में मूर्तियों आदि के उदाहरणों के अतिरिक्त तीस चालीस चित्रों का एक अपूर्व संग्रह है। यद्यपि ये चित्र १९ वीं शताब्दी के हैं और पहाड़ी शैली के ह्रास को सूचित करते हैं फिर भी संग्रहालय में इन की उपयोगिता के विषय में कोई संशय नहीं हो सकता। इन चित्रों को हरिद्वार के प्रमुख नागरिक श्री गंगा प्रसाद जी मिश्र ने संग्रहालय को अस्थायी रूप से प्रदान किया है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि मिश्र जी

सिंहवाहिनी दुर्गा

★ कांगड़ी गांव (जि० बिजनौर) के एक भूमिगत मन्दिर से प्राप्त। काल १० वीं शती ई०।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

चित्रित हैं और संग्रहालय में जहां तक हो सके इन के नमूने उपलब्ध करके प्रदर्शित करने चाहिए। जब यह सम्भव नहीं है तब तक यह अधिक उपादेय होगा कि इन चित्रों के माइक्रोफिल्म चित्र तैयार कर के प्रदर्शित किए जांय।

संग्रहालय के निरीक्षण करने में इस के अध्यक्ष श्री हरिदत्त वेदालंकार तथा श्री रमेश बेदी आयुर्वेदालंकार ने मेरी बड़ी सहायता की है और मैं विशेषरूप से इन दोनों महानुभावों के प्रति अपना आभार प्रकट करता हूं।
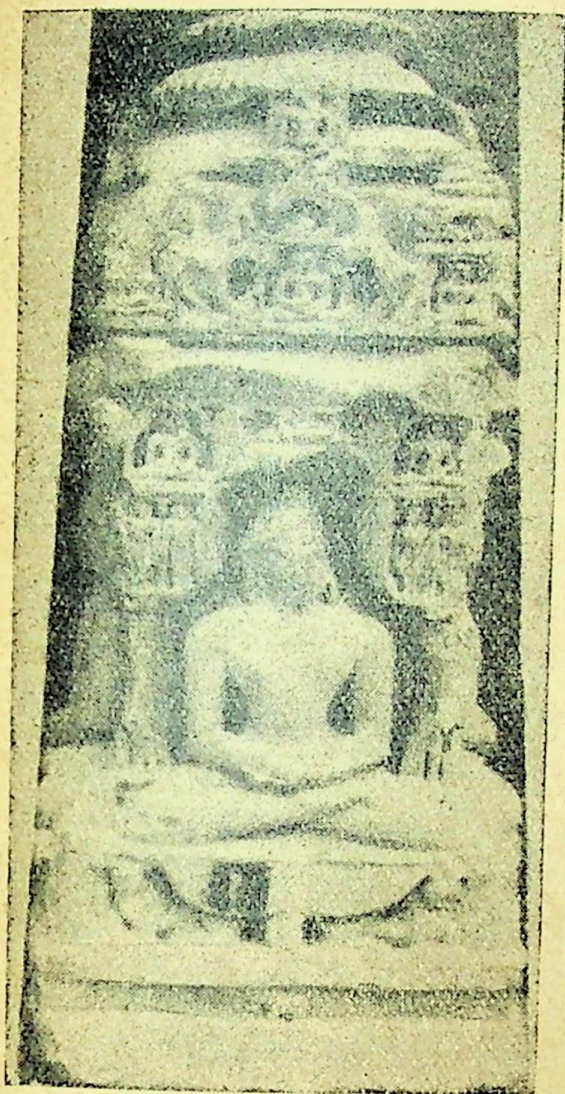
जैनतीर्थंकर

★ आमसोत (जि० बिजनौर) से प्राप्त एक प्राचीन मन्दिर शिखर। इस पर जैन तीर्थंकरों की मूर्तियां उत्कीर्ण हैं।

ऐसे प्रतिष्ठित तथा अनुभवी कलाप्रेमी निश्चय ही इन चित्रों की उपादेयता संग्रहालय में समझ कर उन्हें स्थायी रूप से अब संग्रहालय को दान देने की कृपा करेंगे।

हरिद्वार नगर की कई एक प्राचीन इमारतों पर भी १९ वीं शताब्दी के बहुत से रंगीन भित्तिचित्र

चतुर्मुख ब्रह्मा

★ मायापुर की खुदाई से प्राप्त।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA
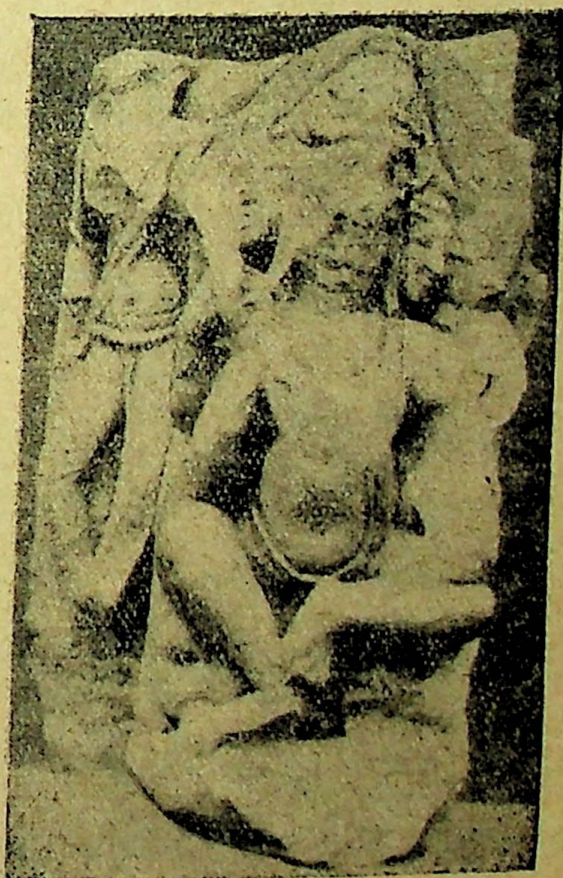
होलिकोत्सव

★ कनखल का एक रङ्गीन भित्तिचित्र : काल १६ वीं शती का प्रारम्भ : गुरुकुल संग्रहालय की आर्ट गैलरी से।

आसावरी रागिनी

★ बीन बजा कर जंगली सांपों को वश में करती हुई एक स्त्री।

कनखल का एक प्राचीन भित्तिचित्र। गुरुकुल संग्रहालय की आर्ट गैलरी में सुरक्षित।

★

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA
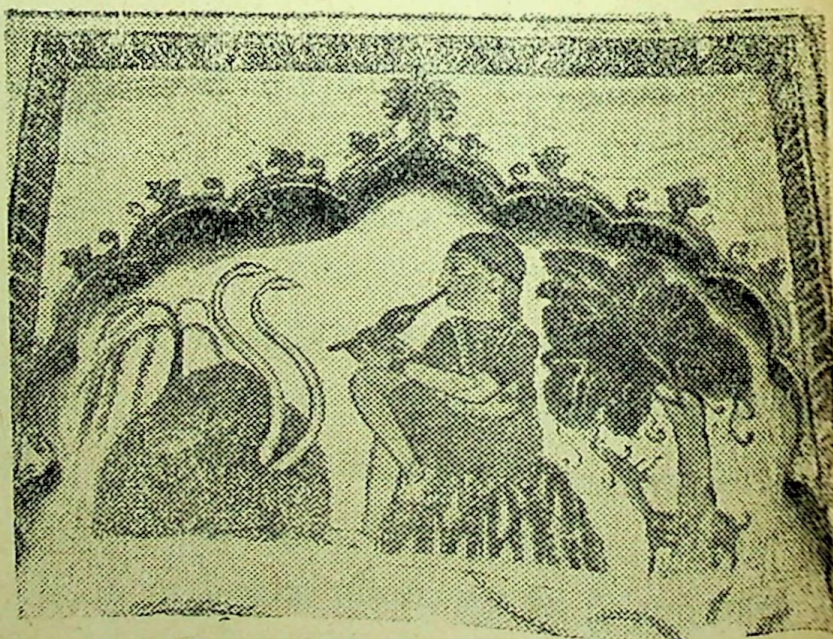
"आयुर्यज्ञेन कल्पताम्"

श्री पं० ठाकुरदत्त जी वैद्य, अमृतधारा फार्मेसी, देहरादून

मैंने अपने व्याख्यान का विषय रक्खा है, 'आयुर्यज्ञेन कल्पताम्' यह यजुर्वेद के १८ वें अध्याय का २६ वां मन्त्र है। यजुर्वेद अध्याय १८ में पहले २७ मन्त्र ऐसे हैं जिन के अन्त में 'कल्पताम्' शब्द आता है। २० मन्त्रों में १२, १२ पदार्थों के नाम हैं। ७ मन्त्रों में न्यूनाधिक हो कर ७७ नाम हैं। इस प्रकार से ३१७ पदार्थों के नाम आते हैं जिन के अन्त में शब्द 'कल्पताम्' है २६ वें मन्त्र में नाम और आए हैं और उन के साथ ....शब्द कल्पन्ताम् लगा है।

जब नरमेध यज्ञ करते हुए यह पता लगा कि यह नरमेध यज्ञ में मन्त्र पढ़े जाते हैं तो मैंने ऋषि दयानन्द के भाष्य में इन के अर्थ देखे। पौराणिक लोग तो नरमेध यज्ञ के अर्थ जो लेते हैं वह तो अश्वमेध यज्ञ आदि की तरह एक-एक अंग के यज्ञ में डालने का अर्थ लेते हैं परन्तु यह अर्थ तो वैदिक सिद्धांत के अत्यन्त प्रतिकूल है। ऋषि दयानन्द ने कल्पताम् के अर्थ होवे किए हैं। श्री जयदेव जी ने जो भाष्य किया है उस में कल्पताम के अर्थ सिद्ध है या मुझे प्राप्त हो। यह किए हैं। दोनों अर्थों से पूर्णतया यह पता नहीं लगता कि नरमेध में यह क्यों पढ़े जांय। ऋषि दयानन्द के भाष्य को पढ़ने से ऐसा प्रतीत होता है कि ऋषि के भाष्य और साधारण विद्वानों के भाष्य में कितना अन्तर होता है। हर एक मन्त्र में हर एक चीज के साथ 'च' अक्षर आता है जिस के अर्थ श्री जयदेव जी ने और किये हैं परन्तु ऋषि दयानन्द ने अपनी मन्त्र दृष्टा बुद्धि से 'च' के अर्थ में एक एक चीज पहले के साथ सम्बन्ध रखने वाली और लिखी है। पहले मन्त्र के दोनों अर्थ नीचे दिए जाते हैं जिन से ऋषि के भाष्य की विशेषता भली भांति प्रतीत हो सकती है।

श्री मद्दयानंद भाष्य

(मे) मेरा (वाजः) अन्न (च) विशेषज्ञान (मे) मेरा (प्रसवः) ऐश्वर्य (च) और उस के ढंग (मे) मेरा (प्रयतिः) जिस व्यवहार से अच्छा यत्न बनाना है सो (च) और उस के साधन (मे) मेरा (प्रसितिः) प्रबन्ध (च) और रक्षा (मे) मेरी (धीतिः) धारणा (च) और ध्यान (मे) मेरी (क्रतु) श्रेष्ठ बुद्धि (च) उत्साह (मे) मेरी (स्वर;) स्वतन्त्रता (च) उत्तम तेज (मे) मेरी (श्लोकः) पद रचना करने हारी वाणी (च) कहना (मे) मेरा (श्रवः) सुनना (च) और सुनना (मे) मेरी (श्रुतिः) जिस से समस्त विद्या सुनी जाती है वह वेद विद्या (च) और उस के अनुकूल स्मृति धर्म-शास्त्र (मे) मेरी (ज्योति) विद्या का प्रकाश होना च और दूसरे की विद्या का प्रकाश करना (मे) मेरा (स्वः) सुख (च) और अन्य का सुख यज्ञेन सेवन करने योग्य परमेश्वर व जगत् के उपकारी व्यवहार से (कल्पताम्) समर्थ होवे।

श्री जयदेव भाष्य

(यज्ञेन) यज्ञ प्रजापालन रूप सत्कर्म से (मे) मुझ राजा को या परमेश्वर के अनुग्रह से और प्रजा के पालक प्रभु से मुझ प्रजा को (वाजः च) अन्न वीर्य और (प्रसवः च) ऐश्वर्य (प्रयतिः) प्रयत्न और (प्रसितिः) उत्कृष्ट राज्य प्रबन्ध और प्रेम (धीतिः च) उत्तम ध्यान या चिन्तन (क्रतुः च) उत्तम कर्म प्रज्ञान (स्वरः) उत्तर स्वर, उत्तम कण्ठ ध्वनि और (श्लोकः च मे) उत्तम वाणी (श्रवः च) उत्तम श्रव अर्थात् गुरुपदेश या वेद मन्त्र

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

(श्रुति च) उत्तम श्रवन योग्य वेद मन्त्र (ज्योतिः) विद्या का प्रकाश और (स्वः च) उत्तम सुख में मेरे (यज्ञेन) यज्ञ के द्वारा उत्तम राज्य प्रबन्ध व्यवस्था और राजा प्रजा सम्मिलित यत्न द्वारा मुझे (कल्पताम्) प्राप्त हो (१-२१) शत: ६।३।२।१–१० ।

अध्यात्म में अन्न, ऐश्वर्य, प्रेम, ध्यान, ज्ञान, और अध्ययन और कर्म स्वर और श्लोक गुरूयदेवा और वेदोपदेश, ज्ञान प्रकाश और सुख ये सब पदार्थ में मुझे (यज्ञेन) आत्मा और परमात्मा या उपासना द्वारा (कल्पताम्) सिद्ध हो मुझे प्राप्त हों ।

ऋषि दयानन्द के भाष्य में एक और विशेषता भी है यज्ञ यज धातु से बना है जिस के अर्थ दान, देव पूजा और संगति करण है । ऋषि दयानन्द ने इन्हीं के आधार पर २७ मन्त्रों में हरेक मन्त्र में यज्ञ के भिन्न भिन्न अर्थ किये हैं । उदाहरणार्थ कुछ नीचे दिये जाते हैं—

मन्त्र १.

अन्न का सुखी (यज्ञेन) सेवन करने योग्य परमेश्वर व जगत् के उपकारी व्यवहार से (कल्पताम्) समर्थ हों ।

मन्त्र २.

पराक्रम ये सब (यज्ञेन) धर्म के अनुष्ठान से (कल्पताम्) समर्थ हों ।

मन्त्र ३.

जवानी ये सब पदार्थ (यज्ञेन) सत्कार के योग्य परमेश्वर से (कल्पन्ताम्) समर्थित हों ।

मन्त्र ४.

उस समस्त पदार्थ (यज्ञेन) धर्म की रक्षा करने से (कल्पन्ताम्) समर्थित हों ।

मन्त्र ५.

उस के साधन ये उक्त सब पदार्थ (यज्ञेन) सत्य और धर्म की उन्नति करने रूप उपदेश से (कल्पन्ताम्) समर्थ हों ।

मन्त्र ६.

उपयोगी कर्म ये सब (यज्ञेन) सत्यवचन बोलने आदि व्यवहारों से (कल्पन्ताम्) समर्थित होवे ।

मन्त्र ७.

जो मुझ में एकता को प्राप्त हुआ वह विद्यादि गुण ये उक्त सब (यज्ञेन) अच्छे नियमों के आचरण से (कल्पन्ताम्) समर्थ हो ।

मन्त्र ८.

इस के साधन (यज्ञेन) सुख की सिद्धि करने वाले ईश्वर से (कल्पन्ताम्) समर्थ होवें ।

मन्त्र ९.

फूल फल ये सब पदार्थ (यज्ञेन) समस्त रस और पदार्थों की बढ़ती करने वाले कर्म (कल्पन्ताम्) समर्थ होवें ।

मन्त्र १०.

प्यास आदि की तृप्ति ये सब पदार्थ (यज्ञेन) प्रशंसित धनादि देने वाले परमात्मा से (कल्पन्ताम्) समर्थ होवें ।

मन्त्र ११.

अच्छी निष्ठा ये सब (यज्ञेन) शम दम आदि नियमों से युक्त योगाभ्यास से (कल्पन्ताम्) समर्थ हों ।

मन्त्र १२.

इन का सम्बन्धी अन्य अन्न ये सब (यज्ञेन) सब अन्नों के दाता परमेश्वर से (कल्पन्ताम्) समर्थ होवें ।

मन्त्र १३.

पीतल आदि ये सब (यज्ञेन) संग करने योग्य व्यवहार से (कल्पन्ताम्) समर्थ होवें ।

मन्त्र १४.

उस का साधन ये सब पदार्थ (यज्ञेन) मेल करने योग्य शिल्प विद्या से (कल्पताम्) समर्थ हों ।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

मन्त्र १५.

उछलना आदि क्रिया ये सब पदार्थ (यज्ञेन) पुरुषार्थ के अनुष्ठान से (कल्पन्ताम्) समर्थ हों।

मन्त्र १६.

सेनापति ये सब (यज्ञेन) विद्या और ऐश्वर्य की उन्नति करने से (कल्पन्ताम्) समर्थ हों।

मन्त्र १७.

उस का उपयोग ये सब (यज्ञेन) पवन की विद्या के विधान करने से (कल्पन्ताम्) समर्थ हों।

मन्त्र १८.

ध्रुव का तारा ये सब पदार्थ (यज्ञेन) पृथिवी और समय के विशेष ज्ञान देने वाले काम से (कल्पताम्) समर्थ होवे।

मन्त्र १९.

दूध व काष्ठ आदि ये सब पदार्थ (यज्ञेन) अग्नि के उपयोग से (कल्पन्ताम्) समर्थ हों।

मन्त्र २०.

इस की सामग्री (यज्ञेन) पदार्थों के मेल से (कल्पन्ताम्) समर्थ हों।

मन्त्र २१.

पदार्थ को पवित्र करना ये सब (यज्ञेन) होम करने की क्रिया से (कल्पन्ताम्) समर्थ हों।

मन्त्र २२.

ईशान, वायव्य, नेऋृत्य, आग्नेय उपदिशा ये सब (यज्ञेन) मेल करने योग्य परमात्मा से (कल्पन्ताम्) समर्थ हों।

मन्त्र २३.

घोड़े व बैल (यज्ञेन) धर्म ज्ञान आदि के आचरण और कला चक्र के भ्रमण के अनुष्ठान से (कल्पन्ताम्) समर्थ हों।

मन्त्र २४.

(यज्ञेन) मेल करने अर्थात् योग करने से मेरी त्रयस्त्रिंशत तेतीस च और भी इसी प्रकार (कल्पन्ताम्) समर्थ हों। यहां तक भोग पक्ष है।

मन्त्र २५.

दूसरा पक्ष-यज्ञेन योग से विपत्ति दान रूप वियोग मार्ग से विपरीत संग्रहीत मेरी सप्त विंशतिः सताई समर्थ हो ऐसे सब संख्या में जानना चाहिए। यह वियोग से दूसरा पक्ष है।

मन्त्र २४.

तीसरा पक्ष-परस्पर गुणित इस प्रकार अन्य संख्या (यज्ञेन) उक्त वार २ योग अर्थात् गुण से (कल्पन्ताम्) समर्थ हों। यह गुणन विषय से तीसरा पक्ष है।

मन्त्र २४.

(यज्ञेन) मेल करने अर्थात् योग करने में आगे भी युक्त विधि से संख्या (कल्पन्ताम्) समर्थ हो। यह प्रथम योग पक्ष है।

मन्त्र २५.

द्वितीय पक्ष-यज्ञेन योग से विपरीत दान रूप वियोग मार्ग से विपरीत संग्रहीत इस प्रकार सब संख्याओं में जानना चाहिए। यह वियोग से दूसरा पक्ष है।

मन्त्र २५.

तीसरा पक्ष—यज्ञेन उक्त वार गुणन से (कल्पन्ताम्) समर्थ हों। यह गुणन विषय से तीसरा पक्ष है।

मन्त्र २६.

यज्ञेनपशुओं के पालन के विधान से (कल्पन्ताम्) समर्थ होवे।

मन्त्र २७.

(यज्ञेन) पशु शिक्षा रूप यज्ञ कर्म से (कल्पन्ताम्) समर्थ होवे।

मन्त्र २८.

(यज्ञेन) १. परमेश्वर और महात्माओं के सत्कार से, २. संग करने से, ३. परमेश्वर व विद्वान् के सत्कार से, ४. ईश्वर से, ५. पठन रूप यज्ञ से, ६.

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

सत्य व्यवहार से, (कल्पन्तांम्) समर्थ हो।

ऋषि दयानन्द ने कल्पन्ताम् के अर्थ समर्थ होना शाब्दिक अर्थ कर दिए परन्तु उन का प्रयोजन उन के भावार्थ करने से सच्चो प्रकार प्रतीत होता है जिस से यह पता लगता है कि नरमेध यज्ञ क्या है पहले ही मन्त्र का भावार्थ इस प्रकार है।

हे मनुष्यों! तुम को अन्नादि पदार्थों से सब के सुख के लिए ईश्वर की उपासना और जगत् के उपकारक व्यवहार की सिद्धी करनी चाहिये जिस से सब मनुष्यों की उन्नति हो।

इस से स्पष्ट हो गया कि इन सब चीजों को सब मनुष्यों के उपकार के लिए लगभग नरमेध यज्ञ का प्रयोजन है और यह बात अधिक तौर पर स्पष्ठ तब होती है जब कि ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में २६ वें मन्त्र का भाष्य ऋषि दयानन्द के शब्दों में पढ़ा जाए। ऋषि दयानन्द ने ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में प्रार्थना विषय के छह मन्त्रों की व्याख्या करने के पश्चात् मन्त्र दिया है और उस के पहले यह शब्द लिखे हैं।

इसी प्रकार से वाजश्च में... ...इत्यादि शुल्क यजुर्वेद के १८ वें अध्याय में मन्त्र ईश्वर के अर्थ सर्वस्व समर्पण करने के ही विधान में है सब से उत्तम मोक्ष सुख से ले कर प्रयत्त सब पदार्थों की याचना मनुष्यों को केवल परमात्मा ही से करनी चाहिए। इतना लिख कर अन्तिम मन्त्र २६ वें को व्याख्या की है।

भावार्थ–आयुर्यज्ञेन। यज्ञ नाम विष्णु का है जो सब जगत् में व्यापक हो रहा है उसी परमेश्वर के अर्थ सब चीज समर्पण कर देना चाहिए। इस विषय में यह मन्त्र है कि सब मनुष्य अपनी आयु को ईश्वर की सेवा और उस की आज्ञा पालन में समर्पित करें। प्राणो अर्थात् अपने प्राण भी ईश्वर के अर्पण कर देवे चक्षु जो प्रत्यक्ष प्रमाण और आंख श्रोत्रं जो श्रवण विद्या और शब्द प्रमाणादि वाक वाणी मनो मन और विज्ञान आ. मा. जीव द्रह्म तथा चारों वेद पढ़ के जो पुरुषार्थ किया है जो प्रकाश, जो सब सुख जो उत्तम कर्मों का फल और स्थान जो कि पूर्वोक्त प्रकार का यज्ञ किया जाता है यह सब ईश्वर की प्रसन्नता के अर्थ समर्पित कर देना आवश्यक है। इत्यादि के फलों से जो जो फल अपने आधीन हों वह सब परमेश्वर के समर्पण कर देवे। क्योंकि सब वस्तु ईश्वर ही की दी हुई इस प्रकार से जो मनुष्य अपनी सब चीजें परमेश्वर के अर्थ समर्पित कर देता है उस के लिए परम कारुणिक परमात्मा सब सुख देता है इस में सन्देह नहीं।

इस से तो अब पूर्णतया स्पष्ट हो गया कि नरमेध यज्ञ का क्या अर्थ है। अन्न, जल आदि ६३४ चीजें जो इन मन्त्रों में गिनी गई हैं, मोक्ष पर्यन्त इन वस्तु की याचना मनुष्य को परमात्मा ही से करनी चाहिए और जो सब वस्तु या उन के फल हम को प्राप्त हैं वह ईश्वर के अर्थ सर्वस्व समर्पण करना चाहिए यही परम परोपकार है जिस का ऋषि दयानन्द ने अपने ग्रन्थों में बार बार आदेश दिया है।

★

पुस्तक-समालोचना

पुत्र कैसे प्राप्त हो—प्रकाशक 'उत्तम माता-पिता समाज' ११० चित्तरञ्जन एवेन्यू कलकत्ता। प्राप्त स्थान जयदेव ब्रदस बड़ौदा। पृष्ठ संख्या ३०, मूल्य ।–)।

पुस्तक का विषय नाम से ही स्पष्ट है। इस छोटी सी पुस्तिका में सन्तान प्राप्त कर के दाम्पत्य जीवन को सुखी बनाने के १८ उपाय बताये गये हैं। पुत्र ही कैसे प्राप्त हो इस के लिए भी एक-दो उपाय लिखे हैं।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

सत्य की महिमा

श्री स्वामी व्रतानन्द जी महाराज

ओं अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तेनदया समिधामह मनृतात् सत्यमुपैमि स्वाहाः ।

हे सब की उन्नति में परम सहायक ओं व्रत के परिपालन में पूर्ण सहायता प्रदान करने वाले ओम् मैं आपके सामने प्रतिज्ञा करता हूं कि मैं प्रत्येक अच्छे कार्य को करुंगा । उसको मैं कर सकूं । उसमें मुझे सफलता प्रदान करें । इस के लिए झूठ को छोड़ने के लिए और सत्य को धारण करने के लिए यत्न करता हूँ ।

सत्य से शरीर की उन्नति होती है, चरक में लिखा है कि 'दाता सम सत्य परः क्षमावान् आयतो सेवी च भ त्य रोगः' अर्थात् जो सत्य का पालन करता है उस के सब रोग दूर हो जाते हैं । सत्य से ही इन्द्रियों की उन्नति भी होती है । मनुस्मृति में कहा है कि 'सत्य पूतां वदेद् वाचं' सत्य से पवित्र करके वाणी को बोले, सत्य से मन शुद्ध होता है, शिव संकल्प से परिपूर्ण होता है और सरलता की प्राप्ति होती है, प्राण भी सत्य से निश्चल होता है । इस लिये मनु जी ने कहा है कि 'सत्य नास्ति भयं क्वचित्' सत्य में कहीं भय नहीं है । चित की उन्नत भी सत्य से होती है । योग दर्शन में कहा है 'सत्य प्रतिष्ठायां क्रिया फलाश्रय त्वम्' अर्थात् सत्य के द्वारा प्रत्येक क्रिया में सच्ची सफलता की प्राप्ति होती है । अहंकार अन्तःकरण की उन्नति भी सत्य से होती है अपने को बड़ा समझना भी असत्य है और अपने को बहुत छोटा समझना भी असत्य है । आत्म विश्वास करना कि मैं कठिन से कठिन अच्छे कार्य को भी कर सकता हूँ यही सत्य है और इसी से अन्तःकरण की उन्नति होती है । आत्मा की उन्नति भी सत्य से होती है । आत्मिक उन्नति का सब से उत्तम साधन आत्म निरीक्षण है । जब मनुष्य अपनी गलतियों पर न्यायपूर्ण विचार करता है और गलतियों के स्वरूप को भली भांति समझ कर उनका निवारण करने का पूर्ण पुरुषार्थ करता है तब वह निरीक्षण से उन्नति कर रहा होता है । अन्तःकरण की उन्नति भी सत्य से ही होती है । किसी ने कहा है 'सत्यमेव जायते नानृतं' सत्य की विजय होती है, झूठ को कभी नहीं । सत्य से अदीनता व स्वतन्त्रता की प्राप्ति होती है । बुद्धि की उन्नति सत्य से होती है । यदि गुरु और शिष्य झूठ बोलेंगे तो शिष्य के ज्ञान की वृद्धि नहीं होगी प्रत्युत हानि होगी । सत्य के पालन से आत्मा की भी उन्नति होती है । किसी ने कहा है 'मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम्' महात्मा जैसे मन में सोचते हैं वैसा ही वाणी से कहते हैं और उसी के अनुसार अपने जीवन बीताते हैं । ऐसा करने से इच्छा शक्ति (विल पावर) की वृद्धि होती है । सत्य से सब व्रतों व कर्तव्यों का पालन करने की योग्यता प्राप्त होती है । सत्य से मनुष्य समाज, देश तथा पृथ्वी की उन्नति होती है । जो मनुष्य सच्चा होता है वह परोपकार कर सकता है । जिस पर लोगों का विश्वास न होगा वह दूसरों की भलाई भी नहीं कर सकता । विश्वास पात्रता का मूल आधार सत्य ही है । सत्य के सामर्थ्य से हम ओम् की बात को भली प्रकार सुन सकते हैं । अर्थात् जब हम बुरा विचार करते हैं तभी हमारे मन में भय, शंका और लज्जा उत्पन्न होती है और अच्छा विचार करते ही निर्भयता, उत्साह और प्रसन्नता का सचार होता है । उस को समझो कि ओम् हम से बात करता है इस के सुनने के लिये और ओम् के साथ बात करने के लिये सत्य का परिपालन करना अत्यन्त आवश्यक है । तात्पर्य यह है कि सत्य से ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति होती है ।

आर्य समाज के १० नियमों में सत्य ही सत्य भरा हुआ है ।

१. पहले नियम में सत्य विद्या शब्द है ।

२. दूसरे नियम में सत् शब्द सत्य का वाचक है ।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

३. तीसरे में वेद को सत्य विद्याओं की पुस्तक कहा है।

४. चौथे में सत्य को ग्रहण करना कहा गया है।

५. पांचवें नियम में सत्य और असत्य पर विचार करने की आवश्यकता बताई है।

६. छठे नियम में परोपकार करना कहा है। परोपकार विश्वास पात्रता के बिना असम्भव है और विश्वास पात्रता सत्य पर निर्भय है और मैं पहले सिद्ध कर चुका हूँ कि शारीरिक आत्मिक तथा सामाजिक उन्नति सत्य पर निर्भर है।

७. धर्मानुसार यथा योग्य शब्द प्रेम के साथ सत्य को जोड़ते हैं।

८. विद्य के अर्थ सत्य ख्याति है और अविद्या का अर्थ असत्य ख्याति है।

९. नौ तथा दशम नियम में सब की उन्नति और सब का हित करने की आवश्यकता बताई गई है।

सत्य का लक्षण किसी कवि ने यह किया है—

'यद् भूत हित मत्यन्तं तत् सत्य मिति कथ्यते' अर्थात् जो सब प्राणियों के लिए अत्यन्त हितकारक और उन्नति कारिक है वही सत्य है।

सत्य का साधन

१. ओम् को सर्वदा अपने समीप समझने वाला ही सत्य का पालन कर सकता है।

२. सत्य को प्राप्त करने के लिए श्रद्धा को धारण करना अत्यन्त आवश्यक है।

३. सत्य पालकों की संगति करने से सत्य में रुचि पैदा होती है।

४. सत्य पालकों के चरित्रों के पढ़ने से अपना चरित्र सत्यपूर्ण बनाने की इच्छा होती है।

५. ओम् से प्रार्थना करनी चाहिये कि हे सत्य स्वरूप ओम् आपने सत्य को पालन करने की जो सामर्थ्य उत्तम चरित्रवान मनुष्यों को प्रदान की है वह मुझे भी प्रदान कीजिये।

६. सत्य को पालन करने के लिये लोभ छोड़ना भी बहुत जरूरी है।

७. झूठे यश की इच्छा छोड़ने से भी सत्य का पालन होता है।

८. सत्य पालन करने के लिये भी नाटक, सिनेमा को भी छोड़ना अत्यन्त ज़रूरी है क्योंकि नाटकों में बनावटी, दिखावट प्रत्येक पात्र का करनी पड़ती है उस से झूठ का वातावरण उत्पन्न होता है। महर्षि दयानन्द जी रामलीला और रासलीला आदि को देखना भी पसन्द नहीं करते थे। यहां तक कि इसी विषय पर विवाद करते हुए राव कर्णसिंह जी ने गुस्से में आकर उन पर तलवार का वार किया था और स्वामी जी ने तलवार के दो टुकड़े कर दिये थे। हम सब भाई और बहिनें उन को अपना नेता मानते हैं अतएव हमें झूठ से बचने के लिये भी नाटक, सिनेमा आदि का भी त्याग करना चाहिये। अतएव हमें सत्य के लाभों को पूर्ण रूप से समझ कर सत्य के साधनों की सिद्धि के लिये अपना तन, मन, धन से पूर्ण जीवन समर्पित कर देना चाहिये इस से हमें सच्चे सुख की सच्चे आनन्द की तथा मुक्ति की प्राप्ति हो सकेगी।

★

गुरुकुल के स्नातक— आरम्भ काल से १९५० तक गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय से जो स्नातक निकले हैं उनका सचित्र परिचय इस पुस्तक में दिया गया है। देश के प्रथम राष्ट्रीय शिक्षणालय के स्नातकों का विस्तृत परिचय देने वाली इस पुस्तक को आज ही मंगाइये। मूल्य ३)।

मिलने का पता—प्रकाशन मन्दिर, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गरमियों में पित्त से रक्षा

श्री रामेश बेदी

मेरा परिवार गरमियों में हर साल शिमला जाया करता था, इस साल किन्हीं कारणों से जाना नहीं हुआ। मेरी पत्नी को आज तक ऐसी बुरी तरह पित्त कभी नहीं निकली, जैसी इस बार निकली है। लाहौर में सचमुच आग बरस रही है। डाक्टर साहिब क्या किया जाय।

वह सो भी नहीं पाती थीं

ये एक बड़े घर के सज्जन थे और पत्नी को साथ लेकर मुझ से परामर्श लेने आये थे। मैंने उनकी पीठ की परीक्षा करनी आरम्भ की। छोटे छोटे लाल रंग के घने दानों से वह बुरी तरह भरी हुई थी। नीचे धड़ की तरफ तो दाने कुछ विरले थे, परन्तु ज्यों ज्यों ऊपर की तरफ जाय, दाने घनता में बढ़ते जाते थे। गरदन के पीछे और सामने की ओर दानों का आकार भी काफी बड़ा था, और इनके सफेद मुखों के अन्तर से पीप झांक रही था। ब्लाउज़ को ऊपर उठाते हुए पित्त पर जो रगड़ लगी, उसकी वेदना रोगी को असह्य प्रतीत होती थी। त्वचा के किसी भी भाग को छूने से वह स्पष्ट रूप से विपरीत प्रतिक्रिया दिखाती थी। उस सम्भ्रान्त युवती का चेहरा कष्ट से बहुत उद्विग्न दीखता था। वह न तो रात को सो पाती थी और न दिन में। पित्त के दानों ने उसके बदन पर सारा पृष्ठ आवृत कर लिया था। किसी भी करवट लेटना उसके लिये मुसीबत है। मैंने देखा कि दानों का इतना जोर है कि उसकी गौर त्वचा के ऊपर सारी पीठ और छाती ऐसी लाल नजर आ रही थी कि जैसे उस स्थान की सूक्ष्म रक्त वाहिनियां अभी कट जायेंगी और उन से रक्त बह निकलेगा। पीठ और छाती के ऊपरले भाग पर और गरदन पर जो दाने हैं, उन में भरी हुई पीप में से विष रगों में बह रहा है और इस लिये इस सारे भाग में सोज आ गई है, और इस से यह स्थान बहुत अकड़ गया है। गले की गिलटियां भी उभरने लगी हैं, तथा दर्द करने लगी हैं। गरदन की पेशियां अकड़ जाने से रुग्णा को स्वतन्त्रता से गरदन झुकाने में भी व्यथा अनुभव होती है।

गरमी इस समय यौवन पर है कुछ दिनों में पित्त के दाने निकलने प्रारम्भ हो जायेंगे। ऊपर दिये गये उदाहरण की तरह अनेक स्त्री पुरुष पित्त का शिकार होने लगेंगे। आपको इसके सरल उपचार का ज्ञान रहना चाहिये जिस से आपकी और आपके बच्चों की परेशानी न बढ़े।

इसका इलाज

इस रोग में क्योंकि शरीर के अन्दर गरमी अधिक बढ़ जाती है, इस लिये उसे दूर करने के लिए सब शीतल उपायों को बरतना चाहिए। पीने के लिए सामान्यतया किसी औषध की आवश्यकता नहीं पड़ती। अत्यधिक उग्र अवस्थाओं में पाश्चात्य चिकित्सक सल्फानोमाइड आदि का प्रयोग करते हैं। जब दानों में पीप पड़ गई हो और शोथ हो तो अवधूलनों डस्टिंग पाउडरों में सल्फा औषधियां भी मिला ली जाती हैं। इस से तुरन्त लाभ दीखता है। और दाने सूख जाते हैं, परन्तु इस लाक्षणिक चिकित्सा से फलतः रोग शान्त नहीं होता। वास्तविक चिकित्सा तो यह है कि शीतल भोजनों का प्रयोग किया जाय। ककड़ी, खीरा, सत्तू, तरबूज आदि का सेवन, शीतल जल धाराओं, दरयों और शावर वाप्स का स्नान, ठंडे पेयों का बराबर प्रयोग, ये चीजें हैं जिनका बार बार प्रयोग रोगी को शान्ति प्रदान करता है। समर्थ लोगों को घर की हर एक खिड़की और दरवाजे पर खस की चटाइयां लगा कर पानी खूब छिड़कवाते रहना चाहिये।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

स्थानिक उपचार

दानों का क्षोभ, गरमी, खुजली और जलन शान्त करने के लिये शीतल ग्राही और क्षोभ शामक द्रव्यों का स्थानिक प्रयोग किया जाता है। इन द्रव्यों में सब से प्रसिद्ध गाचनी मिट्टी है। जिसे भारत में हजारों सालों से इस्तेमाल किया जा रहा है। गाचनी मिट्टी को मुलतानी मिट्टी भी कहा करते हैं। चन्दन की तरह इसे घिस कर स्नान से पूर्व सारे बदन पर लेप कर देते हैं। लेप जितना गाढ़ा लगाया जाय उतना अच्छा रहता है। लेप जल्दी ही सूख जाता है। कुछ देर तक इसे लगा रहने देना चाहिये। फिर खुले पानी में नहाते हुए हाथों से मल मल कर धो डालना चाहिये।

चन्दन का प्रयोग

लेप और अवधूलन डस्टिंग पाउडर दोनों रूपों में सफेद चन्दन का प्रयोग होता है। पानी के साथ घिस कर इसे अकेला या गाचनी मिट्टी में मिला कर लेप किया जाता है। स्नान के बाद शरीर को नरम तौलिये से पोंछ कर चन्दन को नरम रूई से या पफ से मोटी तह में दानों पर बिछाते जाना चाहिये। पित्त पाउडर के अनेक नुस्खों में चन्दन का चूर्ण या तेल मिलाया जाता है।

सौभाग्य जल

पित्त के दानों और खुजली को शान्त करने के लिये एक तोला सुहागे (सौभाग्य) को एक पाव कपूर जल में घोल कर बनाये घोल को दानों पर रुई से लगाना चाहिये। नरम कपड़े या शोषक रुई को इस घोल में भिगो कर दानों पर रखें। जब गरम हो जाय तो निचोड़ दें और फिर ठंडे घोल में भिगो कर रखें। इस से रोगी को बहुत आराम मिलता है।

चावल का आटा

डाक्टर बेअरिंग ने चावल के बारीक पिसे हुए आटे को भी पित्त के दानों पर छिड़कने से दाह, क्षोभ और गरमी को शान्त करने वाला पाया। इसके लिये साफ चावलों को बारीक पीस कर कपड़े से छान लें। त्वचा पर इसे छिड़क कर मोटी तह बना दें। दानों पर यह बहुत शीतल और शामक दवा का काम करता है। इस लिये रोगी भी इसे लगाना पसन्द करता है।

पित्त पाउडर

बाजार में पित्त पाउडरों के नाम से बिकने वाले पाउडरों में सामान्यतया निशास्ता, सुहागा, बोरिक एसिड, जस्ते का फूला आदि द्रव्य होते हैं। मेरे अनुभव में नीचे लिखा नुस्खा बहुत लाभदायक रहता है।

सुहागे का खील या बोरिक एसिड १ तोला, जस्ते का फूला या जिंक ऑक्साइड १ तोला, निशास्ता एमाइलम २ तोला, सफेद चन्दन का चूर्ण ६ माशा।

दानों में पड़ गई पीप को भी यह सुखाता है, त्वचा की शोथ और क्षोभ को शान्त करता है।

[वॉगी राइट—हिमालय हर्बल इन्स्टिट्यूट]।

★

सन्ध्या रहस्य (दूसरा संस्करण)—लेखक प्रोफेसर विश्वनाथ विद्यालंकार। उपासना का प्रत्येक धर्म में विशेष महत्व है। सृष्टि की सब से प्राचीन और सब से नवीन वेदोक्त उपासना का आनन्द निराला ही है। यदि आप सन्ध्या के गूढ़ रहस्यों को हृदयंगम करके इस अानवर्चनीय आनन्द का आस्वादन करना चाहते हैं तो इस पुस्तक को अवश्य पढ़िये। मूल्य २)।

मिलने का पता—प्रकाशन मन्दिर, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

श्री अरविन्द का महा-प्रयाण

डा० इन्द्रसेन

[इस लेख के विचारों का उत्तरदायित्व लेखक पर है।—संपादक।]

साधक के लिए गुरुदेव उस के सर्वस्व होते हैं, भगवान् के साक्षात् प्रतिनिधि तथा स्थानापन्न होते हैं। उन्हीं की शिक्षा-दीक्षा और सहायता-कृपा से वह अपने बन्धनों से मुक्त होता है तथा आत्म-लाभ करता है। उन से वह ऐसा प्रेम अनुभव करता है जो वह संसार भर में किसी अन्य से नहीं करता। स्वभावतः साधक के लिए साधकावस्था में गुरु का बिछोड़ा दूभर हो जायगा।

श्री अरविन्द के शरीर छोड़ देने का प्रथम समाचार साधक वर्ग तथा सामान्य जनता के लिए समान रूप में भारी धक्का था। यह बात किसी की कल्पना में भी न थी, अतः इसे सुन कर प्रथम तो विश्वास ही नहीं हुआ। जब तक भावों का क्षोभ जरा शांत नहीं हो गया तब तक वे इसे तथ्य रूप में स्वीकार करने में भी समर्थ नहीं हो पाए। जब लाचार हो कर तथ्य मानना पड़ा तब हृदय और बुद्धि व्यग्रतापूर्वक पूछने लगे कि आखिर यह हुआ क्यों और कैसे ?

जनता ने सामान्य रूप में देश और जाति के एक महान् नेता तथा ऋषि और योगी के देहावसान पर दुःख अनुभव किया। उन के जीवन तथा कार्य का स्मरण कर के अपना और देश का गौरव माना। प्रत्यक्ष ही श्री अरविन्द की देन अत्यन्त महान् है। उनका जीवन संसार के इतिहास में महान् आदर्श, सेवा, त्याग, तपस्या, विद्वत्ता तथा आध्यात्मिक सिद्धि और प्रभाव के कारण विशेष उच्च स्थान रखता है। उन के ग्रन्थ भी सामान्य बौद्धिक रचना नहीं हैं। वे सब आध्यात्मिक अनुभव की उपज हैं और उन्होंने अपूर्व रूप में भारतीय संस्कृति को हमारे लिए पुनरुज्जीवित कर दिया है। आज के समय में उन के व्यक्तित्व तथा ग्रन्थों से देश तथा संसार में जो आध्यात्मिक जिज्ञासा प्रसारित हुई है वह भारत तथा संसार के लिए विशेष महत्त्व की वस्तु है। जनता ने श्री अरविन्द के इन सब विस्तृत कार्य तथा प्रभाव का चिन्तन कर उन्हें अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की है और दिवंगत आत्मा के लिए मंगल कामना की है।

परन्तु साधक वर्ग तथा वे जो श्री अरविन्द के विशेष आध्यात्मिक ध्येय तथा कार्य से परिचित हैं श्री अरविन्द के देहावसान में एक विकट समस्या अनुभव करते हैं। वे महसूस करते हैं कि श्री अरविन्द अपनी मुक्तिमात्र के लिए साधना नहीं कर रहे थे। अपने साधकों की मुक्ति भी उन का लक्ष्य नहीं था। उन्होंने तो स्पष्ट रूप में अनुभव किया था कि मन से उच्चतर एक अतिमानस तत्त्व है जो पृथ्वी स्तर पर अनिवार्य रूप में प्रकट होना है। वे बतलाते हैं कि जड़, प्राण और मन के विकास-क्रम की स्वाभाविक परिपूर्ति अतिमानस में होगी। मन अत्यन्त अपूर्ण वस्तु है। यह मानव की सामान्य चेतना का अन्तिम रूप नहीं हो सकता। पशु की चेतना से वर्तमान मानव-चेतना विशालतर है। परन्तु यह भी वस्तुओं के बाह्य रूपों का ही ग्रहण करने में समर्थ होती है। सत्य को साक्षात् रूप में अनुभव करने वाली पूर्णतर चेतना मानव का स्वाभाविक ध्येय और लक्ष्य है और यह पृथ्वी स्तर पर मानव चेतना में एक दिन चरितार्थ होनी चाहिये। श्री अरविन्द यह भी बतलाते थे कि यह चेतना योग की प्रगाढ़ एकाग्रता द्वारा भी शीघ्रतर भी सिद्ध की जा सकती है। यही वास्तव में उन का ध्येय था। इस ध्येय को वे अपने जीवन-काल में ही पूर्ण

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

करने की आशा रखते थे। इस सम्बन्ध में उन्होंने दो एक अपने पत्रों में काफी स्पष्ट रूप में कहा है कि यह कार्य अभी पूरा होना है।

इस प्रकार के कुछ एक प्रकरणों के आधार पर श्री अरविन्द के आध्यात्मिक अनुयायियों ने यह आशा बना ली थी कि जब तक उन का काम पूरा नहीं होता, तब तक श्री अरविन्द निश्चित रूप से उनके बीच उपस्थित रहेंगे। इस के अतिरिक्त अतिमानस की शक्ति से वैसे भी व्यक्ति को 'यथा-इच्छा जीवन काल' प्राप्त हो जाता है। अतः इन अनुयायियों ने श्री अरविन्द के देहावसान पर विशेष धक्का अनुभव किया। वे गम्भीर रूप में सोचने लगे, यह क्यों हुआ और कैसे हुआ?

श्री अरविन्द ने अतिमानस, इस के अवतरण तथा अवतरण के मार्ग की कठिनाइयों तथा विघ्न बाधाओं की निष्पक्ष भाव में वैज्ञानिक शैली से व्याख्या की है। अतिमानस की सत्ता तथा इस के अवतरण की अवश्यम्भाविता के बारे में उन्होंने पूर्ण निश्चय से लिखा है। परन्तु अवतरण के लिए कभी तारीख नहीं बांधी थी क्योंकि उस के लिए अनेक अवस्थाओं की अनुकूलता चाहिए।

अतिमानस के सम्बन्ध में वे कहते हैं कि—'मैं इसे [अतिमानस को] ऊपर से अपनी चेतना पर प्रकाशित होते लगातार अनुभव करता हूँ और मैं यही यत्न कर रहा हूँ कि उपर्युक्त अवस्थाएं पैदा की जायं जिस से यह पूर्ण व्यक्तित्व को अपनी स्वाभाविक शक्ति के प्रभाव में ले ले' (Letters of Sri Aurobindo, II. p. 73)। यही उन का परम करणीय कर्म बन गया था। अतिमानस को मानव के मन, प्राण और शरीर में अवतरित करना और इस अवतरण द्वारा उन्हें रूपांतरित करना ही उन के आध्यात्मिक कार्य का लक्ष्य था। आरोहण द्वारा जब भगवान् तथा आत्मा की प्राप्ति खूब ऊंचे आध्यात्मिक लक्ष्य हैं, परन्तु उन का कहना था कि इस से मानव को अपने सम्पूर्ण जीवन में भगवान् का स्पर्श प्राप्त नहीं होता। जब तक व्यक्तित्व के सभी अंगों का दिव्यीकरण न किया जाय, निम्न प्रकृति में परिवर्तित न हो जाय तब तक मानव का भगवान् के साथ पूर्ण मिलन, जैसा समाधि तथा चिन्तन में वैसा ही कर्म तथा व्यवहार में, सिद्ध नहीं होता। यह सिद्धि तभी हो सकती है जब कि अतिमानस तत्व की शक्ति को हम अपने शरीर के भौतिक तत्व तक में उतार लायें और फिर उसी से अपने विचार-विचार में तथा क्रिया-क्रिया में अनुप्राणित हों।

इस अवतरण की प्रक्रिया के बारे में श्री अरविन्द ने खूब विस्तार से लिखा है। एक जगह वे बतलाते हैं कि—'यह अवतरण अपने आप में कुछ उच्छृंखल तथा मोजजे की चीज नहीं। यह एक गतिशील, कुछ एक वर्षों में सीमित विकास प्रक्रिया है जो वर्तमान प्रकृति को अपने प्रकाश में ग्रहण कर के इस के निम्न स्तरों में अपने सत्य को उढ़ेल देती है। यह कार्य सारे जगत् पर एक दम नहीं किया जा सकता, बल्कि अन्य ऐसे क्रमों की तरह यह पहले कुछ चुने हुए आधारों में करना होता है और फिर उसे विस्तृत किया जाता है। हमें [श्री अरविन्द और माता जी] पहले यह अपने ऊपर करना है और फिर पार्थिव चेतना के प्रतिनिधिरूप उन साधकों पर जो हमारे पास एकत्र हैं। [Ibid p. 83].

श्री अरविन्द इस कार्य की कठिनाइयों तथा अनेक प्रकार की विघ्न-बाधाओं को बार बार

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

जतला देते रहे हैं। शरीर के भौतिक भाग में प्रकाश पहुँचाना वे हमेशा विशेष कठिन बतलाते थे। एक जगह उन्होंने कहा है कि—'अचेतन में प्रकाश पहुँचाना महा कठिन काम है।' परन्तु यह काम किये बिना रूपांतर सम्भव नहीं। वास्तव में मन और प्राण के क्षेत्र पार हो कर उन की साधना अर्से से जड़ भौतिक तत्त्व से संघर्ष ले रही थी। यह एक अत्यन्त मार्मिक स्थिति थी और इसे अधिकृत करने में ही श्री अरविन्द ने अपने जीवन की बलि दी है।

श्री अरविन्द के जीवन की मार्मिक गति उनका आध्यात्मिक अथवा गुह्यवाद था। वे घटनाओं के, स्थूल घटनाओं अथवा उनके तथाकथित स्थूल कारणों के धोखे में नहीं आते थे। वे जानते थे कि जगत् की सब घटनाओं के कारण सूक्ष्म चेतन जगत् की गतियां प्रगतियां होते हैं। वे फिर सीधे उन्हीं पर क्रिया किया करते थे। अपने जीवन काल में उनका प्रधान कार्य विशेषकर जब से उन्होंने अपना आध्यात्मिक कार्य शुरू किया, ऐसा गुप्त और गुह्य ही रहा है। वास्तव में जैसे उनके जीवन का मर्म गुप्त और गुह्य था वैसे ही उनके महा-प्रयाण का मर्म भी गुप्त और गुह्य बीमारी तो स्वयं गुह्य आध्यात्मिक संघर्ष का एक परिणाम है, वह उनके महा-प्रयाण का कारण नहीं।

उनका महाप्रयाण अवश्य ही अचेतन में अति मानसिक प्रकाश के अवतरण सम्बन्धी एक अनिवार्य घटना थी; वह मानव-रूपान्तर के महान् आदर्श के लिये बलि थी तथा अतिमानस के दिव्य तत्त्व के लिये बलिदान था। इसके अतिरिक्त उनके महाप्रयाण का दूसरा अर्थ हो नहीं सकता। उनका सारा जीवन ही गम्भीर आध्यात्मिक यज्ञ तथा आत्म-निवेदन था, महाप्रयाण का महा कर्म केवल परम आत्म निवेदन ही हो सकता है।

परन्तु क्या इस आत्म-निवेदन से अतिमानस के अवतरण का कार्य रुक जायगा या धीमा पड़ जायगा? यदि मृत्यु सामान्यतया भी जीवन का अन्त नहीं होती बल्कि नए और अधिक विकसित जीवन का साधन होती है, तो श्री अरविन्द जैसे आत्मवेत्ता के लिये तो यह किसी तरह भी बाधा या रुकावट नहीं बन सकती। बल्कि शरीर पर अति-मानस के एक प्रयोग से जो अनुभव प्राप्त हुआ वह भावी कार्य के लिये जरूर ही सहायक होगा। और क्या पता यह अनुभव भावी कार्य के लिये शायद अनिवार्य हो गया था।

यह हम विश्वास पूर्वक कह सकते हैं कि यदि श्री अरविन्द अब भी वही श्री अरविन्द हैं जो वे जीवन भर रहे हैं और यह आत्मा के अमरत्व से होना अनिवार्य है तो वे अपने ध्येय की चरितार्थता के लिये अब भी जरूर यत्नशील हैं और उनके यत्न के लिये उपयुक्त क्षेत्र भी उनका अपना आश्रम ही हो सकता है जहां उन्होंने इतने लंबे अर्से तक आधारों पर परिश्रम किया है। ऐसा होना इस कारण और भी जरूरी है क्योंकि श्री माता जी, जिन्होंने जीवन भर उनके साथ उसी ध्येय के लिये काम किया है उसका अब भी पथ-प्रदर्शन कर रही हैं तथा श्री अरविन्द के अतिरिक्त वे दूसरा आधार हैं जिसमें अति-मानस का अवतरण प्रथम रूप में सम्भव माना गया था। अवश्य ही श्री अरविन्द आत्मा-रूप में अपने आश्रम में अब भी विराजमान हैं। माता जी ने स्पष्ट ही कहा है 'श्री अरविन्द (अब भी) यहां हमारे साथ हैं, सचेतन और सजीव।'

अब यह हम पर निर्भर करता है कि हम उनके साथ सजग आत्मिक सम्बन्ध जोड़ें, उनसे पथ-प्रदर्शन प्राप्त करें और उस पथ-प्रदर्शन का दृढ़ता और सचाई के साथ अनुसरण करें जब तक वह महान् दिव्य तत्त्व, वह अतिमानस, मानव चेतना में प्रतिष्ठित न हो जाय।

★

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गुरुकुल समाचार

ऋतु

ज्येष्ठ मास प्रारम्भ होते ही ग्रीष्म ऋतु अपनी पूरी बहार पर है। रात्रियां सुखद शीतल और प्रभात मनभावने हो रहे हैं। दिन ठीक ठीक तपने लगे हैं। नहर स्नान और तैरने की खूब रौनक रहती है। ज्यों ज्यों ताप बढ़ रहा है मच्छर कम हो रहे हैं। छात्रों की वन यात्रायें चालू हैं। वन्य फल बिल्व आदि प्रारम्भ हो रहे हैं। प्यालों की बहार शुरू है। खरबूजे शुरू हो गए हैं। आम्रकुञ्जों में अंबिया झांकने लगी है। पुष्पोद्यान में तथा गृहप्रांगणों में मोतिया और ग्रीष्म-कालीन गुलाब महकने लगे हैं। आम्रवाटियों में पपीहे और कोयल के आलाप बढ़ते जा रहे हैं। छात्रों का स्वास्थ्य उत्तम है।

ग्रीष्मकालीन दीर्घावकाश

प्रथम ज्येष्ठ से दीर्घावकाश प्रारम्भ हो गए हैं। विद्यालय विभाग की डेढ़ महीने की छुट्टियां भी एक ज्येष्ठ से ही प्रारम्भ हो गई हैं।

सरस्वती यात्राएं

यात्रा शिक्षण के सर्वोत्तम साधनों में एक है, इसीलिए ग्रीष्मावकाश की सरस्वती यात्रायें गुरुकुल की शिक्षा का मुख्य अंग हैं। प्रति वर्ष की भांति इस वर्ष भी ऋतु परिवर्तन, भ्रमण और लोक जीवन का प्रत्यक्ष अनुभव पाने के उद्देश्य से ब्रह्मचारी दल बांध कर यात्रा के लिए निकल रहे हैं। बारह ब्रह्मचारियों का एक दल काश्मीर की सुरम्य घाटी में विहार करने जा रहा है। एक दल गंगोत्री यात्रा की योजना बना रहा है। आयुर्वेद महाविद्यालय की उच्च कक्षाओं के विद्यार्थी चिकित्सा विज्ञान के क्रियात्मक शिक्षण के लिए लुधियाना जा रहे हैं। कुर्ग, मसूर, गुजरात, मुम्बई और डलहौजी की यात्रा के लिए भी दल संयोजित हो रहे हैं। ये दल प्राकृतिक सौन्दर्य का अवलोकन करने के साथ-साथ उन प्रदेशों के ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और औद्योगिक महत्व के स्थानों का भी पर्यवेक्षण करेंगे।

मान्य अतिथि

गुरुकुल के पुराने और सुयोग्य स्नातक तथा हैदराबाद (दक्षिण) के प्रसिद्ध जननायक तथा वहां की सरकार के स्वास्थ्य-मन्त्री श्रीयुत विनायक राव जी विद्यालंकार बैरिस्टर उस दिन कुल में पधारे। कुलवासियों ने उन का भावभीना सत्कार और स्वागत किया। कुल में पधारते ही मान्य स्नातक जी की पुरानी स्मृतियां जाग्रत हो उठीं। उन्होंने अपने छात्र-कालीन अनेक मधुर संस्मरण सुनाए तथा कुलपिता श्रद्धानन्द जी की प्यारी प्यारी बातें सुना कर चालीस वर्ष पुराने गुरुकुलीय जीवन का चित्र उपस्थित किया।

मान्य स्नातक जी की संवर्धना के लिए आयोजित कुल सभा में आपने बड़े गम्भीर भाव से यह बताया कि आज भारत राष्ट्र बड़े संकट में से गुजर रहा है। आज अन्न और वस्त्र का संकट तो है, परन्तु मुझे उस की उतनी चिन्ता नहीं है। विशेष चिन्ता तो मुझे इस बात की है कि आज राष्ट्र का चरित्र और सदाचार गिर रहा है। अन्न तो जुट जायगा पर खोया हुआ चारित्र्य और जीवन की शुचिता कहां से आयेगी। आर्थिक अशौच, सामाजिक दम्भ और नैतिक भ्रंश से हमारी समस्त समाज-रचना विशृंखल होती जा रही है। नैतिक मांगल्य और चारित्र्य की परिशुद्धि आज हमारे प्रधान कर्तव्य हैं।

गुरुकुल के पुराने मित्र और सहायक श्री प्रो० सांझीराम जी (कृषि विशेषज्ञ) संप्रति गुरुकुल में पधारे हुए हैं। आपकी उपस्थिति से छात्र जन और गुरुजन दोनों ही खूब लाभ उठा रहे हैं। उस दिन आयुर्वेद परिषद् में आपका व्याख्यान हुआ था।

अहमदाबाद के प्रसिद्ध डाक्टर जी० बी० मांकड़ एम० डी० उस दिन गुरुकुल पधारे। आयुर्वेद-परिषद्

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

के तत्वाधान में आप का विद्वत्तापूर्ण व्याख्यान हुआ। आपने आहार में पोषण द्रव्यों की कमी पर विवेचना करते हुए एलापैथी और आयुर्वेद के सामञ्जस्य पर प्रकाश डाला।

मद्रास प्रांत के प्रधान-मन्त्री माननीय श्री कुमार स्वामी राजा देहरादून से लौटते हुये कुल में पधारे। आपने गुरुकुल का अवलोकन कर के बड़ा प्रेम और परितोष प्रकट किया। कुलवासियों की ओर से श्री आचार्य जी ने आपकी संवर्धना और स्वागत किया।

संग्रहालय

गुरुकुलोत्सव के अवसर पर हमारे सूबे के स्वास्थ्य तथा रसद विभाग के माननीय मन्त्री श्री चन्द्रभानु जी गुप्त ने पुरातत्व संग्रहालय का निरीक्षण कर के इस प्रकार अपने विचार प्रकट किए हैं—

१६ अप्रैल १९५१ को जब मुझे गुरुकुल विश्वविद्यालय के दीक्षान्त समारोह में भाग लेने तथा फार्मेसी के नए भवनों का आधार शिलान्यास करने का अवसर प्राप्त हुआ था उस समय मैंने गुरुकुल संग्रहालय का भी निरीक्षण किया। मुझे यह देख कर हर्ष हुआ कि संग्रहालय के कार्यकर्ताओं ने प्राचीन मूर्त्तियों, भित्ति चित्रों, मुद्राओं तथा पुरातत्व से सम्बन्धित अनेक उपयोगी सामग्री को खोज कर के और उसे इस संग्रहालय में स्थान दे कर एक महत्वपूर्ण कार्य किया है। संग्रहालय में पुरानी मूर्तियां व सिक्कों का अच्छा संग्रह है। प्राचीन चित्रकला व भारतीय लिपियों के भी अनेक सुन्दर उदाहरण एकत्रित कर के संग्रह कर्त्ताओं ने प्रशंसनीय कार्य किया है। जन शिक्षा कला तथा इतिहास की दृष्टि से इन सब पदार्थों का प्रदर्शन एक विशेष महत्व रखता है। इन के द्वारा हमें भारतीय संस्कृति तथा इतिहास के विकास का ज्ञान प्राप्त होता है। हमारे देश में अभी ऐसे संग्रहालयों का अभाव है। ऐसे संग्रहालयों की स्थान-स्थान पर आवश्यकता है।

मुझे विश्वास है कि यह संग्रहालय उत्तरोत्तर वृद्धि करता जावेगा और ज्ञान के प्रसार में उपयोगी सिद्ध होगा।

आश्रम-सभाओं के चुनाव

नए सत्र के आरम्भ के साथ ही छात्रों की आश्रम सभाओं के चुनाव भी सम्पन्न हो चुके हैं। नए कार्यवाहक इस प्रकार हैं।

कुलमन्त्री—ब्र० नारायणदत्त।
कुल-उपमन्त्री—ब्र० शीलकांत।
वाग्वर्धिनी सभा-मन्त्री—ब्र० रघुनाथ।
उपमन्त्री—ब्र० ओम्प्रकाश, अम्बाला।
साहित्य-परिषद् मन्त्री ब्र० चन्द्रभानु।
उपमन्त्री—ब्र० रघुनाथ।
साहित्यगोष्ठी-संयोजक—ब्र० कांतिकृष्ण।
नायक—ब्र० राजीव।
कॉलेज यूनियन-मन्त्री—ब्र० शीलकांत।
उपमन्त्री—ब्र० वीरेन्द्र।
संस्कृतोत्साहिनी-मन्त्री—ब्र० नरपति।
उपमन्त्री—ब्र० महावीर १२ श्रेणी।
क्रीडा मन्त्री—ब्र० विश्वदेव।
क्रीडा उपमन्त्री—ब्र० राजीव।
कप्तान—ब्र० महावीर १४ श्रे०।
नायक—वाद्यदल—ब्र० जगन्नाथ।

★

मुद्रक—श्री हरिवंश वेदालंकार। गुरुकुल मुद्रणालय, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।
प्रकाशक—मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी की
विशेष गुणदायक औषधियां

च्यवनप्राश झाइपो

च्यवनप्राश में कैल्शियम व सोडियम आदि नवीन रासायनिक पदार्थ डालकर यह योग तय्यार किया गया है। खांसी, क्षय, निबलता दमा आदि में रामबाण है और शरीर वृद्धि के लिये उत्तम रसायन है।

मूल्य ३।) पाव।

सिद्ध मकरध्वज

स्वर्ण, कस्तूरी आदि बहुमूल्य वस्तुओं से तैयार किया गया है। सब प्रकार की निर्बलता को दूर करके शरीर में शक्ति व स्फूर्ति देता है व नया जीवन लाता है।

मूल्य ३॥) माशा, ४५) तोला।

बादाम पाक

बादाम, पिस्ता व अन्य गुणदायक वस्तुओं से तैयार किया गया है। स्वादिष्ट, बलवर्धक पाक है। मस्तिष्क व शारीरिक दुर्बलता को दूर कर शक्ति देता है।

मूल्य ४) पाव।

गुरुकुल चाय

जड़ी-बूटियों के योग से बनी देशी चाय है। सुख व स्वास्थ्य के लिये परिवार में इसका प्रयोग कीजिये। थकावट, हल्के बुखार, खांसी, जुकाम में तुरन्त लाभ दिखाती है।

मूल्य ।-) छटांक, १=) पाव।

बसन्त कुसुमाकर

सोना, चान्दी, मोती आदि से तैयार की गई यह औषधि बहुमूत्र और मधुमेह रोग में विशेष गुणकारी है। शरीर की नसों की निबलता को हटा कर समर्थ और बलवान बनाता है। मूल्य ३) माशा, ३६) तोला

चन्द्रप्रभा बटी

शिलाजीत, लोह भस्म, वंशलोचन आदि लाभदायक चीजों से तैयार की गई यह औषधि अनेक रोगों को दूर करके शरीर में नई शक्ति लाती है। खून की कमी, जिगर की निर्बलता, बवासीर तथा विशेषकर प्रमेह व स्वप्नदोष आदि में लाभदायक है।

मूल्य १) तोला, ४) छटांक।

महालोहादि रसायन

इसके सेवन से शरीर में नया रक्त पैदा होता है। प्रत्येक ऋतु में सेवन करने योग्य उत्तम औषधि है।

मूल्य ६) तोला।

द्राक्षासव

बलवर्धक, स्वादिष्ट पेय है। शारीरिक व मानसिक थकावट को दूर करके स्फूर्ति व शक्ति देता है।

मूल्य १।) पाव, ३।) पौंड।

गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी (हरद्वार)

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

वर्ष ३
अङ्क ११

गुरुकुल-पत्रिका

आषाढ़
२००८

व्यवस्थापक
श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति
मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी।

सम्पादक
श्री सुखदेव
दर्शनवाचस्पति

श्री रामेश बेदी
आयुर्वेदालंकार।

इस अङ्क में

अगले अंकों में

अन्य अनेक विश्रुत लेखकों की सांस्कृतिक, साहित्यिक व स्वास्थ्य सम्बन्धी रचनाएं।

मूल्य देश में ४) वार्षिक
विदेश में ६) वार्षिक

एक प्रति
छः आने

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

ओ३म्

गुरुकुल-पत्रिका

[गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की मासिक पत्रिका]

भारतीय संस्कृति का स्वरूप

श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति

आजकल 'भारतीय संस्कृति' की चर्चा देश भर में सुनाई दे रही है। परन्तु संस्कृति क्या वस्तु है? और भारतीय संस्कृति किस वस्तु का नाम है, इस विषय में देश के प्रमुख नेता और विचारक भी सहमत नहीं हैं। मार्च मास में दिल्ली के लाल किले में भारतीय संस्कृति संगम का जो अधिवेशन हुआ था, उसमें देश के अनेक प्रमुख व्यक्तियों ने भाग लिया था। राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद ने अपने प्रारम्भिक भाषण में भारतीय संस्कृति की जो व्याख्या की थी, उसमें आध्यात्मिक तत्वों को प्रधान रखा था। उनकी बात को स्वीकार करें, तो मानना पड़ेगा कि महात्मा गान्धी ने जिन बातों पर बल दिया है, वही भारतीय संस्कृति के मूल तत्व हैं। स्वागताध्यक्ष बा० श्रीप्रकाश जी ने प्रतिदिन के रहन-सहन के नियमों को संस्कृति का अंग बतलाया। उनके भाषण को सुन कर मन पर यह प्रभाव पड़ता था कि शिष्टाचार और स्वास्थ्य सम्बन्धी नियम ही संस्कृतिपद के वाच्य हैं। उड़ीसा के गवर्नर श्री आसफअली की राय थी कि 'विनय' या 'नम्रता' ही संस्कृति है और हमारे प्रधान मन्त्री पं० जवाहरलाल नेहरू जी तो यही निश्चय नहीं कर सके कि संस्कृति नाम की कोई वस्तु है भी या नहीं और यदि है भी तो क्या है। यह तो उन्हें निश्चय ही था कि भारतीय संस्कृति अलग कोई चीज नहीं है।

जहां नेताओं में इतना मतभेद हो, वहां बेचारे अनुयायी क्या करें? आश्चर्य और दुःख की बात तो यह है कि इन राजनीतिक नेताओं ने विद्वान लोगों को भी अपने साथ बहा लिया। वे लोग भी संस्कृति की विस्तृत और पूर्ण व्याख्या को छोड़ कर अपनी अपनी विश्वास-सीमाओं के घेरे में संस्कृति को ढूंढ़ने लगे। किसी ने सूर्य नमस्कार को भारतीय संस्कृति का मुख्य रूप बतलाया तो किसी ने भारतीय संस्कृति को जीव रक्षा तक परिमित कर दिया। इस प्रकार जो सम्मेलन संस्कृति के सामान्य और भारतीय संस्कृति के विशेष विवेचन के लिए एकत्र हुआ था, वह सर्व-मत सम्मेलन के रूप में परिणत हो गया, जिसका उद्देश्य यह प्रतीत होता था कि प्रत्येक वक्ता भारतीय संस्कृति के नाम पर अपने अपने प्यारे सिद्धान्त की उच्चता का बखान करे। संगम में एकत्र हुए महानुभाव उन प्रज्ञाचक्षुओं के समान प्रतीत होते थे, जो हाथी के भिन्न भिन्न अंगों को छू कर हाथी के रूप के सम्बन्ध में झगड़ा करने लगे थे। कोई उसे स्तंभाकार बतलाता था तो कोई उसे छाज के समान कहता था। यही दशा संगम के व्याख्याकारों की भी है। सब अपनी अपनी भावना के अनुसार संस्कृति की व्याख्या कर रहे थे।

वस्तुतः संस्कृति का रूप बहुत विशाल है। संस्कृति सम्पूर्ण विविध भावनाओं का समूह है, जिसके अन्तर्गत ज्ञान, विश्वास, कला, सदाचार और मनुष्य के वह स्वभाव, रिवाज और गुण अवगुण जो उसने

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

समाज के सदस्य की हैसियत से प्राप्त किए हैं: आ जाते हैं।

संस्कृति और सभ्यता में यह भेद है कि जहां संस्कृति एक आंतरिक वस्तु है, वहां सभ्यता उस का बाहिर दिखाई देने वाला ही रूप है।

यों संस्कृति के कई अधिकार-क्षेत्र हैं। कहा जाता है कि संस्कृति का एक संसार-व्यापी रूप है। अनेक युगों के जीवन में सारे मनुष्य समाज ने समूह-रूप से जो भावनाएं या जो आदतें संग्रहीत की हैं, उनके समुच्चय को विश्व की संस्कृति कह सकते हैं। प्रत्येक व्यक्ति की अपनी भिन्न संस्कृति भी होती है, जो उस के अपने संस्कारों और परिस्थितियों का परिणाम होता है। इन दोनों के बीच में, संस्कृति का एक दृढ़ अधिकार-क्षेत्र है, जो राष्ट्रों तक परिमित है। प्रत्येक राष्ट्र अपनी एक विशेष संस्कृति रखता है, जो उस के व्यतीत इतिहास और वर्तमान परिस्थितियों का परिणाम है। किसी राष्ट्र की संस्कृति को आप पसन्द करें या न करें, परन्तु उस से इन्कार नहीं कर सकते। सम्भवत: आप को अपने देश की संस्कृति की अपेक्षा किसी दूसरे देश की संस्कृति पसन्द हो। आपको वैसी सम्मति रखने का अधिकार है, परन्तु आप इस सत्य से इन्कार नहीं कर सकते कि आपके राष्ट्र की भी एक अपनी संस्कृति है और दूसरे देश की भी। विशेष बात इतनी है कि आप को अपने देश की संस्कृति पसन्द नहीं और दूसरे देश की पसन्द है।

संस्कृति के प्रभाव का एक मोटा दृष्टान्त लीजिए। पं० जवाहरलाल जी प्रायः अचकन और तंग पायजामा पहनते हैं, जबकि इंगलैंड के प्रधान मन्त्री सदा कोट और पैण्ट पहनते हैं। ऐसा क्यों है? क्योंकि जवाहरलाल जी ऐसे देश में उत्पन्न हुए हैं, जहां अचकन और तंग पायजामे का रिवाज है। वह गान्धी टोपी धारण करते हैं, क्योंकि वह गांधी युग की उपज है। वह प्रायः हिन्दी या हिन्दुस्तानी में बोलते हैं, क्योंकि यह उनकी मातृभाषा है। वह हाथ जोड़ कर अभिवादन करते हैं या अभिवादन का उत्तर देते हैं, क्योंकि जिस देश में उन्होंने जन्म लिया है, उस में युग युगांतर से हाथ जोड़ नमस्कार करने की शैली है। इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतीय संस्कृति की सत्ता के बारे में सदिग्ध होते हुए भी पं० जवाहरलाल जी भारतीय संस्कृति के नमूने हैं, तभी तो पाश्चात्य वाङ्मय से पूरी तरह परिचित होते हुए भी वह महात्मा गांधी के सत्य और अहिंसा के सिद्धान्तों से प्रभावित हो गये, और चर्खा कातने लगे।

हम ने देख लिया कि प्रत्येक राष्ट्र की अपनी एक अलग संस्कृति होती है। दूसरा प्रश्न हमारे सामने यह आता है कि वह किस प्रकार बनती है, और किन-किन वस्तुओं से प्रभावित होती है।

जब हम संस्कृति के निर्माण के विषय में विचार करते हैं, तो उस में सब से पहले यह देखना पड़ता है कि उस का मूल कहां है? अर्थात् राष्ट्र की संस्कृति रूपी गङ्गा की गङ्गोत्तरी कहां है? वह किस उद्भवस्थान से प्रभावित हुई?

जब हम भारतीय संस्कृति के सहस्रों वर्षों में फैले हुए इतिहास की परम्परा के उद्भव स्थान की खोज में निकलते हैं, तो हम अन्त में वैदिक काल पर पहुँच जाते हैं। पूर्व, माध्यमिक और अर्वाचीन कालों की अधिकतर भारतीय भावनाओं का मूल रूप हमें वैदिक साहित्य में और वैदिक काल के इतिहास में मिलता है। अन्य देशों के और अन्य संस्कृतियों के प्रभाव आते और जाते रहे; परन्तु स्थायी प्रभाव के रूप में जो संस्कृति भारत में विद्यमान रही, उसका

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

उद्भव स्थान वेदों और वैदिक समय के इतिहास में है। इस कारण जब भी कोई निष्पक्ष इतिहास-लेखक भारतीय संस्कृति का इतिहास लिखने लगेगा, तो उसे वेदों से ही प्रारम्भ करना पड़ेगा। यदि कोई व्यक्ति असली उद्भव स्थान को छोड़ कर अन्यत्र भारतीय संस्कृति के आधार को खोजने लगेगा, तो वह जीवन भर भटक कर भी सचाई पर न पहुँच सकेगा।

दूसरा प्रश्न, जिस पर हमें विचार करना होगा, यह है कि जिस संस्कृति का बीज वैदिक काल में बोया गया था, वह अपने विकसित रूप में किस समय आई। यदि हम भारतीय संस्कृति के मौलिक तत्वों का विशुद्ध व्यावहारिक रूप देखना चाहें तो कहां देखें।

इस प्रश्न का उत्तर यह है कि जिस संस्कृति का उद्भव वैदिक काल में हुआ यदि हम उसका विशुद्ध रूप में प्रयोग देखना चाहें तो हमें रामायण में वर्णित समाज और सामाजिक व्यवस्था का अध्ययन करना चाहिये। बाल्मीकि रामायण में वे आदर्श स्थूलरूप में प्रदर्शित किए गए हैं, जिन पर भारतीय समाज और उसका आचारशास्त्र आधारित है। राम, सीता, लक्ष्मण और हनुमान के चरित्रों और वाक्यों द्वारा बाल्मीकि मुनि ने भारतीय व्यवहार शास्त्र और धर्म शास्त्र के तत्वों को स्थूल रूप में प्रदर्शित कर दिया है। रामायण में संस्कृति का जो रूप प्रकट होता है वह वेदों पर आश्रित भारतीय संस्कृति का प्रारम्भिक विशुद्ध मूल रूप है।

यदि सारी रामायण के पाठ से जो परिणाम निकलता है, हम अत्यन्त संक्षेप में उस का वर्णन करना चाहें तो हम कहेंगे कि उस समय के राष्ट्रीय जीवन की पांच विशेषताएं थीं, जिन्हें हम भारतीय संस्कृति की मूलभूत विशेषताएं समझ सकते हैं। वे पांच विशेषताएं निम्नलिखित हैं—

१. सत्यनिष्ठा
२. हृदय की उदारता
३. तेजस्विता
४. तप की प्रमुखता और
५. वर्ण व्यवस्था।

सत्यनिष्ठा

जब अंग्रेज पहले-पहल भारत में आये और राजनीतिक प्रभुत्व स्थापित करने लगे, तब उन्हें ऐसे भारतीयों से वास्ता पड़ा, जो शताब्दियों की दासता और विदेशियों के सम्पर्क के कारण बहुत गिर चुके थे, उनमें भारतीयता का लगभग अभाव हो गया था। उस समय अमीचन्दों और मीर जाफरों का जोर था। ऐसे निर्बल चरित्र वाले व्यक्तियों पर विजय पाना कुछ कठिन नहीं था। अंग्रेज जीत गये और उन्होंने हारे हुए हिन्दुस्तानियों के विषय में बहुत बुरी सम्मति बनाई। लार्ड मैकाले और उसी दिमाग के अन्य अंग्रेजों ने सामान्य रूप से हिन्दुस्तानियों और बंगालियों के विषय में जो सम्मति बनाई, उस का मूल कारण उस समय की मिश्रित और गिरी हुई संस्कृति ही था।

जब तक योरोप के लोग उस समय के वर्तमान को देख कर भारतवर्ष और भारतवासियों के सम्बन्ध में राय बनाते रहे, तब तक भ्रम में ही रहे, और इस देश की असली संस्कृति के रूप को न समझ सके, परन्तु ज्यों ही उन लोगों ने प्राचीन साहित्य और इतिहास में प्रवेश किया, त्यों ही उन की सम्मति में परिवर्तन आ गया। जो परिवर्तन आया, वह प्रो० मैक्समूलर के 'भारत हमें क्या सिखा सकता है?' इस नाम की पुस्तक में स्पष्ट रूप से प्रतिपादित है। प्रो० मैक्समूलर ने जब बाल्मीकि रामायण पढ़ी और उस में राम-सीता, लक्ष्मण और हनुमान के चरित्रों का विवरण देखा, तब वह

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

आश्चर्य में पड़ गये और भारत-वासियों की सत्य-निष्ठा के सामने उन का सिर झुक गया। ऋत और सत्य की जो व्याख्या वेदों में की गई है, उस पर मैक्स मूलर मुग्ध हो गए और अपनी पुस्तक में भारतीय सभ्यता और संस्कृति की ऐसी सुन्दर व्याख्या की कि योरोप के लोग चमत्कृत हो गये।

यद्यपि मध्यवर्ती इतिहास में अनेक कारणों से सत्यनिष्ठा की निर्मल धारा गन्दी हो गई, फिर भी भारतीय संस्कृति का स्थायी प्रभाव कभी नहीं बदला। यह धारा प्राचीन, मध्य और अर्वाचीन समयों में से गुजरती हुई अनेक प्रकार के प्रभावों से प्रभावित होती रही, परन्तु वर्तमान काल तक भी भारत-वासियों की मौलिक भावनायें उस सत्य द्वारा अनुप्राणित हैं, जिस का स्थूल रूप हमें वाल्मीकीय रामायण में चित्रित रामचरित्र में मिलता है। एक सहस्र वर्षों की दासता के पश्चात् यदि देश फिर स्वतन्त्र हुआ है तो वह सत्य की पुकार के आश्रय से ही हुआ है। महर्षि दयानन्द ने सिखाया था कि मनुष्य का सर्वप्रथम धर्म यह है कि वह सत्य के ग्रहण करने और असत्य का परित्याग करने के लिये सदा उद्यत रहे। महात्मा गान्धी ने अपना समस्त जीवन सत्य की खोज में लगाया और सत्य को ही अपना मार्ग-दर्शक बनाया। उन्होंने भारत की आन्तरिक हृदय-तन्त्री पर झंकार दी। उसी का परिणाम यह हुआ कि भारतवर्ष संसार को शांतिमय क्रान्ति का चमत्कार दिखला सका।

हृदय की उदारता

भारतीय संस्कृति की दूसरी विशेषता है, उदारता। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' मनुष्य का असली परिवार मनुष्यमात्र है। 'आत्मवत्सर्वभूतानि' सब प्राणियों को अपने समान समझो। यह हृदय की विशालता और उदारता ही मानो शरीरधारी बन कर मर्यादा पुरुषोत्तम राम में अवतीर्ण हो गई थी। वह प्राणि-मात्र के दुःख में हिस्सा बांट सकते थे, दूसरों की निर्बलता को क्षमा कर सकते थे और शत्रु को भी अपनी गोद में बिठा सकते थे। वह वीर थे और वस्तुतः वीर पुरुष ही उदार भी हो सकता है। शरण में आये को अभयदान देना—यह हमारे शास्त्र का एक आवश्यक आदेश था। मध्यकाल में हमारी इस उदार भावना को बहुत ठोकरें लगीं, क्योंकि हमारे देश के क्षत्रियों की उदारता से धूर्त शत्रुओं ने अनुचित लाभ उठाया, परन्तु वहां ठोकर लगने का मुख्य कारण उदारता नहीं थी, अपितु असावधानता था। उसे कोई अच्छा कहे या बुरा—हृदय की उदारता हमारी संस्कृति का एक आवश्यक अंग है। जब कभी हम ने उस का परित्याग किया है, तभी दुःख उठाया है। हमारी जाति में जात-पात का जहर अनुदारता के आ जाने से ही हुआ। अनुदारता से कायरता उत्पन्न होती है। हमारा यह समझना कायरता का ही परिणाम है कि किसी विधर्मी के छूने से हमारा मन्दिर भ्रष्ट हो जायगा, या हमारी व्याख्यान वेदी अपवित्र हो जायगी। होना तो यह चाहिये कि जो व्यक्ति हमारे सम्पर्क में आये, वह पवित्र हो जाय, न कि यदि कोई हमें छू जाये तो हम अपवित्र हो जायें। ऐसी कायरता की भावना हमारी संस्कृति के मौलिक विचारों के प्रतिकूल है।

अन्य विशेषतायें

तप का हमारे देश में सदा आदर रहा है। आर्थिक स्थिति को धर्म शास्त्र में कभी ऊंचा स्थान नहीं दिया गया। त्याग को सदा भोग से ऊंचा समझा गया है। कोई विद्वान् हो या शासक, व्यापारी हो या सेवक, यह उत्तम समझा जाता था कि वह त्यागपूर्वक जीवन व्यतीत करे। 'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा, मा गृधः कस्य स्विद्धनम्' वेद का यह उपदेश

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

जाति का मार्गदर्शक समझा जाता था कि संसार का उपभोग तो करो, परन्तु करो त्याग वृत्ति से।

किन्तु त्याग वृत्ति का यह अभिप्राय नहीं था कि संसार को छोड़ कर जगलों में भाग जाओ, या अपने स्वत्वों की रक्षा न करो, स्वत्वों की रक्षा प्रत्येक मनुष्य का धर्म समझा जाता था। 'अदीनाः स्याम शरदः शतम्' का यही अर्थ था। यदि कोई आततायी देश या धर्म पर आक्रमण करे, तो उसे रोकना, या परास्त करना या नष्ट करना सर्वथा धर्मानुकूल कर्म समझा जाता था। त्याग, शक्ति, भोग, अनुपम तेजस्विता के मिश्रण का यदि मूर्तिमान् स्वरूप देखना हो तो हमें महाराजा राम के चरित्र में मिलता है।

हमारी संस्कृति की अन्तिम विशेषता यह है कि किसी न किसी रूप में वर्णों की व्यवस्था को सदा माना गया है। और वैदिक काल में, और उस के उपरांत भी पतन के समय से पूर्व वह वर्ण व्यवस्था गुण कर्मानुसार मानी जाती थी। जैसा जिसका कर्म होता था, वैसा वर्ण उसे मिलता था। व्यवस्था की बात यह थी कि समाज में वर्णों के सम्मान का तारतम्य विद्यमान था। विद्वान् और तपस्वी लोग समाज में सब से अधिक आदरणीय माने जाते थे। उन के पश्चात् क्षत्रिय, जो देश और धर्म की रक्षा करते थे, फिर व्यापारी वर्ग और अन्त में सेवक श्रेणी के लोग। यह समझ लेना चाहिये कि वर्णों के पारम्पर्य का अर्थ यह नहीं था कि कोई भी वर्ण गन्दा या जघन्य समझा जाता था। उन में बड़े छोटे का सा भेद था, ऊंच-नीच या पवित्रता पवित्रता का नहीं।

वर्णों का पारम्पर्य भी बाल्मीकि रामायण में भली प्रकार चित्रित है। महाराज दशरथ और महाराज रामचन्द्र अपने गुरु महर्षि वसिष्ठ को अपना पथ-दर्शक मानते थे। वे हर आवश्यक कार्य में उन से परामर्श मांगते थे और उनके आदर्शों के सामने सिर झुकाते थे।

हमारी संस्कृति का मूल आधार वेद है और उस का स्पष्टतम चित्र बाल्मीकि रामायण में वर्णित राम-चरित्र में पाया जाता है। मैं सब भारतवासियों से—वे पुरुष हों या स्त्री, बालक हों या वृद्ध—यह साग्रह अनुरोध करता हूँ कि वे मूल में या अनुवाद में, बाल्मीकि रामायण का परायण स्वयं करें और अपनी सन्तानों को करायें। मेरा निजी अनुभव है कि भारतीयता का जैसा विशद रूप बाल्मीकि रामायण में प्राप्त होता है, वैसा अन्यत्र कहीं नहीं। [गुरुकुल कांगड़ी के वार्षिकोत्सव पर दिया गया भाषण]।

★

गुरुकुल के स्नातक—आरम्भ काल से १९५० तक गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय से जो स्नातक निकले हैं उनका सचित्र परिचय इस पुस्तक में दिया गया है। देश के प्रथम राष्ट्रीय शिक्षणालय के स्नातकों का विस्तृत परिचय देने वाली इस पुस्तक को आज ही मंगाइये। मूल्य ३)।

मिलने का पता—प्रकाशन मन्दिर, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

पारसीक-चयनिका

श्री लोकेशचन्द्र डी. लिट्.

फारसी आर्यवर्गीय भाषा है जिसका संस्कृत से बहुत ही निकट का सम्बन्ध है। इस के विकास में तीन अवस्थाएं हैं—प्राचीन, मध्यकालीन और अर्वाचीन। प्राचीन में अवस्ता और पुरानी फारसी, मध्यकालीन में पहलवी, सुगुदी और खोतनी, और अर्वाचीन में आधुनिक फारसी तथा उस की उपभाषाएं हैं। प्राचीन अवस्था में तो ईरानी का संस्कृत से नगण्य भेद है, यथा—

अवस्ता-यो वो आपो वंगुहीष् यजाइते अहुरानीश्
वैदिक संस्कृत-यो वो आपो वस्वीष् यजाते असुराणीस्
अवस्ता-अहुरहे वहिश्ताब्यो ज़ओथ्राब्यो स्रएश्ताब्यो...
वैदिक संस्कृत-असुरस्य वसिष्ठाभ्यो होत्राभ्यो श्रेष्ठाभ्यो...

मध्यकालीन ईरानी में यद्यपि भेद पर्याप्त हो गया तथापि प्राचीन तिङन्त और सुबन्त का सर्वथा लोप न हुआ और सुगुदी एवं खोतनी नामक ईरानी भाषाओं मे बहुत बौद्ध साहित्य का अनुवाद हुआ जो आज भी उपलब्ध है। इस युग की बौद्ध स्मृति आधुनिक मूर्तिवाचक 'बुत' शब्द में सुरक्षित है। उन दिनों ईरानी प्रदेशों में बुद्ध भगवान् की मूर्तियां इतनी छाई हुई थीं कि मूर्ति के लिए 'बुद्ध' शब्द ही प्रयोग होने लगा, जो आज उपर्युक्त 'बुत' के रूप में बचा हुआ है।

आधुनिक फारसी यद्यपि संस्कृत से बहुत दूर जा चुकी है परन्तु आज भी उस में प्राचीन शब्द संपदा विकृत रूप में विद्यमान है। आज हम कुछ सर्वसाधारण फारसी शब्दों की व्युत्पत्तियों का नीचे उल्लेख करेंगे।

रोज़—बेहिस्तून के महाराजा दारयवउश् के शिलालेखों में—'रउचह्', तुर्फ़ान हस्तलेखों में—'रोज़्', संस्कृत रुच् से संबद्ध है। रुच् का अर्थ 'चमकना' है, दिन रात्री की तुलना में प्रकाशमान।

हर—हिन्दी में हर एक के रूप में प्रचलित है। बेहिस्तून शिलालेख में उपसर्ग प्र- के साथ इस का 'फ्रहरवम्' (जो संस्कृत में 'प्रसर्वं' था) रूप मिलता है। सर्व के साथ प्र-का उपयोग उल्लेखनीय है। एवं 'हर' संस्कृत 'सर्व' का अपभ्रंश है।

दीह—हिन्दुस्तानी में देहात। इस का बेहिस्तून शिलालेख में दह्यु रूप है जो संस्कृत में दस्यु है।

गाह—यथा हिन्दी 'चारा-गाह' में। पुरानी फारस में 'गाथु'। अवस्ता में इस का रूप 'गातु' है जो कि संस्कृतसम है-यथा ऋग्वेद में 'गातुं नाथं विन्देय'।

चीह—हिन्दी 'चुनाचे', मध्यकालीन फारसी 'चि', गाथाकालीन अवस्ता 'चित्', संस्कृत में भी 'चित्'। बेहिस्तून शिलालेख में 'च्चिय्' रूप है, जो कि शब्दों पर ज़ोर देने के लिये जोड़ा जाता था—'यथा परुवं-च्चिय ' जैसा कि पहिले ही था।'

जहां—'संसार'-संस्कृत 'जीव'।

मीर—यह उपाधि कुर्दी उपभाषा की है। यह संस्कृत 'मर्त्य' से सम्बद्ध है, आधुनिक फारसी 'मर्द'।

बीनद्—हिन्दी में दूर-बीन में प्रयुक्त। -बीन संस्कृत 'वेनति' 'वह देखता है' से सम्बद्ध है। वेनति ऋग्वेद, शतपथ-ब्राह्मण, धातुपाठ आदि में प्रयुक्त है।

पइकार—पुरानी फारसी 'पतिकार' 'चित्र'। तुलना कीजिए संस्कृत 'प्रतिकृति'।

शहर—संस्कृत 'क्षत्र' से निकला है। क्षत्रप इतिहास में प्रसिद्ध ही हैं। क्ष का श होना और 'त्र' का 'हर' ईरानी भाषा-विज्ञान में सामान्य घटनाएं हैं।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

मध्यकालीन साहित्य

श्री हरिदत्त वेदालंकार

इस समय संस्कृत साहित्य के लगभग सभी अंगों की उन्नति हुई। अनेक प्रसिद्ध दार्शनिकों, कवियों, लेखकों ने इस काल को अलंकृत किया किन्तु दार्शनिकों में धर्मकीर्त्ति, शान्तरक्षित और शंकर के बाद पहले की-सी मौलिकता और ताजगी समाप्त हो जाती है। नये विचार के स्थान पर बाल की खाल निकालने की प्रवृत्ति प्रबल होती है, कविता में सहज सौन्दर्य की बजाय अलंकारों की कृत्रिम शैली प्रधान हो जाती है कानून के क्षेत्र में नई स्मृतियों का निर्माण बन्द हो जाता है, इस काल में पहले तो स्मृतियों के भाष्य होते हैं और अन्त में पुराने धर्म-ग्रन्थों के आधार पर निबन्ध ग्रन्थ बनने लगते हैं। इस काल की एक प्रधान विशेषता प्रान्तीय भाषाओं के साहित्य का अभ्युत्थान और विकास है।

संस्कृत साहित्य

काव्य

मध्य काल में संस्कृत साहित्य के प्रायः सभी अंगों काव्य, नाटक, चम्पू (गद्यपद्यात्मक काव्य), अलंकार शास्त्र, व्याकरण, कोष, दर्शन आदि का विकास हुआ। इस समय के काव्यों में भट्टि का रावण वध (छठी श० का उत्तरार्ध), माघ (लगभग ६७५ ई०) का शिशुपालवध तथा श्रीहर्ष का नैषधीय चरित (१२ वीं श० का उत्तरार्ध) उल्लेखनीय हैं। इन सबने प्रायः भारवि द्वारा प्रवर्तित पद्धति का अनुसरण कर काव्य को रसमय बनाने की अपेक्षा उसे अधिक से अधिक अलंकारों से विभूषित करने का यत्न किया है। अलंकृत शैली का चरम विकास श्रीहर्ष के काव्य में है, उस के एक-एक श्लोक में अनेक अलंकार हैं तथा कई श्लोकों में अनेकार्थक शब्दों का इतना अधिक प्रयोग हुआ है कि एक ही पद्य के कई अर्थ किए जा सकते हैं। इन के कथानक प्रायः रामायण, महाभारत की कथाओं से लिए गये हैं। इस समय कुछ कवियों ने अपने आश्रयदाताओं के चरित्र को रोचक, काव्यमयी भाषाओं में लिख कर उन्हें अमर करने का प्रयत्न किया तथा संस्कृत में ऐतिहासिक काव्यों की परम्परा डाली। इन में पद्मगुप्त परिमल १००५ ई०) का नवसाहसांक चरित (राजा भोज के पिता सिन्धुराज का चरित्र) और बिल्हण का

शब्‌-(रात)-शब्नम् 'ओस'। पश्च अवस्ता में 'क्शप्‌', संस्कृत में 'क्षप्‌' रात। हिन्दी-साहित्य में 'क्षपा' का प्रयोग यत्र तत्र मिलता है।

चेहरा—संस्कृत 'चित्र'। 'त्र' का 'हर' जैसे कि क्षत्र के 'त्र' का शहर में 'हर'।

साल—तुर्फान हस्तलेखों में 'सार्‌' रूप है जो कि नव अवस्ता 'सरद्' के अन्तिम वर्ण लोप से बना। 'सरद्' संस्कृत 'शरद्' का रूपांतर है।

सुर्ख़—अवस्ता में 'सुख' जो कि स्पष्टतः संस्कृत शुक्र है।

बहार—प्राचीन फारसी (कीललिपि के शिलालेखों में) 'बाहर' संस्कृत 'वासर' से, स का ह हो गया।

दीदन्—'देखना'-प्राचीन फारसी में धातु 'दी' था। यह संस्कृत धी से अल्पप्राणन द्वारा बना।

फर्मदार—प्राचीन फारसी 'फ्रमातर्‌' संस्कृत 'प्रमातृ' से।

फ़र्मान—यह शब्द छटी शताब्दि विक्रमपूर्व में भी मिलता है। यह संस्कृत प्र- मा से सम्बद्ध है।

★

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

विक्रमांकदेव चरित (चालुक्यवंशी विक्रमादित्य षष्ठ १०७६-११२७ ई० का वर्णन) जयानक का पृथ्वीराज विजय और हेमचन्द्र का कुमारपाल-चरित प्रसिद्ध है। किन्तु सब से प्रसिद्ध ऐतिहासिक काव्य कल्हण-रचित राज-तरंगिणी है। इस की रचना काश्मीरी राजा जयसिंह (११२७-११४६ ई०) के समय में हुई, इसमें १२ वीं शती तक के काश्मीरी इतिहास का बड़ा सरस वर्णन है।

नाटक

मध्यकाल के प्रसिद्ध संस्कृत नाटक हर्ष की रत्नावली, प्रियदर्शिका और नागानन्द, भट्टनारायण का का वेणीसंहार, भवभूति (८ वीं श० का पूर्वार्द्ध०) के उत्तर रामचरित, महावीर-चरित और मालती-माधव, मुरारि का अनर्घ राघव, राजशेखर (नवीं श० का उत्तरार्ध), के बाल रामायण, बाल भारत, कर्पूरमञ्जरी हैं। इन में भवभूति की कृति उत्तररामचरित सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है।

संस्कृत के मुक्तक और गेयकाव्यों की अधिकांश प्रसिद्ध रचनाएं इसी युग की हैं। सात बार सन्यास और गृहस्थ के बीच में डोलने वाले भर्तृहरि के शृंगार और वैराग्य शतकों में दोनों भावों का सुन्दर चित्रण है और नीतिशतक में नीति विषयक तत्वों का उदात्त वर्णन। शृंगार रस का सर्वश्रेष्ठ मुक्तक अमरुक-शतक है। इस का एक एक पद्य साहित्य का चमकीला हीरा है। ११ वीं शती में महाकवि जयदेव ने कोमल कान्त पदावली में 'गीत-गोविन्द' की रचना की।

गद्य

संस्कृत में पद्य की अपेक्षा गद्य बहुत कम लिखा गया। सब से बड़े गद्य लेखक वासवदत्ता के प्रणेता सुबन्धु, कादम्बरी हर्ष चरित के रचयिता बाण (७ वीं शती) और दशकुमार-चरित के लेखक दण्डी (सातवीं शती का उत्तरार्ध हैं। दण्डी पद-लालित्य तथा बाणभट्ट वर्णन-कौशल की दृष्टि से अनुपम हैं। गद्य-पद्य-मिश्रित रचना चम्पू कहलाती है। चम्पुओं में त्रिविक्रम भट्ट (दसवीं शती का आरम्भ) का नलचम्पू सर्वश्रेष्ठ है।

मध्य युग में अलंकार शास्त्र के विकास द्वारा काव्य के विभिन्न अंगों-रस, ध्वनि, गुण, दोष और अलंकारों का सूक्ष्म विवेचन किया गया। इस के पहले आचार्य भामह छठी शती के मध्य में हुये, इन्होंने इस के मौलिक सिद्धान्तों का काव्यालंकार में सुस्पष्ट प्रतिपादन किया। इन के बाद दण्डी, वामन (८ वीं शती का अन्तिम भाग), आनन्दवर्धन (नवीं शती) अभिनव गुप्त, मम्मट आदि विद्वानों ने इस शास्त्र को प्रौढ़ता तक पहुँचाया।

इस युग में कथा-साहित्य भी काफी लिखा गया। पहली या दूसरी श० ई० में गुणाढ्य ने बृहत्कथा लिखी थी। यह लुप्त हो चुकी है. इस के आधार पर ११ वीं शती में क्षेमेन्द्र ने बृहत्कथा मञ्जरी तथा सोमदेव ने कथा सरित्सागर लिखा। पिछला ग्रन्थ बहुत बड़ा है और आकार में महाभारत का चतुर्थांश है। इस प्रकार के अन्य ग्रन्थ बेताल पञ्चविंशति, सिंहासन द्वात्रिंशिका और शुक सप्तति हैं।

धर्मशास्त्र के क्षेत्र में इस काल में नई स्मृतियों का निर्माण बन्द हो गया, पुरानी स्मृतियों पर टीकाएं और भाष्य लिखे गए। मनुस्मृति की पहली और प्रसिद्ध टीकाएं मेधा तिथि (नवीं श०) और गोविन्दराज (ग्यारहवीं श०) ने लिखीं। विज्ञानेश्वर की याज्ञवल्क्य स्मृति पर सबसे प्रसिद्ध मिताक्षरा व्याख्या ११ वीं शती की रचना है। वर्तमान हिन्दू कानून का यह प्रधान आधार है। १२ वीं शती से पुराने धर्मशास्त्रों के आधार पर निबन्धग्रन्थ लिखे जाने लगे। इस प्रकार का पहला ग्रन्थ कन्नौज के राजा

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गोविन्दचन्द्र (१११४-४५) के मन्त्री लक्ष्मीधर कृत 'कृत्यकल्पतरु' था ।

इस काल के दार्शनिक साहित्य का परिचय पहले पहले दिया जा चुका है। व्याकरण में जयादित्य और वामन ने ६६२ के लगभग पाणिनीय सूत्रों का काशिकावृत्ति के नाम से भाष्य लिखा। भर्तृहरि ने वाक्यप्रदीप, महाभाष्य दीपिका और महाभाष्य त्रिपदी नामक ग्रन्थों की रचना की। पाणिनि से भिन्न अन्य व्याकरणों में इस काल में शर्ववर्मा का 'कातन्त्र' बड़ा लोकप्रिय था । बृहत्तर भारत में मध्य एशिया से बालि तक इस की पुरानी पोथियां मिली हैं। जैन आचार्य हेमचन्द्र ने अपने आश्रय-दाता नरेश सिद्धराज की स्मृति सुरक्षित रखने की दृष्टि में 'सिद्धहेम' नामक प्रसिद्ध व्याकरण का निर्माण किया। संस्कृत कोषों में अमरकोष इतना लोकप्रिय हुआ कि इसकी ५० के लगभग टीकाएं लिखी गईं। इन में १०५० ई० के लगभग होने वाले क्षीरस्वामी की टीका अत्यन्त प्रसिद्ध है । पुरुषोत्तमदेव ने अमरकोष के परिशिष्ट रूप में 'त्रिकाण्ड शेष' की रचना की, हारावली में नये कठिन शब्दों का अर्थ दिया । अन्य कोषों में हेमचन्द्र का अभिधान चिन्तामणि, अनेकार्थ संग्रह, यादव का वैजयन्ती, हलायुध का अभिधान रत्नमाला उल्लेखनीय है। राजनीति शास्त्र में इस काल की प्रसिद्ध रचना शुक्रनीति है। कामशास्त्र में वात्स्यायन के कामसूत्र पर टीकाएं लिखी गईं । इस विषय के स्वतन्त्र ग्रन्थ कोक पंडित का कोकशास्त्र और बौद्ध पद्मश्री का नागर सर्वस्व है । संगीत का प्रसिद्ध ग्रन्थ शार्ङ्गदेवकृत (१३ वीं श०) संगीत-रत्नाकर है । ज्ञान तथा कला की सम्भवतः कोई शाखा ऐसी नहीं थी, जिस पर संस्कृत में ग्रन्थ न लिखे गये हों। यहां तक कि चोरी की कला पर भी साहित्य था । दुर्भाग्यवश, प्राचीन साहित्य का बहुत भाग लुप्त हो चुका है।

प्राकृत साहित्य

संस्कृत वाङ्मय की भांति इस काल में प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य की भी बड़ी उन्नति हुई। प्राकृतों का विकास-काल पहली से छठी श० ई० तथा अपभ्रंशों का उन्नतियुग ६००-१००० ई० समझा जाता है। वैदिक भाषा के जन-साधारण में प्रचलित रूप के अवान्तर भेदों की दृष्टि से, पहले प्राकृतों का जन्म हुआ और बाद में अधिक अन्तर बढ़ने पर अपभ्रंशों का। यही अपभ्रंश आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं--हिन्दी, मराठी, गुजराती, बंगला आदि का पूर्व रूप है। प्रधान प्राकृतें मागधी, शौरसेनी, महाराष्ट्री और पैशाची हैं। इन में साहित्यिक दृष्टि से महाराष्ट्री सर्वश्रेष्ठ है। इसी में सातवाहन राजा हाल की गाथा सप्तशती है। जैनों ने इनका बहुत विकास किया। मागधी और शौरसेनी के मिश्रण अर्धमागधी में उनके प्राचीन आगम ग्रन्थ हैं। सातवीं शती से अपभ्रंशों का प्रयोग प्रारम्भ हुआ। पुरानी हिन्दी इसी से निकली है। इस में दोहा प्रधान छन्द है। इस भाषा का सब से प्रसिद्ध और बृहत् ग्रन्थ दसवीं श० ई० में धनपाल द्वारा लिखा 'भविसयत्तकहा' है। प्राकृत साहित्य का विकास होने पर इन के अनेक प्रामाणिक व्याकरण और कोश लिखे गये।

दक्षिणी भाषाएं

दक्षिण की प्रधान भाषाओं--तामिल, तेलगू और कन्नड़ में इस युग से काफी साहित्य बनने लगा था। तामिल का साहित्य तो ईसा की पहली श० से बनने लगा था। इस के प्राचीनतम ग्रन्थ 'नालदियार' के कुछ अंश ही मिलते हैं तिरुवल्लुवरकृत 'कुरल' तामिल वेद माना जाता है, इसमें धर्म, अर्थ, काम के सम्बन्ध में उपयोगी उपदेश हैं।

★

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

भारत की लिपि

श्री जयचन्द्र विद्यालङ्कार

१९०५ के स्वदेशी आन्दोलन के समय से यह बात स्पष्ट रूप से हमारे राष्ट्रीय विचारनेताओं के सामने है कि हमारे स्वप्नों के भारत और बृहत्तर भारत की एक ही लिपि हो सकती है। बंगाली विचार-नेता शारदाचरण मित्र ने एकलिपिविस्तार-परिषद् की स्थापना की और देवनागर नाम का पत्र निकाला। १९२३ में मुलतान में पहला पञ्जाब प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन होने पर राजा महेन्द्रप्रताप ने मुझे एक पत्र में लिखा कि एशिया की सब भाषाओं को नागरी में लिखने की पद्धति बनानी चाहिए; उस के लिये यह आवश्यक है कि नागरी-प्रेमी कुछ लाख रुपये खर्च कर के उन सब भाषाओं के वाङ्मयों के चुने रत्नों को नागरी में सुसम्पादित कर निकालें। महेन्द्रप्रताप के उस पत्र से, जो मेरे पास सुरक्षित है, पता चलता है कि वे उस समय भी देख रहे थे कि तुर्की के नेता अरबी लिपि को छोड़ने वाले हैं और ईरानी और अफ़गान भी उस से ऊब रहे हैं। भारतीय क्रान्तिकारियों की दूरदृष्टि का वह नमूना है।

महात्मा गांधी के मन में भी यह आकांक्षा रही कि भारत की एक लिपि देवनागरी हो जाय। यदि वे उर्दू को समान पद देने के चक्कर में न फंस जाते तो शायद इस दिशा में कुछ कर पाते। १९३७ में भारतीय साहित्य परिषद् के मद्रास अधिवेशन में इस विषय की चर्चा उठी तो च० राजगोपालाचारी ने कहा, विभिन्न प्रान्तों के लोगों को नई लिपि सिखाना कितना कठिन होगा। गांधी जी ने कहा, प्रान्तों में केवल ७ % आदमी शिक्षित हैं, जब ९३ % को अक्षर-ज्ञान देना ही है तो क्यों न देवनागरी द्वारा दिया जाय। इस से यह समझना चाहिये कि यदि यह सुधार करना है तो इसे करने की पूरी योजना और तैयारी हमें शीघ्र से शीघ्र कर लेनी चाहिये; अन्यथा शिक्षा का व्यापक प्रसार हो जाने पर इसे करना कठिनतर होता जायगा।

भारत के प्रत्येक प्रान्त के लोगों को अपनी लिपि बड़ी प्यारी और सुकर लगती है, और जिन्हें जिस लिपि का अभ्यास है उसे छोड़ कर दूसरी को अपनाना अत्यन्त कठिन लगता है। पर भारत की सभी लिपियां एक ही लिपि से निकली हैं, मध्य काल में लेखन-सामग्री के भेद से वे भिन्न हुईं, आज की लेखन-सामग्री टाइप की मशीनें हैं जिन के पनपने के लिए लिपियों के क्षेत्र जितने बड़े हों उतना ही अच्छा, इस लिए वे लिपि की एकता कराने में अत्यन्त प्रेरक और सहायक होंगी। यह भी समझना चाहिए कि बचपन में जिस लिपि का अभ्यास किया जाता है वह सरल और प्यारी लगती है। यदि हमें प्रान्तीय भाषाओं की लिपि नागरी करनी हो तो जिस दिन से इस सुधार को प्रवृत्त करना हो उस दिन से बच्चों की नई पीढ़ी का विद्यारम्भ नागरी से किया जायगा—उस से पहले इस के लिए हर पहलू से पूरी तैयारी कर रखनी होगी—और उस के बाद जब तक पुरानी पीढ़ी जीवित रहे तब तक शासन-कार्य में पुरानी लिपि नागरी के साथ-साथ चलती रहेगी। यों यह परिवर्तन बिना रगड़ के किया जा सकता है।

वह कौन सी तैयारी है जो हमें इस के लिए करनी होगी? महेन्द्रप्रताप के पत्र में इसका उत्तर है। भारत के कई क्रान्ति-दर्शी विचारनेताओं ने इस दिशा में पग उठाना चाहा। राहुल सांकृत्यायन ने १९३० आदि में यत्न किया कि पूरा पालि त्रिपिटक, जो सिंहल बरमा और स्याम में व्यापक रूप से पढ़ा जाता है, नागरी में छप जाय। भिक्षु उत्तम बरमा से उस की छपाई का सब खर्चा देने को तैयार थे। पर देश की किसी संस्था ने उधर ध्यान नहीं दिया।

महेन्द्रप्रताप की योजना की ओर पग उठाते ही

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

इसमें एक और कार्य करना होगा। ब्राह्मी वर्णमाला संस्कृत के लिए बनी थी। आज जो भाषाएं उस में लिखी जाती हैं उन में कई नये उच्चारण हैं; पर उन के चिन्ह नहीं हैं। उदाहरण के लिये तेलुगु में ह्रस्व एकार है। मराठी, पश्तो, कश्मीरी, पर्वतिया, असमिया में स से मिलता हुआ च है। स्वयं हिन्दी में हम संस्कृत ऐ (अइ) और हिन्दी ऐ (अय) का अन्तर नहीं करते और न अकार-सहित व्यञ्जन और अकार-रहित व्यञ्जन का। इन अंशों में हमारी लिपियां ध्वनि-सूचक और विज्ञान-सम्मत नहीं रहीं। यदि हम भारत या एशिया की सब भाषाओं की ध्वनियों का बारीकी से विश्लेषण किये बिना नागरी में उन भाषाओं को लिखने में प्रवृत्त होंगे तो कुछ ही दिन में में घपला मच जायगा। हमारे देश में सिद्धेश्वर वर्मा, सुनीतिकुमार चटर्जी और विश्वबन्धु शास्त्री जैसे ध्वनिविज्ञान के पंडित हैं जो प्रामाणिकता से यह विश्लेषण कर सकते हैं। इस सम्मेलन के ग्वालियर अधिवेशन (१९३३) में मेरे प्रस्ताव पर यह कार्य करना स्वीकृत हुआ था। पर सम्मेलन ने तब इसका ठीक महत्व न समझा। आज यदि हमारे मन में भारत और बृहत्तर भारत में एक ही लिपि देखने की आकांक्षा है तो अब एक दिन भी इस कार्य को न टालना चाहिए।

रोमक लिपि

भारत के लिए एक लिपि के विचार-प्रसंग में रोमक लिपि को वह पद देने का प्रस्ताव किया गया है। उस प्रस्ताव के समर्थकों में सुनीतिकुमार चटर्जी जैसे विद्वान् और नेताजी सुभाषचन्द्र वसु जैसे महापुरुष रहे हैं, इस लिए उस पर गम्भीरता और आदर के साथ विचार करना चाहिये। सुनीति बाबू के रोमक लिपि को अपनाने के प्रस्ताव का यह अर्थ नहीं है कि उस लिपि के वर्णों की वही ध्वनियां और वही क्रम रहेगा जो अंग्रेजी या फ्रेंच में है। वर्ण या चिन्ह रोमक होंगे पर उन की ध्वनियां और उनका क्रम ठीक ब्राह्मी का होगा—अ, आ, इ, ई, क, ख, ग आदि। पर स्वर सदा पूरे लिखे जायेंगे, उनकी मात्राएं न होंगी और महाप्राण अक्षर अल्पप्राणों में ह (h) मिलाने से बनेंगे। इस दशा में रोमक वर्णों को लेने का लाभ? लाभ ये हैं—(१) वे वर्ण नागरी से अधिक सरल हैं, (२) स्वरों की मात्राएं न होने से टाइप में बड़ी सुविधा हो जायगी (३) नागरी उर्दू का झगड़ा मिट जायगा और भारत की अनेक लिपियों का भी, (४) रोमक लिपि सार्वभौम बनती जाती है, उससे हमारा विश्व से सम्बन्ध गहरा हो जायगा।

पहली बात हमें माननी होगी। नागरी की अपेक्षा मौर्य युग की ब्राह्मी और रोमक लिपि के वर्ण अधिक सरल हैं। वर्णमाला कितनी ही वैज्ञानिक हो, यदि वर्णों की आकृतियां जटिल हैं, तो वे नहीं चल सकेंगे। मंगोल सम्राट् कुब्ले खान् के तिब्बति गुरु फग्स्पा ने भी मंगोल भाषा के लिए भी ब्राह्मी वर्णमाला की एक लिपि तैयार की थी, किन्तु वह इसी कारण अधिक दिन न चली कि उसमें प्रत्येक अक्षर की आकृति जटिल यन्त्र की सी थी। पर नागरी वर्ण रोमकों जितने सरल न हों, वे जटिल भी नहीं हैं।

महाप्राण अक्षर ह से संयुक्त कर बनाना ध्वनि-विज्ञान की दृष्टि से कहां तक ठीक होगा सो ध्वनि-विज्ञानियों के विचारने की बात है। स्वरों की मात्राएं न होने से टाइप की सरलता होगी और श्रम बचेगा, यह सोचा जाता है। मात्राएं सीखने में बच्चों को दो तीन दिन लगते हैं। उन के कारण टाइप बहुत बढ़ जाता है इस में सन्देह नहीं। पर दूसरी ओर कागज कितना बचता है! इस बात की ओर ऋग्वेद का सम्पादन करते समय १८७४ में मैक्स मूलर ने ध्यान दिलाया था; पर लोग उस बात को भूल सा गए हैं। रोमक लिपि में जो वस्तु ९२० पृष्ठों में छपी थी वही नागर में ८४४ में। अर्थात् कागज की ८, ८॥ प्रतिशत

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

नया युग, नया जीवन

प्रोफेसर रामचरण महेन्द्र एम. ए.

आज के युवकों के शरीर में जंग लग गया है। उनकी आदतें आलसी हैं। वे चलना फिरना या शारीरिक कार्य करना नहीं चाहते। थोड़ी थोड़ी दूर के निमित्त साईकल या मोटर बस का आश्रय देखते हैं, खेलने-कूदने में उनकी रुचि नहीं है। पांव से काम लेना छोड़ने के कारण शरीर की रही सही स्फूर्ति भी विलीन हो गई है।

मेरा वश चले तो साइकिल नाम के इस आलसी बनाने वाले यन्त्र को तोड़ फोड़ दूं। संसार से इसका बहिष्कार कर दूं। इन कृत्रिम पांवों ने हमारे वास्तविक पांवों की शक्ति का शोषण कर दिया है। हमें आलसी बना दिया है। हमारे स्वास्थ्य का दिवाला निकालने में इस सवारी का प्रमुख हाथ है। साईकिल सवारी का कुप्रभाव गुप्त अङ्गों पर भी पड़ता है और घृणित रोगों में प्रकट होता है।

शारीरिक श्रम किया करें

यौवन के इच्छुक को चाहिए कि यथाशक्ति श्रम करे। चलने फिरने के कार्य पांवों से करें। साईकिल तथा इक्कों से दूर रहे। यदि आपका दफ्तर दो मील दूर है तो आने जाने का कार्य पांवों से लीजिए। बाजार से नाना प्रकार की वस्तुएँ पैदल ही खरीदने जाइये। स्कूल पैदल चलें। प्रकृति चाहती है कि दिन भर आप काफी चलें, बैठे न रहें।

जल जब एक ही स्थान पर स्थिर रहता है, तो गन्दा हो जाता है। वही जल जब लहरों के रूप में बहने लगता है, तो मल पदार्थों से स्वच्छ हो जाता

बचत हुई। यों एक देश की समूची छपाई में कितने जंगल की और कागज बनाने के कितने श्रम की बचत होगी?

तीसरी युक्ति मुझे बिलकुल भी नहीं जंचती। हम आपस में न्यायपूर्वक फैसला नहीं कर पाते, इसलिए विदेशी को घर ला बिठायें, यह कैसा पौरुष है?

चौथी युक्ति के सम्बन्ध में मेरा यह निवेदन है कि रोमक लिपि का जो सार्वभौम विस्तार होता दिखाई दिया, वह पच्छिम-यूरोपी देशों के साम्राज्य के विस्तार के साथ साथ। अब वे साम्राज्य अपनी अन्तिम विस्तार-सीमा तक पहुँचने के बाद कुछ टूट चुके, बाकी टूटने को हैं। यदि अमरीका उन्हें न बचाता तो वे १६४३ में ही समाप्त हो गये होते, और अब अमरीका के बचाये भी वे बहुत दिन नहीं बच सकते। कुछ ही वर्षों बाद एशिया के राष्ट्र फिर संसार के अगुआ होने को हैं। इस दशा में हमारा अब रोमक लिपि को अपनाना क्या उचित होगा? यह एक शुद्ध राजनीतिक प्रश्न है। रूस ने एक बार रोमक लिपि अपना ली थी, पर फिर अपनी सिरिलिक जारी कर दी। मेरे विचार में नेताजी सुभाष बसु ने १६४२-४३ की परिस्थिति में इस प्रश्न पर विचार किया होगा तो अपना मत बदल लिया होगा। यदि हम रोमक वर्णों को अपना कर उनकी ब्राह्मी ध्वनियां और क्रम कर लें तो क्या यूरोप वाले भी वैसा करेंगे? और क्या अंग्रेज उनका उच्चारण ए बी सी......और फ्रांसीसी आ बे से... करना छोड़ देंगे? यदि यूरोप वाले उनका पुराना उच्चारण और क्रम ही रक्खेंगे, तो हमारे उन्हें अपना कर भिन्न उच्चारण करने से गोलमाल न होगा? उन्हें यदि सार्वभौम बनाना है तो यूरोप वाले इस अंश में पहल करें कि अपनी भाषाओं में उन का क्रम और उच्चारण बदलें। उसके बाद हमारे लिए सोचने का समय आयेगा।

★

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

है। चलने फिरने, क्रियाशील रहने से यौवन स्थिर रहता है। प्राकृतिक प्रणाली में शरीर की सफाई, पुनर्निर्माण और विकास के लिए क्रियाशीलता एक आवश्यक तत्व है।

फौज में रहने वालों को नियमित रूप से चार-पांच घंटे ड्रिल कराई जाती है। कदम मिला कर चलना, भागना, दौड़ना, कूदना उनके जीवन के साथ ला दिया जाता है। फलत: वे दीर्घजीवी और परिपुष्ट होते हैं। सीधे खड़े होने, रीढ़ को सीधा रखने, गहरे सांस लेने से, व्यायाम तथा कसरत से यौवन स्थिर रहता है।

एक स्थान पर टिक कर घंटों बैठे रहना, गद्दी पर मोटे तकियों के सहारे लेटे रहना, स्वयं अपने हाथ पांव से कार्य न कर दूसरों की बाट देखना, थोड़ी थोड़ी दूर के लिए साईकिल, बस, रिक्शा या तांगे का प्रयोग टहलने न जाना, व्यायाम न करना, शारीरिक श्रम से जी चुराना, बुढ़ापे को आमन्त्रित करने की आदतें हैं। इस से मनुष्य का विकास अवरुद्ध हो जाता है।

इसके विपरीत नित्य समय पर टहलने जाना जीवन को बढ़ा लेना है। टहलना अपने आप में हलका व्यायाम है। श्री भुवनेश्वर नाथ माधव लिखते हैं—'जो खुली हवा में टहलता है, उसे अस्पतालों की धूल फांकनी नहीं पड़ती, न डाक्टरों के पीछे पीछे समय का खून करना पड़ता है। टहलने वाले का विश्वास है कि शरीर, मन, प्राण और आत्मा को चिर सुन्दर, चिर युवा, चिर उल्लासमय रखने के लिए टहलना यथेष्ट है—उनके विचार में डाक्टर शत्रु और दवा ज़हर है। वह इन दोनों से बचेगा, उसे इन की कभी आवश्यकता न होगी। वह प्रकृति माता का स्तन पान करने वाला भला अपने गले के नीचे टिकिया या मिक्चर की जहर को क्यों उतारेगा ? वह जानता है कि उनके शरीर के लिए जितना कुछ आवश्यक है, प्रकृति देती है। प्राय: लोग उपवास के समय मुर्दे के समान पड़ जाते हैं। उपवास से पूरा पूरा लाभ उठाने के लिए टहलना नितान्त आवश्यक है। मीठी नींद आती है, टहलने वाले को शिशु की तरह नींद आती हैं और सिपाही की तरह वह जागता है—बिल्कुल तरोताजा।'

जो लोग तैर सकते हैं, वे तैर कर व्यायाम करें। जो सूर्य नमस्कार का आनन्द उठा लेते हैं, वे सब प्रकार की निराशा, विषाद, पीड़ा, दुःख और ग्लानि से मुक्त रहते हैं। यदि आप कोई बड़ा व्यायाम नहीं करते, तो टहलने और मालिश को तो अपना ही लीजिये। ब्राह्ममुहूर्त में टहलना, संगीत, स्नान, पूजा, व्यायाम इत्यादि ऐसे पवित्र कार्य हैं, जिनसे अपने शरीर, मन, प्राण और आत्मा सुखी-समृद्ध हो सकते हैं। आपका शरीर स्वस्थ, मन प्रसन्न, हृदय उदार और आत्मा तेजोमय हो सकती है। इन्द्रियों के विकारों से शान्ति मिल सकती है और यौवन स्थिर रह सकता है। यदि आप हाथ पांव न हिलाना ऐसी आदत समझते हैं, तो प्रकृति आपको ऐसी सजा देगी जिससे आपके शरीर की क्रियाशीलता पंगु हो जायगी।

सदा प्रसन्न रहिये

आपके हृदय में नित्य ही नई-नई इच्छाएं पानी के बुलबुलों की तरह उठती हैं। इन में से कुछ को छोड़ कर ऐसी भी हैं जो न तो प्राकृतिक हैं और न अत्यावश्यक। इन व्यर्थ की इच्छाओं से बचना होगा। मनुष्य यदि इन बेकार की इच्छाओं की पूर्ति में लगा रहेगा तो उसे चिन्ता घेरे रहेगी, इन व्यर्थ की चिन्ताओं से दूर भागो। चिन्ताएं मनुष्य को घुला-घुला कर मार डालती हैं और अन्त तक उनकी तृष्णा शान्त नहीं होती। संतोषी व्यक्ति को संसार सब तरह से मनोहर तथा सुन्दर दिखाई पड़ता है, और उसके चित्त को सदैव प्रसन्न रखता है।

कभी-कभी आपत्तियां आकर मनुष्य की प्रसन्नता नष्ट कर डालती हैं। बहुत से व्यक्ति इस प्रकार की

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

आपत्ति आने पर धैर्य छोड़ देते हैं, ऐसा कदापि न कीजिये। दुनियां में सब ही के ऊपर आपत्तियां आया करती हैं और आ कर निकल जाती हैं। आइये उन्हें प्रसन्न होकर सहें हँस-हँस कर उनका स्वागत करें और उन्हें मार भगाएं। हमें चाहिये कि हम निरन्तर अपने आत्म विश्वास पर जमे रहें और उसे किसी तरह ढीला या कमजोर न होने दें। अपने जीवन के दुःखमय अनुभवों को भूल जाओ, कभी उन्हें अपने मस्तिष्क में स्थान न दो क्योंकि ये तुम्हारी प्रसन्नता के मार्ग में बाधक है। तुम हमेशा सुख की बात सोचो, सुख के वातावरण में विचरण करो और सुखी व्यक्तियों का ख्याल हृदय में जमाओ।

क्या तुम जानते हो प्रसन्नता धन पर निर्भर नहीं है। यदि ऐसा होता तो धनवान ही प्रसन्न होते। एक धनी का जीवन चिन्ताग्रस्त और सदैव असन्तोषमय रहता है। वास्तव में धनी व्यक्तियों के लिए प्रसन्नता प्राप्त करने के साधन और भी कठिन हैं। किन्तु जहां तक हो उन्हें अपनी इच्छाओं को दबा कर शान्ति लाभ करना चाहिये। हिन्दी मासिक के किसी अंक में बारह साल पहिले मैंने एक छोटी कहानी पढ़ी थी जिसका सारांश कुछ इस प्रकार है—एक बादशाह प्रसन्नता की खोज करते करते पागल हुआ और ज्योतिषियों को बुला कर प्रसन्नता प्राप्त करने का उपाय पूछा। ज्योतिषियों ने कहा—'श्रीमान् यदि आप प्रसन्न रहने वाले मनुष्य के कपड़े पहिन लें तो सदा प्रसन्न रहा करेंगे।' राजा ने पदाधिकारियों में और सम्पूर्ण राज्य के धनवानों में उस व्यक्ति की खोज कराई गई, परन्तु कोई न मिला। अन्त में एक गरीब मजदूर जो सदैव प्रसन्न रहता था, इस कार्य के लिए ठीक समझा गया। पर दुर्भाग्यवश या सौभाग्यवश उसके पास कोई वस्त्र न था जो राजा साहब पहिनते। इस लिये कुछ न हो सका।' तात्पर्य यह कि प्रसन्नता किसी भी बाहरी तत्व पर निर्भर नहीं, हमारे मस्तिष्क में ही निवास करती है। हृदय की गहराई में पैठ कर, प्रकृति के सौंदर्य में, कविता की लहर में, स्वास्थ्य और खेल-कूद में, मनोरंजक दृश्यों के अवलोकन में तथा शुद्ध स्वास्थ्य और आशा पूर्ण विचारधारा में प्रसन्नता के साधन प्राप्त कीजिये।

जीवन की मोमबत्ती दोनों ओर से न फूंको

आज का मानव अपने नित्यप्रति के कार्यों में, इतना व्यस्त, इतना संलग्न और इतना भूला हुआ है कि उसे दम मारने का अवकाश नहीं है। प्रातः काल से लेकर पहर रात तक उसे संसार के उलझे हुए झमेलों ने फंसा रखा है, करोड़ों रुपयों के वारे न्यारे करता है और न जाने कितनों का भाग्य निर्णय करता है। स्कूल, कॉलिज, कचहरियों, पुतली घरों, पोस्ट आफिसों, रेल के दफ्तरों में और बैंकों में ढेर के ढेर व्यक्तियों को जी तोड़ कठिन परिश्रम करना पड़ता है जिस से उनके शरीर और मन इतने थक जाते है कि वे रात तक बिल्कुल चकनाचूर हो जाते हैं। जीवन की समस्याएं आज इतनी कोलाहल पूर्ण और जटिल हो गई हैं कि उन्हें रात्रि में भी चैन नहीं मिलता और थके मांदे शरीर से कार्य लेना पड़ता है। फलस्वरूप स्वास्थ्य शीघ्र ही बिगड़ जाता है और मनुष्य असमय में ही अकाल मृत्यु का ग्रास बन जाता है।

मनुष्य काम करने से नहीं मरता, वह पहुँच से बाहर कार्य करने से मृत्यु के मुंह में जाता है। कहावत भी है कि 'शक्ति से अधिक कार्य करने की प्रवृत्ति विषाक्त मितव्ययता है।' निरन्तर शारीरिक या मानसिक परिश्रम करते रहने से मनुष्य का थक जाना स्वाभाविक बात है। थक जाना

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

स्वाभाविक बात है। थक जाना प्रकृति माता की ओर से इस बात की सूचक है कि अब विश्राम करना चाहिए। शरीर और मन दोनों को अपनी अपनी शक्तियों के ह्रास की पूर्ति करने की परम आवश्यकता पड़ती है। जैसे हमें क्षुधा लगती है, प्यास सताती है और कहीं से खाने पीने की योजना करनी पड़ती है उसी भांति शरीर को प्राकृतिक रूप से विश्राम की आवश्यकता प्रतीत होती है। जब निरन्तर कार्य करते करते शरीर या मन थक जाय तो तुरन्त छुट्टी कर देनी चाहिए।

अमेरिका में आजकल 'अपने जीवन की मोम-बत्ती दोनों ओर से न जलाओ' वाला आन्दोलन जोरों से चल रहा है। आन्दोलन कारियों का कहना है कि 'हमें विश्राम भी चाहिए। हम दत्तचित्त हो काम करने को प्रस्तुत हैं किन्तु हमें पर्याप्त विश्राम अवश्य मिलना चाहिये। हमारा थका हुआ शरीर विश्राम चाहता है और उसे विश्राम न देना उसके ऊपर महान अत्याचार करना है।' यह निर्विवाद सिद्ध है कि मनुष्य का जीवन अत्यन्त मूल्यवान और सर्वतोभावेन उपयोगी है। संयम, तप, नियम, एवं सद्वृत्ताचरण के पश्चात् मनुष्य यह शरीर प्राप्त कर उसकी सत्ता रखता है। ऐसे दुर्लभ जीवन की बत्ती को दोनों तरफ से फूंक कर नष्ट-भ्रष्ट कर देना बुद्धिमानी का कार्य नहीं है।

यौवन रक्षा के कुछ अनुभव

यौवन की रक्षा के लिए एक अनुभवी सज्जन ने निम्न उपाय बताये हैं—

(१) युवावस्था में काम लोलुपता को नियन्त्रण में रखना।

(२) काम शक्ति के आवश्यक वेग का अनैसर्गिक तरीकों से रोकने का प्रयत्न न करना।

(३) अपनी पाचन शक्ति को अनुकूल पड़ने वाला सात्विक, पौष्टिक और नियमित आहार करना। अपने भोजन में दूध, शाक, सब्जी, तथा फलों का अधिक उपयोग करना, विशुद्ध जल पीना, तथा कुए के ताजे शीतल जल में प्रतिदिन विधिवत स्नान करना।

(४) कब्जियत कभी न होने देना, विपरीत आहार-विहार, जीभ के चटोरेपन से बचना।

(५) चाय, सिगरेट, सिनेमा, व्यभिचार, पत्नि व्यभिचार, मद्यपान इत्यादि का व्यवहार बिल्कुल छोड़ देना। अमर्य्यादित काम लोलुपता साक्षात् विष है।

(६) व्यायाम नियमित रूप से करना। शरीर में बेडौल मुटापा के चिन्ह दृष्टिगोचर होते ही तत्काल उस को रोकने का नैसर्गिक प्रयत्न करना।

(७) प्रति दिन प्रातःकाल ब्राह्म मुहूर्त में शय्या त्याग कर उषःपान करना और उसी समय अपनी शक्ति के अनुसार तीन-चार मील तक घूमने जाना।

(८) सब प्रकार की चिन्ताओं से मुक्त रहना, निष्काम और निर्लिप्त हृदय से अपना कर्त्तव्य करते जाना, निष्काम जीवन में होने वाली प्रत्येक अनुकूल और प्रतिकूल घटनाओं को शान्ति के साथ सहन करना।

(९) प्रातःकाल संध्या, प्राणायाम, सामयिक स्वाध्याय, पूजा, शुभ चिंतन आशावादी कल्पना का अभ्यास करना।

(१०) खूब जी भर कर सोना। रात्रि होते ही शय्या ग्रहण कर लेना।

(११) शारीरिक शक्ति से अधिक परिश्रम न करना। जितनी शक्ति हो उसी के हिसाब से श्रम करना।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

योग के स्वरूप अथवा लक्ष्य सम्बन्धी भ्रांति

श्री स्वामी कृष्णानन्द

श्रुति और उस को अनुसरण करने वाला-योग दर्शन लक्ष्य तथा साधन को यथा तथ्य प्रकार से निरूपण करता है। योग के स्वरूप, साधना के भेद, अनुभूतियों का कार्य-क्षेत्र तथा परम लक्ष्य का श्रुति के संकेत के आधार पर भली प्रकार निरीक्षण किए बिना योग में प्रवृत्ति सफल नहीं हो सकती। शारीरिक तथा मानसिक अनेक विघ्न योग में उपस्थित हो सकते हैं। उन को पहले से ही रोका जा सकता है और उन के उपस्थित होने पर उन्हें विघ्न रूप में पहिचान कर उन का निवारण भी किया जा सकता है।

किसी डाक्टर महोदय ने योग पर एक ग्रन्थ लिखा है। उस ग्रन्थ में योग का लक्षण इस प्रकार किया है कि श्वास, प्रश्वास तथा हृदय के स्पन्दन का निरोध करना योग है। इसी लक्षण तथा स्वरूप के आधार पर अन्य कई योग साधनों का उस ने निरूपण किया है। उस ग्रन्थ में लिखा है कि योगी जन दूध तथा फल का अल्प आहार करते हैं, एकान्त में रहते हैं, मौन धारण करते हैं और गुफा में निवास करते हैं। इस प्रकार का आचरण वे लोग इस लिये करते हैं कि CO_2 कम उत्पन्न हो, क्योंकि CO_2 कम पैदा होने से योगी को हृदय-गति के रोकने के कार्यों में सुविधा होती है। CO_2 वह कार्बोनिक एसिड गैस है, जो निश्वास के रूप में मुख और नासिका से बाहर निकलती है। इस CO_2 गैस का तथा श्वास और प्रश्वास का इस प्रकार वर्णन किसी प्राचीन योग-ग्रन्थ में नहीं है। हठ योग के ग्रन्थों में भी यह उल्लेख कहीं नहीं है कि गुफा आदि में इसी लिये निवास किया जाता है। आज कल योग के चमत्कार दिखाने वाले ऐसे योगी अवश्य मिलते हैं, जो जनता को हृदय तथा फुफ्फुस की गति बन्द कर के दिखाते हैं। डाक्टर ऐसे अवसर पर परीक्षा भी करते हैं। इस से सामान्य जनता तथा डाक्टरों को यह भ्रांति हो सकती है कि योग का लक्ष्य तथा कार्य श्वास, प्रश्वास तथा नाड़ी की गति को रोकना है। इस प्रकार वे योगियों के आहार, निवास आदि के सम्बन्ध में यह धारणा कर सकते हैं कि ये योगी इस प्रकार की क्रियाएं CO_2 कम करने के लिए करते हैं, क्योंकि ऐसे योगियों का मुख्य चमत्कार श्वास तथा प्रश्वास की गति को रोकना ही होता है। अब कई महानुभावों ने राज-योग के ग्रन्थों की व्याख्या में भी इसी शैली का प्रयोग किया है।

---

(१२) अधिक आराम तलबी मनुष्य के शरीर को बेडौल बनाती है और यौवन को समाप्त कर देती है। जो व्यक्ति तरह तरह के गरिष्ठ भोजन खाकर तकिये के सहारे पड़े रहते हैं, वे बुढ़ापे के शिकार होते हैं। घूमने फिरने, आनन्दित रहने से, आवश्यक परिश्रम करने से, यौवन स्थिर रहता है।

शरीर को अच्छी हालत में रखने के लिये शरीर पर बहुत अधिक ध्यान देने की आवश्यकता नहीं है, उस की हर रोज की आवश्यकताओं पर ध्यान देना पड़ेगा, लेकिन उसके लिए चिन्तित रहना और उसी के दृष्टिकोण से सब कुछ करना न सिर्फ व्यर्थ ही है बल्कि हानिकर भी है।

★

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

डाक्टर के योग की उपर्युक्त परिभाषा के साथ Co२ की बात का कुछ युक्ति-संगत मेल भी हो सकता है, परन्तु राज योग में, जहां योग की परिभाषा ही भिन्न है और योग का लक्ष्य चित्तवृत्तियों का निरोध या जीवात्मा का परमात्मा के साथ मेल आदि हैं; वहां पर इस Co२ के भौतिक विज्ञान के सिद्धान्त का कैसे सामञ्जस्य हो सकता है, यह बात समझ में नहीं आ सकती। इस एक उदाहरण से ही स्पष्ट हो जाता है कि श्रुति द्वारा निर्देश किये गये योग के स्वरूप तथा लक्ष्य को यदि सर्वदा सम्मुख न रखा जावे, तो इस सम्बन्ध में भ्रान्ति हो जाना स्वाभाविक है और इस भ्रान्ति के कारण साधनादि में भी भ्रान्त अनिवार्य हो जाती है। इस प्रकार की अनेक भ्रान्तियों के कारण साधक सफल मनोरथ नहीं होता।

योग की अनुभूतियों में भ्रान्ति

योग अत्यन्त रहस्यमय है, सामान्य बुद्धि से इस कार्य-क्षेत्र का निर्णय करना असम्भव है। जिस प्रकार समुद्र में गोता लगाने पर रेत, पत्थर, मोती और भिन्न प्रकार के हीरे अनेक पदार्थ हस्तगत हो सकते हैं, यदि इन पदार्थों के भेद का ज्ञान न हो, तो मनुष्य जो कुछ भी उसे मिल जाये, उसी को ही हीरा समझने की भूल कर सकता है अथवा हीरे को पत्थर समझ कर फेंक भी सकता है। ऐसी भूल तथा मूर्खता के कारण मनुष्य जीवन की बाजी लगा कर भी फल से वञ्चित रह जाता है। ठीक इसी प्रकार योग रूपी क्षेत्र महान् रत्नों से भरा हुआ समुद्र है। इसका अनुष्ठान करने पर अनेक पदार्थ उपलब्ध होते हैं, जो अनर्थकारी, निरर्थक या मूल्यवान् भी होते हैं। जो मूल्यवान् होते हैं, उन में भी मूल्य का तारतम्य होता है। इन के भेद को न जानता हुआ साधक भूल कर सकता है। वह निरर्थक को मूल्यवान्, मूल्यवान् को निरर्थक या कम मूल्य वाले को अधिक मूल्यवाला समझ कर, और समझ के अनुसार आचरण करता हुआ विफल मनोरथ हो जाता है। योग सिद्धि की पहिचान तथा उस की प्राप्ति के लिए शास्त्र-ज्ञान तथा धैर्य की बहुत आवश्यकता है। जब चित्तवृत्तियों का सामान्य निरोध भी होता है तो भी उसका कुछ न कुछ परिणाम अवश्य होता है। पहिले तो साधक के अपने प्राचीन संस्कार ही वृत्ति का रूप धारण कर लेते हैं। वह इन को ही सूक्ष्म जगत् के यौगिक अनुभव मान लेता है तथा इस सामान्य तुच्छ रेत को ही योग की सिद्धि मान बैठता है।

जैसे इस जगत् में अनेक प्रकार के भले बुरे मनुष्य हैं, इसी प्रकार सूक्ष्म जगत् में भी असुर तथा देव शक्तियां हैं। प्रारम्भिक जिज्ञासु के लिए इन में भेद करना कठिन होता है। इसे जो भी अनुभव होता है, वह उसे ही अपने लोभ, मोह या अभिमान के वश होकर दिव्य, तथ्य और परमोपयोगी अनुभव मान लेता है। उस के अपने प्राचीन दबे हुये संस्कार अपनी पूर्ति के लिये अनेक रूप धारण कर लेते हैं और आवेश के रूप में पूर्ति चाहते हैं, जिस का मनुष्य को ठीक बोध नहीं होता। किसी ऐसे अनुभव के दृश्य-शब्दादि को परम सत्य मान लेना बड़ी भूल है। जिस परम सत्य की उपलब्धि के लिये "अनेक जन्म संसिद्धि कहा गया है, उसे थोड़े ही दिनों में हस्तगत कर लेने की दुराशा केवल अभिमान तथा अज्ञान के कारण ही हो सकती है। बहुधा मनुष्य अधीरता के कारण उपयुक्त परीक्षा नहीं करता। दस बातों में यदि एक सच्ची और नौ झूठी निकलती हैं, तों उन नौ की उपेक्षा कर के एक का अधिक मूल्य लगाता है और उसके आधार पर दिव्य संदेश की घोषणा कर देता है।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

एकाध भविष्य की वार्ता तो अनुमान से भी ठीक निकल सकती है। इस एक आध से वास्तविक सिद्धि की क्या सम्भावना हो सकती है, परन्तु मोह तथा अभिमान इन सन्देशों तथा वाणियों में असल नकल की तुलना नहीं करने देते। अपने ऐसे मनो भावों और आकांक्षाओं को ही दिव्य सन्देश तथा दर्शनों का नाम दे दिया जाता है। जो देवताओं के या अन्य दिव्य दर्शन कहे जाते हैं, सम्भवतः वे भी संस्कारवश मिथ्या या आंशिक रूप से सत्य हो सकते हैं। यदि उन के सत्य या मिथ्या होने का निश्चय करना हो तो उन के प्रभाव आदि की विवेचना करनी आवश्यक होती है। परन्तु प्रारम्भिक साधक में न तो इस विवेचना की योग्यता होती है और न ही उसे ऐसा विश्लेषण करना प्रिय लगता है। वह तो अपने वृथा अभिमान के कारण जो कुछ भी उस के सामने आता है उस वह भूखे के समान टूट पड़ता है। ऐसी अवस्था में शुद्ध-अशुद्ध तथा सत्य-असत्य के विवेक का धैर्य ही दुर्लभ होता है।

कई साधक अल्प काल की साधना में ही ऐसा मानने लगते हैं कि उन्हें वास्तविक दिव्य तथा सगुण दर्शन हो रहे हैं; परन्तु उन के जीवन, व्यवहार तथा मानसिक सन्तोष और शान्ति आदि में कुछ अन्तर नहीं आता। क्या शास्त्र में भगवद्दर्शन का यही फल वर्णन किया गया है कि भगवद्दर्शन भी हो जाए और जीवन भी वैसा का वैसा अशान्त तथा विषयासक्त बना रहे। भगवान् के किसी रूप का दर्शन भी जीवन को आनन्दमय बना देता है। उस की एक झलक भी एक बार में ही संसार को परिवर्तित कर देती है। भगवान् के दर्शन के पश्चात् भी वही, राग-द्वेष तथा लोभादि से युक्त व्यवहार कैसे रह सकता है? ऐसे तामसिक व्यवहार तो दर्शनाधिकारी अभ्यासी के दर्शन से पूर्व ही निवृत्त हो जाते हैं। दर्शन के पश्चात् इन के ठहरने की तो बात ही क्या? यह दिव्य दर्शन सम्पूर्ण जीवन को दिव्य बना देते हैं। कोई भाग्यवान् ऐसे दर्शन पाकर विस्मित होता है कि उस के लिए संसार कैसे परिवर्तित हो गया। उस की काया पलट हो जाती है। मनुष्य चित्र में भी तो भगवान् के सगुण रूप के दर्शन करता है, इस दर्शन से जीवन में क्या विशेष परिवर्तन होता है। यह चित्र लौकिक हैं, दिव्य नहीं, अतः उस का कुछ प्रभाव नहीं होता। ऐसे इन का प्रभाव मनुष्य के मन तथा जीवन पर कुछ नहीं होता। परन्तु इस प्रकार के भेद तथा मीमांसा करने का जिज्ञासु के पास विवेक नहीं होता और न ऐसा करना उस को अच्छा लगता है क्यों कि वह तो झट उस को सत्य मान कर योगोपाधि ग्रहण करने को उत्सुक होता है। यह उत्सुकता उस की विवेचन की शक्ति तथा सत्यासत्य के निर्णय के सामर्थ्य को हर लेती है। इस प्रकार कुछ योगमार्गाभिमानी लोग झट बैठने पर दिव्य प्रकाश आदि करना कराना चाहते हैं। इन बातों से सिवाय अपनी तथा दूसरों की वञ्चना के और कुछ लाभ नहीं होता। ऐसे ही योग की अनुभूतियां अनेक प्रकार की होती हैं। योग से ज्ञान, आवेश, शक्ति आदि भिन्न भिन्न प्रकार क होने वाली अनुभूतियों का विस्तृत विवेचन करने का यहां न तो अवकाश है और न आवश्यकता। इन के तथ्यातथ्य निर्णय करने के लिए शास्त्र-बोध ही सहायक है। यह सत्य है कि ऐसे गुह्य अध्यात्म-शास्त्र का रहस्य भी किसी अनुभवी के द्वारा ही ज्ञात हो सकता है। अन्यथा जिज्ञासु कई यथार्थ वर्णनों को कल्पना मात्र कह देता है अथवा किसी कल्पना का [वर्णन का] वास्तविक तात्पर्य क्या है, इस का केवल शब्द के पाण्डित्य से निर्णय नहीं हो सकता। अनुभवी महात्मा तो अति दुर्लभ हैं ही, उन के महत्त्व का निरादर कौन कर सकता है; परन्तु श्रुति तथा ऋषि प्रणीत अध्यात्म विद्या-

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

निःशस्त्रीकरण से विश्वशान्ति असम्भव

श्री नारायण

आज सारा संसार अशान्त और विक्षुब्ध है, सब कहीं भय और आतंक का राज्य है। जिधर दृष्टि उठती है उधर ही लोग अज्ञात अनिष्ट की आशंका से आतंकित दीखते हैं। जातियां जातियों के प्रति सद्भाव खो चुकी हैं, राष्ट्र राष्ट्रों के प्रति अविश्वासी हो गए हैं। सब अपनी रक्षा के लिए चिन रहे हैं शस्त्रों के पहाड़। उधर यूरोप विशाल बारूदखाना ही बन गया है, इधर कोरिया में साक्षात् युद्ध की आग सुलग रही है, लोगों को भय है, न मालूम कब हवा के झोंके के साथ एक चिनगारी यहां से उड़े, वहां जा गिरे, बारूदखाने में में विस्फोट हो और तृतीय विश्वयुद्ध की भयंकर आग भड़क उठे। ऐसे समय में हमारे सामने विश्वशान्ति की रक्षा के लिए निःशस्त्रीकरण का सुन्दर प्रस्ताव आता है। मैं सहर्ष प्रस्ताव का स्वागत करता हूँ। प्रस्ताव सुन्दर है, हृदय को अपील करता है। खास कर भावुकतापूर्ण भाषण देने के लिए तो बहुत ही अच्छा Topic है। लेकिन······प्रश्न की हराई में पेठ कर विचार करें तो दो ही क्षणों में अनुभव होने लगता है कि प्रस्ताव तो कुछ-कुछ बिल्ली के गले में घंटी बांधने के प्रस्ताव जैसा है। फिर भी हमें प्रस्ताव पर गम्भीरता के साथ विचार करना ही होगा, क्योंकि प्रस्ताव को हमारे माननीय मित्रों ने उपस्थित किया है।

कहानी में आता है कि अलादीन की चिराग के साथ एक भूत जुड़ा हुआ था। चिराग को रगड़ते ही वह सामने आकर खड़ा हो जाता था। कह नहीं सकते कहानी में कितनी सचाई है। लेकिन यह बिलकुल सच है नि निःशस्त्रीकरण के प्रस्ताव के साथ उस भूत जैसी, नहीं उस से भी भयंकर, अनेक समस्यायें जुड़ी हुई हैं। निःशस्त्रीकरण का नाम लेने के साथ ही ये समस्यायें सेवा में उपस्थित हो जाती हैं।

प्रस्ताव है कि विश्व-शान्ति के लिए निःशस्त्रीकरण आवश्यक है, लेकिन सवाल है कि निःशस्त्रीकरण पूर्ण रूप से होना चाहिए कि आंशिक रूप से? यह आशा करना कि संसार के सारे शस्त्रास्त्र समुद्र में डुबा दिये जायेंगे सिर्फ निराशा को न्योतना है। इसी लिए निःशस्त्रीकरण का अर्थ किया जा ा है आंशिक निःशस्त्रीकरण अर्थात् संसार के सभी देशों को सीमित संख्या में शस्त्र रखने का अधिकार। लेकिन यह सीमा क्या हो? और क्या संसार के सब छोटे बड़े राष्ट्रों के लिए एक ही सीमा हो? क्या अमेरिका और क्यूबा, रूस और फिनलैंड सभी को दस-दस हवाई जहाज़ और

सम्बन्धी ग्रन्थ भी रहस्यमय ब्रह्मविद्या के सच्चे अनुभवों से भरे हुए हैं। अतः शास्त्र में अनन्य श्रद्धा रख कर उन का सदुपयोग करना ही युक्ति-युक्त मार्ग है जैसे भौतिक विज्ञान-क्षेत्र में उन्नति के लिए प्राचीन विद्वानों के आविष्कारों सम्बन्धी ग्रन्थ वर्तमान शिक्षक तथा यन्त्रों का प्रयोग और अन्य प्रकार के प्रयत्न— ये तीन भिन्न भिन्न साधन परस्पर सहायक हैं और उन के समुच्चय प्रयोग से ही सफलता हो सकती है। इसी प्रकार अध्यात्म विद्या के क्षेत्र में तो यह नियम और भी अधिक आवश्यक है, क्योंकि यह विद्या अति रहस्यमय है तथा श्रुति, सर्वज्ञ, सर्व शक्तिमान, परम-हितैषी ईश्वर का ज्ञान है और ऋषियों के अनुभव इस का अनुमोदन करते हैं। वर्तमान काल का साधारण योगाभ्यासी प्राचीन ऋषियों के समुच्चय अनुभव से अपने अनुभव की सामान्यतया कैसे तुलना कर सकता है।

★

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

बीस-बीस टैंक रखने का अधिकार हो। अगर यही व्यवस्था कर दी जाये तब तो बड़े राष्ट्र छोटे राष्ट्रों से बहुत अधिक कमजोर हो जायेंगे क्योंकि उन्हें छोटे राष्ट्रों से कई गुना बड़े प्रदेश की रक्षा करनी होगी। इस लिए अमेरिका और रूस को क्यूबा और फिनलैंड से बहुत अधिक शस्त्र रखने का अधिकार देना ही होगा। और तब ? बड़े राष्ट्र छोटे राष्ट्रों पर उसी तरह हावी रहेंगे जैसे कि वे आज हैं, और उनका उसी तरह शोषण करेंगे जैसा कि वे आज कर रहे हैं। फिर शस्त्र की परिभाषा क्या हो और किस राष्ट्र को कितने शस्त्र रखने का अधिकार हो इन का निर्णय कौन करेगा ? यू० एन० ओ० ! माफ कीजिए वह तो स्वयं ही अमेरिकन और रूसी राजनीतिज्ञों की कुश्ती का अखाड़ा बना हुआ है।

मान लेते हैं कि ये सब सवाल हल हो जाते हैं और निःशस्त्रीकरण की योजना भी बन जाती है, लेकिन उसे लागू करायेगा कौन ? यू० एन० ओ० ! उसे इसमें कितनी सफलता मिलेगी यह तो कोरिया की लड़ाई से ही ज़ाहिर है।

हमारे निःशस्त्रीकरणवादी मित्र चाहते हैं कि हम यह विश्वास कर लें कि सब राष्ट्र अपना निःशस्त्रीकरण खुद ही कर लेंगे। यह तो ठीक ऐसा ही है जैसे कोई नौसिखिया सपेरा यह मान बैठे कि सांप अपना विष का दांत स्वयं तोड़ कर रख देगा।

इतिहास की गवाही भी निःशस्त्रीकरण के विरुद्ध ही जाती है। पहिले महायुद्ध के बाद वर्साई के सन्धिपत्र की आठवीं धारा के अनुसार जर्मनी, आस्ट्रिया, हंगरी और बल्गारिया का निःशस्त्रीकरण कर दिया गया, वे पराजित राष्ट्र जो थे। लेकिन जब १९२१ की लीग आफ नेशन्स में लार्ड एशर ने विजेता राष्ट्रों के निःशस्त्रीकरण का प्रस्ताव रखा तो विजेता राष्ट्रों ने उसे एकमत होकर ठुकरा दिया। एक कमीशन यह जांच करने बैठा कि निःशस्त्रीकरण होने से पूर्व आवश्यक शर्तें क्या हैं। कमीशन ने रिपोर्ट दी कि सुरक्षा की गारंटी आवश्यक है। दूसरा कमीशन यह जांचने बैठा कि सुरक्षा की गारंटी किस तरह दी जा सकती है। रिपोर्ट मिली कि निःशस्त्रीकरण से। १९२३ की वाशिंगटन कान्फ्रेंस को क्षणिक सफलता मिली। १९२५ की लोकार्नो कान्फ्रेंस बिलकुल असफल रही। १९३२ से १९३४ तक राइट ऑनरेबल आर्थर हंडरसन की अध्यक्षता में एक कमीशन निःशस्त्रीकरण की योजना बनाता रहा। प्रसिद्ध शान्तिवादी आल्डूयस हक्सले ने लिखा है कि यह कमीशन निःशस्त्रीकरण की नहीं अपितु आने वाले युद्ध की योजना बनाता रहा। इसी तरह मामला टलता रहा और किसी भी विजेता राष्ट्र ने अपना निःशस्त्रीकरण नहीं किया। अन्त में हिटलर की कृपा से १९३९ में दूसरा विश्वयुद्ध छिड़ गया और सब राष्ट्र बड़ी ईमानदारी के साथ एक दूसरे के निःशस्त्रीकरण में जुट गये।

निःशस्त्रीकरण वादी उस डॉक्टर की तरह है, जो बीमारी के एक लक्षण को दूर करके ही समझ लेता है कि बीमारी दूर हो गई। आप के आंगन में एक कांटे की झाड़ी उगी हुई है। आप अगर चाकू लेकर उसके कांटे छीलने लगें, तो बच्चा भी हंस देगा, क्योंकि वह भी जानता है कि अगर झाड़ी की जड़ें मज़बूती से जमी हुई हैं तो दो दिन बाद नये कांटे निकल आयेंगे। लेकिन दुःख है कि निःशस्त्रीकरण वादी यही कर रहे हैं। वे युद्ध रूपी विष वृक्ष के सिर्फ कांटे छील देना चाहते हैं, जड़ से उन का कोई सरोकार नहीं।

अगर संसार में युद्ध के कारण विद्यमान हैं तो निःशस्त्रीकरण के बावजूद युद्ध होंगे, विनाश होगा और अशान्ति होगी। पुराने शस्त्र नहीं रहेंगे तो नये शस्त्र निकल आयेंगे। सृष्टि के आदि काल से ही मनुष्य का मस्तिष्क शस्त्रों की पैदावार के लिए बहुत उपजाऊ रहा है, और अब विज्ञान की खाद ने उसे

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

उपजाऊ पन को बहुत अधिक बढ़ा दिया है। महाभारत में कहानी आती है। एक दिन यादवों ने शराब के नशे में चूर हो कर एक लड़के के पेट पर कढ़ाई बांधी और उसे साड़ी पहना कर दूर्वासा ऋषि के पास ले गये। कहने लगे—महाराज हमारी बहू गर्भिणी है उसके लड़का होगा कि लड़की। दूर्वासा को बड़ा क्रोध आया उन्होंने शाप दिया—'जो भी होगा वही तुम्हारा नाश करेगा।' यादव घबराये। उन्होंने कढ़ाई को चूर चूर करके समुद्र में डाल दिया। वहां ऊँची-ऊँची कुशा निकल आई। यादवों को कुशा बहुत भली लगी। वे उसे काट कर घर ले आये। शाम को शराब पीकर उसी कुशा से लड़ने लगे और कट मरे। यादवों ने समझा कढ़ाई ही हमारे नाश का कारण है। उन्होंने उसे समुद्र में डुबा दिया। कुशा निकल आई। आप भी उन सब शस्त्रों को, जिन्हें आप विश्वयुद्धों का कारण समझते हैं। समुद्र में डुबा दीजिए; कुशा निकल आयेगी। कुशा क्यों, इस वैज्ञानिक युग में तो हाइड्रोजन बम और कॉस्मिक किरणें निकलेंगी और लड़ाकू राष्ट्र अणुबम और टैंक छोड़ कर उन से लड़ने लगेंगे।

युद्धों का कारण शस्त्रीकरण नहीं है। युद्धों का कारण है जातियों के मन में रहने वाली साम्राज्य-लिप्सा, उग्र राष्ट्रीयता और बेलगाम महत्त्वाकांक्षा। इसी प्रकार युद्ध के कुछ कारण आर्थिक हैं। विश्व में शान्ति कायम रखने के लिए आवश्यक है कि इन कारणों को दूर किया जाय। नि:शस्त्रीकरण आदि तो कोरी दिल-बहलाव की बातें हैं।

आज आवश्यकता इस बात की है कि हम शांति प्रेमी, जो कि संसार की आबादी का ९०% हैं, मुट्ठी भर राजनीतिज्ञों के पीछे आंख मूंद कर चलना छोड़ दें। इन राजनीतिज्ञों के प्रति विद्रोह कर दें जिनके शब्द कोश में राजनीति और छल-कपट पर्यायवाची हैं। हम अपनी आंखें खोलें। युग-युग से सोये हुए अपने विवेक को जगायें। भगवान् बुद्ध का अन्तिम आदेश था 'अत्तसरणा भवथ अत्तदीपाः' आत्मा को नेता बनाओ, आत्मा को दीपक बनाओ। यही सन्देश आज हमारे लिए भी है। और आज आवश्यकता इस बात की है कि हम संसार को भौतिकवाद के रंगीन चश्मे से देखना छोड़ दें, जीवन के आध्यात्मिक मूल्य को समझें, 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के महामन्त्र की दीक्षा लें।

यह था बुद्ध का उपदेश, ईसा का आदेश और बापू का अमर सन्देश। यह है विश्वशान्ति का मार्ग। यह है विश्वशान्ति का उपाय।

[मेरठ कॉलेज के तत्वावधान में जनवरी १९५१ में हुई। वाद-विवाद प्रतियोगिता में पुरस्कृत गुरुकुल के १३ वीं श्रेणी के विद्यार्थी श्री नारायण का भाषण]।

★

वैदिक ब्रह्मचर्य गीत—लेखक श्री अभय विद्यालंकार। वेद में ब्रह्मचर्य की महिमा क्या बताई गई है ब्रह्मचारी कौन होता है और ब्रह्मचारी में कितनी महान् शक्ति बताई गई है—इस का वर्णन आपको इस पुस्तक में मिलेगा। इस में अथर्ववेद के ब्रह्मचर्य-सूक्त का एक-एक मन्त्र लेकर उसकी विस्तृत व्याख्या की गई है और अन्त में शब्दार्थ दे दिया गया है। अपने जीवन को ऊँचा और सुखी बनाना चाहने वाले इसे अवश्य पढ़ें और अपने बच्चों के हाथ में इसकी एक प्रति अवश्य दें।　　　मूल्य २)।

पता—प्रकाशन मन्दिर, गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी, हरिद्वार।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

सांपों की पूंछ और उनके विचित्र कार्य

श्री रामेश बेदी

शक्तिशाली चप्पू

सांपों में पूंछ कई प्रकार से परिवर्तित हो जाती है और अनेक प्रकार के काम करती है। कुछ सांपों में पतवार के समान चपटी हो जाती है और पानी के काढने में शक्तिशाली चप्पू का काम करती है। केवल समुद्रीय सांपों में ही ऐसी पूंछ होती है।

लटकने के लिए लम्बी और पतली पूंछ

वृक्षों पर रहने वाले सांपों में पूंछ बहुत लम्बी और पतली होती है। ऐसा मालूम होता है कि शाखाओं को पकड़ने के लिए ही यह बनी है। जब सांप अपने शिकार को झपटता है तो इस से शाखा को मजबूत पकड़ कर लटका रहता है। बौयडी वंश की पूंछ तुलना में छोटी होती है। जंगलों में, जहां ये सांप रहना पसन्द करते हैं, वृक्षों पर चढ़ने में सहायक होती है।

झंकार करने वाली पूंछ

उत्तरीय अमेरिका के कर्कर सांप (रैटल स्नेक) की पूंछ में सींग सदृश पदार्थ की एक रचना होती है जिस में प्याले के आकार की छोटी-छोटी रचनाएं एक क्रम में रखी रहती हैं और आपस में ढीली-ढीली जुड़ी होती हैं। जब पूंछ को हिलाया जाता है तो इस में से एक शब्द निकलता है जो झिंगुर (साइकेडा) की कुछ जातियों से पैदा किये गये झंकार या लम्बी फुङ्कार के शब्द से मिलता है। इस आवाज़ को कर्-कर् ध्वनि (रैटलिंग) कहते हैं। इसी लिए इस सांप का नाम कर्कर सांप (रैटल स्नेक) पड़ा है। यह शब्द क्यों होता है और इस का क्या कार्य है इस के सम्बन्ध में कुछ अनुमान किए जाते हैं। कुछ वैज्ञानिकों का ख्याल है कि चरते हुए पशुओं को दूर रहने का यह शब्द संकेत देता है। कइयों के विचार में यह रचना सांप और सांपिन के संयोग में सहायक होती है। कइयों के मत में कीड़े खाने वाले पक्षियों को यह ध्वनि फंसाने का कार्य करती है। पक्षी यह समझ कर उधर जाता है कि कोई कीट बोल रहा है। वहां पहुँचते ही यह झपट कर पक्षी को पकड़ लेता है।

मृत्यु की घण्टी

नवीन परीक्षण बताते हैं कि कर्कर सांप कुछ शब्दों को सुन सकता है परन्तु यह अपने कर्कर शब्द सुनने के लिए बहरा होता है। कर्कर सांप अपनी उपस्थिति बहुधा कर्कर शब्द से संकेत कर देते हैं और सामान्यतया इस कृपापूर्ण संकेत के कारण ही वे मारे जाते हैं। परन्तु यह विश्वास कि कर्कर सांप बहुत सीधा जीव होता है और आक्रमण करने से पूर्व शब्द अवश्य करता है, ग़लत है।

अनुभूति की ज्ञापक इन्द्रिय

अनेक सांपों में पूंछ अनुभूति की ज्ञापक इन्द्रिय के रूप में काम करती है। जब उन्हें छेड़ा जाता है तब वे पूंछ के सिरे को हिलाते हैं और ज़ोर से इधर-उधर पटकते हैं। उभरी हुई नाक वाले मण्डली (एन्सिस्ट्रोडोन), चूहे खाने वाले सांपों (कौलूबर) में और धामन (ज़ामेनिस) तथा दूसरे निर्विष सांपों में यह आदत होती है। पूंछ हिलाने वालों में सब से अधिक दर्शनीय कर्कर सांप स्वयं है। जब छेड़ा जाता है तो कुण्डली में यह अपने शरीर को आवेष्टित कर लेता है या एक पेच की चूड़ियों की तरह लिपट जाता है और तब पूंछ केन्द्र में खड़ी होती है। पूंछ को यह जल्दी-जल्दी हिलाता रहता है जिस से डरावना

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

शब्द निकलता रहता है जब कि सिर को अभागे आक्रान्ता पर वार करने के लिए यह समतुलित सा करता रहता है जैसे उस को आह्वान कर रहा हो।

विषैले सांपों की नकल

पकड़ने का प्रयत्न किये जाने पर कुछ निर्विष सांप अपने ज़हरीले साथियों की तरह चेष्टा करते हैं और आक्रमण करने की धमकी देते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि वे अच्छी तरह अनुभव कर रहे हैं कि ऐसा करने से वे आप को एक बार छलांग मार कर भागने के लिए बाध्य कर देंगे और इस प्रकार इन्हें सुरक्षित सरक जाने का अवसर मिल जायगा। इन में से बहुत से इस डराने की प्रक्रिया में अपनी पूंछ को हिलाने लगेंगे और इस प्रकार कर्कर सांप की नकल कर रहे होंगे। पत्तों में ज़रा भी खड़खड़ाहट और सांप के शरीर का ज़रा सा दर्शन मात्र ही अधिक लोगों को उलटे पैर दौड़ाने के लिए पर्याप्त होता है। कुछ सांप इस से भी आगे बढ़ जाते हैं, वे अपने शरीर को चपटा कर लेंगे और चोट करेंगे, केवल डराने के लिए ही।

फाटक का कार्य करती है

ज़मीन में बिल के अन्दर रहने वाले बहुत से सांपों में, जैसे दक्षिण भारत लङ्का के यूरोपेल्टाइड्स में, पूंछ के अन्त में एक छोटा सा कुण्ठित अवशेष होता है जो कठोर तथा खर ढाल में समाप्त होता है, इस का आकार प्रकार भिन्न-भिन्न होता है। ऐसी रचना के वास्तविक कार्य के लिए कुछ निश्चित नहीं कहा जा सकता परन्तु यह कल्पना की जाती है कि सिरे की ढाल प्रवेश द्वार में फाटक का काम करती है जो किसी भी बाहर की चीज़ को अन्दर आने से रोकती है।

लाठी की तरह टेकने के लिए

कुछ सांप गति में सहायता लेने के उद्देश्य से भूमि पर पूंछ का उपयोग करते हैं। बर्मा, इण्डो-चाइना और मलय प्रायद्वीप तथा द्वीप समूहों का बेलनाकार सांप (सिलिण्ड्रोफ़िस रूफ़स) भूमि पर पूंछ का सिरा टिका कर अपने शरीर को उस जगह से आगे धकेलता है।

दूसरे मुंह के रूप में

पूंछ का सब से विचित्र उपयोग सम्भवतः सिर को छिपाने के लिए परिवर्तित रचना के रूप में है। कुछ सांप विशेष रूप से दूसरों को धोखा देने के लिए इस का उपयोग करते हैं। पूंछ कई बार न केवल सिर की सी आकृति धारण कर लेती है, जैसे दुमुही में, परन्तु उस की गति और क्रियाशीलता कई बार इस खूबी से होती है कि भूल से उसे मुंह समझा जा सकता है।

सुन्दर रंगों का प्रदर्शन

दक्षिण-पूर्व एशिया के बेलनाकार सांपों (सिलिण्ड्रोफ़िस रूफ़स, सिलिण्ड्रोफ़िस सेलिबेन्सिस और सिलिण्ड्रोफ़िस ओपिस्थोरोडस) को जब छेड़ा जाता है तो वे काटने या रेंग कर बच निकलने का कभी ही प्रयत्न करेंगे परन्तु अपने सिर को ज़मीन के साथ चपटा दबा लेंगे, पूंछ ऊपर उठा लेंगे और इस प्रकार पूंछ के इस भाग के निचले पृष्ठ पर जो सुन्दर रङ्ग होते हैं उन का प्रदर्शन करेंगे। पूंछ उठाये हुए वे आगे रेंग भी सकते हैं।

प्रहार करने के लिए

आस्ट्रेलिया का सामान्य काला सांप फनियर

CC-0, Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

और मूंगे (कोरल) सांपों का रिश्तेदार कहा जाता है परन्तु विष में यह बहुत उग्र नहीं होता। इस की पूंछ यद्यपि विशेष रूप से छोटी और कुण्ठित नहीं होती फिर भी यह इस से चोट मारने का काम लेता है। पूंछ के अन्तिम सिरे को यह खूब मज़बूती से मोड़ लेता है और इस से प्रहार करता है।

पूंछ से डंक मारना

दक्षिणीय अमेरिका में कीचड़ में रहने वाला इन्द्र धनुष जैसी सुन्दर धारियों वाला एक सांप (रेनबो मड स्नेक) होता है। इस की पूंछ की नोक पर एक बहुत तेज़ कांटे जैसा पैना छिलका (स्केल) होता है। इसे पकड़ा जाये तो यह पकड़ने वाले के हाथ पर अपनी कठोर पूंछ को दबाता है जिस से कि सुई सदृश नोक से वहां पर चिपका रह सके। नोक से बनाया गया घाव किसी छोटे गुलाब के कांटे के लगने से बन जाने वाले घाव की अपेक्षा भी कहीं कम सूक्ष्म होता है। जो लोग इस सांप को नहीं जानते वे समझते हैं कि सांप भी डंक मारने वाला जीव है। [कॉपी राइट—हिमालय हर्बल इंस्टिट्यूट।]

★

इस अङ्क के लेखक

श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति—गुरुकुल विश्वविद्यालय के कुलपति, भारतीय संसद के सदस्य। प्रसिद्ध लेखक।

डा० लोकेश—राष्ट्रभाषा हिन्दी में वैज्ञानिक परिभाषाओं के निर्माता। भाषा विज्ञान के प्रसिद्ध विद्वान् लेखक।

श्री हरिदत्त वेदालंकार—गुरुकुल विश्वविद्यालय में इतिहास के उपाध्याय। अनेक पुस्तकों के लेखक। हिन्दी के सर्वोच्च पुरस्कारों से पुरस्कृत।

श्री जयचन्द्र विद्यालंकार—इतिहास के प्रामाणिक विद्वान्। अनेक पुस्तकों पर हिन्दी के सर्वोच्च पुरस्कारों से सम्मानित। हिन्दी साहित्य सम्मेलन के प्रधान।

प्रो० रामचरण महेन्द्र—मनोविज्ञान सम्बन्धी विषयों के प्रसिद्ध लेखक। हर्बर्ट कॉलेज, कोटा में उपाध्याय।

स्वामी कृष्णानन्द—योग शास्त्र के अनुभवी विद्वान्। योग और अध्यात्म विषयक अनेक पुस्तकों के लेखक।

श्री नारायण—हिन्दी के उदीयमान लेखक।

श्री रामेश बेदी—स्वास्थ्य सम्बन्धी विषयों और सांपों के प्रामाणिक विद्वान्। भोज्य पदार्थों पर अनेक पुस्तकों के लेखक।

आचार्य विद्यानन्द विदेह—वैदिक विषयों पर खोजपूर्ण नवीन विचारों को प्रस्तुत करने वाले विद्वान्।

★

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गुरुकुल संग्रहालय का वार्षिक विवरण (सं० २००७)

श्री हरिदत्त वेदालङ्कार, मन्त्री।

संवत् २००७ में गुरुकुल संग्रहालय ने सर्वाङ्गीण उन्नति की, इसके सभी विभागों में नई वस्तुओं की वृद्धि होती रही। मूर्ति विभाग में इस वर्ष झींवरहेड़ी (पश्चिम वाहिनी गंगा) जिला सहारनपुर, से प्राप्त दसवीं शती ई० का समुद्र मन्थन का फलक विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इस में इस दृश्य का बहुत सजीव एवं पौरुषपूर्ण अंकन हुआ है। गत वर्ष कुम्भ के अवसर पर हर की पौडी का मार्ग प्रशस्त करते हुवे अतरकौर ट्रस्ट की एक पुरानी हवेली धराशायी की गई थी। उत्तर प्रदेशीय सरकार के सौजन्य तथा विशेष रूप से श्री एच. सी. वर्मा, एक्जीक्यूटिव इञ्जीनियर देहरादून की कृपा से संग्रहालय को इस हवेली के उत्कीर्ण शिला-फलक और पत्थर की चौखटें मिली हैं। इसके कुछ फलकों पर भित्तिचित्रों के भी नमूने हैं। यह इस प्रदेश की २०० वर्ष पुरानी शिल्पकला पर सुन्दर प्रकाश डालते हैं।

श्री कृष्णदत्त जी वाजपेयी, पुरातत्वीय अधिकारी उत्तर प्रदेश की कृपा से हमें कुशाण कालीन लक्ष्मी अभिषेक, बुद्धशीर्ष, शिवलिंग आदि अनेक सुन्दर प्रस्तर मूर्तियां मिली हैं

मृण्मूर्तियां

मृण्मूर्तियों का नया विभाग संग्रहालय में इसी वर्ष से प्रारम्भ किया गया है। इन की प्राप्ति में श्री वाजपेयी जी तथा श्री सुजानसिंह जी, करौल बाग, दिल्ली से बड़ी सहायता मिली है। ये मूर्तियां मौर्य, शुङ्ग एवं कुशाण काल की हैं। इस वर्ष संग्रहालय को सातवीं, आठवीं

संग्रहालय का भीतरी दृश्य

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA
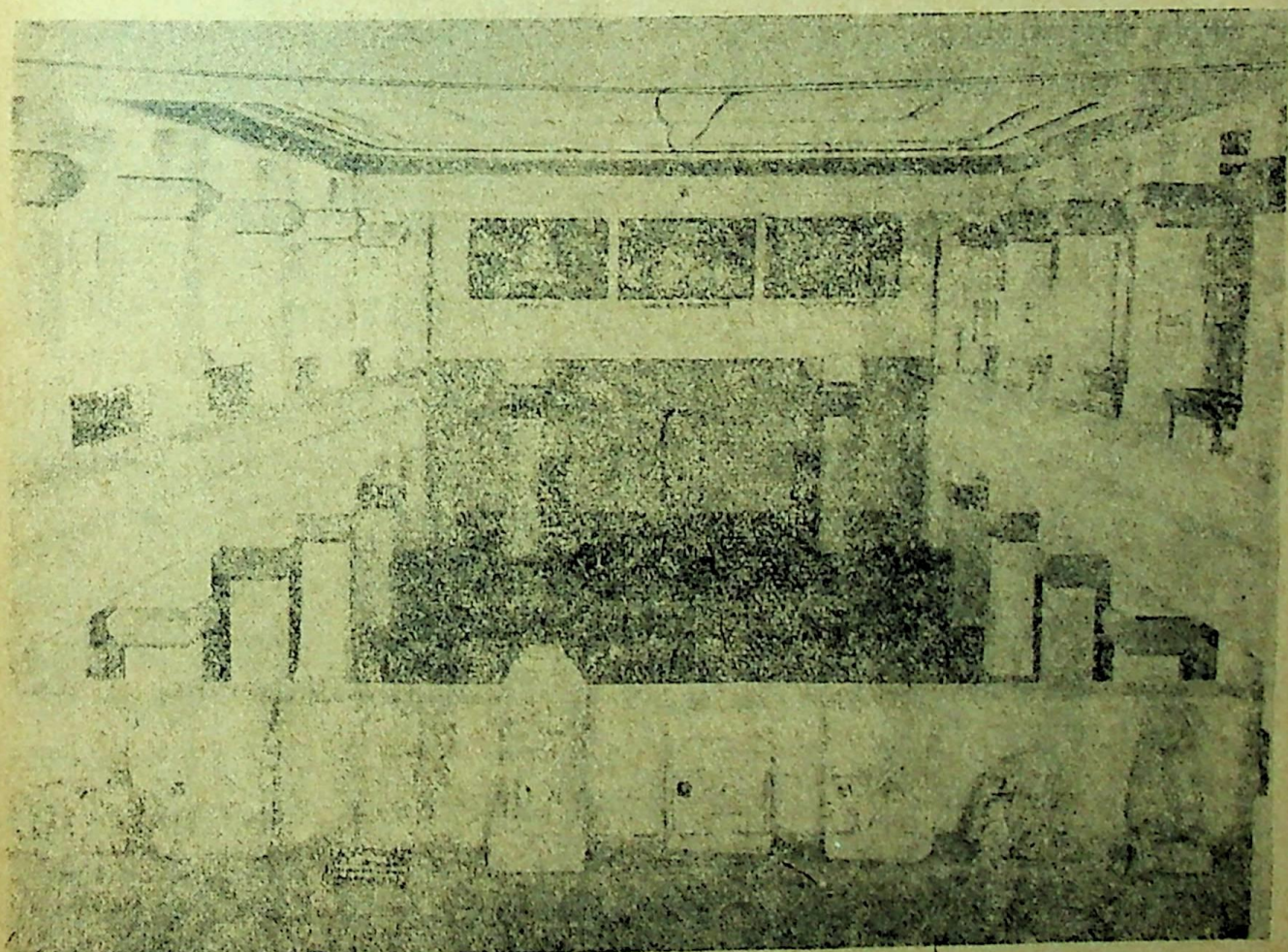
लाल मिट्टी की कुशाणकालीन पुरुष मृण्मूर्ति

शतो की मिट्टी की २ बौद्ध मोहरें मिली हैं। मोहेन-जोदड़ो और हड़प्पा की मोहरों के नमूने भी इस साल संग्रहालय में आये हैं।

मुद्रायें

डा० वासुदेव शरण जी अग्रवाल, अध्यक्ष राष्ट्रीय संग्रहालय नई दिल्ली तथा श्री कृष्णदत्त जी वाजपेयी की कृपा से भारत के प्राचीन सिक्कों में विशेष वृद्धि हुई है। ग्वालियर म्यूजियम ने नागवंशी राजाओं

मौर्यकालीन मृण्मूर्ति

के १४ सिक्के प्रदान किये हैं। श्री पं० ठाकुरदत्त जी वैद्य, अमृतधारा ने १३३ तथा श्री भगवन्त राय जी ने १०१ सिक्के इस वर्ष संग्रहालय को दिये। इन के अतिरिक्त ७०० के लगभग सिक्के अन्य महानुभावों से प्राप्त हुवे।

इस वर्ष के सिक्कों में डा० अग्रवाल जी द्वारा प्राप्त चन्द्रगुप्त द्वितीय की धनुर्धर शैली की बयाना संग्रह की एक स्वर्ण-मुद्रा तथा महमूद गजनवी का लाहौर की टकसाल में ढलवाया हुवा वह सिक्का विशेष रूप

मौर्यकालीन मातृदेवी की मृण्मूर्ति

से उल्लेखनीय है जिसके एक ओर देव-नागरी लिपि में कलमे का संस्कृत अनुवाद अंकित है।

संग्रहालय श्री गंगा प्रसाद जी मिश्र का विशेष रूप से आभारी है जो अपना कांगड़ा शैली का दुर्लभ चित्र-संग्रह प्रदर्शनार्थ हमें सदैव प्रदान करते रहे हैं। ग्वालियर म्यूजियम के क्यूरेटर के सौजन्य से हमें हेलिओडोरस के बेसनगर स्तम्भ लेख की, कुमार गुप्त के शिला लेख की तथा अन्य दो लेखों की छापें प्राप्त हुई हैं। प्राचीन लिपियों के ५० के लगभग नये पत्रक इस वर्ष तैयार करवाये गये हैं। इन से मौर्यकाल से अब तक की भारतीय वर्ण-

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

मालाओं का उद्भव तथा विकास बहुत अच्छी तरह से समझा जा सकता है। इन में समूची प्रान्तीय भाषाओं की वर्णमालायें भी देव-नागरी लिपि के साथ दी गई हैं। गत मार्च मास में अखिल भारतीय संस्कृति सम्मेलन, लाल किले, दिल्ली में आयोजित प्रदर्शनी में राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद जी ने इन चार्टों को बहुत पसन्द किया था। इस वर्ष कनिंघम की भारतीय भूगोल के आधार पर भारत के १५ ऐतिहासिक मानचित्र तैयार करवाये गये हैं।

श्री डा० शिवनाथ राय जी के अनथक उद्योग और लगन से इस वर्ष अनेक देशों के डाक टिकट, नोट और भारत के पुराने स्टाम्पों का बहुत अच्छा संग्रह किया गया है।

हस्तलिखित ग्रन्थ

रुड़की, देहरादून, लुधियाना की आर्यसमाजों से कई बहुमूल्य हस्त-लिखित ग्रन्थ प्राप्त हुए। देहरादून

शीर्षहीन बुद्ध। कुशाण काल

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA
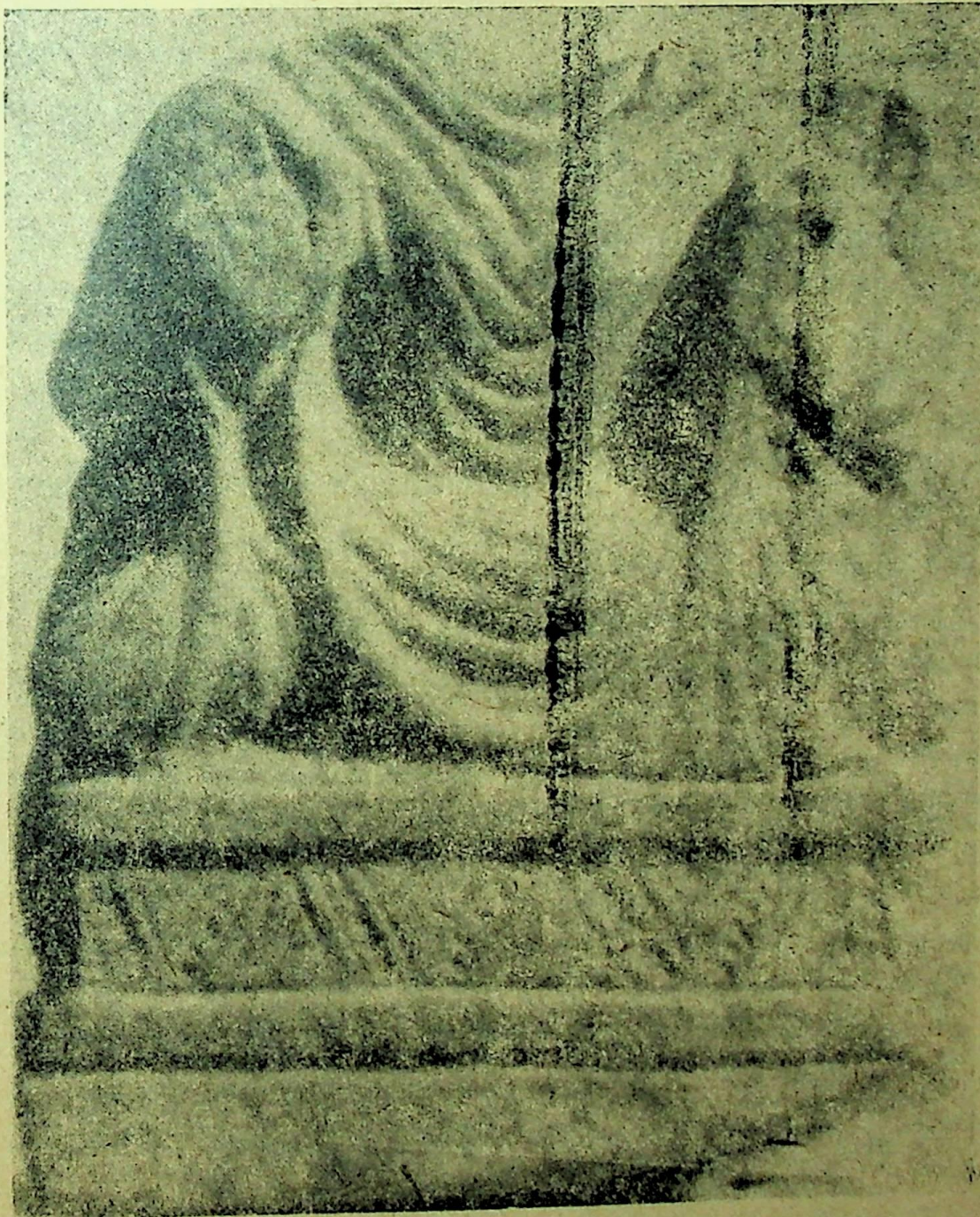
के श्री पं० अमरनाथ जी वैद्य से १२ पुरानी पुस्तकें प्राप्त हुईं। इन में १०० वर्ष प्राचीन काश्मीरी कागज पर देव-नागरी लिपि में लिखा हुवा सचित्र भगवत्पुराण विशेष रूप से उल्लेखनीय है। रुड़की से ४०० वर्ष पुराना एक बौद्ध ग्रन्थ मिला। देहरादून की आर्यसमाज से गौरांग महाप्रभु के शिष्य जगन्नाथ दास द्वारा विरचित तुलसीणा नामक अध्यात्म विषयक ताड़पत्र पर उड़िया में लिखा ग्रन्थ मिला और लुधियाना से रामायण। ख्वाजा हसन नजामी ने तबरूकात और औरंगजेब के हस्तलिखित कुरान शरीफ़ की मुद्रित प्रति प्रदान की।

वैज्ञानिक विभाग

इस वर्ष संग्रहालय के वैज्ञानिक विभाग में प्राणि-शास्त्र विषयक अनेक महत्त्वपूर्ण वृद्धियां हुई। इन में सब से अधिक उल्लेखनीय हाथी का पञ्जर है। इसकी सफाई हो चुकी है और शीघ्र ही इस के पूरा तैयार हो जाने की आशा है। इस प्रदेश के अधिकांश कीड़ों को कीट-संग्रह विभाग में एकत्र किया गया है। इसके सर्प विभाग में उत्तराखण्ड के बहुत से निर्विष और विषैले सांपों का संग्रह है।

संग्रहालय में सामान बहुत अधिक बढ़ जाने के कारण सिक्के तथा अन्य चीजों को रखने के लिये २२ नई अलमारियां बनवानी पड़ी हैं।

माननीय दर्शक

इस वर्ष संग्रहालय देखने के लिये अनेक सम्मान्य दर्शकों का आगमन हुआ। इन में श्री मदन मोहन जी नागर अध्यक्ष राजकीय संग्रहालय लखनऊ; श्री कृष्णदत्त जी वाजपेयी, पुरातत्व अधिकारी उत्तर प्रदेश; डा० वासुदेव शरण जी अग्रवाल अध्यक्ष, राष्ट्रीय-संग्रहालय दिल्ली; श्री कुलकर्णी जी उप संचालक, स्वास्थ्य (आयुर्वेद उत्तर प्रदेश); श्री एस० सी० कपूर, श्री बेनी माधव सिंह जी शिक्षा उप-संचालक मेरठ; श्री सी. एम. आचार्य उपकुलपति, उत्कल विश्वविद्यालय कटक; श्री चन्द्रभानु जी गुप्त, रसद मन्त्री उत्तर प्रदेश; श्री आत्माराम गोविन्द खेर स्वायत्त मन्त्री उत्तर प्रदेश; उल्लेखनीय हैं। इन माननीय दर्शकों के अतिरिक्त हरद्वार के पावन तीर्थ में आने वाले लाखों यात्रियों ने इस संग्रहालय से लाभ उठाया।

भावी कार्यक्रम

उत्तर प्रदेश के इस भाग में पुरातत्वीय अनुसंधान एवं लोक-शिक्षण का कार्य करने वाला यही एक मात्र संग्रहालय है। संग्रहालय के सम्मुख हिमाचल प्रदेश तथा उत्तराखण्ड में अनुसन्धान का गुरुतर कार्य है। इस ने सर्व प्रथम कनखल के भित्ति-चित्रों की ओर पुरातत्वज्ञों का ध्यान आकृष्ट किया है। यह चित्र काल के प्रभाव से नष्ट हो रहे हैं। इनका तुरन्त माइक्रो-फिल्मिंग होना आवश्यक है। इसी प्रकार, भींवरहेड़ी, लालढांग, मीठी बेरी के आस पास पाये जाने वाले अवशेषों की खुदाई भी आवश्यक है। यह कार्य व्यय साध्य है। संग्रहालय को गत वर्ष उत्तर प्रदेशीय सरकार से १५००) की अस्थायी आर्थिक सहायता मिली थी। इसके लिये हम उन के आभारी हैं किन्तु हरद्वार एवं उत्तराखण्ड के ऐतिहासिक महत्व और अन्वेषण कार्य को देखते हुवे यह राशि अत्यन्त अल्प है। आशा है इस वर्ष इस को अपने कार्यों के लिये यथेष्ट अनुदान प्राप्त होगा और जनता भी धन एवं अपने पास पड़ी प्राचीन वस्तुओं के दान-द्वारा इस की पूरी सहायता करेगी।

आभार प्रदर्शन

इस वर्ष संग्रहालय के कार्य में विविध रूपों में श्री पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति एम. पी. कुलपति, श्री पं० विश्वनाथ जी सहायक मुख्याधिष्ठाता, श्री दीन दयालु जी शास्त्री एम. एल. ए., श्री गंगा प्रसाद जी मिश्र, श्री मदन मोहन जी नागर, श्री कृष्णदत्त जी वाजपेयी, श्री वासुदेव शरण जी, श्री सतीश चन्द्र जी काला, श्री मोहनानन्द जी महन्त श्री श्रवणनाथ मठ हरिद्वार, श्री सुखानन्द जी महन्त भोलागिरी अखाड़ा हरद्वार से बहु-मूल्य सहायता और सहयोग मिला है। संग्रहालय इन सब का आभारी है और उसे यह आशा तथा विश्वास है कि इस वर्ष भी ये सब महानुभाव अपने अमूल्य सहयोग से संग्रहालय की उन्नति में सहायता प्रदान करते रहेंगे।

★

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

भ्रष्टाचार

आचार्य विद्यानन्द विदेह

युध्य कुयवं गविष्ठौ ।। (ऋ० ६. ३१. ३)

(गविष्ठौ) भूयाग-राष्ट्रयज्ञ में (कुयवं) भ्रष्टाचार को (युध्य) दूर कर ।।

मन्त्र में भ्रष्टाचार के लिए 'कुयवम्' शब्द आया है । कुयव का अर्थ है--

कु=बुरा । + यव = जौ ।

कुयव=कु जौ, कु अन्न ।

कु आजीविका,

कु लाभ, अनुचित लाभ,

कुत्सित रीति से लाभ प्राप्त करना ।

भ्रष्ट आचार द्वारा धन कमाना ।

कुत्सित रीति से लाभ प्राप्त करना भ्रष्टाचार है। यह भ्रष्टाचार आज समस्त संसार में व्याप गया है। भ्रष्टाचार बड़ा प्रबल राक्षस है. अतः इसे निकालना सरल काम नहीं है। इसी लिए मन्त्र में कहा है कि भ्रष्टाचार को निकालने के लिए 'युध्य' युद्ध कर । इसे निकालने के लिए विकट संग्राम करना पड़ेगा ।

बुद्धिमानों ने जीवन का आदर्श बताया था 'सादगी और उच्च विचार ।' भेड़-चालियों ने कहना आरम्भ किया जीवन का माप-दण्ड ऊंचा करना ही सभ्यता है ' परिणामतः आवश्यकताएं बढ़ने लगीं और भ्रष्टाचार फैलने लगा ।

शास्त्रकारों ने कहा था 'जीवन के फल चार हैं धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष ।' जीवन का आदर्श था —धर्म से धन कमाना, धन से शुभ कामनाओं को सिद्धि करना और शुभ कामनाओं की सिद्धि से मोक्ष-निर्वाण प्राप्त करना । माप-दण्ड कृत्ति ने सिखाया 'धर्म का बहिष्कार करो, किसी भी उपाय से धन कमाओ, धन से खाओ पीओ और मौज उड़ाओ ।' भोगवृत्ति बढ़ने लगी और भ्रष्टाचार जड़ पकड़ने लगा ।

वेद ने कहा था 'कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छत समा — करता हुआ ही यहां कर्मों को जीना चाहे शत वर्ष।' सौ वर्ष जीने की इच्छा कर।' किसलिये ? कर्तव्य सम्पादन करने के लिए, सुकर्म करने के लिए, धर्म पालन करने के लिये ।' नवसभ्यताभिमानियों ने पढ़ाया 'जीओ ऐश करने के लिए ।' ऐश के साधन जुटाने के लिए चाहिए विपुल धन । लूट खसोट का बाज़ार गर्म होने लगा और भ्रष्टाचार का शासन जमता गया ।

यह भ्रष्टाचार का युग है, धर्म की प्रधानता है। भ्रष्टाचार रूपी राक्षस राष्ट्रयज्ञ में विघ्न उपस्थित कर रहा है। धन ने न्याय और नीति का दम घोट रखा है। धन के लिए सतीत्व लुट रहा है। धन के लिए सदाचार गिर रहा है । धन के लिये नेतृत्व बिक रहा है। कुप्रचार ने भ्रष्टाचार का साम्राज्य स्थापित कर दिया है ।

जिन के हाथों में शासन और न्याय है उन्हें अपनी सारी शक्ति भ्रष्टाचार के मिटाने में तुरन्त लगा देनी चाहिये । दमन और दण्ड बहुत हद तक भ्रष्टाचार से प्रजा की रक्षा कर सकते हैं। परन्तु असली उपचार तो वेदव्रती वेदोपदेशकों द्वारा ही किया जायेगा । सच्चे वेदप्रचारक ही मानव जाति में जीवन का सही दृष्टि-कोण स्थापित कर सकेंगे और तब ही यह भ्रष्टाचार समाप्त होगा । वेद प्रचार द्वारा सदाचार की स्थापना होने से भ्रष्टाचार समाप्त होगा ।

वेद प्रचार वेतनिक उपदेशकों द्वारा सम्पन्न नहीं हो सकता । यह तो त्याग और निष्ठा का विषय है ! त्यागी, कर्तव्यपरायण ब्राह्मणों और मेधावी सन्यासियों में ही वह क्षमता हो सकती है कि नागरिकों के जीवनों में परिवर्तन कर दें, उन के जीवनों में ऋजुता और उच्चता स्थापित करें, उन के जीवनों को धर्म-प्रधान जीवन बनायें और उन्हें केवल कर्तव्य के लिए जीना सीखायें।

★

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

पुस्तक-परिचय

पुस्तक की दो प्रतियां मिलने पर ही उसका परिचय दिया जाता है। एक प्रति मिलने पर केवल प्राप्ति स्वीकार दिया जायगा।

—सम्पादक।

उपदेश मञ्जरी—व्याख्याता—महर्षि दयानन्द सरस्वती। आर्य प्रकाशन मंडल, लाजपतराय मार्केट दिल्ली द्वारा प्रकाशित। मूल्य २) रुपये।

स्वामी जी महाराज के पूना में दिए हुए व्याख्यानों का यह संग्रह चिरकाल से अप्राप्य हो रहा था। श्री जगत्राम जी आर्य ने इन को नए सिरे से सुसम्पादित करवा कर बढ़िया टाईप में छपवा कर आर्य-जगत् का बड़ा उपकार किया है। उपदेश मञ्जरी में दिए हुए ये व्याख्यान स्वामी जी द्वारा सत्यार्थ प्रकाश में वर्णित अनेक आर्य-सिद्धांतों की व्याख्या और परिष्कार रूप हैं। राजधर्म, यज्ञ, संस्कार, पुनर्जन्म, ईश्वरसिद्धि पर पुष्कल प्रमाण और युक्तियां दे कर विषय को सुबोध और स्पष्ट कर दिया गया है। कुछ एक ऐतिहासिक और पौराणिक विषयों का सुन्दर और बुद्धि संगत परिष्कार किया गया है। धार्मिक सुधारणा, चरित्र-संस्कार और तत्वज्ञान के प्रेमियों के लिए यह पोथी बड़े काम की है। इन विषयों पर स्वामी जी का दृष्टिकोण कितना विशाल और जीवनोपयोगी था यह भले प्रकार स्पष्ट हो जाता है। कितना ही अच्छा होता कि अन्य स्थानों में दिए गए स्वामी जी के व्याख्यानों का भी इसी प्रकार सञ्चय और सम्पादन किया जाता।

— शंकरदेव।

आयुर्वेद सुलभ विज्ञान—प्रकाशक डाक्टर कमल सिंह, देवास गेट, उज्जैन। सम्वत् २००५। मूल्य २॥)। पृष्ठ संख्या १५१। शरीर-शास्त्र, रसतन्त्र, काम चिकित्सा, शल्य तन्त्र, अगद तन्त्र, आदि आयुर्वेद के विषयों को सरल तथा सुबोध तरीके से समझाने का लेखक ने प्रयत्न किया है। रोगों के लक्षण, चिकित्सा, पथ्यापथ्य आदि देने के साथ औषधियों के गुणों का प्रतिपादन भी किया है। जन साधारण के लिए पुस्तक उपयोगी है।

—रामेश बेदी।

★

विज्ञापकों से

गुरुकुल-पत्रिका भारत के प्रत्येक प्रांत में और अफ्रीका, फिजी आदि देशों में भी चाव से पढ़ी जाती है। विज्ञापन की दर निम्न लिखित है—

टाइटल का तीसरा पृष्ठ	३०) मासिक	टाइटल का चौथा पृष्ठ	३५) मासिक
साधारण पृष्ठ	२५) "	आधा पृष्ठ	१४) "
चौथाई पृष्ठ	८) "		

शिक्षित परिवारों की पत्रिका होने से यह आपके माल को ग्राहक तक पहुँचाने के लिए बड़ा अच्छा साधन है। आप भी अपना विज्ञापन शीघ्र भेजिये। अध्यक्ष, विज्ञापन विभाग, गुरुकुल पत्रिका, गुरुकुल कांगड़ी।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गुरुकुल समाचार

ऋतु

इस वर्ष ज्येष्ठ मास की ऋतु अद्भुत आंख मिचौनी खेल रही है। कभी बादल घिर आते हैं और मौसम सुहावना बन जाता है, और कभी चिलचिलाती धूप हो जाती है। बीच में थोड़ी-थोड़ी वर्षा भी पड़ चुकी है। निकट के पर्वतों और वनों के परिभ्रमण भी चालू हैं। चण्डी और शिवालक की पर्वतमाला पर प्याल खूब बहार दे रहे हैं। कनखल की सुरक्षा के लिए बनाए गए नए बांध को देखने तथा ऋषिकेश के वन-विहार के लिए भी छात्र आते जाते रहते हैं। वनस्पति उद्यान में कुटज, चम्पक गन्धराज, मालकगनी और बेला के फूल खूब महकने लगे हैं। आचार्य रामदेव-मार्ग इन दिनों अमलतास के के वसन्ती फूलों द्वारा कुल में अपूर्व शोभा फैला रहा है। नहर स्नान का विशेष आनन्द हो रहा है। कुछ नए प्रवासी पक्षीगण भी उपवनों में दृष्टिगोचर होने लगे हैं। छात्रों का स्वास्थ्य अच्छा है।

सरस्वती यात्राएँ

ग्रीष्मावकाश में एक मण्डली तो ज्येष्ठ के प्रारम्भ में ही गंगोत्री के लिए प्रयाण कर चुकी थी। महाविद्यालय आश्रम के कुछ छात्रों की एक मंडली डलहौजी, चम्बा आदि पर्वतीय स्थानों की ज्ञान-यात्रा के लिए निकली है। इस के अतिरिक्त आयुर्वेद कालेज के कुछ छात्र चिकित्सा-विद्या के अनुभव और क्रियात्मक ज्ञान प्राप्त करने के लिए लुधियाना गए हैं। वहां पर वे मेडिकल स्कूल की अवधानता में ज्ञानोपार्जन करेंगे।

मान्य अभ्यागत

नैपाल सरकार के शिक्षा सञ्चालक श्री जितेन्द्र बहादुर शाह गुरुकुल में पधारे। आपने गुरुकुलीय शिक्षा विधि के विषय में अनेक महत्वपूर्ण प्रश्नों का समाधान पूछा। बड़ी उत्सुकता और जिज्ञासा के साथ गुरुकुल के विभिन्न विभागों का आपने अवलोकन किया। और गुरुकुल शिक्षा सम्बन्धी बहुत सा साहित्य अपने साथ ले गए। आपने गुरुकुल की 'प्रेक्षक अभिप्राय-पुस्तक' में इस प्रकार अपने विचार प्रकट किए हैं—

'मैं सर्वदा यहां आना और इस बड़ी संस्था को देखना चाहता था। इस वर्ष मुझे यह अवसर प्राप्त हुआ। मेरी राय में यहां पूर्वीय और पश्चिमी सभ्यता तथा शिष्टाचार का अच्छा संमिश्रण किया गया है'

गुरुकुल के सुयोग्य स्नातक और राजयक्ष्मा के विशेषज्ञ डॉ० धर्मानन्द जी केसरवानी एम. डी. स्वामी अगेहानन्द जी के साथ गुरुकुल में पधारे। डॉ० धर्मानन्द जी दस वर्ष तक जर्मनी में रह कर वहां चिकित्सा-शास्त्र का अध्ययन और अनुशीलन करते रहे है। युद्ध के दिनों में आप वहीं थे और चिकित्सा के सिवाय अन्य बिभागों में भी काम कर चुके हैं। आपने रोम विश्वविद्यालय से भी एम. डी. की पदवी प्राप्त की हुई है।

श्री पं० वागीश्वर जी विद्यालंकार के सभापतित्व में आपने 'जर्मनी युद्ध में क्यों हारा?' इस विषय पर नई सूचनाओं से भरा हुआ ज्ञानप्रद व्याख्यान दिया। इस के बाद स्वामी अगेहानन्द जी ने प्रश्नोत्तर के रूप में वार्तालाप द्वारा श्रोताओं की जिज्ञासा का समाधान किया। स्वामी अगेहानन्द जी मूलतः आस्ट्रिया के सिवासी हैं। ऑक्सफोर्ड विद्यापीठ के बेलियल कॉलेज में आप डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन से दर्शन-शास्त्र का अध्ययन किए हुए हैं। वहां से स्नातक हो कर आपने एक जर्मन विश्वविद्यालय से डाक्टर की पदवी पाई है। चौदह वर्ष की आयु से शाकाहारी हैं। पहला नाम रामचन्द्र है और संप्रति दिल्ली विश्वविद्यालय में प्रोफेसर हैं। संन्यासी हो

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

कर साधक और तपस्वी का जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

उस दिन प्रसिद्ध कांग्रेसकर्मी श्री गोविन्द सहाय जी का गुरुकुल में भारत की वर्तमान राजनीतिक और आर्थिक समस्याओं पर व्याख्यान हुआ। आपने जनतन्त्रवाद (डिमोक्रेसी) तथा अधिनायक-तन्त्र (डिक्टेटर शिप) की खूबियों और त्रुटियों पर विवेचन करते हुए बताया कि किस प्रकार प्रणालिकावाद के मूढ़ग्राह में फंस जाने से इस समय हमारे देश में विक्षोभ और अशांति छा रही है। हम लोग समस्याओं को सही ढंग से सोचने की शक्ति भी गंवा बैठे हैं। अंग्रेज तो चला गया है पर उस के शासन तन्त्र का ढांचा वैसा का वैसा ही देश के नये शासकों ने अपनाया हुआ है जिसके कारण जन-साधारण बहुत सी परेशानियों का शिकार बना हुआ है। फलतः देश में राजनीतिक आर्थिक और सामाजिक उथल-पुथल की संभावनाएं दृष्टि-गोचर हो रही हैं।

नए प्रकाशन

इस वर्ष श्रद्धानन्द स्वाध्याय मंजरी के सिलसिले में गुरुकुल के सुयोग्य स्नातक श्री देवराज जी मुनि (विद्यावाचस्पति) की लिखी हुई 'अग्निहोत्र' नामक पुस्तक प्रकाशित हुई है। पुस्तक में अग्निहोत्र के सभी अङ्गों पर वैज्ञानिक ढंग से प्रकाश डाला गया है। स्वाध्याय के लिए यह बहुत उपादेय बन पड़ी है।

इस के सिवाय भूतपूर्व वेदोपाध्याय श्री विश्वनाथ जी विद्यालंकार द्वारा निर्मित 'संध्या-रहस्य' और आचार्य अभयदेव की रचित खूब प्रशंसित पुस्तक 'ब्राह्मण की गौ' की भी नई आवृतियां प्रकट हुई हैं।

स्वास्थ्य समाचार—वैशाख मास

नाम रोगी ब्र०	श्रेणी	नाम रोग	कितने दिन रोगी रहा
भानुदेव	१५	ज्वर	४
विपिनचन्द्र	१५	आन्त्रशूल	२
जयदेव	१४	ज्वर	३
श्रुतिकुमार	१४	ज्वर	३
रामचन्द्र	१४	व्रण	४
मनोहर	१४	आन्त्रशूल	२
नरेश	१४	चोट	४
सुरेन्द्रपाल	१५	मोच	११
विश्वनाथ	१३	अतिसार	१०
ओम्प्रकाश	१२	"	७
केशव	१२	चोट	४
राघवेन्द्र	११	ज्वर	३
जयपाल	११	ज्वर	३
प्रभात कुमार	११	ज्वर शूल	३
ओम्प्रकाश	११	आन्त्रशूल	२
केशव	११	"	३
राजीव	१३	आमातिसार	५

गत मास उपरोक्त ब्रह्मचारी रुग्ण हुए थे। अब सब स्वस्थ हैं। विद्यालय के १ म से ५ म श्रेणी तक के ब्रह्मचारियों का स्वास्थ्य विवरण कार्ड द्वारा उन के संरक्षकों को भेज दिए गए हैं।

—प्रधान चिकित्सक।

★

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गुरुकुल कांगड़ी में बनी

फीनाइल-स्याही-वार्निश

तथा अन्य उपयोगी वस्तुएँ काम में लावें

स्कूलों, कालेजों, हस्पतालों व स्वास्थ्य विभागों में वर्षों से प्रयुक्त हो रही हैं।

अपने नगर की एजेन्सी के लिए लिखें—

गुरुकुल कैमिकल इएडस्ट्रीज़

गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

[बौद्ध-धर्म का एक मात्र हिन्दी मासिक पत्र]

धर्मदूत

अब वह युग आ गया कि पुनः भगवान् बुद्ध के अमर सन्देश को सुनने के लिए संसार उत्सुक हो रहा है। 'धर्मदूत' के अतिरिक्त इस उत्सुकता की पूर्ति के लिये दूसरा कौन-सा साधन है? क्या आप इस पत्र के पाठकों में हैं? यदि नहीं, तो शीघ्र ही ग्राहक बन कर 'धर्मदूत' का पाठक बनिये। 'धर्मदूत' सदा महत्वपूर्ण लेखों, अन्तर्राष्ट्रीय प्रवृत्तियों, सांस्कृतिक प्रगतियों और विश्व के बौद्धों की अवस्थाओं पर प्रकाश डालता है। यह समाज की सांस्कृतिक सेवा करने में सदा अग्रणी है। आप को थोड़े ही मूल्य में बहुत सी ज्ञातव्य बातें सदा पढ़ने को मिलेंगी।

मूल्य एक प्रति ।=) वार्षिक ३) आजीवन ५०)

नमूने के लिए ।=) के टिकट के साथ लिखें

व्यवस्थापक—'धर्मदूत' सारनाथ, बनारस

मुद्रक—श्री हरिवंश वेदालङ्कार। गुरुकुल मुद्रणालय, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

प्रकाशक—मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

ग्रीष्म ऋतु के उपहार

ब्राह्मी तेल

दिमाग को ठण्डक व तरावट देता है। आंखों की ज्योति बढ़ाता है।

मूल्य १।=) शीशी

आमला तेल

यह तेल बालों को रेशम की तरह मुलायम कर काला करता है। मूल्य १।) शीशी

भीमसेनी नेत्रबिन्दु

यह औषधि दुखती आंखों के लिए अक्सीर है। कुकरे व दर्द भी दूर करती है।

मूल्य १) शीशी

पामाहर

इसके लगाने से खुजली व चम्बल को आराम हो जाता है। मूल्य ।=) शीशी

पायोकिल

पायोरिया की एकमात्र दवा है। प्रतिदिन प्रयोग करें। मूल्य १॥) शीशी

भीमसेनी सुरमा

यह जगत प्रसिद्ध सुरमा आंखों के सभी रोगों पर अचूक है। बालक, वृद्ध सभी प्रयोग कर सकते हैं।

मूल्य ॥=) शीशी

ब्राह्मी बूटी

बुद्धि को बढ़ाने व मस्तिष्क की दुर्बलता को दूर करने में इस से अच्छी और बूटी नहीं है। हमारे यहां हर समय ताजी मिलती है। मंगायें। मूल्य ३) सेर

ब्राह्मी शर्बत

बादाम आदि डाल कर यह शर्बत तैयार किया है। इस ऋतु में सेवन योग्य उत्तम शर्बत है। मूल्य ३) बोतल

भीमसेनी दन्त मंजन

दांतों में कीड़े लग जाना, हिलना, मसूड़ों का खुजलाना आदि में इस मञ्जन का प्रयोग करें। प्रतिदिन सेवन करना लाभदायक होगा।

मूल्य ॥=) शीशी

गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी (हरद्वार)

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गुरुकुल पत्रिका

श्रावण

२००८

वर्ष ३

अङ्क १२

विद्ययाऽमृतमश्नुते ।

हरिद्वारीय गुरुकुल विश्वविद्यालय

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय - हरिद्वार

वर्ष ३
अङ्क १२

गुरुकुल-पत्रिका

श्रावण
२००८

व्यवस्थापक
श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति
मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी।

सम्पादक
श्री सुखदेव दर्शनवाचस्पति
श्री रामेश बेदी आयुर्वेदालंकार।

इस अङ्क में

अगले अंकों में

आध्यात्मिक उन्नति में दम का स्थान	श्री स्वामी कृष्णानन्द
कविता का पुरस्कार	श्री विष्णुमित्र
अर्थशास्त्रीय चिन्तन का इतिहास	श्री अविनाश वेदालङ्कार

अन्य अनेक विश्रुत लेखकों की सांस्कृतिक, साहित्यिक व स्वास्थ्य सम्बन्धी रचनाएं।

मूल्य देश में ४) वार्षिक
विदेश में ६) वार्षिक

एक प्रति
छः आने

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गुरुकुल-पत्रिका

[गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की मासिक पत्रिका]

हिन्दी साहित्य और उस की राष्ट्र सेवा

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

हम जब किसी भाषा के विषय में कुछ कहना चाहते हैं, तो हमारा लक्ष्य उस भाषा के लोक विज्ञान के विश्लेषण से होता है। हिन्दी भाषा के विषय में भी यही न्याय संघटित होता है। अतः हिन्दी साहित्य के विषय में कुछ कहना, उस के मूल्य का निश्चय करना है, जिस क्रियात्मकता से उस ने भारत की समय-समय पर सेवा की है।

किसी भी देश की भाषा से अथवा तद्वर्णित साहित्य एवं विचारों से हम वहां की संस्कृति का विहंगमावलोकन कर पाते हैं। अतः हिन्दी साहित्य के वर्तमान स्तर को भूतकालीन विकाश पर ही निश्चित करने से हमें प्रत्यक्ष ज्ञान हो जायगा कि हमारा धर्म, हमारा विज्ञान तथा हमारे लोक-व्यवहार किन नीतियों के आधार पर फलते और फूलते आये हैं।

हिन्दी आज हमारी राष्ट्र भाषा है और इस का वर्तमान क्षेत्र विशाल से विशालतर बनता जा रहा है। राष्ट्र भाषा होने के कारण हिन्दी का उत्तरदायित्व गुरूतर होता जा रहा है, क्योंकि इसे अपने अंक में ही आधुनिक-सभ्यता के सभी लाक्षणिक-सिद्धान्तों की भावनाओं को यथोचित स्थन देना होगा। अर्वाचीन विज्ञान के सभी अंगों को इस ने परिपुष्ट कर उन में नवीन-जीवन की स्फुरिता भर कर अपने स्वरूप को अतिव्याप्त और स्वतन्त्र करना होगा।

प्रश्न उठता है कि क्या हिन्दी के ही वैज्ञानिक-विकास से हमारी सभ्यता, संस्कृति, राजनीति तथा अन्यान्य लोकात्मक-समस्यायें हल हो सकती हैं? इस प्रश्न का हमारे पास पर्याप्त उत्तर है। हम निश्चय से कहेंगे कि आधुनिक-प्रगति के दृष्टिकोण से यदि कोई भाषा हमारी राष्ट्रभाषा होने योग्य है तो वह हिन्दी है। तामिल भाषा के अतिरिक्त भारत की समस्त प्रांतीय भाषायें संस्कृत-शब्दाधिक्य होने से हिन्दी के ही विशेष समानान्तर हैं। बंगला, मराठी, मध्यप्रान्तीय तथा सौराष्ट्रीय साहित्य संस्कृत के माध्यम के कारण हिन्दी से इतना सम्बन्धित है कि हमें हिन्दी के

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

मौलिक-साहित्य पर आस्था रखनी चाहिये।

भारतीय-सांस्कृत्य-परम्परा को सजीव रखने का श्रेय केवलमात्र हिन्दी को है, क्योंकि इसी ने मुगलकालीन सत्तान्तर्गत हमारी वैदिक, धार्मिक, नैतिक, आर्थिक तथा अन्यान्य भावनाओं को अपनी वैज्ञानिक विचारधारा के प्रभाव से संरक्षित रखा।

इतिहासज्ञ इस बात से सुपरिचित हैं कि उत्तर-पश्चिम से आये हुये शत्रुओं ने हमारे देश की स्वतन्त्र-कला को कैसे ध्वंस किया था और किस प्रकार हमारे लोकधर्म को अपनी सत्ता के बल से प्रभावित किया। भारतीय इतिहास में यह वह युग था, जब कि संस्कृत-भाषा का प्रायः लोप हो रहा था और जो कुछ शास्त्रविभूति अवशिष्ट थी, वह भी तत्कालीन धर्माचार्यों के संकुचित-क्षेत्र में ही सीमित रह गयी। गीर्वाणी-जनसाहित्य के लोप होते ही भारतवर्ष के आगे दुस्तर-सांस्कृतिक-समस्या का उदय हुआ। इसी समय उत्तर पश्चिम से नई बर्बर-शक्ति का सूर्योदय हो रहा था, जिस ने वैदिक-धर्म को शीघ्र ही प्रभावित करना आरम्भ कर दिया। जब भारत में मुगलों की सत्ता के डंके बजा दिये गये तो स्वभावतः हमारी स्वकीय-राजनीति का प्राचीन-अंग विकृत हो गया। हमारे लोकव्यवहारों में परिवर्तन हुआ और हमारे धर्म के सुप्रथित यशस्वी-ललाट पर सांस्कृतिक और धार्मिक-आघात लगे बिना न रहे। हमारी जनता को मनोनीत मार्ग की ओर ले जाया जाने लगा।

यह थी वह अवस्था जब शास्त्र-मर्यादा का सद्विज्ञान संस्कृत भाषा के ज्ञानाभाव से लुप्त होता जा रहा था। इसी समय हमारे सामयिक महात्माओं और जनता के आचार्यों को किसी ऐसी भाषा का माध्यम स्वीकार करना पड़ा, जिसके बल वे जनता को पतन की ओर को जाने से रोकें। धर्म की मर्यादा तो शास्त्र हैं। अतः शास्त्रानुविन्दित धर्म के अस्तप्राय होने से किसी भी समाज की संस्कृति समयानुकूल प्रभावित होती रहती है। पञ्चम-वृत्ति वालों के विषय में भी तो यही हुआ। उन्हें धर्म की मर्यादा तथा सामाजिक व्यवहारों की दृष्टि से वर्णच्युत माना गया और कालान्तर में उसका यह विपाक गोचर हुआ कि शास्त्रानुविन्दित ज्ञान के अभाव में, वे अपनी संस्कृति के गौरव को भूल कर, क्षुद्रवृत्तिपरायण हो गये और हमें निश्चय से कहना पड़ता है कि भाषा-साहित्य के अज्ञान में शास्त्रनिर्णीत-मानव धर्म के नियमित-सिद्धान्तों से अपरिचित होने के कारण हमारी जाति का एक अंग गिर भी गया, जिस ने सामयिक परिवर्तनों में किसी इतर-जातिसमुदाय की संख्या में वृद्धि की। अतः हिन्दी साहित्य ने धर्म के दृष्टिकोण से तो हमारी सभ्यता के गिरते हुये अङ्ग को संभाला तो था ही और साथ-साथ लोकधर्म की भारतीय-मर्यादा का पुनः संस्थापन कर, हमारे समाज तथा उस के नैतिक-सह-धार्मिक विचारों को परिपुष्ट भी

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

किया। महात्मा तुलसीदास के महाकाव्य श्री रामचरित मानस के लोकप्रिय-जन साहित्य ने भारतवर्ष की सुप्त-संस्कृति और धर्म भावना को पुनः जगाया। धर्माचार्यों ने रामचरित मानस के लोकभाषा की निन्दा भी की और अपवाद भी किया, क्योंकि महात्मा ने जनता की ही भाषा में सरल रीति से धर्म और सत्य की ओर सचेत किया, जिसका परिणाम आज हमें स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है कि हमारा वैदिक परंपरानुकूल-जीवन अभी भी हम में यथावत् ओतप्रोत है। यदि किसी हिन्दी भाषा का उस काल में समयोचित-आविर्भाव न होता तो आज हमारे राष्ट्र धर्म का स्वरूप कुछ और ही होता, जिसकी कल्पना किसी भी मनोवैज्ञानिक विचारक को प्रकम्पित कर सकती है।

सूरदास, केशवदास और कबीरदास ने अपनी विचारधाराओं से भारत के तत्तत्कालीन मनोवैज्ञानिक क्षेत्रों में अपना प्रभुत्व-स्थापित किया। निश्चलदास के वृत्तिप्रभाकरादि वेदान्त ग्रन्थों से स्पष्ट पता चलता है कि आज का भारतीय लोकविज्ञान किसी सुदृढ़ आधारशिला पर सुप्रतिष्ठित किया गया था। वैसे तो तत्कालीन हिन्दी का वह शैशवकाल था। संस्कृत की पूर्ण प्रतिच्छाया को ग्रहण करते हुए भी उस का स्वरूप धूमिल ही था, जिसका आभास हमें अध्ययन करते ही हो जाता है। इतना होने पर भी हिन्दी ने अपने नवजीवन में भी भारतर्ष की मुगलकालीन विचारधारा को, जनता के आचारों को सुपरिवर्तित करने का जो लोकोत्तर कार्य किया, उसकी मनोहर झांकी हमें रामचरितमानस, सूरसागर, कबीर के दोहे और कई अन्य कवियों और साहित्यिकों की रचनाओं में प्रत्यक्ष दीखती है। आज के युग का भारतवासी भी इन लोकप्रिय ग्रन्थों को, हिन्दू साहित्य, हिन्दू धर्म और हिन्दू सभ्यता संस्कृति का सर्व प्रथम तथा विशिष्ट-समन्वय जान कर पूजता है।

अतः जिस हिन्दी भाषा ने गतप्राया गीर्वाणी की महत्कार्यपरम्परा को सजीव रखने का उत्तरदायित्व ग्रहण किया और जिस हिन्दी भाषा ने आज तक उस उत्तरदायित्व को यथाशक्ति पूर्ण किया है, उस के विकास के साधनों की यथेष्ट चेष्टा करना हमारा प्रमुख कर्तव्य है, क्योंकि हम ने यह निश्चय किया है, किसी भी देश की राष्ट्रभाषा का सुसंस्करण तथा विकास उस देश की सर्वांगीण उन्नति का सर्वप्रथम सोपान है।

आज तक आंग्लभाषा के द्वारा हम लोग किसी सीमा तक सन्तोष का अनुभव कर पाये, क्योंकि और कोई मार्ग नहीं था। शिक्षा की वर्णमाला ही आंग्लभाषा थी। अपने भावों में स्पष्ट होने के कारण उस का महत्व भी पर्याप्ततः उन्नत मस्तक था और हमारी वैज्ञानिक-पारिभाषिक-समस्यायों का भी परिहार हो गया था। परन्तु राष्ट्र का भाग्योदय होते ही हमें अपनी भाषा पर ही अवलम्बित होना चाहिए यह हमने निश्चय किया। परिणामतः हम लोग अपनी वर्तमान प्रगति से प्रशंसनीय सफलता प्राप्त कर चुके हैं। हिन्दी का स्तर दिन-प्रतिदिन हमारे राष्ट्र का नवनिर्माण करता

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

प्राणायाम, आसन

स्वामी कृष्णानन्द

आसनों तथा षट् क्रियाओं का विधान हठ योग सम्बन्धी ग्रन्थों में किया गया है। इन का उद्देश्य आध्यात्मिक होता है, केवल शरीर की नीरोगता के सम्बन्ध में चमत्कारी प्रभाव के कारण ही इन का उल्लेख नहीं है। यद्यपि दु:साध्य रोगों का निवारण भी इन से हो सकता है, परन्तु आजकल केवल इन की शारीरिक उपयोगिता की दृष्टि से अनेक ग्रन्थ यौगिक चिकित्सा पर लिखे गए हैं, जिन में आसनों आदि का सविस्तार निरूपण होता है। ऐसे कई योग आश्रमों की स्थापना हुई है, जिन में विशेषतया केवल शारीरिक उपयोगिता की दृष्टि से इन की ही शिक्षा होती है। इस से सामान्य जनता को यह भ्रान्ति होती है कि यह आसनादि ही योग हैं, और इन का लक्ष्य केवल शारीरिक नीरोगता आदि ऐहिक लाभ हैं। यह बात भी सत्य है कि इन आसनादिकों में ये सब ऐहिक लाभ, शारीरिक नीरोगता आदि प्राप्त करने के गुण हैं; और जिन की दृष्टि केवल ऐहिक लाभ पर है, वे भी इन की ओर इसी लिए आकृष्ट होते हैं। शारीरिक नीरोगिता की आध्यात्मिक मार्ग में गौण रूप से उपयोगिता भी है, क्योंकि शारीरिक नीरोगता उपयुक्त सामर्थ्य के बिना कोई पुण्य–पापरूपी काम नहीं हो सकते। 'शरीर माद्यं खलु धर्म साधनम्' निश्चित् रूप से शरीर धर्म का सर्व प्रथम साधन है, परन्तु यह दृष्टिकोण ठीक नहीं है, क्योंकि हठ योगादि ग्रन्थ भी अध्यात्म विद्या का निरूपण करते हैं, ये वैदिक ग्रन्थ नहीं हैं, परन्तु इन में भी इन क्रियाओं का उल्लेख मुख्यतया आध्यात्मिक प्रभाव की दृष्टि से किया गया है। हठ योग प्रदीपिका में सिद्धासन का लाभ इस प्रकार वर्णित है:—

> चतुर शीति पीठेषु सिद्धमेव सदाभ्यसेत्।
> द्वासप्तति सहस्राणां नाडीनां मल-
> शोधनम् ॥ १७–३६ ॥

जा रहा है। हिन्दी दिनप्रतिदिन मातृस्नेह के अमर-वरदान को प्राप्त कर मातृस्वरूप (संस्कृत स्वरूपा) के सौभाग्य को अलंकृत करने जा रही है। इस में आश्चर्य ही क्या, यदि आज की हिन्दी, कालक्रमानुसार संस्कृत के निकट होते-होते, संस्कृत ही हो जाय। रामचरितमानस-कालीन हिन्दी के स्वरूप का केवल तीन ही शताब्दियों में क्या ही सुन्दर विकास हुआ है, जिस से प्रत्यक्ष होता है कि हिन्दी दिन-प्रतिदिन मातृत्व की संप्राप्ति कर रही है।

★

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

आत्मध्यायी मिताहारी यावद् द्वादश वत्सरम्।
सदा सिद्धासनाभ्यासाद्योगी निष्पत्तिमाप्नुयात्
॥ ३७–४० ॥

उत्पद्यते निरायासात्स्वयमेवोन्मनी कला।
तथैकस्मिन्नेव दृढे बद्धे सिद्धासने सति ॥ ४१
बन्धत्रयमनायासात्स्वयमेवोपजायते ॥ ४२

अर्थात् बहत्तर हज़ार नाड़ियों, जिन का वर्णन प्रश्नोपनिषद् (३, ६) तथा कठोपनिषद् (६, १६) में पाया जाता है, के मल को शोधन करना तथा बारह वर्ष तक इस आसन का अन्य अंगों सहित अनुष्ठान करने से उन्मनी समाधि की अवस्था की सिद्धि आदि आध्यात्मिकलाभों का यह उल्लेख है। इन आसनों का मुख्य प्रयोजन यह आध्यात्मिक लाभ ही है। इसी प्रकार षट् क्रिया आदि का उपयोग भी इसी दृष्टि से किया गया है। (हठयोग प्रदीपिका २–४)। इस का तात्पर्य यह है कि षट् क्रिया आदि का निरूपण केवल शारीरिक आरोग्य के सम्पादन के लिए नहीं है। शारीरिक नीरोगता तो गौण है और उन्मनी अवस्था की प्राप्ति, मध्य मार्ग-प्रवेश तथा कुण्डलनी के जागरण में सहायक होना इन सब साधनों के मुख्योद्देश्य हैं, जो कि अध्यात्म दृष्टिकोण है।

निपुण अनुभवी आचार्य की आवश्यकता

उपर्युक्त षट् क्रिया आदि का यहां पर विस्तार से निरूपण करना अभीष्ट नहीं है। विस्तृत निरूपण के पश्चात् भी इस के अनुष्ठान के लिए किसी जानकार की सहायता की आवश्यकता रहती है। केवल किसी ग्रन्थ के वर्णन के आधार पर इन आसन, षट्क्रिया प्राणायाम आदि को कोई विधि के अनुसार नहीं कर सकता। ऐसा करने पर भयानक प्राणनाशक रोग उत्पन्न हो सकते हैं। अतः बिना किसी दक्ष, निपुण गुरु के इस मार्ग में प्रवेश नहीं करना चाहिए। अन्यथा—'पीछे पछताए क्या होत जब चिड़ियां चुग गयीं खेत' वाली उक्ति चरितार्थ होगी। कहा भी है—

प्राणायामेन युक्तेन सर्व रोग क्षयोभवेत्।
अयुक्ताभ्यास योगेन सर्वरोगसमुद्भवः॥
हठ योग प्रदीपिका २–१६

भली प्रकार किए गए प्राणायाम आदि साधनों से सब रोगों का नाश होता है और अयुक्त ढंग से किए गए योग के अभ्यास सब रोगों को उत्पन्न करते हैं।

इन साधनों की उपयोगिता और मर्यादा

यहां पर हमारा उद्देश्य इन साधनों की मर्यादा, अवधि तथा उपयोगिता पर विचार करना है; क्योंकि उचित मर्यादा ही सर्वत्र दुर्लभ है। एक वर्ग ऐसा दीखता है, जो इन क्रियाओं को ही और इन के शारीरिक लाभ को ही योग मान कर अपनी सम्पूर्ण आयु इन्हीं के अभ्यास में खपा देता है और परम

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

लक्ष्य से कोरा रह जाता है। दूसरा वर्ग वह है जो इन साधनों को योग सिद्धि के लिए परमोपयोगी तथा अनिवार्य मानता है। वह यम नियमादि द्वारा भीतरी शुद्धि को भी इन साधनों की अपेक्षा उतना महत्व नहीं देता। इस प्रकार इन साधनों का अति प्रयोग हो जाता है। और काल, अवस्था आदि के विचार के बिना इन को अनिवार्य मान लिया जाता है। इन को अध्यात्म योग साधना का सर्वस्व मान लेना भूल है, क्योंकि इन की अपेक्षा सात्त्विक मिताहार मात्र से भी दीर्घ काल तक रहने से वही फल सिद्ध हो जाता है, जो इन साधनों से होता है।

> प्राणायामैरेव सर्वे प्रशुष्यन्ति मला इति।
> आचार्याणां तु केषां चिदन्यत् कर्म न सम्मम्॥ हठ० प्रदी० ३, ३६

षट् कर्म के बिना केवल प्राणायाम ही से मल—स्थूलता, वात, कफ आदि सम्पूर्णतया शुष्क हो जाते हैं। इस लिए याज्ञवल्क्य आदि कई आचार्यों को अन्य—अर्थात् षट् कर्म तदर्थ अभिमत नहीं हैं, परन्तु जहां इन का अति उपयोग, दुरुपयोग अथवा अनुचित महत्व भ्रान्तियुक्त होने से हानिप्रद है, वहां हठ यौगिक आसन तथा षट् क्रियादि का नितान्त तिरस्कार भी युक्ति युक्त नहीं है। इन का उचित उपयोग किसी दक्ष की देख रेख में इन के शारीरिक तथा मानसिक प्रभाव के कारण, लाभदायक ही है। हां! केवल इन क्रियाओं को योग समझ लेना भूल है। दोनों वर्गों को मध्य मार्ग ग्रहण कर के स्वयं उचित लाभ उठाना श्रेयस्कर है तथा अनुचित धारणा अनुष्ठान तथा वचन द्वारा दूसरों को पथ-भ्रष्ट करने के पाप का भागी नहीं बनना चाहिए।

योग के भेद

पातञ्जल योग, मन्त्र योग, हठ योग, कुण्डलिनी योग, भक्ति योग आदि के अनेक भेद हैं। इन सब का विस्तार यहां अनावश्यक है, यहां तो केवल ब्रह्म-विद्या के प्रधान अंग के रूप से योग के उचित महत्व, उस के शुद्ध स्वरूप, अन्य अंगों के साथ इस का सम्बन्ध तथा योग के विघ्न-विषयक विवेचन ही अभिप्रेत है, जिस से साधक केवल योग के अवलम्बन से अथवा योग को नितान्त त्याग कर के चिरकाल तक प्रयत्न करने पर भी विफल मनोरथ न हो जावे अथवा लक्ष्य की भली प्रकार पहिचान न होने से बीच में ही अपने आप को कृत कृत्य मान कर प्रयत्न न त्याग दें।

इन सब योगों का अनुष्ठान केवल शास्त्र के सहारे, बिना किसी निपुण, परहित परायण, अनुभवी महात्मा के नहीं हो सकता, नहीं तो अनेक प्रकार के विघ्न तथा भयानक रोग होने का दुर्निवार्य भय है, इस भूल से बहुत सचेत रहना तथा इस चेतावनी को सदा स्मरण रखना चाहिए। इस कारण

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

अतीतोद्धार

आचार्य विद्यानन्द विदेह

नहि ष्म यद्ध वः पुरा स्तोमेभिर्वृक्तबर्हिषः ।
शर्धां ऋतस्य जिन्वथ ॥ ऋ० ८७२१ ॥

बन कर बिगड़ने वालों के हृदय की पीड़ा बड़ी गहन होती है । गौरवगरिमा शिखर पर आरूढ़ जाति जब पतन के गर्त में गिर जाती है तब उस जाति के नागरिकों के हृदय भग्न हो जाते हैं, टुकड़े टुकड़े हो जाते हैं । उनकी उद्विग्नता का अनुभव जीवनवान् व्यक्ति ही कर सकते हैं ।

हमारा अतीत जितना उदात्त और गौरव-था उतना ही मानवलोपेत और मंगलकारी था। परन्तु अपने अतीत को याद कर के अपने हृदय को दुखाने और आंसू बहाने से कोई लाभ न होगा । जीवित और पराक्रमी जातियां जब इतिहास के यत्र तत्र बिखरे हुए पृष्ठों में अपने उज्ज्वल अतीत की झांकी करती हैं तो उन के भग्न हृदयों में अपने अतीत को पुनः वापिस लौटा लाने की अदम्य प्रेरणा और प्रफुल्लतामय चेतना का सञ्चार होता है और वे प्राणप्रण से अपने अतीत को वर्तमान में लाने की साधना में जुट कर अपनी साध को सिद्ध कर दिखाती हैं ।

पुनरुद्धार और पुनरुत्थान का प्रथम उपाय है स्तोम । स्तोम का अर्थ है स्तोत्र, प्रशंसा, महिमागान । महिमागान की महिमा महान् है । आर्यावर्त का अभी तक भी कोई प्रामाणिक, शृंखलाबद्ध और ओजपूर्ण इतिहास नहीं है । स्वतन्त्र हो कर भी अभी हमारा स्वतन्त्रजात्युचित गाथाग्रन्थ नहीं है । विदेशियों ने जिस दृष्टिकोण से हमारा जातीय इतिहास लिखा, इस देश के तथाकथित इतिहासकारों ने भी उसी दृष्टिकोण को अपनाकर इस राष्ट्र के शिक्षित नागरिकों में एक भयंकर मतिविभ्रम और आत्महेयता उत्पन्न कर दी है, जिस के निराकरण का एक मात्र उपाय एक सच्चे और प्रामाणिक इतिहास का संसृजन ही हो सकता है । इतिहास की रचना में दृष्टिकोण का एक बड़ा ही महत्व-पूर्ण स्थान है । हमारे देश का सर्वतः उपादेय और स्तुतिमय तथ्यपूर्ण इतिहास केवल महर्षि दयानन्द के दृष्टिकोण से लिखा जा सकता है । अतः यह महत्वपूर्ण कार्य आर्य विद्वानों द्वारा ही सम्पादन किया जाना चाहिए ।

से भी इन के विस्तार को अनुपयोगी समझ कर ऐसा नहीं किया गया और इन के अनन्त विस्तार तथा अनुष्ठान का ब्रह्म-विद्या में विशेष उपयोग भी नहीं है । यहां तो योग का उपयोग केवल चित्त के सूक्ष्म, दिव्य-, तथा समाहित करने में हैं, जिस से सूक्ष्मतम् ब्रह्म तत्त्व की अनुभूति हो सके । योग के अनन्त अनुष्ठानों से प्राप्त होने वाले आकर्षक अतः बाधा रूप अवान्तार फलों से कुछ प्रयोजन नहीं ।

★

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

यह परम आवश्यक है कि उच्च कोटि के कुछ विद्वान् संगठित हो कर एक स्थान पर बैठ जायें और आर्यावर्त का एक ओजपूर्ण गौरवमय इतिहास शीघ्रातिशीघ्र तैयार करने में जुट जायें। इस इतिहास में ऐतिहासिक विवरणों और तथ्यों के अतिरिक्त आर्यों की रीति नीतियों तथा उन के विचार, व्यव आदश औ आचारों पर भी पूर्ण प्रकाश डाला जाये। उस में आर्यों के व्यक्तिगत चरित्र और जातीय चरित्र का भी विशद चित्रण किया जाये। प्रत्यक्षत:, जातियों के उत्थान पतन में उन के चरित्र और चरित आधारस्तम्भ अथवा मूलाधार होते हैं। साथ ही वे विद्वान् एक जातीय गाथाग्रन्थ का भी निर्माण करें, जिस में हमारे पूर्व पुरुषाओं, ऋषियों, मुनियों, शूरों, विद्वानों, महिलाओं के चारु जीवनवृत्तों का कवितामय वर्णन हो। राष्ट्रकवियों की लेखनिया उठें और राष्ट्र में नवोत्साह तथा महत्वाकांक्षा का एक महासागर उद्वेलित और हिलोरित कर दें।

तब ही हमें सदाचार के उन संबलों का ज्ञान और व्यवस्था के उन सुदृढ़ आधारों का भान होगा, जिन पर सुस्थित हो कर हमारे पूर्व पुरुषाओं ने हमारे अतीत को इतना समुज्ज्वल और देदीप्यमान बनाया था। वैदिक धर्म के विद्वान् प्रचारक इस दिशा में बहुत कार्य कर सकते हैं। उन्हें ऐसे भाषण और उपदेश देने चाहियें जिन से जनता के जातीय चरित्र और राष्ट्रीय चरित का निर्माण हो। आवश्यकता इतिहास के मनघड़न्त गपोड़ों की नहीं, गवेषणापूर्ण ऐतिहासिक तथ्यों के सुनाये जाने की है। आवश्यकता वेदों की दुहाई देने की नहीं, वेदमन्त्रों पर ठोस और रचनात्मक उपदेशों के किये जाने की है। ऐसा करने से ही आर्य नागरिकों में वह स्फूर्ति अनुप्रेरित होगी, जिस से वे अपने अतीत को वर्तमान में प्रस्थापित कर सकेंगे। कार्य आलोचना से नहीं, प्रेरणाप्रद प्रोत्साहनों से होगा। प्रशस्ति उत्थान की पुरोगवी है।

विद्वानों और कवियों के लिए यहां एक अति महत्कार्य है। परन्तु क्या वे इस परम आवश्यक और महत्वपूर्ण कार्य को करने के लिये अग्रसर होंगे ?

(वृक्तबर्हिष:) भग्न-हृदयो ! (यत् ह) क्योंकि (व:) तुम्हारा (पुरा) पुरातन, अतीत (नहि स्म) नहीं रहा। अत: (स्तोमेभि:) स्तोत्रों द्वारा (ऋतस्य) सदाचार के (शर्धान्) बलों को (जिन्वथ) प्रेरो, बढ़ाओ।

★

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

भारत का शिक्षा-तीर्थ

श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति

गुरुकुल के लिए पहले-पहल आन्दोलन सन् १८९७ में प्रारम्भ हुआ, उन दिनों महात्मा मुंशीराम जी जालन्धर से सद्धर्म प्रचारक प्रकाशित करते थे। सद्धर्म प्रचारक में इस के लिये प्रबल आन्दोलन किया गया। नवम्बर १८९८ के आर्य प्रतिनिधि सभा के साधारण अधिवेशन में गुरुकुल खोलने का प्रस्ताव उपस्थित किया गया। यह प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

गुरुकुल खोलने का प्रस्ताव स्वीकृत हो गया, पर धन के बिना गुरुकुल खुलना संभव कैसे था। धन एकत्रित करने का कार्य महात्मा मुंशीराम जी ने अपने ऊपर लिया। उन्होंने प्रतिज्ञा की कि जब तक ३० हजार रुपया नहीं कर लेंगे अपने घर में पैर नहीं रखेंगे। आठ महीने घूमने के बाद ३० हजार रुपये एकत्रित करने में सफल हो गये।

गुरुकुल का स्थान

अब प्रश्न यह था कि गुरुकुल कहां खुले, इस सम्बन्ध में अनेक विचार थे। महात्मा मुंशीराम जी गुरुकुल को गंगा तट पर स्थापित करना चाहते थे उनकी दृष्टि रह-रह कर हिमाचल के दामन में गंगा के तट पर जाती थी। महात्मा जी कई बार यहां गये और निराश लौटे। आर्य प्रतिनिधि सभा के कुछ सदस्य पञ्जाब से बाहर आने को उद्यत न थे। अन्त में यह समस्या हल हो गई। गंगा तट पर एक उपयुक्त स्थान गुरुकुल के लिए प्राप्त हो गया।

नजीबाबाद, जिला बिजनौर निवासी मुंशी अमनसिंह जी ने अपना कांगड़ी ग्राम जो हरिद्वार के सामने गंगा के पूर्वीय तट पर स्थित था, गुरुकुल के लिये प्रदान कर दिया। मुंशी जी बड़े त्यागी, धर्मप्राण और सत्यनिष्ठ रईस थे। उनकी कुल सम्पत्ति कांगड़ी ग्राम थी। इस ग्राम के साथ १९०० बीघा भूमि थी।

गुरुकुल की स्थापना

गुरुकुल की स्थापना १९०० ईस्वी में हुई थी। यह प्रारम्भ में पञ्जाब के गुजरांवाला नामक नगर में स्थापित हुआ। वहां से दूसरे वर्ष ही उसे हरिद्वार के समीप गंगा के दूसरे पार कांगड़ी ग्राम की भूमि में लाया गया। जहां वह गुरुकुल कांगड़ी के नाम से प्रसिद्ध हुआ। गुजरांवाला से लाकर जो पौदा गंगा के उजाड़ तट पर लगाया गया, वह शीघ्र ही अंकुरित और पल्लवित होकर महान् वृक्ष के रूप में परिणत हो गया। १२ वर्ष व्यतीत हो जाने पर उस पर फल भी लगने लगे। अब तक इस विद्या तीर्थ से ५१७ स्नातक निकल चुके हैं।

१९२४ में अतिवृष्टि के कारण देश भर में बाढ़ें आईं जिस में धन जन का अपरिमित नाश हुआ। गुरुकुल पर भी बाढ़ का बुरा

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

प्रभाव पड़ा। उसकी बहुत-सी इमारतें जलमग्न हो कर नष्ट हो गईं। तब गुरुकुल की संचालिका आर्य प्रतिनिधि सभा पञ्जाब ने निश्चय किया कि गुरुकुल कांगड़ी की नई इमारतें गंगा के पश्चिमी किनारे पर बना ली जांय जिससे वह जल के उत्पात से बची रहें। तदनुसार गुरुकुल की सारी इमारतों को दूसरी बार उस भूमि पर निर्माण किया गया जहां वह इस समय विद्यमान है। यह भूमि हरिद्वार से लगभग ३ मील दूर गंगा के नहर के किनारे एक हरे भरे सुन्दर प्रदेश में होने के कारण विश्वविद्यालय के सर्वथा योग्य है। उस भूमि पर खड़े हो कर हम उत्तर में उत्तुंग शिखाओं को देख सकते हैं तो पूर्व और पश्चिम से आते हुये गंगाजल के सम्पर्क से शीतल वायु का भी अनुभव कर सकते हैं।

गुरुकुल प्राकृतिक सौंदर्य की गोद में पला हुआ है। एक ओर हिमाद्री अपना शुभ्र धवल अविजेय पुण्य भाल उठाये खड़ा है दूसरी ओर पुण्य सलिला भगवती भागीरथी कल-कल करती जा रही है। समस्त आश्रम फल फूलों व तरु-लता पल्लवों से सुशोभित है। ऐसी उत्कृष्ट परिस्थिति में सदाचारी गुरुओं का सहवास, उत्तम भोजन, व्यायाम तथा धार्मिक शिक्षा सोने में सुहागे का काम करते हैं। घी, दूध, फलादि सात्विक पदार्थ मुख्य भोजन हैं। गुरुकुल की प्रत्येक कर्मचारी खेल में भाग लेता है जिस से उस में खिलाड़ी की सच्ची भावना का विकास होता है। व्यायाम, कुश्ती आदि के अतिरिक्त गर्मियों में ब्रह्मचारी तैरने का भी अभ्यास करते हैं जो कि एक अत्यन्त उपयोगी कला है।

जिस समय गुरुकुल की स्थापना हुई है उस समय उसे एक स्वप्न समझा जा सकता था। उस समय भारतवर्ष पर अंग्रेजी राज्य पूरे दल-बल के साथ छाया हुआ था। अंग्रेजी भाषा, अंग्रेजी साहित्य, योरोपियन रहन सहन और सरकारी नौकरी की भावना का एकछत्र शासन था। उस समय संस्कृत भाषा, प्राचीन भारतीय साहित्य, मातृभाषा द्वारा शिक्षण और सादे रहन सहन को पागल की बात समझा जाता था। अब गुरुकुल के संस्थापक महात्मा मुंशीराम जी ने देश के कोने २ में घूम कर गुरुकुल का प्रचार किया तो दूरदर्शी सांसारिक लोग सिर हिला कर यही कहते थे कि 'था तो भला आदमी, पर उसे एक सनकका शिकार होगया।'

गुरुकुल की सेवाएं

भारतवर्ष के सांस्कृतिक नवजागरण में गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी अपनी अमूल्य सेवाएं देता रहा है। इस विद्यातीर्थ से प्रतिवर्ष ऐसे तरुण विचारक और ज्ञानयात्री बाहर निकलते हैं जो राष्ट्र के चरित्र और इतिहास के निर्माण में अपनी विशेष देन दे सकते हैं यदि उनको अपनी शक्तियों की अभिव्यक्ति के लिये अनुकूल अवस्थायें, अवसर और उचित प्रोत्साहन प्रदान किया जाय। गुरुकुल श्रद्धानन्द जी के इस शिक्षा-तपोवन और संस्कृति तीर्थ की तुलना पश्चिमी देशों के उन आश्रमिक पब्लिक स्कूल्स तथा विश्वविद्यालयों से सहज में ही की जा सकती है जो समसामयिक मानव

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

समाज की विचार, संस्कृति और चरित्र संघटनों में अपना महत्वपूर्ण भाग प्रदान करते हैं।

गुरुकुल कांगड़ी अपने ढंग का एक अनूठा राष्ट्रीय शिक्षणालय है जिसकी योजना और स्थापना शिक्षा के भारतीय आदर्शों के अनुसार की गई है। और जो भारत भूमि की विशेष सांस्कृतिक समस्याओं के सुलझाने में आधी शतीसे लगा हुआ है। भारतीय मस्तिष्क ने शिक्षा के विषय में जो मौलिक चिन्तन और संयोजन किया है उसे गुरुकुल ने कार्य रूप में परिणत करके सफलता तक पहुंचा दिया है। इस दृष्टि से यह राष्ट्रीय शिक्षा-प्रतिष्ठान आधुनिक भारत के लिये आशा और गौरव का विषय है।

गुरुकुल शिक्षाप्रणाली तथा वर्धा शिक्षा पद्धति में भेद

आज कल लोग गुरुकुल शिक्षा प्रणाली तथा वर्धा शिक्षापद्धति की विभिन्नता को नहीं समझते। यह उनका भ्रम है। हमारे स्वतन्त्र देश के भावी विकास के लिये गुरुकुल शिक्षा-प्रणाली ही लाभदायक सिद्ध हो सकती है। महात्मा गांधी ने अन्य शिक्षाशास्त्रियों की सहायता से वर्धाशिक्षापद्धति का निर्माण किया है। इसका उद्देश्य उद्योग धन्धों के द्वारा बालकों को प्राथमिक शिक्षा देना है। जिसका परिणाम यह होगा कि शिक्षार्थी क्रियात्मक शिक्षा प्राप्त कर लेने के कारण देश की वर्तमान गरीबी और खौफनाक आर्थिक संकट का मुकाबला करने में समर्थ हो सकेगा। सन्देह नहीं कि इस शिक्षा पद्धति की योजना देश और जाति की मौजूदा जरूरियात को ध्यान में रखकर हुई है। नहीं कहा जा सकता कि यह डॉक्टर्स डोज की तरह घरेलू उद्योग धन्धशाला के रूप में सफलता प्राप्त करेगी या एक स्वतन्त्र शिक्षा-पद्धति के रूप में।

गुरुकुल प्रणाली के पोषकों का कहना है कि क्या प्राथमिक शिक्षा का उद्देश्य बालक की उत्पादन शक्ति, क्रियात्मक व रचनात्मक शक्ति को प्रेरित करना मुख्यतया कहा जा सकता है अथवा बालक की बौद्धिक, मानसिक तथा हस्तपादादि संचालित ऐन्द्रियिक, रचनात्मक शक्ति को जागृत कर देना मात्र है। इन दोनों पद्धतियों की समानता तथा विभेद प्रकट हो हो जायगा। पहिले में कहा तो यही जाता है कि उद्योग धन्धों द्वारा बालक को शिक्षित करना है अर्थात् इसके हाथ पांव और आंख कान का रचनात्मक उपयोग लेते हुए उसके बौद्धिक केन्द्रों को प्रेरित अतएव शिक्षित करना है। परन्तु लेखक का विचार है कि वर्धा पद्धति का ध्येय स्वयं शिक्षाशास्त्र का ध्येय नहीं क्योंकि वर्धा पद्धति स्वयमेव जिस मूल-तत्व अर्थात् उद्योग धन्धों द्वारा बालक को रचनात्मक शिक्षण देने की प्रतिष्ठा करती है परिणाम में वही मूलतत्व शिक्षा को केवल मात्र स्वावलम्बन का हेतु बनाकर यान्त्रिक कठोरता और कला के ढांचे में जकड़ लेता है। इसका स्वाभाविक परिणाम यह होगा कि शिक्षा का साध्य और साधन अभिन्न होकर मानव का चौमुखी विकास की जगह स्वावलम्बन व उपजाऊ होना ही रह जायगा। गुरुकुल प्रणाली में गुरु-गुरु की परम्परा संस्कृति

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

धर्म सभ्यता आदि केन्द्र है। समय की आवश्यकतानुसार मानव का दैशिक व जातीय शरीर में सदुपयोग इसकी प्रक्रिया है शैली है। अतः इसमें शिक्षा का यान्त्रिक उपयोग होने की कदापि सम्भावना नहीं हो सकती।

किंवा शिक्षा का ध्येय दाल भात की समस्या को सुलझाना नहीं। चूंकि शिक्षा से प्रायः यह समस्या हल हो जाती है। इसलिये शिक्षा की व्यावहारिक उपादेयता बढ़ जाती है। आजकल की शिक्षा से तो यह समस्या भी हल नहीं होती इसलिये यह शिक्षा का आनुषंगिक प्रयोजन हुआ। मुख्य प्रयोजन तो फिर भी यही कहा जावेगा कि शिक्षा मनुष्य को मननशील बनावे, सभ्य बनावे, सुनागरिक बनावे, धार्मिक बनावे, कर्तव्य पालन का अभ्यासी और संयमी बनावे और देश जाति की सामयिक मांग का पूरा करने के योग्य भी बनावे। इस दृष्टिकोण से यदि हम इस विषय पर विचार करते हैं तो गुरुकुल शिक्षा प्रणाली में न केवल प्राच्य और प्रतीच्य शिक्षा के नाना उपयोगी तत्वों को समाविष्ट होता देखते हैं अपितु भारत में प्रचलित शिक्षा पद्धतियों की उपयोगिता तथा अच्छाइयों को सजीव और उदार भावना से ग्रहण करने में तत्पर हुआ देखते हैं। गुरुकुल पद्धति के मूलतत्व, जो कि बहुत सुन्दर हैं और उपादेय हैं, अपने आप में आधुनिक शिक्षा शास्त्र की विशेषता हैं। गुरु शिष्य का। पिता पुत्र की तरह का आश्रमवास, विद्यार्थियों में समानता का व्यवहार, आश्रम के सब सम्बन्धों में पवित्र भावना, श्रम तपस्या, ब्रह्मचर्य, स्वाध्याय तथा नैत्यिक अनुष्ठान शिक्षा को कितना दिव्य बना सकते हैं यह कल्पना की बात नहीं परन्तु क्रियात्मक तौर पर अनुभव करने का विषय है। शिक्षा विज्ञ कहता है कि मैं शिक्षा से बालक की नाना प्रसुप्त शक्तियों को जागृत कर दूंगा विस्तृत कर दूंगा। ठीक है उसकी धारणा। लेखक पूछता है कि क्या गुरुकुल से सुन्दर वातावरण इस से अच्छी प्रयोगशाला उसे कहीं प्राप्त हो सकती है जहां जाकर वह प्रयोग करे, सिखाये और सीखे जंगल में, एकान्त में, गांव में, शहर के पड़ौस में जहां चाहे वहां जीवित जागृत पिंडों में शिक्षा की रूह फूक सकता है जिस से कि उस के बनाये पिण्ड चलते फिरते, खेलते पढ़ते, गाते, ज्ञानामृत पीते और पिलाते, नव-नव रचना और क्रियात्मक शक्ति का उपयोग करने वाले मानव बन सकें। गुरुकुल कांगड़ी इन्हीं भावनाओं को धर्म देश तथा समाज, विश्व के मानव के के नाते तथा शक्ति पूरा करने में लगा हुआ है और यही इस का उद्देश्य है यही इसकी जान है, इसका सर्वस्व है।

★

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

सिक्किम के सघन वन में

श्री मनोहर विद्यालंकार

क्या कभी जीवन में हिमालय के दर्शन का अवसर मिला है ? नहीं ! तो वह अभागा है।

यदि हिमालय के दर्शन का सौभाग्य एक वार भी प्राप्त किया है तो क्या पुनः उस के दर्शन की उत्कण्ठा मन में नहीं हुई। यदि सचमुच ही नहीं हुई तो समझना चाहिए कि उस मनुष्य की रस-बोध की वृत्ति समाप्त हो गई। प्रकृति में कितना रस है इस का सम्यक् ज्ञान हिमालय के अंक को छोड़ कर और कहां हो सकता है। हिमालय तो रसों का जन्मदाता है—कितने सरस-सलिल स्रोत और स्रोतस्विनियां उसके अंक में क्रीड़ा करती हैं !

जब भी कभी हिमालय के दर्शन का अवसर मिला है तभी उस की कुछ ऐसी मोहिनी शक्ति का जादू मेरे ऊपर छा गया है कि पुनः पुनः उस के दर्शन की अभिलाषा मन में जाग उठती है। सोते-जागते, उठते-बैठते उसी के वन, पर्वत, नदी और नाले दिमाग में चक्कर काटते रहते हैं।

इस वार जब कांचन श्रृंग-श्रृंखला स्थित पण्डिम हिल के अभियान की पत्रों में चर्चा चली तो फिर प्रसुप्त उमंग जाग उठी और न जाने किस अदृश्य शक्ति से खिंचा हुआ मैं अभियान दल में सम्मिलित हो गया। शायद यह मेरे उत्साह का ही परिणाम था कि धीरे धीरे समस्त दल का नेतृत्व भी मेरे कन्धों पर आ पड़ा।

★ ★ ★

गत ६ सितम्बर को मैं अन्य तीन साथियों के साथ दार्जिलिंग पहुंच गया। वहां पहुंच कर दो-तीन दिन कुलियों का प्रबन्ध करने में तथा अन्य व्यवस्था करने में लग गये।

१२ सितम्बर की दुपहर को हम दार्जिलिंग से चल पड़े। न्यीमा नामक सरदार और पथ-

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

प्रदर्शक के आधीन हमारे साथ ६ कुली चले।

उसी दिन शाम को हम ७ बजे सिंगला बाजार पहुंच गये। कहां दार्जिलिंग की ऊंचाई थी ७००० फीट और कहां सिंगला बाजार की ऊंचाई रह गई केवल १२०० फीट। १० मील के अन्दर लगभग ६००० फीट का उतार जो पार करना पड़ा तो परेशान हो गये। तिस पर यह पहला दिन था।

भारतीय सीमा के पार

१३ सितम्बर को सवेरे जब हम सिंगला से चले तो रामंग नदी के पुल के इस पार भारतीय सीमा समाप्त हो गई। पुल के उस पार सिक्किम है। दोनों ओर पुलिस की चौकियां पड़ी हुई हैं। चौकियां पार करने के १॥ मील बाद ही नया बाजार आ गया। बीच में एक रास्ता नामची की ओर जाता था।

नया बाजार में हमारे कुछ मित्रों ने आतिथ्य के अतिरिक्त राशन आदि जुटाने की अन्य व्यवस्था में हमें अच्छा सहयोग दिया। यात्रा की अवधि का अनुमान लगा कर हम ने अनावश्यक चीजें यहीं छोड़ दीं। रामंग और रिंगित के संगम पर बने पुल के पार एक सड़क कलिम्पोंग जाती है और सिक्किम का अधिकांश व्यापार इसी रास्ते से होता है। नया बाजार इस मार्ग में भारत और सिक्किम के मध्य प्रमुख व्यापारी केन्द्र है। मध्यान्ह को हम यहां से आगे बढ़े।

अब सिक्किम का वास्तविक जंगल शुरू होता है। खूब हरा-भरा और सघन। वनस्पति-विज्ञों की दृष्टि से सिक्किम के जंगल का बड़ा महत्व है। जितनी तरह के वृक्ष और वनस्पतियां यहां मिलती हैं उतनी अन्यत्र दुर्लभ हैं। सिम्बल, सुहांजना, साल, दबदबा, आंवला, अर्जुन, कचनार के पेड़, दूधी और बड़ी कटहरी
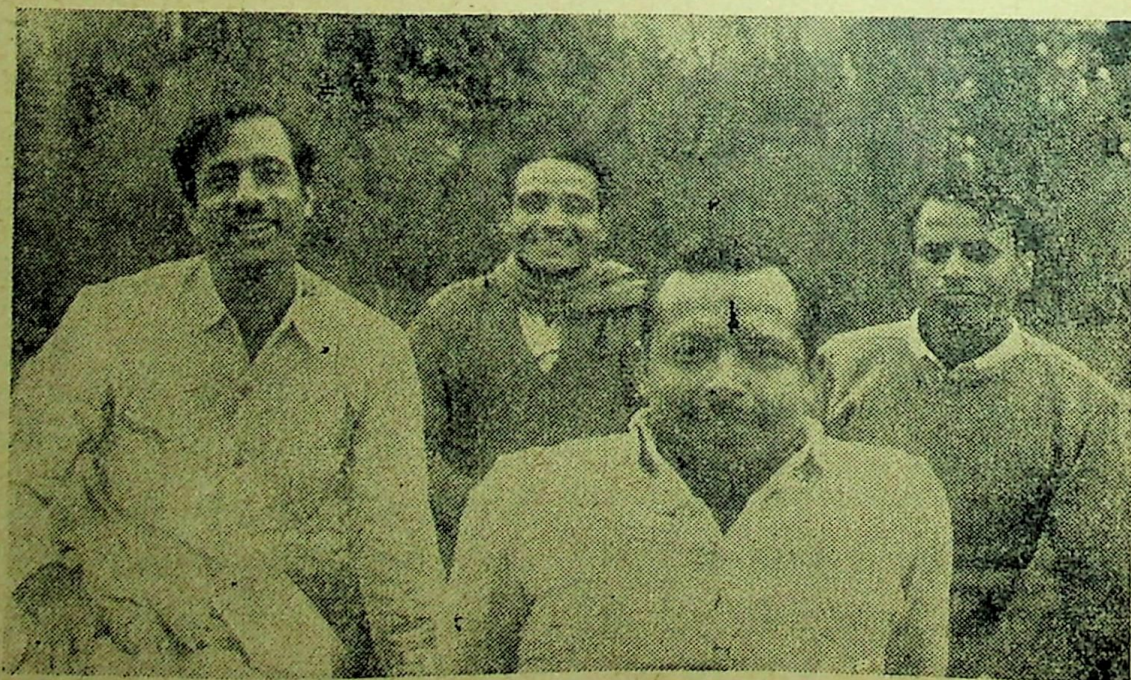
विद्यारत्न आयुर्वेदालंकार, जगदीशनारायण अग्निहोत्री, लेखक और क्षितिश विद्यालंकार

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

की झाड़ियां तथा रत्ती और माल-झड़ की लतायें पहचानी गईं। हमारी वनस्पति-विज्ञता इस से अधिक हमारा साथ नहीं दे सकी। बस्तियों के आस-पास नारंगी, केला, आडू, बड़ और पीपल भी दृष्टिगोचर हुए।

रिंगित के किनारे

रास्ता रिंगित के किनारे किनारे चलता है। न विशेष चढ़ाई है, न उतराई। परन्तु तलहटी में जंगल होने के कारण गर्मी काफी थी। नदी की कलकल ध्वनि कानों को और जंगल की हरियाली आंखों को तृप्त करती थी। रास्ते में एक स्थान पर पहाड़ टूटा हुआ था। हम नया बाजार से चले थे, मार्ग में और कोई पथिक दिखाई नहीं पड़ा था। दिन में भी जब इस प्रकार सघन वनों से आच्छादित जन-शून्य पथ में से गुजरना पड़ता है तो एकाकी चलते हुए व्यक्ति के मन में अपने आप सन्नाटा सा छा जाता है।

नया बाजार से ४ मील आगे रथोक का पुल आया। यह भी छिन्न-भिन्न हो गया था।

शाम होते न होते हम रेशी पहुंचे। रेशी सिंगला बाजार से १० मील है। रात को जब खा पी कर सोने के लिये बिस्तर पर लेटे तो रिंगित नदी की कलकल और झिल्ली-रव के
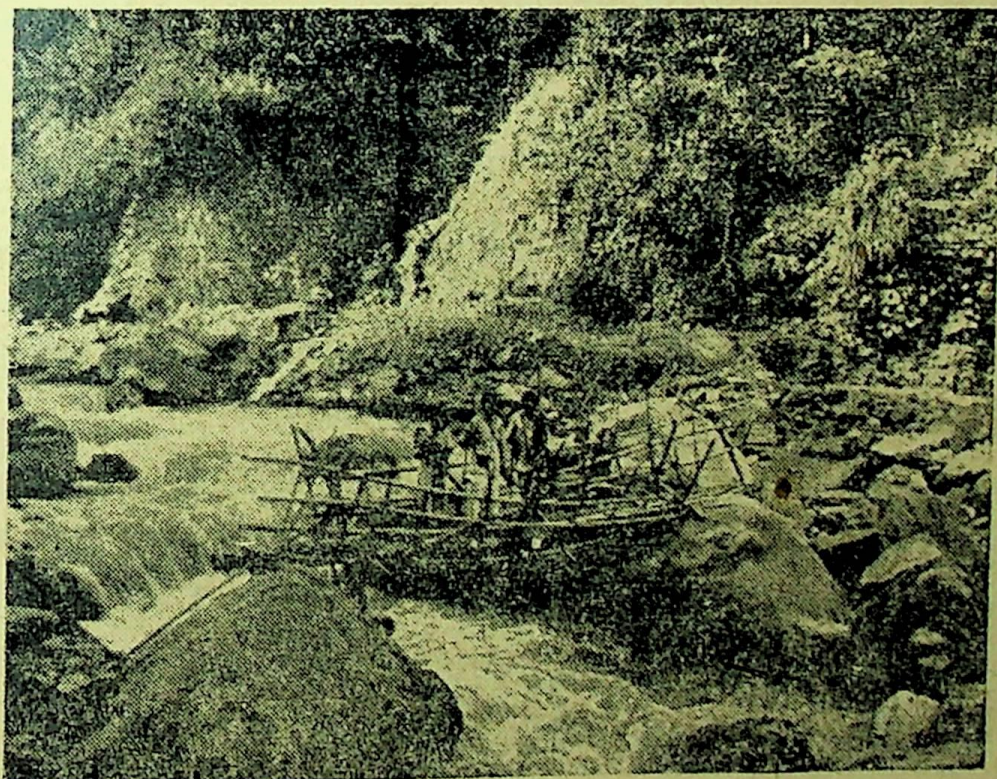
रेशी जाते हुए मार्ग में पड़ने वाला रथोक नदी पर छिन्न-भिन्न पुल

उस वर्ष की भयंकर वर्षा में भूमिस्खलन का यह एक और प्रमाण था। अब यह समझ में आया कि खच्चरों के चलने योग्य होने पर भी वह पथ सूना क्यों पड़ा था। जब से संगीत ने एकाकार हो कर कान में लोरी के से मधुर स्वर भरने शुरू कर दिये, जिसे सुनते-सुनते न जाने कब नींद की परी आंखों पर उतर आई।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

अगले दिन प्रातः जब हम चले तो फिर वही हरा-भरा, सघन, सुनसान जंगल और रिंगित की कलकल। मार्ग में बस हम और हमारे कुली, शेष सब निर्जन।

लगभग पांच मील चलने के पश्चात् मार्ग फिर छिन्न-भिन्न हो गया था। किसी तरह घनी झाड़ियों और बिच्छू बूटी में से गुजरते हुये आगे बढ़े और सीधे रिंगित नदी की धारा के निकट पहुंच गये। वहां अस्त-व्यस्त चट्टानों का ऊंचा टीला बना हुआ था जो देखने में भी बड़ा डरावना लगता था। नीचे नदी की धारा के ऊपर पहाड़ का एक भाग छज्जे की तरह झुका हुआ 'अब गिरूं तब गिरूं' की दशा में लटक रहा था। पहाड़ से जल की अजस्र धारायें चू रही थीं। आगे बढ़ने का कहीं कोई मार्ग नहीं था।

साथी रतन ने किसी तरह चट्टानों के टीले पर चढ़ कर आगे के मार्ग का पता लगाने का प्रयत्न किया। परन्तु वहां मार्ग कहां? एक ओर अस्त-व्यस्त चट्टानों का टीला और दूसरी ओर रिंगित की सर्वग्रासी तूफानी लहरें। साथी अभी टीले के ऊपर चढ़ा हुआ जांच ही कर रहा था कि पहाड़ के ऊपर से एक पत्थर खिसक कर आया और क्षितीश की कनपटी के पास से झपटता हुआ नदी की लहरों में गायब हो गया।

एक पानी की धारा को पार करते हुये अत्यन्त सतर्कता रखते हुये भी मेरा पांव फिसल गया और हाथ में पकड़ी हुई मसूरी से लाई हुई शानदार छड़ी टूट गई। छाती में चोट लगी, जो आगे कई दिन तक लगातार दुःख देती रही।

अब आगे नहीं बढ़ा जा सकता था। हम सोचने लगे—क्या हमें यहीं से वापस जाना होगा।

बहुत सोचने के बाद १-१॥ मील पीछे लौटे और अपने 'गाइड' की सहायता से पहाड़ के ऊपर चढ़ने का एक और मार्ग खोज कर किसी तरह लेगसिप पहुंचे।

किन्तु यहां आगे फिर पुल टूटा हुआ था और उस टूटे हुये पुल के कबाड़ को ही रस्सियों और बांसों के सहारे बांध कर किसी तरह सम्भाल कर रखा गया था। किनारे पर पांव रखते ही सारा पुल हिलने लगा। खाली आदमी तो किसी तरह डरते डरते रस्सी पकड़ कर पार हो भी सकता था, परन्तु मन भर बोझ उठाये कुली कैसे पार होते? परन्तु वाह रे शेरपा कुली! यह तो डरना जानते ही नहीं। एक-एक कर छहों कुली पूरे सामान के साथ सहीसलामत उस जर्जर पुल को पार कर गये।

आध मील के बाद गेजिंग की चढ़ाई शुरू हुई। यहां से एक रास्ता क्यूजिंग को जाता है। गेजिंग की तीन मील की अच्छी खासी चढ़ाई है। लगभग २००० फीट की ऊंचाई पर चलने वाला जो मार्ग तीन मील में ही ५००० फीट की ऊंचाई पर पहुंच जाता हो, उस पर चलते हुए थकान तो स्वाभाविक है। किन्तु हम ने 'शनैः कन्था, शनैः पन्थाः शनैः पर्वतलंघनम्' के उपदेश का पालन किया और निरन्तर आगे बढ़ते रहे। [अगले अंक में देखें]

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

आम

वैद्य सोमदेव शर्मा, सारस्वत

यह भारतवर्ष का एक प्राचीन और प्रसिद्ध फलदार वृक्ष है इस लिये प्रत्येक आबाल-वृद्ध भारतीय इससे सुपरिचित है। हमारे प्राचीन संस्कृत साहित्य, धर्मशास्त्र और आयुर्वेद शास्त्र की चरक, सुश्रुत संहिता और अष्टांग संग्रह तथा अष्टांग हृदय में इसका, स्थान-स्थान पर वर्णन मिलता है। हिन्दी, उर्दू, अंग्रेजी साहित्य में भी इसका विस्तृत वर्णन मिलता है। भारत वर्ष में यह सब से उत्तम मधुर फल समझा जाता है और समीप के देशों में प्राचीन समय से जाता रहा है और अब यूरोप तथा अमेरिका आदि में भी हवाई जहाज द्वारा पर्याप्त मात्रा में ले जाया जाता है और वहां सब के चित्त को आकृष्ट करता है। इस प्रकार आजकल यह संसार के प्रायः सब देशों में फलों[1] का राजा समझा जाता है। मनुष्यों के अतिरिक्त कोयल तथा तोता आदि पक्षियों को भी यह बहुत प्रिय होता है इस लिये संस्कृत में इसके पिकमहोत्सव, कोकिलबन्धु, पिकबल्लभ, पिकप्रियः, पिकबन्धु, परपुष्टमहोत्सव, कोकिलोत्सव, पिकराग, कोकिलावास आदि नाम प्रसिद्ध हैं। निर्धन पुरुष से राजा तक इसको बड़े प्रेम से खाते हैं और सब फलों में श्रेष्ठ मानते हैं जैसा कि इसके नृपप्रिय तथा फल श्रेष्ठ नाम से विदित होता है।

पक्का आम मीठा और कच्चा आम खट्टा होता है। इसकी खटाई का कारण निम्बुकाम्ल (साइट्रिक एसिड) तथा द्राक्षाम्ल (टार्टरिक एसिड) की विद्यमानता होती है।

यह हिन्दी, उर्दू तथा बंगला में आम, मराठी में आंबा, गुजराती में आंबो और अंग्रेजी में मेंगो नाम से प्रसिद्ध है।

उपयोगी अङ्ग

प्रायः वसन्त पञ्चमी पर आम में बौर आता है। फिर ग्रीष्म ऋतु में आम के वृक्ष पर फल लगता है और वर्षा के प्रारम्भ में आम का फल पक जाता है। यद्यपि व्यवहार में आम का फल ही प्रसिद्ध है परन्तु इसके पत्ते, पुष्प, मञ्जरी, त्वचा (छाल), गुठली और उसकी मज्जा (गुठली के अन्दर की मींगी) आम्र-पेशी (धूप में सुखाये हुये छिलके सहित आम के टुकड़े) सब अंग चिकित्सा म उपयोगी हैं।

आम्रपत्र[1]—आम के कोमल पत्तों का स्वरस रुचिकर तथा कफ, पित्त और वमन नाशक होता है और सूखे पत्तों को अग्नि से जला कर बनाई हुई भस्म (राख) व्रणशोधक होती है।

आम्रपुष्प[2]—आम का फूल, अतीसार तथा प्रमेहनाशक, दूषित रक्त शोधक, कफ पित्त नाशक, रुचिकर, ग्राही और वायु वर्धक है।

---

१. फलाधिराजः सहकार एव। (योग रत्नाकर)।

१. आम्रपल्लवं रुच्यं कफपित्तविनाशनम्।
(भाव प्रकाश)।

२. आम्रं पुष्पमतीसारकफपित्तप्रमेहनुत्।
असृग्दोषहरं शीतरुचिकृद्ग्राहिवातलम्॥
(भाव प्रकाश)।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

आम्रबीज[1]—आम की गुठली कसैली होती है और वमन तथा अतिसार नाशक है।

आम्रमज्जा—आम की गुठली की मींगी कसैली तथा मधुर होती है।

आम्रत्वक्[3]—आम की छाल ग्राही होती है।

आम्ररस[4]—पके हुए आम का रस हृदय के लिये हितकर, सुगंधित, स्निग्ध, रुचिकर, जठराग्निदीपन, पित्त तथा वायुनाशक और वीर्य तथा रक्त का शोधक होता है। लेप करने से त्वचा के लिये लाभदायक, मालिश करने से बालों को हितकर और रूक्षता तथा मल का नाशक है।

आम्रपेशी[5]—कच्चे आम का छिलका उतार धूप में सुखाये हुये आम के टुकड़ों को आम्र-पेशी कहते हैं। यह कसैली, खट्टी, भेदनी, कफ तथा वायुनाशक होती है।

आम्र[1] तैल—यह कुछ तिक्त, मधुर, कसैला, अति सुगन्धित, वायु तथा कफ नाशक रूक्ष किन्तु आम के रस की भांति अत्यन्त पित्तवर्धक नहीं होता है, यह मुख के रोगों का भी नाशक है।

आम्रफल

व्यवहार में आम का फल ही अधिक उपयुक्त होता है। कच्चे[2] और पके[3] दोनों प्रकार के आम के फल उपयोग में आते हैं। आम के कच्चे फल दो प्रकार के होते हैं। (१) गुठली रहित बाल आम। (२) गुठली सहित मध्यम आम।

१. गुठली रहित बाल[4] (कच्चा) आम—

१-अ. आम्रबीजं कषायं स्याच्छर्द्यतीसारनाशनम्।
ईषदम्लं च मधुरं तथा हृदयदाहनुत्॥
(भाव प्रकाश)।

आ. प्रियंग्वनन्ताम्रास्थि····················
दशेमानि पुरीषसंग्रहणानि भवन्ति।
(चरक सूत्र अ० ४/२८)।

२. कषायमधुरी मज्जा··· ·· ।
(कैयदेव निघण्टु)।

३. ग्राहिणी त्वक्··· ··· ॥
(कैयदेव निघण्टु)।

४. सहकाररसो हृद्यः सुरभिः स्निग्धरोचनः।
दीपनः पित्तवातघ्नः शुक्रशोणित शुद्धिकृत्॥
(अष्टांग संग्रह)।

५. आम्रपेशी कषायाम्ला भेदनी कफवातजित्।
(द्रव्यगुण संग्रह)।

१-अ. सहकार तैलमीषत्तिक्तमति सुगन्धि वातकफ-
हरं रूक्षं मधुर कषायं रसवन्नाति पित्तकरं च॥
(सुश्रुत० सू० अ० ४५।१२)

आ. सहकारभवं तैलं कषायं स्वादुतिक्तकम्।
मुखरोगहरं रूक्षं सुगन्धिश्लेष्मवातनुत्॥
(कैयदेव निघण्टु)।

२. कच्चे आम को अग्नि में भून कर उसका पानक (पना) बनाते हैं, यह ग्रीष्म ऋतु में पाने से लू (सनस्ट्राक) के लगने की दशा में बहुत लाभ पहुंचाता है।

३. पके आम का भी पानक (पना) बनाते हैं; यह उष्ण, गुरु, पित्तकारक, रुचिकर कफ नाशक तथा वृष्य होता है।

४ अ. वातपित्तकरं बालम्··· ··· ।
(चरक, सू० अ० २७।१३७)।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

यह वायु, पित्त तथा रक्त का वर्धक, कसैला, कटु, खट्टा और रूक्ष होता है।

२. गुठली सहित मध्यम[1] आम—यह पित्तवर्धक होता है।

आम का पका[2] फल—वायु का नाशक, मांस, वीर्य और बल का वर्धक, खाने पर पहिले मधुर फिर कुछ कसला, पाक में गुरु होने से अजीर्ण कारक, शीतल, पित्त का विरोध न करने वाला, मन के लिये प्रिय, वर्णकारक, रुचिकर, पौष्टिक।

पके हुये आम के भेद—

आम दो प्रकार से पकते हैं। (१) स्वयं पक्व[1] आम—वृक्ष पर ही ऋतु के प्रभाव से स्वयं (अपने आप) पके हुये आम, इनको 'डार का आम' भी बोल-चाल की भाषा में कहते हैं। यह पाक में गुरु, वायुनाशक, मधुर और कुछ खट्टे से तथा पित्त नाशक होते हैं।

(२) कृत्रिम पक्व[2] आम—वृक्ष से तोड़ कर, अनाज या भूसा आदि में छिपा कर रख के पकाये गये आम कृत्रिम पक्व आम कहलाते हैं। बोल-चाल में इनको 'पाल का आम' कहा जाता है। इनमें खट्टापन बिलकुल नहीं होता और बहुत मीठे होते हैं, इस लिये यह पित्त नाशक होते हैं।

पके आम खाने की विधि

पके आम दो प्रकार से खाये जाते हैं—(१) मुख द्वारा चूस कर खाना, (२) पके आमों का रस किसी बर्तन में निचोड़ कर और कपड़े में छान कर पीना।

(१) मुख द्वारा[3] चूस कर खाये गये पके आम, रुचिकर, बल तथा वीर्य के वर्धक, पाक में लघु (हलके), शीतल, शीघ्र पचने वाले, वातपित्तनाशक और रेचक होते हैं।

अ. पित्तानिलकरं बालम् ··· ··· ।
(सुश्रुत, सू० अ० ४६।१५२)।

इ. बालं कषाय कट्वम्लं रूक्षं वातास्रपित्तकृत्।
(अष्टांग संग्रह, सू० अ० ७)।

१ क ··· ··· मध्यं तु पित्तलम्।
(द्रव्यगुण संग्रह)।

ख. ··· ··· आपूर्णं पित्तवर्धनम्।
(चरक, सू० अ० २७।१३७)।

ग. पित्तलं बद्धकेसरम् ।
(सुश्रुत, सू० अ० ४६।१५३)।

२ च. पक्वमाम्रं जयेद्वायुं मांसशुक्रबलप्रदम्।
कषायमधुरप्रायं गुरुविष्टम्भिशीतलम् ॥
(चरक, सू० अ० २७।१३७)।

छ. हृद्यं वर्णकरं रुच्यं रसमांसबलप्रदम्।
कषायानुरसं स्वादु वातघ्नं बृंहणं गुरु ॥
पित्ताविरोधि संपक्वमाम्रं शुक्रविवर्धनम् ॥
(सुश्रुत, सू० अ० ४६।१५३),

१. तदेव वृक्षसंपक्वं गुरु वात हरं परम्।
मधुराम्लरसं किञ्चिद् भवेत्तत्पित्तनाशनम् ॥

२. आम्रं कृत्रिमपक्वं चेत्तद्भवेत्पित्तनाशनम्।
रसस्यालस्य हन्तिस्तु माधुर्याच्च विशेषतः ॥
(भाव प्रकाश)।

३. चूषितं तत्परं रुच्यं बल्यं वीर्यकरं लघु।
शीतलं शीघ्रपाकिस्याद्वात ईषतहरं सरम् ॥

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

(२) पके आमों को निचोड़ और कपड़े में छान कर[1] पीया हुआ आम का रस, बल-वर्धक, पाक में गुरु (भारी) वायुनाशक, रेचक, मन को अहितकर, तृप्तिकर, अत्यन्त बल-प्रद और कफवर्धक होता है।

मीठे रस वाले पके आम चूसने पर आंखों के लिये अत्यन्त हितकर होते हैं, परन्तु खट्टे[2] रस वाले आम अधिक खा लेने पर मंदाग्नि, विषम ज्वर, रक्त के रोग, बद्धगुदोदर और नेत्र के रोगों को उत्पन्न कर देते हैं, इस लिये खट्टे आम अधिक नहीं खाने चाहियें। यदि कदाचित खट्टे आम अधिक मात्रा में खा लिये जांय तो फिर उनके खाने के पश्चात् सोंठ[3] का पानी अथवा काले नमक के साथ जीरा खा लेना चाहिये, इस से फिर कोई रोग उत्पन्न नहीं होता है।

आम के भेद

राजनिघण्टु में आम के ५ भेदों का उल्लेख मिलता है—(१) साधारणाम्र, (२) कोशाम्र, (३) राजाम्र, (४) महाराजाम्र, (५) रसालाम्र।

१. साधारणाम्र—साधारणतया चूसा जाने वाला आम साधारणाम्र कहलाता है। इसके ही गुण ऊपर लिखे गये हैं।

२. कोशाम्र[1]—जंगल में स्वयमेव उत्पन्न होने वाला छोटा जंगली आम 'कोशाम्र' कहलाता है। इसके पत्ते और फल आदि साधारण आम की अपेक्षा छोटे होते हैं। यह खाने पर कुष्ठ, शोथ, रक्तपित्त, व्रण और कफ का नाशक होता है। इसका कच्चा फल ग्राही, वायुनाशक, खट्टा, उष्ण, पाक में गुरु (भारी) तथा पित्तवर्धक होता है परन्तु पक्का कोशाम्र फल, दीपन, रुचिकर, पाक में लघु (हलका), उष्ण, कफ तथा वायु का नाशक होता है। इसकी मज्जा (मींगी) कफ और वायुनाशक, मधुर, चिकनी और बल तथा जठराग्नि वर्धक होती है। खरनाद संहिता, सुश्रुत संहिता और अष्टांग संग्रह में भी कोशाम्र का संक्षिप्त रूप से वर्णन मिलता है। [शेष पृष्ठ १५ पर]

---

१. तद्रसो गालितो बल्यो गुरुर्वातहरः सरः।
अहृद्यस्तर्पणोऽतीव बृंहणः कफवर्धनः॥

२. मन्दानलत्वं विषमज्वरं च रक्तामयं बद्धगुदादर च।
आम्रातियोगो नयनामयं च करोति तस्मादति-
तानि नाद्यात्॥
तदम्लाम्रं विषयं मधुराम्रं परं न तु।
मधुरस्य परं नेत्र हितत्वाद्या गुणायतः॥
(भाव प्रकाश)।

३. शुण्ठ्यम्भसोऽनुपानं स्यादाम्राणामतिभक्षणे।
जीरकं आम्रयोक्तव्यं सह सौवर्चलेन च॥
(भाव प्रकाश)।

१. कोशाम्रः कुष्ठः शोथासपित्तव्रणकफापहः।
तत्फलं ग्राहि वातघ्नमम्लोष्णं गुरुपित्तलम्॥
पक्वं तु दीपनं रूच्यं लघूष्णं कफवातनुत्।
(भाव प्रकाश)।

मज्जा तु कफवातघ्नः स्वादुः स्निग्धोबलाग्निकृतम्॥
(कैयदेव निघण्टु)।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

पत्थरों में कलापूर्ण जीवन की झांकियाँ

[गुरुकुल संग्रहालय में संगृहीत कतिपय स्थानीय मूर्तियां]

श्री रामेश बेदी

ऐतिहासिक दृष्टि से हरिद्वार और उसके आस-पास का प्रदेश बहुत महत्वपूर्ण है। पुराणों में हरिद्वार और मायापुर का उल्लेख मिलता है। सातवीं शताब्दी में भारत का भ्रमण करते हुए चीनी ज्ञान यात्री युआन-च्वांग ने मायापुर की पवित्रता का उल्लेख करते हुए इसके निकट अवस्थित ब्रह्मपुर नामक स्थान का वर्णन किया है। जहां रेल्वे लाइन के पार अब नयी बस्ती बन रही है। इसमें प्राचीन मूर्तियों के जो खंड मिले हैं, उन्हें देख कर आजकल कुछ लोग उसे प्राचीन ब्रह्मपुरी होने का ख्याल करते हैं। यद्यपि वर्तमान हरिद्वार में भारतीय स्थापत्य कला और मूर्तिकला के अत्यन्त पुरातन नमूने नहीं मिलते, परन्तु इस प्रदेश में जो भूमिगत रचनाएं मिली हैं वे अत्यन्त रोचक हैं और इस दिशा में विचार करने के लिये नयी सामग्री प्रदान करती हैं। पुरातत्त्व सम्बन्धी अन्वेषण करने वाले विद्वानों ने इन मूर्तियों और पाषाण खण्डों को गुप्तकाल (चौथी शताब्दी ईस्वी) से लेकर उत्तर मध्यकाल के लगभग ८०० वर्ष के इतिहास से सम्बन्धित बताया है।

पावनी गंगा में स्नान करने के उद्देश्य से हरिद्वार और कनखल में अनादिकाल से धर्मपरायण लोग आ रहे हैं। सैंकड़ों वर्षों के इस लम्बे समय में इस प्रदेश में अनेक धर्म स्थान बने और काल प्रभाव के कारण नष्ट भी होते रहे। बौद्ध, जैन और हिन्दू मूर्तियां जो यहां मिली हैं उन से स्पष्ट प्रतीत होता है कि भारतवर्ष में अनेक धर्मों का जो साथ-साथ विकास होता रहा है उत्तराखण्ड का यह प्रदेश भी उसके प्रभाव के अन्तर्गत था। विभिन्न स्थानों की खुदाई में मिले टूटे-फूटे पत्थर यहां के कलापूर्ण सरस जीवन की झांकियां देते हैं। धर्म और कला का हमारे विचारों

चतुर्मुख ब्रह्मा

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

अनुराग बढ़ने पर भी यह प्रदेश इस दृष्टि से सर्वथा अछूता रहा। हरिद्वार और उसके आस पास कोई पन्द्रह मील तक कुछ स्थानों से ऐतिहासिक महत्व की मूर्तियां मिली हैं। चतुर्मुख ब्रह्मा, दिक्पाल अग्नि, हरगौरी, चतुर्मुखलिंग आदि प्रतिमाएं और समुद्र-मन्थन, सिंहवाहिनी दुर्गा, यम आदि के पाषाण खण्ड प्रस्तर—तक्षण के सुन्दर उदाहरण हैं। ये अब गुरुकुल कांगड़ा विश्वविद्यालय के भव्य संग्रहालय की विशाल गैलरियों में सुरक्षित रख लिये गये हैं और प्राचीन मूर्तिकला का अध्ययन करने वालों को इस प्रदेश में और अधिक खोज करने के लिये प्रेरणा प्रदान करते हैं।

समुद्र मन्थन। 'देवताओं द्वारा समुद्र मन्थन' दृश्य का सजीव और पौरुष-पूर्ण अङ्कन। लगभग दसवीं शती ईस्वी।

तथा जीवनों पर जो गहरा प्रभाव पड़ा था, उसका अध्ययन करने के लिये आवश्यक इस सामग्री को संग्रह करने की ओर १९४९ तक किसी का ध्यान ही नहीं गया। देश में कला और प्राचीन वस्तुओं के प्रति

जैन तीर्थंकर

ब्रह्मा। मायापुर की खुदाई से प्राप्त।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA
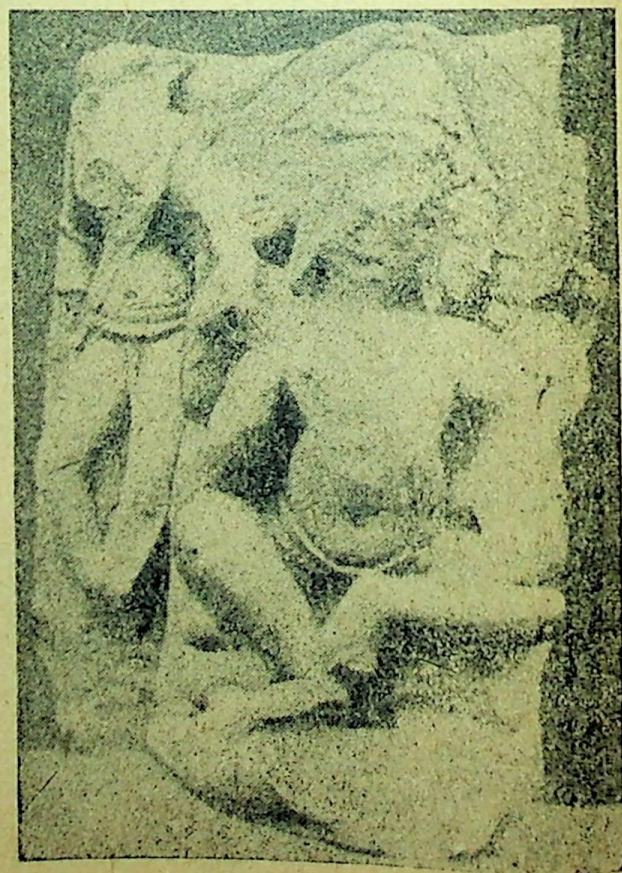
चतुर्मुख ब्रह्मा—इस में आकृति चित्रण का सफल प्रयत्न किया गया है। उत्तर भारत के प्रस्तर शिल्प का यह सुन्दरतम नमूना है। स्थानीय पत्थर को गढ़कर बनायी गयी लगभग आठ फीट ऊंची यह मूर्ति १९४९ में श्रवणनाथ वाटिका में मिली थी। एक पुराने पीपल को काटते हुए उसकी जड़ों के नीचे से यह निकाली गयी थी। वृक्ष काटने वाले का कुल्हाड़ा इसकी गर्दन पर लगा और धड़ अलग हो गया।
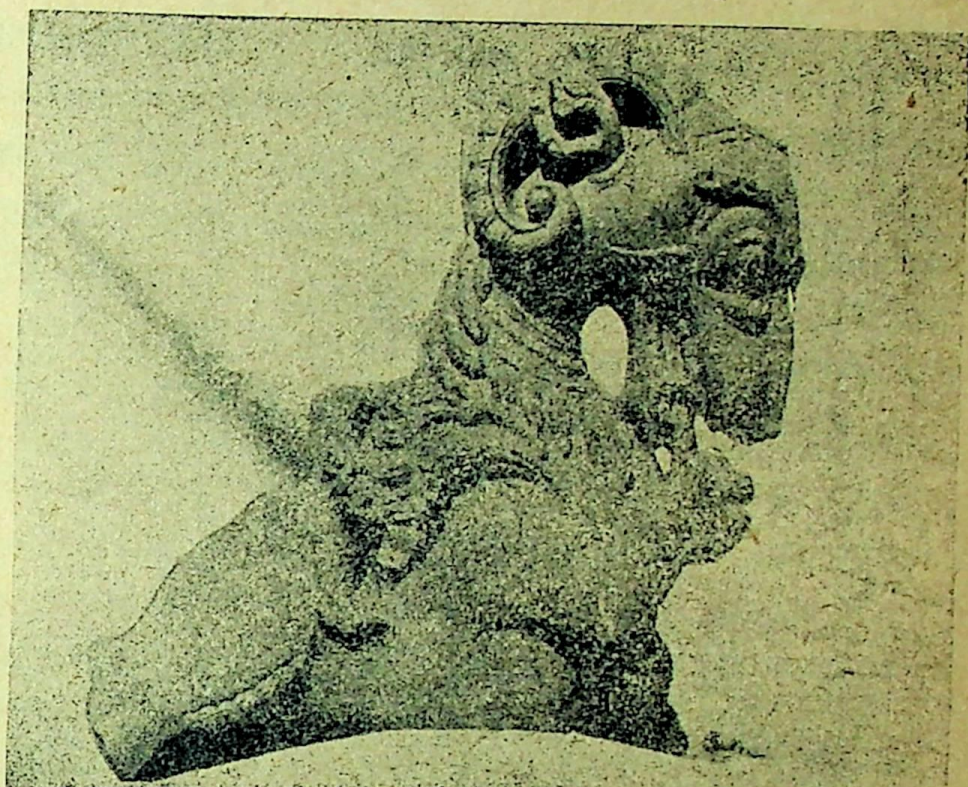
दिक्पाल अग्नि का वाहन मेष

हरिद्वार के पास पहाड़ों पर मिलने वाली शिलाएं रेतीली होने से भुरभुरी और निर्बल होती हैं। इन पर किया गया काम बहुत टिकाऊ नहीं बन पाता। इसी से जो मूर्तियां मिली हैं वे घिस-घिस कर अपने असली स्वरूप को बहुत कुछ खो चुकी हैं। चतुर्भुज ब्रह्मा के शिल्पी ने, प्रतीत होता है कि तक्षण के बाद किसी मसाले से पालिश कर के भुरभुरे पत्थर को अधिक टिकाऊ और चिकना बना दिया है।

समुद्र मन्थन—हरिद्वार के लगभग सोलह मील दक्षिण-पश्चिम में भींवरहेड़ी जलाशय से प्राप्त एक धराशायी देवालय का फाटक है। धूप, धूल और बारिश में उपेक्षित पड़े रहने से तथा गांव वालों द्वारा खराब करते रहने से इसकी सूक्ष्म अभिव्यक्तियां यद्यपि मिट गयी हैं, परन्तु फिर भी स्पष्ट प्रतीत होता है कि स्थानीय पत्थर पर तक्षण का यह सुन्दर नमूना रहा होगा।

सिंहवाहिनी दुर्गा। लगभग नवीं शती ईस्वी

दिक्पाल अग्नि—यह खण्डित मूर्ति नवम्बर १९५१ की ही एक खुदाई में लेखक ने हरिद्वार से

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

प्राप्त की है। इसके सींग मेढ़े के से, मुख कुछ कुत्ते या घोड़े जैसा है। सींग, गरदन तथा मुख के घुमाव और उभार इस कुशलता से तराशे गये हैं कि शिल्पी की कल्पना का यह जानवर सजीव बन गया है। इसके ऊपर सवार खण्डित प्रतिमा से अनुमान होता है कि देवालय में प्रतिष्ठित करने के उद्देश्य से शिल्पी ने यह मेषवाही दिक्पाल अग्नि की प्रतिमा बनायी होगी। मथुरा वाले लाल पत्थर से इसका निर्माण किया गया है।

सिंहवाहिनी दुर्गा—हरिद्वार से चार मील दूर गंगा पार सिद्धस्रोत और कांगड़ी ग्राम के बीच एक नाले के किनारे भूमिगत मन्दिर से यह फलक १९४६ की बरसात में मिला है। यह स्थानीय शिला को काट कर उत्कीर्ण किया गया है।

अलंकृत शिलाखण्ड—झींवरहेड़ी से प्राप्त एक मन्दिर का प्रस्तर खण्ड। इसके ऊपरीय भाग में मिथुन मूर्तियां अङ्कित हैं जो इस प्रदेश की पार्वत्य शैली की एक उल्लेखनीय विशेषता है।

जैन तीर्थंकर—हरिद्वार से बारह मील दूर गंगा पार मीठी बेरी (जिला बिजनौर) के पास यह खण्डित मूर्ति मिली थी। इसके निर्माण में स्थानीय पत्थर का प्रयोग नहीं किया गया।
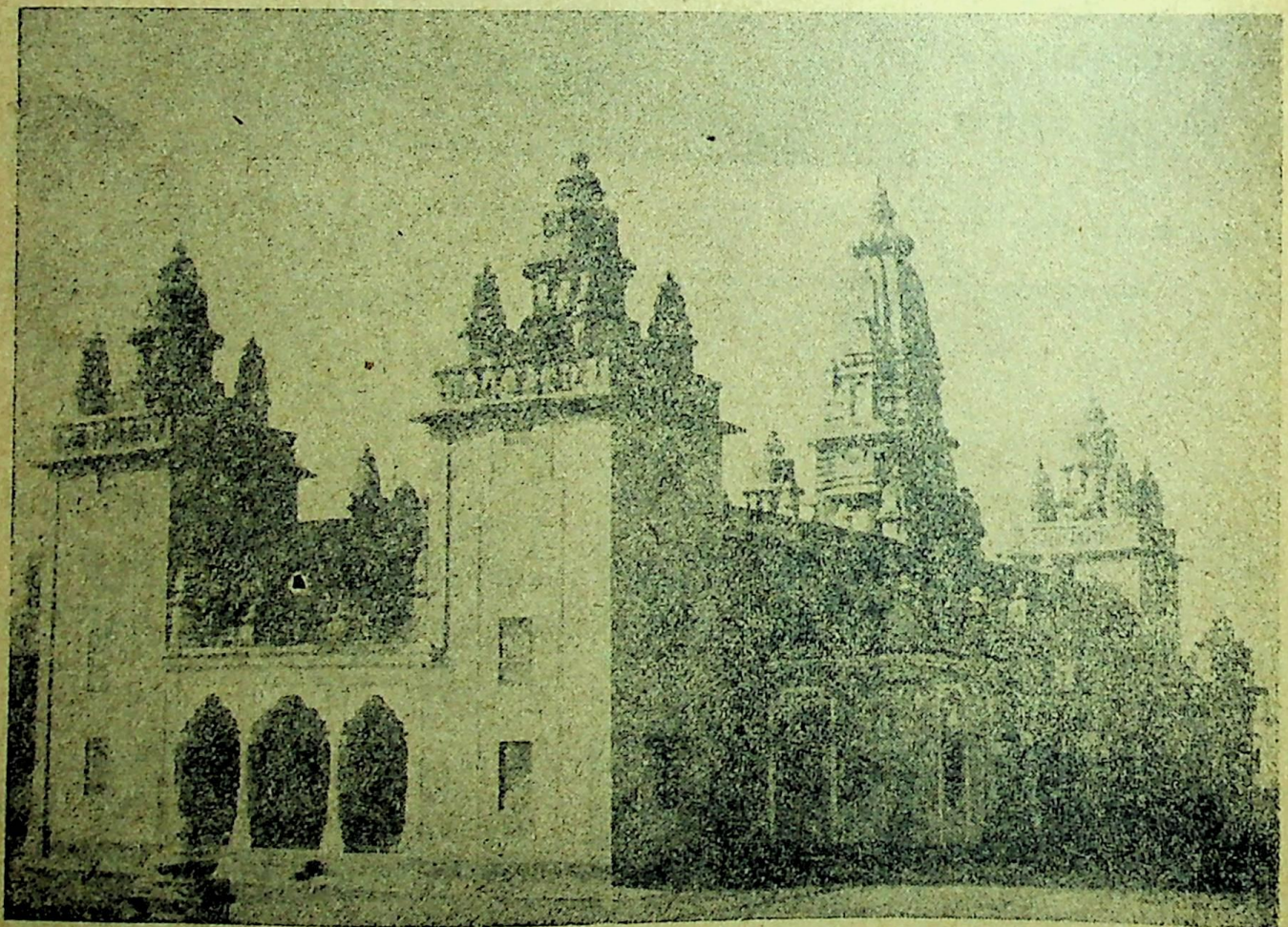
गुरुकुल संग्रहालय के इस भव्य भवन की विशाल गैलरियों में सुरक्षित ये मूर्तियां प्रतिवर्ष लाखों यात्रियों को आकृष्ट करती हैं।

★

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

रीढ़रहित जन्तुओं में जनयिता-संरक्षण

श्री चम्पत स्वरूप गुप्त

जन्तुओं के जीवन काल को प्रारम्भिक अवस्थाएं अनेक प्रकार के खतरों से घिरी होती हैं। वयस्क की अपेक्षा शिशु जीवन संघर्ष में हमेशा असफल रहता है। इसी लिए कोमल तथा अनुभव रहित बीज तथा शिशु काल में माता पिता के द्वारा रक्षा तथा पालन पोषण की विशेष आवश्यकता है। जनयिता संरक्षण में उन सब क्रियाओं की गणना होती है जो कि कोई जन्तु अपनी सन्तान की भलाई के लिये करता है। अण्डों और बच्चों के लिये अधिक से अधिक अच्छे वातावरण को प्राप्त करना, जलवायु के प्रतिकूल अवस्थाओं तथा स्वाभाविक शत्रुओं से उन को बचाना आदि ऐसी क्रियाओं के उदाहरण हैं। जन्तुओं के विभिन्न समूहों में जनयिता संरक्षण के विचित्र और मनोरञ्जक दृश्य देखने को मिलते हैं।

झिंगाओं (क्रस्टेशिज) में

झिंगा, चिंगट [प्रौन], महाचिंगट [लोब्सटर], इंचाक [श्रिंप], आदि जन्तुओं में जिस समय माता अंडों को अपने शरीर से बाहर निकालती है तो वह उन को एक संश्लेषण पदार्थ के द्वारा अपनी छोटी छोटी तैरने वाली टांगों से चिपका देती है। जब तक बच्चे अंडों में से नहीं निकलते माताएं इन अंडों को इसी स्थिति में अपने साथ लिये

आम

[२० पृष्ठ का शेष]

३. राजाम्र[1]—यह साधारण आम से बड़ा होता है, यह खाने पर पहिले मीठा फिर पीछे से कुछ कसैला, शीतल, पाक में गुरु, ग्राही, रूक्ष, विबन्ध, आध्मान और कफ तथा पित्त का नाशक एवं वायु का वर्धक होता है। साधारण आम की भांति यह भी बाल, मध्य और पक्व आम के भेद से तीन प्रकार का होता है और क्रमशः अधिक गुणशाली होता है।

मध्यराजाम्र—यह कफ आदि दोषवर्धक, कसैला और खट्टा होता है।

पक्वराजाम्र—यह त्रिदोषनाशक, प्यास, दाह, थकावट, श्वास और अरुचि का नाशक, पाक में गुरु और शीतल होता है।

४. महाराजाम्र, ५. रसालाम्र—यह दोनों भेद आजकल के बड़े कलमी आमों की जाति के होते हैं। जैसे आजकल कलमी आमों के बम्बई, बनारसी, फसली, लंगड़ा, मालदा और सहारनपुरी आदि अनेक भेद मिलते हैं। उसी प्रकार प्राचीन समय में महाराजाम्र तथा रसालाम्र आदि भेद होते थे।

---

१. राजाम्रं तुवरं स्वादु विशदं शीतलं गुरु।
ग्राहि रूक्षं विबन्धाध्मावातकृत्कफपित्त नुत्॥
(कैयदेव निघण्टु, भाव प्रकाश निघण्टु)।

★

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

फिरती हैं। नवजात शिशु भी कुछ समय तक माता के शरीर से लगे फिरते हैं या घूम फिर कर संकट के समय फिर माता के पास पहुंच जाते हैं।

कीटों (इन्सेक्ट्स) में

कीट बहुत ही चतुर तथा जीवन संघर्षों में अत्यन्त सफल जन्तु माने जाते हैं। इन जन्तुओं में जनयिता-संरक्षण का दृश्य बहुत ही ऊंचे दरजे तक पहुंचा हुआ है। जिन विभिन्न क्रियाओं के द्वारा वे अपने अण्डे और बच्चों की रक्षा करते हैं वे इस प्रकार हैं—

अण्डों को सुरक्षित तथा पोषणयुक्त स्थान पर रखना

कीट अपने अंडों को ऐसे स्थान पर रखते हैं जहां उन को भोजन के लिये तथा शत्रुओं से बचने के लिए पूर्ण सुविधा प्राप्त हो सके। उदाहरण निम्न लिखित हैं:—

[क] तिलचटे (काकरोच) और खटमल मकानों या फरनीचरों की दरारों या सूराखों में अंडे छिपाते हैं।

[ख] प्रार्थी कीट अर्थात् रामजी का घोड़ा रेशम तथा अन्य पदार्थों का उपयोग कर के अंडों के लिये विशाल गृह या पात्र बनाता है और इन घरों को पत्थर, रेत या पत्तियों के नीचे छिपा कर रखता है।

[ग] सत्रह-वर्षी टिड्डी तथा वृक्ष झींगुर वृक्षों को फाड़ कर उन की दरार में अपने अण्डे रखती है।

[घ] बहुत से घुन अपने अंडों को फलों में या फूलों की कलियों में रखते हैं।

[ङ] घोड़े वाली सूंडी मक्खी के बच्चों के पोषण तथा वृद्धि के लिये यह आवश्यक है कि उस के बच्चे किसी न किसी प्रकार घोड़े के आमाशय में पहुंचें। यह मक्खी अपने अंडे घोड़े के मुख में नहीं अपितु टांगों के बालों के बीच में रखती है। अस्तबल में रहने वाली एक दूसरी प्रकार की मक्खी के काटने से घोड़ा अपनी टांगों को काटता है और इस प्रकार सूंडी मक्खी के बच्चे घोड़े के मुंह में हो कर उस के आमाशय में में चले जाते हैं।

[च] शाखा परिवेष्टक (ट्विग-गर्डलर) नामक कीट के बच्चे गली-सडी पत्तियों से युक्त मिट्टी में अपने लिये उपयुक्त वातावरण पाते हैं। यह कीट पेड़ों की शाखाओं में सूराख बना कर अंडे रखता है। अंडे रखने से पहिले वह शाखा के चारों ओर खाई के रूप में एक चक्र या मेखला खोदता है। इस स्थान पर यह शाखा अत्यन्त दुर्बल हो जाती है और हवा के साधारण झोंके से नीचे गिर पड़ती है। इस प्रकार इस शाखा पर रखे हुये अंडे पृथ्वी पर पहुंच कर अपने अनुकूल वातावरण को प्राप्त होते हैं।

[छ] कोकिलावरट (कक्कूवास्प) एक प्रकार की भूंड या ततैया है। यह अपने अंडे दूसरे प्रकार के भूंड और तितलियों के पोषण-युक्त घरों में रखती है।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गृह निर्माण तथा भोजन संग्रह

बहुत से कीट बड़े परिश्रम के साथ अच्छे अच्छे घर बनाते हैं और पैदा होने वाली सन्तान के लिये भोजन एकत्रित करते हैं। उदाहरण निम्न लिखित हैं।

[क] कुंभकार वरट (पौटर वास्प) नामक भूंड घड़े की आकृति जैसे मिट्टी के घर बनाती है। दूसरे कीटों की हरी इल्लियों (केटर पिलर) को मार मार कर वह इस घर में भर देती हैं। इसी प्रकार भोजन एकत्रित कर के तथा अंडे देने के बाद वह मर जाती है। अंडों में से निकलने पर नवजात शिशु अपने लिये भोजन तैयार पाते हैं।

[ख] गुबरीले (डंग बीटिल्स] गोबर की गोलियां बना कर पृथ्वी के भीतर अलग गढ्ढों में रख देते हैं। प्रत्येक गोली में मादा गुबरीला एक अंडा रखती है। अंडों से निकलने पर बच्चे इस इकट्ठे किये हुये गोबर से अपना भोजन प्राप्त करते हैं।

अण्डे देने के बाद संरक्षण

कीटों में जनयिता संरक्षण के जितने उदाहरण ऊपर दिये गये हैं उन में से अधिकांश में अंडे देने के बाद माता की मृत्यु हो जाती है। किन्तु बहुत से कीट ऐसे भी हैं, जिन में अंडे देने के बाद भी माता या पिता अंडों की रक्षा तथा पालन पोषण के लिये जीवित रहते हैं। उदाहरण निम्न लिखित हैं—

क—अण्डे सेना

[१] मादा कर्णकीट (ईयर विग) पृथ्वी के भीतर गड्ढा खोद कर अंडों का समूह उस में रखती है। इस समूह को अपने शरीर के नीचे छिपा कर रक्षा करती है। कभी कभी अंडे को उठाती है और चाट चाट कर साफ करती है। इस की यह क्रियाएं अंडे सेने वाली मुर्गी के समान हैं।

[२] पेन्टेटोमिडी वंश के मत्कुण (बग्स) टेक्टोकोरिस लीनियोला और एकेन्थोसोमा इन्टर्सेटिंकटम में भी माताएं अंडे सेने की स्थिति में आराम करती हैं और कुछ दिन तक नवजात शिशुओं के पास रहती हैं।

[३] जाइगेंटोथ्रिप्स एलेगेन्स एक प्रकार का पर्णजीवक (थ्रिप्स) है। मादा कीट ग्रीष्म ऋतु म गूलर के पत्तों पर लगभग दो दर्जन अंडों का समूह रखती है। इन अंडों पर चढ़ कर वह इन की रक्षा करती है और अपने उदर को इधर उधर घुमा कर शत्रुओं को डरा देती है।

ख—बच्चों को भोजन देना

[१] आइपिडी वंश की लकड़ी में सूराख बना कर रहने वाले पिंगकपिशों (बीटिल्स) की मादाएं अपने बच्चों के भोजन के लिये लकड़ी को चबा चबा कर मज्जा के रूप में परिवर्तित कर देते हैं।

[२] स्टेफिलिनिडी वंश के पिंगकपिशो

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

मकड़ियों, चिड़ियों तथा अन्य छोटे छोटे जन्तुओं के मृत शरीर तथा अपने अंडों को पृथ्वी में दबा देते हैं। माता इस गले सडे मांस को खा कर मांस के पचे हुये रस को बच्चों के मुख में डालती है।

ग—नर द्वारा संरक्षण

[१] बेलोस्टोमेटाइडी वंश के स्फेरोडरमा नामक जल मत्कुण की मादा नर को पकड़ कर अंडों का एक समूह उस की पीठ पर रख देती है। जब तक अंडों में से बच्चे बाहर न आ जायें नर इन अण्डों को अपनी पीठ पर लिए फिरता है। यह क्रिया अत्यन्त आवश्यक है क्यों कि पानी में डूबे हुये अंडों में से बच्चे पैदा नही हो सकते। पीठ पर रखे हुये होने से उन को यह लाभ है कि जब कभी भी नर सांस लेने के लिये पानी के बाहर आता है तो इन अण्डों को भी वायु मिल जाती है।

[२] गुबरीलों में मादा के द्वारा संरक्षण का वर्णन ऊपर किया जा चुका है। इस के अतिरिक्त नर भी स्वेच्छा से अंडों के लिये घर बनाने में तथा बच्चों के लिये भोजन इकट्ठा करने में मादा की पूरी सहायता करता है।

घ—सामाजिक कीटों में संरक्षण

भूंड, चींटी तथा शहद की मक्खियां आदि कीट जो समाज बना कर रहते हैं, प्रतिदिन अपने बच्चों के लिये भोजन इकठा करते हैं। बच्चों को भोजन खिलाते हैं तथा उन की सफाई और रक्षा का पूरा प्रबन्ध करते हैं। इस में केवल माता ही नहीं अपितु समाज के अन्य वयस्क सदस्य भी भाग लेते हैं।

बिच्छू और मकड़ियों में

[१] बिच्छू एक जीवद जन्तु है अर्थात् मादा अंडे नहीं वरन जीवित बच्चों को अपने शरीर से बाहर निकालती है। कुछ समय के लिये बच्चे माता की पीठ पर सवारी करते हैं।

[२] मकड़ियां अंडों की रक्षा के लिये कोये (कोकून) कातती हैं जब तक बच्चे अंडों से बाहर नहीं आते। वे इन कोयों की रक्षा करती है। लाइकोसा नामक मकड़ी बिल बना कर रहती है। समय समय पर वह कोये को बिल के बाहर लाकर धूप लगाती है। अपनी पिछली टांगो से कोये को इस प्रकार घुमाती है कि कोये को सब ओर से पर्याप्त धूप लग सके। टेरेन्टुला नामक भेड़िया मकड़ी अपने अंड समूह को अपने साथ रखती है और जब बच्चे पैदा हो जाते हैं तो वे माता की पीठ पर चढ़े फिरते हैं।

[३] ग्रीष्म ऋतु में समुद्री मकड़ी का नर अंडों का थैला अपने साथ लिये फिरा करता है।

★

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

पुस्तक-परिचय

[समालोचना के लिए प्रत्येक पुस्तक की दो प्रतियां आनी आवश्यक हैं। एक प्रति आने पर प्राप्ति स्वीकार ही देना सम्भव होगा। —सम्पादक]

मानवधर्म मीमांसा —

लेखक पण्डित किशोरीदास वाजपेयी, कनखल, मूल्य २)। श्री वाजपेयी जी हिन्दी के लब्ध प्रतिष्ठित लेखक हैं और इस पुस्तक में उन्होंने समाजशास्त्र की दृष्टि से धर्म की तात्विक व्याख्या की है। यद्यपि वर्तमान युग में धर्मनिरपेक्षता पर बहुत अधिक बल दिया जा रहा है, नवीन संविधान में भारत को धर्म निरपेक्ष राज्य घोषित किया गया है किन्तु ऐसे धर्म विरोधी युग में श्री वाजपेयी जी ने धर्म की नई व्याख्या की है, उसे सम्प्रदाय से सर्वथा भिन्न बताते हुए कर्तव्यशास्त्र का दूसरा नाम दिया है। धर्म को प्रायः पारलौकिक माना जाता है किन्तु वाजपेयी जी उसे विशुद्धरूप से लौकिक मानते हैं। सत्य-अहिंसा आदि जो नियम समाज व्यवस्था चलाने के लिये बनाये गये हैं; वही धर्म हैं। मनुस्मृति आदि प्राचीन ग्रन्थों के आधार पर दश लक्षण धर्म तथा नागरिकों के कर्त्तव्यों का इस पुस्तक में सुन्दर विवेचन किया है। समाजवाद, तपस्या, सम्मिलित कुटुम्ब, छुआछूत पर उनके विचार मननीय हैं। 'जिसने शराब पी रखी हो, उसे मत छुओ, उसके साथ मत खाओ, उसे मंदिर में न जाने दो···यही छुआछूत का असली मतलब है।' किन्तु वाजपेयी जी की यह सम्मति माननीय नहीं प्रतीत होती कि मन्दिर प्रवेश के लिये हरिजनों को सत्याग्रह नही करना चाहिये। यदि ऐसा कराने वाले 'हरिजन सेवा का सस्ता सर्टिफिकेट लेकर वोट लेने की चिन्ता करने वाले हैं, तो म० गान्धी जी को भी ऐसा व्यक्ति स्वीकार करना पड़ेगा।

यज्ञ के सम्बन्ध में वाजपेयी जी की नई उद्भावना यह है कि यह धर्म संस्थापनार्थ महासमर था, (पृ० ७३) अग्नि में आहुति देकर यज्ञ करने का समूचा वर्णन लाक्षणिक है, उसे वाच्यार्थ में नहीं ग्रहण करना चाहिये। किन्तु वैदिक साहित्य में प्रारम्भ से ही अग्नि और यज्ञ के भौतिक स्वरूप को जो असाधारण महत्व दिया है, जिसके विस्तृत विधि-विधान के लिये ब्राह्मण ग्रन्थों, श्रौतसूत्रों की रचना हुई उसे अलंकार मात्र कह कर केवल कल्पना के बल पर वैदिक काल से चली आने वाली परम्परा का अपलाप नहीं किया जा सकता। यह विचार नवीन अवश्य है पर उसे सत्य सिद्ध करने के लिये प्रभूत एवं पुष्ट प्रमाणों की अपेक्षा है।

कुछ विवादास्पद विषयों को छोड़ कर पुस्तक बहुत सुन्दर है, इस की शैली बड़ी रोचक है और हमें आशा है कि विद्यार्थियों एवं नागरिकों को अपने सामाजिक कर्त्तव्यों का बोध कराने के लिये यह पुस्तक बहुत उपादेय सिद्ध होगी।

काव्य में रहस्यवाद—

लेखक उपर्युक्त। मूल्य ।=)।

स्वतन्त्र भारत के प्रथम राष्ट्रपति श्री सुभाष चन्द्र बोस—

लेखक उपर्युक्त। मूल्य ।।।)। पहली पुस्तक रहस्यवाद की संक्षेप से बहुत स्पष्ट विवृत्ति है।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

सिद्धों, सूफियों और वर्तमान युग के छाया-वादी कवियों के रहस्यवाद के रहस्य का उद्घाटन बड़ा बोधप्रद और मनोरंजक है। दूसरी पुस्तक में नेता जी के ओजस्वी जीवन का बड़ा सरस प्रतिपादन है। —हरिदत्त।

श्री बद्री केदार यात्रा-

लेखक श्री स्वामी बुद्धिचन्द्र पुरी। प्रकाशक रामेश्वर पुस्तकालय, श्री गुरु श्रीचन्द्र का मन्दिर, कनखल। पृष्ठ संख्या १६८। मूल्य १।) । लेखक महोदय तीन बार बद्री, केदार आदि उत्तराखण्ड के तीर्थ स्थानों की यात्रा कर आये हैं। अपने अनुभव के आधार पर लेखक ने बताया है कि पहाड़ी यात्राओं में किन चीजों को साथ रखना आवश्यक है और किन बातों का ध्यान रखने से यात्रा सुन्दर हो जाती है। पुस्तक में स्थान-स्थान पर अनेक भजन दिये गये हैं। यात्रा से थक कर जब तीर्थ यात्री यहां पर पहुंचता है तो भक्तिरस से परिपूर्ण इन गीतों को गा कर सत्सङ्ग का आनन्द लेते हुए अपनी थकान उतार सकता है। अनेक चित्रों से सुसज्जित यह पुस्तक तीर्थ यात्रियों के लिए उपयोगी है। पुस्तक की छपाई, सफाई की ओर लेखक को ध्यान देना चाहिए। हिमालय में वनस्पतियों, खनिजों, पशु-पक्षियों आदि की जो अपार सम्पदा पड़ी है उसकी ओर भी लेखक प्रकाश डालते तो अच्छा था। हमारे देश को उत्तराखण्ड के इन दुर्गम स्थलों की वन्यश्री का और अमूल्य खनिजों का ज्ञान होने पर इधर भी अनेक नये उद्योग-धन्धों की नींव पड़ सकती है।

संस्कारविधि विमर्श-

लेखक श्री अत्रिदेव विद्यालंकार। प्रकाशक नरेन्द्र शशि, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, बनारस। पृष्ठ संख्या १२५, आकार २०×३०/१६, मूल्य ३) आयुर्वेद की अनेक पुस्तकों के टीकाकार और लेखक के रूप में श्री अत्रिदेव सुपरिचित हैं। इस पुस्तक के प्रारम्भ में लेखक ने आयुर्वेद और संस्कारों का सम्बन्ध बता कर गर्भाधान से लेकर अन्त्येष्टि तक सब संस्कारों का विस्तार से वर्णन किया है। संस्कृत के प्राचीन विद्वानों के वचनों को स्थान-स्थान पर उद्धृत करते हुए विषय को प्रामाणिक बनाने का प्रयत्न किया है। प्रमाण के साथ प्रतीक भी पूरी देनी चाहिए जिस से पाठकों को मूल ग्रन्थ में देखने की सुविधा रहे। परिशिष्ट में शुक्र की परीक्षा, शुद्ध आर्तव की पहिचान तथा प्रजनन सम्बन्धी रोगों की चिकित्सा भी संक्षेप में लिख दी है। पुस्तक के अन्त में अनुक्रमणिका देने की परिपाटी बहुत अधिक उपयोगी सिद्ध होती है। लेखक की अन्य पुस्तकों की तरह प्रस्तुत पुस्तक में भी अनुक्रमणिका नहीं है। यह बड़ी भारी कमी है। आशा है लेखक अगले संस्करण में इस कमी को दूर कर देंगे।

—रामेश बेदी।

★

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गुरुकुल-समाचार

ऋतु

लम्बी प्रतिक्षा के पश्चात् जुलाई के प्रारंभ के साथ ही इस प्रदेश पर मेघराज की कृपा अवतीर्ण हुई है। तृषित धरित्री पानी मिलते ही उल्लसित हो उठी है। खेतों, मैदानों, उद्यानों और वनों में भी अपूर्व आनंद और उल्लास छा गया है। लता, पल्लव, प्रसूनों में नवजीवन का सञ्चार हो गया है। वर्षा से भ्रमण का आनंद आने लगा है। ब्रह्मचारियों की टोलियां भ्रमणार्थ प्रात: और सायंकाल निकलनी आरंभ हो गई हैं। कुल के आम्रोद्यानों में फल के प्रेमियों की चहल पहल प्रारंभ हो चुकी है। अमराईयों से टपके टपकने लगे हैं। दिवस और निशाएं सुहावनी और शीतल हो गई हैं।

नवीन सत्र

पावस के आगमन के साथ ही अध्ययन-अध्यापन का नवीन सत्र दो जुलाई से प्रारंभ हो चुका है। विद्यालय के समस्त ब्रह्मचारी और गुरुजन अवकाश से लौट आये हैं।

मान्य अतिथि

पटना विश्वविद्यालय के प्रोफेसर वी. पी. वर्मा एम० ए०, पी० एच० डी० तथा श्री आनंद गोपाल शेवडे एम०ए०, सहायक सम्पादक नागपुर टाइम्स, नागपुर कुल भूमि में पर्याप्त समय रहे। श्री शेवड़ जी ने गुरुकुल के प्रत्येक विभाग को देख कर हर्ष एवं सन्तोष प्रकट किया। पिछले दिनों ये डान्डी से रेवरटेन्ड ए. एल. लान्डरे। डा० एफ० ए० वफर एम० ए० डी. डी० धारवाड मि० जे० वस, प्रिन्सीपल सेन्टजार्ज कालिय मंसूरी श्रीमान् और श्रीमती एस० फिकार्ड तथा फ्रान्स सरकार द्वारा भेजी हुई मिस वियाडो गुरुकुल में पधारे और सूक्ष्मता के साथ उन्होंने गुरुकुल के विभागों को और कार्य कलापों का निरीक्षण किया। वे गुरुकुल की कार्य-विधि से बहुत प्रभावित हुये।

आवश्यकता

श्री आचार्य जी सूचित करते हैं कि बाराबंकी के एक धर्मार्थ औषधालय के लिए एक-योग्य वैद्य की आवश्यकता है जो अनुभवी और औषधी रस निर्माण में कुशल हो, डाक्टरी औषधियों का भी ज्ञान हो। इच्छुक आयुर्वेदालंकार महानुभाव मेसर्स रामानंद वंशीधर, कपड़े तथा सूत के व्यापारी व आढ़ती, बाराबंकी से पत्र व्यवहार करें।

स्थान चाहिए

गुरुकुल कांगड़ी के एक आयुर्वेदालंकार चिकित्सा सम्बन्धी कार्य करने के इच्छुक हैं। सार्वजनिक औषधालय में सेवा करना अधिक पसन्द करेंगे। निम्न लिखित पते पर पत्र व्यवहार कीजिये—श्री धीरेन्द्र आयुर्वेदालंकार, डा० गुरुकुल कुरुक्षेत्र, करनाल।

गुरुकुल संग्रहालय की लोक-प्रियता

गुरुकुल संग्रहालय से लाभ उठाने वाले दर्शकों की संख्या निरन्तर बढ़ रही है। प्रति-

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

दिन अनेक व्यक्ति संग्रहालय में आकर भारतीय संस्कृति एवं उत्तराखंड की प्राचीन कलाओं का सजीव परिचय प्राप्त करते हैं। निम्न तालिका से यह स्पष्ट है कि पिछले पांच महीनों में ७१६८ दर्शकों ने इस से ज्ञान वृद्धि की। सब से अधिक दर्शक गुरुकुल उत्सव के दिनों में आये। १४ से १६ एप्रिल १९५१ तक दर्शकों की संख्या २१५८ थी। १५ एप्रिल को यह संख्या ८०० थी। यह स्मरण रहे कि यह संख्या उन दर्शकों की है जिन्होंने संग्रहालय की उपस्थिति पञ्जिका पर स्वयं हस्ताक्षर किये हैं। ऐसे दर्शकों की संख्या कम नहीं जिन्होंने इस पञ्जिका पर हस्ताक्षर नहीं किये। वैज्ञानिक संग्रहालय के दर्शक इस संख्या में सम्मिलित नहीं हैं।

जनवरी १९५१ से मई १९५१ तक गुरुकुल संग्रहालय से लाभ उठाने वाले दर्शकों की मासिक संख्या—

मास	दर्शक संख्या
जनवरी	४९६
फरवरी	३५८
मार्च	९०६
एप्रिल	४१३३
मई	१२७५
कुल संख्या	७१६८

स्वास्थ्य समाचार ज्येष्ठ २००८

स०		श्रेणी	रोग	दिन
१	महेन्द्र कुमार	४	मोच	६
२	सन्तोष प्रकाश	३	,,	१५
३	सन्तोष कुमार	३	,,	२
४	ब्रह्मस्वरूप	१४	अतिसार	५
५	मंगलेश्वर	३	,,	३
६	रमेश	३	,,	३
७	ओम्प्रकाश	३	,,	८
८	वेदव्रत	११	,,	१
९	महेन्द्र प्रताप	४	चोट	२
१०	व्रजमोहन	४	,,	४
११	श्रीकृष्ण	४	,,	६
१२	आनन्द प्रकाश	२	,,	६
१३	प्रभाकर	३	फोड़े	६
१४	राजकुमार	२	ज्वर	२
१५	जयपाल	११	,,	२
१६	नरेन्द्र	२	,,	५
१७	सत्येन्द्र	४	,,	३
१८	वसन्त कुमार	३	,,	४
१९	जितेन्द्र	४	,,	३
२०	गोविन्द	७	अतिसार	२
२१	सुरेशचन्द्र	३	मम्प्स	११
२२	चमनलाल	१२	प्रतिश्याय ज्वर	२
२३	विनोद	६	उदर शूल	४
२४	सुरेन्द्र	२	दाद	१६
२५	राम अवतार	२	,,	१९

—गृह चिकित्सक।

★

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

ग्रीष्म ऋतु के उपहार

ब्राह्मी तेल

दिमाग को ठण्डक व तरावट देता है। आंखों की ज्योति बढ़ाता है।

मूल्य १।=) शीशी

आमला तेल

यह तेल बालों को रेशम की तरह मुलायम कर काला करता है। मूल्य १।) शीशी

भीमसेनी नेत्रबिन्दु

यह औषधि दुखती आंखों के लिए अक्सीर है। कुकरे व दर्द भी दूर करती है।

मूल्य १) शीशी

पामाहर

इसके लगाने से खुजली व चम्बल को आराम हो जाता है। मूल्य ।=) शीशी

पायोकिल

पायोरिया की एकमात्र दवा है। प्रतिदिन प्रयोग करें। मूल्य १॥) शीशी

भीमसेनी सुरमा

यह जगत प्रसिद्ध सुरमा आंखों के सभी रोगों पर अचूक है। बालक, वृद्ध सभी प्रयोग कर सकते हैं।

मूल्य ॥=) शीशी

ब्राह्मी बूटी

बुद्धि को बढ़ाने व मस्तिष्क की दुर्बलता को दूर करने में इस से अच्छी और बूटी नहीं है। हमारे यहां हर समय ताजी मिलती है। मंगायें। मूल्य ३) सेर

ब्राह्मी शर्बत

बादाम आदि डाल कर यह शर्बत तैयार किया है। इस ऋतु में सेवन योग्य उत्तम शर्बत है। मूल्य ३) बोतल

भीमसेनी दन्त मंजन

दांतों में कीड़े लग जाना, हिलना, मसूड़ों का खुजलाना आदि में इस मञ्जन का प्रयोग करें। प्रतिदिन सेवन करना लाभदायक होगा।

मूल्य ॥=) शीशी

गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी (हरद्वार)

मुद्रक—श्री हरिवंश वेदालङ्कार। गुरुकुल मुद्रणालय, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

प्रकाशक—मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

स्वाध्याय के लिए चुनी हुई पुस्तकें

वैदिक साहित्य

वैदिक ब्रह्मचर्य-गीत श्री अभय २)
वैदिक विनय १, २, ३ भाग ,, २।), २।), २।)
ब्राह्मण की गौ ,, ।।।)
वैदिक अध्यात्मविद्या श्री भगवद्दत्त १।)
वैदिक स्वप्न विज्ञान ,, २)
वेदगीताञ्जली [वैदिक गीतियां] श्री वेदव्रत २)
वैदिक सूक्तियां श्री रामनाथ १।।)
वरुण की नौका [दो भाग] श्री प्रियव्रत ६)
सोम-सरोवर, सजिल्द, अजिल्द श्री चमूपति २), १।।)
अथर्ववेदीय मन्त्र-विद्या श्री प्रियरत्न १।।)

धार्मिक साहित्य

सन्ध्या रहस्य श्री विश्वनाथ २)
धर्मोपदेश १, २, ३ भाग स्वा० श्रद्धानन्द १), १), १।।)
आत्ममीमांसा श्री नन्दलाल २)
प्रार्थनावली ।)
आर्यसमाज और विचार संसार श्री चमूपति ।)
कविता मंजरी ।–)
कविता कुसुमाञ्जली ।)

स्वास्थ्य सम्बन्धी पुस्तकें

आहार [भोजन की पूर्ण जानकारी के लिए] ५)
लहसुन : प्याज श्री रामेश वेदी २।।)
शहद [शहद की पूरी जानकारी के लिए] ,, ३)
तुलसी [दूसरा परिवर्धित संस्करण] ,, २)
सोंठ [तीसरा परिवर्धित संस्करण] ,, १।।)
देहाती इलाज [दूसरा संस्करण] ,, १)
मिर्च [काली, सफेद और लाल] ,, १)
स्तूप निर्माण कला सचित्र, सजिल्द, ३)
प्रमेह, श्वास, अर्शरोग १।)
जल चिकित्सा श्री देवराज १।।।)

ऐतिहासिक ग्रन्थ

भारतवर्ष का इतिहास, तीन भाग श्री रामदेव ७)
बृहत्तर भारत [सचित्र] सजिल्द, अजिल्द ७) ६)
अपने देश की कथा [दू० संस्क०] सत्यकेतु १।≈)
योगेश्वर कृष्ण श्री चमूपति ४)
ऋषि दयानन्द का पत्र व्यवहार ।।)
हैदराबाद आर्यसत्याग्रह के अनुभव ।।)
महवीर गेरीबाल्डी श्री इन्द्र १।)

संस्कृत साहित्य

बालनीति कथामाला [तीसरा संस्करण] १)
नीतिशतक [संशोधित] ≈)
साहित्य-दर्पण [संशोधित] २)
संस्कृत प्रवेशिका, प्र० भाग [चौथा संस्क०] ।।।≈)
,, ,, २ भाग [तीसरा संस्करण] ।।≈)
अष्टाध्यायी, सटीक, पूर्वार्द्ध श्री गङ्गादत्त ७)
रघुवंश संशोधित [तीन सर्ग] ।)
साहित्य-सुधासंग्रह १, २, ३ बिन्दु १।), १।), १।)
संस्कृत साहित्य पाठावली ≠)

शालोपयोगी

विज्ञान प्रवेशिका २ य भाग श्री यज्ञदत्त १।)
गुणात्मक विश्लेषण [बी. एस. सी. के लिए] २।।)
भाषा प्रवेशिका [वर्धा योजनानुसार] ।।)
आर्यभाषा पाठावली [आठवां संस्करण] १।।)
ए गाइड टु दी स्टडी ऑफ संस्कृत ट्रांसलेशन एण्ड कम्पोजीशन, दूसरा संस्क०, ३३६ पृष्ठ १)

पता—प्रकाशन मन्दिर, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA